

श्री सुमनजी को अभिनन्दन-ग्रंथ समर्पित करते हुए उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन

सत्यमेव जयते

उपराष्ट्रपति, भारत
नई देहली
VICE-PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

सितम्बर २७, १९६६

मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि हिन्दी जगत की ओर से राष्ट्रीय कार्यकर्ता, समाजसेवी तथा हिन्दी के लेखक श्री क्षेमचन्द्र सुमन का सम्मान किया गया। उन्हें इस अवसर पर एक ग्रंथ भेंट करने का मौका मुझे मिला। ग्रंथ को देखने से पता चलता है कि सुमन जी ने कई क्षेत्रों में अच्छा काम किया है और समाज में उनका बड़ा आदर है।

देश की किसी भी रूप में सेवा करने वालों का अभिनन्दन करना आनन्द देने वाली चीज होती है। मुझे पूरी उम्मीद है कि आगे सुमन जी की सेवाएं और अधिक व्यापक बनेंगी और उनसे देश को तथा हिन्दी साहित्य को और अधिक लाभ पहुंचेगा।

मैं उनकी पचासवीं सालगिरह पर उनको पूरे दिल से बधाई देता हूं।

ज़ाकिर हुसैन
(ज़ाकिर हुसैन)

सुमन अभिनन्दन ग्रंथ

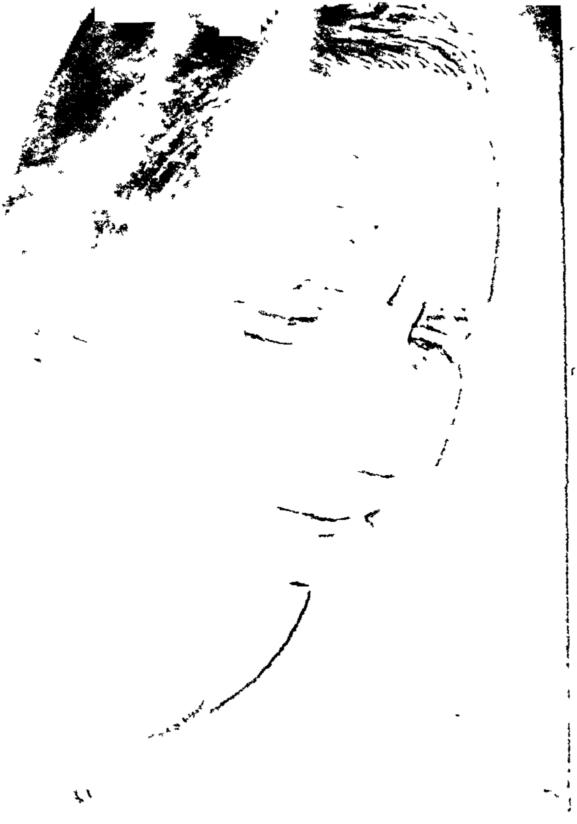


५१ वाँ जन्म-दिवस

१६ सितम्बर '६६

• प्रकाशक — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ७
सुमन अभिनन्दन-समिति की ओर से
• मुद्रक — हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली ६
• मुद्रण-सहयोगी — राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स • भारत मुद्रणालय • शुचि प्रा० लि०, दिल्ली
• रूपशिल्प — ठाकुर तूलिका शॉप
• पुस्तकीकरण — नेशनल बुक बाइंडिंग कम्पनी, दिल्ली

मूल्य : चालीस रुपये



श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'
(१९६५)

दीपशिखा की भाँति अहरह जलती हुई प्रीति-साधना के साधक
लोकचेतना से स्पन्दित मंगलोन्मुखी साहित्य-सृष्टि के कुशल संवाहक
अन्त:सलिला-धारा से स्नात कवि, निबंधकार, समीक्षक, सम्पादक

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

को

अर्द्धशती-पूर्ति के अवसर पर

सस्नेह समर्पित



अभिनन्दन-समिति

अध्यक्ष	प्रकाशन समिति
डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर'	रामलाल पुरी
उपाध्यक्ष	कन्हैयालाल मलिक
अक्षयकुमार जैन	राधेमोहन अग्रवाल
रतनलाल जोशी	हरप्रसाद शास्त्री
बाँकेबिहारी भटनागर	फतहचन्द शर्मा 'आराधक'
मन्त्री	जयप्रकाश भारती
वीरेन्द्र प्रभाकर	श्यामसुन्दर गर्ग

अर्थ-समिति

ताराचन्द खण्डेलवाल	पीताम्बरशरण रस्तोगी
राजेन्द्रपाल पुरी	रामनिवास ढढारिया
लक्ष्मीचन्द्र जैन	देवेन्द्रकुमार जैन

संयोजक

हितशरण शर्मा

सम्पादन-समिति

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक	डॉ० प्रभाकर माचवे
विष्णु प्रभाकर	देवेन्द्र सत्यार्थी
यशपाल जैन	देवदत्त शास्त्री

सम्पादक

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

मधुपर्क

साहित्यकार का जीवन साधना का जीवन है। दीपक की भाँति स्वयं जल-कर भी वह दूसरों को प्रकाश देता है, जीवन-भर व्यथा में तपकर वह जो पाता है उसे सजाकर, सँवारकर समाज में लुटा देता है।

ऐसे ही साहित्यकार हैं श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', जिन्होंने जीवन और जगत् के समस्त विष को अपनी साधना के बल से अमृत बना लिया और उनकी साहित्य-साधना 'वाङ्मय तप' बन गई। कहा जाता है कि साहित्यिक कृति साहित्यकार की सृष्टि होती है और साहित्यकार उसका स्रष्टा होता है, किन्तु हमने अनुभव किया कि कृति की रचना के प्रयत्न में, साहित्य का निर्माण करते हुए श्री सुमनजी स्वयं भी रचे जा रहे हैं, निर्मित हो रहे हैं। इनके व्यक्तित्व से साहित्य को अलग नहीं किया जा सकता ? और न इनके साहित्य से इनके व्यक्तित्व को पृथक् किया जा सकता है। 'सुमन' व्यक्ति हैं, संस्था हैं, साहित्य हैं।

गत ३५ वर्षों से साहित्य-सर्जन करते हुए पचास वर्ष की आयु में पहुँचकर सुमनजी का अन्तर्मन जाग्रत हो गया है और वह दूसरों में अपने को खोने से तथा अपने में दूसरों को पाने के लिए मचल उठा है। समीक्षकों ने सुमनजी की कृतियों की समीक्षा करते हुए बताया है कि "अतीत की सफलताओं-विफलताओं का, आपबीती और जगबीती का संवेदनाओं और प्रेरणाओं का एक नया ही अर्थ खोजने में सुमनजी का साहित्यकार सफल और समर्थ हुआ है।"

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'-जैसे व्यक्तित्व और कृतित्व से सत्प्रेरणा प्राप्त करके जाग्रत जनों ने 'गोष्ठक' को सम्मान देने, वाङ्मय तप को मधुपर्क अर्पित करने के कर्तव्य का हमें बोध दिया, प्रबोध दिया, सहयोग दिया, सहकार दिया, सौहार्द दिया 'सुमन-अभिनन्दन-समिति' को माध्यम बनाकर। देश के प्रत्येक क्षेत्र से हमें आध्यात्मिक, भौतिक प्रीति-सम्भार मिले, जिन्हें प्रबुद्ध संपादकों ने संपादित करके 'एक व्यक्ति : एक संस्था' अभिधान से यह वाङ्मय मधुपर्क तैयार किया। इस मधुपर्क में जिन लेखकों, प्रकाशकों, संस्थाओं, व्यक्तियों और सहृदय जनवर्ग ने बौद्धिक, हार्दिक, आर्थिक आदि अनेकविध सहायता, सहयोग दिया है उनके प्रति आभार या कृतज्ञता प्रकट करना उन्हें अपने से अलग समझना और उनकी आत्मीयता तथा निष्ठा का मूल्य निर्धारित करना होगा। अपने सभी सह-योगियों, शुभैषियों, सहायकों, प्रेरकों की कल्याण-कामना से निर्मित मधुपर्क—'सुमन-अभिनन्दन-ग्रंथ' भगवती वाग्देवी के चरणों में अर्पित करते हुए हम यही कामना करते हैं—

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वत ।

संयोजक
सुमन-अभिनन्दन समिति

१६ सितम्बर, १९६६

'सुमन' का यह अभिनन्दन

आज से एक वर्ष पूर्व श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के कुछ मित्रों ने उनकी 'अर्धशती-पूर्ति' के अवसर पर एक अभिनन्दन-ग्रंथ समर्पित करने का विचार किया था। सच तो यह है कि वह विचार सुमनजी की मित्र-मंडली तक ही सीमित था और उसे बृहदाकार ग्रंथ के कलेवर में बाँध पाने का स्वप्न उनकी कल्पना में भी नहीं था। किन्तु वह सूक्ष्म विचार बिन्दु महार्णव कैसे बन गया और कैसे यह नयनाभिराम अभिनन्दन-ग्रंथ अस्तित्व में आ सका इसका रहस्य सुमनजी के लोकप्रिय व्यक्तित्व में ही निहित है।

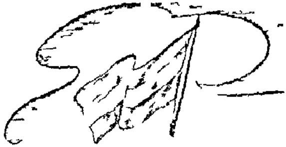
जिस प्रकार सुमनजी का कार्यक्षेत्र व्यापक-विस्तृत है उसी प्रकार उनके मित्रों, हितैषियों, परिचितों और प्रशंसकों का भी विशद विस्तार है। साहित्य, समाज, धर्म, राजनीति और पुस्तक-व्यवसाय तो इनके कर्मक्षेत्र हैं जिनमें इनकी सक्रियता प्रत्यक्ष लक्षित होती है। किन्तु इनके अतिरिक्त भी अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ परोक्ष रूप से सव्यसाची की भाँति सुमनजी का वामहस्त सक्रिय रहता है। सुमनजी केवल रचनाकार के रूप में ही साहित्यकार नहीं हैं अपितु नवोदित प्रतिभाओं को परमकर साहित्य-सृजन में प्रेरित करने वाले 'मंत्रोपदेष्टा आचार्य' भी हैं।

जिस समय हमने अभिनन्दन-ग्रंथ की योजना को कार्यान्वित करने के लिए सहयोगियों पर दृष्टि डाली तो सभी क्षेत्रों में हमें सुमनजी के शत-शत मित्रों और प्रशंसकों के स्नेह श्रद्धा-समन्वित सहस्र कर योजना का स्वागत करने को उद्यत दिखाई पड़े। फलत उन्हीं शुभैषी मित्रों के सहयोग, सद्भाव और सौमनस्य से यह ग्रंथ अस्तित्व में आ सका है।

सुमनजी शत प्रतिशत स्वावलम्बी, स्वाभिमानी, अध्यवसायी और कर्मठ व्यक्ति हैं। उनके साहित्यिक मानदंड भी इन्हीं गुणों से निर्मित हुए हैं, अत बड़े-बड़े पूँजीपतियों अथवा सत्ताधारी शासकों की कृपा-कोर की उन्हें कभी दरकार नहीं रही। उन्होंने किसी पद-प्रतिष्ठा, अधिकार-सत्ता या राजनीतिक प्रभाव से अपने चारों ओर 'दर्प-दीप्त प्रभा मंडल' नहीं बनाया, प्रत्युत कल्याण-मित्र का सात्विक परिवेश ही उनकी पूँजी रहा है।

अभिनन्दन-ग्रंथ हमारी प्रारम्भिक योजना से लगभग दुगुना हो गया है, यह भी सुमनजी की लोकप्रियता का ही निदर्शन है। आज हिन्दी के लेखकों में पीढ़ी-भेद है, प्राचीन और नवीन का वर्ग-भेद है, किन्तु सुमनजी के अभिनन्दन में हमें सभी पीढ़ियों के, सभी वर्गों के, सभी स्तरों के लेखकों का सहयोग मिला है। सम्पादन-समिति की ओर से हम उन सभी कृपालु महानुभावों के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं जिनके स्नेह, सौजन्य और सहयोग से यह पावन अभिनन्दन-अनुष्ठान पूर्ण हुआ है।

—सम्पादन-समिति



मातृभूमेरभिनन्दनम्

सा नो माता भारती भूर्विभासताम्

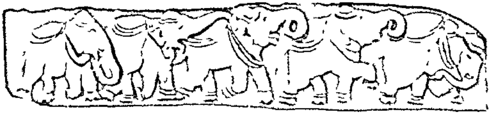
यस्य देवी मधुना तर्पयन्ती
  तिस्रो भूमीरुद्धृता द्यौम्पस्थान् ।
कामान् दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मी
  भवा श्रेष्ठा सा सदास्मासु दध्यात् ॥१॥
सर्ववेदा उपनिषदश्च सर्वा—
  धर्मग्रथाश्चापरे निधया यस्या ।
मृत्योमर्त्यानमृत ये दिशन्ति वै
  सा नो माता भारती भूर्विभासताम् ॥२॥

१ द्युलोक से अवतीर्ण तीनो लोको को दिव्य माधुर्य से आपूर्ण करने वाली अभिलषित कामनाओ को देने वाली तथा दु ख-दारिद्र्य को हटानेवाली देवी स्वरूपिणी भारतमाता सदविचारो की साधना में हमारी सहायता करे ।

२ मनुष्यो को मृत्यु से हटाकर अमतत्त्व की प्राप्ति का उपदेश देने वाल समस्त वेद उपनिषद तथा अन्यान्य धर्मग्रंथ जिसके निधिस्वरूप हैं वह विश्व विख्यात हमारी भारतमाता देदीप्यमान हो।

—रश्मिमाला





स्वस्ति

हो क्षमामयी यह घरा हमे
विस्तृत अम्वर भी रहे शान्त
सागर का यह स्थिर जल भी
हमको हो मगलमय प्रशान्त
वन-औपधियाँ हों आज हमारे
जीवन के हित शान्त-क्षान्त
सव कठिन क्रूर विपरीत हमें
अव शान्ति रूप में हों उदार
है एक शान्ति में 'क्षेम' सार ।।

अथर्ववेद — महादेवी

स्वस्ति-कामना

भद्रा सन्तु प्रशस्तयो–
भद्रा वाचो वचोविद
जागृयाम पुरोहिता
स्वस्ति पन्थामनुचरेम,

इस अभिनन्दन ग्रथ की समस्त प्रशस्तियां अभिनन्द्य 'सुमन' के लिए कल्याणकारी सिद्ध हों। इसका प्रत्येक लेख पाठको के लिए हित-साधक हो।

पथ-प्रदर्शक कहे जाने वाले सभी लेखक, सम्पादक, आयोजक अपने-अपने कर्त्तव्य के पालन में सदैव जाग्रत, जागरुक बने रहें, और हम सभी लोग कल्याणपथ के पथिक बनें।

मंगल-कामना

सुगन्धिदर्शनीयं च लोकरञ्जनतत्परम्
दृष्ट्वा सुमनारामे सर्वैरप्यभिनन्दितम्
प्रसादसुमुख शीलचारित्र्याभ्यासुवासित
उद्युक्तो लोकसेवाया भवेयमिति भावये

साहित्य-वाटिका के सुगन्धित, सुन्दर एव लोकरजन में तत्पर सब लोगो द्वारा अभिनन्दित श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को देखकर मेरे मन में आता है कि मैं भी 'सुमन' की भाँति हँसमुख बनूं तथा शील और चरित्र की सुगन्धि से सुगन्धित होकर लोक सेवा में तत्पर रहूँ।

वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी

डा० मगलदेव शास्त्री
(पूर्व उपकुलपति)

जे तोरे पागल बोले तोर तुइ बोलिस ने किछू।
आज के तोरे के मन भेवे
अगजे तोर धूली देवे
काल से प्राते माला हाते आ मवे जे तोर पिछू पिछू।
आज के आपन भाने भरे
थाक् से बोसे गदिर परे
काल के प्रेमे आसवे ने मे करवे से तार माथा निचू

जो तुझे पागल कहे उसे तू कुछ मत कह। आज जो तुझे कैसा कुछ समझकर धूल उडाता है, वही कल प्रातःकाल हाथ में माला लिये तेरे पीछे पीछे फिरेगा। आज चाहे वह मान करके गद्दी पर बैठा रहे, किन्तु कल निश्चय ही वह प्रेमपूर्वक नीचे उतरकर तुझे शीश नवायेगा।

—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मत कर पसार, निज पैरों चल
चलने की जिसको रहे झोंक
उसको कब कोई सका रोक !

—जयशंकर 'प्रसाद'

जितने विकट संकटों में है,
जिनका जीवन-सुमन खिला !
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही
अत्र, तत्र, सर्वत्र मिला !

—मैथिलीशरण गुप्त



शान्ति-पाठ

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं
द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्ता-
दुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥

अभयं मित्रादभयममित्रा-
दभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

(हे प्रभो !) आकाश हमें अभय करे। द्यावापृथिवी हमें अभय करें। पश्चिम में अभय हो। उत्तर और दक्षिण में हमारे लिए अभय हो।

हे अभय प्रभो ! हमें मित्र से अभय हो और अमित्र से भी अभय हो। परिचित से अभय हो और सम्मुख उपस्थित से अभय हो। हमारे लिए रात अभय हो और दिन भी अभय हो। सभी दिशाएँ हमारी मित्र हों।

—स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'



मैं उठा नित शीश अपना,
विश्व में अविरत चला हूँ।
तुम मुझे क्या रोक सकते,
आपदाओं में पला हूँ॥
उठ रहे दिनमान-सा मैं,
ताप-दुख सब-कुछ सहूँगा।
तुम बिछा दो शूल पथ में,
फूल सम चुनता रहूँगा॥

जानता मैं जो विपत् की,
आंधियों में मुस्कराते।
वे व्रतीजन ही जगत् में,
शीर्ष का है स्थान पाते॥
जो करोगे तुम उसे,
सौभाग्य मैं अपना कहूँगा।
तुम बिछा दो शूल पथ में,
फूल सम चुनता रहूँगा।
हर कुटिलता को तुम्हारी,
मीत, मन गुनता रहूँगा॥

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव, येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम्।
यदा-यदा मे विकृतिं लभन्ते, तदा-तदा मां प्रतिबोधयन्ति।

—चाणक्य

अनुक्रम

शुभकामनाएं एवं स्नेहांजलियां

[पृष्ठ २५ से पृष्ठ ४४]

जीवनी

[पृष्ठ ४५ से पृष्ठ ७२]

व्यक्तित्व

[पृष्ठ ७३ से पृष्ठ २१४]

संस्मरण

[पृष्ठ २१५ से पृष्ठ ४१६]

कृतित्व

[पृष्ठ ४१७ से पृष्ठ ५१६]

काव्यांजलियाँ

[पृष्ठ ५१७ से पृष्ठ ५३२]

पत्राञ्जलियाँ

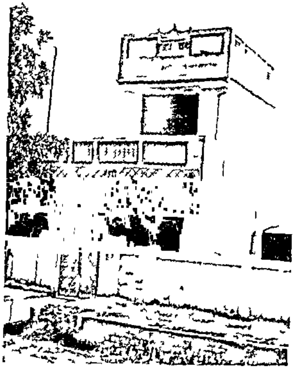
[पृष्ठ ५३३ से पृष्ठ ६०२]

पुनश्च

[पृष्ठ ६०३ से पृष्ठ ६०६]

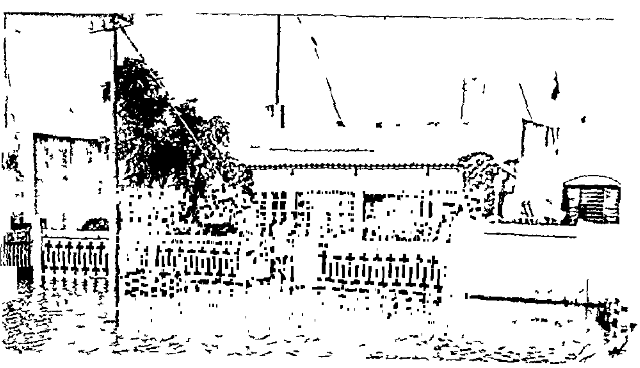
दीप्त धरोहर

[पृष्ठ ६०७ से पृष्ठ ६२८]



(अजय निवास अगस्त १९६६)

१९५८ के जल प्लावन के समय





ज्येष्ठ पुत्र अजय का नामकरण संस्कार (१९५७)

●

अपने अध्ययन कक्ष में कार्य संलग्न

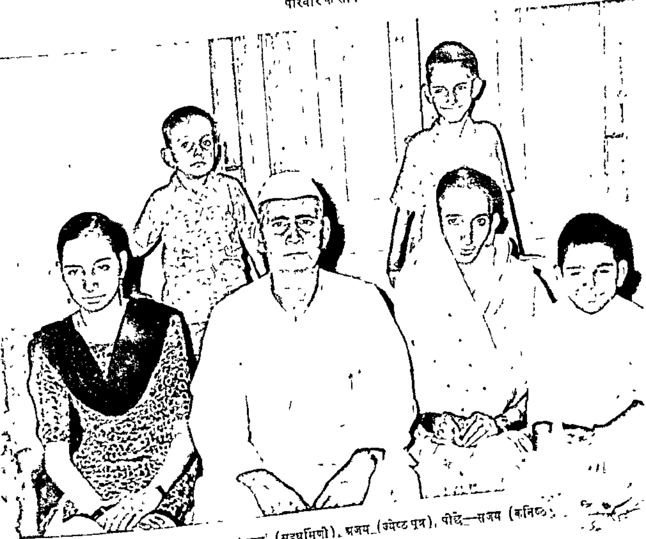


प्रातः स्मरणीया मातुः श्री



स्व० श्रीमती भगवानी देवी

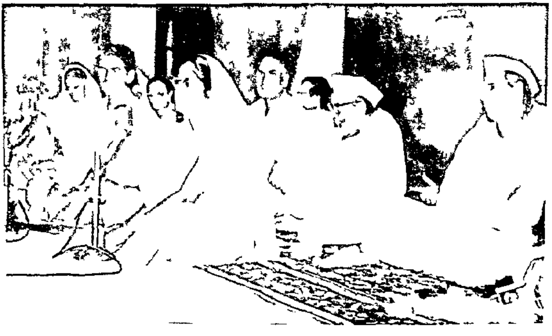
परिवार के साथ



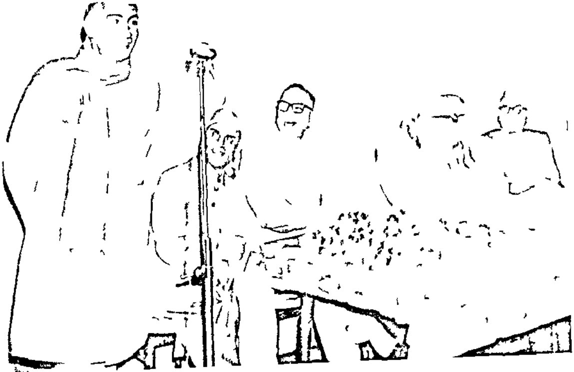
... (पुत्री) ... प्रतिमा 'सुमन' (सहधर्मिणी), अजय (ज्येष्ठ पुत्र), पीछे—संजय (कनिष्ठ ...



अकादमी के कार्यालय में (१९५७)



कानपुर की इन्द्रधनुष संस्था की ओर से अभिनन्दन (१९६२)



श्री अक्षयकुमार जैन के ७०वें जन्म दिवस पर अपने मनमोहक भाषण से सुमन जी ने सभी को हर्षोद्वेलित कर दिया।

●

काव्य-पाठ की एक मुद्रा

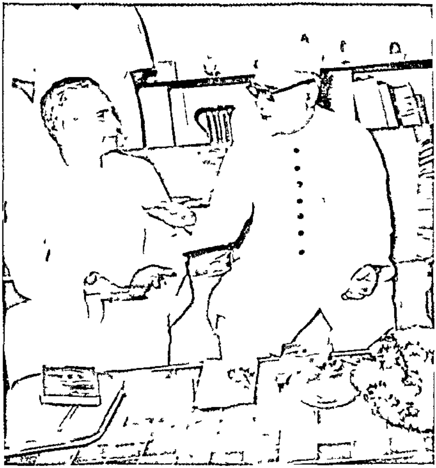




साहित्य अकादेमी के वार्षिक समारोह में अकादेमी के अध्यक्ष
राष्ट्रनायक श्री नेहरू का अभिवादन करते हुए (१९५९)



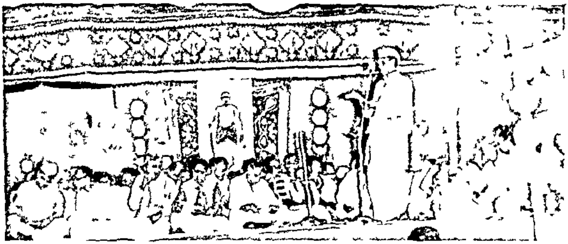
साहित्य अकादेमी के वार्षिक समारोह के अवसर पर अकादेमी के उपाध्यक्ष
सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन् के साथ (१९६१)



उपराष्ट्रपति डॉ० ज़ाकिरहुसेन के साथ विचार-विमर्श



दिल्ली-नगर-निगम मे कांग्रेस-दल के नेता श्री ब्रजमोहन के साथ विचार-विनिमय



विहार राज्य द्वादश आर्य महा सम्मेलन के अन्तर्गत आयोजित कवि सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण (४ नवम्बर '६२)

●

ग्वालियर के साहित्यकारों के साथ



डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द', श्री देवीदयाल चतुर्वेदी मस्त'
पीछे—श्री शंवाल सत्यार्थी और श्री गंगन्द्र गोयल खड़े हैं।

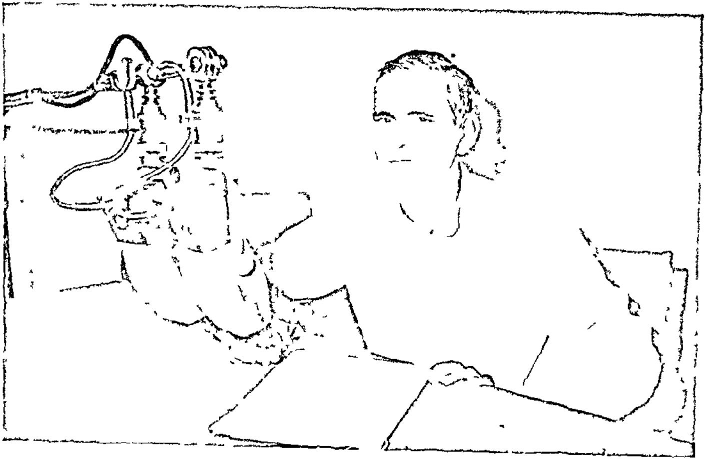


बेनीपुरी प्रकाशन, मुजफ्फरपुर में सम्पन्न स्वागत समारोह। बाएँ से दाएँ—श्रीमती शान्तिकुमारी सुमन, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', श्री रामचन्द्र भारद्वाज, डा० रामस्वार्थ चौधरी और श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह

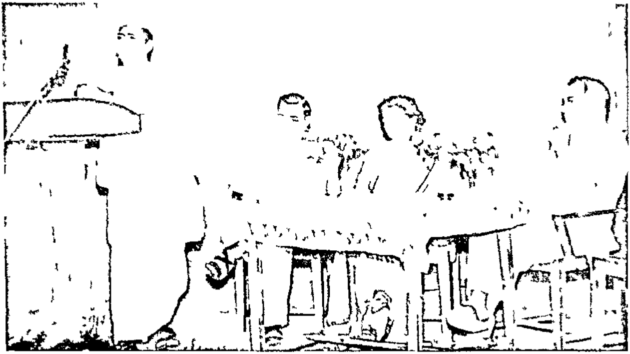
●

देहरादून के साहित्यकारों के बीच





आकाशवाणी नई दिल्ली से वार्ता प्रसारण के पूर्व



आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत पुस्तक के उद्घाटन पर अपना वक्तव्य देते हुए। श्री दीनानाथ (प्रकाशक)
श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा (उद्घाटनकर्त्री) और श्री स०ही० वात्स्यायन (अध्यक्ष) बैठे हैं

सप्रू हाउस नई दिल्ली में संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस पर भाषण देते हुए। जस्टिस एस० आर० दास (अध्यक्ष)
श्रीमती लक्ष्मी मेनन और श्रीमती सुशीला नायर दिखाई दे रहे हैं





अभिनन्दन स्वीकारते हुए

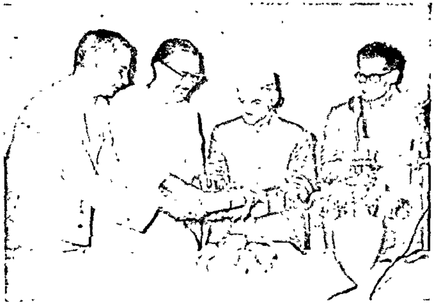


अभिनन्दन करते हुए





मुजफ्फरपुर में श्री राजेन्द्रप्रसादसिंह ग्रौर श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी से उनकी पुस्तकें ग्रहण करते हुए



भारत के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री को कवि श्री रघुवीरशरण 'मित्र' द्वारा रचित 'मानवेन्द्र' काव्य समर्पित करते हुए। कवि 'मित्र' और समारोह के अध्यक्ष डॉ० बच्चन भी साथ है। सुमनजी इस समारोह के संयोजक थे।



श्री श्रीप्रकाश का अभिवादन करते हुए



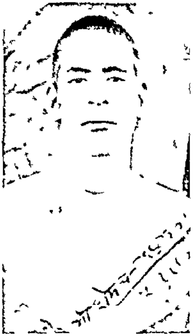
श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा का अभिवादन करते हुए



श्री किशोरीदास वाजपेयी का अभिनन्दन करते हुए। डा० बाबूराम सक्सेना प्रसन्न मुद्रा में।



(१९३९)



(१९३६)



(१९४२)

सुमनजी वयःक्रम से



(१९४५)



(१९४३)



(१९४८)



(১৯৫০)



(১৯৫২)



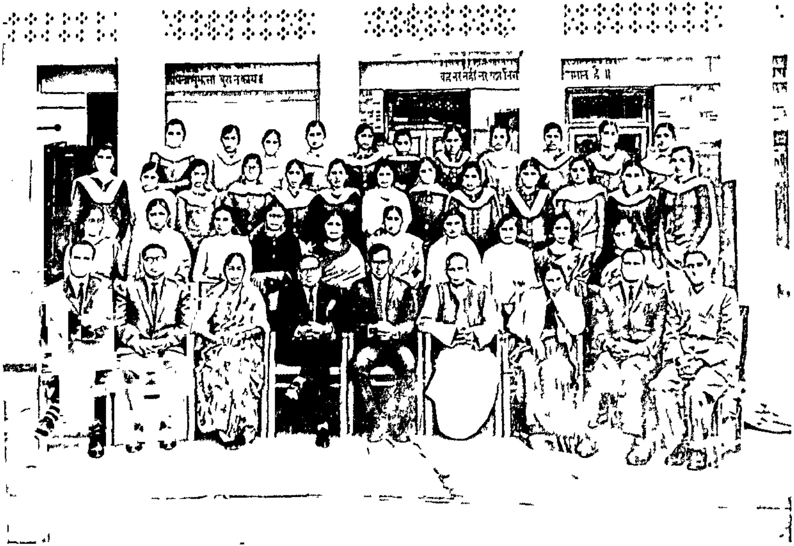
(১৯৬৫)



(১৯৫৪)

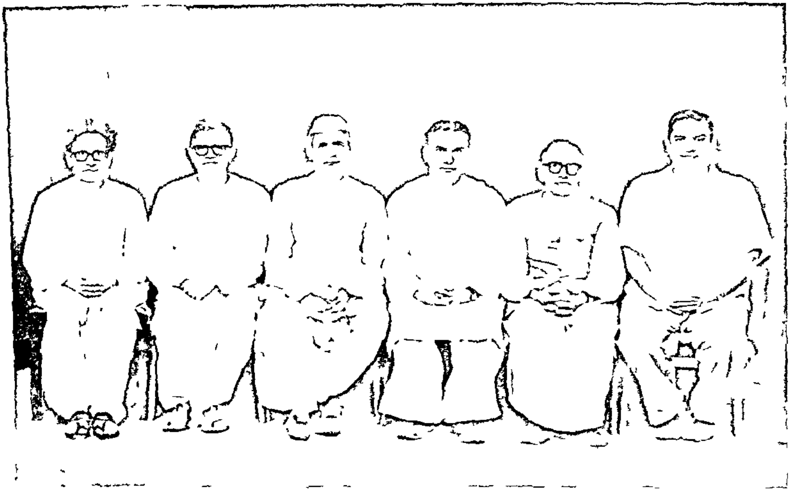


(১৯৫[illegible])



गुप्तजी स्मारक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय शाहदरा की छात्राओं तथा अध्यापक अध्यापिकाओं के साथ। गुप्तजी इस विद्यालय के प्रबन्धक हैं।

'एक व्यक्ति एक संस्था' ग्रन्थ की सम्पादन समिति के साथ



बाएं से दाएं : श्री देवदत्त शास्त्री, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', श्री यशपाल जैन और डॉ० प्रभाकर माचवे



बैठे हुए (बाएं से दाएं) सर्वश्री ताराचन्द खण्डेलवाल, रामलाल पुरी, विष्णु प्रभाकर, अक्षयकुमार जैन, रामधारीसिंह दिनकर (अध्यक्ष), प्रेमचन्द्र गुप्त, बांकेबिहारी भटनागर, देवेन्द्र 'सत्यार्थी', श्यामसुन्दर गर्ग।
खड़े हुए (बाएं से दाएं) सर्वश्री वीरेन्द्र प्रभाकर, हरप्रसाद शास्त्री, देवेन्द्रकुमार जैन, शिवनारायण शर्मा।

दुर्घटनाएँ एवं सावधानियाँ

'कर्मी' और 'मर्मी' अनुज

राय कृष्णदास

अत्यन्त तत्पर और आत्मीय भावपूर्ण आतिथेय, फुर्तील, हिन्दी सेवा में जागरूक और कैसे भी दुःसाध्य काम को चुटकी बजाते हल करने वाले एवं स्वर्गीय दद्दा (राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त) के परम अनुगत के रूप में मैंने चिरंजीव क्षेमचन्द्र 'सुमन' को अनेक वर्षों तक दिल्ली में निकट से जाना, अनुज के रूप में जाना। किन्तु दद्दा के उठ जाने से दिल्ली की दुनिया ही दूसरी हो गई है। अब तो वहाँ की, उन दिनों की स्मृति एक टीस के रूप में हृदय को बरबस पीड़ा पहुँचाती रहती है।

उस समय तक मुझे यह ज्ञात न था कि सुमनजी किसी समय प्रमुख राष्ट्र-कर्मी और समाज सेवी भी रह चुके हैं। उन्होंने अपनी जान खतरे में डालकर देश-सेवा की है। साहित्य में उन्होंने अपना एक स्थान बना लिया है। उस देश-सेवा से उनकी ये सेवाएँ किसी तरह कम नहीं। ऐसे, एक साथ 'कर्मी' और 'मर्मी' को भगवान् चिरायु करें और उनके उपयोगी जीवन को और भी उपयोगी बनायें।

भारत कला भवन, वाराणसी

एक स्वर मेरा मिला लो

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। लेखक, कवि, सम्पादक तीनो भूमिकाओ मे वे सफल रहे है। यह गुण और सामर्थ्य विरलो मे ही पाया जाता है। इनका स्वभाव मधुर और विनयशील है। अकेले कवि होते तो कवि के 'निरकुश' गुण का ही विकास होकर रह जाता। आर्य सस्कृति मे त्रिगुणो के मेल का—त्रिमूर्ति का बडा महत्त्व है। सुमनजी मे इसके दर्शन करके मुझे बडी प्रसन्नता होती है। उनका जो अभिनन्दन किया जा रहा है, वह उचित ही है। 'वन्दना के इन स्वरो मे एक स्वर मेरा मिला लो!'

भगवान् सुमनजी को और भी आयु, साधन, सामर्थ्य और यश दें!

गांधी आश्रम, हटूडी (अजमेर)

अभिनन्दनीय आयोजन

श्री वियोगी हरि

यह जाना कि श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' पर उनकी साहित्यिक सेवाओ के सम्बन्ध मे आप लोग एक ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे हैं। आपका यह आयोजन अभिनन्दनीय है। श्री सुमनजी का सामाजिक एव साहित्यिक जीवन-कार्य हर प्रकार से यशस्वी हो और वे वर्तमान तथा भावी पीढी को अपने साहित्य द्वारा प्रेरणा देते रहे, यह मेरी कामना है, और भगवान् से प्रार्थना भी!

एफ० १३।२, माडल टाउन, दिल्ली ८

हिन्दी-निष्ठा प्रेरणामूलक

सेठ गोविन्ददास

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' अपने जीवन के पचास वर्ष पूर्ण करके इक्यावनवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं और इस प्रसंग में उनके मित्र एक ग्रन्थ उन्हें समर्पित करने जा रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुई। यह एक सर्वथा स्तुत्य बात है। इस सत्प्रयास में मेरी शुभ-कामनाएँ आपके साथ हैं।

श्री सुमनजी का विकासोन्मुख साहित्यिक रूप और उनकी हिन्दी-निष्ठा बड़ी उत्साहवर्धक और प्रेरणामूलक है। इस शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

संसद्-सदस्य
३३, फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली १

स्नेह-सौहार्द-शुभकामना

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' हिन्दी के कर्मठ और अध्यवसायी लेखक हैं। ऐसे लेखकों के प्रति मेरे मन में सदैव सौहार्द रहता है। उनके इक्यावनवें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष में मैं उन्हें अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ। आशा है, वे अपनी साहित्य-साधना में उसी प्रकार प्रवृत्त रहेंगे, जिस प्रकार अब तक रहे हैं।

उपकुलपति
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०)

'आदर' और 'शील' का योग

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

प्रियवर क्षेमचन्द्र 'सुमन' लोक-यात्रा के इक्यावनवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं और आप लोग उनकी इस यात्रा की कर्म-सिद्धि और लोक-सिद्धि पर ग्रंथ निकालने जा रहे हैं, यह जानकर मुझे सात्त्विक सुख और सन्तोष का लाभ मिला है। मेरी यह यात्रा उनसे बारह वर्ष—पूरे एक युग, पहले चली थी, और अभी भी कुछ अंशों में चल रही है। इस धरती पर उनसे पहले आ जाने का अवसर जो दैव ने दिया, उसी से वे मेरे अनुज हो गए। परमात्मा उन्हें चिरायु करे!

उनके सम्पर्क में जिस 'आदर' और 'शील' का योग मैं पाता रहा हूँ उसे कह देने की शब्दावली कहाँ मिले! अनुभव की भाषा कण्ठ में नहीं, हृदय में बसती है, जिसमें अनुभव का स्वाद शब्द के परे हो उठता है। कुछ ऐसे ही प्रसंग में गोस्वामीजी के चित्त से ये पंक्तियाँ चली होंगी

उर अनुभव तिन कब तक होई।
कवन प्रकार कहे कवि कोई॥

भगवती सरस्वती का शृंगार उनकी लेखनी अभी युगों तक करती चले। धर्म, अर्थ और काम के पुरुषार्थ उनके पूरे हों!

मोक्ष का पूरा होना तो अभी मैं अपने लिए चाहूँगा, उनके लिए नहीं।

सम्मेलन मार्ग, प्रयाग

चेतना का श्रेयस्करी प्रवृत्तियों में विनियोग

श्री रामनाथ 'सुमन

जमाना हुआ, जब किशोर क्षेमचन्द्रजी के कविता-संकलन[1] की भूमिका मैंने लिखी थी। तब से युग पर युग बीतते गए हैं। हिन्दी अनेक अवस्थाओ से गुजरी है। उसमे गहराई उतनी न आई हो, परन्तु सीमा का विस्तार बहुत हुआ है। इन अनेक परिस्थितियो एव अवस्थाओ के बीच क्षेमचन्द्रजी का निरन्तर विकास होता गया है। उनके काव्य पर छाये ग्रामीण वातावरण मे नागर सौष्ठव तथा सन्तुलित चिन्तन की रेखाएँ स्पष्ट होती गई है। उन्होंने साहित्य की उदार चेतना का राष्ट्र एव समाज की श्रेयस्करी प्रवृत्तियो मे विनियोग किया है। वह 'गति' के प्रवाह मे चचल नही हुए, उन्होने 'गति' मे भी 'मति' स्थिर रखी है और अपने मार्ग पर चलते जा रहे है। ईश्वर उन्हे स्वस्थ रखे और उनकी शक्ति बहुत-बहुत वर्षो तक बनी रहे, मेरा यही हार्दिक आशीर्वाद है।

७७, सूबरगंज, इलाहाबाद

[1] 'वन्दी के गान' (१९४८ में प्रकाशित)

परदुःख-द्रवित-हृदय

श्री गंगाशरणसिंह

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का नाम पहले से सुना था, लेकिन दिल्ली आने के बाद आदरणीय दद्दा (स्व० राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त) के चलते उनके निकट सम्पर्क मे आने का मौका मिला। सुमनजी बडे ही कर्मठ और जागरूक व्यक्ति है। उनकी मित्र-परायणता तो प्रसिद्ध है। साहित्यिक, सामाजिक और व्यवहार, सभी क्षेत्रो मे उनकी समान गति है। जानकारियों के वे कोष है। उन्होने दूसरो के दु ख में द्रवित होने वाला हृदय पाया है। वे अध्यवसाय के अवतार है। किसी काम की जिम्मेदारी सुमनजी को सौपकर कोई भी निश्चिन्त हो सकता है। उनके-जैसी बहुमुखी प्रतिभा और प्रवृत्ति वाले लोग कम ही है। वे चिरायु होकर समाज और साहित्य को सेवा करते रहे, यही मेरी प्रार्थना है।

सदस्य, राज्य-सभा
४१, वैस्टर्न कोर्ट, नई दिल्ली १

कुशल साहित्यकार :
प्रबुद्ध समाजसेवक

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्री क्षेमचन्द्रजी 'सुमन' अपने जीवन के पचास वर्ष पूरे कर रहे हैं। श्री सुमनजी से मेरा परिचय काफी पुराना है। वे एक कुशल साहित्यकार हैं। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में वे सफलता से लिखते रहे हैं और हिन्दी को उनका योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। मैं उनके साहित्य के प्रशसकों में हूँ।

कुशल साहित्यकार होने के साथ-साथ श्री सुमनजी एक प्रबुद्ध समाज-सेवक और सगठनकर्त्ता भी हैं। भूतकाल में 'आलोचना' के सम्पादक मण्डल के सक्रिय सदस्य के रूप में और वर्तमान में साहित्य अकादेमी के कार्यकर्ता के रूप में उन्होंने हिन्दी-साहित्यकारों के सगठन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। अनेक भूले-बिसरे और नये साहित्यकारों को सुमनजी प्रकाश में लाये हैं।

मैं उनके इस कर्मठ जीवन की सफलता की कामना करता हूँ और भगवान् से मेरी प्रार्थना है कि वे शतायु हों।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
नई दिल्ली १

अभिनन्दनीय

श्री वाचस्पति पाठक

आप तो अभिनन्दनीय हैं ही। यह आपका दुर्भाग्य है कि आप इस जंगल में तब आये जब यहाँ हजारों की संख्या में व्याघ्र गरज रहे हैं। अतः वास्तव में आपका मूल्यांकन होना सम्भव नहीं। अन्यथा जिस तरह का और जितना काम आपने किया है उतना करके आज से पचास वर्ष पहले का आदमी सिंहासन पर बैठकर चँवर-छत्र डुलवाता था। पर भाई, आज दिन दूसरा है।[1]

भारती भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मिलनसार और अध्ययनशील

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

साहित्यिक बन्धु श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के विशेष निकट सम्पर्क में आने का अवसर मुझे नहीं मिला है। फिर भी यदा-कदा हम लोग मिलते रहते हैं। उनके सम्बन्ध में विस्तृत और मार्मिक संस्मरण उनके निकटस्थ मित्र और आत्मीय जन ही लिख सकते हैं। फिर भी जितना मैं जान सका हूँ, यही कह सकता हूँ कि वे मिलनसार और अध्ययनशील व्यक्ति हैं। भविष्य में उनसे अनेक आशाएँ की जा सकती हैं। मेरी शुभकामना है कि साहित्य और समाज की सेवा के लिए वे सदैव स्वस्थ और प्रसन्न रहें। परमात्मा उन्हें दीर्घायु प्रदान करे!

लोलार्क कुण्ड, वाराणसी

१. सुमनजी को लिखे गए पत्र से।

प्रिय उदाहरण

डॉ० हरिवंशराय बच्चन

मुझे इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्री सुमनजी के इक्यावनवें वर्ष-प्रवेश पर उन्हें सम्मानित करने का आयोजन हो रहा है।

मुझे सुमनजी के प्रति बड़ा आदर है। उन्होंने अपनी सीमित योग्यता-क्षमता से जीवन के साथ संघर्ष करके अपने लिए सम्मान्य स्थान बनाया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी शक्ति-भर अपने जीवन को लोकोपयोगी भी बनाया है। हम-जैसे साधारण लोगों के लिए वे एक प्रिय उदाहरण हैं। इस अवसर पर मैं उन्हें बधाई भेजता हूँ। मैं उनके शतायु होने की प्रार्थना करता हूँ।

मुझे खेद है कि मैं उनके निकट-सम्पर्क में नहीं आ सका। आ सकता, तो निश्चय ही उनसे कुछ सीखता। उनका जीवन, कार्य, स्वभाव बहुतों के लिए शिक्षक का काम कर सकता है। उनके सम्बन्ध में आप जिस ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे हैं, वह निःसन्देह बहुतों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। सफलता के लिए पुनः शुभकामना।

१३, विलिंग्डन क्रीसेंट, नई दिल्ली १

सच्चे अर्थों मे सुमन

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को उनके मित्रो ने पचासवें वर्ष की पूर्ति के अवसर पर एक अभिनन्दन-ग्रथ भेंट करने का निश्चय किया है, यह जानकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई।

श्री सुमनजी को साहित्यिक क्षेत्र मे अग्रसर होने के लिए विशेष सुविधा नही प्राप्त हुई। वे परिस्थितियो से सघर्ष करते हुए आगे बढे है, और विपरीत अवस्थाओ मे भी अपने आत्माभिमान को सुरक्षित रख सके हैं—यह किसी भी साहित्यकार के लिए गौरव की बात है।

सुमनजी निरन्तर सचाई और शिष्टता के लिए लडते रहे हैं—परन्तु वे सच्चे अर्थो मे सुमन हैं। उनका मन साफ और निर्मल है। वे कभी साहित्यिक दलबन्दियो मे नही पडते। निष्ठा के साथ वे साहित्य-सेवा का कार्य करते हैं।

मेरे साथ सुमनजी का परिचय काफी अरसे से है। मैंने उन्हे सदा कर्तव्यनिष्ठ और प्रसन्नमुख पाया है। परमात्मा उनको दीर्घायु और सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करे, जिससे वे निरन्तर साहित्य-सेवा का कार्य करते रहे।

पजाब-विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़

श्रेष्ठ मनुष्य, श्रेष्ठ मित्र

डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर'

श्री सुमनजी श्रेष्ठ मनुष्य, श्रेष्ठ मित्र और हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। विशेषतः उनका राष्ट्रभाषा-प्रेम उच्च कोटि का है। भगवान् से प्रार्थना है कि वे उन्हें शतायु करें।

२, साउथ एवेन्यू लेन,
नई दिल्ली १

अध्यवसायी साहित्यकार

डॉ० रघुबीरसिंह

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि हिन्दी के अध्यवसायी साहित्यकार, सुज्ञात राष्ट्रकर्मी और समाजसेवी भाई श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का उनके जीवन की स्वर्ण-जयन्ती पर अभिनन्दन किया जा रहा है।

श्री सुमनजी एक मौन परन्तु कर्मठ साहित्यकार और सक्रिय साधक है। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में बहुत कार्य किया है। ऐसे साधक साहित्यकार के प्रति अपनी स्नेहांजलि भेंट करना हम सबका अनिवार्य कर्तव्य है। मैं आपके इस आयोजन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

आप सबके साथ मैं भी श्री सुमनजी को अनेकशः बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी वे इसी प्रकार निरन्तर साहित्य तथा समाज की सेवा चिरकाल तक करते रहेंगे।

रघुबीर-निवास, सीतामऊ (म० प्र०)

छोटे शहीद

डॉ० इन्द्रनाथ मदान

यह जानकर बडी खुशी हुई कि सुमन के मित्र उन्हे पचासवें साल की समाप्ति पर सुमन-माला भेंट कर रहे है। उसमे एक फूल मेरी ओर से भी गूंथ दीजिये। क्षेमचन्द्र हिन्दी के लेखक है, साहित्यकार नही, छोटे शहीद है, बड़े शहीद नही। मुझे मालूम है कि उन्हे छोटा शहीद होने मे सन्तोष मिलेगा।

५६५, सैक्टर १८,
चण्डीगढ़ १

आर्य संस्कृति के प्रबल समर्थक

स्वामी रामानन्द शास्त्री

मुझे यह जानकर बडा ही हर्ष हुआ कि श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। मेरे लिए यह अत्यन्त गौरव की बात है कि मेरे सहपाठी, प्रख्यात साहित्य-सेवी और भारतीय आर्य सस्कृति के प्रबल समर्थक को उनकी बहुविध सेवाओं के लिए अभिनन्दित किया जा रहा है।

मैं सुमनजी को बचपन से ही जानता हूँ। वे गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर मे मेरे सहाध्यायी थे। चतुर्थाश्रमी होने के नाते मेरा यही आशीर्वाद है और शुभकामनाएँ भी, कि वे शताधिकम् चिरायु-लाभ करके देश, जाति व आर्य संस्कृति की सेवा और भी तत्परता से करें।

ससद्-सदस्य
१३ ई०, फीरोजशाह रोड
नई दिल्ली १

मन से चिर तरुण

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क

भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' अपने कर्मठ जीवन की अर्धशती पार कर गए, यह जानकर कुछ हैरत हुई। मैं तो उन्हें अभी बहुत छोटा समझता था। पर समय हमारे अनजाने भी बढ़ता चला जाता है और हम देखते हैं कि बाल सफेद हो गए हैं और शरीर ढल गया है। सुमनजी मन से चिर तरुण हैं, बालों की सफेदी उनके मन को बूढ़ा नहीं करेगी, इसका मुझे परम विश्वास है। इस शुभ अवसर पर उन्हें शत-शत मंगल-कामनाएँ! भगवान् करे कि वे शतायु हों, और रहते दम तक राष्ट्रभाषा की सेवा करते रहें।

नीलाभ प्रकाशन, प्रयाग

प्रिय बन्धु

डॉ० धर्मवीर भारती

सुमनजी-जैसे प्रिय बन्धु का अभिनन्दन तो मैं सदा से करता रहा हूँ। अब अगर कुछ औपचारिक रूप से अभिनन्दनात्मक भाषा लिखूँगा तो वे समझेंगे, भारती शरारत कर रहे हैं।

'धर्मयुग'
पो० बा० नं० २१३, बम्बई १

मिलनसार, निरभिमानी और कर्मठ

श्री भानुकुमार जैन

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से मेरा परिचय इस ग्रंथ के सम्पादक डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के जरिये हुआ था। पहली ही बार मे वे मेरे अत्यन्त निकट आ गए और उन्हे मैंने अपने अनेक निजी सुहृदो मे से अनुभव किया। जब-जब भी मैं उन्हे कुछ लिखता था सहयोग मांगता, वे सदैव तत्पर रहते।

मुझे मालूम है कि सुमनजी ने हिन्दी-जगत् मे अपना स्थान निजी अध्यवसाय से ही बनाया है। उन्होने बहुत परिश्रम किया है। वे अत्यन्त मिलनसार, निरभिमानी और कर्मठ है तथा सदैव सबके लिए अपनी सेवाएँ देने को तत्पर रहते है। वे अत्यन्त निश्छल और विनय तथा सौहार्द से पूर्ण व्यक्ति है। उनसे कभी किसी का अहित नही हुआ है, और न होने की सम्भावना ही है।

उनके इक्यावनवें वर्ष मे पदार्पण करने की इस शुभ घड़ी मे मैं उनके दीर्घजीवी होने की कामना करता हूँ और उन्हे सस्नेह अभिवादन भेजता हूँ।

संस्थापक, बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ
बम्बई

भाई

श्री अक्षयकुमार जैन

भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' से बीस वर्ष से भी अधिक समय से परिचित हू । वे स्वय हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं । इसके अतिरिक्त उन्होने हिन्दी के नवोदित साहित्यकारो को लब्ध-प्रतिष्ठ बनाया है । इधर पिछले पन्द्रह वर्षो से तो उन्हे मुझे निकट से जानने का सुयोग मिला है । हिन्दी के प्रकाशनो का इतना सुन्दर सग्रह किसी एक व्यक्ति के पास मिलना बडा कठिन है । हम पत्र-कारो को जब कभी किसी पुस्तक विशेष की आवश्यकता पड जाए तो वह प्राय उनके यहा मिल जाती है। और जहां तक हिन्दी जगत् म परिचय का सम्बन्ध है, विरला ही ऐसा कोई व्यक्ति, साहित्यकार अथवा प्रकाशक होगा जो उनके सम्बन्ध मे आदर और स्नेह के भाव न रखता हो ।

भाई सुमनजी दिल्ली के साहित्यिक, सामाजिक और सास्कृतिक जीवन मे तो अपना स्थान रखते ही हैं, यहाँ के राज-नीतिक क्षेत्रो मे भी उनका बडा सम्मान है । उनके ये गुण इस कारण है कि हिन्दी और हिन्दी के साहित्यकारो को प्रोत्साहन देना उनका मिशन है । रात दिन हिन्दी के काम में लगे रहते हैं ।

उम्र मे मुझसे वे छोटे है, इसलिए मैं कामना करने के साथ आशीर्वाद देने की स्थिति मे भी हूँ । वे चिरायु हो तथा स्वस्थ जीवन व्यतीत करें और भविष्य में हिन्दी भारती की और भी श्रीवृद्धि करें, यह सद्भाव भी रखता हूँ ।

नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली १

कृतसंकल्प व्यक्तित्व

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से मेरा परिचय लगभग पिछले पच्चीस वर्षों का है। अबोहर हिन्दी साहित्य सम्मेलन में मुझे उनसे सर्वप्रथम मिलने का अवसर मिला था। तब से बराबर मुझे उनका निकटस्थ स्नेह और आत्मीय भाव मिलता रहा है।

वे हिन्दी के उन संघर्षशील, परिश्रमी, कृतसंकल्प और उदारमना व्यक्तियों में हैं, जो आजीवन हिन्दी-सेवा और साहित्य-प्रणयन का व्रत लेकर चले हैं। उनकी अध्ययनशीलता और आलोचनात्मक सजगता उनकी सुलेखक वृत्ति को और भी निखारती रहती है। काव्य के शाश्वत रसात्मक मूल्यों के प्रति उनकी निष्ठा अचल है।

सुमनजी ने सदा ही साहित्य में नये प्रवर्तनों और भाषा-बोधों का खुले दिल से स्वागत किया है। ऐसे सुधी साहित्यकार का अभिनन्दन करके आप हिन्दी-संसार की ओर से हम सबके कर्तव्य का पालन कर रहे हैं।

मैं श्री सुमनजी के प्रति अपनी आदर-भावना प्रकट करते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। ईश्वर करे वे शत-जीवी हों और नित्य नये-नये ग्रन्थों से हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरते रहें।

हिन्दी-विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, रायगढ़ (म० प्र०)

हिन्दी के सजग प्रहरी

श्री कृष्णचन्द्र बेरी

सुमनजी से मेरा परिचय सन् १९५५ के अखिल भारतीय प्रकाशक सघ के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर दिल्ली मे हुआ था। उन दिनो वे राजकमल प्रकाशन क साहित्यिक परामर्शदाता थे। प्रथम साक्षात्कार ही मे उनक व्यक्तित्व से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। उनमे काम करने की लगन और साहित्य के एक विद्वान् की छाप मुझे प्रत्यक्ष परिलक्षित हुई। क्रमश वे मेरी दृष्टि से एक सफल लेखक और साहित्यकार क रूप मे गुजरे है। उनके द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य परिचय' पुस्तकमाला हिन्दी-साहित्य की अपूर्व निधि है। सुमनजी के विभिन्न साहित्य-सम्मेलनो और समारोहो मे दिये गए भाषण हिन्दी के एक सजग प्रहरी के रूप मे उन्हे हिन्दी-जगत् मे उपस्थित करते हैं।

दिल्ली क साहित्यिक जगत् मे भी उन्होने काफी ख्याति प्राप्त की है। भारतीय साहित्य स्रष्टाओ मे उनका विशिष्ट स्थान है। मेरा यह सौभाग्य रहा है कि जब कभी वे काशी आते रहे तो मेरा आतिथ्य स्वीकार करते रहे। इस थोडे-से अवसर मे मुझे सुमनजी की मित्रता का अनुभव होने के अतिरिक्त साधु-समागम का भी सौभाग्य प्राप्त होता था।

मेरी कामना है कि सुमनजी शतायु हो और साहित्य की सेवा करें। उनकी अर्धशती-पूर्ति पर मेरी शुभकामना इस समारोह के आयोजको, सयोजको तथा अपने मित्र सुमनजी के साथ है।

हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय,
वाराणसी

जीवनी

संघर्षों के राही

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

अपने जीवन मे जो दूध-पानी की तरह घुल-मिल गया हो, और जिसे अलग करके देखने मे मन पर बोझ पड़ता हो, ऐसे मित्र के विषय मे कुछ लिखना बड़ा कठिन है। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के विषय मे कुछ लिखने मे मेरी स्थिति ऐसी ही हो रही है। गत अट्ठाईस वर्षों से हम दोनो घनिष्ठ मित्र ही नही, प्रत्युत सगे भाइयों की तरह रहते आए हैं। सबसे अधिक मज़े की बात तो यह है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और हम अपने-अपने पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों मे घिरते गए त्यों-त्यों हमारा नैकट्य बढ़ता ही चला गया। मैं जब इसका कारण सोचता हूँ तो लगता है कि हमारा स्नेह-सम्बन्ध किसी सासारिक लाभ-हानि पर आधारित न होकर आत्मा की उस पावनता पर आधारित है, जो स्वार्थ और सकीर्णता के अँधेरे बीहड मे हीरे की कनी की भाँति जगमगाती रहती है। 'सुमन'जी की आत्मा की उज्ज्वल किरण ही मेरे-जैसे व्यक्ति को अपूर्व मैत्री के सुख मे आज तक डुबोये रही है।

स्वनामधन्य भाई श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का जन्म आश्विन कृष्ण ६, सवत् १९७३, तदनुसार रविवार, १६ सितम्बर, १९१६ को उत्तरप्रदेश (तत्कालीन सयुक्त प्रान्त आगरा व अवध) के मेरठ जिले की हापुड तहसील के बाबूगढ नामक गाँव मे हुआ था। सुमनजी के जन्म के समय षष्ठी बयालीस घडी एक पल थी, और कृत्तिका नक्षत्र बत्तीस घडी पचपन पल। ज्योतिष के अनुसार इस समय जन्म लेने वाला व्यक्ति आजन्म हर्ष और विषाद के झूले मे झूलता रहता है और उसके सघर्षों मे कमी नही आती।

मेरठ सन् सत्तावन की क्रान्ति का उद्गम स्थल है। हापुड अनाज की मण्डी और पापडो के लिए मशहूर होने के कारण स्मरणीय है, तथा बाबूगढ भारत की चार विशेष घुडसवार फौजो की छावनियो मे से एक रहा है। ये छावनियाँ थी—सरगोधा, सहारनपुर, कलकत्ता और बाबूगढ। ये छावनियाँ 'रिमाउण्ट डिपो' कहलाती थी। इनमे बाबूगढ (इडिया) के पते से ही चिट्ठी-पत्री होती थी।

सुमनजी मे मेरठ से क्रान्ति और खडी बोली हिन्दी की कविता के बीज अकुरित हुए, हापुड मे पापडा-जैसी स्वभाव की नमकीनी और घोर-से-घोर महँगाई मे भी मेहमाननवाजी की आदत आई और बाबूगढ मे घुडसवार फौज की छावनी होने से स्वभाव मे अथक परिश्रम करने और यशस्वी जीवन बिताने की धुन समाई। इन सबने मिलकर

उनमे दशमविन अध्यवसाय फक्कड़पन, स्वाभिमान और आशावाद का ऐसा अक्षय भण्डार भर दिया कि वे ज्यो-ज्यो आयु के मील के पत्थर पार करते जाते है, उनकी लेखनी की धार तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर होती जाती है। कभी वाबूगढ (इण्डिया) के पते मे फौजो का पत्र-व्यवहार होता था तो आज देश के कोने-कोने से "क्षेमचन्द्र 'सुमन', दिलशाद कालोनी" के नाम से तीस लाख की आबादी वाले दिल्ली नगर मे उनके पत्र ठीक ठिकाने मे पहुँच जाते है। मजे की बात यह है कि उनमे 'दिल्ली' अथवा 'शाहदरा' का उल्लेख होना भी कोई आवश्यक नही है।

उनके पूर्वज उनकी चौथी-पाँचवी पीढी मे पजाब से आकर यहाँ बस गए थे। इसका प्रमाण यह है कि उनके घर मे उनकी माता श्रीमती भगवानी देवी (जिनका स्वर्गवास २५ अप्रैल, १९६४ को ६४ वर्ष की उम्र मे हुआ) पजाबी बोलती थी। सुमनजी सारस्वत ब्राह्मण है, यह भी उनके पजाबी होने का प्रमाण है, क्योकि पजाब सारस्वतो का गढ है। लगता यह है कि किसी समय मुगलो के आक्रमण के कारण उनके पूर्वज शरणार्थी के रूप मे पजाब से निकल पडे होगे। उनके साथ उनके जाट यजमान भी आये थे। इसका प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि उनके सब-के-सब जाट यजमानो के घरो मे भी पजाबी ही बोली जाती रही है और आज भी बोली जाती है।

सुमनजी के पिता श्री हरिश्चन्द्र सारस्वत बाबूगढ की छावनी मे सैनिक अश्वशाला के निरीक्षक थे। उससे जो समय बचता था उसमे वे पौरोहित्य करते थे। इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय बात यह है कि सस्कृत-शिक्षारहित होते हुए भी पौरोहित्य मे वे बडे-बडे धुरन्धरो के छक्के छुडा देते थे। पौरोहित्य के प्रति उनकी आस्था इतनी बढी-चढी थी कि अपनी मृत्यु (मई १९४७) से एक घण्टा पूर्व तक वे अपने नाती (सुमनजी के बडे भाई लखीराम शर्मा के लडके भूपाल शर्मा) को 'शाखोच्चार' याद न होने पर पीट रहे थे। उनके सम्बन्ध मे एक बात और स्मरणीय है कि यद्यपि वे स्वावलम्बी थे और बहुत सम्पन्न नही थे फिर भी वे अपने यजमानो को ब्याज पर रुपया दिया करते थे। वह रुपया तो कभी वापस आता नही था, पर उसके एवज मे उन्हे यजमानो से 'दादाजी' का जो सम्मानपूर्ण सम्बोधन मिलता था, उसी से वे सन्तुष्ट हो जाते थे।

सुमनजी के परिवार मे उनके बडे भाई लखीराम शर्मा को छोडकर और कोई पढा-लिखा नही हुआ। हाँ, लखीरामजी को उनके पिताजी ने जी भरकर पढाने मे कमी नही की। उन दिनो निम्न मध्यवर्ग मे सबसे महत्त्वपूर्ण पद थानेदारी का माना जाता था और इसी बात को लक्ष्य मे रखकर उन्होने अपने बेटे को वर्नाक्यूलर मिडिल कराने के बाद मैट्रिक भी कराया था, क्योकि मिडिल के बाद पटवारी तो वे सहज ही मे हो सकते थे। किन्तु विधि को कुछ और ही मजूर था। पहुँच न होने के कारण वे थानेदार तो न बन सके, पर खीच-खाँचकर सिंचाई-विभाग मे अवश्य लग गए।

जब सुमनजी ने होश सँभाला तो पाया कि घर मे चूहे दण्ड पेल रहे है और

पिताजी कुछ न करने की स्थिति में हैं। अब उनकी शिक्षा-दीक्षा कैसे होती ? गाँव के ही प्राइमरी स्कूल में उनका दाखिला हुआ। स्कूल घर से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर छावनी में था। घर से बासी रोटी बस्ते में किताबों के साथ बाँधकर सवेरे स्कूल जाना और शाम को वापस लौटना—यही उनका क्रम था। यद्यपि वे पढ़ने में तेज और गुरुजनों के स्नेहभाजन थे, लेकिन मनमौजीपन और अल्हड़ता में भी बचपन में पूरे ही थे। एक बार की बात है कि स्कूल के रास्ते में पड़ने वाले बाग की शीतल छाया ने उन्हें बेईमान बना दिया। वे स्कूल न जाकर बाग में ही रम गए। पहले खिन्नी खाई और फिर कच्चे आम। उसके बाद बस्ते में बँधी रोटियाँ निकालीं और उन्हें जीभरकर ठण्डा पानी पिया। कुछ देर शीतल छाया का आनन्द लेकर घर लौट आए। जब माँ ने जल्दी लौटने का कारण पूछा तो कह दिया कि डिप्टी साहब आये थे इसलिए जल्दी छुट्टी हो गई।

जिस समय वे माँ के सामने यह कैफियत दे रहे थे उसी समय उनके पिताजी भी कहीं से उधर आ निकले। पिताजी को देखते ही उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई और वे वहाँ से भाग खड़े हुए। पिताजी को सन्देह हुआ। अब आगे-आगे सुमनजी और पीछे-पीछे उनके पिताजी। जहाँ पिताजी पकड़ लेते वहीं दो-चार थप्पड़ रसीद कर देते। सुमन जी फिर भागते और फिर पकड़े जाकर थप्पड़ खाते। यह क्रम तब तक जारी रहा जब तक कि वे स्कूल न पहुँच गए।

जेठ की तपती दोपहरी में जलती बालू पर नंगे पैर मार खाते हुए जब वे अपने गुरु नित्यानन्द शर्मा के सामने जा खड़े हुए तब पिताजी ने उनके विषय में शर्माजी से कहा—"हड्डियाँ मेरी हैं और मांस तथा चमड़ी आपकी। इसकी खूब मरम्मत कीजिये, जिससे यह कभी फिर स्कूल से गैरहाजिर न रहे।" तब से सुमनजी ने पढ़ने में कभी आलस्य नहीं किया। अपने छात्र-जीवन में उन्हें पिताजी की वह रौद्र मूर्ति बराबर प्रेरणा देती रही।

सुमनजी के विद्यार्थी-जीवन की एक-दो घटनाएँ और ऐसी हैं जो उनके आज के जीवन की विशेषताओं के सूत्रों का पता देती हैं। एक घटना उनकी उदारता और दरिया-दिली से सम्बन्धित है। जब वे दूसरे दर्जे में पढ़ते थे तब उनके एक सहपाठी विश्वम्भर के पास किताबें बाँधने को बस्ते का कपड़ा नहीं था। भला सुमनजी अपने अभिन्न मित्र की इस दयनीय स्थिति को कैसे देख सकते थे ! उन्होंने घर में गाढ़े का नया थान कुठीले से निकाला और उसमें से एक बस्ते का कपड़ा चुपचाप फाड़कर उसे दे दिया। जब माँ ने थान देखा तो उसके फटे होने से उन्हें सन्देह हुआ। सुमनजी पकड़े गए और स्कूल के मुख्याध्यापक प० मथुराप्रसाद शर्मा से उनकी शिकायत की गई।

दूसरी घटना और भी मजेदार है। बचपन से ही अलमस्त होने से वे टोपियाँ बहुत खोते थे। माँ रोज नई टोपी देतीं और वे शाम को नंगे सिर आ खड़े होते। परेशान होकर माँ ने कमीज के पीछे की ओर धागे टाँककर के सिरे से उनकी टोपी को मजबूती

से, एक तनी द्वारा, सी दिया जिससे टोपी कभी सिर से अलग भी हो तो गिरे नही। सुमनजी की यह आदत आज भी ज्यों-की-त्यों है। वे अब भी टोपियाँ तथा रूमाल प्राय खो देते है। माँ की वह तरकीब उन्होंने अपने भावी जीवन मे पत्रो की तिथि क्रम से रखी फाइलो और कटिंग्स को सावधानी से रखने मे अवश्य अपनाई है।

स्कूल मे पढते समय अंग्रेजो के प्रति विद्रोह की भावना भी उनके बाल-मानस मे जाग गई थी। बात यह थी कि छावनी मे स्थित इस स्कूल मे अंग्रेजो के बच्चे भी कभी-कभी आते-जाते रहते थे। वे बडे ठाट-बाट मे रहते थे और हिन्दुस्तानी लडको को अपने से छोटा भी समझते थे। सुमनजी अपने मित्रो के साथ उनसे बदला लेने के लिए दोपहर की छुट्टी के समय छावनी के 'कम्पनी बाग' मे चले जाते और नाना प्रकार के फल तोडकर खाते। इस पर उन अंग्रेज बच्चो से उनकी ठन जाती और मित्र-मण्डली सहित वे धौल-धप्पा करके उनकी अंग्रेजियत का नशा उतारते और रफूचक्कर हो जाते।

सन् १९२८ मे सुमनजी के जीवन मे एक नया मोड आया। उस समय वे चौथे दर्जे का इम्तहान देने की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने सुना कि हापुड मे महात्मा गाधी आये है। तब महात्माजी कदाचित् अछूतोद्धार के सम्बन्ध मे देश का तूफानी दौरा कर रहे थे। उनके आने की खबर सुमनजी ने स्कूल मे ही सुनी और अपने अभिन्न मित्र विश्वम्भर के साथ घर पर सूचना दिये बिना, स्कूल से सीधे ही हापुड चल दिए। पास मे पैसे न होने के कारण चार मील की यह यात्रा उन्होंने पैदल ही पूरी की और गाधीजी का भाषण सुनकर अपने को कृतकृत्य अनुभव किया। रात को वापस लौटना कठिन समझकर एक हलवाई के थडे पर ही भूखे पेट पड रहे और भट्टी की गरमाई के सहारे रात काट दी। महात्मा गाधी के दर्शन से उनके हृदय मे देश-भक्ति की जो भावना उत्पन्न हुई वह बाद मे गुरुकुलीय शिक्षा से और भी पुष्ट हुई।

उनके गुरुकुल जाने की कहानी भी विचित्र है। बात या हुई कि गाँव के जाट जमीदार के दो लडके सुमनजी के सहपाठी थ। दुर्भाग्य से जब उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया तो उनके ताऊ को उनके भविष्य की चिन्ता हुई। सुयोग से उसी समय गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रतिष्ठित उपदेशक कर्मवीर ठाकुर ससारसिह (जिन्होंने बाद मे कन्या गुरुकुल, कनखल-हरिद्वार की स्थापना की) बाबूगढ आये। वे उन्ही दोनो जाट लडको के घर पर ठहरे। उनके ताऊजी ने बच्चो के बारे मे ठाकुरसाहब से बातचीत की तो ठाकुरसाहब ने सुझाव दिया कि उनको गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर मे दाखिल करा दिया जाए। ठाकुरसाहब ने गुरुकुल की नियमावली भी उनको दे दी।

जब वे बच्चे दूसरे दिन स्कूल मे उस नियमावली के साथ पहुँचे और उन्होंने घोषणा की कि हम तो अब गुरुकुल जायेंगे, तब सुमनजी के मन मे कौतूहल जागा। उन्होंने उनसे कुरेद-कुरेदकर गुरुकुल के बारे मे जानकारी प्राप्त की और उनसे नियमावली की प्रति भी ले ली। नियमावली का पारायण करके उन्होंने भी मन-ही मन गुरुकुल जाने का दृढ

सकल्प कर लिया। रात को घर जाकर सुमनजी ने माँ से अपने मन की बात कही और गुरुकुल जाने के लिए सत्याग्रह कर दिया। यह घटना होली से दो-तीन दिन पूर्व की है।

उन दिनों गुरुकुल का वार्षिकोत्सव होली पर ही हुआ करता था। उधर जमींदार के बच्चे गुरुकुल जाने की तैयारी कर रहे थे और इधर सुमनजी का मन-कुरंग उछल-कूद मचा रहा था। लेकिन जायें तो कैसे? सुमनजी के पिताजी के पास फटी कौडी भी न थी और गुरुकुल म प्रवेश पाने को चाहिए थे पूरे बयालीस रुपये—बारह रुपये सदस्यता-शुल्क और तीस रुपये प्रारम्भिक व्यय के लिए। जब कहीं से भी रुपया का कोई जुगाड न हुआ तब माँ ने अपने जेवर गिरवी रखकर रुपया लाने को कहा। समय इतना कम था कि इसका भी बानक न बना। विवश होकर सुमनजी के पिताजी जेवरा की पोटली के साथ ही उन्हे लेकर गुरुकुल पहुँच गए।

गुरुकुल मे प्रारम्भिक जाँच-परीक्षा के बाद ही बालका को प्रवेश मिलता था। फलत जाते ही सुमनजी को अपने उन सहपाठियो सहित परीक्षा देनी पडी। सयोग से उस परीक्षा मे सुमनजी तो उत्तीर्ण हो गए और वे दोनो बच्चे रह गए। उनके उत्तीर्ण होने का रहस्य यह था कि उन्होंने घर पर स्कूली शिक्षा के साथ साथ अपने निरक्षर किन्तु सरकारी पिता से कुछ श्लोक कठाग्र कर रखे थे। गुरुकुल की उक्त जांच परीक्षा म जिन दो श्लोकों ने उनको उत्तीर्ण कराया वे ये हैं

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव,
त्वमेव सर्व मम देव देव!

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम्,
विश्वाधार गगनसदृश मेघवर्ण शुभांगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयन योगिभिर्ध्यानगम्यम्,
वन्दे विष्णुं भवभयहर सर्वलोकैकनाथम्॥

इनके अतिरिक्त उन्ह गायत्री मत्र भी कठस्थ था, जिसके सुनाने की नौबत ही नही आई। सस्कृत के इस चमत्कारी ज्ञान ने जहाँ उनके प्रवेश मे सहायता पहुँचाई वहा हिन्दी और गणित मे भी उन्होंने पूरे-पूरे अक प्राप्त करके सबको आश्चर्यचकित कर दिया। जब उत्तीर्ण छात्रो की सूची गुरुकुल के कार्यालय के समक्ष लगाई गई तब जिन चालीस छात्रों को प्रवेश के लिए चुना गया था उनम सुमनजी का स्थान पाँचवाँ था।

अब प्रश्न आया शुल्क के रुपये जमा करने का। उनके पिताजी ने गुरुकुल के आचार्य के पास पहुँचकर जेवरा की पोटली उनके सामने रख दी और कहा कि मेरे पास तो यही सम्पत्ति है। बच्चे को पढाना अवश्य चाहता हूँ और इसी भावना से इसे यहा लाया भी हूँ, किन्तु जब बहुत प्रयत्न करने पर भी कहीं से पैसो का प्रबन्ध न हो सका तो विवश

होकर यही मार्ग श्रेयस्कर समझा।

आचार्य ने एक नजर पोटली पर डाली और दूसरी पास ही खड़े सुमनजी पर। सुमनजी के पिताजी की इस स्पष्टोक्ति ने उन्हें द्रवित कर दिया। अत वे बोले—'चौधरी, यह छात्र है। यह तो बड़ा मेधावी है। इसके लिए हमें जेवरों की जरूरत नही। इस सम्बन्ध मे चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। अब तो यह बालक हमारा है।" इस पर उनके पिताजी सुमनजी को वहाँ छोड़कर चले गए और अगले वर्ष के गुरुकुल के उत्सव के समय ही वह धन चुकता कर दिया।

शुरू-शुरू मे गुरुकुल के विद्यार्थियो को ग्रीष्मावकाश मे भी अपने घर जाने की अनुमति नही होती थी और सुमनजी शुरू से ही किसी-न-किसी काम मे लगे रहने के आदी थे, अत ऐसा कभी नहीं हुआ कि जब वे अवकाश मे घर आये हो। ग्रीष्मावकाश मे वे या तो गुरुकुल मे प्रविष्ट होने वाले नये ब्रह्मचारियों को पढाते थे या गुरुकुल के लिए आस-पास के गाँवो मे जाकर अन्न-धन आदि का सग्रह करते थे। गुरुकुल के निमित्त यह अन्न-धन आदि जुटाने का कारण उनकी गुरुकुल के प्रति वह श्रद्धा थी जो गुरुकुल के आचार्य महोदय द्वारा उनके पिताजी के साथ किये गए उदारतापूर्ण व्यवहार से जाग्रत हुई थी। सेवाभावी सस्थाओं को चलाने के लिए धन-सग्रह करने की वह आदत सुमनजी मे आज भी ज्यो-की-त्यो बनी हुई है। यही कारण है कि वे अब भी महाविद्यालय ज्वालापुर को कुछ-न-कुछ आर्थिक सहायता भेजते ही रहते हैं। पिछले कई वर्षों से वे वहाँ की प्रबन्ध-सभा के उपाध्यक्ष हैं और कदाचित् ही किसी बैठक मे अनुपस्थित रहते हो। अपने विद्यामदिर के प्रति ऐसी भक्ति दुर्लभ ही कही जाएगी—विशेष रूप से आज के इस व्यापारिक युग मे।

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर की विशेषता यह रही है कि यहाँ से या तो दर्शन, साहित्य और व्याकरण के पारगत विद्वान् निकलते रहे हैं या वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने वाले महोपदेशक। लेकिन सुमनजी इन दोनो से भिन्न साहित्यसेवी बनकर क्यों निकले, इसकी भी एक कहानी है।

उन दिनों गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर मे अध्यापनकार्य करने वाले गुरुवृन्द मे एक ओर हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना के प्रवर्तक आचार्य प० पद्मसिह शर्मा और नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ-जैसे धुरन्धर साहित्यमहारथी थे तो दूसरी ओर आचार्य शुद्धबोध तीर्थ-जैसे व्याकरण व्युत्पन्न व्यक्ति भी थे। किन्तु आचार्य प० पद्मसिह शर्मा के कारण वातावरण मे साहित्यिकता का पलड़ा भारी रहता था। उनके पास साहित्य-चर्चा के लिए सर्वश्री आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शकर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, जगन्नाथदास रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न आदि साहित्यमहारथी समय-समय पर आया करते थे और निरन्तर सस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू आदि के विषय मे काव्यशास्त्रीय चर्चा हुआ करती थी। आचार्य प० पद्मसिह शर्मा को लोग 'सम्पादकजी' कहा करते थे, क्योंकि

वे महाविद्यालय ज्वालापुर की ओर से प्रकाशित होने वाले मासिक 'भारतोदय' के सम्पादक थे। यह वही 'भारतोदय' था जिसमें भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र-प्रसाद का पहला हिन्दी लेख छपा था। उनके मुजफ्फरपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनने और मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त करने की भी उन दिनों बड़ी धूम मची थी। सुमनजी को व्याकरण और दर्शन की शुष्क रटन्त से यह साहित्य-चर्चा अधिक सरस जान पड़ती थी। वे झरोखों में झाँककर साहित्य सरोवर में अवगाहन करने वाले उन सौभाग्यशाली महापुरुषों की मस्ती को देखते थे और अपने कानों से उनकी चर्चा के आनन्द को अन्तर में उँडेलते थे। कभी कभी वे उनकी सेवा भी कर दिया करते थे। उस सेवा में चाय तैयार करना ही मुख्य कार्य था, क्योंकि आचार्य प० पद्मसिंह शर्मा अपने चाय प्रेम के लिए विख्यात थे।

साहित्यिकों के इस समुदाय की सेवा में उनके मन में यह भावना जगी कि सम्पादक और साहित्यिक बनना दार्शनिक और वैयाकरण बनने से कहीं अधिक अच्छा है। साहित्यिक बनने का विचार इसलिए भी उनके मन में जगा कि आचार्य प० पद्मसिंह शर्मा और नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ के पास ढेरों पत्र पत्रिकाएँ आती थीं और उन पत्र-पत्रिकाओं में उनकी नित्य-प्रति चर्चा होती थी और चित्र छपते थे। सारांश यह कि साहित्य की सरसता और यश काक्षा दोनों ने उन्हें न तो वैयाकरण अथवा दार्शनिक बनने दिया और न महोपदेशक ही। इसके विपरीत वे साहित्यिक बनकर ही गुरुकुल से निकले। गुरुकुल में साहित्यिकों के सम्पर्क में आने का फल यह हुआ कि पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त वे पत्र-पत्रिकाएँ विशेष रूप से पढ़ने लगे। समय निकालकर आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की डाक का कार्य भी वे सम्पन्न कराते थे। साथ ही 'सुधांशु' नाम का एक हस्तलिखित पत्र भी उन्होंने अपने ही बलबूते पर दो वर्ष तक सफलतापूर्वक निकाला।

इस सबके कारण वे अपने सहपाठियों में 'सम्पादकजी' कहे जाने लगे। गुरुकुल के आचार्यों की एक धारणा यह भी थी कि जो विद्यार्थी पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाएँ या अन्य पुस्तकें पढ़ता है वह 'बाह्यवृत्ति' हो जाता है। सुमनजी में यह रोग विशेष रूप से था अतः उन्हें 'बाह्यवृत्ति' समझा जाने लगा और व्यंग में 'नेता' भी कहा जाने लगा। उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की और गुरुकुल की सभाओं में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना शुरू कर दिया। वे वहाँ की किशोर छात्रों की सभा 'आर्यकिशोरसभा' के वर्षों मन्त्री रहे और उसके मासिक मुखपत्र 'किशोरमित्र' का सम्पादन भी किया। वाद-विवाद सभाओं और कवि-सम्मेलनों के आयोजनों में उनकी धाक जमने लगी। उस समय अखबारों में गुरुकुल के उत्सवों का विवरण भी वे ही भेजते थे और गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट आदि तैयार कराने की जिम्मेदारी भी उन्हीं की थी। इस सबका सुपरिणाम यह हुआ कि वे विद्यार्थी जीवन में ही छात्रावास के संरक्षक, अध्यापक, पुस्तकाध्यक्ष और भण्डारी (मैस-मैनेजर) का कार्य भी करने लगे। इस प्रकार गुरुकुल के सभी साहित्यिक-

सांस्कृतिक उत्सवों के आयोजन का उत्तरदायित्व उन्हीं के कंधों पर आ पड़ा।

जहाँ तक उनके काव्य-सृजन का सम्बन्ध है, उन दिनों उन्हें कानपुर के 'सुकवि' से बड़ी प्रेरणा मिली। वह युग समस्या-पूर्ति का था। प्रतिमास 'सुकवि' में कोई-न-कोई समस्या दी जाती थी। एक बार समस्या दी गई—'लन्दन हिलाये देते भारत की बनिया' सुमनजी ने भी इसकी पूर्ति की और 'सुकवि' को भेज दी। सौभाग्य से वह 'सुकवि' में छप गई। अब उसे लिए-लिये वे सबको दिखाते फिरने लगे और कवि के रूप में विख्यात हो गए। यों पहले उन्होंने ब्रजभाषा में ही काव्य लिखना प्रारम्भ किया था। इसके बाद वे खड़ी बोली में भी लिखने लगे।

उनके कवि-रूप के विकास में आचार्य प० किशोरीदास वाजपेयी के व्यक्तित्व ने बड़ी सहायता की। वाजपेयीजी गुरुकुल में आर्यकिशोर सभा की ओर से प्रतिवर्ष वसन्त-पंचमी पर आयोजित होने वाले कवि-सम्मेलन के स्थायी सभापति-से हो गए थे। सुमनजी उस कवि सम्मेलन में कविता पढ़ा करते थे और वाजपेयीजी से प्रोत्साहन पाते रहते थे। सन् १९३७ में जब प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने थे तब नेहरूजी पहली बार गुरुकुल में आये थे। उस समय उनका अभिनन्दनपत्र और उनके विषय में स्वागत-कविता दोनों उन्होंने ही लिखे थे।

उनके साहित्यिक बनने के विषय में यह उल्लेख्य है कि अपने हस्तलिखित पत्र 'सुधांशु' के उन्होंने 'शिक्षांक', 'गुरुकुलांक', 'कवितांक', 'वसन्तांक' आदि कई आकर्षक और उच्चस्तरीय विशेषांक निकाले थे। गुरुकुल में पधारने वाले महानुभाव उन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाते थे और सुमनजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करके उनके उज्ज्वल साहित्यिक भविष्य की कामना करते थे। ऐसे महानुभावों में सबसे अधिक प्रशंसा करने वाले थे 'आर्यमित्र' के तत्कालीन सम्पादक प० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'। सुमनजी पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा।

'आर्यमित्र' उन दिनों आर्यसमाज ही नहीं, समस्त हिन्दी-जगत् में पत्रकार-कला का आदर्श उपस्थित करता था। उसके आदिसम्पादकों में सर्वश्री रुद्रदत्त सम्पादकाचार्य और लक्ष्मीधर वाजपेयी-जैसे महान् साहित्यकारों के नाम लिये जा सकते हैं तो बाद में सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' और डॉ० सत्येन्द्र-जैसे विद्वानों ने पत्रकार-कला की दीक्षा पूज्य प० हरिशंकर शर्मा के तत्त्वावधान में 'आर्यमित्र' में ही ली थी। सुमनजी ने मन-ही-मन पंडितजी का शिष्यत्व ग्रहण करने का संकल्प कर लिया था, जो आगे चलकर सन् १९३९ में तब पूरा हुआ जबकि वे उनके निमंत्रण पर आगरा गये।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि गुरुकुल में सुमनजी ने कोरे साहित्यिक बनने में ही सारा समय लगाया। वे अपने समय में हॉकी के भी सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी माने जाते थे। अपनी हॉकी-टीम का नाम उन्होंने 'सुधांशु दल' रख छोड़ा था। यह दल सभी टूर्नामेंटों की शान था। इसके अतिरिक्त शैतानी में भी वे अच्छे-अच्छों के कान काटते थे। एक

बार वे अँधेरी रात मे लालटेन लेकर आम खाने के लिए छात्रावास मे लगे आम के बडे पेड पर चढ गए। जब मुख्य सरक्षक (प० कालीदत्त शर्मा) ने देखा कि पेड पर कोई चढा हुआ है तो वे आगबबूला होकर चीखने-चिल्लाने लगे। सुमनजी ने लालटेन पेड की डाल मे बाँधी और चुपचाप छात्रावास की छत पर होकर अपने कमरे मे खिसक गए। सरक्षक जी के बहुत-कुछ कहने पर भी जब पेड से कोई नहीं उतरा और लालटेन की रोशनी जैसी की-तैसी बनी रही तब वे निराश होकर सवेरे खबर लेने की चेतावनी देकर चले गए। सवेरे उन्होंने विद्यार्थियो को ऊपर चढाकर दिखवाया कि वही कोई ऊपर ही तो डर के मारे नही सो गया है। पता चला कि वह उनका भ्रम ही था, क्योकि खोजियो के हाथ तो केवल डाल मे बँधी लालटेन ही लगी थी।

एक बार बीमार होते हुए भी ४५ रोटियाँ खा जाने की घटना उनके जीवन मे महत्वपूर्ण रही है। वे स्वय तो बीमार थे। उनके दो साथी यह कहकर नहाने चले गए कि अपने खाने के साथ वे उनका खाना भी मँगा लें। जो छात्र उनका खाना लाया वह उन दो साथियो का भी ले आया। इससे उसकी मैस-मैनेजर (भण्डारी) से हल्की-सी झडप हो गई। मैनेजर ने आश्रमाध्यक्ष से इसकी शिकायत की। आश्रमाध्यक्ष न आव देखा न ताव, वे तुरन्त वहाँ से सीधे सुमनजी के कमरे मे आये और उनके इतनी रोटियाँ मँगाने पर उन्हे फटकारा। लेकिन जब सुमनजी ने कहा कि मैं बीमार हूँ और ये सब रोटियाँ मेरे ही लिए आई हैं तो वे वही सामने बैठ गए और आदेश दिया—'अच्छा खाओ!' सुमनजी बडे धर्म-सकट मे पडे। यदि वे यह बताते हैं कि यह तीन आदमियों का खाना है तो अपने साथ उन दोनो सहपाठियो और भोजन लाने वाले छात्र सबकी पिटाई होनी है और खाते हैं तो मौत सामने दिखाई देती है। लेकिन विवशता थी, करते भी क्या! धीरे-धीरे खाना शुरू किया और जब केवल तीन-चार रोटियाँ ही रह गईं तो आश्रमाध्यक्ष बडे चमत्कृत हुए और उनको शाबाशी दी। साथ ही रात को जाकर मैस मैनेजर की वह खबर ली कि भविष्य मे आश्रम मे गिनकर रोटी दिये जाने का बन्धन टूट गया। सुमनजी के सहपाठी अब भी जब कभी उनसे मिलते हैं तो इस चमत्कारी घटना की चर्चा अवश्य करते हैं।

गुरुकुल-शिक्षा की समाप्ति के बाद सुमनजी ने १६३८ मे जब कार्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया तो वे सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले 'आर्य' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हुए। इससे पूर्व उनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने लगी थी, यह हम पहले कह चुके हैं। 'आर्य' का उद्देश्य आर्यसमाज मे सुधारवादी प्रवृत्ति को बल देना था। उसका सिद्धान्त-वाक्य था

द्वेष-दर्प को धारकर, जो धावें प्रतिकूल।
श्रेष्ठ 'आर्य' उनको करे, भरे भाव अनुकूल॥

'आर्य' मे सुमनजी आर्य-जगत् की त्रुटियों पर खुलकर लिखा करते थे। इसके कारण उनकी सम्पादन-कला और निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता की धाक जम गई। आखिर

कठिनाइयों के कारण पत्र के केवल २६ अंक ही निकल सके, बाद में वह बन्द हो गया।

इसके बाद उन्होंने अजमेर से प्रकाशित होने वाले 'विजय' नामक साप्ताहिक में जाने का प्रयत्न किया। इस विषय में उनके गुरुकुल के प्रतिष्ठित स्नातक पं० सत्यव्रत शास्त्री ने डी० ए० वी० हाई स्कूल, अजमेर के तत्कालीन आचार्य डॉ० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार से यह आग्रह किया कि वे 'विजय' में सुमनजी को बुला लें, क्योंकि 'आर्य' बन्द हो गया है। इस पर डॉ० सूर्यदेव ने उन्हें २६ अप्रैल १९३८ के पत्र में लिखा—"श्री भाई सुमन के लिए जो कुछ आपने लिखा है यह सत्य है। 'विजय' के सम्पादन विभाग में वे कार्य तो कर सकते हैं लेकिन 'विजय' के संचालकगण 'आर्य' से असन्तुष्ट थे, क्योंकि उसमें अनाथालय और आर्यसमाज अजमेर के विरुद्ध घृणित बातें तक बिना आधार के छपती रही थीं। जब मैंने सुमनजी का जिक्र उनसे किया तो उन लोगों ने यही कहा। खैर, आप सुमनजी से प्रार्थना पत्र तो भिजवा दीजिए। मैं भरसक प्रयत्न करूँगा।" डॉ० सूर्यदेव के इन शब्दों से सुमनजी की सम्पादन-कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उन्होंने *आर्यसमाज अजमेर में फैली हुई गुटबन्दी का पर्दाफाश करने के लिए ही वे टिप्पणियाँ* लिखी थीं जिनका संकेत डॉ० सूर्यदेव शर्मा ने अपने पत्र में किया है।

सहारनपुर में ही सुमनजी का सम्पर्क प्रख्यात पत्रकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' और विश्वम्भरप्रसाद शर्मा से हुआ, जो वहाँ से 'विकास' साप्ताहिक का सम्पादन-संचालन करते थे। प्रभाकरजी के सम्पर्क से सुमनजी के गद्य-लेखन में जहाँ निखार आया वहाँ विश्वम्भरप्रसाद शर्मा की अध्यवसायिता ने भी उन्हें प्रचुर प्रेरणा प्रदान की। सहारनपुर के 'हिन्दी मित्र मण्डल' की कवि गोष्ठियों ने सुमनजी की काव्य-प्रतिभा को निखारने में अत्यन्त प्रशंसनीय योग दिया। इस प्रकार सहारनपुर को सुमनजी की साहित्यिक यात्रा का प्रथम चरण कहा जा सकता है।

सहारनपुर के बाद से उनके जीवन संघर्ष का तीव्र रूप सामने आता है और वे पारिवारिक उत्तरदायित्वों से घिरे हुए अपना मार्ग खोजने में रत दिखाई देते हैं। लेकिन वे अपने सामाजिक नेतृत्व की प्रवृत्ति से अलग नहीं हो पाते। जब वे 'आर्य' में ही थे तब ५ फरवरी, १९३८ को आर्यकिशोर सभा के रजत जयन्ती महोत्सव के स्वागताध्यक्ष मनोनीत हुए और उस उत्सव को सफल बनाया। उस समय उन्होंने जो मुद्रित भाषण दिया था उससे उनकी आर्यसमाज के प्रति निष्ठा और समाज-सेवा की लगन व्यक्त होती है। उस भाषण की ये पंक्तियाँ आज भी उनके व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश डालती हैं "आर्य समाज मनुष्य की सरलता, पवित्रता और स्वतन्त्रता के लिए विश्वबन्धुत्व के मधुर प्रेममय सन्देश को लेकर खड़ा हुआ है। वह केवल एक अमर, एक व्यापक ज्ञानमय चेतन तत्त्व को जगन्नियन्ता मानकर आनन्दमय जीवन की प्राप्ति के लिए उपदेश देता है और सबका हित-साधन व परोपकार ही आर्यसमाज की धार्मिक साधना है।"

उस उत्सव में सुमनजी ने विद्यार्थियों की भाषण प्रतियोगिताओं आदि के व्याति-

कारी आयोजनों के साथ कवि-सम्मेलन और छात्र सम्मेलन के आयोजन भी किये थे। उस समय कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने की थी। इसी वर्ष हरिद्वार मे होने वाले कुम्भ मेले के अवसर पर उन्होंने ८ अप्रैल, १९३८ को एक विराट् हिन्दी कवि-सम्मेलन का आयोजन भी किया था, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती होमवती देवी थीं। इसी कुम्भ कवि-सम्मेलन म उनका परिचय लाहौर से आने वाले साहित्यिक दल के सदस्यों सर्वश्री उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण 'प्रेमी', रामेश्वर 'करुण', माधवजी आदि से हुआ। इससे आगे चलकर उन्हे लाहौर मे जमने मे बडी सहायता मिली।

मई सन् १९३८ मे ही उनका विवाह हो गया और उसके बाद वे जीविकोपार्जन की चिन्ता से घिर गए। एक वर्ष बडी कठिनाई मे बीता। इसी बीच गुरुकुल डौरली (मेरठ) मे अध्यापन-कार्य किया, लेकिन वहाँ उनका मन न लगा और वे दमे के शिकार हो गए। आजीविका की खोज तो जारी थी ही कि आर्य प्रतिनिधि सभा, सयुक्त प्रान्त की ओर से १९ नवम्बर, १९३८ को आर्यसमाज मनकापुर (गौंडा) मे पौरोहित्य का कार्य करने का बुलावा आया। नियुक्ति मे पूर्व बुलावे के उस पत्र मे जो बाते लिखी गई थी, वे इस प्रकार है—

१ आर्यसमाज की ओर से पुरोहित को पन्द्रह रुपये मासिक वेतन तथा भोजन मिलेगा।

२ आप जन्म से ब्राह्मण है या नही ?

३ अछूतों के साथ खा-पी सकते है या नही ?

४. आपका परिवार आपके साथ रहेगा या नही ?

यह प्रश्नावली ही अपने म जैसे काफी नही थी, इसके साथ पुरोहितजी को चदा उगाहने का निर्देश भी दिया गया था। सुमनजी को इससे बडी निराशा हुई।

उसी समय उनके गुरुकुल के आचार्य प० हरिदत्त शास्त्री नवतीर्थ (जो आजकल डी० ए० वी० कालेज, कानपुर के सस्कृत-विभाग के अध्यक्ष हैं) ने श्री हरिशकर शर्मा 'कविरत्न' से उनकी चर्चा की। शर्माजी उन दिनों प्रख्यात आर्य सन्यासी स्वामी परमानन्दजी महाराज के सहयोग से 'आर्य-सदेश' नामक एक निर्भीक और निष्पक्ष साप्ताहिक पत्र निकालने की धुन मे थे। श्री हरिदत्त शास्त्री का सुझाव उन्हे पसन्द आया और उन्होंने ८ जनवरी, १९३९ को सुमनजी को एक पत्र लिखकर आगरा आने का निमन्त्रण दिया। उन्होंने लिखा था—"श्रीमान् हरिदत्त शास्त्री से ज्ञात हुआ है कि आप इस पत्र मे अपना अमूल्य सहयोग देने की कृपा करना चाहते है। बडी खुशी की बात है। मैंने श्री स्वामीजी महाराज से भी इस बात का जिक्र कर दिया है। आप बडी प्रसन्नता से आ सकते हैं। आपके लिए भोजनादि की व्यवस्था पत्र की तरफ से कर दी जाएगी।" सुमनजी ने इस पर अपनी आर्थिक कठिनाई का उल्लेख किया तो शर्माजी ने जनवरी १९३९ को दूसरे पत्र मे उन्हे लिखा—" 'आर्य-सन्देश' की बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था

है। किसी पूंजीपति का आश्रय भी उसे प्राप्त नहीं है। आपको मालूम है कि मैं स्वयं बिना कुछ लिये काम कर रहा हूँ फिर भी इतना अवश्य है कि आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। आपने मेरे पास रहकर काम करने की इच्छा भी अपने पहले पत्र में प्रकट की थी। बड़ा अच्छा सुयोग है।

सुमनजी यह पत्र पाकर आगरा चल दिए। बात यह थी कि वे शर्माजी को 'आर्यमित्र' के सम्पादक के नाते आदर्श पत्रकार मानते थे और पत्रकार कला की विधिवत् दीक्षा भी उन्हीं से लेना चाहते थे। यह संकल्प वे अपने छात्र-जीवन में ही कर चुके थे। उसकी पूर्ति का यह स्वर्ण अवसर वे हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। उन्हें प्रसन्नता है कि उनके शिक्षा-गुरु यदि आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ-जैसे विद्वान् रहे हैं तो दीक्षा-गुरु पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न-जैसे उच्चकोटि के पत्रकार।

शर्माजी के सतर्क निर्देशन में सुमनजी ने पत्रकार-कला की जो दीक्षा ली उसने उनके भावी जीवन के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। लेकिन आर्थिक कठिनाइयाँ तो ज्यों-की त्यों बनी थीं। उनका निराकरण कैसे होता? 'आर्य-संदेश' भी आर्थिक कठिनाइयों के कारण केवल दो मास चलकर ही बन्द हो गया। फलतः मार्च १६३६ से वे 'आर्यमित्र' में चले गए। उस समय उनका वेतन बारह रुपये मासिक था। सुमनजी ने बड़ी लगन से काम किया। यहाँ तक कि जब निज़ाम हैदराबाद की नीति के विरुद्ध आर्यसमाज द्वारा छेड़े गए सत्याग्रह के कारण 'आर्यमित्र' अर्द्ध साप्ताहिक हो गया तब भी सुमनजी घन-घोर परिश्रम करके 'आर्यमित्र' के दायित्व को निभाते रहे।

'आर्यमित्र' में जब उनकी नियुक्ति हुई थी तब उन्हें आश्वासन दिया गया था कि कार्य सन्तोषजनक होने पर एक महीने के बाद उनकी वेतन-वृद्धि हो जाएगी। सुमन जी ने तीन महीने बाद जब इस सम्बन्ध में प्रार्थना पत्र दिया तो डायरेक्टर महोदय ने यह तो स्वीकार किया कि उनका कार्य सन्तोषजनक है और वेतन अवश्य बढ़ना चाहिए, पर पत्र में घाटा होने के कारण अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। उनकी टिप्पणी इस प्रकार थी—"ऐसे योग्य व्यक्ति के लिए बारह रुपये बहुत कम हैं। वेतन तो अवश्य बढ़ाना चाहिए परन्तु अभी पत्र में घाटा अधिक है। जुलाई में मण्डल का वर्ष समाप्त होता है अतः जुलाई तक हानि-लाभ का हिसाब बनाकर अगस्त में उसी हिसाब के साथ यह पत्र भेजें। काम के बारे में इनकी रिपोर्ट लिखें।"

डायरेक्टर की इस टिप्पणी का सुमनजी के मन पर कुछ सौम्य प्रभाव नहीं पड़ा और वे इधर-उधर किसी अन्य पत्र में जाने की सोचने लगे। दिन-रात अथक परिश्रम करके उन्होंने 'आर्यमित्र' को जो लोकप्रियता दिलाई थी उसका यदि यही पुरस्कार मिलना था तो उसका क्या लाभ? उन्होंने 'जागृति' कलकत्ता, 'हिन्दू' नई दिल्ली, 'भाग्योदय' मुरादाबाद आदि अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रों से लिखा-पढ़ी की, किन्तु किसी भी ओर से आशा की किरण नहीं दिखाई दी। कोई भी पत्र पन्द्रह रुपये से अधिक वेतन देने

को राजी न हुआ। सुयोग से अक्तूबर १६३६ में अमेठी राज्य के राजकुमार रणञ्जयसिंह ने अपने खर्चे पर उन्हें 'मनस्वी' मासिक का सम्पादन करने के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए बुलाया और चालीस रुपये मासिक पर नियुक्ति की सूचना देते हुए ४ नवम्बर, ३६ को यह लिखा—'आप यहाँ शीघ्र-से-शीघ्र चल आइये, क्योंकि 'मनस्वी' के प्रकाशन में बहुत विलम्ब हो रहा है। आपके लिए चालीस रुपये मासिक का प्रबन्ध हो जाएगा।"

सुमनजी वहाँ चले तो गए, लेकिन उन्हें यह पता न था कि राज-दरबारों में जमने के लिए अन्य बातों की आवश्यकता भी होती है। कुछ ही दिन बाद उन्होंने अपने को उस वातावरण के अनुपयुक्त पाया और वे वहाँ से भी उखड़ने की सोचने लगे। अमेठी राज्य प्रारम्भ से ही आर्यसमाज और वैदिक धर्म के उत्थान में सहायक रहा है। इसी दृष्टि से राजकुमार महोदय ने सुमनजी की नियुक्ति की थी। इसका आभास सुमनजी को तब हुआ जबकि उनसे वहाँ पर भी सम्पादन के अतिरिक्त आर्यसमाज का पौरोहित्य कराने की बात कही गई। सुमनजी साहित्य और पत्रकारिता को साधने में ही अपने भावी जीवन को लगाना चाहते थे और इसी कारण उन्होंने इतने पापड़ बेले थे। वहाँ भी जब आर्यसमाज के कर्मकाण्ड में फँसने और समय-असमय राजकुमार महोदय के साथ टेनिस खेलने का प्रश्न उठा तो उन्हें इससे वितृष्णा हो गई और वे ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहे कि जब वे वहाँ से चल दें।

गर्मियों में जब राजकुमार महोदय विजगापट्टम की समुद्र यात्रा को गये तब भी उन्होंने उन्हें साथ ले जाने का उपक्रम किया, लेकिन सुमनजी टाल गए और उनकी अनुपस्थिति में तार द्वारा अपने त्यागपत्र की सूचना देकर मण्डी धनौरा (मुरादाबाद) से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'शिक्षासुधा' में पहुँच गए। किन्तु संघर्षों के राही के भाग्य में वहाँ भी चैन से बैठना नहीं लिखा था। परिणामस्वरूप सम्पादन के अतिरिक्त जब वहाँ पर प्रेस मैनेजरी भी उन पर लादी गई तो सुमनजी ने मन ही मन अपने भाग्य को कोसा और छः महीने ही काम करके उन्होंने दिसम्बर, १६४० के अंक में संचालकों को बिना बताये ही अपनी विदाई की टिप्पणी छाप दी।

इसके बाद वे अपने गाँव बाबूगढ़ चले आए। जनवरी, '४१ से लेकर सितम्बर, '४१ तक का समय घर पर ही बेकारी में बीता। इस बीच वे जहाँ तहाँ पत्र पत्रिकाओं में छुटपुट रचनाएँ छपाने लगे। पारिश्रमिक के नाम पर उन दिनों यदि कहीं से पाँच रुपये भी आ जाते थे तो वे अपने को धन्य मानते थे, क्योंकि उस समय तक अधिकांश हिन्दी पत्रों में पारिश्रमिक देने की परम्परा नहीं थी।

जब सुमनजी पत्रकारिता से ऊब गए तो उन्होंने अध्यापन की दिशा में बढ़ने की सोची। फलतः उन्हें सरधना (मेरठ) के सेंट चार्ल्स हाईस्कूल में जुलाई १६४१ से हिन्दी-संस्कृत अध्यापक के रूप में ३०-४-८० के वेतन-स्तर पर नियुक्तिपत्र मिला, किन्तु वहाँ भी भाग्य ने साथ न दिया। स्वाभिमानी और अक्खड़ स्वभाव वाले सुमनजी वहाँ भी

इसलिए न गये कि यह स्कूल सुमनजी की ससुराल के पास था और सुमनजी की ससुराल के परिवार में जितने लोगों का विवाह हुआ था वे प्राय किसी-न-किसी व्यवसाय के प्रसग में मरधना में ही जम गए थे। सुमनजी की नियुक्ति की सुनते ही किसी मनचले ने यह ताना मारा कि 'लो, ये भी यहीं आ गए।' सुमनजी को यह बात चुभ गई और वे वहाँ नहीं गये।

अक्तूबर १९४१ में सुमनजी हिन्दी-भवन, लाहौर में साहित्यिक सहायक होकर चले गए। उनका कार्य था वहाँ से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के सम्पादन में योग देना। हिन्दीरत्न, भूषण, प्रभाकर आदि परीक्षाओं की सहायक पुस्तकें तैयार करने का कार्य भी उन्हें सौंपा गया। जब उन्होंने केवल दो महीने में ही तीन सहायक पुस्तकें तैयार कर दीं तो प्रसिद्ध नाटककार और कवि स्व० श्री उदयशंकर भट्ट ने (जो उन दिनों लाहौर में ही रहते थे) उन्हें स्वतन्त्र लेखन और अध्यापन-कार्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी। भट्टजी के प्रोत्साहन ने उनका मार्ग खोल दिया और आगे चलकर साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक कार्य करने में उन्हें कोई असुविधा नहीं हुई। वहीं उनका परिचय हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' से हुआ, जो दिन-दिन प्रगाढ होता गया। भट्टजी और प्रेमीजी के अनन्य सहयोग से सुमनजी की प्रतिभा और भी खिली। सच तो यह है कि लाहौर में इन दो दिग्गज साहित्यकारों के सम्पर्क ने उनके जीवन को नाना प्रकार की महत्त्वाकाक्षाओं से परिपूर्ण कर दिया। वे प्राण-पण से अध्यापन, सम्पादन और लेखन के कार्य में जुट गए। कदाचित् बहुत कम लोगों को यह ज्ञात होगा कि हिन्दी में गाइड-लेखन का सूत्रपात सर्वप्रथम सुमनजी ने ही किया था और उन्हीं के सतर्क निरीक्षण और सम्पादन में 'रत्न दस दिनों में', 'भूषण दस दिनों में' तथा 'प्रभाकर दस दिनों में' नामक गाइडें निकली थीं। इन गाइडों का प्रकाशन लाहौर के सूरी ब्रदर्स ने किया था।

एक ओर 'फतहचन्द कॉलिज फॉर वीमेन' में हिन्दी-अध्यापन, दूसरी ओर 'हिन्दी मिलाप' में सह-सम्पादन और तीसरी ओर काव्य और साहित्य का सृजन। यों उनका सारा समय ही साहित्य को समर्पित हो गया। इस समय यदि उन्होंने परीक्षा की सहायक पुस्तकें लिखकर अपनी आर्थिक स्थिति सुधारी तो अध्यापन और सम्पादन से साहित्य-सृजन की प्रेरणा को सबल किया। लाहौर में ही विभिन्न साहित्यिक उत्सवों के माध्यम से उनका साक्षात्कार राजर्षि टण्डन, महाकवि निराला तथा माखनलाल चतुर्वेदी से हुआ। एक समय था कि लाहौर की कविगोष्ठियों में सुमनजी की रचनाएँ बड़ी उत्सुकता और तन्मयता से सुनी जाती थीं। प्रेम और वियोग-शृंगार से ओत-प्रोत उनके गीत वहाँ की साहित्यिक मण्डली की जिह्वा पर चढ गए थे। आकाशवाणी से उनकी कविताओं और वार्ताओं के प्रसारण का प्रारम्भ भी लाहौर से ही हुआ था और उनकी प्रथम काव्य-कृति 'मल्लिका' भी वहीं से प्रकाशित हुई थी। इसकी भूमिका हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के तत्कालीन प्राध्यापक और हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

(वर्तमान उपकुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) ने लिखी थी।

सन् '४२ के आन्दोलन में सुमनजी का घर क्रान्तिकारी नेताओं और कार्यकर्ताओं की शरणस्थली बन गया। उनमें पत्रकार थे, अध्यापक थे, राजनीतिज्ञ थे और थे अनेक छात्र-छात्राएँ। पत्रकारों में दैनिक 'मिलाप' के भूतपूर्व सम्पादक श्री जीवाराम पालीवाल और साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' के सम्पादक श्री जयन्त वाचस्पति (स्वर्गीय इन्द्र विद्या-वाचस्पति के सुपुत्र), अध्यापकों में हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के डॉ० कुशलानन्द गैरोला और प्रो० राधेश्याम शर्मा, राजनीतिज्ञों में बिहार की हजारीबाग-जेल में श्री जयप्रकाश नारायण (आज के प्रसिद्ध भूदानी नेता) के साथ भागे हुए श्री रामनन्दन मिश्र और योगेन्द्र शुक्ल तथा छात्र-छात्राओं में देश के विभिन्न भागों के अनेक युवक-युवतियाँ थे। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् और सुकवि श्री केवलानन्द 'अजेय' आचार्य दीपकर (आज के विख्यात साम्यवादी नेता) नाम से सुमनजी के घर पर ही ठहरे हुए थे। क्योंकि घर काफी बड़ा था और सुमनजी उन दिनों एकाकी ही रहा करते थे इस-लिए इन सभी कार्यकर्ताओं को वहाँ ठहरने में सुरक्षा और सुविधा दोनों प्राप्त थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ इन सभी कार्यकर्ताओं के सम्पर्क-सूत्र देश-भर में फैले हुए आन्दोलनकारियों तक पहुँचे वहाँ उन्होंने पंजाब के विभिन्न नगरों में छात्रों, प्राध्या-पकों और अन्य विभिन्न सामाजिक व्यक्तियों में अपना जाल फैलाया। इसके कारण वे भी सुमनजी से परिचित हो गए।

पुलिस को किसी प्रकार यह सुराग मिल गया कि सुमनजी का घर इस प्रकार की प्रवृत्तियों का केन्द्र है, और एक दिन वह आया जबकि पुलिस ने उनके घर को चारों ओर से घेर लिया। तलाशी में उन्हें और तो क्या मिलता, आचार्य दीपकर उसके हाथ लगे। बनारस से आये हुए आचार्य दीपकर उन व्यक्तियों में थे, जिनकी गिरफ्तारी के लिए तत्कालीन उत्तरप्रदेश सरकार ने इनाम घोषित किया हुआ था और उनकी विशेषता यह थी कि वे लँगड़े थे, इसलिए उनके पहचाने जाने में पुलिस को कोई कठिनाई नहीं हुई। उन्हें पाकर पुलिस की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

आचार्य दीपकर का पकड़ा जाना था कि सुमनजी भी पुलिस की आँखों में खटकने लगे और कुछ ही दिन बाद वे भी नजरबन्द कर दिये गए। उन्हें पुलिस ने पहले तो पुरानी अनारकली की हवालात में रखा और उसके बाद फीरोज़पुर-जेल में ले जाया गया। फीरोज़पुर-जेल में पंजाब के ऐसे ही राजनैतिक बन्दी रखे गए थे कि जिनका सम्बन्ध क्रान्तिकारियों से था। जेल में सुमनजी के साथ उन दिनों जो महानुभाव नजरबन्द थे उनमें सर्वश्री मनुभाई शाह (वाणिज्य मन्त्री), विजयानन्द पटनायक (भूतपूर्व मुख्य मन्त्री, उड़ीसा), वृषभान (भूतपूर्व मुख्य मन्त्री, पेप्सू), दुर्गादास खन्ना (अध्यक्ष विधान-परिषद, पंजाब) और दिल्ली के श्री गोपीनाथ अमन, डॉ० युद्धवीरसिंह तथा ब्रजकृष्ण चाँदी-वाला-जैसे महानुभाव थे। उत्तरप्रदेश की हैलटशाही के शिकार अमर शहीद गजनागनण

मिश्र भी उसी जेल मे थे, जिन्हे बाद मे फांसी पर लटका दिया गया था।

इन सब घटनाओ के कारण सुमनजी का सम्बन्ध क्रियात्मक राजनीति से हो गया, जो आज भी यथावत् बना हुआ है और राजधानी के काग्रेसी क्षेत्रो मे उनका अद्वितीय और महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार लाहौर का प्रवास उनके जीवन मे वरदान सिद्ध हुआ।

गिरफ्तारी के बाद सुमनजी लगभग डेढ वर्ष तक फीरोज़पुर-जेल मे नज़रबन्द रहे और १६ जुलाई, १९४४ को जब वे वहां से रिहा हुए तो उन्हे लाहौर-कॉरपोरेशन की सीमा मे ही अवरुद्ध कर दिया गया। जेल से वापस लौटने पर सुमनजी अपनी साहित्यिक गतिविधियो को ठीक प्रकार से सयोजित भी नही कर पाए थे कि सहसा २४ सितम्बर को पजाब सरकार ने उन्हे २४ घटे के अन्दर-अन्दर पजाब छोडने का आदेश दिया। परिणाम-स्वरूप वे अपने गाँव बाबूगढ आ गए, जहाँ उत्तरप्रदेश की सरकार ने उन्हे गाँव की सीमा मे ही नजरबन्द कर दिया। आप कल्पना कर सकते है कि जो व्यक्ति बिना सभा-सोसा यटियो के रह ही नही सकता था, उस पर इस नज़रबन्दी से क्या गुज़री होगी। एक ओर जहाँ उनके सामने अपनी आजीविका का प्रश्न था, वहाँ दूसरी ओर इस लम्बी नज़रबन्दी के कारण उत्पन्न पारिवारिक विपन्नता की भी समस्या थी।

१७ मई, १९४५ को उत्तरप्रदेश की सरकार ने सुमनजी पर से यह प्रतिबन्ध हटाया। यह समय सुमनजी ने कितनी भयकर कठिनाइयो मे काटा होगा, इसका अनुमान करके ही रोमाच हो आता है। माता, पिता और पत्नी तीनो बीमार, आजीविका का कोई साधन नही, और रिश्तेदार भी पुलिस के आतक के कारण साथ न दे—ऐसी दशा मे उनके स्थान पर कोई साधारण व्यक्ति होता तो आत्महत्या ही कर लेता। लेकिन सुमनजी ही थे जो उस सकट के विष को भी पचा गए और साहित्य साधनार्थ साहस सँजोने का उपक्रम करने लगे। मुझे यह अच्छी तरह याद है, जिन दिनो सुमनजी अपने गाँव मे नज़र-बन्द थे, उन दिनो बाबू श्रीप्रकाश केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे और उन्होने विभिन्न स्रोतो से सुमनजी की न केवल आर्थिक सहायता ही की थी बल्कि असेम्बली मे इस सम्बन्ध मे प्रश्न उठाकर ब्रिटिश सरकार को आतकित भी कर दिया था। उस समय देश का कोई भी ऐसा पत्र नही था जिसमे सुमनजी की इस नज़रबन्दी को लेकर सरकार की भर्त्सना न की गई हो और उनके सम्बन्ध मे सम्पादकीय टिप्पणी न लिखी गई हो। इन टिप्पणियो से प्रभावित होकर राजर्षि टण्डन ने, जो उन दिनो उत्तरप्रदेश विधान-सभा के अध्यक्ष थे, सुमनजी को आर्थिक सहायता दी थी।

जुलाई सन् १९४५ मे सुमनजी दिल्ली मे आकर जम गए। यहाँ भी उनका सघर्ष अनवरत जारी रहा। जीवन का एक क्षण भी उन्होने खाली नही जाने दिया। स्वाभिमान और स्वावलम्बन का सम्बल लिये हुए वे बराबर अपनी साधना मे रत रहे। इसके लिए उन्होने जहाँ अनेक प्रेसो की मैनेजरी की, वहाँ अपनी आर्थिक कठिनाइयो के समाधान के

लिए पाठ्य-पुस्तकों के प्रणयन का भी उपक्रम किया। ये पाठ्य-पुस्तकें न केवल साहित्य-विषयक थीं वरन् उन विषयों पर भी थीं, जिनसे सुमनजी का वास्ता भी न था। मज़े की बात यह है कि वे पाठ्य पुस्तक प्रणयन में भी सारे देश में विख्यात हो गए। उनकी अनेक पुस्तकें देश के विभिन्न क्षेत्रों में चल रही हैं लेकिन दुःख यह है कि प्रकाशक उन्हें ईमानदार नहीं मिले। यदि कहीं सौभाग्य से उन्हें अच्छे प्रकाशक मिल जाते, तो उनके पास लाखों रुपया होता। लेकिन सुमनजी को इसका कोई पश्चात्ताप नहीं है वे तो केवल परिश्रम के पुजारी हैं और आज भी सर्वहारा का जीवन जी रहे हैं।

परिश्रम की तो वे साकार मूर्ति हैं। एक बार एक पुस्तक को निश्चित तिथि पर प्रकाशित करने के सिलसिले में वे ७२ घंटे तक कुर्सी पर ही बैठे रहे थे। चाय ही उनकी एकमात्र संगिनी थी। वे जब काम करते हैं तब उन्हें कुछ सुध-बुध नहीं रहती खाना-पीना तक भूल जाते हैं। हिन्दी कवियों और कवयित्रियों के प्रेमगीतों के संकलन के सिलसिले में उन्होंने जो अथक परिश्रम किया है वह हम सबके लिए आश्चर्य की वस्तु है। सच तो यह है कि जब वे किसी काम को उठाते हैं तब पूरा करके ही दम लेते हैं। उनकी सूझ-बूझ, लगन और अध्यवसाय का ही यह प्रमाण है कि उन्होंने प्रायः ऐसे ही कामों को अपने हाथ में लिया है जिनकी ओर किसी भी साहित्यिक संस्था अथवा साहित्यकार का ध्यान अब तक नहीं गया था।

सुमनजी संघर्षप्रिय साहित्यकार हैं। वे कभी विरोधों से घबराते नहीं, बल्कि उन्हें कर्म-पथ पर बढ़ने का साधन मानते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि जिन 'छुटभइयों' की वे सहायता करते हैं वे ही उनके कटु आलोचक हो जाते हैं। सुमनजी भी सदा से ऐसे छुटभइयों के प्रहारों को हँस-हँसकर झेलते आए हैं। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतना सब-कुछ हो जाने पर भी वे किसी का बुरा नहीं करते। वे जानते हैं कि एक व्यक्ति उन्हें गाली देता है और उन्हें हानि पहुँचाने के लिए तत्पर रहता है पर उसका संकट देखकर वे द्रवित हो जाते हैं, और बिना कुछ सोचे समझे उसकी सहायता को दौड़ पड़ते हैं। ऐसे कितने ही उदाहरण मेरे सामने हैं, जब उन्होंने अपने विरोधियों की दस-बीस नहीं, दो सौ-चार सौ रुपये तक से आर्थिक सहायता की है।

अतिथि सत्कार तो उनके जीवन का एक प्रमुख अंग है। बड़ा और छोटा हर एक साहित्यकार उनका आतिथ्य प्राप्त कर सकता है। उनकी पत्नी भी उनके विचारों के अनुकूल अतिथियों के आदर सम्मान का पूरा-पूरा ध्यान रखती हैं। आजकल शुद्ध श्रम के आधार पर जीना और ईमानदार साहित्यकार के आदर्श की रक्षा करना बड़ा कठिन कार्य है। सुमनजी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं—जीवट, लगन और उत्साह की साकार मूर्ति।

सुमनजी प्रकाशन और मुद्रण की कला के विशेषज्ञ माने जाते हैं। दिल्ली के प्रेसों में यह कहावत मशहूर है कि यदि 'सुमन' जी की पुस्तक छापनी हो तो विराम चिह्नों आदि का पर्याप्त भण्डार प्रेस को इकट्ठा कर लेना चाहिए। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है

कि भारतवर्ष मे उनसे अधिक शुद्ध और सुन्दर प्रूफ देखने वाला दूसरा नही है। दिल्ली के अनेक प्रेसो का उन्होंने सचालन किया है और कई प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्थाओ मे वे सम्बद्ध रहे हैं। आजकल साहित्य अकादेमी मे प्रकाशन का कार्य देखते हैं। अकादेमी के हिन्दी-प्रकाशनो को देखकर हिन्दी के पाठक उनकी सुरुचि का अनुमान लगा सकते हैं।

सुमनजी कोरे साहित्यिक ही नहीं, परखे हुए राष्ट्रकर्मी भी हैं। इसी कारण दिल्ली के काग्रेसी क्षेत्रो में भी उनका अपना विशिष्ट स्थान है। यही कारण है कि बडे-बडे काग्रेस-कर्मी भी उनका सम्मान करते हैं। वे राजधानी तथा बाहर की कई शिक्षा-सस्थाओ के सचालक और पोषक भी हैं। यों वे जन-जीवन के भीतर से प्रेरणा पाने वाले साहित्य-सेवी हैं।

उनके पास पुस्तको और पत्र-पत्रिकाओ का ऐसा दुर्लभ सग्रह है कि कदाचित् वैसा किसी साहित्यकार के यहां न होगा। व्यवस्था उनके स्वभाव की उल्लेखनीय विशेषता है। वे छोटे-से-छोटे कागज को भी करीने से सजाकर रखते हैं। खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन मे वे कलात्मक अभिरुचि रखनेवाले व्यक्ति हैं। यद्यपि पहनते खद्दर हैं, पर उसमे सुरुचि का ध्यान बराबर रखते हैं। उनका घर उनके कलाप्रिय स्वभाव का परिचायक है, जिसमे दीवारो पर लगी हुई अनेक सुन्दर कला-कृतियो के दर्शन होते हैं।

वे दिल्ली के साहित्यिक जीवन के प्राण माने जाते हैं। वे अपने मे एक सस्था हैं। मस्ती और औघट के वे मूर्त्त रूप हैं। वे चाहे दफ्तर मे हो या घर मे, सबसे प्रेम और खुले दिल से मिलते हैं। बनावट से उन्हे सख्त नफरत है। लोग चाहे जो कहें, अपने रास्ते जाना और निरन्तर साहित्य-सेवा में लगे रहना ही उनका स्वभाव है। अभिमान और दभ उनमे तनिक भी नही है, पर साहित्यकार के स्वाभिमान को चोट लगते देखकर वे तिलमिला जाते हैं। शालीनता, विनम्रता और मानवोचित सहृदयता की यद्यपि साक्षात् मूर्ति हैं, परन्तु अन्याय को वे तनिक भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे टूट जाना अधिक पसन्द करते हैं, झुकना नही। समझौता करना जैसे उन्होंने जीवन में सीखा ही नही। बिना किसी लाग-लपेट के खरी बात कहना उनका स्वभाव बन गया है। कभी-कभी अपने ऐसे निर्द्वन्द्व और स्वाभिमानी स्वभाव के कारण उन्हे काफी हानि भी उठानी पडी है, पर इससे वे रुके नही, झुके नही, निरन्तर आगे ही बढते रहे। यह कोई अत्युक्ति नही है कि दिल्ली-जैसे राजनीति के गढ मे सुमनजी-जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति यदि सम्मान और प्रतिष्ठा का जीवन जी रहा है तो वह इसीलिए कि उसे अपने दृढ चरित्र, अदम्य इच्छा-शक्ति तथा अखण्ड पौरुष मे अपार श्रद्धा तथा अनन्त विश्वास है।

राजधानी दिल्ली मे उनके समान स्वाभिमान से जीने वाले साहित्यकार गिने-चुने ही होंगे। सबसे बडी बात यह है कि उनका द्वार हर छोटे-बडे साहित्यिक के लिए खुला है। वे अपने जीवन मे कही भी छ महीने से अधिक नही टिक सके, पर वे जहां भी रहे, अपनी स्थायी छाप छोडकर आये और सभी से आज तक उनके मैत्री-सम्बन्ध कायम हैं।

एक स्वतन्त्र श्रमजीवी साहित्यिक के लिए यह बड़े ही सन्तोष की बात है। वे अजातशत्रु तो नहीं, पर उनके दबगपन का लोहा उनके विरोधी भी मानते हैं। बड़ों के प्रति श्रद्धा, समवयस्कों के प्रति सद्भाव और छोटों के प्रति स्नेह-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही उनकी संघर्ष-यात्रा का पाथेय रहा है। अब उनका जीवन इतना प्रत्यक्ष है कि उस पर और कुछ लिखना अप्रासंगिक ही होगा। प्रभु करे, यह तपस्वी साहित्यकार निरन्तर स्वस्थ और सुखी रहकर साहित्य-साधकों की नई और पुरानी पीढ़ी के सेतु का काम करता रहे।

हिन्दी-विभाग
कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

दिसापामोक्ख आचार्य 'सुमन'

श्री देवदत्त शास्त्री

विकासोन्मुख क्रान्तचेतस्

मातृभाषा, मातृभूमि और मातृसंस्कृति—तीनों सुखकारिणी स्थिर रूप देवियाँ जिसके हृदयासन पर विराजती हैं, 'चरैवेति' 'चरैवेति' जिसके जीवन का संचरण-गीत है, चिन्तन की लेखनी और चेतना की स्याही से लिखे गए जिसके अमृत भाव हिन्दी-साहित्य के आँगन में खेलते हैं, लोभी मधुपों को पहचान कर भी जो उन्हें सुकुमार बन्धन में बाँध रखता है, जो ध्वंस के शरासन पर भी सृजन का बाण रखता है और जिसने प्रज्ञा की पूर्णिमा से अन्धकार-अमावस को विदीर्ण कर अपने अस्तित्व को प्रकाशित किया है—ऐसा है क्षेमचन्द्र 'सुमन', जो अपनी बहुमुखी प्रतिभा, अपने बहुविध कर्म से 'दिसापामोक्ख आचार्य' बन गया है।

'सुमन' की प्यारभरी मुस्कराती हुई आँखों में सत्य के प्रति आग्रह, निष्ठा के प्रति हठ और पैना विवेक झाँकता रहता है। उसके व्यक्तित्व और विचारों में सरस्वती-तट-वासी सारस्वत सोमयागी ऋत्विक् 'कवष-ऐलूष' सदृश ब्रह्मवर्चस्व सिद्ध करने की क्षमता निहित है तो सारस्वतकुलोत्पन्न बाणभट्ट की-सी हस्ती, मस्ती और शालीनता है। यही कारण है कि 'सुमन' संघर्षों में बंधकर भी हर कार्यक्षेत्र को, जीवन के हर पहलू को छन्दोमय बनाये हुए है। उनकी बेफिक्री, लापरवाही, उनके आस पास के क्षितिज में कल्पना का नया चाँद उगाती है, उनकी मासूम आस्थाएँ छाती फाड़कर अँखुवा उपजाती हैं। विकासोन्मुख क्रान्तचेतस् 'सुमन' काँटों से घिरकर भी, तूफानों की चोटें सहकर भी साहित्य, संस्कृति और राजनीति की मधुमती भूमिका बन गया है।

जाग्रत योद्धा पुरोहित वंश

परिस्थिति के अनुसार ही अन्तःकरण के गुणों का अभिव्यंजन होता है। जैसे सृष्टि के प्रभात में जब धरती सूर्य से अलग हुई तो उसमें से कहीं हिमालय निकला, कहीं महोदधि, कहीं ज्वालामुखी और कहीं बड़वाग्नि निकली। इसी तरह सुमन का पुरोहित वंश अपने मूल सारस्वत प्रदेश से निकल कर मेरठ आया, आग, तूफान शौर्यशील और वैदुष्य लेकर उस वंश में जन्म लिया सुमन ने परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव लेकर।

वह शुभ वेला

शताब्दियों पूर्व सुमन के पूर्वज सारस्वत प्रदेश (पंजाब) से आकर मेरठ जिले में बस गये। जीविका, स्वभाव और आचरण से वे सच्चे अर्थों में पुरोधा थे। संस्कृति और समाज के रक्षक थे। ऐसे मनस्वी-कार्यार्थी वंश में एक दिन वह शुभ वेला आयी कि जब प० हरिश्चन्द्र सारस्वत की साध्वी पत्नी भगवानी देवी का अंचल 'सुमन' से भर गया। आश्विन कृष्ण ६, रविवार, संवत् १६७३ (१६ सितंबर, १९१६) को भगवानी देवी की कोख का सुमन जब धरती पर अवतरित हुआ तो धरती गमक उठी, दूर्वा लहरा उठी और माँ भगवानी देवी का मन वृन्दावन बन गया। पिता के मुँह से अचानक आशीर्वाद निकला

तेरा उत्थान ही हो ! उन्नति ही हो, पतन कभी न हो ! तेरे जीवन का
तेज, ओज से सम्पन्न रहे ! तू लोक के लिए, लोक तेरे लिए मंगलमय हो !

योगी अरविन्द ने अपने एक साधक को लिखा था कि "जीवन में सब प्रकार के भय, संकट और विनाश के प्रति सुरक्षित होकर चलने के लिए दो ही चीजें जरूरी हैं और ये दोनों ऐसी हैं जो सदा एक साथ रहती हैं—एक भगवती माता की कृपा और दूसरी तुम्हारी ओर से ऐसी अंतःस्थिति जो श्रद्धा, निष्ठा एवं समर्पण से गठित हो।"

निश्चय ही अरविन्द की आर्ष वाणी के अनुकूल ही सुमन को जन्म-काल से ही उपर्युक्त दोनों जरूरी चीजें वरदान के रूप में स्वतः प्राप्त हुई हैं। अपनी माता और सरस्वती भगवती की कृपा के साथ ही सुमन की अन्तःस्थिति भी श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण की भावना से गठित है।

कवि की कविसत्ता उसका जीवन लोकाश्रयी है। शैशवकाल ही में कोकिल की कूक उसके कानों में पड़ी और वह संगीतमय हो गया। शब्द-फूलों की समधुर गन्ध सहेजते-सहेजते वह 'सुमन' बन गया। धरती का इन्सान होकर भी उसने छन्दों का स्नेहोपहार दिगन्त को प्रदान किया और फिर हिमालय के शिखरों की ओर, उच्चतम लक्ष्य को ले जाने वाली दिशा की ओर दृष्टिपात किया। ज्वालापुर महाविद्यालय के सारस्वत प्रांगण में तो उसे एक चेतना मिली। शून्यता बिखर कर सौम्यता में परिणत हो गई, कल्पना को नये पंख मिले। साधना को नये स्वर मिले और आँसुओं में पला स्नेह प्रेरणा की कला बन गया।

क्षेमचन्द्र का बचपन उस खगशावक का सा रहा जिसके पख नही निकले, किन्तु वह बोलता और गाता था। अभाव, दीनता और तप के अचरा मे पलता हुआ उसका हृदय झकार-स्वर भरकर मिट्टी मे स्वर भरा करता था। वह खिले हुए प्रसूना से मुस्कराता था, मुरझाये फूलो को दुलराता था, झरनो मे हँसता इठलाता था और हरे-भरे खेतो मे घुसकर गाता था। वह मन-ही मन दिल के अन्दर का स्वर सुनता, पथ के काँटो को चुनता और करुणा की चादर बुनता था। तभी तो स्कूल से निकलकर अपने सच्चे साथियो को साथ लेकर वह बाबूगढ के कम्पनीबाग को उजाडता और अँगरेज बच्चो को पकड पकड कर उनकी मरम्मत कर ओझल हो जाता था।

ब्रिटिश शासनकाल का जलजला था। पराधीनता के विरुद्ध दुर्निवार अधड उठ रहा था। दिग्वधुएँ ध्वान्त-भ्रान्त हो रही थी, दमन अधकार प्रसार धरती-अम्बर को निगल सा रहा था। अबोध बालक क्षेमचन्द्र की चेतना की परतें उघर रही थी। जीवन का सहज धर्म उसको सँभाल रहा था। स्वाधीनता-सग्राम की घटाएँ घिरकर बरस पडी तो माटी महक उठी। उस सोधी महक ने कक्षा चार के विद्यार्थी क्षेमचन्द्र को विवश बना दिया, कक्षा छोडकर वह महात्मा गाधी के दर्शना के लिए बाबूगढ से हापुड के लिए उलटे पाँव भाग चला। रास्ते मे उसके सपनो की फूली हुई गुलमोहर ने उसकी साँसो मे महावर रच दी। वह क्वारी अर्चना लिये महात्मा गाधी के चरणो की धूलि स्पर्श कर फिर लौट पडा। रास्ते मे एक हलवाई की दूकान की भट्टी मे सिकुड कर उसने जाडे की रात बिताई। रात भर, रास्ते भर वह महात्मा गाधी के उपदेश को घोखता रहा, रटता रहा, स्मरण करता रहा

"सब मनुष्य समान हैं न कोई ऊँच है न कोई नीच। सघर्ष और अशान्ति को दूर करने का एक ही उपाय है, धन का समान वितरण हो, सभी व्यक्ति पुरुषार्थ मे रत हो, एक-दूसरे की सहायता करे।"

बालक क्षेमचन्द्र के लिए यही दीक्षा मत्र था, बीज मत्र था, जिस पर आस्थावान बनकर वह आज प्रौढावस्था मे भी मनन करता है, आचरण करता है। यही आस्था-बीज उसके गुरुकुल प्रवेश का मूल कारण था।

आस्थाओ की पगडडी पर चलकर बालक क्षेमचन्द्र गुरुकुल ज्वालापुर मे प्रवेश पाता है आस्था के बल पर, सकल्पशक्ति के आधार पर। मेधा के शिखर पर आरूढ क्षेमचन्द्र को पहचाना गुरुकुल के मनीषी आचार्यों ने और उस निर्लेप, साधनविहीन किन्तु आस्थावान् छात्र को प्रविष्ट करने के लिए गुरुकुल के परपरागत नियम विधान के सारे बधन तोड दिये गए। क्षेमचन्द्र गुरुकुल मे ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर विद्याध्ययन करने लगा तो उसकी सहज प्रतिभा प्रदीप्त हो उठी। उसके अन्दर का मानव मुखर हो उठा। वह

रह-रहकर सोचता था कि जगती का रोम-रोम अनुपम आह्लाद की रस-धारा में डूबा है। व्यर्थ की दीनता और मलिनता को झकझोर कर फेंक दे। शिवालिक की पहाड़ियों पर उड़ते हुए धुएँ के बादलों की कतार, आवर्तों की धुँधली रेखाएँ उसे संवेदनहीन लकीरें-सी जान पड़ती थीं। वह कुण्ठाओं के पत्थरों से बन्द गुफा से निकलकर मुक्त वातावरण में विहार करने के लिए छटपटाया करता था। ज्योति के शुभ्र शिखर पर बैठे हुए आत्मजयी से मिलने की उत्कण्ठा ने उसे कवि बना दिया और 'सुमन' उपनाम से वह गीति-काव्य लिखने लगा।

सुमन की कविता मातृमुखी अभीप्सा ही रही। वह उज्ज्वल, उच्छल, मधुर, प्रगाढ़, प्रखर, शालीन और स्वच्छ 'श्री ह्री कली' है। वस्तुतः सुमन को जो गतिमयता मिली है वह उसके कवि की देन है। सुमन की काव्य-चेतना कभी अन्तर्मुखी नहीं रही है। उसमें माधुर्य है, तीव्र करुण है, विस्फोट और विप्लव है अवश्य, किन्तु आस्फोट या आडम्बर नहीं। वह सहज और स्वच्छन्द है। सुमन का कवि दीप राशि का शुक्रतारा है तो कविता सरस्वती के पायल से पसारी गई रागिनी है।

'सुमन' का व्यक्तित्व उसके माता, पिता और गुरुकुल के आचार्यों के विचारों और संकल्पों का संघात है। माता ने 'सुमन' के हृदय को तरल बना कर स्वभाव में शैशव का भोलापन भरा, पिता ने मनस्वी और कार्यार्थी बनाया और गुरुकुल ज्वालापुर के आचार्यों ने मनीषी बनाया। युग-धर्म निभाना, वर्तमान और भूतकाल के साथ समझौता कर लेना 'सुमन' का स्वाभाविक शिल्प है। 'सुमन' के रहन-सहन, चाल-ढाल और उसकी हर अदा में कला, संस्कृति और साहित्य की त्रिवेणी प्रवाहित रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्य इसका शरीर है, संस्कृति इसका प्राण है, जब तक इन दोनों को यह अजातशत्रु अपनाये रहेगा, संसार की कोई शक्ति इसे पराजित नहीं कर सकती।

'सुमन' आजीवन कृतज्ञ रहेगा अपने उन पुण्यश्लोक आचार्यों का जिन्होंने ज्ञानांजन-शलाका से सुमन के अज्ञान-अन्धकार को दूर कर अभिनन्द्य बनाया। गुरुकुल महाविद्यालय के आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा ने 'सुमन' को हिन्दी-साहित्य-सरोवर का नीर-क्षीर-विवेकी राजहंस बनने का वरदान दिया तो आचार्य शुद्धबोध तीर्थ ने शब्द-संयम, शब्द-निरुक्ति और भाषाशास्त्री बनाने का सफल प्रयत्न किया। गुरुकुल ने साहित्य, राजनीति, संस्कृति, पत्रकारिता की अमियवारि से अभिषिक्त कर सुमन को साहित्य रचना की रणभूमि में जब उतार दिया तो आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० नाथूरामशंकर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, जगन्नाथदास रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न ने, जूझने के लिए नहीं, विजेता होने का आशीर्वाद देते हुए विचारों, तर्कों, भावों और शिल्प के अमोघ अस्त्र प्रदान किये। उन्हें प्राप्त कर क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में जो रचनात्मक युद्ध छेड़ा तो कवि, पत्रकार आलोचक, सम्पादक, भाषासंशोधक और निबंधकार के रूप में ख्यात होकर वह अब हिन्दी-साहित्य

द्वारा अभिनन्दित, अभिवन्दित हो रहा है।

गुरुकुल में रहकर छात्रावस्था में ही 'सुमन' ने 'सुधांशु' नाम का हस्तलिखित मासिक पत्र संपादित प्रकाशित कर भविष्य में सफल पत्रकार बनने की आशा-ज्योति जलाई। आचार्यों और सहपाठियों ने पूत के पाँव पालने में उसी समय देखकर पहचान लिया था।

अपने गुरुकुल के छात्रों को संगठित कर क्षेमचन्द्र ने 'आर्यकिशोर सभा' स्थापित की और जबतक गुरुकुल में आवास रहा तब तक स्वयं उसके मंत्रिपद पर अवस्थित रहा। आर्यकिशोर सभा के सदस्य और आचार्यगण सुमन के कृतित्व के आधार पर इसे 'नेता' और 'संपादकजी' कहकर संबोधित किया करते थे। छात्रावस्था का यह नेता आगे चलकर लाहौर की राजनीति का ऐसा नेता बना कि पंजाब सरकार की नींद हराम हो गई। ब्रिटिश नौकरशाही ने अंत में नेता क्षेमचन्द्र को पंजाब बदर कर दिया। और नेताजी होने के साथ ही 'मनस्वी', 'मिलाप', 'आर्यमित्र' जैसे अनेक मासिक, दैनिक, साप्ताहिक पत्रों, समाचार-पत्रों का संपादन कर क्षेमचन्द्र ने अपनी पत्रकार-प्रतिभा का जो परिचय दिया उससे उसका छात्रावस्था का 'संपादकजी' संबोधन सार्थक हो गया। कवि के रूप में ख्यात 'सुमन' की कविता को मुखर बनाने और अभिव्यक्त करने में आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी तथा डॉ० हरिशंकर शर्मा कविरत्न और कानपुर के मासिक 'सुकवि' का प्रोत्साहन स्तुत्य रहा है।

रक्त-मंथन हलाहल के चषक

संकल्पशक्ति को जीवन यात्रा का संबल बनाकर, कर्मयोग को पाथेय बनाकर, आत्मीयता और शिष्टता को सफलता का साधन मानकर 'सुमन' ने जीवन संघर्षों को अपनाकर जो सफलता पाई है, उससे ऐसा जान पड़ता है कि यह शख्स जनम जनम का विषपायी है, नीलकण्ठ बनकर गरलपान करना ही इसके जीवन का ध्येय बन गया है। साँसों के चंचल समीर में भी जिसने जीवन दीप जलाया, प्रत्यवायों की हिमानी में भी जिसने अपने आशा-कुसुम को हरा-भरा रखा, श्रम के सागर में उठती हुई हिंस्र लहरों को देखकर जो ब्रिटिश शासन का विद्रोही बना, उस सुमन के प्राणों के कण-कण में असमानता और रूढ़ियों ने पीड़ा कस दी है। यही कारण है कि वंशपरम्परागत पौरोहित्य वृत्ति से वह सदा दूर रहा, आर्यसमाज के वातावरण में पलकर पढ़कर भी वह रूढ़िवादी आर्यसमाजी न बन पाया, जाग्रत स्वाभिमान ने अध्यापक-पद से भी विरत किया। पत्र-संचालकों की गोमुखव्याघ्रतापूर्ण रीति-नीति ने पत्रकारिता के क्षेत्र से भी विरत किया, फिर भी सुमन रक्त मन्थन करता हुआ, हलाहल का चषक पीता हुआ, बढ़ता रहा, चढ़ता रहा। पीछे मुड़ना तो दूर रहा, मुड़कर पीछे देखना भी क्षेमचन्द्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है। जीवन के लक्ष्य और जीविका की खोज में सुमन गुरुकुल का स्नातक करने के बाद में लेकर सन् १९४५ तक भटकता रहा। राजनीतिक विद्रोही होने से राजनीतिक बन्दी-जीवन की

त्याग सही, विवाहित होने के कारण पत्नी तथा माता आदि परिवार के पोषण के लिए अलख जगायी, विपत्तियों और संघर्षों की छाती पर पैर रखकर निरन्तर चलता रहा, थका नहीं, हारा नहीं, झुका नहीं, टूटा नहीं, बल्कि हर अग्निपरीक्षा में प्रतप्त विशुद्ध चामीकर साबित हुआ। स्वाभिमान और स्वावलंबन — ये ही दो सुमन के हमराही है, साहित्य साधना और राष्ट्रीय सेवाव्रत यही सुमन के जीवन के लक्ष्य हैं। अपने लक्ष्य तक पहुँचने में इस अदम्य व्यक्तित्व को किशोर-वय से लेकर तरुणाई तक जिन आपत्तियों-संघर्षों का सामना करना पड़ा उन्हें कोई असाधारण व्यक्ति ही झेल सकता है। संघर्षों और विपत्तियों ने ही सुमन के व्यक्तित्व को चतुर्मुख और उसके कृतित्व को सहस्रपाद बनाया। इस मेधावी व्यक्तित्व ने लेखनी उठाई थी हिन्दी की अस्मिता बढ़ाने के लिए, किन्तु आज यह स्वयं हिन्दी की अस्मिता बन गया।

बाबूगढ़ (मेरठ) की धरती की सोंधी महक, कनखल-हरिद्वार की गंगा की चटुल तरंगों का संगीत, शर्पणावत (शिवालिक) पर्वत का अदम्य स्वाभिमान, पंजाब के भगतसिंह के बलिदान का गर्व और भवभूति का करुण रस लेकर वह जीवित है, जीवित रहेगा, यश शरीर से अजर-अमर बनेगा।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' की जिन्दगी एक खुली हुई किताब के समान है, उसे कोई पढ़ सकता है। वह अनबूझ पहेली नहीं है। इसकी जिन्दगी के भिन्न-भिन्न प्रसंगों घटनाओं की सृष्टि यथार्थ और निसर्ग के धरातल पर हुई है। सुमन की जीवन-कहानी हवा के झोंकों द्वारा सर्वत्र बिखरायी गई है, उसे चुन-चुनकर अक्षरों पर फूलों की पंखुरियों की तरह सजाकर संस्मरण-ग्रन्थों, जीवनी-ग्रन्थों में रखना आनेवाली पीढ़ी और मौजूदा संवेदनशील साहित्यकारों का कार्य है। इस समय जबकि ये पंक्तियाँ मैं लिख रहा हूँ तो मेरा लेखक व्यक्तित्व सिहर उठता है। दर्दीली मुस्कान होठों पर मजबूरी बनकर काँप उठती है और जब सुमन की इस संक्षिप्त कहानी को पाठक पढ़ेंगे तो दाँतों में अटके हुए तिनके-सी यह कहानी उनके दिलों में अटककर रह जाएगी।

'सुमन' के सैकड़ों मित्रों, परिचितों, शुभचिंतकों से मैं परिचित हूँ किंतु सुमन की नस-नस, नाड़ी नाड़ी और समूचे अंतरतल में इसका एक ही मित्र समाया हुआ है, वह है स्व० रूपनारायण। आह! रूपनारायण-जैसा भाई, मित्र, स्वजन, सुहृद् अब स्वर्गीय बन गया। वह जीवन और मर्म की थाह लेना नहीं, मित्र के व्यक्तित्व और विचारों में समा जाना ही अपना कर्तव्य समझता था। क्षेमचन्द्र और रूपनारायण दो शरीर किंतु एक प्राण-से प्रतीत होते थे। क्षेमचन्द्र 'सुमन' बनकर साहित्य देवता का यदि शृंगार है तो रूपनारायण 'सुमन' की सुगन्ध था।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' को अनेक मर्मान्तक वेदनाओं ने अपने आघात प्रतिघात में जर्जर और निष्क्रिय बनाने की चेष्टाएँ कीं। किंतु वह अपने विवेक, अपनी संस्कारिता, अपनी ओजस्विता के कारण पराजित न होकर संवेदनशील साहित्यकार बनकर स्वाधीन भारत

की साहित्य अकादेमी का अभिन्न अंग बन गया। 'सुमन' और कुछ नहीं, महज इन्सान है। उसमें और कोई गुण नहीं, कोई खूबी नहीं सिवाय इन्सानियत के, इसीलिए वह इन्सान को भगवान समझकर पूजता है। ईमान और इन्सानियत की सरजमीं पर खुद बीज बनकर बो जाने के लिए सुमन का अन्तर निरन्तर आकुल रहा करता है। संभावनाओं पर आस्था रखकर आस्थाओं की पगडंडी को नये राजपथ का रूप देना, समयदेवता के गतिचक्र में नये संकल्पों की धुरी बैठाना अग्निपथ के पथिक सुमन की स्वाभाविक वृत्ति है। तूफान के नखों पर चमकती हुई बिजलियाँ उसे अन्धकार में मार्गदर्शन कराती है। दिल्ली में रहकर अनगिनत सरिताओं का जल पीकर वह अपनी मर्यादा में बँधा हुआ वारिधि बन गया है। क्षितिज में घिरा रहता है फिर भी अपना विस्तार करता जाता है। विश्वासों के शतदल खिलाकर वह जो सुगन्ध बिखेर रहा है उसी सुगन्ध में वह दिसापामोक्ख आचार्य बन गया है। उसके विकसनशील-स्नेहशील व्यक्तित्व, उदात्त-सर्जनशील विचारों और बहुविध कृतित्व का अभिनन्दन करते हुए हम 'सुमन' के प्रति अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करते है—

> उद्यानं ते पुरुष नावयानं
> जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
> आ हि रोहेममृतं सुखं रथम्
> अथ जिर्विर्विदथमावदासि ॥

—हे पुरुष! तेरा उत्थान ही उत्थान हो, पतन कभी न हो! तेरे जीवन को बल से युक्त करता हूँ। इस अमृतयुक्त सुखकारी रथ पर आरूढ हो, फिर जीर्ण होकर वृद्धावस्था में भी सुमन का प्रचार करता रह!

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग



श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'
(१९६६)

व्यक्तित्व

सुमनांजलि

डॉ० हरिशंकर शर्मा

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' सफल साहित्यकार, प्रतिष्ठित पत्रकार, निष्पक्ष आलोचक और स्वाभाविक सुकवि हैं। अध्यापन-कार्य में भी आपकी कुशलता रही है। मेरा तथा सुमनजी का पुराना परिचय है—उस समय का जब वे गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में अध्ययन करके साहित्य-सेवा में प्रवृत्त हुए थे। अर्थात् सन् १९३९ ई० में आप मेरे पास आगरा आये और यहाँ 'आर्य-सन्देश' और 'आर्यमित्र' नामक साप्ताहिक पत्रों के सम्पादन में अपना अनन्य सहयोग दिया। आगरा आने पर सुमनजी से मेरा और भी घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। सुमनजी की लेखन शैली प्रारम्भ से ही बड़ी सुन्दर एवं सजीव थी, कविता में भी सरसता थी। यहाँ से जाकर सुमनजी ने 'मनस्वी' और 'शिक्षा-सुधा' आदि पत्रिकाओं का सुयोग्यता से सम्पादन किया। लाहौर से प्रकाशित होनेवाले दैनिक 'हिन्दी मिलाप' के सह-सम्पादक रहे। इस पत्र में आपने बड़ी निर्भीकता और निष्पक्षता से लेख लिखकर, तत्कालीन अंग्रेज सरकार की युक्तियुक्त उग्र आलोचना की थी। फलतः आप सन् १९४२ के आन्दोलन के सिलसिले में पंजाब-सरकार द्वारा नजरबन्द होकर दो वर्ष कारागार में रहे और फिर पंजाब प्रदेश से सरकार ने इन्हें निष्कासित कर दिया। वहाँ से आप अपनी जन्मभूमि बाबूगढ़ (मेरठ) में आये तो उत्तरप्रदेशीय सरकार ने भी आपको बाबूगढ़ में नजरबन्द कर दिया। वहाँ से वे बाहर कहीं न जा सकते थे, और न लेखनी या वाणी द्वारा प्रचार ही कर सकते थे। इस प्रकार के झंझटों से मुक्ति मिलने पर जुलाई १९४५ से सुमनजी ने अपना कार्य-क्षेत्र दिल्ली नगर को बनाया और यहाँ साहित्य-निर्माण और राष्ट्र-सेवा का कार्य प्रारम्भ किया।

सुमनजी ने अब तक पचास से अधिक पुस्तकों का प्रणयन किया है। इनमें कविता-कृतियाँ और आलोचना-सम्बन्धी ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। कई ग्रन्थों पर तो उन्हें पुरस्कार भी मिले हैं।

श्री सुमनजी जहाँ उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार हैं, वहाँ राष्ट्र-भक्त भी हैं। कुछ काल पूर्व आपने 'भारतीय साहित्य-परिचय माला' का सम्पादन करके राष्ट्रीय एकता के निमित्त महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया था। इस पुस्तकमाला के अन्तर्गत विविध प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य पर प्रकाश डालनेवाली अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अभिप्राय यह कि सुमनजी द्वारा रचित साहित्य, साहित्य की परिभाषा में ठीक उतरता है। 'हितं

विहित सत्साहित्यम्' जिसमें हित छिपा हुआ है वही 'साहित्य' है। आपकी कविताएँ श्रेष्ठ एवं चमत्कारपूर्ण हैं। सुमनजी 'साहित्य-सेवाक्षेत्र' में अवतीर्ण होकर उत्तरोत्तर सफल ही होते रहे हैं। ऐसे सफल साहित्यकारों की कृतियों से राष्ट्रभाषा की गौरव गरिमा सदा ही बढ़ती रहेगी। श्री सुमनजी की पचासवीं जन्म-जयन्ती पर मैं उन्हें बड़े भाई के नाते हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ और परम प्रभु परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि भाई सुमनजी शतायु हों—चिरायु हों और सब प्रकार के सुखों से सम्पन्न होकर साहित्य एवं राष्ट्र की सेवा में सदैव सोत्साह संलग्न रहें तथा अधिकाधिक यश अर्जित करें।

शंकर-सदन
लोहामण्डी, आगरा

'शील' और 'सौजन्य' का नायाब 'नूर'

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह

'सुमन जी का जो स्थान हिन्दी-साहित्य में कर्मठ साधक के रूप में है वह किसी भी साहित्य और साहित्यकार के लिए गौरव की बात है। उनका कर्मशील जीवन और सौजन्यशील व्यक्तित्व सहज ही उनके आसपास के लोगों पर अपना एक असाधारण असर छोड़ता है और दूर के लोग भी, जो एक बार भी उनके किसी तरह के सम्पर्क में आये, उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके।

साहित्य-सर्जन का जो महत्त्व है उसे तो आपने अपनाया ही है, साहित्यकार-सर्जन और साहित्य-सेवा की साधना को एक सफल आन्दोलन का रूप देने में भी आपका हाथ कुछ कम नहीं रहा है। भारत सरकार की हिन्दी साहित्य सम्बन्धी प्रवृत्तियों में आपका योगदान अपनी एक खास जगह रखता है और सुमनजी-जैसे ही कुछ लोग हैं जो हिन्दी की लौ को राजनीति की आँधी के बीच भी जुगाए लिये चल रहे हैं।

सुमनजी से मैं जब जब भी मिला, उनके शील सौजन्य और साहित्य प्रेम का कुछ ऐसा नायाब नूर नजर आया जिसके असर से मुझे स्वयं अपनी लेखनी को कुंठित न होने देने की प्रेरणा मिली।

मैं तो अब सत्तर के पार पहुँच गया। सुमनजी पचास के पास है। अपनी आगे की जिन्दगी में कुछ जोड़ पाता तो मुझसे अधिक खुश कोई न होता। और, मुझे पूरा भरोसा है, सुमनजी साहित्य की वाटिका में फूले फिले रहकर अपने सौरभ से समग्र साहित्य संसार को सदा सुवासित करते रहेंगे।

बोरिंग रोड, पटना

समानतीर्थ सुमनजी

श्री उदयवीर शास्त्री

सुमनजी एक लोकप्रिय साहित्यकार पत्रकार हैं, बड़े हँसमुख हैं, उनका सार्वजनिक जीवन अनुकरणीय है इतना ही नहीं बल्कि बहुतों के लिए रश्क पैदा करने वाला है। जब भी वे अपने कार्यक्षेत्र में निकल जाते हैं लोग अपनी सब तरह की शिकायतें निःशंक होकर उनके सामने पेश करते हैं, इस आशा में कि हमारी शिकायतें अब ऐसी जगह पहुँच गई हैं जिन्हें दूर करने के लिए अवश्य प्रयास होगा।

सुमनजी साहित्य अकादेमी में उच्च सम्मान्य पद पर कार्य करते हैं, या साहित्य की सेवा करते हैं इत्यादि बातें सुमनजी के विषय में बड़ी साधारण हैं, जगजानी हैं।

सुमनजी से मेरा परिचय बहुत अधिक पुराना नहीं है। मेरी कोई नाते-रिश्तेदारी नहीं है, परिवार-बिरादरी नहीं है पर जो कुछ है वह इस सब को लाँघकर गहरी जड़ों पर टिका है। वह लौकिक होते हुए भी अलौकिक है, कौटुम्बिक न होते हुए भी उसके महत्त्व को फीका कर देता है। अभिधानिकों ने समान तीर्थ में निवास करने वालों के ऐक्य को बहुत महत्त्व दिया है। जिन गुरुओं के चरणों में बैठकर मैंने दो अक्षर सीखे, सुमनजी को भी वही अवसर पूर्णरूप से प्राप्त हुआ है।

एक विशेष आयु होने पर ही बच्चे गुरुकुलों में प्रवेश पाते हैं। सुमनजी ने भी किसी तरह गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में प्रवेश पाया। सम्भव है, इस अवसर पर कोई विशेष घटना घटी हो, क्योंकि उन दिनों गुरुकुलों में अध्ययन के लिए प्रवेश पाना कुछ अधिक आसान नहीं था। यथावसर इन्होंने अपना अध्ययन पूरा किया।

सुमनजी भी अध्ययन पूरा करने के अनन्तर कहीं अपने कार्यक्षेत्र में संलग्न होंगे। तब तक मैं सुमनजी से सर्वथा अपरिचित रहा। देश विभाजन के कई साल बाद महाविद्यालय ज्वालापुर के वार्षिक उत्सव पर मेरा जाना हुआ। वहाँ बाद के कतिपय स्नातकों से मेरा प्रथम परिचय हुआ। उसके कुछ वर्ष बाद दिल्ली में सुमनजी से व्यक्तिगत मुलाकात का अवसर मिला। मुझे याद है, उन दिनों ये राजकमल प्रकाशन में कार्य कर रहे थे। एक-दो बार वहीं कार्यालय में भेंट होती रही। इनके साहित्य सर्जन की अभिरुचि ने मुझे अधिक आकृष्ट किया और महाविद्यालय गुरुकुल के स्नातक होने के नाते यह परिचय भ्रातृ-स्नेह में परिणत हो गया।

गुरुकुल संस्थाओं के अधीन छात्रों में सर्वत्र ही यह भावना अभी तक अपने पैर जमाये है। सम्भव है, वहाँ की पुरातन प्रणाली का वातावरण इसमें अधिक सहायक रहता रहा हो, हृदय में एक अपूर्व आकर्षणयुक्त गुदगुदी उठ आती है। इकट्ठे पढ़ना, निभना, आमों के पन और जामुन के स्याह गुच्छों की, पिचकारीभरी मौज बाल्यकाल की निर्द्वन्द्वता

की याद कराती रहती है। गंगा की बडी नहर मे इकट्ठे तैरना, किलोलें करना, घटों तक चलने वाली यह जल क्रीडा, रेलवे-पुल के ऊपर चढकर नहर मे कूद जाना आदि उस अवस्था की निर्भयता का जब स्मरण आता है, तो आज रोंगटे खडे हो जाते हैं। ऐसे खुले वातावरण मे पढे-पले छात्रो का परस्पर भ्रातृ-स्नेह फूट पडना कोई अनोखा नहीं है। ऐसी सस्थाओ से सम्पर्क ही इन भावनाओ को प्रस्फुटित कर देता है।

दिल्ली मे मुलाकात के बाद अनजाने मे प्रसुप्त उन भावनाओ के उभर जाने पर भी सुमनजी से मेरी भेट बहुत कम हो पाती है। पर जब कभी सुनता हूँ या किसी दैनिक मे पढता हूँ कि सुमनजी की अध्यक्षता मे अमुक कवि-सम्मेलन हो रहा है, साहित्य-चर्चा चल रही है, किसी विद्यालय का प्रबन्ध-भार सँभाल लिया है, आदि अनेक प्रकार के प्रसगो मे सुमनजी का सम्मान्य सहयोग देखकर एव जनता की उनके प्रति आश्वस्त भावना जानकर छटाँक खून बढ जाता है, अप्रतिम उल्लास के साथ उन क्षणो का स्मरण करता हूँ।

सुमनजी की पचासवी वर्षगाँठ पर उनके चतुरस्र अभ्युदय की कामना करता हूँ।

बड़ी होली, गाजियाबाद

भारतीयता के उपासक

आचार्य विनयमोहन शर्मा

आधुनिक हिन्दी साहित्योद्यान मे 'सुमनो' की कमी नही है। देश के विभिन्न स्थान उनमे सुरभित हो रहे है पर प्रयाग, अलीगढ, उज्जैन और दिल्ली के 'सुमन' अपनी विशिष्ट सुगन्ध के कारण व्यापक कीर्ति-भागी हुए हैं। प्रयाग के 'सुमन'[1] प्रसाद-साहित्य के मर्मज्ञ, अलीगढ के 'सुमन'[2] भाषा-विज्ञान के विशेषज्ञ, उज्जैन के 'सुमन'[3] गीति-अगीति-मुक्तकाव्य के स्रष्टा और दिल्ली के 'सुमन' विभिन्न साहित्य-विधाओं और प्रवृत्तियों के पोषक के रूप मे ख्यात है। उनका नाम श्री क्षेमचन्द्र है, पर व्यवहार मे वे केवल 'सुमन' या 'सुमनजी' हैं। उनका उपनाम उनके कवि होने की सूचना देता है। उनका साहित्य-जीवनारम्भ कविता से ही हुआ जान पडता है। अधिकाश लेखक काव्य-आराधना मे ही साहित्य-मन्दिर मे प्रविष्ट होते हैं। धीरे-धीरे भावना का ज्वार उतरने लगता है—कविता का 'आलम्बन' ओझल होने लगता है और ज्ञान की पिपासा

१. श्री रामनाथ 'सुमन'
२. डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
३. डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'

तीव्र होने लगती है। मन संसार को समझने के लिए व्यग्र होने लगता है। ज्ञान विज्ञान के साहित्य के प्रति रुझान बढ़ने से उसी का साहित्य निर्मित होने लगता है। 'सुमनजी' के साहित्यिक विकास में भी इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उन्होंने विविध विषयों पर सुपाठ्य निबन्ध लिखे है। कुछ तो ऐसे भी हैं जिनमे उनका व्यक्तित्व उभर आया है। अनुभवो को हास्यपूर्ण शैली में व्यक्त करने की कला मे वे निपुण जान पड़ते है। सहृदय होने के कारण उन्होंने सरस काव्य-संग्रहो का सम्पादन किया है और हिन्दी साहित्य के भावी इतिहासकारो के लिए सामग्री प्रस्तुत कर दी है। सामयिक साहित्य का सम्यक् ज्ञान होने से उन्होंने साहित्यालोचन और साहित्य-विवेचना की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ भी भेंट की है जिनसे साहित्य के विद्यार्थी लाभान्वित होते रहते हैं। देश की सभी भाषाओं के साहित्य से हिन्दी पाठको को परिचित कराने की दृष्टि से उन्होंने उनके संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित किये हैं। राष्ट्रभाषा की सेवा मे सतत रत रहकर सुमनजी ने साहित्य-जगत् मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। वे व्यक्ति के नाते अत्यन्त विनम्र, श्रद्धालु और भारतीयता के उपासक हैं। यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि वे जीवन की अर्ध-शती व्यतीत कर चुके हैं। वे उपनिषद्कार के निम्न उपदेश को कार्यान्वित करने मे सफल हों, यही कामना है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

मुक्त और प्रसन्न

श्री मुकुटबिहारी वर्मा

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' राजधानी के साहित्यिकों मे एक परिचित और सक्रिय व्यक्ति है। साहित्य अकादेमी मे कार्य करने का लाभ तो उन्हे है, पर खासकर अपनी सक्रियता और बहुमुखी प्रवृत्तियो के कारण विविध क्षेत्रों मे उनका प्रवेश है। खादी की टोपी और धोती-कुर्ते के साथ जवाहर-जाकट मे यहाँ-वहाँ अनेक स्थलों पर उनका साक्षात्कार होता है। मन मे उनके कुछ भी हो, या अन्दर कोई व्यथा ही क्यों न हो, पर दिखाई हमेशा खुश ही देते और बातचीत भी बड़े मुक्तभाव से करते हैं। उनके ऐसे गतिशील व्यक्तित्व को देखते सहसा विश्वास नहीं होगा कि वह अपने जीवन

के पचास वर्ष पूरे कर चुके हैं, लेकिन जब स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही है तो इस तथ्य को स्वीकार करना ही होगा।

पचास वर्ष की अपनी आयु में आज वह जैसे साहित्यिकों के बीच गतिशील हैं, लेखकों और प्रकाशकों दोनों में उनकी पूछ है, दिल्ली की एक बस्ती में जिस तरह अपना मकान बनाकर वह आबाद हुए हैं और सभी क्षेत्रों में जिस तरह उन्होंने पैठ कर रखी है उसके कारण लोग उनसे ईर्ष्या करें तो आश्चर्य नहीं। पर कम लोग यह जानते होंगे कि सुमनजी का प्राप्तव्य अनायास नहीं है बल्कि उसके पीछे जीवन की कठिनाइयों, बलिदान और लगन का एक लम्बा रास्ता छूटा हुआ है, जिसे पार करके ही वह आज की स्थिति पर पहुँचे हैं।

सुमनजी से मेरा परिचय चाहे बहुत घनिष्ठ न रहा हो, पर सम्भवतः उनके दिल्ली आने के समय से ही है बल्कि सुमनजी की कृपा से इस बात का स्मृतिबोध भी हुआ कि बयालीस की आँधी में ('करेंगे या मरेंगे' के राष्ट्रमुक्ति के संघर्ष में) जब वह पत्रकारिता के सक्रिय जीवन से अलग करके सरकार द्वारा अपने गाँव में नजरबन्द कर दिये गए थे तब उनका मुझसे पत्र-व्यवहार हुआ था और 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक की हैसियत से मैं उनके कुछ काम भी आया था। उस समय का जो विवरण मालूम हुआ उससे यह जानकर उनके प्रति मेरी भावना ऊँची ही हुई कि वह कोरे साहित्यिक नहीं हैं बल्कि प्रबल राष्ट्र-भक्त भी हैं और राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए उन्होंने जो कष्ट सहन किये हैं, उनमें उनके स्वदेश के प्रति त्याग और बलिदान के अदम्य भाव का परिचय मिलता है। वस्तुतः उनका यह रूप, मेरे लिए, उनके साहित्यिक रूप से उत्कृष्ट और अधिक वन्दनीय है।

ऐसे 'वर्चस्वी मनस्वी' की स्वर्ण-जयन्ती पर उनके यशोविमल भविष्य की कामना करते हुए मैं उनसे चाहूँगा कि अपनी मुक्तता और प्रसन्नता से ही अपना साहित्य और अपने आसपास का वातावरण उत्फुल्ल करते रहें।

सुमनजी दीर्घजीवी हों और साहित्य तथा देश को उनकी देन अधिकाधिक मिलती रहे, यही सर्वशक्तिमान भगवान् से मेरी प्रार्थना है।

दुगल् बिल्डिंग,
रोशनआरा रोड, दिल्ली ७

क्षेम—जैसा बाहर, वैसा भीतर

आचार्य हरिदत्त शास्त्री

बीस साल से कम पुरानी बात नहीं पर लगती है कल की सी। दिल्ली में एक मोहल्ला है—हिन्दूराव का बाड़ा यह सदर को पार करके पड़ता है। इस बाड़े की शुरुआत में दाईं ओर एक गली जाती है जिसके सिरे पर एक दूध वाले की दूकान है। उस गली के ही ऊपर जाकर कुछ दूर पर क्षेमजी का मकान था। मैं उनके मकान की खोज में गलियों में चक्कर काट रहा था। उन दिनों सुमनजी दिल्ली में पैर जमाने की इच्छा से आये ही थे। शायद उन्हें भी यह स्वप्न न होगा कि मैं कभी साहित्य अकादेमी का एक प्रमुख अंग बनकर हिन्दी-साहित्य की सेवा करूँगा तथा स्वर्गीय प्रधान मन्त्री नेहरू के साथ चित्रांकित किया जाऊंगा।

हाँ तो मैं एक दिन प्रात क्षेमजी की खोज में इधर उधर भटकता फिरता था कि गर्मी के कारण और बगल में लगे बैग के बोझ से मेरा आवेग उद्वेग और आवेश बन गया था। फिर भी हिम्मत न हार कर मैं आगे ही बढ़ता गया। गली को पार करके दूसरे किनारे पर हाथीखाने के पास क्षेम का मकान था। बड़ी मुश्किल से उसको पाया। जाकर देखा तो भोजन बन रहा था। श्रीमती क्षेम चौके-चूल्हे की व्यवस्था में लगी थीं। क्षेम कागजों के पुलिन्दों में उलझे रहे थे। इस सर्वसहा गृहलक्ष्मी ने क्षेम के जेल जीवन में, साहित्य की उपासना के धक्कों में, सम्पादक बनने की धुन में या लेखक बनने की कशमकश में जो असह्य कष्ट झेले हैं सम्भवत वही क्षेम के उत्तरोत्तर विकास की बुनियाद है। वह अधिक पढ़ी लिखी नहीं, किन्तु गुणी अवश्य है। योगियों के अगम्य सेवा-धर्म की मर्मज्ञा है। गरीबी और अमीरी के भले और बुरे दिन देखे हैं। अतिथि-सेवा में जाम्बवती से पीछे नहीं तथा क्लेश-सहिष्णुता में राणा प्रताप की अनुयायिनी है। क्षेम के घर पर अतिथियों का ताँता लगा रहता है। रात के बारह बजे भी कोई आ जाये तो वे उसे ताजा भोजन देने को तैयार रहती हैं। निश्चय ही क्षेम की सफलता का श्रेय उसकी सती साध्वी धर्म-पत्नी की सहयोगिता में अन्तर्निहित है।

क्षेम का बाल्यकाल ग्राम में बीता। उसके बाद महाविद्यालय-गुरुमाता की गोद में लालन पालन पाया। गरीबी के झटके और यन्त्रणाएँ उसे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए रोक न सके। उसकी प्रतिभा का विकास छठी व सातवीं श्रेणी में प्रतीत होने लगा। जिसके कारण वह ब्रह्मचारियों की आर्यकिशोर सभा के मुख पत्र 'किशोरमित्र' का रजत जयन्ती-अंक निकालने में समर्थ हो गया। उसमें प्रकाशित बाल-स्वभावोचित कविता-वितान से अपने साथियों के हृदय को आकर्षित करने लगा। कुछ दिनों बाद क्षेम ने

सुधांशु' का प्रकाशन आरम्भ किया और उसमें पत्रकारिता का बीज अंकुरित होने लगा—जो आगे चलकर, अर्थात् स्नातक होने के बाद, कविवर श्री हरिशंकरजी शर्मा 'पद्मश्री' के सान्निध्य में 'आर्यमित्र' की सहायक सह सम्पादकता पाकर कविरत्नजी के प्रोत्साहन-जल से पुष्पित हो उठा तथा धनौरा मण्डी की 'शिक्षा-सुधा' तथा 'मनस्वी', 'आर्यमित्र' के सम्पादक के रूप में विकसित हुआ।

सप्तम श्रेणी में पढ़ते हुए एक बार 'वृत्तरत्नाकर' के प्रस्ताव के प्रकरण को लेकर उस पंक्ति का जैसा सामंजस्य बैठाया था वह प्रसंग मुझसे भुलाये नहीं भूलता। यह सारा समालोचना और तुलनात्मक आलोचना के स्वर्गीय पण्डित श्री पद्मसिंहजी शर्मा द्वारा प्रवर्तित और महाविद्यालय में प्रसारित समालोचना के वातावरण में पलने का फल है कि जो आज क्षेम ने साहित्यिकों में समालोचना-क्षेत्र में श्लाघा और स्पर्धा-योग्य ख्याति प्राप्त की है। यदि वे 'सुधांशु' की पुरानी फाइलें होतीं जिनमें क्षेम की बाल्यकाल की कविता, गीत और श्रद्धांजलियाँ प्रकाशित हुई हैं—तो आज भावुक हृदय उनकी अनुपलब्धि से होने वाली अव्यक्त पीड़ा का अनुभव न करता। आज का साहित्यकार भीतर और बाहर एक-सा नहीं होता तथा अपने व्यक्तित्व की अपेक्षा कल्पना का प्रभाव डालकर साहित्य को लोकप्रिय बनाना चाहता है किन्तु क्षेम का व्यक्तित्व व कृतित्व इसका अपवाद है। अंतरंग और बहिरंग की एकरूपता उसमें दृष्टिगोचर होती है। संवेदना और समवेदना, सहृदयता और सुहृदयता, भावुकता और शालीनता हाथ में हाथ मिलाकर चलती हैं। आधुनिक कवयित्रियों और कवियों के चरित्र-चित्रण में यह कला और भी चमक उठी है। वहाँ क्रोध, शोक, मोह के लिए कोई जगह नहीं है। उसकी लेखनी में वाद-विवाद की बाडवाग्नि रस-सागर की कोमल लहरों का आचमन नहीं कर सकती। सरसता और प्रवाह उसका स्वाभाविक गुण है। गुरुकुलीय स्नातक परीक्षा के बाद क्षेम ने केवल हिन्दी-जगत् के पारखी विद्वानों के समक्ष ग्रन्थ-निर्माता के रूप में या चरित्र-चयनिका के रूप में परीक्षा दी है। प्रिय प्रो० कमलेशजी अर्थात् डॉ० पद्मसिंहजी शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी० यानी रीडर, हिन्दी-विभाग, कुरुक्षेत्र के अनुरोध से आगरा-निवासकाल में 'साहित्यरत्न' परीक्षा भी दे डाली थी। यह कमलेश के सम्पर्क-संग का ही असर था।

क्षेम का खद्दर-प्रेम स्वाभाविक है, वह किसी फसली या नकली असर को नहीं रखता। क्षेम की एक विशेषता यह भी है कि उसे हिन्दी-साहित्य के हीन अंग की पूर्ति के लिए नई-नई दिशाएँ सूझती हैं। वह उदीयमान कवियों को खूब प्रोत्साहन देना जानता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवियों और लेखकों को लेकर बनाई गई उसकी कृतियाँ इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अध्यक्ष-पद से दिया गया भाषण इसका प्रबल प्रमाण है। कानपुर के 'इन्द्रधनुष' नामक साहित्यसेवी समाज

द्वारा आयोजित सुमन सम्मान समारोह में श्री गिरलूभल बजाज ने स्वागत भाषण देते हुए यह ठीक ही कहा था कि—"सुमनजी किसी भी विषय पर प्रामाणिक जानकारी दे सकते हैं। वस्तुत वे मिशनरी साहित्यसेवी हैं इत्यादि। मैं एक व्यक्तिगत घटना का प्रसगवश उल्लेख करना चाहता हूँ। मैं सन् १९५२ ई० में गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर का मुख्याधिष्ठाता के रूप में एक सेवक था। कुम्भ के दिन थे। महाविद्यालय से हरिद्वार तक हम दोनो साथ-साथ आये थे। मेरे सूटकेस में गुरुकुल के ३०००) तीन हजार रुपये रक्खे थे। मैं वह सूटकेस क्षेम को सौंपकर जब गाडी की प्रतीक्षा करते-करते तग आ गया तब बस के अड्डे पर चला आया और क्षेम से कहता आया कि तुम अपने साथ सूटकेस लेते आना। जब दिल्ली बस पहुँची तो मुझे यह चिन्ता हुई कि कहीं कुम्भ के यात्रियों में से किसी ने क्षेम की निगाह बचाकर सूटकेस पर हाथ साफ न कर दिया हो। इस चिन्ता से आतुर और व्याकुल होकर मैंने आगरा आकर क्षेम को तार दिया। तार पाते ही सही सलामत सूटकेस के साथ मुस्कराते हुए क्षेमजी मेरे पास पहुँच गये। मुझे खोई-सी चीज पाकर बडी प्रसन्नता हुई। इस सावधानी सच्चरित्रता और ईमानदारी की अमिट छाप मेरे हृदय पटल पर ऐसी पडी है कि मैं उसे अक्षय निधि की तरह अब भी सँजोये रहता हूँ।

नवीन कवियों और कवयित्रियों के अन्वेषण में क्षेम ने जहाँ कमाल किया है और अपनी सूक्ष्मेक्षिका का परिचय दिया है वहाँ सूक्ष्म वस्तुओं के गवेषण में भी क्षेम का अतुल साहस प्रशसनीय है। मैं उन दिनों कानपुर में रह रहा था कलकत्ता से आते हुए क्षेम ने मुझसे मिलकर जाना उचित समझा। दिन भर रहकर वह रात की गाडी से विदा हो गया। अगले दिन देखता हूँ तो प्रात सुमन फिर सामने खडे हैं। मैंने पूछा कि क्या गये नहीं ? क्षेम ने कहा—कि कुछ न पूछो, रात-भर दाँतों को ढूँढता रहा हूँ। बात यह हुई कि क्षेम ने चलती रेल में पाइप खोलकर कुल्ला किया। कुल्ले के साथ ही सोने में मॅढे हुए दाँतों का सैट पानी की नाली में होकर रेल की पटरी पर बिछी पत्थर की रोडियों में जा मिला। क्षेम ने जजीर खींचकर गाडी खडी की और उतर गये। गाडी के जाने के बाद केबिन के खलासी से लालटेन माँगकर दाँतों की खोज शुरू की और फिर कर ही डाली। वे पत्थर की रोडियों और रेल की पटरी के बीच में मुँह छिपाये पडे थे, पर धुन के धनी ने उन्हें ढूँढ ही लिया। जब मुझे यह घटना याद आती है तो मैं क्षेम के उद्योग, साहस और लगन की सराहना बिना किये नहीं रहता और तब विवशतया मुँह से निकल पडता है कि वाह रे क्षेम !

संस्कृत-विभाग
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

हिन्दी-लोक के नारदमुनि

श्री रामलाल पुरी

'विश्वकोष', 'जीवित संदर्भ-ग्रंथ' तथा 'आचार्य' नामों से सम्बोधित किये जाने वाले श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को मैं एक महान् व्यक्ति मानता हूँ। उनके अन्दर एक विशाल दिल है जो सदा दूसरों का यथासम्भव भला करने में तत्पर रहता है। उन्होंने अनेक लेखकों तथा प्रकाशकों को प्रोत्साहन दिया है। आप उनसे अपनी कठिनाई बताइये। वह निश्चित रूप से उस पर विचार करेंगे और कुछ-न-कुछ सुझाव अवश्य देंगे। यदि इसके लिए उनको कुछ कष्ट भी सहन करना पड़े तो वह करेंगे। मैं ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानता हूँ जिनका उनसे भला हुआ है। यह भला वह आपको अपने घर बुलाकर नहीं करते बल्कि आपके घर पहुँचकर करते हैं। वह अपने कष्ट की परवाह नहीं करते परन्तु दूसरों को कष्ट देने में हिचकिचाते हैं।

हिन्दी में विरला ही कोई व्यक्ति होगा जो उन्हें न जानता हो। हिन्दी-लोक के वह नारदमुनि हैं। उन्हें सदैव इस बात की जानकारी रहती है कि अमुक लेखक क्या लिख रहा है, अमुक प्रकाशक क्या छाप रहा है। वे प्रकाशकों तथा लेखकों में साँठ-गाँठ कराते रहते हैं। आपको किसी पुस्तक का अनुवाद कराना है तो उनसे पूछिये, वह तुरन्त उचित व्यक्ति बता देंगे। किसी विषय पर पुस्तक लिखवानी है तो उनसे पूछिये वह उपयुक्त व्यक्ति का नाम बता देंगे। सौदा भी करा सकते हैं। दोनों को समझा सकते हैं। काम करने और करवाने के उन्हें सभी ढंग आते हैं। जबान में मिठास भर सकते हैं, क्षण-भर के लिए ऐंठ भी सकते हैं। आपको आसमान पर भी उठा सकते हैं और फूंक भी खूब दे सकते हैं। बस, काम होना चाहिए। आपको दयावान, परोपकारी सिद्ध करना उनके बायें हाथ का करतब है। दूर से ही आपको बड़े प्रेम से मिलेंगे, क्षण-भर में ही गायब हो जायेंगे। जहाँ खाने की चीजें होंगी वहाँ शायद आपको मिल जायें। मिष्टान्न उन्हें प्रिय है, लेकिन आपके पास नमकीन चीजों की श्लाघा करेंगे और खाने का आग्रह करेंगे।

आर्थिक स्थिति साधारण होने के कारण लोग उन्हें बड़ा नहीं समझते। स्वभाव से मिलने की वजह से लोग उन्हें अपने-जैसा ही समझते हैं और उनकी उदारता के कारण उनको काम बताने और करवाने में हिचकिचाहट नहीं करते। चूँकि वह किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं रखते, उससे उनके परिचित उनसे खूब लाभ उठाते हैं। लोग उनसे चापलूसी भी कर जाते हैं। सुमनजी भी चापलूसी खूब कर सकते हैं पर उनमें ऐसे संस्कार नहीं हैं। काम करने और करवाने के कारण ताना-बाना बुनने में वह काफी माहिर हैं। अधिकतर उद्घाटनों, अभिनन्दनों और प्रचार में वह काफी रुचि लेते हैं। इन कार्यों में बड़े लोगों की आवश्यकता होती है। उनसे किसी तरह और कैसे सम्पर्क करना है, यह उन्हें मालूम है। परन्तु वह ऐसा नये लेखकों या असाधारण पुस्तकों के बारे में ही

करते हैं। इसके बारे में उन्हें कहना पड़ता है। वह उस समारोह के साम्य वेश-भूषा तथा खर्च का भी ध्यान रखते हैं।

उनमें व्यंग और विनोद की भी काफी मात्रा है। उनके भाषणों में व्यंग का काफी पुट होता है जो श्रोताओं को बहुत पसन्द आता है। उनकी स्मरण-शक्ति तेज है। वह भूली बिसरी बातों को निकाल लेते हैं और ढंग से उनका प्रयोग करते हैं। विशेष तिथियां तथा रिश्ते-नातों की भी उन्हें खास जानकारी रहती है। अवसर भाषणों में इनका उल्लेख करते हैं और लोगों को अचम्भे में डालकर उनकी उत्सुकता को बढ़ाते हैं। उनके छोटे-छोटे भाषणों को सुनने में आनन्द आता है। बड़ा भाषण वह स्वयं भी देना पसन्द नहीं करते।

उनका पत्र आता है तो किसी के कार्यवश। मिलते हैं तो भी किसी के कार्यवश। सफलता में उनकी विशेष रुचि है। गोष्ठियों में उनकी उपस्थिति अवश्यमेव होती है। शाहदरा के उस पार, इतनी दूर, रहते हुए भी रोज घर कैसे और किस समय पहुँचते हैं, यह आश्चर्य की बात है! उनकी पत्नी कैसी हैं, मुझे नहीं मालूम, परन्तु अत्यन्त सहनशील होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

सुमनजी एक कुशल सेल्समैन हैं। उन्होंने एक नई बस्ती में अपना मकान बनाया। अकेले रहना उन्हें पसन्द नहीं था, इसलिए उन्होंने औरों को भी फँसाया। काफी कष्ट झेले। बाढ़ और वर्षा के दिनों में टेलीफोन के साथ रात और दिन बिताये, लेकिन डटे रहे। पहले से स्थिति शायद अब कुछ अच्छी है। व्यंग में उसका वर्णन करेंगे, परन्तु डटे रहेंगे। स्वतन्त्रता-आन्दोलन में वह जेल भी काट चुके हैं। दुःखों को झेलना, बर्दाश्त करना तथा जीतने की शक्ति ने उन्हें अपने इलाके का लीडर बना दिया है। वहाँ उन्होंने बड़ी-बड़ी सभाएँ की हैं, कवि-सम्मेलन कराये हैं और जंगल में मंगल किये हैं। यह उनकी लोकप्रियता के स्पष्ट प्रमाण हैं। साधनहीन होते हुए भी उन्होंने अपनी सामर्थ्य से बड़े-बड़े कार्य किये हैं और करने का हौसला रखते हैं। सुमनजी स्वयं तो समस्या पीड़ित हैं किन्तु दूसरों की समस्याओं का हल खोज निकालने में सिद्धहस्त हैं।

सुमनजी को पुस्तकों से अत्यधिक प्रेम है। यह शायद इसलिए कि वह उनकी जीविका का आधार रही और उनसे उनको यश और प्रतिष्ठा मिली है। पुस्तकें वह भीख माँग सकते हैं, उधार भी माँग सकते हैं। माँगी हुई पुस्तकों को वापस करना शायद उनके बस की बात नहीं है। पुस्तकों के लिए वह सभी कुछ करने को तैयार रहते हैं। पुस्तकों को मुफ्त अपनाने में उन्हें बहुत आनन्द मिलता है। मजबूरन वह खरीद भी लेते हैं। परन्तु इस बारे में उन्हें काफी ध्यान बरतना पड़ता है। खरीदने का काम काफी सतर्कता से करते हैं। उन्हें भय रहता है कि प्रकाशकों को पता लग गया तो कहीं मुफ्त पुस्तकें हथियाने में कठिनाई न होने लगे।

आजकल वह साहित्य अकादेमी में काम करते हैं। यह उनकी योग्यता के अनुरूप ही है। इसमें वह प्रसन्न हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और मेरा विश्वास है कि यह सम्बन्ध

मियाँ-बीबी जैसा चलता रहेगा।

भगवान् उन्हे चिरायु करें और वह राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा अनन्त काल तक करते रहें।

आत्माराम एंड संस,
कश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मज़दूर से कलाकार तक

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

अँधेरे घुप मे हम फँसे हो और अचानक बाहर रोशनी मे आ जायें, तो लगता है हमारी आँखो के द्वार खुल गए—कुछ भी न दीखता था कि सब कुछ दीखने लगा, पर क्या इतना ही ?

ना, इतना ही नही, क्योकि आँख है उपकरण, जो देखने का साधन है देखने वालो के लिए, तो रोशनी मे आकर आँख के द्वार खुलते है, तो रोशनी से अन्त करण का आँगन भी भर उठता है।

जो बात रोशनी की है, वही मेरे लिए सद्विचार की है कि वह आँखो मे तैरा कि दिल नूर से जगमग हुआ और कुछ सद्विचार तो ऐसे है, जो स्थायी रूप से मेरे अन्त करण का प्रकाश बन गए है।

ऐसा ही एक विचार है लुई नाईजर का यह विचार—"जो आदमी सिर्फ हाथ-पैरो से, यानी शरीर से काम करता है वह मजदूर है, और जो हाथ-पैर और बुद्धि से काम करता है वह कारीगर है, पर जो हाथ-पैर, बुद्धि और आत्मा से काम करता है वह न मजदूर है, न कारीगर। वह है कलाकार!"

अब आवश्यक है कि मैं चटाक से कह दूँ कि मैंने भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' को अपनी आँखो मजदूर से कलाकार बनते देखा है और इसीलिए वे प्यार पाते पाते मेरे लिए 'ऑनरेबल' हो गये है। मैं खून को पसन्द करता हूँ और पसीने को भी, आदर देता हूँ उसे जो खून-पसीना एक कर दे—सुमनजी इस विषय मे एम० ए० ही नही, पूरे एम० ए०, पी-एच० डी० है।

"एक साप्ताहिक निकाल रहा हूँ। आर्य नाम है, पर पत्र सामाजिक सुधार का होगा। आप भी उसमे लिखें।" शांति प्रिंटिंग प्रेस के स्वामी श्री शीतलप्रसाद विद्यार्थी ने एक दिन मुझसे कहा, तो मेरी जिज्ञासा उभरी—"आप प्रेस की उलझनो मे फँसे हुए

हैं। सम्पादन का समय निकाल लेंगे आप ?" बोले—"मैं भी जो हो सकेगा करूँगा, वैसे श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' काम करेंगे। वे गुरुकुल महाविद्यालय के विद्यार्थी हैं और बहुत होनहार हैं।"

यों पहली बार उनका नाम सुना और कुछ दिन बाद वे स्वयं सामने आ खड़े हुए—बातों पर हँसी की पुट नहीं, हँसी मे बातें लिपटी हुईं हर बात का जवाब, हर बात के लिए तैयार। मन पर पहली छाप पड़ी—खूब आत्म-विश्वासी नवयुवक है, गाड़ी आगे बढ़ेगी।

और सचमुच आगे बढ़ी, बढ़ती रही। शायद यह कहना ठीक हो कि योजना-पूर्वक श्रम के द्वारा वे अपनी जीवन गाड़ी को निरन्तर आगे बढ़ाते रहे और व्यक्ति से व्यक्तित्व हो गए। उनकी लम्बी यात्रा को संक्षेप में कहना हो, तो कहें—'योजनापूर्वक निरन्तर श्रम'। जीवन-कला की दृष्टि मे यह बड़ी बात है।

डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद केन्द्रीय खाद्यमंत्री थे। उन्होंने बम्बई मे पानी खींचने का एक इंजन किसी कृषि-फार्म के लिए खरीदा। दस-ग्यारह महीने से ज्यादा वह बम्बई के रेलवे-मालगोदाम मे पड़ा रहा, पर उसे बिहार पहुँचने को वैगन न मिली। दूसरे युद्ध मे भारतीय रेल का ढाँचा ही चरमरा गया था। एक दिन उन्होंने काका गाडगिल से यह बात कही, तो अपनी सहज-सजीवता के स्वर मे काका ने कहा—"आपकी जगह मैं होता, तो वैगन की अनिश्चित प्रतीक्षा मे न फँस उसे बैलगाड़ियों के द्वारा भेज देता। आप भी सहमत होंगे कि इससे आधे समय में मेरा इंजन पहुँच जाता।"

टैंक सड़क-राह पर नहीं चलता, अपनी चेन पर चलता है। सुमनजी ने भी साफ-सुथरी राह की, अच्छे अवसरों की, सुविधा की प्रतीक्षा में अपने कंधे की खुरजी कभी नीचे नहीं रखी। कहूँ, वे राहदर्शी नहीं, चाहदर्शी ही सदा रहे और अपनी चाह मन में समाये ऊबड़-खाबड़, बाधा-विघ्न की परवाह किये बिना बढ़ते रहे।

मकराना की खान से संगमरमर की शिला निकली, तो तिरछी-बाँकी, खुरदरी, ऊँची-नीची थी, पर ताजमहल मे लगी, तो चौरस चपाट, चिकनी-मुलायम, सजी-सँवरी! यह कारीगर के श्रम और कलाकार के निर्देशन का फल था। सुमनजी अपनी जिन्दगी की शिला के स्वयं कारीगर और स्वयं कलाकार हैं। दिल्ली मे हवाई जहाज मे बैठकर, चाय पीने और कई देशों के हवाई अड्डों पर उतरते-चढ़ते आदमी ४६ घंटा म अमरीका पहुँच जाता है और कोलम्बस भी अमरीका पहुँचा था, तो क्या दोनों की सफलता समान है ? दोनों को समान अंक मिलने चाहिए ? कौन समझदार हाँ कहेगा इस प्रश्न पर ? नहीं कहेगा, तो हम सुमनजी के यात्रा-पथ को फुटों और गजों से कैसे नाप सकते हैं ?

लोक-जीवन मे एक तीखी-पैनी गाली है—हरजाई। जाया का बना है जाई, तो जो स्त्री हरेक की पत्नी है वह है हरजाई। लोक-जीवन की ही सूक्ति है—'रांड से बड़ा कोसना नहीं, छिनाल से बड़ी गाली नहीं।' किसी स्त्री को 'छिनाल-हरजाई' कह दिया

तो कहना को क्या कहा ? विचित्र बात है कि भाई क्षेमचन्द्र सुमन भी हरजाई-वृत्ति के हैं, पर उनका हरजाइपन उनके लिए गाली नहीं, गजब बड़ी प्रशंसा है।

जो चाहे उन्हें जादू की तरह पकड़ सकता है, उनसे अपने मन की बात, अपने लाभ का काम करा सकता है। नहीं, वे सबके हित-कल्याण के लिए सदा प्रस्तुत हैं, यहां तक कि जो उनके आड़े समय टका-सा जवाब दे चुका हो, अपने आड़े समय पका सा फल उनसे पा सकता है। क्या स्वार्थ, सौदेबाजी, जोड़तोड़ के इस युग में यह कोई साधारण साधना है ? बहुत बार मैं मुग्ध हुआ हूँ यह देखकर कि जो सुमन एक साधारण आदमी के चक्कर में आसानी से आ गया है, वह असाधारण आदमी से आसानी टक्कर ले रहा है और जीवन की कलाकारिता यह कि न चक्कर में व्यस्त दीखे, न टक्कर में पस्त।

बस एक प्रश्न और, और बात पूरी—क्षेमचन्द्र 'सुमन' के जीवन की सर्वोत्तम कमाई क्या है ? उनका धवल खादी वेश ? कई पुस्तकों के लेखक के रूप में उनका साहित्यिक 'कैरियर' ? कई संस्थाओं का संचालकत्व ? दिलशाद कॉलोनी में अजय निवास ? साहित्य अकादेमी में उनका पद ? हां, ये सब उनके जीवन की कमाइयां हैं, पर उनकी सर्वोत्तम कमाई है, मित्रता !

मोटर-व्यवसाय के पिता हेनरी फोर्ड ने अपने जीवन-चरित में लिखा है कि 'मैं धन कमाने में लगा रहा और मित्र बनाने में चूक गया। इसीलिए बुढ़ापे में अकेला हूँ, दु:खी हूँ और अपना सारा धन देकर भी दो-चार मित्र पाना चाहता हूँ, पर जानता हूँ, मेरी चाह पूरी नहीं हो सकती। सुमनजी के मित्र देश भर में फैले हुए हैं यही उनका सर्वोत्तम उपार्जन है।

इस उपार्जन का फार्मूला उनके उपनाम में है। क्षेम—कल्याण, चन्द्र—शांत प्रकाश, सुमन—सुगन्धि, वे सबके कल्याण का मन से प्रयत्न करते हैं, दु:ख-परेशानी में सबको शांति देते हैं और जहां बैठते हैं प्रसन्नता की सुगंध फैलाते हैं। जब श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी अपने कानून गुरु श्री भूलाभाई देसाई के पास कानून का प्रशिक्षण लेने गये तो उन्होंने कहा—"मुंशी, काम सीखते समय जो मेरे गुरु ने मुझसे कहा था, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ—तुम मेरे लिए यूज़फुल (उपयोगी) हो जाओ, मैं खुद तुम्हारे लिए यूज़फुल हो जाऊँगा।" सुमनजी सबके लिए उपयोगी हैं और इसीलिए सब उनके मित्र हैं।

विकास कार्यालय,
सहारनपुर, (उ० प्र०)

सबके साथी सुमन

श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

मेरा श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से परिचय आज से करीब तीस वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय वे लाहौर के साहित्यकारों और पत्रकारों में शनैः शनैः अपना स्थान बना रहे थे। अपने मिलनसार स्वभाव, सहृदयता और नम्रता आदि गुणों के कारण लाहौर के पत्रकारों में वे लोकप्रिय होते जा रहे थे। साहित्य में उनकी रुचि पहले से ही थी और कविता के क्षेत्र में प्रवेश के कारण वे स्थानीय कवियों और साहित्यकारों में अपना परिचय बढ़ा रहे थे। इसी प्रसंग में जब वे दिल्ली में होने वाले पत्रकार सम्मेलन में उपस्थित हुए, तब उनसे परिचय और भी नजदीक से हुआ। यहां भी वे लाहौर के पत्रकारों का प्रतिनिधित्व करने में सफल रहे। उसी समय मुझे यह अनुभव हुआ कि वे कुछ ही वर्षों में अपना विशेष स्थान बना लेंगे। यह एक भाग्य की बात है कि उनके जीवन की परिस्थितियों ने उन्हें किसी एक निश्चित स्थान पर काम नहीं करने दिया। १९४२ के आन्दोलन में वे लगभग डेढ़ वर्ष तक नजरबन्द रहे और इस तरह उन्हें अपना कार्य बदलने पर विवश होना पड़ा। कार्य के साथ ही उन्हें अपना क्षेत्र भी बदलना पड़ा। इस प्रकार वे दिल्ली में आ गए। यहां भी आकर उन्हें एक जगह स्थिर होकर काम करने का अवसर नहीं मिला। इस निरन्तर अस्थिरता और स्थान एवं कार्य-परिवर्तन का उनके स्वभाव और चिन्तन पर कोई विशेष प्रभाव पड़ा हो, ऐसा मैंने नहीं देखा। यह भी भाग्य की बात है कि जब वे एक काम छोड़ते तो दूसरा कार्य उनके स्वागत के लिए सदैव तैयार मिलता था। और वह भी पहले की अपेक्षा अच्छा एवं गौरवपूर्ण। इसका कारण भी मैं उनके स्वभाव—कार्य में रुचि, मिलनसारिता और परिश्रमशीलता—को ही मानता हूं।

दिल्ली में आने के बाद से अब तक मेरा उनसे सम्पर्क रहा है। यद्यपि मैं इसे घनिष्ठ सम्पर्क नहीं कह सकता, तथापि इस सम्पर्क में ही मैंने उनके अनेक गुणों का अनुभव किया है और मेरी दृष्टि में वे क्षेमचन्द्र 'सबके साथी क्षेमचन्द्र सुमन' हो गए हैं। शारदा विद्यालय के संचालन-काल में जब मैंने कवि-सम्मेलन का आयोजन करना चाहा तो उन्हें संयोजक बनाकर निश्चिन्त हो गया। उनके सभी कवियों से स्नेह-सम्बन्ध होने के कारण वे सम्मेलन को सफल बना सके। उनके निमन्त्रण को आमन्त्रित कवियों ने बड़े स्नेह से स्वीकार कर लिया और सम्मेलन सभी दृष्टियों से अत्यन्त सफल रहा।

एक दिन रात के करीब आठ बजे श्री सुमन मेरे घर पधारे। उनके आने का कारण था स्व० श्री शम्भूनाथ 'शेष' के परिवार के लिए सहायता-कोष की स्थापना। जीवन-काल में तो सभी कोई न कोई सम्बन्ध बनाये रहते हैं, किन्तु किसी साहित्यकार के देहान्त के बाद भी केवल सहृदयता, मित्रता और स्नेहवश उनके परिवार की चिन्ता मैंने सुमनजी

मे ही देखी है। इसी कारण मैं उन्हे 'सबो साथी' कहना चाहता हूँ। मुझे मालूम हुआ कि वे इस रोग-शोग के लिए अनेक मित्रा के यहाँ गये हैं और कुछ न कुछ राशि उन्होने एकत्र भी कर ली है। यही कारण है कि साहित्यकारा का और पत्रकारो का कोई सम्मेलन हो, समारोह हो वे अवश्य ही निमन्त्रित किये जाते है और उसमे वे अपना विशेष स्थान बना लेते है। यह एक साहित्यिक एव समाज-सेवी का सबस बडा गुण होता है कि वह अपनी सेवा और स्नेह से जनसमुदाय मे विशेष स्थान बना लेता है।

श्री सुमन का दूसरा गुण, जिससे मैं प्रभावित हुआ हूँ वह है उनकी सूझ। वे ठीक समय पर सामयिक साहित्य तैयार कर लेते हैं। समय की आवश्यकता को वे खूब पहचानते है। उनके द्वारा अनेक सकलित और सम्पादित पुस्तके इसका प्रमाण हैं। हमारा सघर्ष, आजादी की कहानी नेताजी सुभाष, लाल किले की ओर, राष्ट्र भाषा हिन्दी आदि अनेक पुस्तिकाएँ जहाँ उनकी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितिया के ठीक अध्ययन की सूचना देती हैं वहाँ हिन्दी के सवश्रेष्ठ प्रेमगीत, आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियो के प्रेमगीत, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नीरज और रामावतार त्यागी, आदि पुस्तकें उनकी साहित्यिक सूझ की प्रमाण हैं। व इन कृतियो के द्वारा साहित्यिक समाज के अत्यन्त निकट सम्पर्क मे आ गए और उनकी सर्वमित्रता का गुण और अधिक प्रखरता से हमारे सामने आ जाता है।

एक और गुण, जो मैंने उनमे पाया, वह यह है कि मेरे सामने उन्होंने कवियो और साहित्यकारो की गुटबन्दी, परस्पर द्वेष आदि के कारण किसी विशेष साहित्यकार की कटु आलोचना नही की। वे मेरे ज्ञान मे किसी गुटबन्दी मे पडकर व्यक्तिविशेष के कठोर आलोचक नही बने। वे सभी साहित्यकारा मे शुक्ल पक्ष के ही दर्शन करते रहे। कम से कम मेरे सामने वे इसी रूप मे प्रकट होते है। वे किसी रचना को जब पसन्द करते हैं तो उसके प्रसार के लिए सहायता भी करना चाहते हैं। 'साप्ताहिक अर्जुन' मे लिखी मेरी एक लेखमाला—मुझे आपसे कुछ कहना है—को हजारो पाठको की भाँति उन्होंने भी पसन्द किया। कुछ समय बाद वे उन्हे पुस्तकाकार मे प्रकाशित करने का प्रस्ताव मेरे सामने लाये। यद्यपि अभी कार्यव्यस्तता के कारण वह प्रस्ताव आकार धारण नहीं कर सका, तथापि इससे मुझे उनकी सहृदयता का परिचय अवश्य मिला। दोष-दर्शन और ईर्ष्या-द्वेष के आज के वातावरण मे किसी के गुणो की मुक्त कठ से सराहना उनकी सरल हृदयता को ही प्रकट करती है।

२८/११, शक्तिनगर,
दिल्ली ७

आशा और उत्साह की प्रतिमा

श्री रामशरण विद्यार्थी

मेरे एक पुराने गुरु, जो अधिक सम्पर्क और सहयोग से मित्र बन थे, अचानक एक दिन मुझे मिल गए। बोले 'भाई, तुम सुमनजी को भूल गए क्या ? वह आजकल मेरे पडोस मे ही रहते हैं। उनसे कभी आकर मिलो तो कुछ तुम्हारे भी प्रकाशन उत्कृष्ट हो जाएँगे। मैं उनसे मिला उनमे बडा स्नेह, सहृदयता, आशा और उत्साह पाया। उन्होंने मुझे प्रकाशन मे इतना उत्साहित किया कि एक बार मैं एक नये कवि को लेकर उनके पास पहुँच गया। उनकी कुछ अपनी रचना थी। वह पद्य मे थी। परन्तु वह काव्य की दृष्टि मे कैसी थी इसका तो मेरे लिए सही अनुमान लगाना कठिन ही था। इसलिए उन्हे मैं बडे सरल-स्वभाव सुमनजी के पास ले गया। उनकी रचना को सुमनजी ने घण्टा ही बडे धैर्य से सुना। उनके भाव और विचार का कुछ पता न चला। लेखक ने कहा, "सुमनजी ! इसकी एक प्रति सुन्दर रूप से लिखकर आपके पास भेज दूं ?" सुमनजी ने कहा, "जैसा भी आपको सुविधाजनक लगे···।" वह और मैं बडे सन्तुष्ट ही चले आए। सुमनजी के व्यवहार से आशा और उत्साह ही मिला। उसके थोडे दिनो पश्चात् सुमनजी ने कहा, "अरे भाई, उस दिन वह क्या ले आये ? वह तो न कविता थी न तुकबन्दी। न जाने क्या था। वह भी भला काव्य-ग्रथ के रूप मे प्रकाशनीय हो सकती है ! उसके लिए तो क्षमा ही करना। उस दिन तो कुछ स्पष्ट कहना उचित नही समझा था।"

ऐसी ही एक घटना प० मदनमोहन मालवीय जी के साथ हुई थी। उनसे नवाब रामपुर के एक स्थान के प्राप्त करने को कहा तो वह बोले, "बात तो बडी प्रेरक है। तो अभी जाकर नवाबसाहब से क्या न माँग आऊँ।" इसी प्रकार एक बार मालवीयजी और मैं साथ साथ १६२६ की लाहौर-कांग्रेस से रेल मे लौट रहे थे। बातो-ही-बातो मे मुझसे मालवीयजी ने पूछा, "आजकल क्या कर रहे हो ?" मैंने कहा, "मेरठ कॉलिज मे पढ रहा हूँ।' "तो आपके कालेज के प्रिंसिपल तो कर्नल ओडानल हैं न ?" मेरे हाँ कहते ही मालवीयजी कुछ उछलकर बैठे और बोले, "बस, तो चलो मैं भी आपके मेरठ कॉलिज मे ही एम० ए० मे अपना दाखिला करा लेता हूँ। फिर तो मेरा और तुम्हारा अच्छा साथ रहेगा।" यह था मालवीयजी का उत्साह और आशापूर्ण जीवन। उसके बाद कुछ ऐसा ही पाया सुमनजी का जीवन। सस्मरण तो उनके बहुत ही हैं पर बात सब मे एक ही है कि सुमनजी आशा और उत्साह की प्रतिमा हैं। वे आत्मविश्वास से भरपूर और उत्साहमय जीवन-यापन करते है। जो भी मित्र, सखा और परिचित-अपरिचित उनसे मिल जाता है वही वास्तव मे उनसे आशा लेकर आता है। क्यो न हो, सुमनजी की जीवन का रस इस उत्साह मे ही मिलता है और इसको वह भली प्रकार जानने और मानने भी

है। तब क्यों न कहा जाये कि सुमनजी आशा और उत्साह की प्रतिमा हैं।

आनन्द-मठ
सदर, मेरठ

अक्षर के उपासक

श्री शंकरदेव विद्यालंकार

साहित्य और पढ़ने-लिखने में शौक रखता हूँ। जब दिल्ली जाने का अवसर मिल जाता है तो साहित्य अकादेमी का चक्कर अवश्य लगा लेता हूँ। वहाँ हिन्दी-विभाग की सपादकीय कुरसी पर एक सदा मुस्कराता हुआ तरुण चेहरा अवश्य दीख पड़ता है जो किसी भी आगन्तुक की परेशानी और दिक्कत को दूर करने को सन्नद्ध है। परिस्थिति पहचानने में देर नहीं लगती कि आगन्तुक महाशय दूर प्रदेश से दिल्ली में आये है। हिन्दी-साहित्य के प्रेमी और ज्ञाता हैं। किसी काम पर लग चुके हैं, पर अभी तक निवास की तथा व्यवस्थित रूप में भोजन आदि की व्यवस्था नहीं कर पाये हैं। कुछ ही क्षणों में सपादकीय कुरसी के अधिकारी तरुण को यह कहते हुए सुनता हूँ—"तो जब तक कोई व्यवस्था नहीं होती, आप मेरे घर पर ही रहिये। स्थान की तलाश में रहिये। फिलहाल तो अपना बोरिया बिस्तरा मेरे घर ही ले आइये। उसे अपना ही घर समझिये।।"

साहित्य अकादेमी की मुलाकात के दौरान मैं दो बार यह दृश्य और यह परिस्थिति देख पाया हूँ। हिन्दी-विभाग की सपादकीय कुरसी पर बैठे हुए, मृदुल मुस्कान वाले इस तरुण चेहरे को हिन्दी साहित्यसेवी समार क्षेमचन्द्र 'सुमन' के नाम से जानता-पहचानता हैं। इन्ही सहृदय सुहृद्वर सुमनजी को इन पक्तियों का लेखक पिछले कई वर्षों से 'परदु खभजन सुमनजी' के नाम से याद करता आया है।

यह है, मित्रवर सुमनजी का मानवरूप ! सदा किसी न किसी के दुखड़े को दूर करने की व्यवस्था में व्यस्त सुमनजी को कृतिकार रूप में, साहित्य-सर्जक रूप में, देर में जानता हूँ। परन्तु जब उनकी दिनचर्या की पर्यालोचना करता हूँ तो उन्हें परदु खकातर पाता हूँ। उनका हृदय दूसरे के दुःख को सहन नहीं कर पाता। फलत अपने सदर मुकाम शाहदरा में भी उनकी जीवन-चर्या कुछ ऐसी ही रहती है। दिक्कतों और परेशानियों में आपका स्नेह-सहयोग पाने वाले आगन्तुकों के लिए आपका घर मानो पाथशाला है।

हाँ तो ये हैं हमारे सुमनजी, लेखनी के धनी और सहृदयता के सागर। साहित्य-सेवा और समाज-सेवा के सुभग समन्वय-रूप क्षेमचन्द्रजी। नाम ही बता रहा है दूसरों की 'क्षेम'-साधना में सन्नद्ध। तो चन्द्र-से आह्लादक सुमनजी से सुमनता का सौरभ पाना भी जीवन का एक आनन्द है।

ज्वालापुर महाविद्यालय की तपोभूमि में सुमनजी ने अपना तपस्यापूर्ण विद्यार्थी-जीवन व्यतीत किया। वहाँ पर साहित्यशिरोमणि सम्पादकाचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे सहृदय साहित्यसेवी गुरु के सान्निध्य में आपको साहित्य-सर्जना की शिक्षा-दीक्षा मिली और आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ-जैसे तपोदीप्त देशभक्त के चरणों में स्वदेश-सेवा और समाज-सेवा की जन्मघुट्टी पीने को मिली।

साहित्याचार्य पं० पद्मसिंहजी शर्मा तथा आचार्य श्री नरदेव शास्त्री के पास ढेर-ढेर हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ आती थीं। उन्हें पढ़ते-पढ़ते सुमनजी का तरुण मन सम्पादन-कला और लेखन-कला की ओर आकृष्ट हुआ। सद्गुरुओं की सतत प्रेरणा और आशीर्वाद से सुमनजी छात्र-काल में ही लेख लिखने लगे। कविताएँ रचने लगे। शिक्षा-काल समाप्त होते ही काम की चिन्ता हुई। लाहौर जाकर महिलाओं के एक कॉलेज में आंशिक रूप में हिन्दी के प्राध्यापक बन गए। उसी समय 'हिन्दी मिलाप' में सहकारी सम्पादक का काम करते थे। अध्यापन-कला में ऐसे कुशल कि एक बार उनसे पढ़ी हुई विद्यार्थिनी उनको भूल नहीं सकती। उनके दर्जनों शिष्य और शिष्याएँ आज हिन्दी के अच्छे कृतिकार हैं।

इसी बीच देश में स्वाधीनता-संग्राम की रणभेरी बज उठी। देशसेवक आचार्य के शिष्य सुमनजी का मन देश-सेवा के लिए अकुला उठा। वे वर्षों तक सार्वजनिक सेवा के व्रती सैनिक रहे। स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में आपको अनेक बार जेल जाना पड़ा। अपना जेल-जीवन सुमनजी ने जिस तपस्या, सिद्धान्त-निष्ठा और सहिष्णुता से बिताया उसे कम लोग ही जानते हैं। आपके जेल-साथियों में आज कई-एक देशसेवक शीर्षस्थ हैं। उनकी साक्षी है कि सुमनजी अपनी साधना और परीक्षा की अग्नि में तपे हुए खरे सुवर्ण हैं। इतना होते हुए भी सुमनजी ने उन पदस्थ नेताओं से प्रशस्तिपत्र प्राप्त करके किसी भौतिक उपलब्धि का प्रयत्न नहीं किया। सुमनजी का जो कुछ भी अर्जन है वह उनकी अपनी तपस्या का अर्जन है। एड़ी से चोटी तक की जो कुछ भी उपलब्धि है, वह अपनी तपस्या का परिणाम है।

साहित्य-सर्जना में भी उनकी कमाई खरी है। अध्यापन वर्षों से मेरा व्यवसाय है। हिन्दी-साहित्य के अनेक छात्र और छात्राएँ परीक्षा के दिनों में तरह-तरह के प्रश्न पूछती हैं। मैं उन्हें स्पष्ट कहता हूँ—"आलोचना और इतिहास के पर्चे के लिए सुमनजी का 'साहित्य-विवेचन' भली प्रकार पढ़ लो! बस, तुम्हारी नैया पार है।" मतलब यह कि सुमनजी जो कुछ लिखते हैं, खूबी से लिखते हैं, मेहनत से लिखते हैं, और विषय प्रतिपादन

समग्रता के साथ करते है। भाषा के धनी तो वे है ही।

सुमनजी वार्तालाप के शौकीन हैं। जब साहित्यिक विषयो पर चर्चाएँ छिड़ती है तो उनके गुरुवर प० पद्मसिंह शर्मा की याद ताजा हो जाती है। अपने गुरु की खूबियाँ उनकी चर्चा मे स्वभावत अवतीर्ण होती है।

सुमनजी आचार-विचार से पक्के भारतीय तथा ऋषिमुनियो की पद्धतियो के हिमायती है, परन्तु विचारो मे उदार। नकल करने से परहेज करते हैं। खादी के भक्त है, दिल से, नेतागिरी मे खपने के लिए नही।

हिन्दी के प्रति उनकी भावना भक्त और साधक कोटि की है। मातृभूमि, मातृ-भाषा और मातृ-सस्कृति के वे निष्ठावान पुजारी है। ऐसे अक्षर के पुजारी, परदु खभजन और सेवाव्रती सुमनजी ऋषियो द्वारा प्रतिपादित शतवर्षीय अनामय, अदीन आयुष्य का भोग करें, यही भावना, कामना और प्रार्थना है।

महिला-कालेज,
पोरबन्दर (गुजरात)

समर्याद नक्षत्र

श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

मैंने कही पढा था कि निराकुल निर्झर की अपेक्षा विघटती झझावात एव समर्याद स्थिरमति नक्षत्र की अपेक्षा धूमकेतु अधिक शीघ्र ध्यान आकर्षित कर लेता है। चडवात प्रचड क्षेत्र से आकर आकाश को, पृथ्वी को, समुद्र को आकुल-व्याकुल कर देता है। लोग घबरा जाते है। धूमकेतु एव असामान्य उपद्रवसूचक शिखायुक्त ज्योति लेकर आसमान मे उडता है। लोग अभिशकित हो उठते है। इन्ही विशेष लक्षणो के कारण झझावात और केतु तारा क्षण भर मे लोगो का ध्यान अपनी ओर खीच लेते हैं। लेकिन वह निराकुल निर्झर अलौकिक-अलक्षित-सा मद-मद बहता रहता है। और वह रात्रि की गरिमा को चमका देने वाला तारा अपरिचित-अनभिज्ञात-सा रोज अपनी कक्षा मे मुस्कान बिखेरा करता है।

मैं पिछले ४०-४५ वर्षों से देख रहा हूँ। हिन्दी साहित्य मे अनेक चडवात प्रचड वेग से आये। अनेक पुच्छल तारे उगे। यह सब हुआ। हो गया। लेकिन इससे भिन्न जो निराकुल निर्झर बनकर आये उनमे श्री क्षेमचद्र 'सुमन' सुदृश्य और सुदर्शनीय है। उनकी प्रतिभा पूर्ववत् है, तीक्ष्णशिख और रोचिष्णु।

सुमनजी के प्रातिभ ओजस्व का सहज रूप विरल है। उनका प्रत्येक क्षण स्नेह से परिपूर्ण है, अनुरागजनक है। निराकुलता की मन्त्र-शक्ति कला-जनित विदग्धता में नैसर्गिकता उँडेल देती है जिसके स्पर्श से परिचित चीजें नई-सी और नई चीजें परिचित-सी दीखने लगती हैं। मात्र बुद्धि-कौशल से रचना की गरिमा नहीं बढ़ती। उसके पीछे मनुष्य की मनुष्यता का रहना अत्यन्त आवश्यक है।

और मनुष्य की मनुष्यता! यह एक दुर्लभ गुण है। विशेषकर आज के युग में। इसका दूसरा नाम है स्नेहमय भ्रातृ भाव। स्नेह शीतलता प्रदान करता है, भ्रातृभाव पूजार्ह बनाता है। स्नेह वशीभूत करता है, स्नेहभाव ऊपर उठाता है। सुमनजी के स्वभाव में इस गुण का प्रचुर समावेश है। उनकी सम्भावसम्पन्नता से मैं प्रभावित हुआ हूँ।

प्रियम्भविष्णुता एक महान् कर्तव्य है। मुझे लगता है कि सुमनजी से इसका पालन अनायास हो जाता है। इसी कारण उनकी सुप्रियता प्रत्येक भद्राभद्र निरूपणशील हृदय में प्रतिबिम्बित हो सूर्यकान्ति का रश्मि-स्फुरण करती है।

३, हार्डिंज रोड
पटना १

निश्छल प्रेमिल मित्र

डॉ० भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'

'सुमन' उपनाम से हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग में चार साहित्यकार मुख्य रूप से स्मरण किये जाते हैं—श्री रामनाथ सुमन, डॉ० शिवमंगलसिंह सुमन, श्री व्यथितहृदय सुमन और श्री क्षेमचन्द्र सुमन। मुझे स्मरण है, श्री रामनाथ सुमन ने कभी अपने उपनाम के अन्य साहित्यकारों द्वारा उपयोग पर आपत्ति की थी, परन्तु उस आपत्ति का प्रभाव मात्र 'व्यथितहृदय' पर पड़ा और उन्होंने अपने नाम से सुमन हटा दिया। शेष तीन सुमनों के तीन डगर हैं, अतएव उनकी रचनाओं में मति-भ्रम होने का भय कथमपि नहीं है। श्री रामनाथ सुमन छायावाद के आदि प्रशंसक-संस्थापक प्रतिपादक के साथ-साथ गांधीवाद के नैतिक स्वर के प्रबल परिपोषक हैं और पारिवारिक जीवन की सुषमा और सुरभि की पुनःस्थापना में उनकी लेखनी का प्रसाद चिरकाल तक प्यार और श्रद्धा से संजोया जाता रहेगा। डॉ० शिवमंगलसिंह आजकल माधव कालेज, उज्जैन में प्राचार्य हैं और कविता के माध्यम से, विशेषतः कविता-पाठ की विशिष्ट शैली के कारण भारत और नेपाल में प्रभूत यश अर्जित कर चुके हैं।

श्री क्षेमचन्द्रजी सुमन इन सबसे निराले हैं—कट्टर आर्यसमाजी होते हुए भी आपने वैष्णव हृदय पाया है। आपदाओं, कष्टों, अभावों से जूझते हुए भी कभी आपके मन में जगत् के प्रति विरक्ति का भाव पनपने नहीं पाया—सदाबहार, सदा सजग, सदा खुश-ओ खुर्रम ! मित्र हो तो सुमन जैसा, कवि हो तो सुमन-जैसा, वक्ता हो तो सुमन-जैसा और संगठनकर्ता हो तो सुमन जैसा। 'हिन्दी कवयित्रियों के प्रणयगीत' को मैं सुमन की सबसे बड़ी विजय मानता हूँ—किन-किन छिपी खिली-अधखिली, चिटखती कलियों के घूंघट खोले हैं सुमन ने ! और कितनी वफादारी है इस तरुण शिशु में ! सुमन सचमुच तरुण शिशु हैं—तरुण की साहसिकता और शिशु की सरलता-निश्छलता ! साहित्यकार तो उनसे और हैं होंगे पर ऐसा निश्छल प्रेमिल मित्र, सखा, स्नेही भाई कहाँ मिलता है ! वे जिसे एक बार मिलते हैं उसे सदा-सदा के लिए 'अपना', सर्वथा अपना, बना लेते हैं। लगता है यह व्यक्ति सिर से पैर तक केवल प्रेम ही प्रेम है। ऐसा प्रेमप्रवण हृदय आज कहाँ मिलता है ! भाई सुमन, तुम युग-युग जीओ, जागो, अमर होओ—यही तुम्हारे एक सुहृद् सखा की शुभकामना है, यही प्रभु से प्रार्थना है।

हिन्दी-विभाग,
मगध-विश्वविद्यालय,
गया (बिहार)

मेरे प्रिय मित्र

श्री यशपाल जैन

भाई क्षेमचन्द्र सुमन का नाम आते ही एक ऐसे युवक की आकृति सामने आ जाती है, जो दिल्ली के साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन में अपना स्थान रखता है और जिसने यह स्थान अपने स्वयं के बूते पर प्राप्त किया है। भारत की इस महानगरी में जाने कितनी प्रतिभाओं का उदय और अवसान हुआ है, आज भी होता रहता है, लेकिन काल के उद्दाम प्रवाह को चुनौती देते हुए सुमनजी अपनी जगह पर अडिग खड़े हैं तो इसका श्रेय उनके कुछ दुर्लभ गुणों को है।

सुमनजी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी कर्मठता है। वह जो भी काम हाथ में लेते हैं, उसे बहुत ही तत्परता, लगन और परिश्रम से करते हैं। उनके लिए कोई भी काम छोटा या हीन नहीं है। मौलिक लेखन वह जिस रुचि से करते हैं, उसी रुचि से प्रूफ देखने, सम्पादन करने आदि के कामों में संलग्न पाये जाते हैं। अपनी इस कार्यनिष्ठा के कारण

वह न केवल सजग रहते है, अपितु सन्नद्ध भी।

बहुत से साहित्य-सेवी स्वकेन्द्रित पाये जाते हैं। उनके चारों ओर समाज होता अवश्य है, पर वे अपने मे ही लीन रहते हैं। परिणाम यह कि वे अपने को समाज से और समाज उनको अपने से अलग मानता है। वे वैचारिक भूमिका पर समाज को भले ही कुछ दे देते हो और समाज उसे ग्रहण भी कर लेता हो, पर समाज और उनके बीच आत्मीयता का नाता नही जुड पाता। सुमनजी ऐसे साहित्य-सेवी नही है। उनका समाज के साथ गहरा लगाव है। वह बराबर प्रयत्न करते हैं कि दूसरा के काम आवे। उनकी इस सेवा-भिमुख वृत्ति ने उनके अन्तर को जहां समृद्ध किया है वहां उनकी उपयोगिता मे भी वृद्धि की है। उनके इर्द गिर्द का और इष्ट-मित्रो का समुदाय उन पर कभी भी किसी भी काम के लिए, निर्भर कर सकता है।

सुमनजी से मेरी पहली भेंट आज से कोई २५ वर्ष पहले अखिल भारतीय पत्रकार सघ के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिल्ली में हुई थी। पाठको को स्मरण होगा कि यह अधिवेशन पत्रकार-प्रवर स्व० मूलचन्द अग्रवाल की अध्यक्षता म हुआ था और उसम भाग लेने के लिए अनेक स्थानो के पत्रकार आये थे। लाहौर से आनेवाली टोली म सुमन जी थे। मुझे स्मरण है, मेरे परम मित्र स्व० रमेशचन्द्र आर्य ने जो सन् १६४२ के आदो-लन मे शहीद हो गए, सुमनजी से मेरा परिचय कराया था। उस समय उनसे क्या क्या बातें हुई, उसकी तो याद अब रही नही लेकिन एक बात का मुझे ध्यान है और वह यह कि सुमनजी में बडी स्फूर्ति और उमग दिखाई दी थी। वैसे उनका पत्रकार-जीवन सन १६३७ से ही आरम्भ हो गया था और लाहौर के हिन्दी पत्रकारो के बीच वह अपने पैर जमान के लिए प्रयास कर रहे थे, फिर भी बाहर के लिए वह नये और अपरिचित थे।

जैसा कि प्राय सभी साहित्यसेवियो का होता है, सुमनजी का झुकाव आरभ मे काव्य की ओर हुआ। उन्होने बहुत सी कविताएँ लिखी और सन् १६४३ म उनका पहला कविता-सग्रह 'मल्लिका' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस बीच जब भारतीय स्वाधीनता-सग्राम ने जोर पकडा और 'भारत छोडो' के घोष ने देश की तरुणाई को 'करन या मरन' पर आमादा कर दिया तो सुमनजी अपने को कविता-कानन तक सीमित न रख सके। वह बाहर आये और उस ऐतिहासिक आदोलन मे भाग लेने के कारण पकडे गए। डेढ वर्ष फीरोजपुर-जेल मे रहे। वहां उन्हे अनेक प्रमुख व्यक्तियो के सम्पर्क म आने का अवसर मिला। सर्वश्री पटनायक, डा० युद्धवीरसिंह, मनुभाई शाह, वृषभान, बृजकृष्ण चांदीवाला, गोपीनाथ अमन प्रभृति का बहुत दिनो तक साथ रहा। कारागार के भीतर सुमनजी की लेखनी ने विश्राम नही लिया, वह अबाध गति से चलती रही। उन्होने बहुत-सी कविताएँ लिखी, जो सन् १६४५ म 'बन्दी के गान' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई।

स्फुट कविताओ के अतिरिक्त उन्होने सन् १६४२ की क्रांति की पृष्ठभूमि पर एक खण्डकाव्य की रचना की, जो सन् १६४६ मे प्रकाश म आया।

इस प्रकार अपने प्रारम्भिक जीवन में वह कविता के द्वारा हिन्दी की सेवा करते रहे। ये कविताएँ राष्ट्र के प्रति उनके प्रेम को प्रकट करती है और बताती है कि किसी भी व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य अपनी भूमि के प्रति है।

सन् १९४८ में सुमनजी के जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ। लाहौर छोडकर वह दिल्ली आ गए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन दिनों पत्रकारिता की दृष्टि से लाहौर का अपना महत्त्व था और हिन्दी के अनेक वरिष्ठ पत्रकार और साहित्यकार वहाँ स्थायी रूप से रहते थे, लेकिन दिल्ली का क्षेत्र उसकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक था। दिल्ली में आकर सुमनजी का सम्बन्ध कई प्रकाशन-सस्थाओं से जुडा। उन्होंने बडी मेहनत की और गहरी सूझ-बूझ से उन सस्थाओं के प्रकाशन-कार्य को आगे बढाया, लेकिन उन दिनों स्थिति आज से कुछ भिन्न थी। लेखक, सम्पादक अथवा अनुवादक को भारी कठिनाइयों का सामना करना पडता था, जबकि प्रकाशक अपेक्षाकृत सुविधाजनक अवस्था में थे। सुमनजी की माली हैसियत औसत दर्जे की थी, लेकिन अपने अस्तित्व को खोकर, प्रकाशकों के इशारे पर चलना, उन्हे गवारा न हुआ। उन्होंने कई जगह काम किया, लेकिन कहीं भी वह अधिक समय तक नहीं रह सके।

सन १९५६ म उनकी जीवन-धारा फिर नई दिशा मे मुडी। साहित्य अकादेमी के हिन्दी-विभाग मे उनकी नियुक्ति हो गई और तब से अब तक वह वही है। इस बीच उनके परिश्रम से अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई है।

दिल्ली आने के पूर्व उन्होंने आर्यमित्र, मनस्वी, दैनिक हिन्दी मिलाप, शिक्षा-सुधा आदि पत्रो के सम्पादन में योग दिया और दिल्ली आने पर त्रैमासिक 'आलोचना' मे भी सहायक रहे।

हिन्दी को जीविका का साधन बनाने के उपरान्त उनका ध्यान गद्य की ओर गया और उन्होंने कई सकलन बहुत ही सुसम्पादित रूप मे प्रकाशित किये। 'हिन्दी-साहित्य का विवेचन', 'हिन्दी-साहित्य और नये प्रयोग', 'हिन्दी के लोकप्रिय कवि', 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेम गीत', 'कवयित्रियों के प्रेम-गीत', 'चीन की चुनौती', 'लाल किले की ओर' उनकी सूक्ष्म दृष्टि, सूझ-बूझ तथा परिश्रमशीलता के सुन्दर नमूने है।

सन् १९४० से १९४६ तक के छ वर्ष टीकमगढ में व्यतीत करके जब मैं पुन दिल्ली आया तो सुमनजी से मेरा अधिक सम्पर्क हुआ और हम लोग स्नेहसूत्र मे बँध गये। सन् १९३८ में मैंने 'जीवन-सुधा' मासिक पत्रिका का लेखकाक निकाला था, जिसमे बहुत से नामी लेखकों के परिचय तथा उनकी रचनाएँ दी थी। साथ ही कुछ ऐसी प्रतिभाओं को भी उसमे स्थान दिया था, जो उभरकर ऊपर आने को तडप रही थी। यह विशेषाक अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। वह सुमनजी के भी हाथ पडा और इस प्रकार हम लोगो का परोक्ष सम्बन्ध जुड गया। सन् १९४६ के बाद से लेकर अबतक जाने कितनी बार सुमन-जी से मिलना हुआ है। उनके साहित्य अकादेमी मे जाने पर मैंने विशेष जोर दिया था

और उनको वहाँ पहुँचाने मे थोडा-बहुत निमित्त मैं भी बना था, लेकिन यह कहना अधिक सही होगा कि सुमनजी अपनी योग्यता के बल पर वहा गये और आज भी अपनी ही क्षमता के आधार पर वहाँ हैं।

सुमनजी का जीवन अत्यन्त व्यवस्थित है। वे उन साहित्यकारो मे नही हैं, जो हवा मे उडते रहते है। उन्होने सदा अपने हाथ-पैरो की खरी कमाई म विश्वास रक्खा है। उन्होने कभी किसी के सामने हाथ नही फैलाया। स्वाभिमान का जीवन जिया है, लेकिन कभी दभ नही किया। सदा सहज भाव से आगे बढे हैं। सुमनजी ने अपने बहुत-से साथियो से चोटें खाई है, पर उनकी खूबी है कि उन चोटो को उन्होने अपनी शक्ति बनाया है। यही वजह है कि उनके विरोधी भी अधिक समय तक विरोधी नही रहे उनके मित्र बन गए हैं।

सुमनजी भावनाशील युवक है। दूसरे का दुख उन्हे विचलित कर देता है। कई साहित्यकारो के निधन पर मैंने उन्हे इतना विह्वल पाया है मानो उन्ही के परिवार का कोई अत्यन्त प्रियजन चला गया हो।

सुमनजी का सक्रिय सम्बन्ध जाने कितनी साहित्यिक सास्कृतिक तथा सामाजिक सस्थाओ से है। आश्चर्य होता है कि वह उनके लिए कैसे समय निकाल लेते है। साहित्यिक सभाओ म वह दिखाई न द, यह हो नही सकता।

सुमनजी की स्मरण शक्ति तो गजब की है। साहित्य की पुरानी-से-पुरानी घटनाएँ उन्हे याद है। बहुत से मित्र उन्हे 'विश्व कोश' कहा करते है, और यह ठीक ही है। किसी भी प्रसग पर जब वह बोलने के लिए खडे होते है अथवा चर्चा म उतरते हैं तो उनके ज्ञान के स्रोत जैसे खुल जाते है। तारीख और सन् के साथ वह इतनी बात कहते हैं कि सुनने वाले चकित रह जाते है। नये पुराने तथ्य हर घडी उनकी जबान पर रहते है।

इससे स्पष्ट है कि वह अध्ययनशील है और वर्तमान घटनाओ के प्रति जागरूक रहते हैं।

सुमनजी ने अपने जीवन म बडा सघर्ष किया है। जिन्हे सघर्ष अधिक करना पडता है, उनमे प्राय कुठाएँ उत्पन्न हो जाती है। ये कुठाएँ व्यक्ति को स्वय तो हैरान करती ही है, समाज को भी हानि पहुँचाती है। सुमनजी इस दोष से मुक्त रहे हैं। उन्होने सघर्ष म कभी अपने व्यक्तित्व को दबने नही दिया, न कभी अपने अदर हीनता की भावना को ही आने दिया है।

इस सघर्ष से उन्हे उल्टे एक बडा लाभ हुआ है और वह यह कि वे जहाँ कही किसी व्यक्ति को जूझते देखते हैं, उनकी सहानुभूति तत्काल उसके साथ हो जाती है। ऐसे व्यक्तियो की वे बराबर सहायता करते रहते हैं। दिल्ली के व्यस्त जीवन मे दूसरो के लिए समय निकालने की वृत्ति कम ही लोगो म होती है पर सुमनजी के लिए असभव है कि किसी की कराह को सुनकर वे कान बद कर ले और आगे बढ जायँ।

सुमनजी मे गुण हैं तो कुछ उनकी सीमाएँ भी हैं। वे उत्सुक रहते हैं कि सदा आगे रहे, ऊपर का स्थान उन्हे मिले और और जहाँ भी जायें, उनका व्यक्तित्व नगण्य न हो। ऐसी महत्त्वाकांक्षा आखिर किसमे नहीं होती! दुनिया मे विरक्त माने जाने वाले साधु-संत भी इससे आक्रांत होते हैं। बडे-से-बडे साहित्यकार भी, यों कहने को कुछ कहे, पर आकांक्षी रहते है कि उनको उचित मान-प्रतिष्ठा मिले। लेकिन महत्त्वाकांक्षा के होते हुए भी मैंने सुमनजी को कभी किसीको धकेलकर स्वयं आगे बढते नहीं पाया। वे न किसीको आगे बढने से रोकते हैं न यह सहन कर सकते हैं कि कोई उन्हे रोके।

वर्तमान युग मे राजनीति का बोलबाला है। सुमनजी की राजनीति मे रुचि है, उसमे जब-तब भाग भी लेते रहते हैं, लेकिन सक्रिय राजनीति से वे यह जानते हुए भी बचत रहते हैं कि आज कोई भी बडा पद बिना राजनीति का पल्ला पकडे नही पाया जा सकता।

उन्हे इस बात से बडी व्यथा है कि साहित्य मे आज राजनीति का गहरा प्रवेश हो गया है और आज का साहित्यकार राजनीति का मुँह देखता है। इतना ही नही, साहित्य मे दलबदी, भ्रष्टाचार आदि महाव्याधियाँ जड पकड गई हैं। जब वे देखते हैं कि छोटे-बडे साहित्यकार एक-दूसरे की निराधार आलोचना करते हैं एक-दूसरे को गिराते हैं, अपने और अपनो को अवाछनीय रूप मे बढावा देते हैं और साहित्य के मानदण्ड कुछ दूसरे हो गए हैं तो उन्हे असीम वेदना होती है। सुमनजी चाहते हैं कि कम-से-कम सरस्वती का मंदिर तो उन बुराइयो से मुक्त हो, जो आज देश के वातावरण को विषाक्त बना रही हैं।

सुमनजी के मित्रो का क्षेत्र व्यापक है। राजनीति मे भी उनके सपर्क कम नहीं हैं, पर उन्होंने अपने इस सबधो का कभी अनुचित लाभ लेने का प्रयत्न किया हो, मुझे स्मरण नहीं। सभवत वह जानते हैं कि बाहरी सहारे व्यक्ति के लिए कुछ ही हद तक काम आ सकते हैं। पर अततोगत्वा आदमी की अपनी शक्ति ही स्थायी रूप से उसकी सहायक होती है। इसलिए उनकी कोशिश रहती है कि जहाँ तक हो सके, वे अपने पैरो की ताकत पर ही खडे हो।

यह बडे आनन्द की बात है कि सुमनजी ने अपने को खब कसा है। वह अभी कुल पचास वर्ष के है। लम्बा जीवन जीने के लिए उनके सामने है। मेरी प्रभु से कामना है कि वे दीर्घायु प्राप्त करें, स्वस्थ रहे और उनके वे स्वप्न पूरे हो, जो उन्होंने स्वतत्र देश के एक जिम्मेदार नागरिक तथा साहित्य के कर्मठ सेवी के नाते सँजोकर रखे हैं।

सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली १

बहुविध गुणों का अभिनन्दन

डॉ० नगेन्द्र

सुमनजी हिन्दी-जगत् के कर्मठ साहित्यकार हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी और कार्यक्षेत्र विस्तृत है।

वे कवि हैं। उन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं और सामाजिक चेतना से प्रेरित ओजस्वी कविताएँ लिखी हैं और मीठे प्रेमगीत लिखे हैं।

वे काव्य-मर्मज्ञ हैं, उन्होंने नवीन और प्राचीन काव्य का अध्ययन-विवेचन किया है। हिन्दी-कवियों और कवयित्रियों के प्रेमगीतों का संकलन किया है तथा अनेक काव्य-ग्रंथों का सफल सम्पादन किया है।

वे बाल-साहित्य के कुशल लेखक हैं। उन्होंने बालकों की शिक्षा और रुचि-संस्कार के लिए प्रचुर साहित्य प्रस्तुत किया है— सुन्दर पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया है।

वे भाषाविद् हैं। उन्होंने अपने ढंग से प्रयोग तथा वर्तनी आदि के नियमों की व्यवस्था कर हिन्दी-मुद्रण के स्थिरीकरण में योगदान किया है।

वे कर्मण्य समाजसेवी हैं। उनमें संगठन और आयोजन की प्रभूत सामर्थ्य है। अनेक सामाजिक, शैक्षिक तथा साहित्यिक संस्थाओं के व्यवस्थापन में उनका सक्रिय सहयोग रहा है, और है। वे, स्वयं प्रकाशक न होते हुए भी, प्रकाशन-कार्य के विशेषज्ञ हैं। प्रकाशन के विविध अंगों का उन्हें व्यावहारिक ज्ञान और सफल अनुभव है।

वे समर्थ प्रचारक हैं। हिन्दी भाषा, साहित्य तथा साहित्यकारों का प्रचार प्रसार वे तीस वर्ष से कर रहे हैं। उन्होंने हिन्दी के कई विद्वानों को 'आचार्य' की पदवी से विभूषित किया है।

वे सन्मित्र हैं। उनका व्यवहार-क्षेत्र व्यापक है। दूसरों के सुख-दुःख में सहभागी होने का उन्हें सहज अभ्यास है जिसके कारण वे हिन्दी-जगत् में बड़े लोकप्रिय बन गए हैं।

उनका अभिनन्दन वस्तुतः इन बहुविध गुणों का अभिनन्दन है जिनके द्वारा उनके कार्मिक व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है।

हिन्दी-विभाग,
दिल्ली-विश्वविद्यालय
दिल्ली ८

पुरुषार्थ की प्रतिमा

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

हिन्दी के साहित्यकारों में सुमनजी उस वर्ग के विशिष्ट प्रतिनिधि है, जिनके सिर पर किसी महापुरुष का वरद हस्त न होकर स्वय अपना ही हाथ है, जो अपनी भाग्य रेखा या ललाट-लिपि दिखाने किसी ज्योतिषी के पास न जाकर स्वय उसे पढकर, स्वानुकूल बनाने मे विश्वास रखते है। स्रष्टा ने सुमनजी का शरीर मात्र ही पचभूतो से बनाया है—अपना जीवन-निर्माण तो उन्होने स्वनिर्मित पचतत्त्वो से किया है। वे पचतत्त्व हैं—स्वावलम्बन, लगन, उत्साह, अध्ययन और अध्यवसाय। वस्तुत इन तत्त्वो से अपना जीवन बनाकर सुमनजी ने अमूर्त पुरुषार्थ को मूर्तिमान किया है।

किसी व्यक्ति का विशेष गुण वह माना जाता है जो सबको समान रूप से आकर्षित करने मे समर्थ हो। सुमनजी के अनेक गुणो मे से एक विशिष्ट गुण का चयन करना हो तो वह पुरुषार्थ ही है। पुरुषार्थ ही सुमनजी की साधना है, पुरुषार्थ ही उनकी सिद्धि भी। साधन और साध्य को अपनी जीवन-साधना मे तदाकार कर सुमन ने पुरुषार्थ की जो जीवन-प्रतिमा निर्मित की है उसे आप लम्बे-लम्बे डग भरकर सडक पर चलते देख सकते है। बगल मे कागजो से भरा बस्ता दबाये, सिगरेट का ऊर्ध्वमुखी कश खीचते हुए सुमन का चेहरा कभी मुरझाया, थका, सहमा और म्लान नही दिखाई देगा। शाम को दफ्तर से लौटते समय भी ऐसा लगता है कि सुमनजी कही काम पर जा रहे हैं। जल्दी घर लौटने की नही, नया काम पकडने और उसे खत्म करने की है। वैसे इनका घर भी छोटी-मोटी वर्कशाप ही है जिसमे बैठकर बुद्धिजीवी कामगर की तरह ये हिन्दी-सेवा के नये-नये प्रयोग और परीक्षण करते रहते है।

सुमनजी से मेरा परोक्ष परिचय हुआ आज से लगभग अट्ठाईस वर्ष पहले, जब वे 'आर्यमित्र' के सम्पादकीय विभाग मे कार्य करते थे। 'आर्यमित्र' मे साहित्यिक छटा लाने का प्रयत्न करने मे उनका योगदान मुझे अब तक याद है। उसके बाद उन्होने 'मनस्वी' का सम्पादन किया। मनस्वी मे कार्य करते समय उनकी राष्ट्रीय भावना को पुष्पित और पल्लवित होने का अच्छा सुयोग प्राप्त हुआ। सुमन का कवि-रूप उन दिनो मुखर था और राष्ट्र-प्रेम की कविताएँ लिखने मे उन्हे सुख ही नही रस प्राप्त होता था। धनौरा मण्डी से शिक्षा-सम्बन्धी एक पत्रिका का भी इन्होने कुछ समय तक सपादन किया। पत्र-पत्रिकाओ के इस सम्पादन-काल मे सुमन ने हिन्दी के प्रकाशन-जगत् का भी आनुषगिक रूप से ज्ञानार्जन किया था। इसी समय उन्हे स्वय पुस्तक-लेखन की रुचि उत्पन्न हुई जो आत्माभिव्यजन और जीविका दोनो मे सहायक बनी।

मुझे पता नही कि सुमनजी दिल्ली कब आये। मैं सन् १६४७ मे दिल्ली आया था। दिल्ली आने पर 'शनिवार समाज' मे सुमनजी से भेट हुई। शायद सन् १६४७-४८

की बात है। सुमनजी दिल्ली मे रहते तो थे किन्तु अपनी दृष्टि मे वे दिल्ली मे पक्के जमे नही थे। कई मुद्रणालयो और प्रकाशको मे जूझ चुके थे और दिल्ली मे स्थायी रूप मे जमने के लिए काम की टोह मे रहते थे। साहित्य-सेवा भी चल रही थी और राष्ट्र-सेवा भी। किन्तु संघर्षशील सुमन का मन इन दिनो भीतर मे शायद अपने कार्य के प्रति इतना आश्वस्त न था, फिर भी बाहर से मस्ती की प्रसन्न मुद्रा मे वह अपने सभी मित्रो और और परिचितो को परास्त करते थे। मुझसे सुमनजी की भेट उन दिनो प्रायः दो ठिकानो पर होती एक तो शनिवार समाज के साहित्यिक समारोहो मे या प्रकाशको की दूकानो पर। कश्मीरी गेट और नई सडक के पुस्तक-विक्रेताओ के पास सुमनजी जब मिलते तब मैं एक नई पाडुलिपि उनके पास देखता और मुझे हैरत होती कि यह व्यक्ति किस धातु का बना है कि हर महीने नई पुस्तक तैयार कर लाता है और कही न कही से छपवा भी लेता है। हो सकता है सुमन को उन दिनो कुछ आर्थिक संकट रहा हो, लेकिन उन्होने अपने मुख से कभी किसी प्रकार के संकट की चर्चा मुझसे नही की। इसका अर्थ यह न समझा जाय कि हम दोनो मे आत्मीयता की कमी थी, या कही कुछ दुराव छिपाव था। सच बात तो यह है कि जिसे साधारण रूप मे आर्थिक संकट कहा जाता है, उसे पुरुषार्थी सुमन ने कभी संकट माना ही नही। रोज नया कुआँ खोदने की अपनी दुर्धर्ष शक्ति पर जिसे विश्वास हो, वह प्यासा कैसे रह सकता है ?

मैंने कई बार उनसे कहा कि कोई पक्का धधा खोजो, यही जमकर काम करो। लेकिन उन्होंने कोई ध्यान नही दिया। सौभाग्य से साहित्य आकादेमी की स्थापना हुई और सुमन की वहाँ नियुक्ति हो गई। प्रारम्भ के तीन-चार वर्ष उन्होने जिस द्रुत गति से अकादमी के हिन्दी प्रकाशनो का काम किया वह सभी हिन्दी साहित्य-प्रेमियो को विदित है। सुमन की विशेषता है कि हाथ मे लिये काम मे पुरुषार्थ का घोडा जोडते ही उनका काम रफ्तार पकड लेता है, ऐसी तेज रफ्तार कि साथ दौडने वाले हाँफ कर बैठ जाते हैं और देखने वाले विस्मय-विमुग्ध हो सुमन की पीठ ठोकने लगते हैं। ये दोनो क्रियाएँ सुमन के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न करने वाली भी हो जाती हैं। गुण-ग्राहकता के अभाव मे कई बार इस तेज रफ्तार की जीत का दण्ड अकारण सुमन ने भोगा है।

हिन्दी के साहित्यकारो मे बहुत कम ऐसे हैं जिन्हे सर्जन के साथ मुद्रण, प्रकाशन और उत्पादन-प्रक्रियाओ का भी यथेष्ट ज्ञान हो। सुमनजी इस दृष्टि से परिपूर्ण ज्ञानी हैं। उन्हे प्रकाशन-व्यवसाय के हर पहलू का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान तथा अनुभव है। पिछले तीस वर्ष से निरन्तर वे इसी क्षेत्र मे कार्य कर रहे हैं। कार्य करना उनके लिए कदाचित् उपयुक्त अभिव्यंजक पद नही है, इसी क्षेत्र मे जूझना या 'पापड बेलना'—जैसा कोई मुहावरा उनके जीवट को व्यक्त कर सकता है। हिन्दी-पुस्तको की साज-सज्जा, आवरण-पृष्ठ, मुद्रण, हाशिया, शीर्षक, जिल्द, कटाई-छटाई और सफाई तक उनकी नजर जाती है। इस दिशा मे उनका योगदान अविस्मरणीय है। प्रूफ-शोधन

मे तो उनको अद्भुत दक्षता प्राप्त है। मैं उन्हे 'प्रूफ-प्रवीण' की उपाधि दे चुका हूँ। किन्तु उनका कहना है कि प्रूफ-शोधन झाड़ू देने के समान कार्य है जिसमे अन्तिम सिद्धि तक पहुँचना दुष्कर है। जिस प्रकार झाड़ू के बाद पोछा लगाना आवश्यक है, उसी प्रकार फाइनल प्रूफ के बाद भी अक्षरश दृष्टिनिक्षेप अनिवार्य होना चाहिए। मैं अक्सर सोचा करता हूँ कि सुमनजी को किसी साधनसम्पन्न प्रकाशन-सस्था का सर्वाधिकार-सम्पन्न स्वामी होना चाहिए ताकि हिन्दी प्रकाशन की कमियो का परिहार हो सके। यदि सुमनजी को ऐसी किसी सस्था का व्यवस्थापक बना दिया जाय तो निश्चय ही वह सस्था हिन्दी-प्रकाशन जगत् की मानक सस्था बन सकेगी।

प्रकाशन सम्बन्धी सूझबूझ के साथ सुमनजी की हिन्दी-साहित्य की जानकारी भी असाधारण है। यदि आपको यह जानना हो कि अमुक विषय पर कौन-सी पुस्तक कब, किस सन् मे, किस-किस प्रकाशन-सस्था से, किस मूल्य मे प्रकाशित हुई, तो आप बेखटके सुमनजी की शरण मे जा सकते है। पूरी जानकारी तो वे आपको देंगे ही, यदि उनकी कृपा-दृष्टि हो गई तो पुस्तक के दर्शन भी आपको करा देंगे। पुस्तक देने के मामले मे वे सावधान व्यक्ति हैं, जानते है कि 'पर हस्ते गता, गता'। क्योकि उनके अपने सग्रहालय मे भी अनेक दुर्लभ पुस्तकें स्वहस्ते गता, गता बनकर रह गई हैं।

सुमनजी ने जब दिलशाद उद्यान (शाहदरा) मे अपना घर बनाया तो मुझे कुछ आश्चर्य हुआ कि यह माया सुमन ने कब जुटा ली। सुमनजी ने अपने प्रथम पुत्र के जन्म के उपलक्ष्य मे जब वहाँ समारोह किया तो मैंने धीरे-से यह सवाल उनसे पूछ ही डाला। सुमनजी ने बडी सजीदगी मे उत्तर दिया कि स्वाभिमान की रक्षा के लिए स्वतन्त्र घर की दिल्ली मे जितनी आवश्यकता है उतनी शायद दूसरे शहरो मे नही होती। घर चाहे छोटा हो, लेकिन अपना होना चाहिए, यह किराये के मकानो मे रहकर मैंने खूब अच्छी तरह से जान लिया है। इसलिए जैसे-तैसे इतने पैसे जुटा लिये कि छत के नीचे कम आराम से लेकिन पूरे स्वाभिमान मे रह सकूँ। इस उत्तर से सुमन के स्वाभिमानी स्वस्थ मन का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है। सुमन ने कई बार अच्छी-अच्छी नौकरियाँ केवल इसलिए छोडी कि वहाँ उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचती थी। जो कुछ वे करना चाहते थे, उसके मार्ग मे अवरोध खडे किये जाते थे। अवरोध ढाहने वाला अवरोध को भला क्योंकर स्वीकार करेगा ?

हिन्दी के साहित्यकारो मे कुछ ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग साहित्य-सर्जन के साथ साहित्य के प्रकाशन, प्रसारण और वितरण मे भी किया है। श्री शिवपूजन सहाय, श्री रामलोचन शरण, श्री रामचन्द्र वर्मा आदि के नाम इस क्षेत्र मे उल्लेखनीय हैं। मेरा विश्वास है कि यदि श्री क्षेमचन्द्र सुमन को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाकर किसी प्रकाशन-सस्था का दायित्व सौंप दिया जाय तो वे इस परम्परा मे सबसे अधिक सफल ही नही, वरन् सर्वश्रेष्ठ व्यवस्थापक सिद्ध होंगे। सुमनजी के पास

सजग प्रतिभा के साथ यह सूझ-बूझ पूरी मात्रा में है कि किस विषय की दिशा में क्या है और किस विषय की पुस्तकों की खपत अधिक होती है। हिन्दी में उपयोगी या वैज्ञानिक साहित्य के उत्पादन की दिशा में क्या प्रयत्न वांछनीय है और इस प्रकार की पुस्तकों का मुद्रण प्रकाशन किस पद्धति से होना चाहिए। सचमुच यह हमारा दुर्भाग्य है कि प्रकाशन के स्तर को उठाने में जो व्यक्ति सहायक हो सकते हैं और जिनकी सूझ-बूझ का उपयोग किया जाना चाहिए उनको न तो उपयुक्त अवसर मिलता है और न उचित सम्मान ही। सुमनजी के अभिनन्दन के अवसर पर मैं उनके मित्रों और हितैषियों के साथ हिन्दी भाषा और साहित्य की सचमुच अभिवृद्धि और समृद्धि के आकांक्षी व्यक्तियों का ध्यान इस प्रतिभावान हिन्दी सेवी की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। हिन्दी के लेखकों का जिस रूप में शोषण होता रहा है उसकी पीड़ा को जानने वाले व्यक्ति जब प्रकाशन के क्षेत्र में आयेंगे तब केवल हिन्दी भाषा और साहित्य का ही नहीं साहित्यकार का भी कल्याण होगा।

सुमन अपने छात्र जीवन से प्रखर राष्ट्रवादी रहे हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण उन्होंने कारागार का दण्ड भी भोगा है। यदि वे चाहते तो अपने अन्य साथियों की तरह राजनीतिक क्षेत्र में उछल-कूद द्वारा कुछ उपलब्ध कर लेते। वह राजनीति की कुछ ही शक्ति के क्षेत्र को सब कुछ बनकर उन्हें किसी अच्छे पद पर बिठा देता। लेकिन सुमन ने साहित्य साधना का कण्टकाकीर्ण मार्ग चुना और उसी में आत्मसुख भी पाया। राष्ट्रीय आन्दोलन में काम करने वाले स्वयंसेवकों के पास आज कार कोठी और कंचन है तो सुमन के पास भी यह सब क्या नहीं होता—लेकिन सुमन ने जो मार्ग अपने लिए चुना वह स्वाभिमान सम्मान और त्याग का मार्ग है। इस मार्ग पर चलने का सुख केवल वही जान सकता है जो कुछ देकर कुछ खोकर और कुछ न लेकर यहाँ आया हो। चिलचिलाती धूप को चाँदनी बनाने वाले मरुस्थल में मन्दाकिनी प्रवाहित करने वाले और काँटों के पथ पर फूल बिछाने वाले व्यक्ति ही इस मार्ग के अधिकारी हैं।

हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली ८

परदुःखकातर सुमनजी

श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

सुमनजी से मेरा प्रथम साक्षात्कार सन् १९५१ में बिना किसी पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अप्रत्याशित एवं आकस्मिक रूप से दिल्ली में हुआ था। उन दिनों वे दिल्ली के ही एक प्रमुख प्रकाशक राजकमल प्रकाशन में काम कर रहे थे। उस दिन उनसे मेरा साक्षात्कार ही हुआ था। उनका साहित्यिक परिचय, वास्तव में, कुछ पहले से पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम द्वारा मिल चुका था। प्रथम मिलन में ही हिन्दी के प्रति उनकी निष्ठा और लगन का पता मुझे चल गया था। जहाँ तक स्मरण है उन दिनों भी उनके पास राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार की कई योजनाएँ थीं जिनमेंसे एकाध पर वे कार्य भी आरम्भ कर चुके थे। उनके आचार-विचार में मुझे एक मिशनरी-जैसी धुन का संकेत मिला था। उनका अत्यन्त सहज एवं सरल व्यवहार भी आकर्षक तथा सहृदयतापूर्ण था। ऐसा लगा था जैसे एक लम्बी प्रतीक्षा के बाद हम मिले थे। मुझे भलीभाँति स्मरण है कि उनसे विदा लेते समय मैंने अनुभव किया था कि यह अल्पकालीन साक्षात्कार सामान्य परिचय से बहुत आगे बढ़ चुका है।

बहुधा यह देखा गया है कि जो बीज अपने अस्तित्व की प्रामाणिकता और सार्थकता को सिद्ध करने के निमित्त कठोर चट्टानों की सघन परतों को चटखाते हुए अंकुरित होने में जितना अधिक सक्षम एवं समर्थ होता है, उसकी जड़ें उतनी ही गहरी तथा सुदृढ़ होती हैं। परन्तु यह प्रक्रिया केवल वनस्पति-क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है अपितु मानव-जीवन तक पर समान रूप से लागू होती है। सुमनजी को भी इसी प्रकार विषम परिस्थितियों की कठोर परतों को अस्वीकारते हुए अपने को ऊपर लाना पड़ा। पचास वर्ष पूर्व मेरठ जिले के ठेठ देहात बाबूगढ़ में उत्पन्न निर्धन ब्राह्मण-परिवार का यह बालक अपनी मनस्विता और पुरुषार्थ के बल पर ही आज अपनी जीवन-यात्रा में सफलतापूर्वक अग्रसर होता आ रहा है। उसके पाथेय उसका मनोबल और संकल्प शक्ति है। उसके संघर्षमय कर्मठ जीवन द्वारा उसका व्यक्तित्व निर्मित हुआ है।

मिशनरी के रूप में सुमनजी का उत्साहपूर्ण आर्यसमाजी संस्कार काम करता दिखाई देता है और राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा उन्हें जूझने का बल मिला है। निर्धनता ने जहाँ उन्हें परदुःखकातर और सेवापरायण बनने में योगदान दिया है, वहाँ उनकी ईमानदारी ने अन्याय के प्रति उनमें असहिष्णुता भर दी है। उनकी अल्हड़पनभरी मस्ती का रहस्य उनकी त्यागवृत्ति में निहित है।

सुमनजी का हिन्दी के प्रति अनुराग उनके देश-प्रेम का ही एक पहलू है। उनके लिए हिन्दी का प्रश्न मात्र भाषा की समस्या नहीं है। वह वास्तव में देश की एकता और अखण्डता की एक अनिवार्य शर्त है।

हिन्दी की सेवा सुमनजी ने कई रूपों में की है। इसके लिए उन्होंने कवि, लेखक सम्पादक और पत्रकार के रूप में अपना दायित्व योग्यतापूर्वक सँभाला है। कवि, लेखक और सम्पादक रूप में उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित होकर पुरस्कृत हो चुकी हैं। पत्रकार के रूप में उन्होंने 'दैनिक हिन्दी मिलाप' से लेकर 'आर्य', 'आर्यमित्र' और 'आर्यसन्देश' जैसे साप्ताहिक पत्रों के सम्पादन में अपना योगदान दिया है। यही नहीं, 'मनस्वी' और 'शिक्षा सुधा'-जैसी मासिक पत्रिकाओं का सम्पादन भी उन्होंने कुशलतापूर्वक किया है। पत्रकार के रूप में काम करते हुए सुमनजी राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे। फलस्वरूप सन् १९४२ में उन्हें फिरोजपुर-जेल में पंजाब सरकार द्वारा दो वर्षों तक नजरबन्द रखा गया था। उसके बाद उन्हें उनके गाँव बाबूगढ़ में नजरबन्द करके उनकी गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था।

राष्ट्रीय आन्दोलनों की भाँति सुमनजी ने स्वभावतः हिन्दी के आन्दोलनों को प्रभावशाली बनाने में सक्रिय रूप से भाग लिया है। उनके द्वारा 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' का प्रकाशन इसी दिशा में उनका एक ठोस कदम था जिसके द्वारा हिन्दी के व्यापक रूप का दिग्दर्शन कराने का यत्न किया गया है। 'भारतीय साहित्य-परिचय माला' का हिन्दी में प्रकाशन करना राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनकी जागरूकता का एक पुष्ट प्रमाण है। इसी शृंखला में हम उनके द्वारा आयोजित हिन्दी साहित्यकारों के अभिनन्दनों की गणना भी कर सकते हैं।

सुमनजी के जीवन को सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत जीवन के स्तर पर किसी सीमा द्वारा आबद्ध करके कोई विभाजक रेखा खींच पाना असम्भवप्राय है। उन्होंने जीवन को युग के सन्दर्भ में देखा है। यही कारण है कि परदुःखकातर बनकर वह किसी न किसी के दुःख को दूर भगाने की चिन्ता में निरत रहना उनका स्वभाव-सा बन गया है। दूसरों के प्रति वे इतने संवेदनशील हैं कि उनकी सहानुभूति और सहायता के लिए प्रायः किसी-न-किसी का फोन अथवा पत्र पहुँचता ही रहता है और वे उनका समाधान करने में अधिकतर व्यस्त दिखाई देते हैं। इस प्रकार उनका व्यक्तिगत जीवन भी सार्वजनिक जीवन का ही एक अंग सा बन गया है। उन्हें इसकी शिकायत कदापि नहीं है कि इस कारण उनका निजी काम पूरा होने से रह जाता है। इससे उनकी सामाजिक कर्त्तव्य-निष्ठा का परिचय मिल जाता है। वर्तमान युग में जबकि मनुष्य स्वार्थसिद्धि में ही 'मानवता' की सार्थकता देखने लगा है, कदाचित् सुमनजी की परदुःखकातरता और सेवा-परायणता उनका 'पिछड़ापन' ही समझा जाएगा जो जीवन के 'नए मूल्यों' को हृदयंगम न कर पाया हो। इतने व्यस्त जीवन में भी सुमनजी व्यंग्य-विनोद और लतीफों की झड़ी लगाये रहते हैं।

पन्द्रह वर्षों के बीच सुमनजी से मिलने और पत्राचार करने के अनेक अवसर मिले हैं। उनका तिक्त, कटु और मधुर रूप भी मैंने देखा है, परन्तु तिक्तता और कटुता

के बीच भी उनका अमंगलकारी रूप कभी मेरे सामने नहीं आया। उन्हें सदा मैंने निर्लिप्त ही पाया है। अपने मन को कभी मलिन बनाते उन्हें नहीं देखा है। जीवन-यज्ञ में होम करते उँगलियाँ जलाकर भी उन्होंने कभी आह तक नहीं भरी।

भारतीय-ज्ञानपीठ
फैज बाजार, दिल्ली ६

ये मेरे हमराही

श्री श्रीराम शर्मा 'राम'

बात कुछ पुरानी-सी हो गई कि जब प्रथम बार भाई क्षेमचन्द्रजी 'सुमन' एक सम्मेलन में लाहौर से दिल्ली आये थे। कुछ और भी साथी थे उनके साथ। श्री यशजी और माधवजी। तब ही मुझे लगा कि ये सुमनजी कुछ जाने पहचाने हैं। बातों-ही-बातों में पता चला कि सचमुच, हम दोनों भले ही एक-दूसरे के प्रति लगाव न रखते हों, पूर्व-परिचित भी न हों, परन्तु हमारा परिवार अवश्य ही एक-दूसरे से परिचित है। बात स्पष्ट हुई कि श्री सुमनजी मेरे ही जिले के अन्तर्गत हापुड़ के समीप बाबूगढ़ छावनी के निवासी हैं। उनके बड़े भाई हमारे पूर्व परिचित ही नहीं, वरन् परम स्नेही हैं। सम्मेलन शायद हिन्दी पत्रकार संघ का था। सुमनजी कदाचित् उन दिनों लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी मिलाप' के सम्पादकीय विभाग में थे। जब हम दोनों प्रथम बार मिले, तो फिर मिलते ही गए। स्नेह-सम्बन्ध प्रगाढ़ होता गया। उस अवस्था में ही मैं देखता रहा, घूरकर देखता रहा कि अल्हड़ जैसे अपने-आप के प्रति अनजान बना मेरे जिले का निवासी युवक कवि तो है ही, गद्य-लेखक और चरित्र-नायक भी है। मन
१८८ में बात आती, यह युवक क्या चाहता है। अपने जीवन में यदि महत्त्वाकांक्षी बनना
जहाँ उन्हें अपराध न हो, तो यही मैंने सुमनजी में देख पाया था। तटस्थ खड़े व्यक्ति के समान, मानो
ने अन्याय के प्रेय बना, मैं प्राणवान और तेजपुंज सुमनजी को देखने लगा।
नकी त्यागवृत्ति में किन्तु उसी समय देश की काया बदली। मेरे देखते-देखते देश में नर-संहार प्रारम्भ
सुमनजी का हिन्दी-युग में मानव का लहू, मांस और मज्जा धू-धूकर चिता के समान जल
हिन्दी का प्रश्न मात्र गए ऐसे उमड़े और इन्सानी समाज यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ
ना की एक अनिवार्य । मानो इन्सान ने अपनी बर्बरता से इतिहास के मुँह पर स्याही को
ने एक बार फिर बता दिया, कि उसका स्वार्थ, दम्भ जब तक है,
मुहम्मद का नाम भले ही लिया जाता रहे, परन्तु उसके उपदेशों

की धरती पर गड़े इन्सानी मेमों में कोई प्रश्रय प्रदान नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार, उन इन्सानों की भीड़ में कुछ खोये हुए, कुछ लुटे हुए, मेरे पूर्वपरिचित सुमनजी भी दिल्ली आ गए। शायद वे देश के क्षितिज पर उठने तूफान में पूर्व ही आ गए थे। कह सकता हूँ कि वे मेरे हमराही बनकर दिल्लीवासी हो गए। किन्तु इन पंक्तियों में जो कुछ मुझे कहना है, उसमें भाई सुमनजी का मेरा-जोगा तो क्या, इन्सानी दलदल की बू अवश्य उठ खड़ी होगी। और सचमुच, मुझे लगा कि भाई सुमनजी, जिनके प्रति किसी समय मेरे मन में यह भाव आया था ये युवक महाशय ठहरे युक्तप्रान्त के निवासी, भला लाहौर सरीखी गर्वीली और चमकीली नगरी में किस प्रकार अपना स्थान बना सकेंगे जिनके वदन पर न शऊर में तड़क भड़क वाले वस्त्र, न वाणी में दिल खींचनेवाली तैनूं-मैंनूं का तारतम्य तब भला, उन पंजाबियों के मध्य यह हिन्दी का कवि और गद्यकार किसी अच्छे स्तर पर अपना स्थान बना सकेगा, इस विषय में मेरा सन्देह सारहीन नहीं था किन्तु मेरा यह भ्रम देर तक नहीं टिका रहा। शायद यशजी या माधवजी से मैंने सुना कि सुमनजी 'तेज' हैं। वह तेजी कैंची-सरीखी थी या चाकू-सरीखी यह तो मैं आज तक नहीं समझ पाया परन्तु जब सुमनजी दिल्ली में स्थायी रूप से आ बसे तो पहाड़ी धीरज के उनके मकान में आते-जाते जो बात सर्वप्रथम मेरे मन में पैदा हुई वह यह थी सुमनजी अध्यवसायी है, परिश्रमी है और समय के साथ बहती धारा में गोता लगाना जानते हैं। यदि आवश्यक हो, तो वह उस धारा के मोड़ को अपने अनुरूप मोड़ने का भी प्रयत्न करते है।

प्राय 'साहित्य और साहित्यकार का उत्तरदायित्व' नामक उद्घोष मेरे भी कानों में आता है। क्या तमाशा है यह, कैसी अटपटी-सी बात है कि जो व्यक्ति तिल-तिल कर अपना खून जलाये, जीवन के अँधेरे में बैठकर मानव समाज के लिए प्रकाश की खोज करे, परम और श्रेष्ठ भावनाओं को निपट अन्धकार से ढूँढकर समाज के मन लोक में प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न करे, उसीसे तकाजा किया जाता है कि हजरत, अपना उत्तरदायित्व समझो। अर्थात् तुम भूखे तो मरते हो, जीवन के उत्पीड़न से सिसकते हो परन्तु समाज के साधारण नागरिक की तरह कोई तुम्हें लील न जाये, परिस्थिति न दबोच दे। मन का क्षोभ चीत्कार के स्वर में मत उँडेलो। जीवन की पीड़ा आँसों के खारे पानी में बहा दो। केवल वाणी से कहो, कागज पर कहो, अपनी मत कहो, दूसरे की कहो। क्योंकि तुम लेखक हो, कवि हो। फलस्वरूप, ऐसे पागल बने व्यक्ति से आशा की जाती है कि वह सामान्य व्यक्ति की तरह अपनी नग्नता का, अपनी अभावग्रस्तता का प्रदर्शन न करे। क्योंकि समाज कहता है, कवि और कलाकार 'बड़ा आदमी' है। वह दूसरों के लिए मार्ग प्रशस्त करता है, अपने लिए नहीं।

कदाचित् भाई सुमनजी ने इस बात का निर्वाह किया है। यद्यपि, इन पंक्तियों का लेखक समाज की इस मान्यता का समर्थक नहीं, परन्तु सुमनभाई ने अपने जीवन पर

उत्तरोत्तर इसे परखा है, देखा है और समझा है। उनके जीवन का संघर्षमय युग दूसरों की दृष्टि में—और शायद सुमनभाई ने भी इसे मान लिया हो—किन्तु इस लेखक की यह धारणा है वह संघर्ष ही क्या, जो बीत जाये। वह वर्तमान क्या, जो भूत को भूल जाये। अतएव, बन्धुवर सुमनजी अभी भी संघर्ष के घात-प्रतिघात की चोटों को सेंक रहे हैं और समझ रहे हैं। वह अतीत जो आज वर्तमान में ढल गया है और उसकी मधुर लोरियां को सुन, तनिक सो भर गया है, जब जागेगा, तब निश्चय ही, नन्हे-मुन्ने बालक के समान, माँ की गोद में पड़ा, उस माँ के स्तनों को ढूंढ पाने के लिए अपने छोटे-छोटे हाथ चलाने लगेगा'''हाँ, वह माँ की कसक, वेदना और दुग्धहीन छाती की पीड़ा का तनिक भी आभास न पा सकेगा।

इस प्रकार निश्चय ही, सुमन के पास अपना अतीत है, उसकी छाया है। कदाचित् उसी से उद्वेलित बन, वे आज जीवन के विश्वस्त और विस्तृत पथ पर दौड़ते हुए भी, पूरे संवेदनशील हैं, उनका अदम्य उत्साह और उमंग, भावना में ओत प्रोत है। हमारा मत है, वह बीते हुए युग की देन है। सुमनजी का साथियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण बने रहना, साहित्य के प्रति अटूट श्रद्धा और लगन, ये उनकी जीवन-तरी के ऐसे दो चप्पू हैं कि जिनके सहारे वे दरिया में बहती अन्य नौकाओं की भीड़ में अपनी नौका को निर्विघ्न और अबाध रूप से खेते लिये जा रहे हैं। मुझे याद है, एक बार राजकमल प्रकाशन में बैठे हुए उन्होंने एक दिवंगत हुए कवि और रेडियो के कलाकार के असहाय परिवार के प्रति मुझसे कुछ देने को कहा। सुमनजी उस दिवंगत के परिवार के लिए चन्दा एकत्र कर रहे थे, याद आता है, कई हजार, शायद दो-तीन हजार रुपया उस बेचारी नारी और उसके असहाय बच्चों को सुमनभाई दे आये थे। 'सात-पाँच की लाकड़ी और एक जने का बोझ' वाली बात जब मैंने उस समय देखी, तो बरबस, मेरा मन पुलकित हो उठा और सुमनजी के प्रति नई भावनाओं से पूरित।

गद्य-साहित्य में सुमनजी ने क्या-क्या लिखा है, कवि के रूप में उन्होंने कितनी कविताएँ रचीं, एक हमराही के नाते मुझे यह बताना श्रेयस्कर नहीं लगता। इतना लिख दिया है कि उसका एक बड़ा ब्यौरा बनता है। लेखक और कवि-जीवन के साथ, सुमन भाई समाज में तैरते हुए कितने बड़े सामाजिक कार्यकर्ता हैं, इसका भी एक बड़ा लेखा तैयार होता है। फिर भी, यह बात वर्तमान के बताने की नहीं, भविष्य स्वयं बता देगा। क्योंकि उनका वर्तमान जिस भविष्य का प्रतिनिधित्व करेगा, वह प्रहरी इतिहास के पन्नों में उलट-उलट कर घुट-घुट कहता दिखाई देगा। मैं तो केवल इतना कहूँगा, ऐ मेरे हमराही, मैं बूढ़ा हो चला हूँ, तुम जवान हो। मैं घिसटता हूँ, तुम दौड़ते हो। मैं गिरता हूँ, तो गिरने दो। तुम आगे बढ़े जाओ, भगवान् तुम्हारे साथ है।

१७१ ए, किदवईनगर,
नई दिल्ली

'सुमन' क्या है !

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

दोस्तों ने जिस जगह 'बिस्मिल' किया मुझको तलब,
मैं वहीं फौरन गया, झटपट गया, उड़कर गया।

'बिस्मिल' का यह शेर सुमनजी के व्यक्तित्व का इतना सही नक्शा है कि मेरी दृष्टि में इससे अच्छी परिभाषा सुमन के व्यक्तित्व की नहीं हो सकती।

मेरा परिचय सुमनजी से बीस वर्ष पुराना है। इन बीस वर्षों में मैंने इस व्यक्ति के व्यक्तित्व का जो अध्ययन किया है, उसका निष्कर्ष यही है कि इस दोस्त-तबीयत आदमी ने जितनी लोकप्रियता प्राप्त की है, उतनी लोकप्रियता बहुत कम लोगों को मिली है।

मेरे बाबा कहा करते थे—"बेटा ! जिस आदमी के दरवाजे चार लोग आकर बैठें, जिसे चार आदमी पूछें, वह बड़ा भाग्यशाली है।" और सुमन से प्रतिदिन न मालूम कितने आदमी मिलते हैं, कितने पूछते हैं, कितने आते हैं, जबकि न वह कोई 'मिनिस्टर' है, न 'अफसर' है, और न कोई बड़ा 'बिज़नेसमैन' है। और इस दृष्टि से, बकौल बाबाजी के, सुमन एक भाग्यशाली पुरुष हैं।

सुमनजी की दोस्ती केवल साहित्य क्षेत्र के लोगों से ही, हो ऐसी बात नहीं, अपितु उनकी मित्रता हर अदना-आला से है। एक बस-कण्डक्टर भी उनसे कुछ अपेक्षा रखता है और एक कम्पोज़ीटर भी अपनी गरज से उनका दरवाजा खटखटाता है। नवोदित लेखक भी उनसे मार्गदर्शन चाहते हैं और बड़े-बड़े प्रकाशक भी सुमनजी के समक्ष अपनी समस्याएँ रखते हैं। इतना ही नहीं, मुहल्ले में रहनेवाला एक चपरासी भी उनसे यह सहायता चाहता है कि वे स्कूल से उसके लड़के की फीस माफ करा दें। और सुमनजी हैं कि बेगरज सबकी गरज पूरी करते हैं, हरेक को आश्वस्त करते हैं। सुमन का परिचित हरेक व्यक्ति उन्हें अपना आत्मीय समझता है और उन पर अपना ज़ोर रखता है।

सुमन के व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है उनकी आस्था और लगन। उनके इस पक्ष का परिचय मुझे तब मिला जिन दिनों वे मेरे मरीज रहे। सुमनजी से मेरा परिचय अंग-विशेषज्ञ-कलाकार श्री आसाराम शुक्ल के यहाँ सन् १९४६ में हुआ था। इस परिचय के कुछ दिन बाद ही उन्हें गले की खराबी और खाँसी की शिकायत हो गई और रोग कुछ हठीला बन गया था। साधारण उपचारों से जब कोई लाभ न दिखाई दिया तो मैंने उनसे कहा कि "आपको मैं योग की क्रिया कराना चाहता हूँ, उससे प्रारम्भ में काफी परेशानी होगी, किन्तु थोड़े समय में ही अभ्यस्त हो जाने पर काफी लाभ भी होगा।" मैं समझता था कि शायद सुमनजी इन परेशानियों की अपेक्षा कोई जल्दी का इलाज अथवा कोई जादू-असर की औषधि तजवीज कर देने के लिए कहें, लेकिन उन्होंने बड़ी आस्था और दृढ़ता के साथ मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया। वस्तुतः सुमनजी की इस आस्था से मैं बहुत

प्रभावित हुआ और मन मे उनके इस गुण की मैंने बहुत प्रशंसा की। और फिर मैंने उन्हे योग की नेति-क्रिया शुरू कराई। उन्होने इस क्रिया के प्रारम्भिक कष्ट को बडे साहस के साथ झेला। वे प्रतिदिन प्रात काल अपने घर से दो मील चलकर मेरे पास आते और मैं उन्हे नेति कराता। कहना न होगा कि उनकी इस लगन और आस्था का बडा अच्छा फल यह निकला, उनका कष्ट मूल रूप से दूर हो गया।

और यही आस्था और लगन सुमनजी की सफलता का रहस्य है।

सुमनजी के साहित्यिक जीवन के सम्बन्ध मे मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। राष्ट्र, समाज और साहित्य की उन्होंने जो कुछ सेवा की है, वह जग-जाहिर है। सुमन की लेखनी मे जमाव है, भाषा मे अभिव्यक्ति है, विचारो का एक शृखलाबद्ध क्रम है, और डूबकर दूर की कौडी लाने की क्षमता है। सक्षेप मे, उत्कृष्ट साहित्य-सृजन के सभी तत्त्व 'सुमन' मे हैं। लेकिन साहित्यकार से पहले 'सुमन' आदमी हैं, इन्सान है। अकबर साहब का शेर है

शेख साहब गो फरिश्ता हों तो हों,
आदमी होना मगर दुश्वार है!

आदमी होने की बहुत-से लोगो ने अनेक परिभाषाएँ की है, लेकिन मेरा अपना मानदण्ड आदमी के लिए यह है कि जिससे मिलकर खुशी हो वही आदमी है। और सुमन से मिलकर प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कराहट खेलने लगती है, बातचीत से हृदय मे गुदगुदी होने लगती है, उसका हृदय स्नेह और आत्मीयता से आप्यायित हो जाता है।

समाज-सेवा-विशेषज्ञो का कथन है कि मार्ग मे किसी व्यक्ति को रास्ता बता देना, किसी मजदूर का बोझ उठवा देना तथा बाजार से पडोसी का सौदा ला देना भी काफी महत्त्वपूर्ण समाजसेवाएँ होती है, और इस दृष्टि से मैं सुमन को एक सच्चा समाजसेवी कहूँगा। लोगो के छोटे-छोटे काम करके, उन्हे आश्वासन देकर अनायास ही सुमनजी समाज को आगे बढने मे भारी योगदान देते हैं, और इतना ही नहीं, कवि-सम्मेलनो, सभाओं, गोष्ठियो आदि का आयोजन करके सुमनजी जो स्फूर्ति और आमोद जन-जीवन मे भरते रहते है, उसका अपना अलग महत्त्व है।

लेकिन सुमनजी की यह बात मुझे पसन्द नहीं आई कि उन्होंने घर इतनी दूर बनाया है, जहां मित्रो और उनके प्रेमियो को पहुँचने मे कठिनाई होती है, हालाकि इसका सन्तुलन उन्होंने फोन लगवाकर किया हुआ है, किन्तु इस यान्त्रिक मुलाकात मे वह मजा तो नहीं आता जो आमने-सामने होने पर मिलना है।

अन्त मे मैं 'सुमन' का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ, और चूँकि अब वह मुझे अग्रज मानने लगे है, अत आशीर्वाद भी दूँगा कि 'सुमन' शतायु हो।

तुम सलामत रहो हजार बरस;
हर बरस के दिन हों पचास हजार!

स्वास्थ्य-विहार, सीलमपुर (शाहदरा), दिल्ली ३१

सच्चे सारस्वत

डॉ० प्रभाकर माचवे

वैसे हिन्दी में 'सुमन' उपनाम वाले कई साहित्यिक हैं, पर क्षेमचन्द्र एक ही हैं। सो, हमारे सुपरिचित साहित्य-सेवी श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने अपने जीवन की आधी सदी का सोपान छू लिया — इस समाचार पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। समय कितनी जल्दी और तेज़ी से उड़ जाता है। जीवन के तीस वर्ष सुमनजी ने हिन्दी सेवा में बिता दिए। इसमें बारह वर्ष से अधिक समय से मैं उन्हें जानता हूँ। इस बीच जैसे उनकी वेश-भूषा में कोई परिवर्तन नहीं आया, उनका स्वभाव भी वैसा ही सहृदयतापूर्ण और स्नेहशील बराबर बना रहा है। चाहे स्व० शंभुनाथ 'शेष' का परिवार हो, चाहे स्व० नेपालीजी का, सुमनजी अपनी शक्ति के अनुसार सबको बराबर कुछ-न-कुछ ठोस मदद पहुँचाते ही रहे हैं।

स्मरण नहीं आता कि सबसे पहले उनसे पत्र-व्यवहार किस प्रसंग में हुआ या भेंट कहाँ पर हुई। पर मुझे एक पुरानी बात बराबर याद आती है। मेरी आदत है कि मैं खुद आगे होकर बहुत कम किसी प्रकाशक के पास जाता हूँ, अपनी रचना छपवाने। किन्तु मैं उन लोगों की सहायता या उपकार कभी नहीं भूलता, जिन्होंने मेरे ग्रंथों के प्रकाशन में किसी भी तरह योगदान दिया हो। राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित 'हिन्दी-निबंध' नामक पुस्तक मुझसे लिखवाने का सारा श्रेय सुमनजी को है। वे मुझे दरियागंज ले गये, ओमप्रकाशजी से मिलवाया, एडवांस रायल्टी दिलवाई। यह घटना सन् ५२-५३ की है, जब मेरा स्थानान्तर दिल्ली-रेडियो से नागपुर हुआ था। मुझे स्मरण है कि सुमनजी की ही प्रेरणा से डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने 'मैं इनसे मिला' के दूसरे खंड में मेरी इंटरव्यू समाविष्ट की थी।

दूसरी घटना याद आती है सन् '५७ की। तब मैं विनयनगर में रहता था। आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में काम करता था। मेरे गरीबखाने पर उस दिन मैथिलीशरणजी, सियारामशरणजी और 'दिनकर'जी भोजन के लिए पधारे थे। सुमनजी भी अपनी 'सरस्वती-सहकार' की प्रकाशन-योजना लेकर उस समय आये थे। मैंने जिन-जिन भाषाओं और उप-भाषाओं के लिए साहित्येतिहासकारों के नाम उन्हें सुझाये थे, वे सब प्रायः उनकी अंतिम योजना में ज्यों-के-त्यों रहे। मुझे स्मरण है कि मराठी भाषा और साहित्य पर पुस्तक लिखने के लिए मैंने और किसी का नाम सुझाया था। पर सुमनजी नहीं माने, उन्होंने वह पुस्तक मुझसे ही लिखवाई। मैंने आज तक अनेक हिन्दी लेखकों को सुझाव, नई कल्पनाएँ, डॉक्टरेट के प्रबंध की सामग्री (रूपरेखा से लगाकर अंतिम गठन तक), रचनाओं पर चित्र, लेखकों के नाम आदि दिये हैं, पर कुछ ही उनका श्रेय मुझे देते हैं, अधिकतर लोग तो मेरे सौजन्य का फायदा उठाकर मुझे नसैनी मानकर इस सीढ़ी को ठुकराकर आगे बढ़ गए हैं। सुमनजी

ने ऐसा कभी नही किया। मेरी हर बात का यथोचित उल्लेख किया, साभार सम्मानपूर्वक प्रतिदान ही दिया।

सन् '४२ के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता, 'मल्लिका', 'कारा' और 'बन्दी के गान' के कवि, 'साहित्य-विवेचन' के लेखक, 'आलोचना' के सपादक, कई पाठ्य-ग्रथो के प्रणेता, सुमनजी सन् '५६ मे साहित्य अकादेमी मे आये। तब से सन् '५६ तक (जब मैं दो वर्ष के लिए अमरीका चला गया था) वे बराबर मेरे सहयोगी रहे। मैंने हिन्दी का सारा काम आँख मूँदकर उनको सौंप दिया था। शुरू-शुरू मे अकादेमी मे मैं अकेला था, चौदहा भाषाओं का काम मुझ अकेले को ही देखना पडता था। दो वर्ष बाद मेरे सहयोगी डॉ० के० एम० जार्ज आ गए तो दक्षिण की चार भाषाओं का काम वे देखने लगे। फिर भी बची हुई दस भाषाओं का काम पाँच वर्ष तक देखना काफी जिम्मेदारी का काम था। खास तौर से उस समय जब सस्था नई-नई थी और परपराएँ और लीकें बनी नही थी। तिस पर मैं गरीब हिन्दी का एक अदना-सा लेखक भी था इस कारण हिन्दी वाला का विशेष कोप मुझ पर ही बरसता था। सन् '५६ मे १४ भाषाओ की विराट् प्रदर्शनी, चौदह हज़ार पुस्तकों की, अकादेमी की ओर से प्रदर्शनी-स्थली पर हुई। सुमनजी उसके हिन्दी-विभाग के मुख्य प्रबन्धकर्त्ता थे। मुझे अभी तक याद है कि वे कहाँ-कहाँ से बहुत दुर्लभ सामग्री लाये थे।

इस तरह 'टीम-स्पिरिट' से हमारे काम करने की खूबी यह थी कि साहित्यिक प्रश्नो पर पारस्परिक मतभेद होते हुए भी सस्था मे एक दिल से काम करते थे। सुमनजी को नई कविता पसन्द नही थी, मुझे उनके चुनिन्दा लोकप्रिय गीतकारो से कोई विशेष आसक्ति नही थी। उन्हे कवयित्रियों और प्रेमगीतों आदि से अपनाव विशेष था, मेरी उस दिशा मे विशेष रुझान या गति नही थी। एक प्रसग ऐसा आया कि सन् '५६ मे 'कान्टेम्पो-रेरी इडियन लिटरेचर' पुस्तक छपी। मैंने उसका हिन्दी-अनुवाद किया। उस पुस्तक मे हिन्दी पर वात्स्यायनजी का लेख था—उसको लेकर यार लोगों ने मेरी ही मरम्मत शुरू की। वात्स्यायनजी तो विदेश मे थे, और यहाँ रोज़ निषेध-प्रस्ताव, वक्तव्य और गालियाँ मुझे खानी पड रही थी। सुमनजी का मत मैं नही जान सका; पर शायद वे तटस्थ थे। उस पुस्तक के अग्रेज़ी मे और हिन्दी मे दो-दो सस्करण बिक गए। वात्स्यायनजी की कई स्थापनाएँ बाद मे शायद सच ही निकली। फलत उस लेख के तब के निन्दक और आलो-चक अब प्रशसक भी बन गये। पर मुझ पर सबका रोष बराबर कायम ही रहा। जबकि तथ्य यह है कि उस लेख से मेरा कोई सम्बन्ध नही था—मैं तो निमित्त मात्र था। लेखकों के नाम हिन्दी सलाहकार समिति ने सुझाये थे—अग्रेज़ी मे लेख बच्चनजी लिखें या वात्स्यायनजी। बच्चनजी ने मना कर दिया और वात्स्यायनजी ने लिख दिया। वह लेख कब आया, कब प्रेस मे गया, मुझे कुछ भी पता नही था।

अकादेमी के कार्यकाल मे सन् '५६ तक मैं हिन्दी का काम देखता रहा—सुमनजी

मे बडा सहयोग और साहाय्य मिला—प्रकाशन, मुद्रण, प्रूफरीडिंग और बिक्री तक मे। सुमनजी हरफन-मौला सिद्ध हुए।

साहित्य-जगत् मे अपने-आपको अध्यात्मवादी और प्रगतिवादी कहने-मानने वाले कुछ लोगो ने, अपनी सहज प्रवृत्ति के अनुसार सुमनजी पर व्यग्य लेख तथा व्यग्य कविताएँ भी लिखी, पर सुमनजी ने उनका कभी प्रतिवाद नही किया। मेरी ही तरह वे भी उस विष को पी गए, पचा गए, गुनगुनाते रहे—हाथी चलत है अपनी गति सों। दफ्तर मे साथ साथ बीते सात-आठ वर्षों के बारे मे इतना ही कहना अलम् होगा कि साहित्य अकादेमी के अधिकारियों मे खद्दर के सिवा और कोई कपडा न पहनने वाले, सुमनजी और मैं, यही दो 'गाधी के गधे' थे। यानी दोनों ने अहिंसक प्रतिकार ही किया।

जब मैं दो साल विदेश मे था, तब एक दिन सुमनजी की चिट्ठी दूर विलायत पहुँची कि 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' सग्रह मे मेरी भी कोई कविता उन्होने चुनी है और उसे छाप रहे हैं। समाचार जानकर खुशी हुई। क्योंकि कहाँ 'प्रेम' और कहाँ 'गीत'! मुझे तो हिन्दी के आलोचक इन दोनो मे ही बहुत दूर मानते हैं।

बाद के वर्षों मे 'अज्ञेय' की अध्यक्षता मे हुए 'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियो के प्रेम गीत' के उद्घाटन-समारोह की याद आती है, जो सुमनजी ने जुटाया था आचार्य राम-लोचनशरणजी का सम्मान-समारोह याद आता है, जहाँ हम दोनो बोले थे। और चीन के आक्रमण के बाद उनके द्वारा बडी मुस्तैदी मे तैयार की हुई 'चीन को चुनौती' कविता सग्रह वाली पॉकेट-बुक याद आती है। सुमनजी के आग्रह से ही मैंने भी उसमे कविता लिखी, वर्ना मैं इतनी लम्बी कविता उस समय शायद न लिखता। इस ग्रन्थ की रॉयल्टी की राशि श्रीमती इन्दिरा गाधीजी के द्वारा राष्ट्रीय रक्षा-कोष मे दी गई।

सुमनजी सच्चे सारस्वत, अच्छे प्रकाशक, साहित्यिक साथी, विवेकशील सपादक, परिश्रमशील अध्येता, सस्कृत के सुविज्ञ पण्डित और प्रामाणिक एव कृतज्ञ मित्र रहे हैं। उन्होने अपनी कलम के बल पर स्वावलबी जीवन बिताया है। किसी गुटबदी मे वे नही है। मैथिलीशरणजी उन्हे बहुत मानते थे। इन्द्रजी, जैनेन्द्रजी, नगेन्द्रजी, विजयेन्द्रजी, नरेन्द्र-जी (शर्मा) आदि हिन्दी की इन्द्र-सभा के सभी बडे-छोटे इन्द्र उनकी इस तपस्या से विचलित नही, पर प्रभावित और आशान्वित जरूर रहे हैं। मेरे मन मे हिन्दी की आज की स्थिति के सुमनजी सही-सही प्रतीक हैं। जो समस्याएँ उनकी हैं, हर हिन्दी साहित्यिक की हैं।

वे दीर्घायु हों, यही हार्दिक कामना है।

साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र-भवन, नई दिल्ली १

राजधानी के पंडा

श्री श्रीनिवास गुप्त

पूज्यचरण दद्दा जिन दिनों राज्य-सभा के सदस्य थे, उन दिनों प्रायः मैं उनकी सेवा में रहता था। प्रारम्भ में दिल्ली में हम लोगों का कोई परिचय विशेष न होने के कारण असुविधा होती थी। ऐसे ही एक दिन श्री सुमनजी पूज्यचरण दद्दा से मिलने आये। पूज्यचरण दद्दा में एक अभूतपूर्व गुण था कि वे सहज ही मनुष्य को पहचान लेते थे। यद्यपि इससे पहले राजकमल प्रकाशन में भाई देवराजजी के साथ श्री सुमनजी से मेरा परिचय हो चुका था, पर वह बहुत ही साधारण और कामचलाऊ था। उस दिन एक विशेष व्यक्ति की तलाश की बात थी। हम लोगों को उनका अता-पता ज्ञात न था। तुरन्त ही सुमनजी ने कहा, मैं पता लगाकर कल आपको सूचित कर दूंगा। दूसरे दिन सुमनजी ने उनका पता तो लगाया ही, उन्हें सशरीर लेकर उपस्थित भी हो गए। पूज्यचरण दद्दा बोले—'आप तो राजधानी के पंडा हैं। प्राचीन काल में जब हम लोग तीर्थाटन के लिए जाते थे, तब पंडे ही हमारे मार्गदर्शक होते थे। उस दिन से सुमनजी को मैं बराबर विनोद में 'राजधानी का पंडा' ही कहता हूँ।

श्री सुमनजी एक ओर कवि हैं तो दूसरी ओर श्रेष्ठ गद्यकार भी। संकलनकर्ता तो वे बेजोड़ हैं। हिन्दी की कवयित्रियों के प्रेम-गीतों का जो उन्होंने संकलन किया है वह इसका प्रमाण है।

राजनीतिक चेतना भी श्री सुमनजी में भरपूर है। वे अपने क्षेत्र के सर्वमान्य व्यक्ति हैं। अपने अरुणोदय में वे जेल भी रहे और एक जगह निर्वासित भी। शाहदरा-दिल्ली में कोई ऐसी संस्था नहीं जिससे सुमनजी का सम्बन्ध न हो। कई शिक्षण-संस्थाओं के वे संचालक, सभापति और सदस्य हैं। घर से आठ बजे प्रातःकाल चलकर अपने कार्यालय का कार्य पूर्ण करके फिर जनता-जनार्दन की सेवा करते-करते रात को दस बजे के पश्चात् ही वे घर पहुँच पाते हैं।

श्री सुमनजी अत्यन्त ही सरल और निष्कपट व्यक्ति हैं। वे ब्राह्मण हैं, सो भी सारस्वत। किसी अनौचित्य को देखकर उन्हें तुरन्त ही क्रोध आ जाता है। इसी क्षणिक क्रोध के कारण कई बन्धु उनसे असन्तुष्ट हो गए। नौबत यहाँ तक आई कि एक बार तो नौकरी ही समाप्तप्राय हो गई थी। श्री सुमनजी के निष्कपट प्रेम और छोटों के अनुग्रहों के लिए स्नेह भी भरपूर है।

श्री सुमनजी अंग्रेज़ी बहुत कम जानते हैं, उनकी चतुर्दिक् प्रतिभा हिन्दी के माध्यम से ही है। राष्ट्रभाषा को अपने इस वरद पुत्र के लिए गर्व होना ही चाहिए।

पूज्यचरण दद्दा के अत्यन्त ही विश्वसनीय व्यक्ति श्री सुमनजी थे। कोई भी कार्य निःसंकोच रूप से वे उन्हें सौंप देते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह काम अत्यन्त

ही स्वल्प समय में पूर्ण हो जाता था। कभी कभी तो उनकी इस क्षमता पर बरबस आश्चर्य होता था।

राजधानी के श्री सुमनजी चलते-फिरते कोष हैं। कौन साहित्यकार दिल्ली में बाहर से पधारे हैं और कहाँ पर उनका निवास है, कितने दिन वे दिल्ली में रहेंगे सब सुमनजी को ज्ञात रहता है। इतना काम काज करते हुए भी इन सब बातों की ओर मानो उनका मन सदा सजग रहता है।

एक बात लिखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। पूज्यचरण दद्दा जब राज्य-सभा से मुक्त हुए, तब उनके एक मित्र ने विनोद में श्री सुमनजी के पास लिख-कर भेजा

दद्दा दिल्ली से गये, सुमन सराहैं कौन।

श्री सुमनजी ने अपनी सहज विनोद-प्रियता से उसी पर्चे पर लिख दिया

अब तो दादुर बोलि हैं, भई कोकिला मौन॥

श्री सुमनजी मेरे मित्र हैं बंधु हैं, मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ और अपने प्रणाम उन्हें समर्पित करता हूँ।

कनकने-बन्धु,
चिरगाँव (झाँसी)

यथा नाम, तथा गुण

श्री हरिदत्त शर्मा

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से जब भेंट होती है तो महसूस होता है कि एक यार से मिल रहे हैं, एक ऐसे यार से जो बड़ा खुशमिजाज, हँसमुख और लतीफेबाज यार है। मिलते ही हँसी के फव्वारे छूटते हैं, कविताओं का वातावरण बनता है और लतीफों की झड़ी लग जाती है। उनकी संगत में जितना समय बीत जाए, उतना ही थोड़ा।

यह कहने की जरूरत नहीं है कि ऐसा आदमी जहीन होता है और यह भी कहने की जरूरत नहीं कि हँसोड़ जहीन ऊपरी तौर पर ढीला-ढाला लगता है। ढीला कुर्ता, ढीली धोती, कुर्ते पर जवाहरकट सदरी, सिर पर गांधी टोपी और अगर गांधी-टोपी न हुई तो कुछ काले, कुछ धौले बाल, पतले लम्बे चेहरे पर एक अजीब सादगी से भरा ढीला-पन बिखेरते हैं।

यह स्व-प एक गांधीवादी का होता है। वह गांधीवादी भी है, राष्ट्रीय आन्दोलन के सिपाही भी रहे हैं और आज भी वह कांग्रेस के तपे-सधे कार्यकर्ता हैं। लेकिन इस स्व-प के अन्दर दिल कुछ बांका है। इसीलिए वह कोरे कांग्रेसी कार्यकर्ता नहीं, बल्कि कवि और साहित्यकार भी हैं। चूंकि कवि और साहित्यकार भी हैं, इसलिए यारबाश भी हैं। यह उनकी यारबाशी या यारनबाजी का ही नतीजा है कि चुनावों में वह जहां कांग्रेस का साथ देते हैं वहां अपने यारों को भी निराश नहीं करते। कई बार देखा है कि वे यारों की खातिर अपने कांग्रेसी चोले की परवाह नहीं करते और गैर-कांग्रेसी दोस्तों की यहां तक मदद करते हैं कि उनकी चुनाव-सभाओं का सभापतित्व तक कर डालते हैं। उनसे अगर पूछा जाता है तो वह साफ साफ कह देते हैं कि यह ठीक है कि हम कांग्रेसी हैं, लेकिन सबसे ऊपर किसी के यार भी तो हैं।

उनकी यह खासियत ही उनकी लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण बनती है। साहित्यिक गोष्ठी हो या राजनीतिक मंच सुमनजी सुमन की तरह महकते है और सब जगह से वाहवाही लेते हैं। मित्रों की सदाशयता पाकर वे मात्र कवि, लेखक तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता ही नहीं रह गए हैं बल्कि एक भरपूर नेता भी बन गए हैं। दिल्ली में जब सुमनजी का नाम पुकारा जाता है तो उसका मतलब यह होता है कि एक नेता का नाम पुकारा गया है। कवि-सम्मेलन में जायेंगे तो अध्यक्षता उन्हीं को करनी होगी, राजनीतिक सभा में जायेंगे तो वहां भी अध्यक्ष का आसन उन्हीं को सुशोभित करना होगा। यह हक उन्होंने अपनी दोस्ती अथवा दिल की उदारता से ही हासिल किया है।

जब वह इस पूरे हक में होते हैं तो उनका लिबास कुछ चुस्त होता है। चुस्त चूडीदार पाजामा, चुस्त अचकन, सधी नपी-तुली टोपी। गर्मियों में ये कपडे खद्दर के होते हैं, और सर्दियों में देसी ऊन के। शीत में कंधे पर एक ऊनी चादर भी आ विराजती है। इस लिबास में उनका व्यक्तित्व पूरा नेता का व्यक्तित्व होता है। लेकिन नेतृत्वजन्य परिस्थितियों के भार से चाहे वे ऊपर से कितनी ही गम्भीरता ओढ़ लें, उनका दिल अन्दर से मुस्कराता रहता है और वह मुस्कराहट कभी-कभी उनके ओठों पर आकर नाचने लगती है। मतलब यह कि सुमनजी नेता होते हुए भी हृदय की कोमल भावनाओं को कभी नहीं छोड़ते या कहना चाहिए कि छोड़ ही नहीं सकते।

उनकी यह हृदयगत कोमलता ही उनके मैत्रीक्षेत्र को बढाती है। अपने राजनीतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सहधर्मियों की सेवा करना ही उनका इष्ट कार्य रहता है। उनकी यह रचनात्मक प्रवृत्ति उनकी सृजनात्मक वृत्ति भी बन गई है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका सृजन केवल राजनीतिक ही नहीं है, साहित्यिक भी है। कविता, जीवनी, कहानी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आलोचना, संस्मरण-साहित्य की कौन सी ऐसी विधा है जिसने उनकी लेखनी का स्पर्श पाकर अपने को धन्य नहीं किया। इतिहास, दर्शन, खगोल, भूगोल और राजनीति के विषय भी उनकी लेखनी से कृतार्थ हुए हैं। सुमनजी के

विषय में कहा जाता है कि जहाँ वह एक महान् लेखक है, वहाँ एक बहुत बड़े संग्राहक भी हैं। विभिन्न विषयों पर जहाँ उन्होंने दर्जनों ग्रन्थ लिखे है, वहाँ उनका संग्रहालय भी बड़ा श्लाघ्य है। शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिस पर उनके संग्रहालय में पुष्कल सामग्री न हो। उनके इसी संग्रह से प्रभावित होकर उन्हें हिन्दी-जगत् 'एन्साइक्लोपीडिया' पुकारता है। इसी कारण साहित्य अकादेमी में श्री प्रभाकर माचवे के साथ सुमनजी का योग साहित्यिक क्षेत्रों में बहुत ही सराहा जाता है।

सुमनजी की साहित्य-सृजन-सम्बन्धी गतिविधियाँ उन्हें एक साहित्यिक योगी के रूप में प्रतिष्ठित करती है। धैर्य से अपने सृजन-कर्म में लगे रहना और कुशलता से उसे धार्मिक कृत्य की तरह करते रहना उनकी बान है। सुमनजी ने रोजी-रोटी के लिए कितने ही धंधे क्यों न किये हों, लेकिन उनका साहित्यिक कर्म नैष्ठिक भाव से चलता ही रहा है। अपनी लगनशीलता, तत्परता और योग्यता के आधार पर ही वह साहित्य-जगत् के एक प्रेरक व्यक्तित्व बने है। कहा जा सकता है कि वह वाङ्मय-सरोवर के हंस हैं।

अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए वे बड़ी कुशलता से अपने साहित्यदेवता का आराधन, मनन एवं चिन्तन करते है। सुमनजी एक जन्म का प्रतिफल नहीं हैं, लगता है उनके इस व्यक्तित्व के पीछे जन्म-जन्मांतरों की साधना है। सुमनजी अजातशत्रु भी है। यदि उनसे कोई स्वयं ही वैर करने लगे तो बात दूसरी, लेकिन उनसे वैर करना स्वयं को गड्ढे में गिराना है। वैर सिंह से टकराकर स्वयं चूर-चूर हो जाता है। लग सकता है कि उनकी यह साधुवृत्ति 'अतिशयोक्ति' है, लेकिन सुमनजी को देखकर यह कहा जा सकता है कि ऐसे साधु जीवन होते है।

साधु जीवन की इसी कलात्मकता में से सुमनजी का अनुपम व्यक्तित्व निकला है। असम्भव शब्द या तो नैपोलियन बोनापार्ट के यहाँ वर्जित था या सुमनजी के यहाँ। इन पंक्तियों के लेखक ने अनेक बार यह देखा है कि कोई प्रकाशक कठिन विषय पर पुस्तक लिखाने के लिए आतुर है, वह लेखकों को टटोल रहा है। अधिक-से-अधिक पारिश्रमिक देने की बात कर रहा है। यदि कोई लेखक मुश्किल से तैयार भी होता है तो उससे प्रकाशक की मनचाही कृति तैयार नहीं हो रही है। ऐसे आड़े समय में उसकी निगाह सुमनजी की ओर जाती है और सुमनजी उसकी इच्छित कृति उसे यों दे देते हैं जैसे वह कोई वृक्ष का सहज पका फल ले रहा हो। कोई भी विषय सुमनजी को असाध्य नहीं है।

यहीं तक नहीं; उनके किसी भी महायज्ञ में उनके साथी उनकी स्वयं सेवा करने के लिए तत्पर हो जाते है। लगता है कि वे सहकारिता-मन्त्र के जैसे ऋषि हैं। जहाँ उन्हें सहयोग देना आता है वहाँ उन्हें सहयोग लेना भी आता है या कहना चाहिए कि सहयोग अथवा सहकार उनके प्रिय व्यक्तित्व का स्वाभाविक अंग है। सुमनजी ने एक बार 'सरस्वती-सहकार' नामक एक प्रकाशन-संस्था भी चलाई थी और उससे अनेक अमूल्य ग्रन्थों को प्रकाशित किया था।

जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था कि भारत के लेखकों मे यह एक अवगुण होता है कि वे किसी भी बड़े व्यक्ति के सम्बन्ध मे लिखते हुए केवल प्रशस्ति-गान ही करते है। मेरी इस रचना मे भी यह दोष हो सकता है लेकिन मेरा कहना यह है कि दोष किसमे नही है, कमजोरियां किसमे नही है, लेकिन देखना यह होता है कि व्यक्ति ने अपने दोषो से समाज को कष्ट दिया है या उन्हे शंकर की तरह अपने कंठ मे रख लिया है। सुमनजी मे अगर कही कुछ दोष होगे तो निश्चय ही वे बडे निर्दोष होगे, क्योकि उनसे कही किसी को कुछ हानि नही हो सकती। वह तो एकदम भोलेबाबा है। किसी कारण से अगर किसी से वह नाराज हो जाएं और वह अप्रीति का पात्र उन्हे यदि साष्टांग वन्दना भी न करे केवल प्यार से ही कह दे कि 'कहो गुरु क्या नाराज हो', तो उनकी नाराजी 'अप्रीति' या 'क्रोध' कपूर की तरह तिरोहित हो जाता है। उनका गुस्सा भी खुशबू छोडता है। 'यथा नाम तथा गुण' की कहावत तो है लेकिन हमारी मित्र-मण्डली मे अगर वह कही चरितार्थ हो रही है तो वह क्षेमचन्द्र 'सुमन' पर ही हो रही है। अपने नाम के अर्थ के अनुसार वह कल्याणकारी चन्द्रमा हैं। यदि कोई यह कहे कि आज के वैज्ञानिक युग मे चन्द्रमा कोमल नही है तो फिर उनके नाम के सामने सुमन भी तो लगा है हँसता हुआ सुमन, महकता हुआ सुमन!

दैनिक 'नवभारत-टाइम्स',
नई दिल्ली १

मेरे पुरोहित

श्री शिवदानसिंह चौहान

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' मेरे पुराने मित्रो मे से है, इसलिए उनकी पचासवी वर्षगांठ पर उनके अभिनन्दन का जो आयोजन हो रहा है, वह मेरे लिए अतीव हर्ष का विषय है।

सुमनजी से परिचय कब हुआ, यह शायद याद करने पर भी याद नही कर सकता। सिर्फ इतना याद है कि पिछले पच्चीस वर्षो की दीर्घ अवधि मे यह परिचय कभी अपरिचय मे नही बदला। हम दोनो मे एक-दूसरे के प्रति कभी अधिक घनिष्ठता न होकर भी स्नेह और सौहार्द का जो सहज भाव था, वह अभी तक ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। आयु मे मैं उनसे लगभग डेढ साल छोटा हूं, लेकिन न जाने क्यो वे मुझे आरम्भ से ही 'गुरुदेव' कहते रहे हैं और मैं उन्हे अपने छोटे भाई की तरह मानता रहा हूँ। यह मानना इस कारण नही

रहा कि सन् १९४१ में जब मैं 'हंस' का सम्पादक था और सम्पादक की जगह मेरा नाम न छापकर श्रीपतरायजी का नाम छपता था, तब सुमनजी ने ही सबसे पहले इलाहाबाद में प्रकाशित होने वाले 'देशदूत' साप्ताहिक में इसका प्रतिवाद किया था। यह मुझे अच्छा लगा था, लेकिन अनावश्यक भी, क्योंकि कोई मेरी वकालत करे, यह मुझे कभी गवारा नहीं हुआ, और उस पर एक गुमनाम-सा पत्रकार, यह तो तब और भी बेमानी लगा था। सुमनजी उन दिनों एक उदीयमान पत्रकार और कवि ही थे, बनारस-इलाहाबाद में अज्ञात-से। उन्होंने अपने लेख की कटिंग भेजी, पर मैंने धन्यवाद का पत्र तक नहीं भेजा। फिर भी जब पहली बार मिले तो उसी निश्छल आत्मीयता से कि जैसे बहुत पुराने दोस्त हों। *इसीलिए स्मृति में वह दिन और अवसर खो गया है। यानी यह याद करना मुश्किल है कि कभी हम लोग एक-दूसरे से अपरिचित भी थे।*

परिचय-भाव की इस सहज अतिशयता के कारण ही शायद मैंने कभी सुमनजी को एक लेखक या साहित्यकार के रूप में जानने की कोशिश नहीं की। सुमनजी कवि है—कैसे कवि है? साहित्य ममज्ञ और आलोचक है, लेकिन कैसे आलोचक है? कर्मठ समाज-सेवी है, पत्रकार है, प्रचारक है और न जाने क्या-क्या है, या कहिये कि क्या नहीं है—यह सब देखता रहा हूं, क्योंकि राजधानी में होने वाले साहित्यिक और सामाजिक आयोजनों और अनुष्ठानों में सुमनजी कोई-न-कोई प्रमुख भूमिका अदा करते सर्वत्र दिखाई देते है—लेकिन उनके इन सब कार्यों में कोई ऐसी विचित्र बात नहीं लगी कि यह जानने की इच्छा उठी हो कि इनका कर्ता कितना विशिष्ट और महत् है। सुमनजी यह सब काम ऐसे निर्विकार और सरल भाव से करते हैं कि लगता है जैसे कोई व्यक्ति जीवन के साधारण और सामान्य धर्मों का सहज पालन कर रहा हो। दरअसल वे साधारण मानव के प्रतिनिधि है उन असंख्य साधारण मानवों के, जो संस्कृति के निर्माता है किन्तु जिनमें निर्माता का दंभ नहीं है—*जिनकी विशिष्टता यह है कि वे विशिष्ट नहीं है*, किन्तु फिर भी जीवन और समाज में उनकी उपस्थिति महसूस की जाती है, क्योंकि उनकी ही पीठिका बनाकर विशिष्ट व्यक्तित्वों और प्रतिभाओं के शिखर उभरते है।

इसीलिए इस अ-विशिष्ट विशिष्ट के साहित्यिक या सामाजिक कृतित्व का कभी अध्ययन मनन करने की जरूरत महसूस नहीं हुई, यद्यपि यह भावना सदा ही जागरूक रही है कि ऐसी कमण्य किन्तु साधारण प्रतिभाओं ने यदि अपने रक्त-पसीने से हिन्दी के उपवन को न सींचा होता तो शायद उसमें उतनी हरियाली न होती जितनी आज है। ऐसे लोगों के प्रति दुर्भाग्य से इतिहास बहुत उदार नहीं होता, क्योंकि वे महाकाल को चुनौती देने वाली कोई ऐसी कृति नहीं छोड़ जाते जिसे मिटाना चाहकर भी वह न मिटा सके। सुमनजी में अमरता पाने की न कोई महत्त्वाकांक्षा है न उसमें वंचित रहने का मन में राग ही। *यह उनकी सबसे बड़ी शक्ति है।* साधारण ही इतिहास के रथ की धुरी है जिस पर उसका चक्र घूमता है। लगता है कि इस सत्य की उपलब्धि उन्हें हो गई है, जिसके कारण वे

जीवन से परम सन्तुष्ट दिखाई देते है और उनके मुख पर चिन्ता और अवसाद की रेखाएँ कभी नजर नही आती। ऐसे निर्द्वन्द्व, प्रसन्नमना व्यक्ति दूसरो मे भी प्रसन्नता ही बिखेरते है। इसीलिए सबको प्रिय लगते है। मुझे भी लगते है।

लेकिन सुमनजी मुझे और भी एक निजी कारण से प्रिय है। 'आलोचना' के सम्पादन मे मुझे श्री गोपालकृष्ण कौल और नामवरसिहजी के साथ उनका भी सहयोग मिला था। लेकिन मैं यहाँ पर जिस 'निजी कारण' का सकेत कर रहा हूँ वह साहित्यिक जीवन के इस सहयोग से भिन्न और अधिक अतरग है। स्वर्गीय पण्डित उदयशकर भट्ट और सुमनजी, दोनो ही ने पन्द्रह वर्ष पहले मुझे अपने खानाबदोश और एकाकी जीवन को समाप्त करने की प्रेरणा दी थी। उस समय जब ७ नवम्बर '५१ को सोवियत शान्ति दिवस की पार्टी मे अचानक एक अपरिचित लडकी से भट्टजी ने परिचय कराया था और यकायक मेरे मन मे खतरे की घटी बज उठी थी। यह परिचय शीघ्र ही प्रेम और आत्मीयता मे बदल गया और मैंने तथा विजय ने सिविल मैरिज के लिए दिल्ली की अदालत मे दरखास्त दे दी। लेकिन विजय के माता पिता ने आग्रह किया कि विवाह वैदिक रीति से सम्पन्न किया जाय। उस समय मैं बडे सकट मे फँस गया क्योकि धर्म और ईश्वर मे आस्था न होने के कारण मुझे यह रीति-पालन निरर्थक और आडम्बरपूर्ण लगता था। फिर भी जो मेरे लिए अपने जीवन से भी अधिक प्रिय बन गई थी उसके माता-पिता की भावनाओ की उपेक्षा करना भी सभव नही था। मैं इस द्विविधा मे पडकर तत्काल कोई निर्णय नही कर पा रहा था कि सुमनजी ने अपनी व्यवहार-कुशल तर्क-बुद्धि से विवाह-मडप और वैदिक मन्त्रोच्चार के प्रति मेरे बौद्धिक सकोच का छिन्न भिन्न कर दिया। तभी प्रश्न उठा कि मेरे-जैसा नास्तिक अपने लिए पुरोहित कहाँ से जुटायेगा? पुरोहितो की शायद हमारे देश मे कमी नही है, क्योकि यजमानो की सख्या इस बीसवी सदी मे भी घटने के बजाय बढती जा रही है। फिर भी जीवन मे किसी पुरोहित से मेरा साबका नही पडा था और पुरोहित-वर्ग का सम्बन्ध मैंने अपनी धारणा मे ज्ञान के किसी क्षेत्र से कभी नही लगाया था। इस-लिए कोई अज्ञानी व्यक्ति हमारे प्रणय-बन्धन का मध्यस्थ बने, यह मुझे अकल्पनीय ही नही, असह्य भी लगता था। किन्तु सुमनजी ने जब उत्साहपूर्वक निर्णयात्मक स्वर मे घोषणा की कि मेरे पुरोहित वे स्वय बनेंगे, तो मेरे सारे सकोच टूट गए। सुमनजी इस प्रकार मेरे पुरोहित बने। जालन्धर मे साहित्यकारो की भरी सभा मे, क्योकि सारे बराती दिल्ली के मित्र साहित्यकार ही थे और विजय के पक्ष मे भी पजाब के अनेक कवि और लेखक थे, सुमनजी ने ऐसे सधे और मधुर स्वर मे सस्कार-विधि के मन्त्रो का उच्चार किया कि दूसरे पक्ष के प्रसिद्ध पेशेवर पुरोहित भी आश्चर्यचकित रह गए। पजाब मे सुमनजी अगर पहले से साहित्यकार के रूप मे विख्यात न होते तो निश्चय ही लोग उन्हे पेशेवर पुरोहित मान लेते।

सुमनजी अब मेरे पुरोहित ही नही, कुल-पुरोहित भी हैं। जब एकलव्य पैदा हुआ

तो उसके नामकरण के लिए पुरोहित तलाश करने वहाँ जाना। सुमनजी ने उस समय भी मुझे सहारा दिया और जब विजय ने उनसे कहा कि वे आर्य ब्राह्मणों की वर्ण भेद नीति को चुनौती देने वाले, अधिकार-वंचितों के विद्रोह के प्रतीक भील-बालक एकलव्य का नाम शिशु को देना चाहतो है तो ब्राह्मण सुमनजी ने मन्त्रों को न जाने कैसे तोड़ा-मरोड़ा कि उनमे से जैसे स्वाभाविक ध्वनि निकली कि इस बालक का एकलव्य नाम ही शास्त्र सम्मत होगा। सचमुच अन्य असख्य गुणों के साथ कुशल पौरोहित्य के गुण भी सुमनजी मे भर-पूर है। हार्दिक कामना है कि वे दीर्घायु हो।

सी ४/१६, अमर कॉलोनी
लाजपतनगर न० ४, नई दिल्ली

एक ज़िन्दादिल आदमी

श्री विष्णुदत्त 'विकल'

भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' को मैं उस समय से जानता हूँ जब हम लाहौर मे रहते थे। लाहौर के साहित्यिकों का एक मात्र सगठन 'हिन्दी समाज' था। लाजपतराय भवन मे उसकी पाक्षिक गोष्ठियाँ हुआ करती थी। 'हिन्दी-समाज' का वातावरण बड़ा सजीव और सरस होता था। पारस्परिक मनमुटाव उसमे नही था। वैसा वातावरण फिर कभी नसीब नही हुआ। रामकुमार वर्मा एक बार लाहौर आये तो हिन्दी-समाज की एक गोष्ठी मे उनका कविता-पाठ हुआ। उन्होंने कहा, "मुझे यहाँ का वातावरण बहुत अच्छा लगा। इलाहाबाद मे ऐसी सफल गोष्ठी मैंने कभी नही देखी।"

उसी 'हिन्दी-समाज' के माध्यम से मैं भाई 'सुमन' के सम्पर्क मे आया और तब से आज तक, चाहे कई-कई वर्षों पत्र-व्यवहार तक नही हुआ, मेरी और उनकी आत्मीयता मे जरा भी अन्तर नही पडा। इसमे मेरी अपेक्षा अधिक श्रेय उन्हें ही है। वह मेरे मित्र और भाई हैं। आडे वक्त सदैव काम आने वाले एक बेगर्ज मित्र के रूप मे मैंने उन्हे पाया।

सन् '४२ मे पजाब-सरकार ने उन्हे गिरफ्तार करके जेल मे बन्द कर दिया। उसके बाद उत्तरप्रदेश-सरकार ने उन्हे अपने ही गाँव मे सीमित रहने की आज्ञा जारी की। जब यह पाबन्दी हटी तो वह दिल्ली आ गए। उनके जेल जाने के बाद फिर दिल्ली मे ही उनसे मुलाकात हुई। यद्यपि कठोर सघर्षों मे रहने के कारण वे शारीरिक दृष्टि से कुछ दुर्बल जरूर थे, मगर उनकी मस्ती और उनके फक्कडपन मे रत्ती भर भी अन्तर नही देखा।

मुझे पता नही था कि व दिल्ली मे है। बिरला-मन्दिर मे मेरा भाषण था। यह सूचना पत्रो म उन्हाने पढी तो तत्काल दौडे आये और मुझे अपने साथ घर ले गए। घटा बातचीत होती रही।

देश का बँटवारा हुआ और मैं दैनिक अमर भारत' मे आ गया। तब भाई 'सुमन' सदर बाज़ार मे रहते थे। उन्ह पता चला तो एक दिन 'अमर भारत कार्यालय मे आ धमके। सख्त नाराज थ इसलिए कि दिल्ली पहुँचते ही मैं उन्हे क्या नहीं मिला। फिर तो मैं जब तक दिल्ली रहा उनसे बराबर मिलना जुलना होता ही रहा। बाद मे जब मैं सुप्रसिद्ध प्रकाशक आत्माराम एण्ड सस के हिन्दी-विभाग मे आ गया तो वे भी कुछ दिनो तक साथ थे। अपन फक्कड स्वभाव तथा स्वाभिमान के कारण भाई सुमनजी का श्री रामलाल पुरी म मतभेद हो गया और वह अलग हो गए। मगर उनकी यह विशेषता है कि मतभेद होने पर भी उनके मन म किसी के प्रति दुर्भावना नही आने पाती और यही कारण है कि आत्माराम एण्ड सस मे उनके आज तक मधुर सम्बन्ध है, जिसका प्रमाण है, साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' मे श्री रामलाल पुरी पर लिखा गया उनका लेख। मैं पूरी ईमानदारी के साथ कह सकता हूँ कि भाई सुमन जैस बडे उदार दिल वाल इन्सान आज की दुनिया मे इने गिने ही नजर आत है और साहित्यिको मे तो और भी कम। मैं स्वीकार करता हूँ कि उनमे कई खामियाँ भी हैं क्योकि व भी इसी धरती पर रहते हैं लेकिन इन खामियो और कमिया के बावजूद वे एक सहृदय, महानुभूतिशील, उदारचेता तथा यारा के यार हैं—मानवीय भावनाओ मे ओत-प्रोत। यह कैसी विडम्बना है कि जिन मित्रो की उन्होंने आडे वक्त म मदद की, वे उनकी प्रगति और उनकी बढती हुई ख्याति के कारण आज उनके विरोधी तथा निन्दक बन बैठे हैं। उन पर छीटाकशी करते है। मगर फिर भी उनके प्रशसको और हितैषियो की बहुत बडी सख्या है—यहाँ-वहाँ सब जगह, और सभी क्षेत्रो मे, इसका कारण है भाई 'सुमन' का औदार्य। यदि विश्वविद्यालयो की उपाधियो को ही योग्यता का मानदण्ड न स्वीकार किया जाय तो साहित्यकार 'सुमन' का साहित्यिक ज्ञान, सुसस्कृत, शुद्ध और परिमार्जित भाषा, साहित्य के विभिन्न कालो व विभिन्न प्रवृत्तियो की जानकारी, बडे-बडे धाकडो से किसी तरह भी कम नही हैं। उनकी सूझ-बूझ के कायल तो प्राय सभी हैं।

मेरी निगाह मे भाई 'सुमन' निश्छल, निष्कपट, एक सच्चे दोस्त, वक्त पर काम आने वाले साहसी, श्रम के पुजारी और एक जिन्दादिल आदमी हैं। 'सुमन' से शिकायत भी है और वह यह कि वे काम करने की धुन मे अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह हैं।

'सुमन' के बारे मे कुछ लोग क्या-क्या कहते हैं मैं नहीं जानता—जानना चाहता भी नहीं। मैंने तो 'सुमन' को सही माने मे एक सच्चा मित्र और अपने भाई के रूप मे ही पाया है।

ईश्वर करे, वह दीर्घजीवी हो।

नियधाम, तिनसुकिया (असम)

प्रतिमा की मधु ज्योति

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

बहुरंगी प्रतिभा के धनी कवि-वर क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने अपनी मौलिक एवं सम्पादित साहित्यिक कृतियों द्वारा हिन्दी-संसार में जिस अखण्ड गौरव और उज्ज्वल यश का प्रसार किया है, वह किसी समृद्ध साहित्यकार के लिए प्रेरणा और आदर्श का विषय है। हिन्दी-जगत् इसलिए सुमनजी का ऋणी है कि उन्होंने गत तीन दशकों में लगभग आठ सौ साहित्यिक कृतियों द्वारा उसे श्रीसम्पन्न बनाने में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है।

सुमनजी की साहित्यिक कृतियों के अध्ययन से यह बात सिद्ध हो जाती है कि उनका साहित्य गत अर्धशतक की भारतीय चिन्ताधारा का ऐसा सजीव और प्राञ्जल इतिहास है, जिसमें अपने देश की समस्त जीवन-प्रवृत्तियाँ और साहित्य की विविध विधाएँ सम्पूर्णता के साथ प्रतिफलित हुई हैं। हमारा सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन जिन दुर्गम घाटियों से गुजरा है उसके सुख-दुःख, हर्ष विषाद, उत्पीड़न-संघर्ष एवं वेदना और अन्तर्विरोध को सुमनजी ने अपनी साहित्यिक कृतियों में सशक्त स्वर दिया है।

सुमनजी के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए मैं अतीत की कोमल-मधुर स्मृतियों में खो जाता हूँ। तब हम गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) के छात्र ही नहीं, बड़े घनिष्ठ मित्र भी थे। मैं गुरुकुल में कुल छः वर्ष ही रह सका परन्तु उस अल्प अवधि में ही सुमनजी के प्रभावक व्यक्तित्व ने मुझे मुग्ध कर लिया था। सुमनजी के व्यक्तित्व में आरम्भ से ही चुम्बकीय आकर्षण की मोहकता वर्तमान थी। वे जहाँ भी रहते, उन्हें चारों ओर से साहित्यानुरागी मित्रमण्डली घेरे रहती और सदा साहित्य चर्चा का मधुर रस उमड़ता रहता।

मुझे अब भी स्मरण है, वहाँ गुरुकुल में वसन्तोत्सव की तैयारी बड़े धूमधाम से हुआ करती थी। गंगा नहर के सुरम्य तट पर आम्र-तरुओं की शीतल-स्निग्ध छाया में विशाल कवि-सम्मेलन का आयोजन होता, संस्कृत, ब्रजभाषा और खड़ी बोली की बड़ी चोखी और चमत्कारपूर्ण समस्या-पूर्तियाँ प्रस्तुत की जातीं। किशोर और युवक अपनी कोमल और उर्वर प्रतिभा का परिचय देते। गांधी-युग का वह मध्याह्न था। आर्यसमाजी शिक्षण-संस्थाओं में राष्ट्रीयता की ज्योति-शिखा प्रज्वलित थी। गुरुकुल तो उसके गढ़ ही थे, अधिकतर राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत कविताएँ भावुकताभरी भाषा और तर्ज में पढ़ी जातीं। १९३०-३५ की बात है। स्वर्गीय प० पद्मसिंह शर्मा का स्वर्गवास हुए कुछ ही दिन हुए थे। उनकी साहित्य साधना और प्रतिभा का प्रभाव अभी भी महाविद्यालय के जीवन पर छाया हुआ था। उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी और बड़े पुत्र काशीनाथजी शास्त्री हमारे साहित्य-गुरु थे। वे ही प्रायः इन कवि सभाओं के अध्यक्ष होते थे।

यह वसंतोत्सव दो दिनों तक बड़े उत्साह से मनाया जाता था। उमंग, उत्साह और आनंद का ऐसा समाँ बँध जाता, जो बाद के कर्मव्यापृत जीवन में फिर कभी नहीं दिखाई दिया। यह काव्योत्सव नहीं, जीवनोत्सव था। इन उत्सवों और आयोजनों के मूल में सुमनजी का प्रभाव कम न होता। इन वाद विवादों या कवि सम्मेलनों पर सर्वत्र सुमनजी फूलों के सौरभ-से छाये रहते। कभी वाद-विवाद सभा में भाग ले रहे हैं, तो कभी कवि-सम्मेलन में बड़े ठाठ-बाट से निर्भीकतापूर्वक कविता-पाठ कर रहे हैं। सुमनजी की प्रेरणा से वहाँ गुरुकुल के पवित्र वायुमंडल में जीवन-सौरभ की मदिर मधुर गंध फैला करती। हमारे जीवन-हृद में कल्पना के सुमन खिलते रहते। तब हमारा जीवन फूल-सा सुकुमार और उसके मस्तीभरे सौरभ से उन्मद होता।

सुमनजी की साहित्यिक जीवन-प्रवृत्ति का विकास जिस बहुरंगी रूप में हमें दिखाई दे रहा है उस जीवन-कली की संभावना में देश के मूर्धन्य साहित्यकारों के आशीर्वाद का भी बड़ा महत्त्व है। उन दिनों साहित्याचार्य स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा प्रायः महाविद्यालय में आकर स्थायी रूप से रहने लगे थे, और स्व० आचार्य पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ और स्वामी शुद्धबोधतीर्थ-जैसे प्रज्ञामनीषियों के चरणों में जिसने वेद-विद्या, साहित्य तथा व्याकरण की शिक्षा पाई उसकी प्रतिभा का सर्वतोमुखी विकास होना तो नितांत स्वाभाविक है। स्व० आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्व० कविरत्न पं० नाथूराम शंकर शर्मा, उनके कीर्तिशाली पुत्र पं० हरिशंकर शर्मा, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, स्व० महात्मा नारायणस्वामीजी महाराज जैसे युगपुरुषों का प्रतिवर्ष शुभागमन होता ही रहता था। सुमनजी अपने जीवन के किशोर वयस् में ही मौलिक साहित्य-सृजन, संपादन और साहित्य-सम्मेलनों के संगठन और आयोजनों में बड़ी गहरी दिलचस्पी लिया करते थे। गुरुकुल की छोटी या बड़ी साहित्य-सभा हो, सुमनजी का व्यक्तित्व और प्रभाव सर्वत्र छाया ही रहता। अतीत के अनेक धुंधले चित्रों में सुमनजी का ज़िंदादिल, मस्ती से भरा, फड़कता हुआ व्यक्तित्व आज भी उतनी ही स्पष्टता और उज्ज्वलता से आँखों में उभर उठता है। समाज-सेवा, साहित्यानुराग और सहृदयता की एक प्यारी सजीव मूर्ति!

छात्रावास की छत पर पूर्णिमा की स्निग्ध चाँदनी की छाया में बैठकर हम किस्से-कहानियाँ सुनते-सुनाते, प्राचीन और नवीन कविताओं का विभिन्न शैलियों में पाठ किया करते। जिन्दगी की धार में अनवरत हम बहते रहते। कोई चिन्ता नहीं, विषाद नहीं। हम सब जमकर पढ़ते और डटकर खाते। उस समय गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर की सूखी रोटियाँ और बिना घी की रूखी उड़द और अरहर की दाल में क्या स्वाद होता! हम खाते न अघाते! सब्जी के दर्शन तो कभी हफ्ते-पखवारे पर ही होते। पर कहीं बीच में मिर्च या गुड़ की डली मिल जाती, फिर ज़ायके के क्या कहने! भण्डारीजी की खैर नहीं।

अजब था वह आनन्द और उत्साह का जीवन। नियमित ब्रह्मचर्य से पूर्ण जीवन की परिधि में पवित्रता का एक अद्भुत वातावरण। दोनों समय-संध्या प्रार्थना और हवन।

सुबह को नियमित व्यायाम और गर्मी के दिनों में गंगा नहर में मीलों तक तैरना। नहर के उस पार से हम पुल पर से कूदते, उसकी उछलती-हहराती तेज धार पर बहते-बहते अपने गुरुकुल-घाट पर आ लगते। वह सब जीवन अब सपना-सा लगता है, अतीत की धुँधली परछाइयों में खोया-डूबा!

सुमन का साहित्यकार आज से लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व ही जन्म ले चुका था। उसी गुरुकुल महाविद्यालय की पावन तपोभूमि में, जहाँ कभी स्वामी दर्शनानन्द-जैसे धुन के धनी, साहित्यमनीषी प० पद्मसिंह शर्मा-जैसे समृद्ध साहित्य-साधक, प्रातःस्मरणीय गुरुदेव वेदमूर्ति प० नरदेव शास्त्री जैसे वेदों के प्रकाण्ड व्याख्याता, व्याकरण के सूर्य स्व० स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जैसे त्याग और तप की तेजस्वी मूर्ति एव प० भीमसेन शर्मा-जैसे तत्त्वद्रष्टा साधकों की चरण-धूलि आज भी महाविद्यालय की कुञ्जभूमि में मिलती है। उन्हीं महापुरुषों की छत्रछाया में सुमनजी ने जीवन और साहित्य की शिक्षा पाई थी। इसलिए उन्हें अपने उन गुरुओं से परम्परा का बड़ा ही गौरवपूर्ण वरदान मिला है—वहीं उनकी प्रतिभा का अभिषेक हुआ था।

गुरुकुल की पावन भूमि में राष्ट्रीयता और सामाजिक क्रान्ति की बहुमुखी चेतना को तो प्रश्रय मिलता ही था क्रान्ति के बीज भी वहीं अकुरित होते थे। बन्धुवर प्रकाशवीर शास्त्री-जैसे महान वक्ता और राजनेता कभी उसी कुल-भूमि की गोदी में पले थे। उन पर न केवल भारतीय ससद् ही को अपितु समस्त भारत को गर्व है। पर साहित्य-सृजन, काव्य चिन्तन और अध्ययन-मनन की भी प्रेरणा उस साधना की भूमि में मिलती थी। डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री, प० उदयवीर शास्त्री, डॉ० हरिदत्त शास्त्री, डा० कपिलदेव द्विवेदी आदि भारतीय भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वानों की विद्याभूमि यही पुण्यस्थली रही है।

किशोरों और युवकों की उर्वर प्रतिभा के समृद्ध विकास के लिए साहित्य-सभाएँ तो नियमित रूप से आयोजित होती ही थीं। 'किशोरमित्र' और 'विद्वत्कला' नामक साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होतीं। मुझे अब भी स्मरण है, सुमनजी अपनी प्रतिभा और सूझ-बूझ के कारण दोनों ही पत्रिकाओं के सम्पादक रहे। उस अल्प वयस् ही में विविध विषयों के लेखों, कविताओं, कहानियों और एकांकी नाटकों के सचय और सकलन में सुमनजी अद्भुत सूझ-बूझ और परिष्कृत रुचि का परिचय देते। नि सन्देह उनकी प्रखर प्रतिभा का सकेत उनकी आरम्भिक साहित्यसेवा की इन छोटी-बड़ी उपलब्धियों में बहुत स्पष्ट मालूम पड़ता है।

भाई सुमनजी ने इन पिछले तीस वर्षों के साहित्यिक जीवन में हिन्दी साहित्य की अनवरत सेवा के द्वारा जो यश और गौरव पाया है, उसका उल्लेख हमारे जातीय एव साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में किया जायगा। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व कई दृष्टियों से हिन्दी-जगत् में अनूठा और निराला है। बड़े से बड़े साहित्यकार से लेकर साहित्या-

पवन के नवागन्तुक साहित्य-साधकों तक को अपने सहज स्नेह के कोमल सूत्र मे बाँधे हुए साहित्य-निर्माण का पथ प्रशस्त करते हुए वे और भी गौरवशाली प्रतीत होते हैं। सुमनजी बहुत ही व्यापक काव्यभूमि के साहित्य-साधक मनस्वी हैं। इस विशाल देश के एक छोर से दूसरे छोर तक कोई भी हिन्दी-साहित्यकार शायद ही इनकी व्यक्तिगत परिचय परिधि मे न बँधा हो। वे जब पिछली बार पटना और मुजफ्फरपुर आये, उनके सम्मान मे मुजफ्फरपुर मे एक विशाल साहित्य-गोष्ठी आयोजित की गई थी। यहाँ के साहित्यिकों और साहित्यानुरागियो मे उनके प्रति श्रद्धा का जैसा अपूर्व भाव मैंने तब देखा, तो मैं अचरज से भर गया। मैं एक लम्बे अरसे से यहाँ हूँ। कुछ लिख-पढ भी लेता हूँ। बहुत-से ऐसे साहित्य के उगते और लहलहाते पौधो को मेरी आँखें नही देख सकी और सुमनजी दूर दिल्ली से ही अपनी स्नेह-रश्मियो से उनकी प्रतिभा का मगल-अभिषेक कर रहे थे।

देश मे उच्च कोटि के साहित्यकारो की कमी नही है, परन्तु ऐसे साहित्यकार कितने है, जो अपने हृदय की असीम उदारता से प्रेरित हो। समकालीन नवोदित प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करते हुए अपना सगी बना सके ? बहुत से नवोदित साहित्य साधक प्रतिभाशाली होते हुए भी पर्याप्त प्रोत्साहन के अभाव मे जीवन की निराशा और अवसादभरी सूनी राहो मे खो गए, भटक गए। सुमनजी उन महान् साहित्यकारो मे है, जो समकालीन प्रतिभाओ को जीवन-रश्मि देकर ही जीता और पनपता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे 'सुमन' उदारता के शिखर पर शोभता एक विराट् साहित्य-सूर्य है, जिसकी किरणें किस नये साहित्य-शिशु को जीवन और ज्योति नही देती ?

'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियो के प्रेमगीत' के सकलन द्वारा उन्होंने गवेषणात्मक प्रवृत्ति और उदार दृष्टि का परिचय ही नही दिया, अपितु ऐसी श्रेष्ठ कविताएँ और प्रतिभाशील तथा जागरूक कवयित्रियो को प्रकाश मे लाये जिनकी भाव-समृद्ध कविताओं से हिन्दी की काव्यधारा परिपुष्ट तो हुई ही, आगे भी हिन्दी-काव्य की समृद्धि की महान् सभावनाएँ बनी है।

सुमनजी हिन्दी भाषा और साहित्य की बहुविध सर्वागीण गतिविधि से जितनी गहराई से परिचित हैं, शायद ही दूसरा कोई हो। द्विवेदी-युग से नवलेखन तक के प्रत्येक साहित्यकार की रचना और उनकी प्रमुख प्रवृत्ति से वे पूर्णतया परिचित हैं। स्व० प० पद्मसिंह शर्मा से लेकर 'दीनेन्दु' तक के विभिन्न कवियो और लेखको की विविध और विरोधी काव्य-प्रवृत्तियो और उनके रचना-विधान के साम्य और वैषम्य की जैसी पहचान उनको है, वैसी बहुत कम साहित्यकारो को है। सुमनजी के निर्मल-सरल व्यक्तित्व की यह एक विशेष उपलब्धि है कि वे न केवल साहित्यकारो के साहित्य से ही निकट का परिचय रखते हैं, अपितु उनके व्यक्तिगत जीवन मे भी उनकी रुचि कम नही रहती। एक महान् एव सहृदय साहित्यकार के रूप मे उनकी सहायता और स्नेह की बाँह दूर-दूर तक फैली रहती हैं।

सुमनजी सच्चे अर्थों मे 'सुमन' हैं। परदुःखकातरता और सहृदयता की करुण मानवीय मूर्ति! उन्होंने अपने समकालीन समाज और परवर्ती साहित्य के पोषण और अभिवर्धन के लिए अपने-आपको सम्पूर्णतया अर्पित कर दिया है।

प्रतिभा के समृद्ध एवं समर्थ साहित्य शिल्पी सुमनजी से हिन्दी-संसार को और बड़ी आशाएँ और सम्भावनाएँ हैं। ऐसे सतत जागरूक विनम्र साहित्यसाधक के लिए मेरी शतशः मधुमय मंगल-कामनाएँ!

हिन्दी-विभाग,
बिहार-विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

सुमन : मेरे मामा

श्री श्याम संन्यासी

सुमन—मेरे मामा! लोगों को आश्चर्य होता है। अक्सर मुझसे पूछा जाता है, "क्या सुमनजी सचमुच तुम्हारे मामा हैं?"

मैं पूछने वालों को क्या जवाब दूँ और कैसे समझाऊँ कि सुमनजी सच ही मेरे मामा होते हैं। क्योंकि जो इस तरह के सवाल पूछते हैं उन्हें यह बात समझना बड़ा मुश्किल ही है कि आदमियों की एक ऐसी भी बिरादरी होती है जिसमें खून के रिश्ते से भी बड़ा, कहीं बड़ा और कहीं पक्का एक रिश्ता होता है, वह रिश्ता व्यावहारिक जगत् के और सभी रिश्तों से ज्यादा सच्चा और स्थायी होता है। और इसलिए सुमनजी सच ही मेरे मामा होते हैं।

उस बार, बहुत बरसों के बाद, इन्सानों के अटाटूट जंगल दिल्ली में भटक आया था। दफ्तर से सड़क और गली तक, बसों-कारों में स्कूटरों और पदयात्रियों तक आदमियों की भीड़-भाड़ में मनुष्य मुझे कहीं खोजे भी नहीं मिल रहा था। यह कहना तो गलत होगा कि भारत की राजधानी दिल्ली में मनुष्य थे ही नहीं, थे तो कई और होने भी चाहिए अगणित, परन्तु शायद सब-के-सब घर से चलते समय अपनी मनुष्यता को घर की खूँटी पर लटका आए थे और कामकाजीपन का भारी-भरकम लबादा अपनी काया पर लादकर निकल पड़े थे। ऐसी उस धकापेल में जो दो-एक मनुष्य मिले, उनमें मेरा मानव-प्यासा मन आत्मीयता का घना-घनेरा सम्बन्ध जोड़ बैठा और वह सभी व्यावहारिक रिश्तों से सर्वोपरि हो गया।

मेरे ये सभी सम्बन्धी कबीर-यूनिवर्सिटी के पक्के स्नातक और रिसर्च-स्कॉलर थे। पदवी, परीक्षा और उपाधि का मुलम्मा इनमें से किसी पर चढ़ा हुआ नहीं था और शायद यही कारण है कि अपने ज्ञान और अनुभव का दम्भ भी इनमें से किसी को नहीं था। सहज, स्पष्ट आडम्बरशून्य अन्तर-बाहर, एक-से मनुज थे। 'करत-करत अभ्यास के' जो सुजान बने हों और अपनी सुजनता को निरन्तर अभ्यास की शान पर खराद रहे हों उनमें आडम्बर और अहंकार हो भी कैसे सकता है!

सुमनमामा से कब पहले पहल मुलाकात हुई, यह आज याद नहीं। नाम तो सुन रखा था बहुत बर्षों से। कवि, लेखक और सम्पादक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे मेरे मामा। सरस्वती-सहकार की ओर से मामा ने भारतीय भाषाओं के साहित्य का परिचय कराने के लिए 'भारतीय साहित्य परिचय' नामक पुस्तकमाला के प्रकाशन का आयोजन किया तो मुझे भी उसमें मालवी और गुजराती पर पुस्तकें लिखने के लिए आमन्त्रित किया। मैंने स्वीकार कर लिया, लेकिन सार्वजनिक कामों के हंगामों में फँसे रहने के कारण मैं अपने इस वादे को निभा न सका। मामा तकाजे करते रहे और मैं उन्हें टालू-मिक्स्चर पिलाता रहा। इस तरह पत्रों के माध्यम से मामा से पहला सम्पर्क-सम्बन्ध स्थापित हुआ और टूट भी गया।

फिर मैं बहुत बरसों के बाद दिल्ली आया। मामा 'आलोचना' के सह सम्पादक थे। फैज बाजार की पीछे वाली गली में ऊपर की मंजिल पर राजकमल के दफ्तर में बैठते थे। मैं ओम्‌जी मिलने के लिए गया हुआ था। बातचीत के बाद ओम्‌जी ने कुछ मुस्कराते हुए कहा, इनसे भी मिलिये।

जिनकी ओर इंगित किया गया था उन्हें देखा। खादी की सफेद नुकीली टोपी और गेहुँआ चेहरा, पर जिस बात ने मेरे मन को आकर्षित किया, वे थीं पैनी निगाहें और व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट। चेहरे पर कलदार सिक्के-जैसा खरापन भी खनखना रहा था। नितान्त अपरिचित को भी बाँह पसारकर छाती से लगा लेने को तत्पर वह मुद्रा जैसे कह रही थी, हमारा तो बहुत पुराना परिचय है, बहुत पहले के मिले हुए हैं हम।

नाम तो बाद में जाना। साथ बैठकर चाय भी पी। चाय-पान के समय यह भी सुना, 'दूध और चीनी इधर बढ़ाइये, हम तो चाय पीते ही हैं दूध-शक्कर के लिए।' और इस फक्कड़ देहातीपन पर मैंने दिल खोलकर कहकहा बुलन्द भी किया, परन्तु मन तो मेरा रिश्ता जोड़ चुका था सुमनजी को पहली सरसरी निगाह में देखने के साथ ही।

और इस तरह सुमनजी, यानी क्षेमचन्द्र सुमन, मेरे मामा हो गए।

मामा-भानजे का हमारा रिश्ता बिलकुल अनौपचारिक है। मामा कहते हैं, 'भानजे, तुममें विनय जरा भी नहीं है।' मैं कहता हूँ, 'मामा, भानजे का विनयी होना जरा

भी आवश्यक नहीं। मामा को ही भानजे के आगे विनत होना चाहिए। भूल से भी यदि भानजा मामा का चरण छू ले तो मामा को जाना होता है रौरव नरक में। हमारे यहाँ तो मामा ही भानजे के चरण पूजने आये हैं।'

मामा कहते हैं, 'भानजे, तुम भारतीय संस्कृति से कोरे हो।' मैं कहता हूँ मामा, रहने दो अपनी भारतीय संस्कृति! भारतीय संस्कृति में तो भानजा (कृष्ण) मामा (कंस) का वध करता है। भारतीय संस्कृति का आचरण करने के लिए मुझे विवश मत करो मेरे मामा!'

और घर हो या दफ्तर, सडक हो या हास्टल, हम दोनों समय और स्थान की मर्यादा को भूलकर ठहाके लगाने लगते हैं।

लेकिन फिर भी अपने मामा के लिए मेरे मन में बहुत आदर है। आदर इसलिए नहीं कि मामा कबीर विश्वविद्यालय के रिसर्च-स्कॉलर हैं। आदर इसलिए भी नहीं कि हिन्दी साहित्य में मामा की धाक है या उनका निजी पुस्तकालय लाखों में एक है और आदर इसलिए भी नहीं कि मामा प्रौढ लेखक, कुशल सम्पादक, सन्तुलित आलोचक या कवि हैं। मामा अच्छे मित्र हैं, दाना दुश्मन भी हो सकते हैं, निष्ठावान समाजसेवी हैं, परन्तु सवातर भी हैं पर इसलिए मैं उनका आदर नहीं करता। मेरे मामा गुणों की खान हैं और उनमें अवगुण हैं ही नहीं, यह भी मैं नहीं कहता। मानवीय दुर्बलताएँ मेरे मामा में भी हैं और अनेक हैं। खामियाँ भी हैं और कई। लेकिन फिर भी मैं अपने मामा का आदर करता हूँ। और आदर इसलिए करता हूँ कि मेरे मामा में दो ऐसे गुण हैं जो एक साथ दूसरों में कम मिलते हैं।

विश्वविद्यालय की उपाधियों से कोरे होकर भी मेरे मामा में हीनभाव की कोई गाँठ नहीं है, इसीलिए अपने स्वार्जित ज्ञान का उनको कोई दम्भ भी नहीं है और सबसे अधिक तो है हर तरह की विपरीत परिस्थितियों से जूझने और जूझते रहने की अदम्य प्रेरणा!

मामा ने ही सुनाया है कि शाहदरा की उस बस्ती में एक बार पानी भर आया था। बस्ती के सारे मकान डूब गए। केवल छतें रह गईं। सारी बस्ती के लोग घर-द्वार छोड़कर भाग गए। पर मामा चारों तरफ फैले पानी के बीच अपनी छत पर कम्बल ओढे, हाथ में लाठी लिये टिके रहे और अकेले प्रकृति और कारपोरेशन एवं प्रशासन की अड़गेबाजियों से लोहा लेते रहे। और आखिर में जीत मामा की हुई। फिर पहले से भी जोर का मूसलाधार पानी बरसा और अब भी बरसता है, पर दुबारा बाढ अब मामा की बस्ती में आने का साहस नहीं कर पाती।

मामा का यह जुझारूपन ही मुझे सबसे प्रिय है। जीवन के हर क्षेत्र में मेरा मामा इतने ही अदम्य साहस से लड़ता और विजयी होता है।

जब-जब मुझे अपने मामा की याद आती है तो बरसाती बाढ़ में छत तक डूबे मकानों पर कम्बल ओढ़े, हाथ में लाठी लिये शाहदरा के नागरिक क्षेमचन्द्र 'सुमन' की मूर्ति मेरे नेत्रों के समक्ष उदित हो जाती है। मैं उस जुझारू पुरुष को प्रणाम करना चाहता हूँ, लेकिन जाने-अनजाने भी किसी भानजे को मामा का प्रणाम करने का पाप नहीं करना चाहिए, इसलिए उम्र और रिश्ते में छोटा होते हुए भी अन्तःकरण से आशीर्वाद देता हूँ कि मेरा मामा जीवन के हर मोड़ पर और हर मोर्चे पर इसी तरह लड़ता और विजय-लाभ करता रहे।

२१ नीलकण्ठ कॉलोनी,
इन्दौर

प्रकाश-पुञ्ज व्यक्तित्व

श्री हरप्रसाद शास्त्री

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचायक उसका घरेलू वातावरण होता है। उसके ड्राइंग-रूम में लगे हुए चित्र, आसपास बिखरी हुई पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, घरेलू साज-सज्जा तथा वैयक्तिक परिधान आदि से उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता है। जब आप श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के निवास-स्थान पर पहुँचेंगे तो आपको सर्वत्र कलात्मकता एवं परिष्कृत साहित्यिक अभिरुचि का स्पष्ट परिचय मिलेगा। मकान के बरामदे में लगी हुई 'सरस्वती-सहकार' की नेम-प्लेट आपको उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का पूर्वाभास देगी।

कमरे में घुसते ही टेलीफोन के आसपास इधर-उधर बिखरी हुई पत्र-पत्रिकाएँ, देश के विभिन्न भागों से आये अनेक साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों एवं समाजसेवियों के पत्र, दीवारों पर अनेक साहित्यिक समारोहों के चित्र, जिनमें राष्ट्रकवि स्व० श्री मैथिलीशरण गुप्त, राष्ट्रनायक स्व० पण्डित जवाहरलाल नेहरू, देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद एवं सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन्-जैसे मनीषियों के साथ साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक अवसरों पर लिये गए चित्र हैं, और हिन्दी के उच्च कोटि के सन्त कवियों की सुन्दर सूक्तियाँ—सुमनजी के व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्र अंकित करती हैं।

यदि आप सुमनजी से नितान्त अपरिचित हैं तो भी आपको उनसे प्रथम साक्षात्कार में कुछ 'अजनबीपन' न लगेगा। वे आपसे ऐसे तपाक से मिलेंगे जैसे आपका उनसे युग-युगान्तर का परिचय हो। आपको उनका 'पत्र पुष्पं फलं तोयम्' स्वीकार करना ही

पड़ेगा। न चाहने पर भी जैसे यह उनके यहाँ जाने का दण्ड है, जो अवश्य ही भोगना पड़ता है। यदि भोजन का समय है, तो यह कदापि नहीं हो सकता कि आप बिना भोजन ग्रहण किये उनके घर से चले आएँ। इसे वे अपना अपमान मानते हैं।

सुमनजी सरसता सहृदयता और कोमलता की प्रतिमूर्ति हैं। जितने समय आप उनके साथ रहेंगे, मैं विश्वास दिलाता हूँ, आप तनिक भी उकतायेंगे नहीं, बोरियत तो जैसे उनके पास फटकती तक नहीं। एकदम मस्त मौलापन, मुक्त अट्टहास, चुभता श्लील व्यंग, साहित्यिक फब्तियाँ और मीठा मज़ाक—ये सुमनजी के प्रसाद हैं। जिन्होंने इस प्रसाद का भोग लगाया है वे ही इसका अनिर्वचनीय आनन्द जान सकते हैं। किन्तु सहृदयता और कोमलता का अर्थ आप निर्वीर्यता बुजदिली और कायरता बिलकुल न लगायें। वे महा-प्राण व्यक्ति हैं, तन से, मन से कर्म से और विचारों से। अन्यथा अल्पप्राण व्यक्ति दिलशाद कॉलोनी-जैसे नितान्त एकान्त एवं निर्मार्ग प्रदेश में कैसे अकेला अड्डा जमा सकता था। उन्होंने ही सबसे पहले वहाँ अपनी राष्ट्रीयता का झण्डा गाड़ा जो आज तक निर्बाध रूप से फहरा रहा है। कई बार उन्हें 'प्रसाद' के मनु की भाँति जल-प्लावन का भी शिकार होना पड़ा किन्तु उनका महाप्राण व्यक्तित्व सर्वथा अजेय रहा और प्रसाद के शब्दों में अपनी दुन्दुभि सर्वदा बजाता रहा

मत कर पसार, निज पैरों चल!
चलने की जिसको रहे शोक,
उसको कब कोई सका रोक!

ऐसा भी हो सकता है कि आप उनसे मिलने की हार्दिक आकांक्षा लेकर जायें और सुमनजी घर पर न मिलें क्योंकि बहुमुखी व्यक्तित्व होने के कारण उनका हर समय घर पर मिलना नितान्त कठिन है। वे किसी साहित्यिक समारोह का सभापतित्व करने गये हो सकते हैं या किसी सामाजिक संस्था में उनकी उपस्थिति अनिवार्य हो सकती है। आप चाहेंगे कि उनके आने तक प्रतीक्षा करें। ऐसे में मेरा सुझाव है कि आप आदरणीया श्रीमती 'सुमन' से आज्ञा लेकर उनके ऊपरी मंजिल में स्थित अध्ययन कक्ष में चले जाइए। वहाँ पहुँचते ही आपको प्रतीत होगा कि जैसे किसी महान् 'ग्रन्थागार' में पहुँच गए। पूरा कक्ष ही विशालकाय अलमारियों में सुसज्जित अनेक प्राचीन दुष्प्राप्य ग्रंथों एवं नवीनतम प्रका-शित साहित्यिक पुस्तकों तथा शोधग्रन्थों से भरा मिलेगा। शायद ही कोई ऐसा उच्च कोटि का साहित्यिक ग्रन्थ हो, जो इस 'ग्रन्थागार' में आपको न मिले। किसी भी साहित्यिक शोध-कार्य के लिए इससे अधिक उपयुक्त एवं सुसंयोजित पुस्तकालय आपको अन्यत्र न मिलेगा। मेरा विश्वास है कि ऐसा सुन्दर संकलन कदाचित् किसी बड़े-से-बड़े सार्वजनिक पुस्तकालय में भी न मिले। इस अध्ययन कक्ष में पहुँचकर आप निश्चय ही हतप्रभ रह जाएँगे। यदि आप साहित्य के रसिक हैं, तो अवश्य ही आप आजन्म यहाँ निवास करना चाहेंगे।

क्या आप सुमनजी से पत्र-व्यवहार करना चाहते हैं और आपको उनका पता नहीं मालूम ? आप हताश न हों। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', शाहदरा (अथवा दिल्ली-३२) लिख देना ही पर्याप्त है। मैं तो उस समय आश्चर्यचकित और स्तब्ध रह गया जब मैंने उनकी मेज़ पर एक ऐसा पत्र भी देखा जिसमें पते के स्थान पर केवल 'क्षेमचन्द्र सुमन, दिलशाद कॉलोनी' ही लिखा था। दिल्ली या शाहदरा का कोई नाम भी न था। मैं सोचने लगा कि क्या सुमनजी का व्यक्तित्व देश-काल की सीमाओं को लाँघकर ऐसा सार्वजनिक एवं सार्वदेशिक बन गया है जो कृत्रिम देशीय अथवा क्षेत्रीय परिधि से सर्वथा मुक्त है।

अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों से घिरा हुआ धवल-ज्योत्स्ना-स्नात, शुभ्र-स्वच्छ खादीधारी, गम्भीर, निश्छल, निष्कपट एवं प्रसन्नवदन उनका व्यक्तित्व अजस्र प्रेरणा का स्रोत है। उनके पास पहुँचकर पिता-जैसा ममत्व, भाई-जैसा स्नेह एवं मित्र-जैसा सद्भाव मिलेगा।

आप सुमनजी से मिलिये, वे बिलकुल निराडम्बर भाव से कृत्रिम आवरण के पर्दे को फाड़कर अपने निश्छल रुचिर रूप में आपसे मिलेंगे। जैसे केले के पात पात में से 'पात' निकलते हैं, उसी प्रकार सुमनजी की बात-बात में से 'बात' निकलती जाएगी। विचारों में गहराई और गरमाई दोनों मिलेगी। आपको लगेगा जैसे युग का समस्त साहित्य बोल रहा हो। ज्ञान के वे अगाध भण्डार हैं। साहित्य, राजनीति, शिक्षा, सामयिक समस्याएँ आदि किसी भी प्रसंग को आप चलाइए। नवीनतम सूचनाएँ आपको उनसे मिलेंगी। आप किंकर्त्तव्यविमूढ़ से सोचते रह जाएँगे कि इस अल्पकाय प्राणी में कितना महाप्राण व्यक्तित्व अन्तर्निहित है। यह अकिंचन-सा दीखने वाला व्यक्ति कितना अन्वेषी, कितना ज्ञानपिपासु और कितना अध्ययनशील है, उसकी जानकारी कितनी अगाध है।

सुमनजी सन्तोषी ब्राह्मण हैं। इनका आदर्श कबीर का यह दोहा है

साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

वे साधना के धनी और धुन के पक्के हैं। जिस कार्य को हाथ में लेते हैं उसे अधूरा छोड़ना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। निर्धन और साधन-विहीन परिवार में जन्म लेकर भी उन्होंने व्यक्तित्व का जैसा व्यापक विकास किया है, वह उनकी व्यक्तिगत साधना का ही फल है। आज साहित्य, राजनीति, कला, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में उनकी दुन्दुभि बज रही है। ऐसे जाज्वल्यमान प्रकाश-पुंज व्यक्तित्व को मेरा शत बार प्रणाम।

कल्पनानगर, पटेल मार्ग,
गाज़ियाबाद (उ० प्र०)

हिन्दी के धार्मिक स्वयंसेवक

श्री आरिगपूडि

साहित्यकार की सबसे बड़ी विशेषता है दूसरों के प्रति आत्मीय होने की क्षमता। यह क्षमता ही साहित्यिक सृजन का आधार है। अनुभूति और सहानुभूति इस क्षमता के दो पहलू हैं, जिनके अभाव में साहित्य केवल शब्द कोष सा है निष्प्राण।

प्रतिभा हो, और यह क्षमता न हो तो खोज ग्रन्थों की, शुष्क आलोचना-साहित्य की सृष्टि तो सम्भव है, पर रचनात्मक मौलिक साहित्य असम्भव है। वे साहित्यकार सौभाग्यशाली हैं, जिनको यह क्षमता, प्रतिभा और साधना की प्रवृत्ति समान मात्रा में मिली होती है।

मित्र सुमनजी में मुझे सबसे अधिक आकर्षक विशेषता लगी उनकी आत्मीयता, स्वाभाविक, स्नेहभरी आत्मीयता। सहज भ्रातृत्व-भाव। वह आत्मीयता नहीं जिसके पीछे अभिनय होता है, शिष्टता का आडम्बर होता है सुचिन्तित योजनाएँ होती हैं। स्वार्थ होता है। निष्कपट आत्मीयता है उनकी, हार्दिक।

इससे पहले कि मैं उनसे मिल सका, मेरा परिचय उनसे चिट्ठी-पत्री द्वारा था। प्रत्येक पत्र पत्र-लेखक का प्रतिबिम्ब-सा होता है। मैंने भी उनके पत्रों में उनके प्रतिबिंब की कल्पना की थी। और आश्चर्य यह कि जब मैं उनसे मिला तो वह कल्पना ठीक निकली—मैंने उनको लगभग वैसा ही पाया जैसी कि मैंने उनकी कल्पना की थी। न मालूम इसकी क्या वैज्ञानिक व्याख्या है। मैं इतना ही अनुभव से जानता हूँ कि ऐसे व्यक्ति स्नेहशील होते हैं। और सुमनजी भी वैसे ही हैं।

सुमनजी में दृढ़ विश्वास है—अटूट, कट्टर। ऐसे व्यक्ति साधारणतया हठी हो जाते हैं। उनको प्राय यह विश्वास नहीं होता कि उनके विश्वास के अतिरिक्त कोई और भिन्न विश्वास भी सम्भव है। दृढ़ विश्वासों का होना अपने आप में अनुचित नहीं है—कर्मठ व्यक्ति के लिए तो वे आवश्यक भी हैं। पर यदि वे बुद्धि और मन पर ताले लगा दें तो वे अनुचित ही नहीं, हानिकारक भी हैं। मित्र सुमनजी मुझे इसके अपवाद लगे। वे दूसरों के विश्वासों को भी सुन सकते हैं, और अपने विश्वासों को भी दृढ़ रख सकते हैं, विचित्र उत्फुल्लता और शिष्टता के साथ।

हिन्दी श्री सुमनजी के लिए एक धर्म-सी है। वे इसके एक धार्मिक स्वयंसेवक हैं। उनमें भी वह कट्टरता आ सकती थी, जो प्राय एक धर्म—रूढ़ि अर्थ में—के साथ प्राय आ जाती है। वे भी भावुक हो सकते हैं। अंगारे-भरे नारे उगल सकते हैं। यह उनकी विशेषता ही है कि ऐसा वे नहीं करते। अपनी भाषा के प्रति प्रेम दूसरी भाषा की अवहेलना करके नहीं पनपता—यह वे बखूबी जानते हैं। अन्य धर्मों का तिरस्कार करके,

कोई भी स्वयं धार्मिक नहीं हो जाता, वह यह करके अपनी ही धार्मिकता का तिरस्कार कर रहा होता है—यह सत्य श्री सुमनजी से छिपा नहीं है।

यही नहीं, दूसरी भाषाओं से उनका प्रेम है—मैं उनके धार्मिक विश्वासों के बारे में तो नहीं जानता, पर इस बारे में मेरी पूरी जानकारी है। उन्होंने 'भारतीय साहित्य-परिचय' की जो पुस्तक माला सम्पादित की थी, वह उनके इस प्रेम का परिचय देती है। इस प्रेम के पीछे भी वही आत्मीयता है जिसका संकेत मैंने पहले किया है।

उनके कितने ही और संग्रह हैं—और कितनी ही तरह के हैं। उनके कई संग्रहों में कई ऐसे लेख हैं, जो किसी और संग्रह में नहीं हैं। पर जो संग्रह में सम्मिलित होने योग्य है वह सुमनजी की सहानुभूति-भरी दृष्टि है, जो सहज उनको एक संग्रह में सम्मिलित करके, एक नये धरातल पर ला देती है और दूसरों की दृष्टि उनकी ओर आकर्षित करती है। यह उनकी आत्मीयता का ही द्योतक नहीं है। पर उनकी गुणग्राहकता का भी, और सहानुभूति का भी।

मैं मद्रास में हूँ दिल्ली से बहुत दूर—जहाँ श्री सुमनजी रहते हैं। और जब मैं उनके बारे में लिख रहा हूँ तो ऐसा लगता है, जैसे वे मेरी बगल में खड़े-खड़े लजा रहे हों। मझोले कद के आदमी गेहुँआ रंग, जवाहर जाकेट, गांधी-टोपी और खुली-खुली मुस्कराहट—सब मेरे सामने चित्र की तरह आ रहे हैं। और यह उस व्यक्ति का चित्र है, जो मुझ-जैसे अपरिचित से, पहली मुलाकात में ही, गले लगकर मिला था। वह भुलाये नहीं भूलता, क्यों भुलाऊँ? आत्मीयता का भूखा कभी इतना कृतघ्न नहीं हो सकता।

इसी टाइप-राइटर पर कभी मैंने उनकी संस्था—साहित्य अकादेमी के लिए एक पुस्तक का अनुवाद किया था। काफी अरसा हो गया है। उनसे खास चिट्ठी-पत्री भी नहीं होती—पर कभी मैं उनको नहीं भूलता हूँ। जब कभी दिल्ली के बारे में सोचता हूँ तो उनका चित्र आँखों के सामने आकर अटक जाता है—वही आत्मीयता का चित्र, जो स्नेह से शुरू होता है और बढ़ती स्मृतियों के कारण सजीव रहता है।

आज जब वे अपने जीवन के पचास वर्ष पूरे कर रहे हैं—संघर्षपूर्ण वर्ष, रचन और स्वेदपूर्ण वर्ष, निष्ठा और नैरन्तर्य के वर्ष, तो मुझे यह कर्मठ, परिश्रमी साहित्यकार जपता-सा सुनाई पड़ता है—'कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।'

१३८, रोनोयनगर,
मद्रास ३०

विविध सुगन्धों का सुमन

श्री रघुवीरशरण 'मित्र'

आज नहीं तो कल उसके गुण अवश्य गाये जाते है जो दूसरों के गुण गाता है। जो अपनी बात में दूसरों की बात कहता है, जो अपने कंठ से पर पीड़ा को संगीत देता है, जिसकी अनुभूति में शेष जगत् के दर्द की कहानी होती है।

किसी में कुछ गुण होते है, और किसी में बहुत-से। किसी की विशेषताएँ गिनी जा सकती हैं और किसी की विशेषताएँ विविधताओं में खोई रहती है। उस हुस्न का चित्रण कोई कैसे करे जो प्रतिपल नया शृंगार करता है। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' साहित्य-कानन के एक ऐसे सुमन है जिनमें विविध प्रकार का सौन्दर्य और अनेक प्रकार की सुगन्ध है।

जो कष्टों के काँटों मे खिलता है उसीके जीवन से सुगन्ध फूटती है वही रस पान करता हुआ रस-वर्षा करता है। सुमनजी शुरू से ही काँटों में पले और खिले है किन्तु दुखों से वे हारे नहीं, कष्टों से वे घबराये नहीं। यातनाओं ने उनका मार्ग प्रशस्त किया है।

सुमनजी को मैंने देखा है, परखा है, और पहचाना है। उनके जीवन की कहानी से मैं पूर्ण परिचित नहीं, और शायद किसी के जीवन की कहानी से कोई भी सभी रूपों मे परिचित होता भी नहीं है। कोई किसी से जो कुछ परिचित होता है वह या तो अपनी प्रकृति और अनुभूतियों से, या फिर अपने सामने आये उसके चित्रों से। मैंने सुमनजी की भावनाओं के कुछ चित्र देखे है।

सुमनजी को मैंने सबसे पहली बार अब से लगभग २१ वर्ष पूर्व देखा था। एक पुरस्कार-वितरण-समारोह मे, मेरे ही साथ उनको उनकी एक पुस्तक पर मेरठ में पुरस्कार दिया गया था। शायद तब हम दोनों ने अपनी-अपनी पुस्तक पर पहली ही बार पुरस्कार पाया था। पर सबसे बड़ा पुरस्कार यह था कि सुमनजी और मैं निकट परिचय मे आये, और इस तरह परिचय में आये कि उस समारोह में हम दोनों की जब बातचीत हुई तो सुमनजी ने मुझसे कुछ पूछा और मैंने उनसे जो कुछ पूछा, वे सब बातें कुछ रहस्यमय हैं। मैंने कहा—अब क्या लिख रहे है, तो उन्होंने तुरन्त ही कहा—कि मेरी जेल में लिखी कविताओं का संग्रह 'बन्दी के गान' नाम से छप रहा है। मैंने कहा—चलिये, अच्छा साथ मिला, एक ही रास्ते के दो पथिकों की मित्रता हो गई। मेरी भी 'बन्दी' पुस्तक छप रही है। वह दिन और आज का दिन, मेरी और उनकी मित्रता बढ़ती ही चली गई और मैं कह सकता हूँ कि सुमनजी ऐसे ईमानदार मित्र हैं, जो अपने लिए कम और मित्रों के लिए अधिक जीना चाहते है, जिनमें अपने मित्रों को सर्वस्व देने की इच्छा बलवती रहती है, जो मित्रों को देखकर हरे हो जाते है, जो मित्रों से मिलकर फूले नहीं समाते। वे मित्रों के निमन्त्रण पर नंगे पैर दौड़ते है और मित्रों को बुलाने के लिए आँखें बिछा देते है। अगर किसी को सुमनजी-जैसा मित्र मिल जाए तो फिर और क्या चाहिए!

मुझे उनकी मित्रता में जो अपनापन मिला वह एक बड़ा सुख है। उनकी मित्रता प्रदर्शन की मित्रता नहीं, बल्कि त्याग और सेवाओं की मित्रता है। वे मित्रों की सेवा करके प्रसन्न होते हैं। अपने घर पर, रास्ते में, दफ्तरों में और जहाँ-तहाँ वे अद्भुत आत्मीयता से मिलते हैं। वे अपने सामर्थ्य से अधिक आतिथ्य देते हैं। मानो वे सब कुछ समर्पण कर डालना चाहते हैं।

गुणों के साथ जब हृदय भी होता है तो व्यक्ति कवि कहलाने लगता है। सुमनजी की प्रतिभा में हृदय का सामंजस्य है। वे एक सहृदय प्रेमी हैं। निश्चय ही उनको प्रेम की कुछ दर्दभरी अनुभूतियाँ हुई होंगी, उनके हृदय को उद्वेलित करने वाली घटनाएँ जीवन में आई होंगी और उनको कवि बना गई होंगी। उनकी कविताओं में जो ध्वनि निकलती है उसमें उनकी एक कसक सुनाई पड़ती है। प्रेम की पीड़ा झनकारती है। कितनी ही कवि-गोष्ठियों में मैंने उनकी ऐसी कविताएँ सुनी हैं जिनमें रस है, आनन्द है, चेतना और ललकार है।

सुमनजी केवल कवि ही नहीं, समालोचक भी हैं। उन्होंने कितनी ही प्रकार की रचनाएँ की हैं। उनके निबन्ध उनकी प्रतिभा के प्रतीक हैं। सम्पादन-कला में भी उनकी सिद्धि है। कई उपयोगी और अनोखी पुस्तकें उनके द्वारा सम्पादित हुई हैं। शिक्षा-जगत के अतिरिक्त काव्य-जगत् में उनके द्वारा सम्पादित 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' तथा आधुनिक 'हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' पुस्तकों की खूब धूम है।

वे एक कुशल आलोचक हैं। साहित्य का मन लगाकर अध्ययन करते हैं। अपनी पांडित्यपूर्ण कलम से वे जो कुछ लिखते हैं वह न केवल विद्यार्थियों के लिए अपितु अध्यापकों के लिए भी उपादेय है। तभी तो क्षेमचन्द्र 'सुमन' अब 'आचार्य सुमन' कहे जाते हैं। उनकी आलोचनाएँ नये साहित्य का दूरवीक्षण दर्पण हैं।

सुमनजी सत्संग के योग्य साहित्यकार हैं। उनका सम्पर्क विचार-विनिमय का एक अच्छा माध्यम है। उनसे बातचीत करके कुछ-न-कुछ शुभ ही होता है। इसका कारण यह भी है कि गुरुजनों से उनका विशेष सम्पर्क रहता है। विद्वानों के यहाँ जाना और विद्वानों को अपने यहाँ बुलाना मानो उनका व्यसन है।

सुमनजी एक कर्मठ नागरिक हैं। अपने आस-पास के वातावरण में सक्रिय भाग लेते हैं। आस पास में जो भी काम होते हैं वे करते हैं। साहित्यिक गतिविधियों के अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों में भी उनका हाथ रहता है। समाज में वे कुछ-न-कुछ करते ही रहते हैं। उनमें साहित्य और कला का ही संगम नहीं, समाज और राजनीति का भी संगम है। किसी के यहाँ कोई उत्सव हो, सुमनजी वहाँ मौजूद रहते हैं। अपने हजार काम छोड़कर भी वे मित्रों के यहाँ होने वाले दुःख-सुख के कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। यहाँ तक कि अपने घर से मेरठ और झाँसी तक वे हेलीकोप्टर-जैसी गति से पहुँच जाते हैं। अपने आस-पास उनका इतना अधिक प्रभाव रहता है कि उनकी मदद के

बिना किसी राजनीतिज्ञ का चुनाव में मग्न होना मग्न नहीं है। और यह उनमें एक बड़ा गुण है कि राजनीति के खिलाड़ी होकर भी राजनीति से कुछ प्राप्त करने के इच्छुक नहीं रहते। उनमें गुण हैं, निरइमें नहीं।

कोमल होते हुए भी सुमनजी शक्ति के पुरुष है। वे जीना जानते हैं। अपनी राह के पत्थर हटाकर चलने का बल उनमें है। वे कायर नहीं, बहादुर हैं। तभी तो गाँव के वातावरण म पला वह मग्न व्यक्तित्व दिल्ली के खिलाड़ियों में जूझ रहा है। सुमन उन काँटों में भी खिल रहा है जो सुमन तोड़ने वाले के हाथों में नहीं, सुमन की पखड़ियों में चुभते रहते हैं। सुमनजी उनके बीच मस्तक उठाये चल रहे है जो बिना कारण ही दायें-बायें उलझते रहते हैं जो न जीना चाहते है और न जीने देना चाहते है। जो साहित्यकार होकर भी साहित्यकार के रास्ते रोकते हैं। टाँग में टाँग उलझाकर उसे गिराना चाहते हैं। चलने वाले आत्मविश्वास से चलते है वे हारों से भी नहीं हारते। और फिर एक दिन उनकी हारे उनकी जीत बन जाती है।

सुमनजी एक विजयी साहित्यिक है। उन्होंने दिल्ली में अंगद की तरह अपना पैर जमा दिया है। अब कोई रावण उनके चरणों की ओर भुककर कान्तिहीन भले ही हो जाए, पर राम-दूत पर विजय नहीं पा सकता। क्षेमचन्द्र दूसरों का क्षेम चाहते है, फिर ईश्वर उनके क्षेम की रक्षा क्या न करेगा!

बड़ा वह होता है जिसका मन बड़ा होता है। विशाल हृदय से ही शिवम् भाव निकलते है। जिसमे मन की सचाई होती है उसीके साहित्य में सत्य रहता है, जिसमें अन्तर की सुन्दरता होती है उसीका काव्य सुन्दर होता है। सुमनजी एक विशाल हृदय के कवि हैं। उन्होंने समुद्र-जैसा मन पाया है जिसमें साहित्य की सीताओं को शान्ति मिलती है एव जिसमें काव्य के रत्नों की उत्पत्ति होती है। किन्तु किसी भी व्यक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि उसमें मानवता प्रतिष्ठित हो। जो मनुष्य होकर भी मनुष्य के काम न आए उससे तो जड़ अच्छे हैं। सुमनजी कवि से भी बड़े इन्सान हैं, उनमें पर-दु ख-कातरता है। उनके हृदय में पर-पीड़ा की छटपटाहट है।

एक बहुत बड़ी बात सुमनजी म बड़ी लगन की है। वे परिश्रम और लगन के व्यक्ति हैं। जिस काम में लग जाते हैं, जुट जाते हैं। घर है या बाहर, देश हो या समाज, साहित्य हो या संस्कृति, सभी में वे अपनापन महसूस करते हुए अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं। कर्म से वे थकते नहीं। व्यक्ति के धर्म को पहचानते हुए यह कलम का मजदूर न जाने कितने उत्तरदायित्वों का बोझ ढो-ढोकर अपना जीवन चला रहा है। उनकी मेहनत के बदले उनको जो कुछ मिला है, वह बहुत कम है। यह एक दूसरी बात है कि दाता को कोई क्या देगा!

इस तरह साहित्य-कानन के इस सुमन से अनेक प्रकार की सुगन्ध फूटती है। यह एक फूल रंग बिरंगी पत्तियों का फूल है। सुमनजी वास्तव में एक ऐसे सुमन हैं जिसमें

कसैली, रसीली, नशीली और आदर्शों की रजनीगन्धा जैसी गन्ध उड़ती है। उनके गुणों की गन्ध द्वार-द्वार हृदय हृदय और शब्द-शब्द की ध्वनि है। ईश्वर करे विविध प्रकार की सुगन्धों के सुमन 'श्री क्षेमचन्द्र सुमन से काव्य कानन को खूब महकता रहे। चन्दन के एक वृक्ष से आस पास के सभी पेडों को सुगन्धि मिलती रहे। सुमन से उड़ती रहे सुगन्ध।

सदर, मेरठ

श्रमिक किन्तु ईमानदार साहित्यकार

श्री शम्भुनाथ सक्सेना

पुरानी बातों को स्मरण करने मे बड़ा आनन्द आता है। और जब गुजरे जमाने को स्मृति के पटल पर दोहराने का सयोग आता है, तो मन कार्तिक माह मे ओस-कणो मे स्नात दूर्वादल-सा आर्द्र हो जाता है। जमाना तो एक सा नही रहता। उतार-चढाव, समावेश रूप मे चलते ही रहते है। और यही जीवन-क्रम है। इस क्रम के मध्य ही अनायास सन् १९४१ मे क्षेमचन्द्रजी 'सुमन मे मेरा परिचय हुआ था।

दिल्ली म अखिल भारतीय पत्रकार सम्मेलन चल रहा था। स्व० बाबू मूलचन्द्र जी अग्रवाल सचालक 'विश्वमित्र' उसक अध्यक्ष थे। मैं कलकत्ता के 'विचार' की ओर से उसमे भाग लेने आया था। इस सम्मेलन मे ही सर्वप्रथम सुमनजी के दर्शन हुए। मझोला कद, सादा-सा लिबास, छरहरे-से बदन वाले मधुरभाषी सुमनजी से प्रथम भेंट मे ही घनिष्ठता हो गई। उस समय सुमनजी को अपना भविष्य गढना पड रहा था और उसके लिए वे बडी ईमानदारी से तन्मय होकर श्रम कर रहे थे।

उस समय की दिल्ली दूसरी थी। साहित्य और पत्रकारिता मे व्यवसाय अधिक नही था। परस्पर की आत्मीयता हृदय को स्पर्श कर लेती थी। इस्लाह, विचार-विमर्श, सहायता और सहयोग के अनेक ठीए थे। वहाँ जाकर कुछ सीखने को ही प्राप्त होता था। और सुमनजी तो सचय-वृत्ति के मेधावी युवक थे। सम्पर्क, ज्ञानार्जन, श्रमसाध्य कार्य व अध्ययन-प्रवृत्त। जमाने का क्रम चलता रहा और सुमनजी अविराम चलते गए। उतार-चढाव आते गए। लेकिन वे चिरन्तन और शाश्वत तो होने नही, अतएव बिना उनकी चिन्ता किये स्वनिर्मित मार्ग पर वे बढते रहे।

उसी दिल्ली मे आज सुमनजी एक विशिष्ट साहित्यिक विभूति हैं। यद्यपि जीवन का काफी सफर पार कर चुके है, फिर भी वे थके नही हैं। अदम्य साहस, पौरुष और कर्मण्यता की वे प्रतिमूर्ति है। थकना तो वे जानते ही नहीं। बडे जीवट के व्यक्ति हैं।

हिन्दी के क्षेत्र में बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने केवल मसिजीवी रहकर अपने भविष्य का निर्माण किया हो और सफलता प्राप्त की हो। सुमनजी उनमें से एक हैं।

हाँ, तो मैं बात कर रहा था १९४१ की दिल्ली की। उस समय पंडित इन्द्रजी विद्यावाचस्पति उत्साहपूर्वक पत्रकारिता के कार्यक्षेत्र में थे। स्व० पं० रामगोपाल जी विद्यालंकार 'वीर अर्जुन' के सम्पादक थे। श्री कृष्णचन्द्रजी विद्यालंकार भी 'अर्जुन' में ही थे। दो बड़े दैनिक पत्र माने जाते थे—'हिन्दुस्तान' और 'अर्जुन', और दोनों ही स्थानों पर मानवीय अनुभूतियों का केन्द्रीकरण था। जिसमें संघर्ष की तमन्ना रहती है, वही दिल्ली में टिक पाता है। ऐसी इस ऐतिहासिक नगरी की मान्यता है। यह पौरुष और व्यक्तित्व की उपासिका है। निठल्लों के लिए या रेशम के कीड़े की तरह कोये में जीवित रहने वालों का न तो दिल्ली ने कभी स्वागत किया, न वह आज करती है। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' के दर्शन को इस नगरी ने भली-भाँति आत्मसात् किया है। और सुमनजी इस महानगरी में अपना स्थान बना पाए हैं उसके सहज जो कारण मेरी दृष्टि में प्रमुख हैं। साधु (सज्जन मित्रों) के साथ सज्जनता, सदाशयता और निवेदन। दूसरी ओर साहित्य व पत्रकारिता के क्षेत्र में नित-नये प्रयास, कठोर साधना और अपनी व्यक्तिगत पूँजी (प्रबुद्धता) का सर्वोपरि विनियोग।

एक बार काम हाथ में लेने के बाद उसे पूर्ण किये बिना उन्हें चैन नहीं। वे जानते हैं साहित्यिक का चिरन्तन और जीवनपर्यन्त साथी न धन है, न वैभव। उसका चिर-साथी तो उसका परिश्रम ही है। यही उनका आत्मविश्वास है। दिल्ली ने अनेक बार उनकी परीक्षा ली और इतनी कठिनाइयाँ सामने ला दीं कि वे मैदान छोड़ जाएँ। लेकिन बला के संयमी और धैर्यवान वे सिद्ध हुए कि टस से मस नहीं हुए। अंगद का पैर बन गए।

सुमनजी मेरे परमप्रिय मित्रों में से हैं। एक-दूसरे का संघर्ष और जीवन में प्राप्त सहूलियतें व पार्थिव उपलब्धियाँ हमने देखी हैं। सुमनजी की एक बड़ी खूबी है कि उन्होंने नेह की गैल आज भी नहीं छोड़ी है। इतना प्यार और इतना अपनत्व वह अपने मित्रों पर उँडेलते हैं कि ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो माघी पूर्णिमा के अवसर पर प्रयाग के त्रिवेणी-संगम पर स्नान का पुण्य-लाभ मिल गया। जितनी देर उनसे वार्ता की जाए, ऐसा लगेगा मानो हरसिंगार की झाड़ी के नीचे बैठ गए हैं और उसमें से सुगन्धित श्वेत पंखुड़ियाँ और लाल नाल के फूल एक के बाद दूसरे गिरते जा रहे हैं।

विशुद्ध गांधीवादी विचारों के बुद्धिजीवी हैं। खादी पहनते हैं। उसमें श्रद्धा और निष्ठा रखते हैं। साहित्य की कई दर्जन पुस्तकों का सम्पादन, संकलन और सृजन कर डालने के बाद भी विद्यार्थी बने हुए हैं। ज्ञानपिपासु एवं आत्मचिन्तक। चूड़ीदार पाजामा, शेरवानीनुमा लम्बा कोट, सिर पर खादी की नुकीली टोपी और पैरों में पम्प शू। सदा-कदा साहित्यिक अनुष्ठानों में दक्षिण भारतीयों की तरह श्वेत खादी का परिधान धारण

कर लेते है। उम्र के साथ-साथ हाथ मे छडी लेने का विचार भी करने लगे हैं।

मिलते हैं तो हरे हो जाते हैं, और चल दो तो मुरझा जाते हैं। हिन्दी साहित्य मे अपनी सम्पादन चातुरी द्वारा उन्होने जो विविधता एव मौलिक सूझ-बूझ प्रस्तुत की है, उससे निश्चय ही कार्य-सम्पादन के लिए अनेक नये क्षेत्र मिले हैं। वे प्रकाशन की दिशा मे प्रस्तुतीकरण की नूतन तकनीक के कायल है। यही कारण है कि उन्होने साहित्य मे अनेक विषयो पर नये ढग से पुस्तको का सकलन एव सम्पादन करके नई लीके रेखांकित की हैं। प्रकाशन-क्षेत्र मे वे अपनी नई सूझ-बूझ के कारण लोकप्रिय है। एक बात को नये तरीके व रोचक ढग से दस बार कैसे कहा जा सकता है, यह कोई सुमनजी से सीखे। उनकी मौलिकता के क्या कहने!

हम तो उनके व्यक्तित्व से बडे प्रभावित हैं। उन्होने हमे देखा और मन्द-मन्द मुस्कान उनके चेहरे पर बाजरे के छोटे-छोटे दानो-सी बिखर गई। और हमने जो गर्दन उठाकर देखा तो बाग-बाग हो गए। उनसे मिलकर सुख मिलता है, इस कारण मेरे लिए वे दर्शनीय हैं। खूब कहकहे लगाते हैं। जिससे उनकी मन स्थली की सतह को छूआ जा सकता है। गेहुए रग की गोलाकृति मे जब स्नेह से आप्यायित उनके सच्चाकार चक्षु विलक्षण ज्योति के साथ जुगनू की तरह दिप दिप कर उठते हैं तो उनके मन की पावनता लुक-छिप कर उठती है। मिलने वालो के लिए वे बडे मोद के क्षण होते है।

कहते हैं, सुमनजी उम्ररसीदा होते जा रहे हैं। हम जैसे मित्र आज भी यह मानने के लिए तैयार नही है। उनका बांकपन, उनका भोलापन, उनका बेलौस बात करने का तरीका, थोडा गम्भीर होकर किसे से बात करने का असफल प्रयास जो कि स्थिति को प्रदर्शनीय बना देता है, वस्तुत मानने ही नहीं देता कि वे उम्र की वह मंजिल पार कर गए, जहां बुजुर्गो या भारी भरकम अहम्मन्यता से आपूरित व्यक्तित्व खरगोश की तरह अपने दोनो कान ऊपर उठाकर टुकुर-टुकुर देखने लगता है।

वे अभिनन्दनीय है, तो इस कारण क्योकि वे स्नेह-सिक्त है, वन्दनीय है, तो इस वजह से क्योकि उन्होने हिन्दी-साहित्य की एकाग्र साधना से आराधना की है। परम विशुद्ध साहित्यिक वृत्ति के श्री सुमनजी की जब मैं आंख बन्द करके कल्पना करता हूँ तो मुझे उस मेहनतकश मजदूर का स्मरण हो आता है जो आजीविका-अर्जन के लिए चट्टानो को तोड-तोडकर गिट्टियां बनाता रहता है। लेकिन उस अटूट परिश्रम के बाद वह आराम से, सुख से तथा स्वाभिमानपूर्वक जीवित रहना चाहता है। आसक्ति उसे परिश्रम मे है, छल और प्रपच से नही। सुमनजी की, ऐसी ही श्रमिक किन्तु ईमानदार साहित्यकार की मूर्ति मेरे मन मे है।

भगवान् उन्हे अधिक यशस्वी बनावे, अधिक गौरव उनके साहित्य के साथ जुडे और वे दीर्घजीवी हो!

दैनिक 'निरंजन'
नई सडक, लश्कर (म० प्र०)

सरस्वती के मुखर साधक

डॉ० नित्यानंद शर्मा

बन्धुवर 'सुमन' सरस्वती के मुखर साधक हैं। व्यर्थ के आडम्बर से कोसों दूर उनका निश्छल, सरस एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार प्रथम भेंट में ही आगन्तुक को प्रभावित करता है। प्रथम परिचय ही ऐसा लगता है **परिचित-से जाने कब के तुम, लगे उसी क्षण हमको।**

सन् १९५८ के जून मास की बात है। मैं अपने शोध-कार्य के सम्बन्ध में प्रयाग गया हुआ था। एक दिन दारागंज में बन्धुवर प्रभात शास्त्री के यहाँ गया। वहीं श्री क्षेमचन्द्रजी के प्रथम दर्शन हुए। उनकी चर्चा तो देहरादून में मित्रों के बीच होती ही रहती थी। एम० ए० कक्षाओं में अध्यापन के व्याज से 'साहित्य-विवेचन' द्वारा उनका अप्रत्यक्ष परिचय था ही, पर उस दिन उनका साक्षात् परिचय मिला। वही उनका एक-जैसा परिधान। खद्दर का लम्बा कुर्ता, ढीली-ढाली धोती, जवाहर-जाकट और गांधी-टोपी। श्री क्षेम श्री प्रभात के यहाँ चारपाई पर बड़ी बेतकल्लुफी के साथ बैठे हुए गप-शप कर रहे थे। मेरे वहाँ पहुँचने पर परिचय कराया गया। उसी प्रथम परिचय ने हमें आत्मीयता के सूत्र में बाँध दिया।

इसके पश्चात् १९६४ में वे देहरादून पधारे। मैं अपने मित्र डॉ० अवधबिहारी जौहरी के यहाँ ठहरा हुआ था। मेरी नियुक्ति यहाँ हो चुकी थी और देहरादून में मैं उस समय अतिथि-रूप में था। श्री सुमन को जब मेरे आने का समाचार मिला तो तुरन्त ही श्री सुरेन्द्रनाथ[1] के साथ वे वहाँ आये। उन्होंने श्री सुरेन्द्र से मना कर दिया था कि वे मुझे उनके विषय में कुछ न बताये—इस प्रकार वे मेरी स्मरण-शक्ति की परीक्षा लेना चाहते थे। मैं इस परीक्षा में पूर्णतः सफल हुआ। उनके सौजन्य, स्नेह, आत्मीयता एवं अनौपचारिक सरस व्यवहार का मुझ पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

दिल्ली पहुँचने पर, मैंने उन्हें फोन किया—साहित्य अकादेमी में। कार्यालय की ड्यूटी समाप्त करके, वे सायं ६ बजे के लगभग आदरणीय बन्धु डॉ० रत्नाकर के यहाँ मुझसे मिलने आये। आप ही बतलाइये, उनका यह निःस्वार्थ अनुराग प्रेम-भाव किसको मुग्ध किये बिना रहेगा? दिल्ली जाने पर, मैं उनसे मिले बिना अपने को अपराधी समझता हूँ। अतः हर बार प्रयत्न यही करता हूँ कि उनसे किसी-न किसी प्रकार मिल लूँ। यदि *मिलना सम्भव नहीं होता तो फोन पर तो बात हो ही जाती है।*

अब तक के अपने सम्पर्क में मैं यही जान पाया हूँ कि क्षेमचन्द्र 'सुमन' सरस्वती के अनन्य उपासक, सन्तोषी, सीधे-सच्चे मस्तमौला जीव हैं। वे मित्रों के परम मित्र,

1. साहित्य-सदन, देहरादून के संचालक।

उनकी सहायता के लिए सदैव प्रस्तुत रहने वाले। हाँ, नकद दमाद अभिमानी के तथा आपको न माने ताके बाप को न मानिए आदि उक्तियों को भी चरितार्थ करने वाले व्यक्ति हैं। दिल्ली तथा शाहदरा की सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों में भी उनका प्रमुख हाथ रहता है। 'प्रूफ-रीडिंग' के तो वे सम्राट् हैं ही। उनकी इस कला की सभी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। उनके पुस्तकालय की प्रचुर एवं उपयोगी सामग्री शोध-छात्रों तक को सहायक सिद्ध होती है। उनकी निष्ठा, स्फूर्ति, सजीवता, मस्ती एवं फक्कड़-पन, उनका औदार्य, वात्सल्य एवं आत्माभिमान अनुकरणीय है।

उनकी अर्धशती-पूर्ति पर, मैं परमपिता परमात्मा से उनके स्वस्थ दीर्घ आयुष्य की प्रार्थना करता हूँ। ईश्वर करे, वे शतायु हों और सरस्वती के भंडार को और भी समृद्ध करें।

हिन्दी-विभाग,
जोधपुर-विश्वविद्यालय (राजस्थान)

एक कुशल व्यवस्थापक

श्री बालकृष्ण सिहानिया

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से मेरा परिचय व्यक्तिगत रूप में १९५६ के शाहदरा-नगरपालिका के चुनाव में हुआ था। उस समय के सम्पर्क से मुझे ज्ञात हुआ कि वे एक कर्मठ कार्यकर्ता हैं और बिना किसी आकांक्षा के अपने दल का कार्य एक सिपाही की तरह करते रहते हैं। मैंने उनको अपने उच्चतम उद्देश्यों के लिए सतत परि-श्रम करते पाया और ऐसा करने में उनको दूसरों की बुराई अथवा निन्दा करते नहीं देखा। उनके कुछ आलोचनात्मक ग्रंथ भी मैंने देखे, जिनसे उनकी साहित्यिक रुचि का पता चला। इस परिचय के बाद मेरा उनसे यदा-कदा साक्षात्कार होता रहा।

शाहदरा में मुखर्जी स्मारक उ० मा० विद्यालय नामक संस्था १९५५ में प्रारम्भ हुई, जिसका संस्थापन स्व० श्री लाला मोतीराम अग्रवाल द्वारा हुआ। लालाजी उस समय जनसंघ के कर्मठ कार्यकर्ता थे तथा नगरपालिका के जनसंघी सदस्य भी। श्री सुमनजी से सन् १९५६ में टकराव इन्हीं के (लालाजी) चुनाव अभियान के समय हुआ था जब कि श्री सुमनजी कांग्रेसी सदस्य श्री प्रबोधचन्द्र के समर्थन में कार्य कर रहे थे। स्व० श्री लाला मोतीरामजी का भी इनके प्रति बड़ा आदर-भाव जाग्रत हुआ और उन्होंने सुमनजी को एक सिद्धान्तवादी व्यक्ति पाया। इनके गुणों के कारण ही कुछ समय बाद स्व० लाला मोतीरामजी ने इनसे प्रार्थना की कि वे उनके विद्यालय की प्रबन्धक-समिति के सदस्य बन

जाएँ। विद्यालय का यह नाम डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी की यादगार में रखा गया। स्व० लाला मोतीरामजी तथा डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी एक साथ ही जेल में गये थे और उनके उच्च आदर्शों से प्रभावित होकर लालाजी ने अपने द्वारा संस्थापित इस विद्यालय का नाम यह रखा था। उनके लिए यह कम गौरव व आदर्श की बात नहीं थी। इस प्रकार इस विद्यालय के संस्थापक जनसंघी कार्यकर्ता आदर्शवादी लाला मोतीरामजी थे और उन्होंने एक कांग्रेसी विचार वाले व्यक्ति को इस संस्था का सदस्य ही नहीं बनाया वरन् प्रबन्धक का पद-भार भी उन्हें सौंप दिया क्योंकि वे जानते थे कि क्षेमचन्द्र 'सुमन' ऐसे सिद्धान्तवादी साहित्यकार हैं, जिनका प्रमुख जीवन राजनैतिक गठबन्धनों से परे है। सुमनजी अपनी योग्यता एवं प्रतिभा से विद्यालय का कार्य कर सकेंगे—ऐसी भावना से प्रेरित होकर ही लालाजी ने उनको इस विद्यालय की व्यवस्था का भार सौंपा था। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि उन्होंने दलगत भावना से परे होकर विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से किया।

१९६२ में एक बार फिर चुनाव आया और इस विद्यालय के संस्थापक जनसंघी तथा व्यवस्थापक श्री सुमनजी कांग्रेसी समर्थक के रूप में संघर्ष में आये। परन्तु विद्यालय के कार्य में कोई परिवर्तन नहीं आया। यही है सुमनजी के व्यक्तित्व की विशेषता 'अपने क्षेत्र में अपने उत्तरदायित्व को वे भलीभाँति समझते हैं और उसका प्रतिपालन करते हैं।

मेरा उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध इस विद्यालय से ही अधिक हुआ और मैंने उनको एक कुशाग्र बुद्धि वाला कुशल प्रशासक, सहृदय तथा निरन्तर कार्यरत व्यक्ति पाया। प्रबन्धक के रूप में उनकी यही चाह रही कि विद्यालय निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो तथा सभी सदस्य परिवार के सदस्यों की भाँति रहें, इसके लिए उन्होंने उचित वातावरण का निर्माण किया। यद्यपि राजनैतिक गुटों से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति उनसे दलगत भावना से भरे हुए अन्यायपूर्ण कार्यों की पूर्ति की आशा रखते थे, परन्तु उन्होंने अदम्य उत्साह व साहस के साथ केवल न्यायोचित कार्यों का ही समर्थन किया। कर्त्तव्यहीनता, सदाचारहीनता तथा अनुशासनहीनता को बढ़ावा नहीं दिया और साथ ही किसी को हानि न होने दी। सदैव ही प्रेरणा देते रहे कि एक परिवार के सदस्यों की भाँति सभी फूलें-फलें एवं प्रगति करें।

अध्यापकों का उत्साह बढ़ाने के लिए उनके सुन्दर कार्य की प्रशंसा करते तथा उन्हें इस आशय का प्रमाण-पत्र भी देते। ऐसा करने से परिवार के कुछ सदस्य, जो कदम-से-कदम मिलाने में असमर्थ थे, इन प्रमाण-पत्रों को प्रेम-पत्र कहकर मुस्करा देते या आलोचना करते। परन्तु सुमनजी को तो कार्यक्षमता बढ़ाने का यही उपाय सर्वोत्तम लगा। सभी सदस्यों पर इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। विद्यार्थियों को भी वे प्रोत्साहित करना चाहते थे। इसी हेतु उन्होंने घोषणा की कि हायर सैकण्डरी परीक्षा में सर्वप्रथम आने वाले छात्र को वे अपनी ओर से एक सौ एक रुपये का पारितोषिक हर वर्ष प्रदान प्रदान किया करेंगे। १९६५ का यह पुरस्कार श्री अशोककुमार जैन ने प्राप्त किया।

विद्यालय की सर्वांगीण उन्नति किस प्रकार हो, उनका लक्ष्य सदा यही रहा।

उनका व्यक्तित्व कितना आकर्षक है—इस विषय में एक छोटी-सी घटना है। १० जनवरी, १९६६ को संसद् के कुछ सदस्य विद्यालय का निरीक्षण करने आये। उस समय वे नव विद्यालयकी प्रगति से बहुत ही प्रभावित हुए और सुव्यवस्था के लिए सुमनजी की प्रशंसा की। ये सदस्य निश्चित समय से देर में आये थे। किसी विशिष्ट व्यक्ति के यहाँ इनके जलपान का आयोजन था। उन्होंने वहाँ न जाकर विद्यार्थियों द्वारा तैयार जलपान को ग्रहण किया। यह श्री सुमनजी के व्यक्तित्व का ही आकर्षण था जिसने माननीय सदस्यों को लम्बे समय तक विद्यालय में रोके रखा।

अन्त में मैं सुमनजी के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सुमनजी चिरायु हों एवं उसी लगन, अगाध स्नेह तत्परता एव कर्मठता से व्यवस्थापक का कार्य करते रहें। अपने को शासक न मानकर, वरन् सेवक की भावना से, आपने विद्यालय की जो सेवा की है, उससे विद्यालय की प्रगति में चार चांद लगे हैं। भविष्य में हमारा विद्यालय आपके नेतृत्व में और अधिक प्रगति करे—यही मेरी चिर अभिलाषा है।

प्रधानाचार्य,
मुखर्जी स्मारक उ० मा० विद्यालय,
शाहदरा-दिल्ली ३२

सक्रियता जिनके जीवन का मूल मन्त्र है

श्री व्रजमोहन

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' उन व्यक्तियों में से हैं जिनकी नाराजगी को भी आप आसानी से नज़रअंदाज़ कर सकते हैं, क्योंकि मैंने आज तक किसी के प्रति उनकी नाराजगी को गले से नीचे उतरते नहीं देखा। वे एक कवि हैं, लेखक हैं, पत्रकार हैं, परन्तु सबसे बड़ी खूबी यह है कि सहानुभूति में ओत-प्रोत वे एक इंसान हैं। अपनेपन का भाव उनमें इतना अधिक है कि अपने किसी निकट मित्र की आलोचना स्वयं तो कर सकते हैं, परन्तु यदि कोई दूसरा व्यक्ति उस मित्र की आलोचना करे तो वे सहन नहीं कर सकते।

इस १६ सितम्बर को सुमनजी अपने जीवन के ५० वर्ष पूरे करके अपनी स्वर्ण-जयंती की ओर कदम उठा रहे हैं। १९४२ में जब पहली बार मेरा उनसे परिचय

हुआ तो वह २६ वर्ष के थे और मैं १६ वर्ष का। उन दिनों सुमनजी लाहौर के 'दैनिक हिन्दी मिलाप' मे सहकारी सम्पादक थे। आजकल तो वह कवि-सम्मेलनो मे बहुत कम जाते हैं, परन्तु उन दिनो उनकी काफी धूम थी। प्राय प्रत्येक कवि-सम्मेलन मे उन्हे ससम्मान बुलाया जाता था। उनका रग राष्ट्रीय था। उनकी 'बन्दी के गान' तथा 'कारा' नामक काव्य-पुस्तकें इसकी साक्षी हैं। उन दिनों राष्ट्रीय आन्दोलन पूरे शबाब पर था। मैं भी कुछ तुकबन्दी कर लेता था और यह बात भूलने की नहो है कि उन्ही की प्रेरणा से मैंने पहली बार एक कवि-सम्मेलन मे भाग लिया। कवि-सम्मेलन शायद हापुड मे था और वह आग्रहपूर्वक मुझे अपने साथ ले गए थे। जहाँ तक याद पडता है कुछ रुपये भी उन्होने मुझे दिलाये थे। मेरी असावधानी से उनकी छडी (उन दिनो उन्हे छडी रखने का शौक था) गुम हो गई। लाहौर पहुँचकर उन्होने मुझे जो पत्र लिखा उसमे अपनी 'सहचरी' (छडी) के खो जाने पर मुझे स्नेहपूर्ण उलाहना दिया था।

इस घटना को आज कई साल हो गए। इन २३ वर्षों मे अपने अपने क्षेत्रो मे हम दोनो ने काफी उछल-कूद की है परन्तु पहली भेट म ही हम दोनो ने एक-दूसरे को जितना जान लिया था उसके बाद ऐसा लगता है कि शायद जानने को और कुछ बाकी नही रहा। यह बडा कठिन होता है कि मनुष्य अपने स्वभाव को, मन को, स्थिर रख सके। सुमनजी की यह विशेषता है कि अपनी अनेक सफलताओ के बावजूद वह वैसे ही सीधे, सरल और निश्छल बने रहे।

मैं अब पिछले वर्षों पर नजर डालकर उनके बारे मे सोचता हूँ तो उनके व्यक्तित्व की सबसे आकर्षक और आश्चर्यजनक बात मुझे यह लगती है कि मैंने उन्हे कभी खाली नही देखा। सक्रियता उनके जीवन का मूल मत्र है। लिखा तो उन्होने इतना है कि उनके आलोचको को जब और कुछ कहने को न मिला तो यही कहना शुरू कर दिया कि रात को उनके हाथ मे एक कैंची पकडा दीजिए, सुबह तक एक पुस्तक तैयार हो जाएगी। पहली बात तो यह है कि यह आरोप बिलकुल गलत और बेमानी है। दूसरी बात यह है कि अगर इसको सच भी मान लिया जाय तो क्या यह कम हुनर का काम है? महापुरुषो के कथनो और लेखो पर आधारित साहित्य तैयार करना प्रत्येक देश म एक महत्त्वपूर्ण काय समझा जाता है। इस प्रकार का कुछ साहित्य सुमनजी ने भी तैयार किया है, जिसके लिए वे आलोचना के नही, बल्कि प्रशसा के पात्र है। उनके प्रेरणात्मक साहित्य मे उनकी 'नये भारत के निर्माता', 'नेताजी सुभाष', 'आजादी की कहानी', 'हमारा सघर्ष', 'कांग्रेस का सक्षिप्त इतिहास' तथा 'लाल किले की ओर' नामक पुस्तकें आज भी उत्सुकता से पढी जाती हैं। उन्हे पढकर सुमनजी की सरल मुस्कान के पीछे क्रान्ति की जो चिनगारियाँ छिपी हैं, उनका पता चलता है। आलोचना के क्षेत्र मे भी उनकी कई कृतियाँ अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं।

जिस प्रकार सुमनजी की कविताओ का रग राष्ट्रीय रहा है, उसी प्रकार उनके

अन्दर का पत्रकार भी कभी व्यवसायी नहीं बना। गुलामी के दिनों में उनकी पत्रकारिता अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक ललकार बनकर ही सामने आई थी। १९४२ में जब मैं दिल्ली से प्रकाशित यशस्वी 'नवयुग' साप्ताहिक में पत्रकारिता की दीक्षा ले रहा था, तब सुमनजी के लेख और कविताएँ हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में चर्चा का विषय बने हुए थे। जब 'प्रगतिशील लेखक संघ' एक जीवित संस्था के रूप में काम कर रहा था तब दिल्ली में सुमनजी उसके प्रमुख स्तम्भों में से थे। उनकी प्रेरणा से नगर के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसी गोष्ठियाँ होती थी जिनका मूल उद्देश्य साम्राज्यवाद तथा सम्प्रदायवाद के विरुद्ध साहित्यकारों का एक संयुक्त मोर्चा तैयार करना था।

मुद्रण, मुद्रण-व्यवस्था तथा प्रकाशन आदि कार्यों में सुमनजी ने अपने अनुभवों के आधार पर जो दक्षता प्राप्त की है वह इस समय दिल्ली में शायद ही किसी अन्य व्यक्ति को प्राप्त हो। न जाने कितने कम्पोजीटर, कितने फोरमैन, कितने प्रूफ-रीडर, कितने लेखक *और कितने सम्पादक उनके संरक्षण में बने और पले हैं। बात व्यक्तिगत मालूम होती है,* परन्तु यहाँ उसका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। गांधीजी की हत्या के बाद साम्प्रदायिक तत्वों के विरुद्ध मोर्चा लेने के लिए जब मैंने 'प्रजा' नामक साप्ताहिक-पत्र निकाला था तब सुमनजी से प्राप्त हुए प्रोत्साहन को मैं कभी भूल नहीं सकता। 'प्रजा' के लिए उन्होंने लेख तो लिखे ही उसके रूप-रंग को सँवारने और बनाने में भी उनका बहुत बड़ा हाथ था। उनकी देख-रेख में 'प्रजा' उन दो प्रेसों में छपता था जिनके कि वे स्वयं मैनेजर थे। इस अवसर पर स्वर्गीय श्यामसुन्दर शर्मा (गुरुजी) की भी याद आती है, जो उस समय उन प्रेसों के फोरमैन थे और एक आदर्श फोरमैन के रूप में जिनका निर्माण सुमनजी के हाथों से ही हुआ था।

सुमनजी घर के रईस नहीं हैं। अपनी मेहनत और ईमानदारी से उन्होंने जो कुछ कमाया है उसमें ही आज वह एक छोटे-से मकान के मालिक हैं। परन्तु इस बड़ी नगरी में उन्होंने बड़े ही खराब दिन भी गुजारे हैं। ताज्जुब की बात यह है कि किसी को उन्होंने कभी अपने दुःख की कहानी नहीं सुनाई, न कभी किसी से सहायता ली, और न ही अपने दरवाजे से किसी अतिथि को बिना भोजन कराये लौटाया। सन् १९५० में एक बार उनको चेचक निकली थी। बड़ी उम्र में चेचक भयंकर कष्ट देती है। रोग-शैया पर पड़े हुए उस अवस्था में भी मैंने उनके हास्य-विनोद में कमी नहीं देखी। कवि की कोमलता के साथ उनके अन्दर एक संघर्षरत सैनिक की कठोरता भी है, जिसने उन्हें सम्मान के साथ जिन्दा रखा है। हिन्दी के क्षेत्र में यदि आज उनका नाम आदर से लिया जाता है तो उसके पीछे उनकी तपस्या और उनका सद्-व्यवहार है।

समाज-सेवा के कार्यों में भी उनकी रुचि किसी भी राजनीतिक तथा सामाजिक कार्यकर्ता से कम नहीं है। इसका आभास मुझे १९५६ के शाहदरा म्युनिसिपल कमेटी के चुनाव और १९६२ के आम चुनाव के समय हुआ। शाहदरा में, जहाँ वह रहते हैं, उसके

चारों ओर के क्षेत्रों में, उनके प्रभाव को देखकर मुझे उनके बारे में एक नई जानकारी हुई। लगा कि उनका काम सिर्फ कलम तक ही सीमित नहीं है। वह एक अच्छे संगठनकर्ता भी हैं और अपनी विचारधारा से जन-मानस को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। व्यक्तिगत रूप से तो वह मेरे एक सखा और संरक्षक हैं, परन्तु उन्होंने जो कुछ समाज और साहित्य को दिया है, उस पर मुझे गर्व है। उनके ५१वें वर्ष-प्रवेश पर उनके सभी मित्र और शुभचिन्तक यह कामना करते हैं कि वह इसी प्रकार निरन्तर साहित्य की सेवा करते हुए जन-सेवा के क्षेत्र में भी आगे बढ़ते रहें।

३०, नेताजी सुभाष मार्ग
दिल्ली ६

जादू-भरा व्यक्तित्व

श्री शिवशंकर मिश्र

प्रातः नौ बजे के लगभग मैं दफ्तर जाने की तैयारी कर रहा था कि भाभी विद्यावतीजी ने सूचना दी कि सुमनजी पधारे हैं। इस नाम के साथ ही मेरे मानस-पटल पर दो प्रतिमूर्तियाँ अंकित हो गईं—एक कविवर शिवमंगलसिंह 'सुमन' की और दूसरी वयोवृद्ध साहित्य-साधक और गांधीवादी विचारक श्री रामनाथ 'सुमन' की। इन दोनों के आने की सम्भावना नहीं थी, क्योंकि शिवमंगलजी बिना सूचना दिये आते नहीं और श्री रामनाथजी अभी दो दिन पूर्व ही प्रयाग लौटे हैं। उत्सुकतावश शीघ्रतापूर्वक मैं बाहर बैठक में आया।

कमरे के तख्त पर बैठे हुए थे श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'। अभी उनके दर्शनों का अवसर नहीं मिला था मुझे; किन्तु पुस्तकों और पत्रिकाओं में कई बार इनका चित्र देखा था। सुमनजी ने स्वयं उठकर गले लगाते हुए परिचय दिया—मैं हूँ क्षेमचन्द्र 'सुमन', दिल्ली से आया हूँ। और फिर दो-चार मिनट में ही स्वभाव की मधुरता और व्यवहार की सरलता द्वारा सुमनजी मुझसे ही नहीं, मेरे परिवार के सभी सदस्यों से घुल-मिल गए।

उन दिनों सुमनजी 'हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' पुस्तक का सम्पादन कर रहे रहे थे। अपने इस कार्य में सुमनजी जिस लगन और तत्परता के साथ जुटे हुए थे उसका अनुमान मुझे उनके पत्र-व्यवहार और पाण्डुलिपि को देखकर सहज ही हो गया। अपने कार्य में सुमनजी किसी कमी या अधूरेपन की कल्पना तक नहीं रहने देते। बातचीत में ज्ञात हुआ कि इस पुस्तक के सम्पादन के सम्बन्ध में उन्होंने कई नगरों की यात्रा की है तथा व्यक्ति-

गत रूप से मिलकर कवयित्रियों ने उनकी रचना भेजने का अनुरोध किया। अध्यवसाय और परिश्रम सुमनजी के ऐसे गुण हैं जिन्होंने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया। उनका प्रत्येक कार्य व्यवस्थित और सुचारु होता है और प्रत्येक पत्र का उसी दिन उत्तर देना उनका नित्य-प्रति का नियम है।

पहली भेंट म सुमनजी ने मुझे अपना अनुगत बना लिया और मैं फिर स्वेच्छा से ही उनका अनुज बन गया। तब से कई बार सुमनजी के साथ रहने का सुअवसर मिला और ज्यों-ज्यों मैं उनके निकट आया, मुझ पर उनके व्यक्तित्व का सम्मोहन प्रबल होता गया। वहाँ अहं का नाम ही नहीं और अपने-पराये का भेद तो उन्हें आता ही नहीं। उनका शरीर यंत्रवत् काम करने में व्यस्त रहता है जबकि उनका मन भावनाओं में ओत-प्रोत रहता है। वे प्रतिक्षण अपने कार्य और कार्यक्रम के विषय में चिन्तन रत रहते है। फिर भी हर मिलने वाले को ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे उसकी ही प्रतीक्षा कर रहे हों। इतने अधिक व्यस्त रहकर भी उनके सम्पर्क का क्षेत्र व्यापक है और उसका निर्वाह सुमनजी बड़ी कुशलतापूर्वक करते हैं। वे समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य के विषय में भी उतने ही जागरूक हैं जितने साहित्य-सृजन के प्रति। उनका कहना है कि मनुष्य मनुष्य पहले है साहित्यकार बाद में। जीवन के हर क्षेत्र में उनकी लोकप्रियता का यही रहस्य है।

सुमनजी के अध्ययन का क्षेत्र व्यापक है। विभिन्न विषयों को उन्होंने पढ़ा है और उनका मनन किया है। साहित्य का कोई भी अंग उनसे अछूता नहीं। उनकी दृष्टि पैनी है और सूझ-बूझ निराली है। प्रत्येक पुस्तक को पढ़ने के बाद वे उसकी सारवस्तु को बिना प्रयास के ग्रहण कर लेते हैं। उनके पुस्तकालय को देखकर उनकी जिज्ञासा-वृत्ति की झाँकी मिल जाती है। हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत की पुस्तकों के अतिरिक्त उनके पुस्तकालय में प्रांतीय भाषाओं की भी बहुत सी पुस्तकें हैं। उनमें शायद ही कोई ऐसी हो जिसे उन्होंने न देखा हो। प्रत्येक पुस्तक बड़ी सावधानी से यथास्थान रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर क्षण-भर में ही उसे खोज लेते हैं। उनका अभिमत है कि अध्ययन उन्हें सृजन की प्रेरणा देता है।

साहित्य के हर क्षेत्र में सुमनजी ने अपनी प्रतिभा और साधना का प्रसाद बिखराया है। वे श्रेष्ठ कवि हैं। भाषा की दुरूहता और अलंकारों के बोझ से मुक्त उनकी कविता प्रायः अनुभूति प्रधान होती है। समालोचक के रूप में सुमनजी का अपना विशिष्ट स्थान है। निबंध, संस्मरण आदि भी सुमनजी ने काफी लिखे हैं। सम्पादन की कला में तो उन्हें अपूर्व कुशलता प्राप्त हुई है। सुमनजी की भाषा सीधी, सरल और मँजी हुई होती है। कृत्रिमता से वे सदैव दूर रहते हैं।

यह कहना कठिन है कि सुमनजी मित्र अधिक अच्छे हैं या साहित्यकार। अभी कुछ दिनों पूर्व सुमनजी का कानपुर में सम्मान हुआ था। इस अवसर पर मैंने उनका परिचय त्रिफला प्रयोगशाला के स्वामी श्री जटाशंकर वात्स्यायन से करवाया। एक-दो दिनों में

ही वे जटाशंकरजी के इतने निकट आ गए कि उन्होंने जाते समय मुझसे कहा कि श्री जटाशंकर से मेरी भेंट इस यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि है। तब से हर एक पत्र में वे जटाशंकरजी के विषय में पूछते और जिज्ञासा प्रकट करते हैं। मित्रता निभाने की कला में सुमनजी अनूठे हैं।

सुमनजी अपने में एक संस्था हैं। अनेक समस्याएँ, अनेक विषय, अनेक योजनाएँ, अनेक कार्यक्रम, इन सबमें वे एक ऐसी इकाई हैं जो सम्पूर्ण वातावरण को संचालित रखती है। जब कभी लखनऊ आते हैं तो लगता है कि नगर के साहित्यिक वातावरण में ज्वार आ गया। सुबह से शाम तक सुमनजी के प्रशंसकों और साहित्यकारों का ताँता लगा रहता है। वे सबसे ही बड़े स्नेह और अपनत्व के साथ मिलते हैं। भाभी विद्यावतीजी बार-बार कहती हैं मुझसे कि कोई जादू जानते हैं सुमनजी जिसके प्रभाव में सहज ही वे दूसरों को मोह लेते हैं। साहित्यिक दलबंदी से कोई वास्ता नहीं उनका। इसीलिए वे साहित्यकारों के लिए सुगम बने हुए हैं। वे मत भिन्नता का सम्मान करते हैं, इसीलिए छोटे मोटे विवादों में कभी नहीं फँसते। वस्त्रों की स्वच्छता के साथ वे सदैव विचारों की स्वच्छता का ध्यान रखते हैं। सैद्धान्तिक रूप से उनका कोई विरोधी नहीं व्यक्तिगत रूप में उनका कोई अहित नहीं चाहता। इसका कारण सम्भवतः यह है कि वे सदैव दूसरों के शुभाकांक्षी और सहायक रहे हैं। जीवन को विविध स्तरों पर देखा है उन्होंने, इसलिए दूसरों की परिस्थितियों को वे सहज ही समझ लेते हैं और उनके साथ समझौता करने को तैयार रहते हैं। क्रोध या आवेश उन्हें कभी नहीं आता। पिछले कई वर्षों के सम्पर्क में मुझसे अनेक भूलें हुई हैं, परन्तु उन्होंने सदैव ही उदारतापूर्वक मुझे क्षमा किया। उनके सामने संकोच क्षण-भर भी ठहर नहीं पाता और उनका वरद हस्त पाकर दुर्बलता भी क्षमता बन जाती है।

वे इस समय अपने जीवन के पचास वर्ष पूर्ण कर रहे हैं। अब तक उन्होंने साहित्य को जो देन दी है उसके लिए हिन्दी के प्रेमी और पाठक उनके आभारी हैं। उनकी निराली सूझ-बूझ का अनुकरण अन्य लेखक और प्रकाशक प्रायः किया करते हैं। प्रतिक्षण नवीनता के प्रेमी सुमनजी आये-दिन ही नई विधा और नई रचना के साथ हमारे सम्मुख आते हैं। इससे हमारी यह आशा स्वाभाविक ही है कि भविष्य में भी वे इस प्रकार की अनेक बहु-मूल्य रचनाएँ हिन्दी को प्रदान करेंगे। सुमनजी के एक अकिंचन प्रशंसक के रूप में मेरी अनन्त मंगल-कामनाएँ उनके साथ हैं और जाने अनजाने नित्य ही मैं अपनी भावांजलि उन्हें समर्पित करता हूँ। दीर्घकाल तक वे ध्रुवतारे के समान साहित्यकारों का पथ-प्रदर्शन करते रहें, यही मंगलमय प्रभु से मेरी विनय है।

२२३, राजेन्द्रनगर,
लखनऊ

सरस्वती-आयतन के सजग प्रहरी

श्री सत्यप्रकाश 'मिलिन्द'

लगभग चौदह-पन्द्रह वर्ष हुए होंगे, मैं भाई सन्तराम 'विचित्र' के साथ एक दिन दिल्ली के हाथीखाने मुहल्ले के छोटे-से एक मकान में गया था और वहाँ बाहर ही हमसे मिलने आये थे एक व्यक्ति। उनका परिचय कराया गया—'सुमनजी'। उस क्षीणकाय व्यक्ति को मैं एकटक देखता ही रहा, क्योंकि उससे पूर्व मैंने सुमनजी की सर्जनात्मक प्रतिभा के दर्शन उनके कृतित्व के माध्यम से ही किये थे। उनकी कारयित्री प्रतिभा की तुलना मैं उनके हल्के-फुल्के शरीर से करने में उलझ गया। शीघ्र ही उन चार-पाँच मिनटों में ही मुझ पर यह प्रभाव पड़ा कि 'आर्य', 'आर्यमित्र', 'मनस्वी', 'शिक्षा-सुधा' और हिन्दी 'मिलाप'-जैसे पत्रों के माध्यम से विशुद्ध परिनिष्ठित रूप में माँ हिन्दी की सेवा करते रहने पर भी उनकी एकान्त निष्ठा बोझिल नहीं हो पाई है और उनमें जीवन्तता लबालब भरी पड़ी है। उनकी भाषा की चुस्ती और पकड़ उनके व्यक्तित्व का ही आंशिक प्रकाशन है।

घर लौटकर मैंने सुमनजी की साहित्यिक उपलब्धियों पर दृष्टि डालकर देखा, और आज भी देखता हूँ तो लगता है कि व्यक्ति सुमन अपनी कृतियों में समीचीन रूप में समुज्ज्वल हुए हैं और उनकी गौरव-गरिमा उनकी लेखनी से पर्याप्त अंश में प्रस्फुटित हुई है। उत्कृष्ट व्यंग्य विनोद उनकी अपनी ही मौलिक सम्पत्ति है और उसने स्वाभाविक रूप से उनके साहित्य को और भी लोकप्रिय बना दिया है। निराडम्बर, सरस और मोहक व्यवहार वाले जिस सुमन की लेखनी से 'मल्लिका', 'बन्दी के गान', 'कारा', 'बापू और हरिजन', 'नीर-क्षीर', 'लाल किले की ओर', 'आज़ादी की कहानी', 'हमारा संघर्ष', 'हिन्दी साहित्य नये प्रयोग' और 'साहित्य-विवेचन' जैसे अनेक ग्रन्थों की रचना हुई हो उसकी गति अबाध है और उस बौद्धिक चिन्तक साहित्यकार सुमन से अभी हिन्दी-साहित्य को अनेकानेक आशाएँ हैं। यह भी एक वस्तु-तथ्य है कि उनके सशक्त और प्रभावकारी साहित्य से हिन्दी के नवोदित लेखकों को निश्चयेन सही दिशा का निर्देशन मिलता है।

जिस ग्रामीण वातावरण में सुमनजी पले हैं और बड़े हुए हैं, और जिस संघर्ष में होकर वे गुज़रे हैं, वह उनमें न तो छूट पाया है और न छूट ही पाएगा। उसी संघर्ष-रत जीवन से उनको साहित्य-साधना का वह मार्ग खुला है, जिसे पकड़कर सुमनजी राष्ट्र-भारती के विशाल मन्दिर में अपने अर्चना-पुष्प अर्पित कर पाए हैं। राजनीतिक हलचलों और मानसिक ऊहापोहों के प्रभावों ने सुमनजी को पर्याप्त रूप से झकझोरा है और इसी-से आज उनके अन्तस् में एक ऐसी क्षमता पैदा हो चुकी है जिससे वे हवा की थिरकन, बिजलियों के गर्जन और विश्व की धड़कन को यों ही पहचान लेते हैं। सुमनजी का और

मेरा आज बहुत ही निकट का परिचय है और इसी से मेरी यह धारणा है कि उनकी लेखनी में सत्य और वास्तविकता की पैठ कहीं अधिक है। उनको और उनके साहित्य के ज्ञाता को 'चर्नी शेवस्की' की इस पंक्ति की वास्तविक सत्यता का भान हो जाता है कि, "वास्तविकता कल्पना से न केवल अधिक जीवनमयी होती है वरन् अधिक पूर्ण भी होती है।" मैं समझता हूँ, सुमन का साहित्यकार व्यक्ति सुमन के गुणों से इतना घनिष्ठ रूप से गुंथा हुआ है कि दोनों को पृथक् किया ही नहीं जा सकता। मुंशी प्रेमचन्द ने साहित्यकार के गुणों का उल्लेख करते समय सम्भवतः सुमनजी का ही चित्र अंकित किया होगा—"वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हम में मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है।" यदि आपको होवर्ड फास्ट द्वारा प्रतिष्ठापित वस्तु सत्य को ढूँढ निकालना है तो मेरी सलाह मानिये—आप सुमनजी के अन्तस् में घुस पैठिये। हँसी के फव्वारों और आत्मीयता के अल्हड़पन के पीछे आप ढूँढ निकालेंगे उस साधक सुमन को, जिसका जीवन ही उसका साहित्य है।

साधक एवं सजग सुमन जीवन से पृथक् साहित्य का भी प्रणयन कर सकता है, यह मेरी कल्पना में नहीं आता। इसीसे मेरा आग्रह है कि जीवन्तता के प्रतीक सुमन के उन्मुक्त ठहाकों के पीछे छिपे वरन् 'क्षेमचन्द्र' को यदि देखना है तो आइये, मेरे साथ आइये। वह आज भी उतना ही सरस लेकिन दृढ़ है, कोमल किन्तु मृदुभाषी है। चाहे आप उन्हें मुखर्जी मेमोरियल स्कूल, शाहदरा के मैनेजर के रूप में देखें और चाहे बैजनाथ गर्ल्स स्कूल के अध्यक्ष के रूप में, अथवा दिल्ली प्रशासन की जन सम्पर्क समिति की बैठक में तूफान उठाते वक्त, किसी भी साहित्यिक गोष्ठी के आयोजक, अध्यक्ष अथवा श्रोता के रूप में, उनके व्यक्तित्व की छाप आप पर पड़े बिना नहीं रह सकती। उनके सरल और बोधगम्य व्यक्तित्व में जो उदात्त शक्ति भरी पड़ी है, वह दर्शक, श्रोता और पाठक का दामन पकड़कर सदा सर्वदा के लिए उसे अपने पास बिठा लेती है।

अनेक पुरानी घटनाएँ मेरे और उनके जीवन में ऐसी गुंथ गई हैं कि आज उनका प्रकाशन और चित्रण सम्भव नहीं प्रतीत होता। एक आशंका और भी है, और वह यह है कि जो स्मृतियाँ आज मेरी उपलब्धियाँ बनी हुई हैं, वे यदि एक बार लेखनी की नोक से निकल गईं तो वे मुझसे सदा-सदा के लिए ही विदा हो जाएँगी। अस्तु, मैं सुमन-मिलिन्द के अभेद्य सम्पर्क को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए स्वार्थ के नाते भी उन विशिष्ट जीवन-घटनाओं और व्यक्तिगत गुणों को अपने मन में ही संजोये रखने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा।

मैं उन सुमन-प्रेमियों का हार्दिक साधुवाद करता हूँ जिन्होंने निर्भीक, सत्यनिष्ठ और मनोयोगी सुमनजी का उनके अर्धशती-प्रवेश पर सम्मान करने का सुन्दर निर्णय किया है। मुझे लगता है कि सुमनजी का सम्मान सरस्वती के एक सजग प्रहरी का सम्मान है, और स्वयं हिन्दी प्रेमियों का सम्मान है। यदि इस सम्मान्य आयोजन में से सुमन-

साहित्य के शोध का मार्ग खुल गया तो मैं समझूँगा कि वास्तव में इस आयोजन के सयोजकगण एक बडा काम कर सके है। आज के भटकते और बहकते लेखको और पाठको को सुमनजी के कृतित्व और व्यक्तित्व मे से उनकी बँधी-सधी चुटकियो और प्यारी पक्तियो के अतिरिक्त मिलेगी उनकी निश्छल स्वाभाविक स्मिति, जो आत्मीयता की ज्योति के साथ-ही-साथ ज्ञान की गरिमा से ओत प्रोत है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि अभी सुमनजी युगो-युगो तक हमारे बीच विद्यमान रहेगे। चाहे समय का स्रोत भले ही सूखने लगे, सुमनजी की विमलता, सरलता, अचलता और सजगता का सम्बल अधिकाधिक सबल और प्रौढ होता चला जाएगा। मैं इस पुनीत अवसर पर उनकी दीर्घायु के लिए प्रभु से याचना करता हूँ।

बिरला मिल,
दिल्ली ७

एक सबल हाथ

डॉ० श्याम परमार

साहित्य अकादेमी का जिक्र आता है तो हिन्दी के प्रतिनिधित्व के सन्दर्भ मे डॉ० प्रभाकर माचवे के पश्चात् (जो पिछले दिनो लोक-सेवा आयोग मे थे) एकमात्र नाम सामने आता है—वह है श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का। सुमनजी अकादेमी मे हैं, यह एक तथ्य है, जबकि उनका अप्रत्यक्ष रूप से एक साथ कई सस्थाओ मे होना भी उतना ही सही है। यह इसलिए कि उन जैसा कर्मठ व्यक्ति ही अपने प्रति एक 'इमेज' पैदा कर सकता है।

दिल्ली आने के पश्चात् सुमनजी से जब मेरी भेंट हुई तब वे 'आलोचना' छोड चुके थे। 'आलोचना' का उन दिनो बडा दबदबा था। हिन्दी मे एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका के नाते उसकी गिनती होती थी।

मुझे याद आते हैं सन् '५२ के वे दिन, जब मैंने नया-नया एम० ए० किया था। बाद मे बी० टी० भी कर ली थी। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ मे मेरी कविताएँ, कहानियाँ और आलोचनाएँ भी छपनी शुरू हो गई थी। तब तक शायद हिन्दी मे बहुत सारे लोग आ गए थे। लिखना एक मजबूरी थी, क्योकि मेरा इरादा पी-एच० डी० करने का था और उसके निमित्त लोक-साहित्य-सम्बन्धी समुचित सामग्री भी मैंने मालवा के क्षेत्र मे सीधे गाँवो मे जाकर एकत्र कर ली थी। केवल क्रमबद्ध प्रबन्ध लिखने का काम ही शेष

था। यह सच है कि लोक-साहित्य-विषयक मेरे लेख तब चर्चा का विषय बनने लगे थे। लेकिन एक कठिनाई थी कि मैं उज्जैन में था। दिल्ली-इलाहाबाद से गढ़ा से दूर। स्व० मुक्तिबोध तब नागपुर चले गए थे या जाने की सोच रहे थे। माचवेजी आकाशवाणी में जा चुके थे। हिन्दी से सम्पर्क सिर्फ कुछ पत्र-पत्रिकाओं से था—दूरी का। मामूली-सा बाहरी पत्राचार जारी था। व्यक्तिगत रूप से बाहर मैं किसी भी व्यक्ति को नहीं जानता था। एक दिन मुझे अचानक एक पत्र मिला। कुछ आश्चर्य हुआ, इसलिए कि नीचे हस्ताक्षर थे क्षेमचन्द्र 'सुमन'। कभी साक्षात् नहीं हुआ था। कभी किसी तरह का सम्पर्क-सूत्र भी नहीं बना था। मैं एक पिछड़े हुए जगत् में पड़ा हुआ था। अपने पत्र में एक योजना की चर्चा काफी अतरंग ढंग से सुमनजी द्वारा की गई थी। सुमनजी के खयाल में भारतीय साहित्य-परिचय की योजना काफी पहले से थी। उसका जिक्र करते हुए मुझसे मालवी साहित्य पर पुस्तक लिखने का आग्रह उन्होंने किया था। वास्तव में वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ दिया हुआ निमंत्रण था। मुझे आश्चर्य इसलिए हुआ कि ऐसे व्यक्ति भी संयोग से मिल जाते हैं जिनकी दृष्टि में एक व्यापक परिवेश होता है और वे जब सोचते हैं तो अपने निकट ही नहीं देखते—दूर भी देखते हैं और उपयुक्त व्यक्ति की तलाश कर लेते हैं। मेरे लिए सुमनजी का पत्र एक निरपेक्ष भाव से किया गया मूल्यांकन था। मुझसे अपेक्षित यह पुस्तक बाद में सुमनजी के सतर्क सम्पादन में 'सरस्वती-सहकार' की ओर से प्रकाशित भी हुई।

यह था सुमनजी का मुझ पर पहला प्रभाव, जो इस रूप में पड़ा कि साहित्य में जहाँ अवमूल्यन की प्रवृत्ति है वहाँ एक व्यक्ति ऐसा भी है जो सार है—अध्ययन प्रेमी है और क्षमतावान् है। मूल्यांकन में जिनकी नज़र दोष से बची है और वह अपने समूचे उपकरणों से साहित्य के लिए उपादेय सामग्री देने में विश्वास रखता है। इस बात ने मेरे और सुमनजी के बीच पत्र-व्यवहार का सिलसिला आरम्भ कर दिया।

मेरी यह पुस्तक जब प्रकाशित होकर बाजार में आई तब सुमनजी 'आलोचना' का सम्पादन करते थे। उन्होंने तब उसके एक विशेषांक के लिए मुझसे हिन्दी-लोक-साहित्य की तत्कालीन उपलब्धियों के सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख भी लिखवाया था। बाद में वह मेरे 'भारतीय लोक-साहित्य' नामक ग्रन्थ में भी संकलित किया गया। मुझे लगा, 'संकल्प' सुमनजी का दूसरा गुण है। किसी योजना की परिकल्पना उनके मन में एक बार दृढ़ हो जाए, तो वे उसे पूरा करके ही दम लेते हैं। उस समय 'भारतीय साहित्य-परिचय माला' के लिए उन्होंने २७ पुस्तकों के प्रकाशन की योजना बनाई थी। उस पुस्तकमाला की ११ पुस्तकें ही अभी तक छपी हैं। उसी तरह का एक दूसरा प्रकाशन 'हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेमगीत' का है। उनकी उपलब्धियों में इसका स्मरण रहेगा। चयन करते समय कई अज्ञात हिन्दी-कवयित्रियों को जाने कहाँ से सुमनजी खोज लाए। एक सन्दर्भ-ग्रन्थ के रूप में इस संकलन की ख्याति हिन्दी-जगत् में बहुत है। यह सब उनके दूर

सवरप और उदात्त श्रम की प्राप्ति के ज्वलन्ततम प्रमाण है।

मालवी और उसका साहित्य जब छपा और उसकी चर्चा होने लगी तो मेरे एक परिचित साहित्यिक मित्र ने (जिनसे मेरा प्राय मतभेद रहा करता था) सुमनजी को एक पत्र इस उद्देश्य से लिखा कि सुमनजी और मेरे सम्बन्ध बिगड़ जायें। पत्र मे कई ऐसी बातें लिखी गई थी जिनसे सुमनजी सहज ही बुरा मान सकते थे और अपने तक उसे सीमित रखकर जीवन भर दूरी को बनाये रख सकते थे। पर उन्होने इस बात को बडे सहज तरीके मे समाप्त कर डाला। उन्होने उस पत्र की एक प्रति मुझे भेज दी। इतना ही काफी था। स्पष्टीकरण की जरूरत ही नहीं पडी क्योंकि इस तरह की घटनाएँ होती रहती है। साहित्य म यह प्रवृत्ति आम बात है, इसे सुमनजी अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने मुझे पत्र की प्रति भेजकर वस्तुत इस स्थिति से अवगत कराया था कि मैं यह जान लूं कि मेरे इर्द-गिर्द किस किस्म के लोग है और वे अपने स्वार्थ के लिए किस किस तरह से कार्यरत हैं। सुमनजी ने मुझ पर उपकार किया था। मुझे एक अनुभव से अवगत कराया था। यह खरापन, मैं सोचता हूँ, आदमी की सबसे महत्त्वपूर्ण कसौटी है।

खरापन सुमनजी मे इस हद तक है कि वे समय आने पर कटु सत्य को व्यक्त करने से झिझकते नहीं। अभी दो वर्ष पूर्व डा० शकरदेव अवतरे द्वारा लिखित 'हिन्दी-साहित्य मे काव्यरूपो के प्रयोग' शीर्षक से एक शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हुआ। हिन्दी म आस्था और दिलचस्पी रखने वालो के लिए सुमनजी ने एक समर्थ आलोचक और द्रष्टा के नाते 'सोपान (अगस्त '६३) म हिन्दी के दायित्व के प्रश्न पर इस प्रबन्ध का जिक्र करते हुए बताया था कि हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी जैसी सस्था भी पी-एच० डी० की उपाधि वितरित करने मे कितनी उत्तरदायित्वहीन है। उन्होने अवतरे के प्रबन्ध मे हिन्दी-कहानीकारो मे मुल्कराज आनन्द, कृशनचन्दर, कर्तारसिंह दुग्गल, अमृता प्रीतम आदि के नाम गिनाये जाने की बुद्धिहीनता की कलई खोली थी। यह बात हिन्दी के अन्य आलोचको ने कभी नही उठाई। भ्रान्तियो म हिन्दी भटकती रहे, इसे सुमनजी बर्दाश्त नहीं कर सकते। उदासीनता उन्हे प्रिय नही। महन्तपने मे सुमनजी का विश्वास नही। साफगोई, श्रम और नि स्वार्थ भाव से भाषा की सेवा करना सुमनजी का लक्ष्य है। इसीलिए जब मैं साहित्य अकादेमी के सन्दर्भ म सुमन के बारे म सोचता हूँ तो लगता है कि उनका वहाँ रहना हिन्दी के हित की दृष्टि से उचित ही है। साहित्य की समृद्धि एक हाथ मे नही, कई हाथो से होती है। उन हाथो मे एक सबल हाथ है—क्षेमचन्द्र 'सुमन' का। यह हाथ काफी क्षमतावान् निष्पक्ष आलोचक का है।

आकाशवाणी, नई दिल्ली १

टण्डनजी की हस्तलिपि

श्री बालकृष्ण मिश्र

हस्तलिपि लेखक के व्यक्तित्व एवं उसकी मनोवृत्ति की प्रतीक है। लिखावट प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजी है, अतः मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के निमित्त एक विश्वसनीय माध्यम प्रस्तुत करती है। इसका विश्लेषण लेखक की नैतिकता, आत्म-बल, संवेदनशीलता आदि प्रमुख व्यक्तिगत लक्षण प्रकट करता है। यह उस व्यक्ति का अपना निजी रुझान भी प्रदर्शित करता है।

योरप के आधुनिक साहित्य में यह विषय 'ग्रेफोलोजी' के नाम से मिलता है। सहज भाषा में इसे हस्तलिपि-विज्ञान के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। वहाँ के दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक मनीषियों ने इसे गहरी खोज, अनवरत चिंतन तथा विविध प्रयोगों के फलस्वरूप वैज्ञानिक स्तर प्रदान किया है। पता चलता है कि आज यह विषय योरप के अनेकानेक महाविद्यालयों में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुका है। वहाँ इस विषय की बहुमूल्य सूक्तियों के द्वारा, अनेकानेक व्यक्तिगत तथा सामाजिक ग्रंथियाँ सहज ही सुलझाई जाती हैं। यह एक व्यावहारिक साधन है तथा कुछ श्रेष्ठ किन्तु सरल आधार-तत्त्वों पर निर्मित है।

हस्तलिपि-विज्ञान के विशेषज्ञों का कथन है कि प्रत्येक लिखित भाषा का एक निजी स्थायी स्वरूप है। इस स्थायी स्वरूप के सहारे, प्रत्येक बालक अक्षर-ज्ञान प्राप्त करता है तथा लिखने का अभ्यास करता है। पहले एक-एक अक्षर अलग-अलग लिखना सीखता है। अशुद्ध, अधकटे अक्षर लिखता है। पुनः प्रयास करता है तथा शुद्ध, सम्पूर्ण अक्षर लिखता है। यह क्रिया धीरे-धीरे चलती है, किन्तु एक बार लेखनी के प्रयोग में निपुणता प्राप्त कर लेने के बाद परिस्थिति बदल जाती है। फिर वह अपनी लिखावट लिखने लगता है। यह उसकी विशेष लिखावट होती है। सब बालक उस लिखावट के एक ही स्थायी स्वरूप में लिखना सीखते हैं? अन्त में उनमें से प्रत्येक बालक अपनी निजी लिखावट लिखने लगता है। किन्हीं दो बालकों की, अथवा व्यक्तियों की लिखावटें एक समान नहीं होतीं। ये लिखावटें मौलिक होती हैं, प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक व्यक्तित्व के समान यह पहचानी भी जाती है। जिस व्यक्ति से आपका साक्षात्कार एक बार हो जाता है उसे आप फिर भी पहचान लेते हैं। इसी प्रकार से लिखावटों को भी पहचाना जाता है।

दूसरा लक्षण क्या है, व्यक्ति तथा उसकी लिखावट में समानता का। यह है प्रत्येक लिखावट में असमानता के तत्त्व का पाया जाना। लिखावट बदलती रहती है। यह परिवर्तनशील है। प्रत्येक व्यक्ति दिन में अनेक बार लिखता है, विविध परिस्थितियों में। कभी वह शान्त भाव से बैठकर लिखता है, कभी जल्दी में है, कभी उद्विग्न है।

जैसी परिस्थिति होती है, शारीरिक अथवा मानसिक, वैसी ही लिखावट बनती

मेरे प्रेरणा-स्रोत

मैं अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ से ही अध्ययनशील रहा हूँ। संघर्ष को मैं अपना मूल उद्देश्य मानता हूँ। वास्तव में निरन्तर संघर्ष करते रहने की भावना तथा अनवरत अध्ययन करने की लालसा ने ही मुझे कर्म-पथ पर बढ़ने की अदम्य प्रेरणा दी है।

जिन कामों को कोई भी न कर सके, ऐसे कामों में सहज ही हाथ डालने की मेरी आदत-सी हो गई है। जीवन, अध्ययन, लिखन और मनन के बौद्धिक कार्य से जब भी उकता जाता हूँ तो जन-सेवा की पावन मन्दाकिनी में अवगाहन करने में अपने में ताज़गी पाता हूँ।

बापू का फक्कड़पन, दीन का स्वाभिमान और तुलसी की [illegible]-भारतमाता मेरे जीवन के प्रेरणा-स्रोत हैं।

१५ अगस्त '६६

तथा बिगड़ती रहती है। यह परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। आपने भी स्वयं अनुभव किया होगा कि लिखावट आपकी मानसिक अवस्था के अनुसार ही बदलती रहती है। आपकी मानसिक छाया आपकी लेखन शैली में प्रतिबिंबित होती रहती है। लिखावट के इस प्रकार के अनूठेपन से तथा उसकी जागरूकता से उसका लेखक से व्यक्तिगत सम्बन्ध अविच्छिन्न माना जाता है। हम सहज ही कह सकते हैं कि लिखने वाला व्यक्ति लिखावट में अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व की छाप देता है।

जिन व्यक्तियों के पास अनेकानेक व्यक्तियों के पत्र आते रहते हैं, तथा वे अनेकानेक लिखावटें देखते रहते हैं, बता सकते हैं कि उनके लिखने वालों में से कुछ लेखक ऐसे हैं जिनकी लिखावट सदा ही एक-सी रहती है। उनमें परिवर्तनशीलता का तत्त्व नगण्य है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो प्रत्येक परिस्थिति में एक-से ही रहते हैं। उनका मन स्थिर रहता है, उनका आत्मबल दृढ़ होता है। उनकी मानसिक अवस्था मजबूत होती है। वह सहज ही हिलते नहीं हैं। दूसरे ऐसे व्यक्ति होते हैं जो सहज ही अपने स्थान से हिल जाते हैं। अपने मन को स्थिर रखना ऐसे व्यक्तियों के लिए कठिन होता है। मानसिक स्थायित्व बनाये रखना ऐसे निर्बल व्यक्तियों के लिए सम्भव नहीं होता।

श्री सुमनजी की लिखावट का उदाहरण प्रस्तुत है, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए। यह कितने भी प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्ति क्यों न हों, वैज्ञानिक के लिए मूलतः एक मानव हैं, तथा इनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी उसी प्रकार से होगा जैसा कि संसार में किसी भी अन्य व्यक्ति का किया जाता है।

लिखावट की परिभाषा है, स्वच्छता, स्पष्टता, सम्पूर्णता स्थिरता तथा गति। सुमनजी की लिखावट देखिये। यह लिखावट की मूल परिभाषा पर खरी उतरती है, स्वच्छ है, अक्षर गंदे नहीं हैं, स्पष्ट हैं, प्रत्येक अक्षर तथा उसका प्रत्येक अंग स्पष्ट पढ़ा जा सकता है। अक्षर सम्पूर्ण हैं, अधकटे नहीं हैं। स्थिर हैं, जैसा एक अक्षर है, वैसा ही दूसरा भी है। इन अक्षरों की झुकान एक-सी है, इनका आकार एक-सा है, तथा लेखन का कागज पर दबाव समान है। लिखावट में गति है। लिखावट संवारकर धीरे-धीरे नहीं लिखी गई है।

लिखावट में गति का तत्त्व विशेष मान्यता रखता है। धीरे-धीरे लिखने वाला तो सहज ही स्वच्छ, स्पष्ट, सम्पूर्ण, स्थिर हो सकता है, किन्तु गतिशीलता में इन महान् तत्त्वों को पालने वाला व्यक्ति वास्तव में वन्दनीय है।

सुमनजी की लिखावट में दिखाई देनेवाली इस अद्भुत स्थिरता से हम समझते हैं कि सुमनजी का आत्मबल दृढ़ है। यह एक पथ है। इस पथ से हटने की आवश्यकता नहीं। जीवन में कुछ नियम हैं, आदर्श हैं, इनको परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं। उनके जीवन के आधारतत्त्व हैं जो अविचल हैं। जीवन-चर्या यहीं से आगे प्रारम्भ होती है। सरल, स्वच्छ और स्पष्ट की परिभाषा इसमें आती है। जो सत्य है, वह सामने है।

उसमे आस्था है, विश्वास है तथा वह व्यक्त है। इसमे आडम्बर नही है धोखा नही है, बनावटीपन नही है। सम्पूर्णता से समझी जाती है। वचन निभाने की आन्तरिक शक्ति इसमे है।। अनेक व्यक्ति अपने भावावेश मे अनेक सकल्प बना लेते है, उनमे इन सकल्पो को पूरा करने की आन्तरिक शक्ति है अथवा नही, इसका विवेचन नही करते। सुमनजी के अक्षर सम्पूर्ण हैं अधकटे अक्षर नही है। कितनी भी जल्दी मे हो, कैसी भी परिस्थिति मे हो, कितने ही कष्ट मे हो कितने ही सघर्ष मे हो, अपनी शक्ति को जानते है, अपनी क्षमताओ से परिचित है, अतएव जो कुछ भी काम हाथ मे लेते हैं उसे पूरा करते है। स्थिरता से दृढता से, जो कुछ भी ठान लेते है, करके दिखाते है।

मनुष्य की सत्यनिष्ठा, उसका वास्तविक सरल स्वभाव, लगन तथा मानसिक दृढता ही, उत्साह एव आत्मविश्वास उत्पन्न करते हैं। यह श्री सुमनजी के व्यक्तित्व के मूल तत्त्व हैं तथा स्वभाव ही मे प्रदर्शित है। यह उनकी बुनियादी मानसिक शक्ति है, गभीरता है इसके द्वारा वह अभावो से अनवरत सघर्ष करते आये है। यह मौलिक अध्यवसायिता है। अध्ययनशीलता लेखन, मनन, चिन्तन के मुख्य कार्य इसमे होते है। अपने क्षेत्र मे बढने की प्रेरणा है। किसी भी कार्य को हाथ मे लेगे पहले अच्छी तरह सोच-समझ लेंगे, फिर आगे बढेंगे तथा उसे पूरा करेंगे। यह उनके लिए स्वाभाविक है। अपना सकल्प पूरा करेंगे। परिस्थितियो के आगे झुकेंगे नही। विचार स्वतन्त्र है, क्योकि जो सत्य है, उसे देखते है अपनाते है, अपना लक्ष्य बनाते है तथा निरतर अटूट भावना भरे हुए आगे बढते जाते है जब तक सकल्प पूरा न हो। इनकी लिखावट का आकार मध्यम है, न अधिक बडा है और न अधिक छोटा। यह व्यावहारिक रूप है। इसमे भावुक आवेश है, भावुक विवशता नही। और उस आवेश को कार्यरूप मे परिणत कर सकने की शक्ति भी है। उसकी स्थिरता मे विश्वासपूर्वक स्वच्छन्दता मे लेखनी आगे बढती जाती है।

इनकी लिखावट का दूसरा तत्त्व है इनके अक्षरो का आगे की ओर झुकना, आगे की ओर बढना, बिना सकीर्णता के। यह इनकी लेखनी को पाठको की ओर आकर्षित करता है। अक्षर फैले हुए हैं, बीच बीच मे स्थान रिक्त है, ऊपर की मात्राएँ बडी हैं, नीचे *की ओर जाने वाली रेखाएँ भी छोटी नही है। सुमनजी हाथ रोकने वाले नही हैं। इनका* सहज रुझान सामाजिक है, अन्य व्यक्तियो की ओर खिच जाना इनके लिए सहज है। समाज मे परजनो के दुख मे दुखी, सुख मे सुखी, परोपकारपरायणता के लक्षणो से सन्तुष्ट है। यह मित्रता के भाव की अदम्य प्रेरणा है। सुमनजी वास्तव मे सामाजिक सहृदयता प्रदान करते हैं। यह समाज के ही हैं तथा समाज के लिए ही है व समाज की सेवा करना ही इनकी आन्तरिक भावना है। इनके हृदय की ममता, इनकी शुभैषिता, अपार है। मिथ्या स्वाभिमान ऐसे सवेदनशील व्यक्ति की कल्पना से परे है। उसके स्पष्ट लक्षण इनकी उभरी हुई, रगीन लिखावट मे हैं, जिसके अधिकाश अक्षर गोलाकार हैं। ऐसी लिखावट लिखने वाला व्यक्ति मिलनसार होता है, मित्रता के मूल्य को पहचानता है, अपने

स्वार्थ से आगे समाज के स्वार्थ का मूल्यांकन करता है। अपने से अधिक अन्य व्यक्ति को प्यार करता है। दुःख सहता है दूसरे के लिए, सृजन करता है समाज के लिए।

ऐसे समर्थ, सौम्य, संवेदनशील व्यक्ति की रुझान भी उतनी ही सजीव होनी है। और ऐसा होना भी चाहिए। जब उसके मन में भावुकता है, मस्तिष्क में उसे व्यक्त करने की वृत्ति है तथा शक्ति है लगन है स्थायित्व है, अध्यवसाय है तो क्या न उनके किये हुए कार्य सफल हों। जो भी कार्य हाथ में लेंगे सफल तथा सम्पूर्ण होगा। यही हाल कविता का है। उनके कवि की उड़ान का लक्षण छुपा नहीं रहा, कलात्मक कल्पना तथा प्रदर्शन-वृत्ति का भेद उनके बने हुए हस्ताक्षर में मिला। देखिये अक्षर 'क्ष' के ऊपर ए की मात्रा की ऊँची उड़ान तथा नीचे की मात्राओं में कलात्मक गोलकार लगने की गति। यह क्या है? यह कलात्मकता का सृजन है प्रदर्शन है उस आत्मा का जो अन्तर्मन में जागरूक है। वह प्रेरणा देती है भावुक कल्पना को तथा उसको कलात्मक रूप में व्यक्त करने को। यह रुचि के विशेष लक्षण हैं, उसके गुण हैं। सुमनजी कवि के रूप में सफल हुए तो ऐसा होना ही चाहिए था। एक तरफ उनकी कलात्मक भावना है, उसे सृजन करने की शक्ति है। आप में सहसमाज के, सहयोग के, परोपकार के गुण निहित हैं तथा गम्भीर चिन्तन, मनन तथा अनवरत अध्यवसाय की निधि है और दूसरी तरफ है साहित्यिक सागर। क्यों न हो कि वह इस सागर को सहज ही पार कर जायें। 'मल्लिका', 'बन्दी के गान', 'कारा', आदि उनके अनेकानेक ग्रंथ इसके सजीव उदाहरण हैं। इनकी भाषा सरल, स्पष्ट, हृदयग्राही है। विचार सुसंस्कृत सुनियन्त्रित एवं सुन्दर हैं। कल्पना की कोमलता, गोलाकार लिखावट में प्राप्त है। स्वप्न-महल बने और साकार हुए। साधना की त्रिवेणी में कल्पना तथा अनुभूति समा गई।

मध्यम आकार की, आगे की ओर झुकती हुई यह स्वच्छन्द लिखावट, फैले हुए गोलाकार अक्षर, शुद्ध, स्पष्ट, एवं स्थिर, गतिशील सरल प्रवाह सुमनजी के सरल स्वभाव, गम्भीर चिंतन, सृजन-शक्ति तथा कलात्मक भावना की प्रतीक है। इसके सफल सृजनकर्ता श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का हम अनेकानेक बार अभिनन्दन करते हैं।

१५४ वासुदेव मोहल्ला,
झांसी (उ० प्र०)

एक और खतरनाक शरीफ़ !

श्री प्रकाश पण्डित

कई बरस पहले की बात है, कुतुब पब्लिशर्स, बम्बई ने उर्दू के सुप्रसिद्ध शायरों और लेखकों के व्यक्तित्व पर आधारित शब्द-चित्र प्रकाशित करने का एक सिलसिला शुरू किया था। योजना यह थी कि शायर या लेखक का कोई घनिष्ठ मित्र ही वह शब्द चित्र लिखे ताकि उस शायर या लेखक के जीवन के उज्ज्वल पक्षों के साथ-साथ अँधेरे पक्ष भी सामने आ सकें। यह सिलसिला अपने-आप मे नया बल्कि अछूता था, क्योंकि उस समय तक (और काफी हद तक अब भी) भारत की लगभग सभी भाषाओं में शब्द-चित्र कुछ इस प्रकार लिखे जाते थे कि अमुक व्यक्ति बहुत ही भद्र पुरुष हैं। इनके पिताजी भी बहुत ही भद्र पुरुष थे। दादाजी भी जरूर भद्र पुरुष होंगे और परदादाजी का तो कहना ही क्या उनके भद्र पुरुष न होने का तो कोई कारण ही नही हो सकता, इत्यादि ..

अतएव इस सिलसिले की एक कडी के लिए जब 'स्वर्गीय' या 'नारकीय' सआदत-हसन मटो से कहा गया कि वे अपने प्रिय मित्र और उर्दू के प्रसिद्ध शायर, कहानीकार तथा पत्रकार अहमद नदीम कासमी पर पन्द्रह-सोलह पृष्ठों का एक शब्द-चित्र लिख दें और इसके लिए उन्हे डेढ सौ रुपये भेट किये जाएँगे तो पैसों की आवश्यकता के बावजूद 'स्वर्गीय' या 'नारकीय' मटो ने वह शब्द-चित्र लिखने से इन्कार कर दिया।

"क्यों ?" प्रश्न किया गया।

"मैं अहमद नदीम कासमी के बारे मे कुछ नही लिख सकता।"

"आखिर क्यों ? "

"क्योंकि वह जरूरत से ज्यादा शरीफ आदमी हैं।"

और आज जब मुझ पर श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का शब्द-चित्र लिखने या बनाने की जिम्मेदारी आई और पैसे की आवश्यकता के बावजूद मुझे एक दमडी तक देने का वचन नही दिया गया, मैं भी मटो ही के शब्द दोहराने को विवश हूँ कि मैं सुमनजी का शब्द-चित्र नही लिख सकता।

"क्यों ?"

"क्योंकि वे जरूरत से ज्यादा शरीफ हैं।"

यह विवशता जब मैंने सुमनजी पर प्रकट की तो हर शरीफ आदमी की तरह वे बहुत निराश हुए थे कि वे इतने शरीफ क्यों हैं या इस कारण से कि मैं इतना बदमाश क्यों नही कि उन्हे गाली तक नही दे सकता।

नहीं, सुमनजी !

यह बात नहीं है। आप विश्वास कीजिये कि मैं बड़ा बदमाश आदमी हूँ और आप सचमुच जरूरत से ज्यादा शरीफ आदमी हैं। मैंने आप से अपनी पहली मुलाकात से लेकर जो १९४२ में लाहौर में हुई थी, अपनी कल की मुलाकात तक जब मैं दिल्ली से छः मील दूर—आपके साथ आपका लिखने-पढ़ने का कमरा देखने गया था और वापसी में आप घुप अँधेरे जंगल में से मुझे टार्च दिखाते हुए बस के अड्डे तक पहुँचाने आए थे, मैं आपमें सिवाय शराफत के कोई भी दुर्गुण ढूँढने में असफल रहा हूँ।

आपके घर आपका लिखने-पढ़ने का कमरा देखने के लिए आप जानते हैं मैं क्यों गया था ? मैं केवल इसलिए वहाँ गया था कि मैंने उस समय तक आपकी कोई भी मौलिक रचना नहीं पढ़ी थी और बहुत-से लोगों ने मुझे बताया था कि आप कैंची और गोंददानी के इस्तेमाल के माहिर हैं और किसी भी प्रकाशक के निर्देशानुसार एक ही रात में एक-दो या दस पुस्तकें तैयार कर देते हैं। उसी कैंची और गोंददानी की पुष्टि के लिए मैंने रात के समय जंगल में से गुजरने की जोखिम उठाई थी, लेकिन लानत है आप पर कि आपने गोंद-दानी पहले से कहीं छुपा दी और जो छोटी कैंची मुझे आपकी लिखने की मेज पर मिली वह आपका चार वर्षीय बच्चा यह कहकर ले उड़ा कि "बाबूजी कैंची लाये हैं।"

'बाबूजी !' आपके बच्चे के मुँह से 'बाबूजी' का नाम सुनकर मैं चौंका और मैंने दस हजार बार आपके शरीर और आपके वस्त्रों पर अपनी नजर एक बार फिर डाली। यह व्यक्ति किस हिसाब या मुँह से 'बाबूजी' हो सकता है ! खद्दर का कुरता, खद्दर की धोती, खद्दर की जैकिट, खद्दर की टोपी—तभी मुझे याद आया कि साबुन और चीनी की मनाही और घरों के बजाय पेड़ों की छाँव में रहने की हिमायत करने वाले हिन्दी के सबसे बड़े समर्थक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन को भी लोग-बाग 'बाबूजी' कहकर पुकारा करते थे।

इस 'बाबूजी' को सुनकर मैंने सोचा, चलो, इसी बहाने इन 'बाबूजी' की टाँग खींचूँगा। आखिर यह क्या मजाक है कि पुरुषोत्तमदास टण्डन बने बगैर और किसी सरकारी विभाग में मामूली क्लर्की और टूटे हुए बटनों वाली पतलून पहने बगैर आपने अपनी सन्तान को कैसे धौंस दे रखी है कि वह आपको 'बाबूजी' कहे। मालूम हुआ कि यह 'बाबूजी' बच्चों से ज्यादा बच्चों की माताजी के 'बाबूजी' हैं। बच्चों की माताजी से मेरी कोई बात-चीत नहीं हो सकी, बल्कि मैं तो गलती से उनके रिश्तेदारों या सम्बन्धियों में से एक स्त्री को उनकी माताजी समझ बैठा था, लेकिन जब मुझ पर वास्तविकता प्रकट हुई और मैंने उड़ती नजर से सुमनजी की धर्मपत्नी को देखा तो मैं समझ गया कि उनके बच्चे उन्हें 'पिताजी' की बजाय 'बाबूजी' क्यों कहते हैं। अवश्य ही उनकी ग्रामीण धर्म-पत्नी ने जीवन के किसी क्षण में भगवान् से प्रार्थना की होगी कि उनका विवाह किसी ऐसे व्यक्ति से हो जिसे लोग नहीं तो कम-से-कम उनके बच्चे 'बाबूजी' कहते हुए लज्जा से

सिर न भुकाये। और यदि वह बाबूगढ़ का निवासी हो तो और भी सुविधा रहेगी।

देखा, सुमनजी !

मैं कितना बेहूदा और बदमाश आदमी हूँ और आप कितने शरीफ हैं कि इन शब्दों को ज्यों-का-त्यों प्रकाशित करवा रहे हैं !

हद है शराफत की ! क्योंकि यह आप ही हैं जो घर से दफ्तर जाने के लिए उजले वस्त्र पहनकर निकलते है और रास्ते मे बस के कडक्टरो और सवारियो का झगडा निबटाने मे उन्हे फडवा लेते हैं। किसी के मूढतम बच्चे को किसी प्रकार किसी पाठशाला मे दाखिला ले देते है और हँस-हँसकर उस बच्चे के बाप की तान-तान सुनते हैं कि आपने मुख्य अध्यापक से उनका परिचय कराते हुए यह क्यो नहीं कहा कि वे अमुक कम्पनी के मैनेजर है। किसी राजनीतिक मफरूर को अपने यहाँ शरण देते है और शरणागत से पहले स्वय गिरफ्तार हो जाते हैं। स्वय भूखो मरते है और दूसरो को भूखो मरने से बचाते है—आखिर यह सब क्या है ? अगर यह सब जरूरत से ज्यादा शराफत नही तो और क्या है—? और जरूरत से ज्यादा शरीफ होने के बारे मे गाधीजी की हत्या पर बर्नार्ड शॉ ने कहा था कि जरूरत से ज्यादा शरीफ होना भी खतरनाक होता है और उसीका एक प्रमाण मेरे द्वारा लिखा गया यह शब्द चित्र है।

हिन्द पॉकेट बुक्स,
जी० टी० रोड, शाहदरा-दिल्ली ३२

जीवट के जीव

श्री इन्दुकान्त शुक्ल

सुमनजी की जय-यात्रा मे मील का पचासवाँ पत्थर आ पहुँचा यह विस्मय और विह्वलता की बात है। विस्मय इसलिए कि उनकी जवाँमर्द कार्यक्षमता, सक्रियता, नित-नूतन योजनाओ के क्रियान्वयन में उत्साह-तत्परता, युवकोचित सहृदयता, प्रेमिल आत्मीयता आज भी वैसी ही हैं जैसी १५ वर्ष पूर्व से, काफी घनिष्ठ सान्निध्य से देखता-जानता आया हूँ। विह्वल उल्लास इसलिए कि जीवन की इस अर्द्धशती पर उनके स्नेह सम्मान मे जो वैजयतोत्तोलन हो रहा है उसमे सश्रद्ध एकत्रितो की अभिनन्दन माला मे एक फूल मैं भी जोड रहा हूँ।

ऐसा लगता है कि हिन्दी से जिसका यत्किचित् सम्बन्ध है उसका सम्बन्ध सुमन जी से भी होगा। इतने व्यापक क्षेत्र मे स्नेह-सम्बन्धो का स्थापन और निर्वाह सुमनजी

का वैशिष्ट्य है। हिन्दीतर साहित्यकारों में भी उनका प्रवेश और उनकी प्रतिष्ठा स्पृहा की वस्तुएँ हैं। इसका कारण है उनका निष्कपट आत्मार्पण एवं पर-स्वीकार। परोपकार-परायणता, औदार्य, परदु:खकातरता उनके सहज गुण है। एकाधिक बार अनेक प्रसंगों में उदाहरण पाता रहा हूँ। सीमा-संकोचवश उन सबका अथवा कुछेक का भी उल्लेख इस लेख में सम्भव नहीं। परन्तु उनकी इस प्रवृत्ति की झलक उनके दो पत्रों के अंशों से देना समीचीन होगा—

अजय निवास, दिलशाद कालोनी
शाहदरा, दिल्ली-३२

प्रिय भाई,

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आखिर तुमने इधर दर्शनों से कृतार्थ करने का विचार कर ही लिया। स्वागत है। कुटिया पर ही पधारें। इसमें पूछने की क्या आवश्यकता थी? मुझे इससे ठेस पहुँची। बच्चों समेत आओ तो ठीक है। वैसे, जैसी भी सुविधा हो। यहाँ सब कुशल है। दर्शनों की उत्कण्ठा में अभी से आतुर

२१-११-५७ सस्नेह
क्षेमचन्द्र 'सुमन'

प्रिय भाई,

आपका ११ नवम्बर का कृपापत्र यथासमय मिला। यह जानकर हार्दिक वेदना हुई कि आप दिल्ली न आकर सीधे ही पोरबन्दर पहुँच गए। बहुत दिन बाद तो यह स्वर्ण समाचार सुनने को मिला था, उस पर भी यह तुषार-पात! किसी शायर ने ठीक ही कहा है

खूब उम्मीदें बँधीं लेकिन हुईं हिरमाँ नसीब,
बदलियाँ उट्ठीं मगर बिजली गिराने के लिए।

खैर, अब श्रीमती शुक्ल का स्वागत करके ही सन्तुष्टि पाऊँगा। वे कब और किस ट्रेन से आ रही हैं। कृपया सूचित करें।

हाँ, मेरी सीरीज में 'गुजराती' की पुस्तक भी प्रकाशित हो गई। जल्दी ही भेजूँगा। उत्तर की प्रतीक्षा में।

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

सुमनजी के पत्रों का सुविन्यस्त प्रकाशन हिन्दी की एक ललित उपलब्धि के रूप में आदृत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस अवसर पर बन्धुओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर देना आवश्यक है।

यहाँ जिस सीरीज का संकेत है वह है 'भारतीय साहित्य-परिचय'। आज से १३ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम सुमनजी ने भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में हिन्दी-जगत् को संक्षिप्त

किन्तु सुष्ठु जानकारी देन का आयोजन मात्र अपने बूते किया था। इनकी अग्रगामिता, साहसपूर्णता एव भविष्यदर्शिता का प्रमाण यह कि अब इस आयोजना को जो अनेक सस्थाएँ अपने-अपने ढग स लाभदायक समभकर क्रियान्वित कर रही हैं उनम बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, हिन्दी समिति (उत्तरप्रदेश), साहित्य अकादेमी, सस्ता साहित्य मण्डल आदि भी हैं। अपन सार्वभौम साहित्यिक कृतित्व के उपस्थापन द्वारा राष्ट्रीय ऐक्य-उद्बोधन जिस समय भारतीय राजनीतिज्ञों एव प्रकाशको को सूझ भी नही सकता था, हितावह तथा आवश्यक लगन की बात दूर उस समय सुमनजी ने यह स्तुत्य कार्य अपने कधो पर उठाकर जिस साहस और निष्ठा का परिचय दिया था उसमे उनकी विशाल-हृदयता, मनस्विता एव मौलिकता स्वत प्रमाणित हैं। सुमनजी इस पुस्तकमाला के ११ पुष्प प्रकाशित कर चुके है जो यथाक्रम उर्दू, तमिल, तेलुगु, मराठी, बँगला, गुजराती, मालवी भोजपुरी, प्राकृत, सस्कृत, अवधी भाषा एव साहित्य से सम्बन्धित हैं। अर्थाभाव एव सरकारी नौकरी की व्यस्तता के कारण यह काम रुक गया, अन्यथा उन्होंने २७ भाषाओ का परिचय इस माला के अतर्गत देने की घोषणा की थी। यदि भारत की सास्कृतिक एकता का दम भरने वाल और ढोल पीटने वाले ऐसी योजनाओ का महत्त्व समझ पात और इन्ह अर्थानुदान द्वारा सिंचित सर्वाद्धित करन म तत्पर होत तो भाषाई कटुता एव अज्ञान का लोप होता एव भारतीय भूखण्ड के सभी प्रदेश पारस्परिक आदान-प्रदान से परिचय परिज्ञान म, भारत की वैचारिक सम्पदा बढात हुए, भारत-भारती के परिधान पर मुद्रित प्रकाशित बहुवर्णी सुमन-समुच्चय प्रतीत होते। अस्तु।

गोष्ठी का आयोजन हो या कवि सम्मलन का, सुमनजी की सगठन-शक्ति और सर्वोत्कृष्ट पर आग्रहशीलता देखते ही बनती है। अतिथियों का स्वागत हो या कविगण को पुरस्कार देन-दिलान की बात, सुमनजी की दरियादिली निर्बन्ध देखिये। इस सिलसिले मे उल्लेख्य है, उनकी सपादन-निपुणता। सामग्री-चयन एव उसका न्यास, अनावश्यक का त्याग, आवश्यक की सज्जा, मुद्रण की हो या वस्तु विषय की, सुमनजी अव्याहत अविराम के पीछे पागल दिखेंगे।

आन की इजाजत मागिए तो सुमनजी को ठेस लगती है कि यह निरर्थक औपचारिकता क्यो? आपसे आपके हित का कोई अनुरोध कर रहे हैं, पर कहेंगे कि 'नादिरशाही फर्मान' द रहा हूँ! भर्त्सना करते हैं तो भी प्यार उमडा पड़ता है! अभी हाल के एक पत्र मे फर्माते है 'पहले अपना दिमाग ठीक करो, तब दिल्ली आने की बात सोचना।...अपनी कविताओं के अनुवाद को भी.. के नाम से छपवा दो जैसे कि 'आज' मे...की कहानियो के सम्बन्ध मे छपवाया था।" मेरी दी हुई सामग्री को एक मित्र ने अपने नाम से कही छपा लिया मेरा उल्लेख किये बिना, उस पर सुमनजी का यह आक्रोश है। और इसके बाद पूछते हैं 'कैसी रही?"

अकवानक उत्कृष्ट प्रकाशनायोजनो के विधाता सुमनजी ने जब 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ

प्रेम-गीत', 'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेम-गीत' तथा 'नारी, तेरे रूप अनेक' नामक संकलनों का सम्पादन किया तब इन सबके अनुकरण पर हिन्दी में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं, परवर्ती प्रकाशनों में उस गरिमा और आर्जव का अभाव था जो सुमनजी की संपादना को स्वतःस्फूर्त, समृद्धि एवं आभिजात्य प्रदान करते हैं।

सुमनजी की सदाशयता और आदर्श मानवीयता इसमें परिलक्षित होती कि वे आपको आपके गुण-दोष जानकर आपके व्यक्तित्व की समग्रता में, स्नेह सम्मान देंगे। यह समझदारी आज विरल है। इसीलिए उनके इतने मित्र हैं। उनकी बहुज्ञता तथा स्मरण शक्ति गज़ब की है। आप हिन्दी में कहाँ क्या कर रहे हैं, अब आपने क्या साहित्यिक कार्य किया है—सब सुमनजी को पता है। व्यक्तियों एवं कार्यों की जानकारी का उन्हें यदि सचल अभिधान कहूँ तो अतिशयोक्ति रंचमात्र न होगी। और यह सब परम आत्मीय स्तर पर उन्हें अवगत रहता है। १८-१०-५७ के अपने एक कार्ड में सुमनजी ने मुझे लिखा था "मैं 'आज' नियमित रूप से पढ़ता हूँ। आपकी गतिविधि उससे जानकर छाती गर्व से फूल-फूल उठती है।" भले काम को प्रोत्साहित करना तथा परिचितों मित्रों के हित साधन में प्राणपण से सचेष्ट-सक्रिय होना उनकी प्रकृतिगत विवशता है। आपकी वय कुछ भी हो, सुमनजी थोड़ी ही देर में आत्मीयता के सम्मोहन से आपको ऐसा वशीभूत करेंगे कि आप अपरिचय, वय-व्यवधान, सभी भूलकर, उनसे या घुल-मिल जायेंगे, मानो उनके वर्षों के सहचर हों।

उनकी प्रेमल सहजता देखकर विश्वास नहीं होता कि वे कभी गुरुकुल-प्रशिक्षित उद्भट आर्यसमाजी रहे होंगे। उनका धवल परिधान-परिवेश देखकर भ्रम होता है कि यह हिन्दी लेखक नहीं, और परम्परया अतिशय श्री-सम्पन्न होंगे। उनका आतिथ्य, व्यस्त जीवन, एवं सुरुचि-प्रेम देखकर लगता है जैसे वह अथक शरीर तथा अमित अर्थराशि के स्वामी हैं।

उपनाम प्रायः व्यर्थ होते हैं। यदा-कदा ही सत्य में उनका सामंजस्य होता है, परन्तु हिन्दी के सौभाग्य से दो और 'सुमन' यथेष्ट यशस्वी हैं। **'दस हफ्ते दस माह बन गए, मास को अब भी दूर है!'** जैसे गीत के कर्ता-प्राध्यापक कवि श्री शिवमंगल सिंह एवं श्री रामनाथ-लाल प्रतिष्ठित प्रकाशक-सम्पादक-लेखक रहे हैं एवं उर्दू कवि 'मीर', 'गालिब' पर विशद आकलन-आलोचन से युक्त कृतियों के प्रणेता के रूप में चिरस्मरणीय हैं। परन्तु शाब्दिक संपूर्णता में 'सुमन' की अर्थवत्ता क्षेमचन्द्रजी के संबंध में सर्वाधिक साधार एवं सबल है। चन्द्रमा की तरह सबका क्षेम-साधन, हिन्दी का संवर्द्धन, सुमनजी के विषय में अक्षरशः सत्य है।

वर्षों से 'सुमन'जी का नाम आते ही तुलसी-मानस का यह दोहा दुर्निवार रूप से स्मृत-स्वरित हो उठता है

बंदउँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंधकर दोइ॥

उनका सम्पर्क सबका यश सौरभ प्रदान करता है सुरा-सुगध देता है। और उनका 'सत समान चित' इसीमे विश्रुत है कि कबीर के इस दोहे को वे अपना जीवन मत्र मानते हैं :

साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

सुमनजी का अतिथि हो, वह प्राचीन मित्र हो भी पूर्णत अपरिचित नवागतुक, उनका 'साधु' है। ऐसे जीवन के धनी, जीवट के जीव को साधुवाद। वे शताधिक वर्ष हमारे बीच रहे, अपने सम्पर्क और कर्म-सकुल जीवन मे हमारे प्रेरणा-केन्द्र बने रहे।

डी ४८/१५१, मिश्र पोखरा,
वाराणसी

सुमन : जो आकाश-कुसुम नहीं है

श्री वीरेन्द्र मिश्र

हिन्दी की फलमाला मे सुगन्धित और आकर्षक सुमनो की कमी नही है। उपनाम रखने की प्रथा के बहुत-से कारण रहे है, लेकिन एक विशिष्ट उद्देश्य शायद यह भी रहा है और जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भी है, कि उपनाम ऐसा हो जो व्यक्ति के नाम से जुडकर व्यक्तित्व को सम्पूर्ण अर्थ दे जाय, नाम के अधूरेपन को भर दे। नाम को अतिरिक्त विशिष्टता प्रदान करने के लिए अन्य व्यक्ति भी कोई नाम सुझा सकता है और स्वय सम्बद्ध व्यक्ति द्वारा भी अपना उपनाम रखा जा सकता है। उपनामो के सम्बन्ध मे यह विदित सत्य है। लेकिन जीवन के प्रभात मे ही हुए उपनामकरण की भावी सार्थकता के बारे मे भविष्यवक्ता की तरह गम्भीरतापूर्वक पहले से ही कोई कुछ नही कह सकता।

हिन्दी मे कई 'सुमन' है जो सुगन्धित हो रहे है। उक्त सन्दर्भ मे उनकी विशिष्ट गरिमा का स्मरण किया जा सकता है। लेकिन क्षेमचन्द्र उन सभी सुमनो से पृथक् ऐसे सुमन है, जिनकी सुगन्ध किसी एक फुलवारी या एक वनमाली तक सीमित नही है। उनकी विशिष्टता एकान्तिक नही है। वह बहुत बडे परिवेशो मे प्रफुल्ल, मस्त, समबद्ध, कर्मठ और जीवन्त है।

नाम के साथ उपनाम न जोडने वालो मे भी 'सुमन' के वैविध्य से युक्त व्यक्तित्व है। लेकिन हम देखते हैं कि यह 'सुमन' उन सबसे पृथक् और सारे 'सुमनो' मे एक होकर

भी एकदम विशिष्ट है।

मेरी अपनी धारणा यह है कि सुमनजी को जिन लोगो ने जिस क्षेत्र मे कम या अधिक जाना-पहचाना है वे उनके अन्य क्षेत्रो मे किये गए कामों से अपरिचित या अल्प परिचित ही रहे हैं।

सुमनजी को समझने के लिए साहित्यिक दृष्टि से अधिक जीवन-दृष्टि की आवश्यकता है। महत्ता या विशिष्टता के लिए साहित्य या राजनीति ही नही बने हैं। वे सैनिक जो सेनापति नही थे, वे कार्यकर्त्ता जो कर्मठ तो थे पर राजनेता नही थे, वे युवक और वे क्रातिकारी जो बिना प्रचार के देश के जीवन मे जोखिम उठाकर समाज-सेवा करते रहे—वे सब क्या थे ? वे सब 'साधारण' थे। साधारण और सामान्य किस अर्थ मे ? इसीमे कि सत्ता, पद या गौरव तक पहुँचने के लिए आवश्यक 'योग्यता' प्राप्त करने के बजाय वे कर्म करते रहे। यही उनका 'दोष' था। और 'असाधारणो' मे से ऐसो को सभी जानते हैं जो येन-केन प्रकारेण कर्मठताओ की छाती पर पैर धरते हुए बैसाखियो और नसैनियो द्वारा 'ऊपर' उठ गए।

नेतृत्व के गुणो से सम्पन्न होते हुए भी सुमनजी साधारण और सामान्य को गौरव देने वाले प्रकाश पुरुष हैं। वे स्वय साधारण और कष्टप्रद जीवन जी चुके हैं। लालबहादुर शास्त्री की सादगी, निष्ठा, ईमानदारी और सेवा के तथ्य उनके जीवन के साधारण क्षणो की देन थे। उनकी मौलिक वैयक्तिकता के वही स्तम्भ थे। लेकिन राजनीति के छल-प्रपच मे, पदो की चकाचौंध मे इन सबकी ओर किसी का ध्यान नही गया। पदो पर पहुँचने ही लालबहादुर को महत्वपूर्ण माना गया। विचित्र विडम्बना है कि उनके प्रधान मत्री बनने के पश्चात् और उनकी मृत्यु के बाद ही लोग उनकी नैतिक सेवा के सस्मरण जान सके।

इस सदर्भ मे सुमनजी भी उक्त साधारण क्षणो की एकान्त पुकार हैं। वह पदो पर नही हैं, पुरस्कृत नही हैं, अलकृत नही हैं, फिर भी हिन्दी-सेवा और समाज-सेवा के मन्दिर मे दूर से नजर आने वाले सहज सुलभ समानधर्मा आरती-दीप हैं। वे आकाश-कुसुम नही हैं और उनकी यही विशेषता है।

सुमनजी से १५ वर्ष से मेरा जो कुछ परिचय रहा है, वह दूर का परिचय रहा है। वह जब कभी मिलते रहे, उनकी सहज मुस्कान मिलती रही। आज से पाँच-सात वर्ष पूर्व तक ग्वालियर मे ही रहा हूँ और वहाँ वे जाते रहे हैं। दिल्ली से 'जनसत्ता' नामक जो दैनिक प्रकाशित हुआ था उसमे सन् १९५३ के मई मास मे नये हिन्दी कवियो पर सुमनजी की लेखमाला छपी थी। मुझ पर भी उसमे लेख था। उस लेखमाला के पीछे सुमनजी की जो ईमानदारी एव नई पीढी को आगे लाने के लिए जो तड़प थी उसमे कौन इन्कार कर सकता है ? वह निरन्तर रही और आज भी है। लोकप्रिय हिन्दी-कवियो के सम्बन्ध मे जो पुस्तकमाला राजपाल एण्ड सन्स से प्रकाशित हुई, उसके नियोजन तथा

प्रवर्त्तन मे सुमनजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उस पुस्तकमाला के अन्तर्गत मुझ पर पुस्तक लिखने के लिए सुमनजी बहुत इच्छुक थे। कुछ कारणो से मैंने उस पुस्तकमाला मे सहयोग नही किया। फिर भी जहाँ तक सुमनजी का सम्बन्ध है, न मेरे मन मे उनके प्रति कोई अन्यथा भाव रहा और न इस विवश असहयोग के कारण वे मुझसे दूर हुए।

'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेम-गीत'-जैसी सन्दर्भ पुस्तको का श्रीगणेश सुमनजी ने ही किया था। बाद मे इसीके अनुकरण पर सग्रहो की बाढ-सी आ गई। समकालीन हिन्दी कवयित्रियो की कविताओ की सर्वप्रथम परिचय-पुस्तक भी सुमनजी की ही देन रही है। इन पुस्तको मे निहित रचनाओ के लिए जो परिश्रम उन्होने किया और चारो ओर का व्यग्य विरोध सहा, उस सबमे उनकी अटूट कार्य-शक्ति की झलक मिलती है। चीनी आक्रमण के दिनो मे हिन्दी-कविताओ को सकलन-रूप मे सम्पादित करके प्रकाशित कराने का कार्य भी सुमनजी ने ही सबसे पहले किया था। उसके बाद तो चीनी और पाकिस्तानी आक्रमण पर जो काव्य-सकलन निकले, उनका क्रम आज तक चल रहा है। कम अवधि मे बडे-से-बडे प्रकाशन को ठीक समय पर प्रस्तुत करने की उनकी अपनी विशेषता रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार करने की उनमे अपूर्व धुन है। हाल ही मे 'नारी तेरे रूप अनेक' नाम से उन्होने एक बृहद काव्य-सकलन तैयार किया है, जिसमे नारी के विविध पक्षो से सम्बन्धित रचनाएँ एक ही जगह पर सुलभ कर दी गई हैं। इस सकलन के प्रकाशन से हिन्दी की समृद्धि होगी, इसमे सन्देह नही।

पत्रकार, अनुवादक या ब्रॉडकास्टर के रूप मे सुमनजी ने हिन्दी-साहित्य की अनन्य सेवा की है। वह नये और साधारण लेखको को आगे लाने वाले लोगो मे सबसे प्रमुख रहे हैं। उनके पास कोई बहुत बडा पत्र या प्रचार-तन्त्र कभी नही रहा। फिर भी अपने उपलब्ध सम्पर्को का लाभ उन्होने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ग्रहण न करते हुए हिन्दी और हिन्दी-लेखको को दिया।

सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्रो मे किसी दल, सगठन या वाद के पक्षधर हुए बिना सुमनजी ने लोकप्रियता प्राप्त की है। सबके सुख-दुःख मे काम आने वाले सुमनजी हँसमुख, निर्भीक, स्वाभिमानी और कर्मशील लेखक हैं। प्रेम से उन्हे कोई भी जीत सकता है। परन्तु उनको न तो प्रलोभनो द्वारा खीचा जा सकता है और न विरोधो द्वारा झुकाया जा सकता है। जब-जब ऐसे प्रयास होते हैं, सुमनजी की अडिग तेजस्वी साधारणता अपनी वर्चस्वी गरिमा की धाक जमा देती है।

रूढियो को तोडकर आगे बढने वाले सुमनजी उन परम्पराओ के विरोधी नही हैं, जिनसे देश, समाज और साहित्य को रक्त और रस मिलता है। जीर्ण और पतनोन्मुख तत्त्वो के विरुद्ध वे आज भी युवक हैं और नवलेखन से सम्बद्ध नवीनतम घटनाओ, शैलियो और व्यक्तियो से पूर्णत परिचित हैं। उनकी अपनी पीढी मे कर्म और चिन्तन का क्षेत्र

जिस प्रकार रूढ है, सुमनजी उससे बिलकुल अलग, नयों के साथ खड़े हैं।

अधकचरी संस्थाओं और विशिष्ट विशेषणों के सम्मान और अभिनन्दन वाले राजनगर में अपने को अविशिष्ट और साधारण मानने वाले, इस जनप्रिय नागरिक को तमाम सामान्य नागरिक, बुद्धजीवी तथा कर्मसंकल्पी अपना नमस्कार भेंट करते हैं। मैं इस तथ्य की ओर संकेत करके असाधारण और महान् लेखकों तथा राजनेताओं को आत्मचिन्तन का अवसर देता हूँ।

पदों और स्वार्थों के आधार पर नित्यप्रति ही सम्मान-आयोजनों के उद्देश्य से नई दिल्ली के प्रांगणों और सभागारों को अपवित्र किये जाने के अभ्यस्त हम लोग, यदि सही व्यक्तियों का, सही ढंग से सम्मान करना सीख लें, तो यह एक नई परम्परा और एक नई साहसिकता होगी। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के अभिनन्दन से इसका शुभारम्भ हो रहा है।

३४/२५, पश्चिमी पटेलनगर,
नई दिल्ली ८

मैं जिनका ऋणी हूँ

श्री ओमप्रकाश शर्मा

आज के युग में साहित्यकार के लिए साहित्य-रचना व्यसन नहीं, जीवन-निर्वाह का साधन है। सुनने में चाहे बात कड़वी हो, परन्तु यह वास्तविकता है। साहित्य प्रकाशन-क्षेत्र में लेखक, मुद्रक और प्रकाशक इन तीनों के लिए ही साहित्य साधन है।

जब कोई व्यक्ति लेखक होकर उपन्यासकार, आलोचक, कहानीकार, कवि आदि के रूप में साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करता है तो उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ अत्यन्त विषम होती हैं। सम्पादकगण नये नाम को देखकर नाक चढ़ाते हैं और प्रकाशक नये को छापने का जोखिम लेने से पहले अपनी व्यावसायिक कठिनाई पर विचार करते हैं। नये लेखक की स्थिति अनाथ बच्चे-जैसी होती है।

नये लेखक को कोई प्रोत्साहन दे, उसकी कठिनाइयाँ दूर कराने में अपने प्रभाव का उपयोग करे तो यह बहुत बड़ी बात है। जो साहित्यकार ऐसा करें—आदरणीय हैं, और मुझे श्री सुमनजी का यही गुण अधिक प्रभावित करता है।

सुमनजी से मेरा परिचय सोलह वर्ष पुराना है। यों इससे पूर्व भी हम दोनों पुरानी

दिल्ली के एक ही मोहल्ले मे रहते थे, परन्तु जब परिचय हुआ तो वे कुशल प्रेस-व्यवस्थापक, प्रसिद्ध कवि एव सम्पादक थे, और मैं मात्र नया लेखक था।

मैं आज तक उनकी वह उदारता नही भूला हूँ, और जीवन-भर भूलूँगा भी नही कि नया परिचय होने पर भी न केवल उन्होंने मेरा प्रकाशक से परिचय कराया, बल्कि उचित पारिश्रमिक दिलवाकर, मेरी पुस्तक प्रकाशित कराने मे अपने प्रभाव का पूरा उपयोग मुझे प्रदान किया।

बात यही तक सीमित नही है। यहाँ तक बात सीमित होती तो बात की महत्ता भी नही है। उनका सौजन्य और सहयोग केवल मुझे ही नही, बहुतो को प्राप्त हुआ है। सुमनजी के अन्तर का बुद्धिजीवी वाद और विवाद से परे एक स्नेहशील मानव है। विचारो की दृष्टि से मेरी दृष्टि मे सुमनजी एक सगम हैं। उनके यहाँ एक समारोह मे मैंने साहित्य के विभिन्न वादो और विचारो के व्यक्तियो को एक साथ देखा है।

इसका अर्थ यह नही है कि सुमनजी का महत्त्व नये लेखकों को सौजन्य और सहयोग प्रदान करने के कारण ही है। हिन्दी साहित्य का उन्होंने अमूल्य रत्नो से भण्डार भरा है। आज तो प्रादेशिक भाषाओ और उनके साहित्य की खूब चर्चा है, परन्तु सुमनजी सम्भवत पहले ऐसे हिन्दी-लेखक थे, जिन्होने इस आवश्यकता को अनुभव किया कि हिन्दी पाठक दूसरी भाषाओ की साहित्यिक गतिविधि को जानें। विभिन्न भाषाओ के साहित्य का परिचय हिन्दी मे प्रथम बार भाषाओ के अधिकारी विद्वानो से लिखवाकर उन्होंने सम्पादित किया। विभिन्न साहित्यिक आन्दोलनो का श्रीगणेश उन्होंने इस प्रकार किया है।

वे केवल साहित्य की सीमाओ मे ही नही बँधे हैं। शायद बहुत कम हिन्दी-भाषी इस बात को जानते हैं कि सुमनजी स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के सक्रिय योद्धा भी रहे हैं और इस उपलक्ष मे उन्होने जेल-यात्रा भी की है।

परन्तु मेरे लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नही है कि सुमनजी स्वातन्त्र्य-युद्ध के सैनिक हैं। बहुत-से ऐसे हैं।

मेरी दृष्टि मे यह भी महत्त्वपूर्ण नही है कि वे श्रेष्ठ कवि, विद्वान्, समालोचक, सम्पादक और कथाकार हैं। ऐसे गुणी हमारे साहित्य मे और भी हैं।

मेरी उन पर अटूट श्रद्धा उनके उदार व्यक्तित्व के कारण है। उन-जैसे उदार मन के अधिक नहीं मिलते। खोजने पर भी नहीं।

अन्तरमन की समस्त कामनाओं सहित मैंने उनके शतायु होने की कामना की है।

सच कहूँ। दूसरे की नही अपनी कहता हूँ कि एटम-युग मे मैं नि स्वार्थ नही हूँ।

मैं सोचता हूँ, कि नई पीढ़ी मे जाने कितनी प्रतिभाएँ छिपी हुई हैं। प्रसाद के विचारो की उजली भव्यता, निराला-जैसे गम्भीर परन्तु विद्रोही स्वर, प्रेमचन्द का

गरिमायुक्त साहित्यकार, डॉक्टर राघव-जैसी पैनी दृष्टि हमारी नई पीढ़ी के युवकों में भी तो है। आवश्यकता है खोज की, आवश्यकता है मार्गदर्शन की, आवश्यकता है नई पीढ़ी के प्रति सौजन्य और सहयोग की। मैं चाहूँगा, आप चाहेंगे कि निरन्तर सरस्वती के पुत्र हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भरें और हिन्दी-साहित्य में नई-नई प्रतिभाएँ उभरें।

मैं इसलिए कामना करता हूँ कि सुमनजी शतायु हों। नई प्रतिभाओं को उनका सौजन्य और सहयोग प्राप्त हो। जैसे सुमनजी हैं, पुरानी पीढ़ी में वैसे कम हैं।

नई प्रतिभाओं के लिए सुमनजी की शतायु-कामना? शायद यह बात वे मित्र पसन्द न करें, जो इस गलतफहमी के शिकार हैं कि—न उनसे पहले कोई था, न उनके बाद कोई होगा।

अपना पेशा है जासूसी उपन्यास लिखना। गुप्त बात को उजागर करने में आनन्द मिलता है। जो कभी नये थे वे तो जानते हैं, जो अब नये हैं, उन्हें जानकारी मिलनी ही चाहिए कि सुमनजी से उन्हें वैसा ही सहयोग और सौजन्य मिलता रहेगा, जैसा मुझे मिला, और मिश्रा को मिला। गिनती में संख्या सैकड़ों से कम नहीं है—गारण्टी की बात है।

सुमनजी शतायु हों, नई पीढ़ी की अपरिचित प्रतिभाओं के लिए, जिनमें प्रसाद से लेकर मुक्तिबोध और प्रेमचन्द से लेकर डॉक्टर रांगेय राघव तक की क्षमताएँ छिपी हैं!

१०४, हीरालाल बिल्डिंग,
छीपी टैंक, मेरठ

काजीजी दुबले क्यों...?

श्री रामप्रताप मिश्र

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के बारे में कुछ लिखना उतना ही कठिन है जितना उन्हें समझना। वह कवि, आलोचक, सम्पादक, पत्रकार, समाज-सेवी के अतिरिक्त एक अत्यन्त भावुक और सरल मानव भी हैं। उनके व्यक्तित्व के हर पहलू पर बहुत-कुछ लिखा जा सकता है, पर उसे एक छोटे लेख की परिधि में बाँधना मुझे बहुत ही कठिन कार्य लग रहा है।

जब मैं एक साधारण नागरिक की दृष्टि से उनके जीवन को देखता हूँ तो एक गहरे विस्मय में पड़ जाता हूँ कि इतने जंजालों में यह आदमी जीता कैसे है और कैसे अपने

पेट की चिन्ताओ को पूरा करके दूसरो के लिए खपने का समय निकाल पाता है ! कैसा विलक्षण प्राणी है यह जो प्रतिक्षण अनेक परिस्थितियों से घिरा रहने पर भी परेशान नही होता, कठिनाइया के आगे सिर नही झुकाता। काम से घबराना नही सीखा और दूसरा के दु ख-सुख को अपने मे बटोरे फिरता है। इन्हे अपने नगर या मोहल्ले की समस्याएँ ही सताती हो, यह बात नही, लगता है सारे जहाँ का दर्द ये ही सँजोये फिरते है !

जहाँ वे अपने मोहल्ले के बच्चो की फीस माफ कराने, उनका प्रवेश कराने तथा उनके लिए पुस्तको की सहायता के लिए घूमते नजर आते हैं, वही उन्हे किसी नवोदित साहित्यकार की रचना अथवा पुस्तक-प्रकाशन का जुगाड करते भटकते देखा जा सकता है। जहाँ वे किसी वयोवृद्ध साहित्यकार या समाज-सेवी के स्वागत सम्मान की व्यवस्था मे लगे दिखेंगे, वही किसी साहित्यकार की लडकी की शादी के लिए वे प्रकाशको से पुस्तक-प्रकाशन से पूर्व ही अग्रिम धन की माँग करते मिल जाएँगे। अनेक सभाओ के अध्यक्ष या आयोजक सुमनजी राजधानी की हर साहित्यिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय सभा मे मुस्कराते हुए 'अरे गुरु, इधर भी देख लो' का नारा बुलन्द करते मिल जाएँगे। एक स्थान पर तो मैंने देखा कि एक ही स्थान पर दो अलग-अलग सस्थाओ की ओर से सभा का आयोजन है और सुमनजी मुख्य द्वार पर खडे होकर अतिथियो का स्वागत कर रहे हैं। दोनो ही ओर से आने वाले व्यक्ति यही समझ रहे थे कि सुमनजी अमुक सस्था की ओर से हमारा स्वागत कर रहे हैं और श्रीमान् सुमनजी भी दोनो सस्थाओ के लोगों से उनके मनोनुकूल बात करके उनको यथास्थान भेजते जा रहे थे।

अब आप ही बताएँ—ऐसे आदमी को क्या कहा जाय ! मानव, महामानव या औघड। सबसे बडी बात, उनको अपने लिए किसी से कोई शिकायत नही। यह तो वे हैं जो जहाँ का दर्द उठाये दिल म काम दुनिया का बदस्तूर किये जाते हैं। उनको फोन कीजिये, तो छूटते ही कहेंगे, "कहो गुरु, आज कैसे याद कर लिया ? भई, आपको ही याद कर रहा था, आज तो सतसग हो ही जाना चाहिए, जल्दी आ जाओ, बेसब्री से इन्तजार कर रहा हूँ," और यकायक फोन बन्द। अब कहिये मिलना क्यो न हो !

आप अपने मन मे गम्भीर-से-गम्भीर समस्या लेकर परेशान होते हुए सुमनजी के पास जायें, पर उनसे मिलते ही आपका आधा दु ख-दर्द दूर। क्योकि मस्ती की विजया के रग मे डूबे सुमनजी आपके पहुँचते ही किसी मधुर स्नेहिल सस्मरण की याद दिलाकर इतने जोर से ठहाका लगायेंगे कि आप एक बार बिना हँसे रह नही सकेंगे। लीजिये, हो गया न आधा गम दूर। किसी तरह आपने बात शुरू की। अभी भूमिका भी पूरी नही हो पाई है कि चपरासी सदेश लेकर आता है, 'आपका फोन है।' लीजिये हो गया न मजा किरकिरा, बात अधूरी रह गई।

किन्तु सुमनजी जैसे फोन पर आपकी समस्या का समाधान करने ही गये थे, आते ही आपसे कहेंगे, "इसमे क्या है, उस कार्यालय मे मेरा एक मित्र है, उसे अभी फोन किये देता

हूं, न हो तो आप मेरा पत्र ले जाइए, पहुँचते ही काम हो जाएगा।' लीजिए आपकी समस्या सुलझी, आप जान ही पाते हैं कि दूसरे सज्जन कमरे में आ जाते हैं और सुमनजी आपकी प्रशंसा के पुल बाँधकर आने वाले सज्जन से परिचय कराते दिखाई देंगे। जरा आपने उठने की बात सोची कि आपके कान सुन रहे होंगे—"अच्छा बन्धु, आप आ गए, चाय के साथ कुछ खाने को भी लाये हो या खाली चाय ही लाये हो?" (चाय वाला, दफ्तर का चपरासी, सभी उनके बन्धु हैं) आप बिना चाय पिये नहीं जा सकते।

सरकारी, गैरसरकारी, अर्धसरकारी कार्यालय, स्कूल, कॉलिज, प्रकाशन-संस्था सामाजिक संस्था आदि कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ सुमनजी का कोई परिचित न हो। वर्षों बाद मिलने पर भी आपको यही लगेगा कि जैसे आप अभी कल या परसों ही तो मिले थे। समय या स्थान की दूरी का सुमनजी पर कोई प्रभाव नहीं। उनकी स्मृति में सभी बातें व्यवस्थित पुस्तकालय-जैसी जमी रहती हैं। हर घटना, हर व्यक्ति, जैसे उनके सभी परिचित हैं।

यह तो हुई बाहर की बात, अब मैं जरा आपको सुमनजी के घर ले चलता हूँ, जहाँ आप उनके परिवार तथा उनके पास आने वाले अतिथियों एवं भारत तथा सुदूर देश से आने वाले पत्रों की झाँकी देख सकेंगे। एक बात पहले ही बता दूँ कि कुछ लोग ऐसे हैं जो अपनी यात्रा में दिल्ली में निकल रहे हैं और उन्हें दिल्ली ठहरना पड रहा है। तो वे सुमनजी को पहले ही लिख देंगे कि अमुक समय पर दिल्ली पहुँच रहा हूँ, स्टेशन पर साथ ही भोजन करूँगा। तो सुमनजी घर से भोजन लाकर उनके साथ ही खायेंगे। और कुछ लोग ऐसे भी हैं कि सामान तो रेलवे-स्टेशन के प्रतीक्षालय में रखते हैं और शाहदरा की ओर चल पडते हैं। उन्हें काम भले ही सचिवालय में या रेडियो-स्टेशन पर हो, किन्तु वे दिल्ली में इतनी दूर जाकर ठहरेंगे कि आने-जाने में चाहे उनको एक अच्छे होटल का किराया चुकाना पड जाता है, फिर भी ठहरते सुमनजी के घर ही हैं। यह है उनकी आत्मीयता का परिचय, जिसे आने वाला कोई भी व्यक्ति छोड नहीं पाता।

हाँ तो लीजिये, यही है न दिल्ली और उत्तरप्रदेश की सीमा (बार्डर) पर शाहदरा के दूसरे छोर पर दिलशाद कालोनी में 'अजय-निवास', जिसे सुमनजी अपना घर कहते हैं। हाँ, है तो *सुमनजी का ही घर, पर इसे घर कहूँ या रैन-बसेरा, क्योंकि श्रीमान्* जी प्रात आठ बजे निकल जाते हैं और रात के दस बजे से पहले शायद ही किसी दिन घर में प्रवेश करते हैं। आप जब घर से निकलते हैं तो कोई भी दूकान खुली नहीं होती, और जब घर में घुसते हैं तो लगभग आधा नगर सोने की तैयारी में लगा ही होता है। प्रात-काल आप कभी-कभी प्रातराश लेते-लेते चल देते हैं, तो कभी प्रातराश के साथ दोपहर के भोजन का भी प्रबन्ध किये चलते हैं।

लगता है, अवकाश शब्द उनके खाते में नहीं लिखा है। आज सरकारी अवकाश

तो है पर आप तो उसी क्रम से जा रहे है। किसी के कान मे खुजली हो रही हो और पूछ बैठे तो सीधा-सा उत्तर मिलेगा—कन्या-पाठशाला की मीटिंग है, मुखर्जी विद्यालय का जलसा है, नगर-निगम की क्षेत्रीय समिति की बैठक है, आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव है। और कुछ नही तो, 'अरे भई, अमुक के घर दोनो भाइयो मे झगडा हो गया है, पता चला है, जाकर निपटा ही आऊँ।'

सयोग से अवकाश का दिन है और आप घर पर है तो क्या कहना ! आप राजा-महाराजाओ को भी मात कर देते है (अमेठी मे कुछ दिन सम्पादन का कार्य करते थे, शायद वही का कुछ प्रभाव पड गया है)। चाय-नाश्ते के बाद आप उनसे बातो मे लग गए, इस बीच कही भोजन का समय हो गया तो मैं नही कह सकता कि आप उनके आतिथ्य को छोडकर चले जाएँ या आ पाएँ।

भोजन का समय हो गया है। बच्ची ने पूछा, 'पिताजी, रोटी कहाँ खायेंगे ?" "यही ला बेटी !' बेटी दो थाल लेकर आती है। उसी समय कोई तीसरे सज्जन आ धमके, तो महाशयजी उन्हे भी वही बुला लेते है और आवाज लगाते है, 'और ला बेटी !' रसोई है या नन्दनवन का कल्पतरु ? बिना सोचे आज्ञा होती जा रही है किन्तु धन्य है उस गृहिणी को, उसने कभी नही पूछा कि आप यह सब क्या करते हैं ? (ऐसे आदमी को इस राशन के समय मे भारत रक्षा कानून की अमुक धारा के अन्तर्गत बन्द करने की आज्ञा भी कोई नही दिलवाता, उनका क्या, वे तो पहले ही वहाँ की रोटियाँ तोड चुके हैं।)

उनके निजी पुस्तकालय, जिसमे दुर्लभ शोध सामग्री के साधन सहज उपलब्ध है, की चर्चा किये बिना बात शायद अधूरी रह जायगी। किन्तु मेरा मन करता है कि पहले आप उनके पास देश विदेशो से आने वाली डाक का अवलोकन करले, फिर उनकी पुस्तको की चर्चा होगी। आप कहेगे कि हमारे यहाँ तो किसी की डाक देखना (पढना) पाप माना जाता है। है तो बात सही, पर आप बताइये, क्या किसी ढकी वस्तु को देखने की अभिलाषा कभी कम हुई है ? यदि नही तो लीजिये उनकी डाक के कुछ पत्र खुले पडे हैं, पढ लीजिए और सोचिये, सुमनजी क्या हैं और उनके पास कैसे और किन लोगो के पत्र आते है

प्राग, चेकोस्लोवाकिया
२६-२-६०

मान्यवर श्रीमान् जी, सादर प्रणाम !

बुरा न मानिये कि मैं आपको इस पत्र से कष्ट पहुँचाता हूँ। मैं प्राग-विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी हूँ और मेरी भारत के प्रति बडी रुचि है। मैं संस्कृत, प्राकृत, पाली, हिन्दी आदि पढता हूँ परन्तु इनमे से मुझे ब्रजभाषा और अवधी अधिक अच्छी लगती है। सुना है कि आप 'भारतीय साहित्य-परिचय' नामक पुस्तकमाला के सम्पादक हैं। इस-लिए आपसे विनीत प्रार्थना करता हूँ कि कृपया मुझे ब्रजभाषा और अवधी के विषय

की पुस्तकें भेज दें क्योंकि अन्यत्र वे हमारे यहाँ पूर्णत अप्राप्य हैं। मैं ये पुस्तकें भारत के विक्रेताओ से नही मँगा सकता क्योंकि मेरे पास भारतीय मुद्रा नही है। परन्तु आपको मैं जो कुछ चाहेंगे सो भेज दूँगा। (उदाहरणत —पुस्तकें चेक या अंग्रेजी मे) मैं आपके सामने दिल खोलकर यह पत्र लिखता हूँ। आशा है कि आप रुष्ट न होंगे। बहुत धन्यवाद! आपके पत्र की प्रतीक्षा करता हूँ।

मेरा पता—

व्लादिमीर
डेलनिका ३१
प्राग ७, चेकोस्लोवाकिया

विनम्र
व्लादिमीर

● ●

ओडोनल स्मेकल
विनोहरा डस्वा २१, प्राग २
चेकोस्लोवाकिया (यूरोप)

प्राग,
५ ३ १९५५

प्रिय सुमनजी, सस्नेह नमस्कार!

पाँच वर्ष पहले हम दिल्ली मे मिले, इसलिए अपना परिचय देने की आवश्यकता नहीं। मेरे कार्य की इधर सन्तोषजनक प्रगति हुई। हिन्दी की शिक्षा अब सुचारु रूप से चल रही है। इस वर्ष के अन्त में भारत जाने का विचार है, मिलते ही हमको इन बातो पर बातचीत करने का अवसर होगा। मैं यहाँ सपरिवार विशेष आनन्दपूर्वक हूँ। पर अत्यधिक कार्य-व्यस्तता के कारण अनुवाद करने के लिए मुझे कम समय मिलता है। पिछले वर्ष से केवल आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के अनुसन्धान में लगा हूँ।

इतने दीर्घकाल के बाद मैं आपको क्यों लिख रहा हूँ?

आप जिस भारतीय साहित्य परिचयमाला के सम्पादक हैं वह अत्यन्त रोचक है। और जिसको हिन्दी आती है अन्य हिन्दी भारतीय साहित्यो से परिचय प्राप्त करने के लिए बहुत ही सहायक मालूम होती है। कृपा कर १९६० के बाद, जो भी पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हुई हो उन्हे भेजने का कष्ट करें। मुझे विशेषकर पंजाबी, कश्मीरी, नेपाली, गुजराती, राजस्थानी और खड़ी बोली के साहित्यो की अपरिहार्य आवश्यकता है। साथ ही अपने नवीन प्रकाशन भेजने की कृपा करें। आप किस तरह गीत गाते थे, यह मुझे अभी तक मालूम है और याद है। आपके गीत सुनकर मेरा हृदय आश्चर्य से भर गया था। मैं आपको सर्वांगीण सफलता की शुभकामनाएँ भेज रहा हूँ। अपने प्रयत्नो से मुझे अवगत कराते रहें, कृपा कर सधन्यवाद!

आपका ही
ओ॰ स्मेकल

३७ नाइटलैण्ड रोड
लन्दन ई० ५
२३ ८ १९५८

श्रद्धेय सुमनजी,

यद्यपि मेरी दृष्टि मे यह सर्वथा अनपेक्षित ही है कि मैं अपना परिचय लोक-व्यवहार के आधार पर दूं, तदपि यदि यह आवश्यक ही हो तो मैं मेरठ जिले के मास्टर सुन्दरलाल जी का अनुज हूँ।

मैं अपनी बात सक्षिप्त म ही कहूँगा, मैं रूसी भाषा का छात्र होने से यदा-कदा रूसी कविताओ तथा कहानियो का अनुवाद भी हिन्दी मे करता हूँ। सौभाग्यवश इसी आरामदायक अनुवाद-वृत्ति म सुप्रसिद्ध लेखक श्री लामन्तोफ के प्रसिद्ध उपन्यास 'हमारे युग का नायक' का अनुवाद पूरा कर सका हूँ। मैं नही जानता, भारतीय साहित्य, समाज या सरकार म इसकी कोई उपयोगिता होगी या नही। अत यदि आप उचित समझें तो मैं यह अनुवाद आपको भेज सकता हूँ, जिससे आप, उपयुक्त होने पर, इसका उपयोग कर सकें।

हाँ, आप द्वारा सम्पादित तथा अनूदित श्री दीपक की 'शैशवस्वप्नम्' पुस्तक पढी थी, मूल के साथ अनुवाद भी बहुत सुन्दर बन पडा है। मेरी बधाई इस नई रचना को प्रकाश मे लाने के लिए।

और कोई बात अभी नही कहनी। व्यस्तता के क्षणो मे से कुछ क्षण निकालकर यदि आप चाहगे तो अवश्य आपका समय दुरुपयोग कर सकूँगा।

साभिवादन,
वेदप्रकाश 'बटुक'

● ● ● ●

बैजल एड कम्पनी
लाटूश रोड, कानपुर
१३ १ ६४

आदरणीय सुमनजी,

'पृथ्वीराज तथा सयोगिता' मे लिखित भूमिका के लिए बधाई स्वीकार कीजिए!

अब अपने स्वार्थ पर आता हूँ। आगामी ४ फरवरी को मेरी पुत्री का विवाह है। आप स्वय जानते हैं कि यह अवसर एक साहित्यकार के लिए कितना कठिन और कष्टकर होता है। सबसे अधिक कष्टकर है आर्थिक दृष्टिकोण से।

कुछ आर्थिक कठिनाइयो के कारण ही आपको कुछ कष्ट देना चाहता हूँ। मेरे पास एक ऐतिहासिक उपन्यास तैयार है, जो छपकर लगभग ४५०-५०० पृष्ठ का होगा। मैं उसे राजपाल एण्ड सस के पास भेज रहा हूँ, तथा अपनी आवश्यकताओं का उल्लेख

करते हुए श्री विश्वनाथजी को एक पत्र भी लिख रहा हूँ। मुझे इस समय उस उपन्यास पर १०००) एक हजार रुपये आप एडवास उनसे दिला दें। यह कार्य आपको मेरे लिए करना ही है। अत्यन्त आवश्यकतावश ही ऐसा लिख रहा हूँ। आशा है, आप कष्ट उठाकर फौरन उनसे मिलकर मेरा यह कार्य करवा देंगे।

आप इस सम्बन्ध में जो भी उचित समझें, कर दें। आप ही के द्वारा यह कार्य हो सकता है। पत्रोत्तर दें।

भवदीय
देवीप्रसाद धवन

● ● ● ●

आगरा कालेज, आगरा
३ ७ १९६५

बन्धुवर सुमनजी,

पत्रवाहक मेरे भतीजे हैं। यह राजनीति में एम० ए० हैं तथा छः वर्ष से 'सैनिक' में कार्य कर रहे हैं। 'नवभारत टाइम्स' में इंटरव्यू के लिए दिल्ली पहुँच रहे हैं। आशा है, आप समुचित सहायता प्रदान करने की कृपा करेंगे।

एक बात और! स्वर्गीय पितामह पूज्य शंकरजी पर मेरी पत्नी ने जो प्रबन्ध लिखा है उसके प्रकाशन के सम्बन्ध में एक बार श्री कमलेशजी के घर पर आपसे बातचीत हुई थी। डॉ० रामविलास शर्मा प्रभृति साहित्यकार मित्रों की बहुत माँग है कि इसका शीघ्र प्रकाशन हो। दिल्ली में यदि इस दिशा में कुछ हो सके तो सूचित करने का कष्ट करें।

सस्नेह
दयाशंकर शर्मा

● ● ● ●

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली १८ ६ ६५

मान्य सुमनजी, सादर नमस्ते!

मैंने फोन पर जिस लड़की की सर्विस के विषय में आपसे बातचीत की थी उसके दो प्रार्थना पत्र साथ में भेजता हूँ। जिसके नाम ये होने चाहिएँ उनके स्थान छोड़ दिए हैं, जो हाथ से भरे जा सकते हैं। विदित हुआ है कि आर्यसमाज शाहदरा के कन्या स्कूल में कोई जगह खाली है। यदि वहाँ या मुखर्जी स्कूल में या अन्यत्र आपके प्रभाव से स्थान मिल सके तो कृपा होगी। यह लड़की एक प्रतिष्ठित परिवार एवं अपने घनिष्ठ मित्र की

पुत्रवधू है। इसका पति झिलमिल कालोनी के नगर निगम हायर सैकेण्डरी स्कूल मे अध्यापक है।

आपका
रघुनाथप्रसाद पाठक

• • • •

ये दो चार पत्रो के नमूने हैं, ऐसे न जाने कितने पत्र सुमनजी के पास नित्य आते रहते है।

उनके पुस्तकालय मे कम-से-कम छ हजार पुस्तकें हैं। पुरानी पत्र पत्रिकाओ की फाइलें, भले-बुरे लोगो के पत्र और चित्र हैं। कुछ चित्र, जो कम जगहो पर प्राप्त होंगे, दीवारो पर लगे भी हैं। कहना न होगा कि इस पुस्तकालय की पुस्तको मे ३६-३७ पुस्तकें सुमन जी की अपनी भी हैं। इस बात की प्रशसा करनी होगी कि वे जैसे स्वय साफ और करीने के वस्त्र पहनने के आदी है, वैसे ही पुस्तकें, पत्र पत्रिकाएँ और चिट्ठियाँ भी करीने से रखी हैं। उनकी शिकायत रहती है कि भाई अमुक व्यक्ति, अमुक लडकी अपने शोध-प्रबन्ध के लिए अमुक पुस्तके और पत्रिकाएँ ले गई, लौटाई नही, क्या करूँ, उसके घर मुझे खुद जाना पडेगा क्या ? और अन्त म आपको अपने-आप जाकर सामग्री लानी पडती है। रेडियो वाला को किसी की स्वीकृत टॉक मिलने पर जब कोई चारा नजर नही आता तो सुमनजी को फोन करते हैं और सुमनजी एक या दो घण्टे की देर की प्रतीक्षा किये बिना चल देते है और टॉक दे आते हैं। सस्मरण और रिपोर्ताज तो शायद कभी भी तैयार करने की आवश्यकता नही समझी होगी। जो मन आया सो बोल गए, लोग सोचते ही रह जाते है, आदमी बोल रहा है कि टेप रिकार्डर। मजाल क्या कि एक भी बात आगे पीछे हो जाए।

अब आप ही बताइए, काजीजी दुबले क्यो ?...

३।१००६, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली २२

कर्मरत संघर्षमय जीवन

श्री जगदीशप्रसाद शास्त्री

सुमनजी के कर्मरत सघर्षमय जीवन का शुभारम्भ १६३७ से ही होता है। तब से वे निरन्तर साहित्य, समाज और राष्ट्र की नि स्वार्थ सेवा का महान् व्रत पालन कर रहे हैं। जीवन का प्रत्येक क्षण इन्ही महान् शुभ सकल्पो को रूप देने मे व्यतीत

होता है। गत २८ वर्षों में उनके कर्ममय जीवन की यह त्रिधारा राष्ट्र का व्यापक संवर्धन कर रही है जिसका उल्लेख भविष्य में इतिहासकारों द्वारा गौरवपूर्वक होगा।

सुमनजी सहृदय एवं कोमल प्रकृति के कलाकार हैं। अतः यह स्वाभाविक और उचित था कि उनके साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ भी 'कविता' के सृजन से ही होता, यद्यपि उनकी प्रखर प्रतिभा ने बाद में चलकर हिन्दी-साहित्य की विविध विधाओं को अपनी महत्त्वपूर्ण कृतियों से समलंकृत किया। उनकी पहली कलाकृति 'मल्लिका' उनकी यौवनकालीन मधुर भावनाओं और उमंगों के अनुरूप एक सरस एवं प्राणवान् रचना है। इसके प्रकाशन से उनकी भावी काव्य-श्री का शुभ संकेत मिल गया था। गत अट्ठाईस वर्षों में छोटी और बड़ी, कुल मिलाकर पचास से भी अधिक साहित्यिक कृतियों की रचना की है। देश और समाज की विभिन्न समस्याओं से सुमनजी का कवि-हृदय जिन विभिन्न रूपों में प्रभावित हुआ है, उसका प्रतिफलन इनकी रचनाओं में बड़ी स्पष्टता से हुआ है।

सुमनजी जागरूक एवं चेतना-सम्पन्न साहित्यकार हैं अपनी रचनाओं में युग-चेतना के बोध को तो उन्होंने अनुप्राणित किया ही है। परन्तु आप मात्र वाग्विलास में विश्वास नहीं करते, वाणी के अनुरूप आचरण की शुद्धता में आस्था रखते हैं। अगस्त क्रान्ति के प्रलयकारी दिनों में पंजाब और पश्चिमी उत्तरप्रदेश के गाँवों में प्राणों की बाजी लगाकर स्वतन्त्रता का संदेश सुनाते रहे। बाद में चलकर पंजाब-सरकार ने उन्हें बन्दी बनाकर फिरोजपुर-जेल की कठोर निर्दय दीवारों के भीतर दो वर्षों तक कैद कर दिया। आपने जेल-जीवन की कठोर यातनाओं को मुस्कराते हुए सहा। राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में 'सुमन' कभी भी तटस्थ द्रष्टा नहीं रहे। एक क्रान्तिकारी देशभक्त के रूप में हर राष्ट्रीय आन्दोलन में अपने स्वार्थों को बलिदान करने वालों में वे अगली पाँत में खड़े दिखाई देते।

सुमनजी की कृतियों में स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय उद्बोधन का स्वर बहुत प्रबल है। 'बंदी के गान' (जेल-जीवन की कविताएँ), 'कारा' (अगस्त क्रान्ति पर आधारित खण्ड-काव्य), 'हमारा संघर्ष' (अगस्त-क्रान्ति का इतिहास), 'नेताजी सुभाष' (जीवनी) 'नये भारत के निर्माता', 'आजादी की कहानी', 'लाल किले की ओर', और 'चीन को चुनौती' आदि कृतियाँ राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत हैं।

सुमनजी अनुभवी, कुशल और सुरुचि-सम्पन्न पत्रकार रहे हैं। हिन्दी की कई प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं का उन्होंने संपादन किया है। 'मिलाप' (दैनिक), 'आर्य-संदेश' और 'आर्य-मित्र' आदि साप्ताहिक, 'मनस्वी' और 'शिक्षा-सुधा'-जैसे मासिक पत्रों का संपादन किया है। हिन्दी की प्रसिद्ध आलोचना-पत्रिका 'आलोचना' के सम्पादन से भी वर्षों संबधित रहे हैं। इन साहित्यिक और सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन द्वारा आपने हिन्दी पत्र-सम्पादन-कला के इतिहास में अपने गम्भीर पाण्डित्य, पैनी सूझ-बूझ,

असाधारण योग्यता, सुरुचि-सम्पन्नता और अद्‌भुत सम्पादन-क्षमता का परिचय दिया है।

सुमनजी मौलिक साहित्य-प्रणेता हैं और अनेक साहित्यिक अनुष्ठानों के महान् पुरोधा भी। अपने मित्रों के सहयोग से उन्होंने अनेक साहित्यिक पत्रों का अनुष्ठान सम्पन्न किया है, जिनमें हिन्दी साहित्य लाभान्वित और समृद्ध हुआ है। 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेम-गीत' सकलन प्रकाशित करके हिन्दी जगत् के समक्ष यह प्रमाणित कर दिया कि विशुद्ध काव्य ग्रथ भी कितने लोकप्रिय हो सकते हैं। कुछ ही वर्षों मे इस 'सकलन' की दो लाख प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गई। कुछ ही वर्ष पूर्व आपने 'भारतीय साहित्यमाला' सीरीज के अन्तर्गत विविध भाषाओं के साहित्य-सगम के माध्यम मे राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का जो पावन यज्ञ रचा था, वह देश की व्यापक राष्ट्रीय एव सास्कृतिक एकता की दृष्टि से अभिनदनीय ही नही, अनुकरणीय भी था। इस साहित्यमाला के अन्तर्गत भारत की विभिन्न प्रादेशिक और आचलिक भाषाओं एव उनके मौलिक साहित्य का गवेषणात्मक इतिहास ललित भाषा मे प्रस्तुत किया गया था। राष्ट्र की वास्तविक एकता और अखण्डता का पवित्र दीप सुमनजी ने प्रज्वलित करके आज के साहित्यकारो का मार्ग निर्देश किया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की समस्या के प्रति आप सदा सवेदनशील और जागरूक रहे है। 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' नाम की ऐसी नितान्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण पुस्तिका का सकलन और सपादन किया, जिसम उन्नीसवी सदी मे लेकर आज तक के महान् राजनेताओं, समाज-सुधारकों, भाषाविदो और साहित्यकारों के लेखो, मान्यताओ और विचारो का ऐसा सतुलित समावेश किया गया है, जो हिन्दी के सार्वदेशिक गौरव को अक्षुण्ण बनाने मे पूर्णतया समर्थ हुआ है। इस सकलन-ग्रथ म राष्ट्र-भाषा हिन्दी के अतीत, वर्तमान और भविष्य की सुदृढ भावभूमि प्रस्तुत की गई है, और उसकी जटिल समस्याओ के समाधान का बडा ही विचारपूर्ण निर्देश किया गया है।

सुमनजी प्रतिभासम्पन्न वक्रवाक् कृती हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य को अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा द्वारा भी श्रीसपन्न बनाया है। 'साहित्य-विवेचन' और 'साहित्य-विवेचन के सिद्धान्त' ये दोनो आलोचनात्मक ग्रथ बहुत लोकप्रिय हैं। इनमे कई नूतन एव मौलिक साहित्य सिद्धान्तों का सूक्ष्म सकेत उन्होंने किया है। नि सन्देह यह उनकी मौलिक दृष्टि और गहन शास्त्रीय अध्ययन और विश्लेषण का ही मधुर फल है।

सुमनजी की कला-तूलिका रेखाचित्रो और सस्मरणो की ओर भी झुकी है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारते हुए उसके गुण-दोषो के सदर्भ मे मानवीय मूल्यो के महत्त्व की प्रतिष्ठा ही इनके मर्मस्पर्शी रेखाचित्रों एव सजीव सस्मरणो मे विशेष रूप से उभरती मालम पडती है। जीवन और जगत् की पर्यवेक्षण शक्ति जैसी व्यापक और तीव्र है, हृदय जितना ही विशाल है, उसका पूर्ण प्रतिफलन इन रेखाचित्रों मे हुआ है। सुमनजी के जीवन का एक और भी महत्त्वपूर्ण पहलू है, भारतीय समाज के पुनरुत्थान मे पूर्ण योगदान। राजधानी (दिल्ली) की विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षणिक और

प्रशासनिक संस्थाओं के अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का निर्वाह वे बड़ी निपुणता से करते हैं। दिल्ली-प्रशासन की क्षेत्रीय जन-सम्पर्क समिति के सदस्य होने के नाते अपने क्षेत्र की जनता को सभी नागरिक और प्रशासनिक सुविधाएँ दिलाने का प्रयत्न करते हैं, वहाँ अनेक छोटी-बड़ी शिक्षण-संस्थाओं के संचालन में विशेष अभिरुचि लेते हैं। यह उल्लेखनीय है कि उत्तर भारत की प्रसिद्ध शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के प्रमुख संचालकों में आप भी हैं।

सुमनजी ने गत तीन दशकों में हिन्दी-साहित्य की समृद्धि के लिए जो प्रयास किया, वह स्तुत्य और अनुकरणीय है। पिछले तीस वर्षों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस युवक साहित्य-स्रष्टा ने अपनी प्रखर प्रतिभा की उज्ज्वल किरणों से हिन्दी-भारती को श्रीमंडित किया है।

निःसन्देह हिन्दी-संसार ने इस महान् साहित्यकार की महत्ता को अनुभव किया है। उनकी साहित्यिक सेवाओं के सम्मानस्वरूप देश के विभिन्न भागों में समारोहों का भी आयोजन हुआ। यह उचित भी है कि देश के महान् साहित्यकारों और चिन्तकों और उनकी काव्य-प्रवृत्तियों का यथोचित सम्मान उनके जीवन-काल में ही हो। महाकवि निराला और मुक्तिबोध आजीवन अपमान और उपेक्षा का गरल पीते रहे। मरणोपरान्त अब उनके आदमकद चित्र चाहे राष्ट्रपति-भवन में टाँगे जाएँ या उनके ग्रंथों के नये-नये संस्करण ही क्यों न प्रकाशित हों, पर उससे उन दिवंगत लेखकों को क्या ?

कवि और लेखक तो सम्मान और स्नेह के भूखे होते हैं। वे उसीके लिए जीते हैं और उसीके लिए मरते हैं। हम यदि जीवन-काल में ही उन्हें उतना न दे सकें तो उन्हें क्या दिया ?

प्रतिभा के समृद्ध साहित्यकार सुमनजी का व्यक्तित्व निराला है। राजधानी का शायद ही कोई साहित्य-समारोह हो, जिसमें उनके जिन्दादिल और मस्ती से उभरते हुए व्यक्तित्व का अमिट प्रभाव न हो। वे जिस समारोह में उपस्थित होते हैं वहाँ मस्ती और आनन्द का एक तराना अलग गूँजता रहता है।

साहित्यकार के अतिरिक्त वे एक सहृदय सामाजिक व्यक्ति हैं। मित्रों, प्रशंसकों और सहायतार्थियों की समस्याओं के समाधान में भी उनके जीवन का बहुत-सा समय व्यतीत होता है। कभी किसी दीन छात्र का अभिभावक सहायता के लिए खड़ा है, तो कभी साहित्य-पथ का कोई नवागन्तुक पथिक उनसे मार्ग-निर्देशन की याचना कर रहा है। सुमनजी सबको अपनी क्षमता के अनुसार सहायता करते ही हैं। उनके उदार द्वार से कोई निराश नहीं लौटता। सुमनजी के सहृदय उदार व्यक्तित्व का प्रसार और प्रभाव हिन्दी के विशाल क्षेत्र में एक कोने से दूसरे कोने तक है। उन्हें जहाँ भी किसी साहित्यकार या कलाकार में प्रतिभा की हल्की-सी भी किरण दिखाई देती है, वे अपने स्नेह और प्रोत्साहन की मद-मधुर रश्मियों से उसका उद्बोधन करते हैं। वस्तुतः सुमनजी न केवल उच्चकोटि

के साहित्यकार हैं, बल्कि वे तो साहित्यकारों के भी स्रष्टा हैं। हिन्दी-साहित्य-संसार की भावी पीढ़ियाँ उनके इस महत्त्वपूर्ण योगदान का गौरवपूर्वक स्मरण करेंगी।

के० ६, नवीन शाहदरा,
दिल्ली ३२

गोष्ठियों में 'सुमनजी'

श्री विश्वदेव शर्मा

रघुवीरशरण 'मित्र' की 'भूमिजा' पुरस्कृत हुई थी और यह समाचार, जैसा कि मामूली तौर पर होता है, कुछ की ईर्ष्या और बहुतों की उपेक्षा में दब गया था। हम लोगों ने 'दिल्ली क्लॉथ मिल हिन्दी-सभा' की ओर से एक सम्मान-गोष्ठी आयोजित की थी और इसकी अध्यक्षता के लिए सुमनजी से निवेदन ही शायद मेरा उनसे पहला वैयक्तिक सम्पर्क था।

मैंने साहित्य अकादेमी में उन्हें फोन किया और उन हीलों-हवालों को सुनने के लिए तैयार हो गया जो प्रसिद्ध साहित्यकार किसी समारोह में सम्मिलित होने के निमन्त्रण को स्वीकार करने से पहले प्राय किया करते हैं। मेरा अनुभव साक्षी है कि एक महोदय को ठीक आपके बताये समय पर ही एक और समारोह में जाना रहता है, दूसरे साहब को समारोहों में रुचि नहीं होती, तीसरे साहब वचन तुरन्त दे देंगे किन्तु निश्चित दिन पहुँचेंगे कभी नहीं! किन्तु सुमनजी को मैंने प्रथम श्रेणी के उन थोड़े से साहित्यकारों में पाया जो बनावट से नहीं, हृदय की गहराई के साथ मिलते हैं और वे जो कहते हैं, वही उनका मतलब होता है, और जो मतलब होता है वही वे कहते हैं। सुमनजी ने समारोह का उद्देश्य सुना और पूरी संजीदगी से संक्षिप्त सा उत्तर दिया—"यह समारोह तो मेरा अपना है। मेरे जनपद के एक साहित्यकार और मेरे एक मित्र के सम्मान में गोष्ठी है तो इसमें सम्मिलित होना मेरे निकट 'कष्ट' में नहीं, 'कर्त्तव्य' की श्रेणी में है।"

इसके बाद उन्होंने समारोह का स्थान आदि पूछा। मैंने लिवाने के लिए किसी को भेजने की बात कही, तो बोले—"पैसे बहुत ज्यादा हैं क्या? सवारी करूँगा और आ जाऊँगा।"

और सुखद आश्चर्य तब हुआ जब ठीक समय पर सुमनजी समारोह में पहुँच गए थे। और वहाँ पहुँचकर उनमें अतिथि का भाव ही नहीं था, वे तो आतिथेय बन गए थे, मेहमान मेजबान बन गया था और परिणाम यह कि हम लोगों पर से अपनी कमियों को

भेंट जा चुकी थी, बल्कि हमारी कवियों की गगाई अन्य उपस्थित साहित्यकारों के समक्ष स्वयं सुमनजी प्रस्तुत कर रहे थे।

उसी गोष्ठी में कुरु जनपद के विषय में मैंने सुमनजी के विशद और क्रमबद्ध विचार पहली बार सुने और परिप्रेक्ष्य में रखकर सुमनजी ने 'मिश्र'जी के कृतित्व और व्यक्तित्व की जो समीक्षा प्रस्तुत की वह बहुत ही प्रभावशाली थी। उसके बाद तो अनेक गोष्ठियों में मैंने देखा कि सुमनजी साहित्य इतिहास आदि विषयों के चलते फिरते ज्ञान-कोष ही है। और फिर एक के बाद एक अबहुलाल व्यक्तियों और उनकी रचनाओं का विवरण देते हुए सुमनजी अपना विषय-प्रतिपादन करते हैं जिससे उनके विशद ज्ञान, उनकी जिह्वाग्र पर प्रस्तुति (मैंने कभी उन्हें नोट्स के आधार पर बोलते नहीं देखा) और फिर उसे प्रस्तुत करने में विनम्र हार्दिकता अनायास ही श्रोता को छू लेती है। कई अवसरों के वर्णन में सुमनजी का भी स्थान आता है मगर उसका उल्लेख वे किसी गर्व के बजाय ऐसी विनम्र सहजता से करते हैं कि मन आदर से भर उठता है। सुमनजी इतिहास सजग व्यक्ति है और इसीसे उनके भाषण एवं शिष्ट प्रामाणिकता ग्रहण कर लेते है।

गोष्ठियों में सुमनजी की एक और विशेषता, जो अनायास ध्यान आकृष्ट ही नहीं करती, मुग्ध भी करती है वह है बराबर उनका 'हम' का भाव! कहीं भी वे 'मैं' नहीं बनते, कहीं भी वे 'मैं' की चर्चा नहीं करते, 'मैं' के लिए सम्मान नहीं मांगते। जितने भी उपस्थित साहित्यकार हों, वे उनकी ओर से बोलते हैं, उनका प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके लिए सम्मान चाहते और पाते हैं। उनके आस-पास बैठे किसी भी छोटे-बड़े साहित्यिक को कभी यह अनुभव ही नहीं हो सकता कि सुमनजी उसीसे मुखातिब नहीं हैं! उनके लिए न कोई साहित्यिक बन्धु बड़ा है न छोटा और इसीलिए किसी गोष्ठी में उनके साथ होना एक सुखद अनुभव होता है। सम्मान छीनने और हड़पने वाले तो बहुत होते हैं। सुमनजी उनमें से है जो सम्मान देकर अनायास सम्मान पा जाते हैं।

'मैं' के अभाव का प्रतिफल है कि गोष्ठियों में सुमनजी जितने 'वक्ता' रहते हैं, उससे अधिक श्रोता होते हैं। और क्योंकि वे रुचि लेकर सुनने वालों में से हैं इसीलिए वे नई प्रतिभाओं को सराहने वालों में भी अग्रणी हैं। कई बार ऐसा हुआ है कि किसी गोष्ठी में उन्हें निमंत्रण दे रहा हूँ कि उन्होंने स्वयं ही सुझाया है, 'भाई, अमुक अमुक को भी बुला रहे हो न! अच्छा लिखते हैं।' और वे नाम प्रायः नवोदित प्रतिभाओं के होते हैं जिन्हें सचमुच ही प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है।

सुमनजी की सहृदयता और आत्मीयता का एक स्वरूप और भी मुझे देखने को मिला है, गोष्ठियों के संदर्भ में। जिस गोष्ठी में सम्मिलित होना वे स्वीकार कर लें वह उनकी अपनी हो जाती है। फिर उसकी सफलता के लिए जितने उपकरण उन्हें अनायास मिल सकते हैं उन्हें वे स्वयं लेकर वहाँ पहुँच जायेंगे। इस विषय में मुझे एक अवसर याद आ रहा है। मैंने गोष्ठियों का एक क्रम चलाया था, 'मेरी नई पुस्तक' योजना यह थी कि अब

भी कोई नई पुस्तक निकले तो उसके प्रणेता को गोष्ठी में बुलाया जाय, वह स्वयं तथा अन्य लोग उस नई पुस्तक पर प्रकाश डालें, साहित्य-चर्चा रहे। इस विषय में खुशामद और व्यक्ति-प्रचार के कैसे आरोप लगाये गए और किस प्रकार यह क्रम बहुत आगे बढ़ न पाया, यह अलग कहानी है, मगर यहाँ जिक्र उस गोष्ठी का है जो 'कहै पैरोडीदास' के लेखक चिरंजीतजी के सम्मान में की गई थी। लेखकों वक्ताओं का जो क्रम था उसमें 'विश्वविद्यालयीय स्तर' (जिस स्तर की समीक्षा के बिना प्रामाणिकता की मुहर लगी नहीं मानी जाती)की समीक्षा का अभाव स्पष्ट था। लेकिन इसकी चर्चा हम न संयोजकों ने की (जिनकी यह स्पष्ट विवशता थी), और न सुमनजी ने ही की (जिन्हें इसका संकेत करके हमारी अक्षमता की ओर संकेत करने की आवश्यकता नहीं थी)। किन्तु जब गोष्ठी आरम्भ हुई तो क्या देखता हूँ कि सुमनजी कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय के विख्यात डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' को अपने साथ लिये चले आ रहे हैं, "भई, मैंने डॉक्टरसाहब आप लोगों की ओर से आमंत्रित कर दिया, मेरे घर आये थे आज...।" इस आत्मीयता में स्निग्ध सहयोग को वही सराह सकता है जो इसका भोगी रहा हो।

सुमनजी का विनोद और परिहास, जिसमें वे अपने-आप को भी नहीं बख्शते, हर गोष्ठी की अपनी विशेषता रहती है। सुमनजी किसी समय हाथीखाना (पहाड़ी धीरज) में रहते थे। इस विषय में वे स्वर्गीय डा० रांगेय राघव का संस्मरण सुनायेंगे कि उन्होंने पत्र में मुझे संबोधित किया था—'मेरे हाथी खाने वाले मित्र!" और चारों ओर एक ठहाका बरस जाएगा! कभी कहेंगे, भाई, अपने जनपद (कुरुजनपद या पश्चिमी उत्तर-प्रदेश से) मुझे इतना प्रेम है कि दिनभर दिल्ली की कितनी ही खाक छान लूँ, रात को जाकर सोता हूँ अपने ही प्रदेश में...! (उनका निवास-स्थान 'अजय-निवास', दिलशाद गार्डन, पश्चिमी उत्तरप्रदेश में पड़ता है) वे सुमनजी को 'फ्रीलांसर' शब्द के पाखंड से भी खासी चिढ़ है। वे मानते हैं कि प्रायः यह शब्द नौकरी ढूँढने से नौकरी मिलने तक की अवधि का नाम है और बहुत से दायमी बेकारों ने इसे अपना स्थायी विशेषण बना लिया है। अक्सर वे कहते हैं, "भैया, पेट भरने को पहले कुछ कर लो और तब साहित्य-सेवा करो। यों साहित्य के पीछे लट्ठ लिये घूमने से क्या फायदा है, न तुम्हारा लाभ न साहित्य का...।" और उनके परिहास का एक नया अंकुर (चुटकुला) जो उस दिन मेरे सामने ही बना—मेरठ रोडवेज़ पर दो युवक, कालेज-छात्र थे शायद, खड़े थे। एक के हाथ में मोड़कर गोल की हुई एक हिन्दी पॉकेट बुक थी जिसका नाम दूर से पढ़ा जा सकता था, 'हिन्दी कव-यित्रियों के प्रेम-गीत'। मैंने सुमनजी का ध्यान आकृष्ट किया—"आपकी पुस्तक...!" और वे उस युवक के पास जा पहुँचे—"बन्धुवर! आपकी मुट्ठी में हिन्दी की साठ कोमल कवयित्रियाँ हैं, इन्हें ऐसे तो मत मसलिये......!" दोनों युवक पहले तो हड़बड़ा गए, मगर जब मैंने परिचय कराया कि आप ही इस पुस्तक के सम्पादक सुमनजी हैं, तब तो हमारे ठहाके में वे दोनों भी सम्मिलित हो चुके थे।

सुमनजी अपने को भूतपूर्व कवि कहते हैं मगर मैं उनकी कुछ रचनाओं, जिनमें कुछ ब्रज-कविताएँ और कुछ तो हास्य की ब्रज-कविताएँ भी सम्मिलित हैं—के आधार पर उन्हें प्राय अभूतपूर्व कवि कहा करता हूँ। सुमनजी में संघटन-सम्पादन-संयोजन-प्रतिभा है जिसकी साक्षी है हिन्दी में अनेक मौलिक सूझ वाली लेख-मालाएँ और पुस्तक-मालाएँ और संकलन। वे समीक्षक हैं, लेखक हैं, मगर हम-सरीखे कितने ही उनके अनुज और अग्रज ऐसे होंगे जिन्हें उनका 'गोष्ठीबाज जिन्दादिल रूप' उनकी अन्य महत्ताओं से किसी कदर कम महत्त्व का नहीं मालूम होता। बस, यही दुआ निकलती है कि वे जियें हजार बरस, हर बरस के दिन हों पचास हजार!

४, प्रोफेसर्स फ्लैट
गणेश-लाइन, किशनगंज
दिल्ली ६

ट्रेजिको-कामेडी : सुमन

श्री मुद्राराक्षस

पेशे से लेखक, तबीयत से यारबाश, वेशभूषा से संसद्‌सदस्य-नुमा प्राणी, हँसोड़ और भावुक क्षेमचन्द्र 'सुमन' आधुनिक युग की एक अजीब ट्रेजिको-कामेडी हैं। याद नहीं आता, ठीक-ठीक, कब मिला था, पहले-पहल। शायद पाँच साल पहले। कल्पना के नक्शे से बिल्कुल भिन्न। सुना था कि दिल्ली के प्रकाशक-साम्राज्य के वे किंग-मेकर हैं, यानी प्रकाशक उनके इशारे पर चलते हैं। और भी बहुत-कुछ सुना था। यह कि 'सुमन' किसी के काम नहीं आते, परम स्वार्थी। यह भी कि वे तिकड़मी हैं। शायद बहुत ज्यादा सुना था इसीलिए जो कुछ भी सुना था वह मिलने पर उतना मजेदार नहीं लगा। क्षेमचन्द्र 'सुमन' तिकड़मी होते तो 'साहित्य अकादेमी' के बजाय 'चैरिटी शो' देखते होते और दस हजार का सरकारी पुरस्कार न सही तो एकाध उपाधि-सुपाधि तो ले ही बैठे होते।

उपाधि-हीन, अलंकार-हीन क्षेमचन्द्र 'सुमन' से जब कभी मिला तो मुझे भी एक अजीब घुटन महसूस करने लगा। क्या कारण है कि क्षेमचन्द्र 'सुमन' की वह स्थिति नहीं है जो होनी चाहिए?

मेरी इस बात पर मेरे दोस्त और बुजुर्ग दाना हैरत करेंगे। मैं जानता हूँ, लेकिन फिर भी यह दुहराता हूँ। इसकी वजह है।

हिन्दी का दुर्भाग्य यह है कि यहाँ लेखक सिर्फ वही होता है जो कविता, कहानी या उपन्यास नाटक लिखता है। दूसरी कोई और विधा यहाँ नही होती। दूसरा और कुछ लिखा भी नही जाता। यही वजह है कि इस साँचे मे फिट न हो पाने वाला लेखक, लेखक नही रह जाता।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' के पास एक बहुत बडी चीज है। उनके पास हिन्दी के सभी किस्म के हरेक प्रकाशन का सग्रह है। हिन्दी म जो कुछ, कही भी छपा होगा, उनके पास जरूर है। ऐसे विशाल सग्रह के स्वामी से हिन्दी के लिए कम उपयोगी काम नही हो सकता था। न केवल इतिहास सम्बन्धी बल्कि अन्य प्रवृत्तियो पर भी शोधपूर्ण सन्दर्भ ग्रथ वे तैयार कर सकते है जिनका युगो के लिए महत्त्व होता है। लेकिन इस तरह का काम समर्थन और सहारा कहाँ पाता है ? वे प्रकाशक जो हाथो-हाथ बिक जाने वाली पुस्तकें छापते हैं, गम्भीर, शोधपूर्ण चीज़ कब चाहते हैं ?

फिर भी क्षेमचन्द्र 'सुमन' लेखक के रूप म जमे रहे या यो कहा जाय, टाँग अडाये ही रहे—कभी कवि और आलोचक के रूप म, तो कभी सम्पादक के रूप मे। मेरे-जैसा बदजुबान और आधुनिकतावादी लेखक उनके लेखन की धौंस में नही आया तो इसका मतलब यह नही कि वह उनका किया हुआ अनकिया रहा।

मुझे ऐसा लगता रहा है जैसे साहित्य से वे अक्सर निष्कासित रहे है। यो कहूँ, मुख्य क्षेत्र के किसी उपनगर मे सीमित रहे है। रहते भी तो शाहदरा से दूर एक कोने मे हैं। सुनता हूँ कि वही सडक उनके मकान तक पहुँचती है जो चतुरसेन शास्त्री के दरवाज़े से होकर गुज़रती है। चतुरसेन शास्त्री की भी यही स्थिति थी। वैद्यक के विशेषज्ञ उन्हे साहित्यकार मानते थे और साहित्य के विशेषज्ञ उन्हे वैद्य मानते थे। वैसी ही हालत सुमन की भी है। साहित्यकार उन्हे प्रकाशक के करीब का मानते हैं और प्रकाशक साहित्यकार के करीब का। कभी-कभी सुमन को यह मुगालता हो जाता होगा कि उन्होने प्रकाशक को पटा लिया, लेकिन प्रकाशक जानता है कि उसने लेखक फँसा लिया।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' ठेठ व्यवसायी लेखक है पर ऐसे जिन्हे व्यवसाय करना आता नहीं। व्यवसाय उनके खून म नही, मजबूरी मे है। इसीलिए व्यवसाय उन्हे फला नहीं (बल्कि खुद उनपर फूलता रहा)।

वे उम्र मे खासे हो चुके हैं लेकिन *अजीब बात है कि बुजुर्ग साहित्यकार के रूप मे* नहीं, साहित्य की बुजुर्गी पर तरस के रूप मे जीते है। परम्परा मे वे कही ऐसे वर्ग मे जुडे है जो अब छिन्नमूल होता जा रहा है। रूपनारायण पाण्डेय, सनेही और चतुरसेन शास्त्री की किस्म के लेखक अब लेखक नही होते। अब लेखक लाबोहीम मे बैठता है या टी-हाउस म। सुमन 'टी-हाउस' के प्रेमी होने के बजाय मद्रास होटल मे इडली खाते हैं। वे अगर टी-हाउस आते भी है तो बाहर रेलिंग पर खडे होकर किसी का इतजार करते हैं—किसी ऐसे का इतजार, जिसका वायदा अक्सर झूठा होता है।

निकम्मा क्यों है इसमें ? सच कहूँ, केवल धैर्य है दूसरों का तिरस्कार या सहने की नियति को झेलते रहने का। दूसरे उनसे अपना काम निकालना चाहते हैं। काम अक्सर नहीं निकल पाता, इसीलिए, उन्हें स्वार्थी कह दिया जाता है वरना सचाई यह है कि काम जब निकल गया तब पैदा हुए क्षेमचन्द्र 'सुमन' —जैसे निकल गए काम की छूटी हुई सीढ़ी की तरह। काम या उपयोगिता क्षेमचन्द्र 'सुमन' की खाद पर उगती है। क्षेमचन्द्र 'सुमन' खुद उपयोगिता उगा नहीं सकते। क्या करें ! मजबूरी है उनकी। काम उनका खुद का भी मुश्किल से बन पाता है, फिर उनका ही नहीं दूसरों का भी काम कैसे हो ? और नहीं हो तो फिर गालियाँ ! वैसे यार लोगों की आदत पड़ चुकी है। अब इनका ज्यादा असर नहीं होता यह दूसरी बात है।

कुछ दिन पहले क्षेमचन्द्र 'सुमन' का अभिनन्दन हुआ था। शायद कानपुर की किसी संस्था ने किया था। इस मौके पर उनके बारे में प्रशस्तियाँ और भाषण वगैरा भी छपे थे। लोगों ने फिर कहा था, कहा था या इशारा किया था कि 'सुमन' निकम्मे हैं। इसीलिए ऐसे आयोजन करा लिये। मैं सोचता रहा कि ऐसा आयोजन मुद्राराक्षस ने क्यों नहीं करा लिया ? भारतभूषण अग्रवाल ने क्यों नहीं करा लिया ? आखिर प्रशंसा किसे बुरी लगती है ? सम्मान कौन नहीं चाहता ? अगर सम्मान के लिए लोग अनुवाद अपने नाम से छपा सकते हैं तो यह अभिनन्दन भी क्या नहीं करा सकते ?

सुमन ने अभिनन्दन कैसे करा लिया ? वह शहर-कोतवाल तो है नहीं। मिनिस्टर या एम० पी० भी नहीं है। फिर क्या सुमन का अभिनन्दन कोई कर रहा है ? जाहिर है इसकी जिम्मेदारी क्षेमचन्द्र 'सुमन' पर नहीं है। जो अभिनन्दन करता है वही करता है और अगर वह ऐसा है कि क्षेमचन्द्र 'सुमन' के इशारे पर नाच सकता है तो उसे न नाचने का कोई हक नहीं। उसे अभिनन्दन करना ही चाहिए।

आकाशवाणी,
नई दिल्ली १

एक व्यक्ति ! एक संस्था

श्री जयप्रकाश भारती

राजधानी के तपे-मंजे साहित्यसेवी, कवि और समालोचक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' एक व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। उनके गहन अध्ययन, चिन्तन और स्मरणशक्ति को देखकर उनके निकट के मित्र उन्हें हिन्दी-साहित्य का विश्व कोश (इन्साइक्लोपीडिया)

कहा करते हैं। पिछले दिनों की ही बात है जब वे बिहार राज्य द्वारा आर्य महासम्मेलन द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन या सभापतित्व करने के लिए दिल्ली से पटना जा रहे थे तब समयाभाव के कारण अस्वस्थ होते हुए भी ट्रेन में सारी रात बैठकर उन्होंने अपना अध्यक्षीय भाषण लिखा था। 'हिन्दी-साहित्य को आर्यसमाज की देन' विषय पर उक्त भाषण एक अच्छा-खासा शोध निबन्ध कहा जा सकता है। सुमनजी की बहुचर्चित पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेम-गीत' जब प्रकाशित हुई तो देश भर में अनेक स्थानों पर उनके सम्मान में आयोजन किये गए। कानपुर में भी एक भव्य समारोह किया गया और उस अवसर पर उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली एक परिचय-पुस्तिका भी प्रकाशित की गई। उक्त समारोह में सुमनजी ने जो भाषण दिया था, उसे सुनकर वहाँ के अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने कहा था—"कानपुर और इस प्रदेश के साहित्यिक इतिहास के बारे में हम भी इतना नहीं जानते।" इसी प्रकार बंगीय हिन्दी-परिषद्, कलकत्ता की ओर से उनके स्वागत में नवम्बर, १९६३ में जो समारोह हुआ था वहाँ पर भी सुमनजी ने कलकत्ता के हिन्दी-सेवियों के विषय में इतने विस्तार से प्रकाश डाला था कि वहाँ उपस्थित जन-समुदाय उनकी स्मृति शक्ति और विवेचन-पटुता को देखकर आश्चर्य-चकित हो टुकुर-टुकुर निहारने लगा था। अनेक अवसर ऐसे आते रहते हैं जब किसी साहित्यकार की प्रकाशित पुस्तकों, जन्म-स्थान, जन्म-तिथि अथवा अन्य कोई भी जानकारी आवश्यक होती है तब ऐसे आड़े समय में सुमनजी ही सही दिशा-निर्देश करते हैं।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन कहा करते थे कि राष्ट्र-भाषा का कार्य करने के लिए हमें व्यावसायिक साहित्यकारों की नहीं, बल्कि मिशनरी साहित्य-सेवियों की आवश्यकता है। सुमनजी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। वे हर किसी की सहायता करने और सभी का दुःख बाँटने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। नये लेखकों को प्रकाश में लाने, उनकी रचनाओं को प्रकाशित कराने और उन्हें सब तरह का प्रोत्साहन देने में उनका बहुत-सा समय लगता है। मैंने अनेक बार ऐसा देखा है कि जिनकी वे सहायता करते हैं वही लोग स्थिति सँभल जाने पर, नौकरी मिल जाने पर अथवा काम निकल जाने पर, उनके कटु आलोचक बन जाते हैं। लेकिन सुमनजी को जैसे यह सब सहने की आदत हो गई है, और उनके भीतर का खरा इंसान किसी को भी कष्ट में देखकर सहज ही द्रवित हो जाता है। अपने विरोधियों तक को कई-कई सौ की आर्थिक सहायता देते हुए मैंने उन्हें देखा है।

सुमनजी की मौलिक सूझ-बूझ का परिचय हिन्दी जगत् को उस समय भी मिला था जब कि भारतीय विधान-परिषद् में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर समासीन करने का जोरदार आन्दोलन हो रहा था और उसकी अखंडता को नष्ट करने के लिए देश के कोने-कोने में हिन्दी-विरोधी राजनीतिज्ञ अपनी कुटिल चालें चल रहे थे। ऐसे संक्रमण-काल में सुमनजी ने 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' नाम से एक ऐसी पुस्तिका संकलित की थी जिसमें

देश के प्रमुख भाषाशास्त्रियों, विचारकों, राजनीतिक नेताओं और सुधारकों के ऐसे लेख और भाषण समाविष्ट थे जिनसे हिन्दी के सार्वदेशिक गौरव की प्रतिष्ठापना में उल्लेखनीय सहयोग मिला। सुमनजी ने इस पुस्तक में गांधीजी और टंडनजी का वह ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार भी भूमिका के रूप में समाविष्ट कर दिया था जो 'हिन्दी हिन्दुस्तानी' नामक विवाद के नाम से देश के इन दोनों महापुरुषों के बीच चला था। इस संकलन में राष्ट्रभाषा हिन्दी के गौरवपूर्ण अतीत, वर्तमान और भविष्य की ऐसी सुदृढ़ भाव-भूमि प्रस्तुत की गई है कि यह संकलन वर्षों तक जहाँ हिन्दी के साधारण अध्येताओं के लिए उपादेय सामग्री प्रस्तुत कर सका वहाँ यह विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी रहा।

सुमनजी के व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ वे जागरूक साहित्यकार हैं वहाँ लोकप्रिय समाज-सेवी भी हैं। यही कारण है कि राजधानी की विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक संस्थाओं के अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का निर्वाह वे बड़ी सहजता और कुशलता से करते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि सारे जहाँ का दर्द अपने जिगर में समाये हुए वे इतना समय कहाँ से निकाल लेते हैं कि सभी कार्यों को दक्षता से निभा लें। दिल्ली-प्रशासन की क्षेत्रीय जन-सम्पर्क समिति के सदस्य होने के नाते वे जहाँ अपने क्षेत्र की जनता को सभी नागरिक और प्रशासनिक सुविधाएँ दिलाने का प्रयत्न करते हैं वहाँ अनेक शिक्षण-संस्थाओं के संचालन में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि उत्तर भारत की प्रसिद्ध शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के वे वर्षों तक अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे हैं और आजकल भी वहाँ की प्रबन्ध-समिति के उपाध्यक्ष हैं।

सुमनजी लेखक, कवि, पत्रकार और समालोचक के अतिरिक्त एक अच्छे दोस्त और सच्चे साथी हैं। राजधानी में बहुत कम ऐसे साहित्यिक और सांस्कृतिक आयोजन होते हैं, जहाँ वे दिखाई न दें। और जहाँ सुमनजी होते हैं वहाँ वे अपने आस-पास हँसी-खुशी बिखेरते हैं। वे भीड़ में भी खड़े हों तब भी उनके चुटकुले, मीठे-मीठे व्यंग्य तथा खादी के कुर्ते-धोती में उनका उजला निखरा व्यक्तित्व किसी से छिपा नहीं रहता। सुबह सवेरे उठकर जब वे अध्ययन में लगे होते हैं तभी मुँह-अँधेरे कोई उन्हें आवाज़ लगाता है। सुमनजी नीचे उतरकर आते हैं तो देखते हैं कि बस्ती का कोई व्यक्ति कह रहा है कि मेरे बच्चे को अमुक स्कूल में दाखिला करा दीजिए। वे उसकी बात सुन ही रहे होते हैं तभी कोई दूसरा आ जाता है कि मेरे बच्चे की फीस माफ करा दो। उससे फुरसत पाकर वे जब चाय पीने को बैठते हैं तो तीसरा व्यक्ति अपने बच्चे के लिए पुस्तकें दिलाने की समस्या उनके सामने रख देता है। लेकिन बदले बदले कुछ और मित्र आ जाते हैं। वे उनसे कहते हैं कि अमुक समारोह की अध्यक्षता आपको ही करनी है। न जाने किस-किसकी कितनी ही समस्याएँ उन्हें घेरे रहती हैं। इसी उलझन में वे स्नान करके

और थोडा-सा नाश्ता लेकर अपने कार्यालय को चल देते हैं। उस समय भी इधर-उधर कोई-न-कोई उनके साथ लगा होता है। सुमनजी उसकी भी सुनते हैं और उधर बस न निकल जाए, इसकी भी उन्हें चिन्ता रहती है। इस प्रकार वे हर समय अपने द्वारा बुने हुए जाल में स्वयं ही फँसे रहते हैं। अपनी समस्याओं से अधिक दूसरों की समस्याएँ उन्हें घेरे रहती हैं। स्थानीय ही नहीं, उनकी बहुत-सी डाक में भी तीन-चौथाई पत्रों में ऐसी समस्याओं का लेखा-जोखा होता है और वे हैं कि उन सबको भी संतोष प्रदान करने में लगे रहते हैं। इतना सब-कुछ होते हुए वे साहित्य अकादेमी में अपने वर्तमान पद पर तीन चार भाषाओं के प्रकाशन का कार्य भी देखते हैं। अकादेमी के प्रकाशन उनकी सुरुचि तथा प्रकाशन-पटुता के परिचायक हैं।

राजधानी दिल्ली में, जहाँ स्वार्थों के आधार पर रिश्ते बनते और बिगडते हैं, वहाँ मुझे तो सुमनजी अपने बडे भाई और संरक्षक ही प्रतीत होते हैं। और मुझे ही क्या, न जाने कितनों के लिए वह बडे भाई और संरक्षक हैं।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान',
नई दिल्ली

नई पीढ़ी का फ़रिश्ता

श्री जयप्रकाश शर्मा

बचपन में अक्सर एक कहानी मुझे प्रभावित करती थी, जिसका नायक मंजिल पर मंजिल पार करता हुआ बियाबान जंगलों में फँस जाता था, और जब एक तरफ भूख, मौत और परेशानियाँ उसे खाने को दौड रही होती थीं तो एक फरिश्ता अपनी लम्बी सफेद दाढी को हिलाता, हाथ में तस्बीह लिये आता था। पहले वह नायक को खाना देता था जो उसने अपने लिए रखा था और फिर दोनों मिलकर परेशानियों से लोहा लेने जुट जाते थे। एक मायनों में खुदाई खिदमतगार, जो न केवल नायक को राज दिलवा देता था अपितु राज चलाने के उसे वह खजाना खोदने की भी सलाह देता था जो उसकी झोंपडी के नीचे होता था और स्वयं अपना कमंडल उठाकर चल देता था ताकि वह किसी और खजाने पर जाकर अपनी कुटिया बना ले और फिर मुसीबत का मारा कोई दूसरा नायक आये तो वह उसे भी उसी तरह बसा सके। सुमनजी के बारे में जब-जब मैंने लिखने की सोची, इस फरिश्ते की कहानी याद आ गई और मैं बार-बार यह सोचने को मजबूर हो गया कि एक कहावतों का फरिश्ता और एक मेरा फरिश्ता—मगर गुणों में दोनों [illegible] ज्यादा

मिलते-जुलते हैं।

और यह सही भी है। हिन्दी में सुमनजी से अधिक लिखने वाले, अच्छा लिखने वाले, बढ़िया सम्पादन करने वाले तो और भी हो सकते हैं मगर सुमनजी से ज्यादा लिखवाने वाले, ज्यादा अच्छा लिखवाने वाले और लिखने के लिए अपने पल्ले से सुविधा जुटाने वाला तो खोज भी नहीं मिलेगा। मैं समझता हूँ वह फरिश्ता भी इस जगह कुछ कमजोर पड़ जायेगा क्योंकि वह गड़ा हुआ खजाना खोदता था, कमाया हुआ नहीं।

मगर सुमनजी ने हमेशा अपनी कमाई में से हिन्दी के राजकुमार पैदा किये हैं। जिन्हें वे राजकुमार नहीं 'चिरंजीव' के नाम से पुकारते हैं और यह गर्व की बात है कि उनके देशव्यापी चिरंजीवों में से एक चिरंजीव मैं भी हूँ जो उनसे कभी नहीं मिलता। दिल्ली में रहकर भी किताब छप जाती है लेकिन पहुँचा नहीं पाता। मन ही मन डरता रहता हूँ कि सुमनजी मिलेंगे तो क्या होगा! लेकिन होता क्या है? सुमनजी मिलते बाद में हैं पहले भय गुस्सा जागता है और फिर उनका चेहरा एकदम उस फरिश्ते के चेहरे में बदल जाता है और वे बिना माँगे कोई नया खजाना बनाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। मैं मन ही मन उस फरिश्ते को प्रणाम करके शपथ खाता हूँ कि अब ऐसा नहीं करूँगा।

ऐसा एक बार नहीं कई बार हुआ है। मुझसे ही नहीं कइयों से हुआ है।

ऐसा भी हुआ है कि सुमनजी की गोद में पलने वाले राजकुमार साँपों में बदल गए और उनकी ही आस्तीनों में बसेरा करने। ऐसा भी हुआ है कि साँप फिर चूहे बनकर या भीगी बिल्ली बनकर शरण में आये और सुमनजी ने बाइबिल की उस कहानी को चरितार्थ किया जिसमें एक व्यक्ति दो लड़कों का पिता होता है। एक बाप की सेवा करके दिन काटता है तो दूसरा बाप से झगड़ा करके घर छोड़कर चला जाता है। काफी दिनों बाद जब लौटता है तो बाप उसके आगमन पर खुशियाँ मनाता है। और दूसरा लड़का समझ नहीं पाता आखिर उस पर इतना स्नेह क्यों!

तब उस बाप ने सुमनजी की ही तरह उत्तर दिया होगा—आखिर अपनों का साथ पाकर कोई सुख पा सकता है! इतना दुःख पाने के बाद तो वह वैसे ही सुख का अधिकारी हो जाता है।

मगर जहाँ सुमनजी का व्यक्तित्व इस तरह की कच्ची मिट्टी है जिससे मनचाहे ताजमहल बनाये जा सकते हैं वहाँ कभी-कभी प्रकृति इस्पात बन जाती है और प्यार के ताजमहल को ठुकराने वालों को मैंने जिन्दगी के कब्रिस्तान में चक्कर काटते देखा है। *देखा इसलिए है कि सुमनजी मेरे जिस वक्त से बड़े हैं जब मैं अपनी पीठ पर बस्ता लटका*कर स्कूल जाता था और तब सुमनजी किसी प्रेस के व्यवस्थापक थे। वे वहीं रहते थे जहाँ से मैं आज दिन में बीस बार गुजरता हूँ। और उस वक्त जहाँ मेरा परिवार था, वहाँ से सुमनजी कम-से-कम दो बार प्रतिदिन गुजरते थे।

सुमनजी उस वक्त भी मेरे परिवार के, मेरे ताऊ भाइसाहब (ओमप्रकाश शर्मा)

के श्रद्धेय थे। भाई साहब ने तब लिखना शुरू किया ही था कि मैंने हायर सैकण्डरी की परीक्षा दी। भाईसाहब मजबूर थे। आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं थी कि मैं कॉलिज में भेजा जा सकं। उस वक्त सुमनजी ने ही मार्ग सुझाकर प्रभाकर की तैयारी के लिए साधन जुटाये थे। घर में जब पहली भतीजी आई थी तो सुमनजी ही भाईसाहब को एक प्रकाशक के यहाँ लेकर गये थे और उसके बाद भाईसाहब का दूसरा उपन्यास 'साँझ का सूरज' स्वयं अपने खर्च से प्रकाशित करने के लिए इस तरह तुल गये कि उनकी निगाह में ऐसा कोई दमदार प्रकाशक नहीं था जो एकदम शुद्ध दोषरहित प्रकाशन कर सके।

यह दूसरी बात है कि सुमनजी को उस पर लगाई गई पूँजी आज तक नसीब नहीं हुई है। क्योंकि उन्होंने उपन्यास छापकर अपने ही एक परम शिष्य को इसलिए सौंप दिया कि वह प्रकाशन-एजेंट से प्रकाशक बन सके। प्रकाशक तो वह सज्जन बन ही गए, पर अब उन्हें सुमनजी से कोई सम्बन्ध जोड़ते हुए 'ग्लानि' लगती है। यह बात दूसरी है कि नियति के और गलत नीति के झमेले में एक बड़े प्रकाशक होते हुए भी उनका सोचने का और रहन-सहन का स्तर अभी भी एक एजंट-जैसा है।

एक और हिन्दी के राजकुमार ने सुमनजी की छत्र-छाया में आँख खोली थी। लेकिन शायद आदत में भस्मासुर वाली प्रवृत्ति थी, इसलिए वे अपने आपको सुमनजी से अलग करने की सोचने लगे और इसके लिए उन्होंने एक ऐसे गुट का निर्माण कर डाला जो गलत या सही किसी भी तरीके से सुमनजी की स्थिति में अंतर डाल दे। अंतर तो पड़ गया, मगर सुमनजी की स्थिति में नहीं, उनकी अपनी स्थिति में। सुमनजी के पास रहने को अच्छा, स्वच्छ और स्वास्थ्य वर्धक घर है, सम्बन्ध के लिए टेलीफोन है, और हँसने-बोलने को परिवार है—मगर उनसे विरोध रखने वालों के लिए तो सिर्फ कुछ कहावतें ही चरितार्थ होती दीख पड़ती हैं—जैसे माँगकर खाना, मस्जिद में सोना, या गये थे नमाज छुड़वाने, वतन ही छोड़ना पड़ गया।

ऐसा इसलिए नहीं होता है कि सुमनजी बहुत बड़े षड्यन्त्रकारी हैं जो अपने विरोधियों का तबाह कर देते हैं। बल्कि इसका कारण यह है कि उनका विरोध सिर्फ वह करता है जो कुछ और करने में असमर्थ है। इसकी एक नहीं, कई मिसालें मौजूद हैं।

फिर इस सरलहृदयता का लाभ उठाने के लिए हिन्दी के उदयोन्मुख शहजादे ही नहीं, वयोवृद्ध ठूँठ भी लालायित रहते हैं। 'ठूँठ' शब्द का प्रयोग जानबूझकर इसलिए किया गया है कि सिर्फ लफ्फाजी और चार कविता में महालेखक बनने का ढोंग करने वाले एक महानुभाव ने सुमनजी को स्वयं अपने पुत्र द्वारा अपने ऊपर लेख लिखवाकर भेजा था और प्रार्थना की थी वे इसे अपने नाम से कहीं छपने को दे दें। ये ऐसे तथाकथित साहित्यकार हैं जो अपने-आपको सचाई के अलम्बरदार, सदाचार के मसीहा और युगद्रष्टा से कम नहीं समझते। जब यह लेख आया तो सुमनजी ने उसे चुपचाप लिफाफे में बन्द करके रख दिया। कहा—'लगता है, बड़े भाई मौज में हैं।' फिर एक नहीं पाँच तकाजे आये और

इसके बाद आया एक और बेवकूफी से भरा पत्र। कोई और होता तो इस महापुरुष का पत्र प्रकाशित कर इसका असली चेहरा जनता को दिखा देता।

लेकिन आदमी और फरिश्ते में अन्तर होता है न! सो है। और नयी पीढ़ी, इस फरिश्ते को हर रोज़ ही इस तरह के भँवर में डालती है ताकि वह अपने-आपको कसौटी पर कस सके।

३१६६, मइयाला चौक,
पहाड़ी धीरज, दिल्ली ६

पिंजरे की मैना : जहाज़ का पंछी

श्रीमती शुभा वर्मा

“मेरा अल्प-सा व्यक्तित्व, अल्प-सा परिवेश! परिचय क्या दूँ? मुझे 'वो' घर की लक्ष्मी कहते हैं, अपने घर की दीवारें ही मेरी दुनिया है। उन्हीं के नाम से अपना नाम भी उजागर समझती हूँ। वक्त की बात पूछती हो, पास-पड़ोस की इक्की-दुक्की औरतों और अपने ही जायों के साथ काट देती हूँ। सास थीं, जिनकी ममताभरी छाँह में मैंने होश सँभाला था, जब से चल बसीं, कभी-कभी अकेलापन काटता रहता है। लेकिन क्या करूँ, बसर तो करना ही पड़ता है। जो चला गया, चला गया, जो है उसे तो रहना ही है।...इनकी बात कहती हो? राम-राम, जवानी में जब नहीं बाँध पाई तो, अब क्या बाँधूँ, अब तो हज़ार तरह की ज़िम्मेदारियाँ, हज़ार तरह के काम हैं, गठबन्धन करके बैठने वाले दिन तो बहुत पीछे छूट गए। ना, बाबा, और न पूछो कुछ, पूछोगी तो उन्हीं का सहारा लूँगी जिनके साथ ज़िन्दगी के इतने वर्ष गुज़ार चुकी हूँ और आने वाले भी गुज़ारती रहूँगी। वो हैं मेरे बच्चों के पिता, मेरे पति, इस छोटी-सी कुटिया के मालिक, जिन्हें लोग 'सुमनजी' कहते हैं।”

दबी परतें उभरती मालूम पड़ती हैं। गृहिणी के चेहरे की रेखाएँ आड़ी-तिरछी होती हैं, निगाहें कुलमुलाती हैं, नीचे झुक जाती हैं, “कच्ची उमर में ब्याह के आई और आते ही 'सइयाँ गये जेलखाने।' अब की लड़कियाँ हों तो राई का पहाड़ खड़ा कर दें, लेकिन सच जानो, अपने को ससुराल में मायके, मायके से ससुराल में कोई अन्तर ही नहीं जान पड़ा। माँ की गोद छोड़कर आई तो एक दूसरी माँ ने आँचल में समेट लिया (भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति दे)। पति के आने-जाने का मतलब क्या होता है, जाना ही नहीं। डेढ़ साल बाद जब जेल से लौटे तो उमर थोड़ी पक्की हुई, थोड़ा होश सँभाला और

के श्रद्धेय थे। भाई साहब ने तब लिखना शुरू किया ही था कि मैंने हायर सैकण्डरी की परीक्षा दी। भाईसाहब मजबूर थे। आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं थी कि मैं कॉलिज में भेजा जा सकूं। उस वक्त सुमनजी ने ही मार्ग सुझाकर प्रभाकर की तैयारी के लिए साधन जुटाये थे। घर में जब पहली भतीजी आई थी तो सुमनजी ही भाईसाहब को एक प्रकाशक के यहाँ लेकर गये थे और उसके बाद भाईसाहब का दूसरा उपन्यास 'साँझ का सूरज' स्वयं अपने खर्चे में प्रकाशित करने के लिए इस तरह तुल गये कि उनकी निगाह में ऐसा कोई दमदार प्रकाशक नहीं था जो एकदम शुद्ध दोषरहित प्रकाशन कर सके।

यह दूसरी बात है कि सुमनजी को उस पर लगाई गई पूँजी आज तक नसीब नहीं हुई है। क्योंकि उन्होंने उपन्यास छापकर अपने ही एक परम शिष्य को इसलिए सौंप दिया कि वह प्रकाशन-एजेंट से प्रकाशक बन सके। प्रकाशक तो वह सज्जन बन ही गए, पर अब उन्हें सुमनजी से कोई सम्बन्ध जोड़ते हुए 'ग्लानि' लगती है। यह बात दूसरी है कि नियति के और गलत नीति के झमेले में एक बड़े प्रकाशक होते हुए भी उनका सोचने का और रहन-सहन का स्तर अभी भी एक एजेंट-जैसा है।

एक और हिन्दी के राजकुमार ने सुमनजी की छत्र-छाया में आँख खोली थी। लेकिन शायद आदत में भस्मासुर वाली प्रवृत्ति थी, इसलिए वे अपने आपको सुमनजी से अलग करने की सोचने लगे और इसके लिए उन्होंने एक ऐसे गुट का निर्माण कर डाला जो गलत या सही किसी भी तरीके से सुमनजी की स्थिति में अंतर डाल दे। अंतर तो पड़ गया, मगर सुमनजी की स्थिति में नहीं, उनकी अपनी स्थिति में। सुमनजी के पास रहने को अच्छा, स्वच्छ और स्वास्थ्य वर्धक घर है, सम्बन्ध के लिए टेलीफोन है, और हँसने-बोलने को परिवार है—मगर उनसे विरोध रखने वालों के लिए तो सिर्फ कुछ कहावतें ही चरितार्थ होती दीख पड़ती है—जैसे माँगकर खाना, मस्जिद में सोना, या गये थे नमाज छुड़वाने, वतन ही छोड़ना पड़ गया।

ऐसा इसलिए नहीं होता है कि सुमनजी बहुत बड़े षड्यन्त्रकारी हैं जो अपने विरोधियों का तबाह कर देते है। बल्कि इसका कारण यह है कि उनका विरोध सिर्फ वह करता है जो कुछ और करने में असमर्थ है। इसकी एक नहीं, कई मिसालें मौजूद है।

फिर इस सरलहृदयता का लाभ उठाने के लिए हिन्दी के उदयोन्मुख शहजादे ही नहीं, वयोवृद्ध ठूंठ भी लालायित रहते है। 'ठूंठ' शब्द का प्रयोग जानबूझकर इसलिए किया गया है कि सिर्फ लफ्फाजी और चार कविता में महालेखक बनने का ढोंग करने वाले एक महानुभाव ने सुमनजी को स्वयं अपने पुत्र द्वारा अपने ऊपर लेख लिखवाकर भेजा था और प्रार्थना की थी वे इसे अपने नाम से कहीं छपने को दे दें। ये ऐसे तथाकथित साहित्यकार हैं जो अपने-आपको सचाई के अलम्बरदार, सदाचार के मसीहा और युगद्रष्टा से कम नहीं समझते। जब यह लेख आया तो सुमनजी ने उसे चुपचाप लिफाफे में बन्द करके रख दिया। कहा—'लगता है, बड़े भाई मौज में हैं।' फिर एक नहीं पाँच तकाजे आये और

इसके बाद आया एक और बेवकूफी में भरा खत। कोई और होता तो इन महापुरुष का खत प्रकाशित कर इनका असली चेहरा जनता को दिखा देता।

लेकिन आदमी और फरिश्ते में अन्तर होता है न ! सो है। और नयी पीढ़ी इस फरिश्ते को हर रोज ही इस तरह के भँवर में डालती है ताकि वह अपने-आपको कसौटी पर कस सके।

३१६६, बड़वाला चौक,
पहाड़ी धीरज, दिल्ली ६

पिंजरे की मैना जहाज का पंछी

श्रीमती शुभा वर्मा

"मेरा अल्प सा व्यक्तित्व अल्प सा परिवेश ! परिचय क्या दूँ ? मुझे वो घर की लक्ष्मी कहते हैं अपने घर की दीवारें ही मेरी दुनिया है। उन्हींके नाम से अपना नाम भी उजागर समझती हूँ। वक्त की बात पूछती हो पास पड़ौस की इक्की दुक्की औरतों और अपने ही जायों के साथ काट देती हूँ। सास थी जिनकी ममताभरी छाँह में मैंने होश सँभाला था जब से चल बसीं कभी कभी अकेलापन काटता रहता है। लेकिन क्या करूँ बसर तो करना ही पड़ता है। जो चला गया चला गया जो है उसे तो रहना ही है। इनकी बात कहती हो ? राम राम जवानी में जब नहीं बाँध पाई तो अब क्या बाँधूँ अब तो हजार तरह की जिम्मेदारियाँ हजार तरह के काम हैं गठबन्धन करके बैठने वाले दिन तो बहुत पीछे छूट गए। ना बाबा और न पूछो कुछ पूछोगी तो उन्हींका सहारा लूँगी जिनके साथ जिन्दगी के इतने वर्ष गुजार चुकी हूँ और आने वाले भी गुजारती रहूँगी। वो हैं मेरे बच्चों के पिता मेरे पति इस छोटी सी दुनिया के मालिक जिन्हें लोग सुमनजी कहते हैं।

दवी परत उभरती मालूम पड़ती है। गृहिणी के चेहरे की रेखाएँ आड़ी तिरछी होती हैं निगाह कसमुनाती है नीचे झुक जाती है कच्ची उमर में ब्याह के आई और आते ही सदियाँ गये जानवाने। अब की लड़कियाँ हों तो राई का पहाड़ खड़ा कर दें लेकिन सच जानो अपने को ससुराल से मायके मायके में ससुराल में कोई अन्तर ही नहीं जान पड़ा। माँ की गोद छोड़कर आई तो एक दूसरी माँ ने आँचल में समेट लिया (भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति दे)। पति के आने जाने का मतलब क्या होता है जाना ही नहीं। डेढ़ साल बाद जब जन में लौटे तो उमर थोड़ी पक्की हुई थोड़ा होश सँभाला और

जब साथ-साथ रहना पड़ा तो जिन्दगी के उतार-चढ़ाव सामने आये।

"अच्छे-बुरे सभी तरह के दिन देखे, कभी सैकड़ों रुपये आये, कभी भूखा रहने की नौबत भी आई, लेकिन इनके व्यवहार में कोई फरक नहीं देखा। वही सहज मीठा व्यवहार, आने वाले के प्रति वही समादर का भाव (चाहे घर में खातिरदारी के लिए कुछ भी न हो), जो कुछ, जितना खाया उसीसे अतिथिदेवता की पूजा की, कभी बेरुखे नहीं हुए।'

पिंजरे की भोली भाली मैना पर निगाह जाती है। चौके में बैठी हूं, बच्चे आवा-जाही लगाये हुए हैं—किसीको दूध चाहिए, किसीको नाश्ता चाहिए, कोई सिर्फ इतना चाहता है कि माँ के दरबार में उसकी शिकायत सुन ली जाये। घर की लक्ष्मी सब के प्रति अपना दायित्व निभा रही है।

"नमस्ते, बहनजी!' याद आती है।

"नमस्तेजी, आओ बैठो।' चारपाई के एक कोने में थोड़ा-सा स्थान बन जाता है फिर जैसे कुछ सोचकर 'चाहो तो ऊपर ही चली जाओ, ऊपर हैं।" अर्थात् मैं चाहूं तो ऊपर जा सकती हूँ क्योंकि सुमनजी वहीं विराज रहे हैं। स्मृति का एक पृष्ठ और खुलता है—विद्यार्थी जीवन में किताबों की जरूरत पड़ी थी तो सुमनजी के पुस्तकालय पर छापा मारा था, कितनी ही किताब वापस करने की शर्त पर (जिनमें एक को छोड़कर सब वापस कर दीं) ले गई थी, तब मैंने घर की इस लक्ष्मी के साथ अभिवादन की औपचारिकता भी नहीं निभाई थी और बगैर कुछ कहे-सुने पुस्तकालय में चली गई थी। तब भी अपनी गलती का एहसास हुआ था, आज फिर वही बात कचोट उठी—

'आज तो मुझे आप ही के पास बैठना है।' गलती का परिमार्जन करके चुपचाप बैठ जाती हूं।

'दो बर्तन आपस में कहाँ नहीं खटकते,'' तन्द्रा भंग होती है, सभी बाल-बच्चे अपनी-अपनी फरियाद सुनाकर जा चुके हैं, अँगीठी पर चढ़े हुए पतीले में सरसों का साग भरा जा चुका है, गृहिणी बोलती जा रही है, 'अपनी-अपनी आदतें होती हैं, कोई अच्छी लगती है, कोई बुरी, लेकिन वो तो कोई खास बात नहीं। और अब, जिन्दगी के इतने वर्ष गुजारने के बाद क्या बुरा मानना, आदत-सी पड़ गई है। पहले की बात और थी, नये खून में गर्मी भी तो होती है। इन्हें आने में देर हो जाती थी, सोचती थी, आज आ जायें तो बताऊँ आखिर ऐसा भी आदमी क्या जो दूसरों के पीछे परेशान होकर भागता रहे, अपने घर-बार, अपनी जिम्मेदारियों से बेखबर। लेकिन, पहर रात-बीते जब घर आयें तो मन की बात मन ही में रह जाए। सोचूं (कभी-कभी अब भी सोचती हूँ) दिनभर के थके-मांदे आ रहे हैं दो रोटी खाने को दूं या बातों से ही पेट भरूँ। दौड़-धूप चाहे अपने लिए हो या दूसरों के लिए आखिर थकान तो लाती ही है! और फिर सौ बात की एक बात, कहीं रहें, कुछ भी करें, जहाज के पंछी की तरह आते तो लौटकर यहीं हैं।"

नवीन ह्रो रत्नाकर की इस नायिका को देखती हूँ, पंक्तियां घूम जाती हैं:

क्याहो लाल धरो इस कुबरी

अर्ताहि काह हमारो।

और कान्हू की ऊंची आवाज दूसरे कमरे से रसोईघर तक आती है चाय की फर्माइश। पतीला झट से उतर जाता है केतली चढ़ जाती है। जलपान के चुनाव के लिए दो-तीन डिब्बे खुलते बन्द होते है और अन्त मे निर्णय हो जाता है— जमाने में कितनी बेईमानी आ गई है! कददूकस पर कसी जाने वाली गरी का पर रखकर— दो पैसा ज्यादा ही लगे माल अच्छा कहकर और नाश्ता देखो जरा। गरी के दो गोले जो अन्दर से सड़ हुए है मेरे सामने आते है— पहले एक चम्मच शक्कर मे कितनी मिठास होती थी और अब तो चम्मच पर चम्मच डालते जाओ कुछ पता ही नही चलता। काली मिर्चों की ही बात लो पहले चार दाना मे जो झार थी अब शायद मुट्ठीभर दानों मे भी न हो। धोबी है तो चार दिन कपड़े धोने में लगायेगा और दस दिन खुद पहनेगा पन्द्रह बीस दिन मे कपड़े लायगा। क्या करूं? कहां तक सबसे बचूं फिर भी कोशिश करती रहती हूं। कपड़े सब घर में धोती हूं। घर में रहकर क्या करूं सुबह से शाम तक अपने को लगाये रखती हूं—कभी कुछ कभी कुछ। जो अपने बस का नही उसके लिए क्या कर सकती हूं! भई पढ़ी लिखी ज्यादा होती तो आजकल की बीवियों की तरह मैं भी उनका हाथ बटाती नही तो सोचती हूँ घर की चिन्ताओ से ही उन्हें मुक्त कर दूं घर पर आये तो आराम से दो रोटी खायें मुझे भी तसल्ली रहे चलो कुछ तो हमने भी दिया।

बाल गोपाल व्यवस्थित रूप से रसोई मे बैठ जाते हैं जलपान करने के लिए। बातचीत का सिलसिला टूट जाता है। सबके आसन पर सबका प्राप्य पहुँच जाता है। बेटी अर्चना को देखकर काफी बडी होने की बात कहती हूँ तो जवाब मिलता है— लडकियो की बाढ ही ऐसी है अभी हमारी अर्चना है ही कितने दिन की! पहली बेटी है अपने जाने उसका वक्त नही लेती जानती हूँ पढने लिखने मे उसे वक्त लगाना चाहिए। जमाना बहुत बदल गया है। मेरे जमाने में न पढने लिखने पर भी निर्वाह हो जाता था अब के जमाने में थोडे ही होगा। फिर भी कही चली जाऊं या सुख-दुःख पड़े तो सारा काम सम्हाल लेती है। अपने पापा को या भइया को मेरी कमी महसूस नही होने देती।

बहुत कोशिश करती हूं खत्म हो गई बातो को फिर से शुरू करती हूँ कोई नया सिलसिला चलाती हूं पुरानी बात याद दिलाने की कोशिश करती हूं लेकिन गृहलक्ष्मी के उत्तर मे एक ही अन्दाज एक ही रवैया पाती हूं—कि इतने वर्ष गुजर गए है कि आगे भी गुजर जायेंगे बच्चे ही अपने खिलौने है और अब तो कोई ऐसी बात ही नहीं जो कही जाय। और ये भी अब कितने बदल गए है। कभी कुछ कहूं तो याद करते हैं— आज श्रीमतीजी की आज्ञा है अमुक चीज ले जानी है —सुमनजी की वाणी याद आती है सनातनी पति अब किसी हद तक फर्माबरदार बन गया है मेरे लिए इतना ही बहुत है। दस बारह एक जब भी लौटकर आते है ताजा फुलके तवा से उतारती हूं (बेगन अगीठी रात

भर जलती रहे)। ठण्डा खाना भी शरीर में लगता है कहीं ! बाजार की चीजें खाने-पीने की बात सुनकर भौंहों में बल पड़ जाते हैं राम-राम ! बाजार की चीजें खाकर सेहत कहाँ रहेगी ! ये बच्चे देखो, दिन भर धूल मिट्टी में लोटते हैं, जैसे-तैसे स्कूल चले जाते हैं, अपनी ही नजर न लगे, बाजार की चीजों में परहेज न करती तो इनका क्या होता ?" (कभी-कभी 'आनन्द भण्डार' के चटखारे लेते सुमनजी का हुलिया याद करती हूँ) "पापा को तो अपने जानते नहीं, सुबह से शाम तक मुझे ही देखते हैं, बड़ी बहिन के अनुशासन में रहते हैं छुट्टी के दिन या इतवार को पिता के दर्शन होते हैं, थोड़ा सान्निध्य मिलता है, इसीलिए और इन्हींमें डूबी रहती हूँ जिससे पिता की अनुपस्थिति इन्हें महसूस न हो। और यह भी कहूँगी कि छुट्टी के दिन वे भी बड़ा ख्याल रखते हैं, आखिर ताली एक हाथ से तो नहीं बजती।"

शामें कई गुजरीं, आगे भी गुजरेंगी, लेकिन दो विपरीत आचरण और विश्वास वाले जहाज के एक पंछी और पिंजर की मैना के भूत, भविष्य और वर्तमान के प्रति समझौतावादी पहलुओं की वह शाम कुछ अविस्मरणीय शामों में से एक रहेगी।

जे० ३, कृष्णनगर,
दिल्ली ३१

साहित्यकारों के राजदूत

श्री हिमांशु जोशी

सुमनजी एक 'पुराने' कवि है।

सुमनजी एक पुराने आर्यसमाजी नेता भी हैं।

—सुमनजी ने स्वाधीनता-संग्राम में भी भाग लिया।

—सुमनजी ने कवि-सम्मेलनों का सभापतित्व भी किया।

—सुमनजी ने 'मार्मिक' संस्मरण भी लिखे हैं।

—सुमनजी ने कई कृतियों का 'सफल' सम्पादन भी किया।

—सुमन राजधानी की 'साहित्यिक चेतना' भी है—राजधानी की 'साहित्यिक चेतना' भी 'सुमन' है।...

'सुमन-मय' दिल्ली में अब से लगभग दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व मैं परिव्राजक की तरह आया था। और इतने अरसे तक यहीं रह जाऊँगा, इसकी कल्पना भी न की थी।

मुझे याद है तब किसीने एक खद्दरधारी नेतानुमा व्यक्ति से मेरा परिचय कराते हुए कहा था—'ये सुमनजी है...।' सुमनजी की 'कलम' तब दिलशाद-उपवन में लगी थी

था नही—इतना याद नही। हाँ, इतना अवश्य याद है—प्रकाशको के मध्य सुमनजी की बडी धाक थी। वे साहित्यकारों के बिना पोर्टफोलियो के राजदूत की तरह अधिकारात इधर उधर फिरते नजर आते थे। मै उन्हे कोई बहुत बडा 'साहित्यकार' समझता था, क्योकि वे जोर-जोर से बोलते थे। बहुत व्यस्त दीखते थे। खादी परिधान के साथ साथ उनका नाम बहुत सुन्दर, साहित्यिक था।

सुमनजी को गत वर्षों म मैंने विविध रूप रगो म देखा है। साहित्यिक धरातल म, उन्होने कोई नई जमीन तोडी है मुझे याद नही। मुझे याद नही उन्होने किसी नये क्षितिज की खोज की है—उन्होने साहित्य की सडक म कोई मील का पत्थर खडा किया है।

सुमन ने अपना मार्ग स्वय बनाया है। वे बहुत सँकरे धरातल से ऊपर उठे है, इसलिए उन्होने बहुत-से सकटो का सामना किया है। इसीलिए सम्भवत वे किसी के सघर्षों को समझ पाने की सामर्थ्य रखते है।

मैं उन्हे साहित्यिक के रूप मे नही, बल्कि साहित्यिको के 'पुरोहित' के रूप मे अधिक जानता हूँ। आज दूसरो का सिर मूँडने और मुंडाने की प्रचलित प्रथा है—सिर सहलाने वालो की नही। सुमनजी इस दृष्टि से प्राचीन परम्परा के व्यक्ति है। वे उन पुरोहितो मे से है जो अपनी जेब से खर्च करके भी अपने जीवित अथवा मृतक यजमानो का तर्पण किया करते है—उन्हे पुष्प माल ही नही, पिण्ड-दान भी अर्पित किया करते है। (उनके यजमानो की सूची मे बडे से बडे, छोटे से-छोटे—अनेको साहित्यकार समाते है)।

मैथिलीशरणजी को दिल्ली म मकान बनाने के लिए जमीन चाहिए—इसकी व्यवस्था सुमनजी करेंगे। कोई निर्मोही तरुण कवि अपने मासूम बच्चो के साथ-साथ, दु ख भोगने के लिए अपनी वृद्धा अन्धी माँ को भी छोड गया है—उसके परिवार को भीख माँगने से बचाने का दायित्व सुमनजी का है। वे झोली लिये घर-घर, द्वार द्वार फिरेंगे . । दो-तीन हजार तो बैंक म जमा करवा ही देंगे।...उत्तरप्रदेश के किसी गाँव म कोई लेखिका अपने पति के 'सुकर्मों' से विक्षिप्त है—इसकी शिकायत सुमनजी के पास होगी।...राजधानी मे बाहर के साहित्यकार का कोई काय अटक गया है—इसके लिए एक्सप्रेस पत्र सम्बधित कार्यालय को नही, सुमनजी को आयेंगे। . यदि किसी कारण 'मनोरथ' पूर्ण नही होता तो अपयश—सुमनजी के लिए!

इधर कुछ वर्षों से लगता है—दिल्ली शाहदरा स गाजियाबाद, मेरठ तक की बहुत-सी स्कूल-कमेटियाँ, बहुत सी 'सुधार'-समितियाँ सुमनजी के 'मत्रालय' के अन्तगत आ गई है। सुमनजी को उनकी समस्याओं मे ही समय नही। वे आये दिन उन्ही झगडो मे।...

कभी-कभी मुझे अहसास होता है—सुमनजी साहित्यकार नही, नेता है। कभी-कभी मुझे लगता है—सुमनजी नेता नही, अभिनेता हैं। वे अपना पार्ट बडी ईमानदारी

से अदा करते हैं और उसी मे सन्तुष्ट रहते हैं ।

वे जीवट के व्यक्ति हैं—संघर्षों से संघर्ष करने वाले। मुझे याद है—जब वे दिलशाद गार्डन को आबाद करने के लिए, पहले-पहल गये थे, उन दिनों उस क्षेत्र में बाढ़ अधिक आया करती थी। वर्षा के साथ-साथ धीरे-धीरे एक बार बाढ़ का पानी बढ़ने लगा। उन्होंने तब अपने घर की सारी खिड़कियाँ-दरवाजे सीमेण्ट से चिनवा दिये थे। बाढ़ का पानी फिर भी बढ़ता चला गया तो वे उस समूचे क्षेत्र में अकेले छत पर चढ़ गए थे। वहाँ से दूर खड़े अपने शुभचिन्तकों को झंडियाँ हिलाकर सिगनल दिया करते थे, कि अभी जीवित हैं, डूबे नहीं। अतः चिन्ता की कोई बात नहीं है ।

लोग कह सकते हैं—सुमनजी बीमा शुदा व्यक्ति हैं। उन्होंने लाइफ इन्श्योरेन्स करवा रखा है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं। मुझे मालूम है उस घर की एक-एक ईंट सुमनजी के पसीने के गारे में डूबकर जुड़ी है। उस घर की एक-एक पुस्तक, एक एक वस्तु सुमनजी के खून और पसीने की कमाई है। सुमनजी ने दिन को दिन नहीं समझा, रात को रात नहीं। दिन-रात के अपने अथक परिश्रम से उन्होंने अपना यह स्तर बनाया है। मुसीबतों को झेलकर उभरा व्यक्ति ही उस बात को समझ सकता है।

सुमनजी कोई बहुत बड़ी साहित्यिक महत्त्वाकांक्षा लेकर आये हैं, मुझे ऐसा नहीं लगता। वे इस दृष्टि से ब्राह्मण-वृत्ति के मुझे लगे कि थोड़ा सा ही लिखकर सन्तुष्ट हो गए। वे चाहते तो अपना व्यापक दायरा बना सकते थे। एक स्थिति के पश्चात् उनके लिए साधन एवं सुविधाओं की कमी नहीं थी, पर उन्होंने अपने कार्य-क्षेत्र की दिशा बदल दी।

इस बात की मुझे उनसे शिकायत रही है—और वह आगे भी रहने वाली है। जो कुछ सुमनजी ने समाज की, साहित्यकारों की सेवा की, पर अपने 'साहित्यकार' के साथ न्याय न करके। और इस अपराध के लिए किसी को भी क्षमा नहीं नहीं किया जा सकता।

पर मेरे लिए तो 'क्षमा' का प्रश्न भी नहीं। सुमनजी की बहुत-सी बातों में असहमत होते हुए भी उनसे मुझे अग्रज का स्नेह मिला है। जब-जब मुझे कठिनाइयाँ आई हैं, उन्होंने बड़ी आत्मीयता से सुलझाई हैं। उनका परिवार मुझे अपने परिवार से परे नहीं लगा। अभी कुछ समय पहले किन्हीं जीवन-बीमा कम्पनी के एजेण्ट ने मुझसे बीमा कराने का प्रस्ताव रखा तो मैंने उत्तर दिया कि जब तक सुमनजी हैं, बीमा कराने की आवश्यकता मैं अनुभव नहीं करता।

सुमनजी के प्रशंसकों और आलोचकों की संख्या अपार है। मैं नहीं कह सकता सुमनजी का साहित्य में क्या स्थान है। उनकी साहित्य-सेवा क्या है। इसके अतिरिक्त उन्होंने समाज की कौन-कौन-सी, कितनी बड़ी सेवाएँ की हैं। मैं तो उनके जीवन्त व्यक्तित्व एवं दो-टूक बातों का कायल हूँ, उनकी अक्खड़िया प्रवृत्ति का, उस सहृदयता का जो अब साहित्यकारों में विरल होती चली जा रही है।

६०६, नेताजीनगर,
नई दिल्ली ३

चन्दन के तिलक की-सी मुस्कान

श्री मदनगोपाल चड्ढा

मार्च १३ १९६० की वह सुबह माथे पर लगे चन्दन की तरह मुझे आज भी याद है, जब थियेटर कम्यूनिकेन्स बिल्डिंग वाले 'साहित्य अकादेमी' के कार्यालय म मैंने पहली बार मैंने श्री क्षेमचन्द्र सुमन' के दर्शन किये थ।

उनके सहायक के रूप म बीते उन पाच वर्षों मे हर रोज मुझे सुमनजी का उज्ज्वलतम रूप ही देखने को मिलता रहा।

उनकी कर्मनिष्ठा, लोक सेवा और परोपकार-परायणता की प्रवृत्ति ने जहाँ मुझे सदा आत्मतुष्टि प्रदान की, वहा अनेक बार दुविधा की स्थिति मे भी डाला।

उनके पास जो कोई भी आता, अपना काम पूरा कराये बिना न लौटता। फिर जब सुमनजी स्वय जी जान से आगन्तुक की सेवा मे लग जाते, तो स्वभावत मुझे भी उस व्यक्ति के दो चार आवेदनपत्र टाइप करने ही पडते, और सुमनजी की ओर से एकाध पत्र भी।

दिन मे एक बार नही, यह नाटक अनेक बार होता था। मै अक्सर सुमनजी पर झुंझला उठता था, पर इनकी वह सहज मधुर मुस्कान मुझे कुछ कहने का मौका तक न देती थी।

मै इस बात का ठीक-ठीक हिसाब नही रख सका कि सुमनजी के सान्निध्य म बीते इन वर्षों मे उनके हाथो कितने व्यक्तियो के कितने जरूरी काम कितनी तेजी से भुगताये गए। उनका विभागीकरण भी सरल नही। कोई, अपनी बहिन, बेटी या पत्नी को कही अध्यापिका बनवाने के लिए चला आ रहा है, तो कोई अपने लडके के लिए समुचित नौकरी का प्रबन्ध करवाने, कोई एक अरसे से अनछपी पडी अपनी पुस्तक छपवाने के सिलसिले मे चला आया है, तो कोई अपने अधूरे मकान के लिए सीमेट प्राप्त करने मे असफल होकर सुमनजी की सहायता लेने आ निकला है कोई अपने यहाँ से एक्स्ट्रा बस चलवाने का इच्छुक है, तो कोई अपने इलाके से गेहूँ या चीनी की किल्लत दूर करवाने के लिए चिन्तित है, किसी को रेडियो से अपने कार्यक्रम के पैसे कम मिलते है, किसी के बच्चे को स्कूल मे एडमीशन नही मिल रहा। किसी का किसी अखबार मे कुछ छपवाना है या किसी को किसी भी तरह का कोई काम करवाना है तो बस एक ही रास्ता है—'मामेक शरण व्रज'। और यहा 'माम्' है श्री क्षेमचद्र 'सुमन'।

जी हाँ, आगन्तुको मे अक्सर ऐसे किरायेदार भी सुमनजी की शरण लेने आया करते है, जिन्हे मकान मालिक किराया बढाने के लिए तग करते थे या फिर मकान छोडने को विवश किया करते थ। कभी-कभी ऐसे मकान मालिक भी आजाते हैं, जो किरायेदारो

के रवैये से दु खी होते थे।

'मकानमालिक-किरायेदार' किस्म के भगडा मे अक्सर दो ही रास्ते खुले रहते हैं—या तो वे कचहरी के धक्के खाय, या फिर सुमनजी की शरण लें। और सुमनजी के पास आने वाला उपाय ही हर एक को सहज जँचता था, क्योंकि कामसिद्धि के साथ साथ उनके यहाँ भरपूर आतिथ्य भी मिलता था।

सुमनजी की इस सत्कार-भावना पर मैं उनसे कई बार उलझ पडता—"यह अच्छा मजाक है, सुमनजी! देखिये आज सुबह से आप पाँच बार फुल सैट चाय मँगवा बैठे हैं। ढाई रुपये ता वह दीजिए, और दो रुपये दस पैसे बर्फी तथा टोस्टा के!"

इस तरह सुमनजी की भरी हुई जेब शाम तक अक्सर खाली हो जाती। जो थोडा-बहुत जेब मे बच रहता, वह भी शाम को अन्तिम अतिथि के साथ जाते समय स्कूटर या टैक्सी मे खर्च हो जाता।

इस बीच आफिस के काम म सुमनजी ने कभी गफलत बरती हो, इसकी मुझे याद नही। कमरे मे घुसते ही वह मेरे अभिवादन के प्रत्युत्तर मे कहते—"जरा 'डान क्विग्जोट' वाली फाइल निकालकर एक स्मरणपत्र भेज दो कि अभी तक पाण्डुलिपि संशोधित होकर क्या नही आई, प्रेस वाले तकाजा कर रहे है।' कभी कहते "भैया, अमुक अनुवादक का बिल ता आज भिजवा दो, बेचारे पैसा का इन्तजार कर रहे होंगे। उनकी नातिन का विवाह है।'

मैं सोचता क्या रास्ते-भर सुमनजी अमुक' के पैसा की तगी या अमुक प्रेस की कठिनाइया की ही बात सोचते चले आ रहे थे!

आराम से बैठकर वह बताते कि आज रास्ते-भर बस मे किस-किस सहयात्री की क्या-क्या शिकायत सुनी। डायरी म नये-नये काम लिखकर मुझे भी आगाह कर देते। 'दफ्तर मे पहला काम दफ्तर का' यही उनका आदर्श था। आते ही जरूरी काम निपटाने मे जुट जाते। किसी को पत्र भेजा जा रहा है। किसी का बिल बन रहा है। प्रूफ पढे जा रहे हैं। दफ्तर के जरूरी नोट लिखे जा रहे है।

इस बीच अगर वह उठते तो बस टेलीफोन सुनने के लिए ही। और साहब, एक के बाद एक फोन आने का ताँता तो सुमनजी के दफ्तर पहुँचते ही शुरू हो जाता।

इस समूची सेवा का फल कभी सुमनजी के हाथ लगा हो, इसकी मुझे कोई याद नही।

कभी सुमनजी स्वय किसी का कोई पत्र मुझे पढवाते, या उनकी अनुपस्थिति मे मुझे उनके नाम का कोई फोन सुनना पडता, तो मेरा यह अहसास और गहरा हो जाता कि हर वक्त नेकी के फूल खिलाने वाले को स्वय कुछ प्राप्त नही होता।

यदि सुमनजी ने किसी के लडके की कहीं नौकरी लगवा दी, तो धन्यवाद का पत्र तो क्या आता, उलटे यह शिकायत आ टपकती, 'सुमनजी, आपने वेतन बहुत ही

कम दिलवाया है। इतने वेतन पर तो मैं बेटे को कहीं भी नौकरी पर लगवा सकता था।"

कोई अपने पत्र में यों गुल खिलाता—"बेटी को एडमिशन तो मिल गया, पर उसे 'बस' की बहुत दिक्कत है। मैं तो उसे इस स्कूल में दाखिल कराकर पछता रहा हूँ।"

किसी का फोन आता—"आप सुमनजी को कह दीजिए कि जिस प्रकाशक के यहाँ से उन्होंने मेरी किताब छपवाई है, उससे रॉयल्टी की राशि फौरन भिजवा दें।"

ऐसी कोई भी शिकायत सुनकर क्या मजाल जो सुमनजी के माथे पर बल पड़ते। सेवा भाव में उनकी आस्था इन उलाहनों के कारण कभी विचलित नहीं हुई।

दुनिया का सारा विष पीने के इच्छुक शंकर के समान सुमनजी सदा प्रसन्न ही रहते, मानो उनके लिए 'निन्दा' भी 'अमृत' से कम न हो।

हर बात को सहज भाव से स्वीकार कर लेने वाले सुमनजी का रौद्र रूप भी अपना मानी नहीं रखता। हर अन्याय पर, हर ज्यादती पर (बशर्ते कि वह दूसरों के साथ हो रही हो, अपने पर होने वाले अन्याय या ज्यादती को तो वे पचा ही जाते हैं) सुमनजी जिस उग्रता से मुकाबले पर डटकर खड़े हो जाते, वह उनकी न्यायप्रियता, साहस और अन्याय के प्रतिरोध की अपार शक्ति का ही सबल प्रमाण है।

दफ्तर के किसी भी कर्मचारी के यहाँ चाहे पुत्र-जन्म हुआ हो, चाहे कोई बीमार पड़ गया हो, तो और कोई जाये न जाये, सुमनजी अवश्य ही उसके यहाँ जायगे। यदि कहीं किसी के यहाँ कोई दुर्घटना घट गई, तो समझो सुमनजी का समस्त कार्यक्रम स्थगित हो गया। दफ्तर से छुट्टी मिलते ही वह सबसे पहले वहीं पहुँचेंगे।

किसी के यहाँ से विवाह-निमन्त्रण पाकर सुमनजी वहाँ न पहुँचें, यह सर्वथा असम्भव है। देखिये, ग्यारह रुपये सगुन वहाँ जाकर जरूर देंगे, यह उनकी परम्परा है।

इतना शाह-खर्च आदमी आखिर घर का गुजारा कैसे कर पाता होगा—दिल्ली जैसे शहर में?—यह मैंने अनेक बार सोचा है। घर से बाहर ही सुमनजी शाह-खर्ची का सबूत देते हों, ऐसा नहीं। जब भी मुझे इनके घर जाने का सौभाग्य मिला (दोपहर के भोजन पर या कि रात के खाने पर) दो चार मेहमानों को सदा जमा हुआ देखा। लगता है, द्रौपदी का चीर बढ़ाने के समान स्वयं भगवान् ही इनकी जेब भरी रखते होंगे।

अब मैं सुमनजी के साथ नहीं हूँ, पर एक क्षण के लिए भी उनकी याद भुला नहीं पाता।

मेरी कल्पना में अनेक चेहरे आज भी उभरते हैं, अनेक आवेदनपत्र, अनेक प्रार्थी, अनेक मेहमान—सुमनजी के साथ बैठा मेरी जगह अब कोई और उनके माथे की उस चन्दन के तिलक की-सी मुस्कान का साक्षी होगा।

'दिनमान' साप्ताहिक,
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

हमारी परिषद के संरक्षक

श्री सीताराम अग्रवाल

मेरे हृदय मे बचपन मे ही सुमनजी की आकृति अकित हो गई थी। तब मैं छोटा ही था। नगर के एक विराट् कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करते हुए पहले-पहल मैंने उन्हे देखा था। तभी से उनका सामीप्य प्राप्त करने की आकाक्षा मेरे मन के एक कोने मे विद्यमान थी।

आज जब मैंने उस सामीप्य को पा लिया है, तो सोचता हूँ कि वह क्या बात थी जो किसी और साहित्यकार या कवि की अपेक्षा मैं उनके ही समीप जाने को आतुर हो उठा था ? शायद मेरे किशोर मन ने यह पहले परख लिया था कि यही वह व्यक्ति है जो सबसे अपनो की तरह मिलता है, जिसकी दिलचस्पी दूसरो की समस्याओ मे अपनी अपेक्षा अधिक है। जो अपने गौरव और विद्वत्ता पर अभिमान नही करता, और अपने को विशिष्ट प्रदर्शित करना नही चाहता।

सुमनजी दूसरे साहित्यकारो मे पृथक् लगते हैं। इस पार्थक्य का सबसे बडा कारण, जो उन्हे औरो से अलग स्थापित किये हुए है, सम्भवत यही है कि विशिष्टो मे भी विशिष्ट होते हुए वे अपने वैशिष्ट्य को सौजन्य, सादगी और सद्व्यवहार के आवरण मे छिपाकर रखते हैं।

सुमनजी से मेरा परिचय १९५९ मे मेरे मित्र प्रेमचन्द 'महेश' ने कराया था। अपनी पुरस्कृत पुस्तक 'हर्षवर्धन' को प्रकाशित कराने के सिलसिले मे भाई प्रेमचन्द मुझे साथ लेकर उनसे मिले थे। बिना कोई मजबूरी बताये, बिना किसी प्रकार का अहसान जताये, वे हमारे साथ हो लिये और उसी दिन एक प्रकाशक से इस विषय मे उन्होंने अनुबन्ध भी करा दिया।

दो दिन बाद ही, पता नही किस कारण से, प्रेमभाई पर यह धुन सवार हुई कि इस प्रकाशन से अनुबन्ध भग करके पुस्तक किसी दूसरे प्रकाशक के यहाँ से प्रकाशित कराई जाए। इस विषय मे हमे सबसे बडा डर सुमनजी के नाराज होने का था। डरते-डरते हम उनसे मिले, तो उन्होंने हमारी आशका को व्यर्थ बताते हुए हमे समझाया, लेकिन प्रेमभाई के बार-बार आग्रह करने पर हमारे साथ जाकर उन्होंने अनुबध भग करा दिया। स्वभावत प्रकाशक को यह बहुत बुरा लगा। सुमनजी को हमारे कारण एक आदमी की अप्रसन्नता का शिकार होना पडा, फिर भी उन्होंने इसकी शिकायत नही की। हमारी आशा के विपरीत, मेरे मित्र के प्रति उसके निर्णय के लिए उनमे तनिक भी रोष या कटुता नहीं थी। उलटे नये लेखको मे ऐसी घबराहट को उन्होंने स्वाभाविक ही बताया। इस घटना मे सुमनजी के सौजन्य और हार्दिकता की बडी गहरी छाप मेरे हृदय पर पड गई।

इसके बाद उनसे मिनसे मिलने-जुलने का सिलसिला जारी हो गया। सुमनजी का हमारे नगर हापुड से बडा भावनात्मक सम्बन्ध रहा है। हापुड में रहते हुए उन्होंने पहली बार १९३५ मे नगर के दूसरे युवको के साथ एक साहित्यिक संस्था हिन्दी-साहित्य-समिति की स्थापना की थी। नगर की हिन्दी-साहित्य परिषद् ने उन्हें अपना सरक्षक मनोनीत किया। पहले भी परिषद के कार्यक्रमो मे सुमनजी का सहयोग हमे मिलता रहता था, किन्तु इसके बाद तो परिषद् का कोई ऐसा कार्यक्रम नही रहा जिसमे किसी-न किसी रूप मे सुमनजी का सहयोग हमे प्राप्त न हुआ हो।

'विहँसते फूल, विकसती कलियाँ' नाम से १९६५ के प्रारम्भ मे परिषद् ने हापुड के कवियो की कृतियो का एक सकलन प्रकाशित करने का निश्चय किया। हम चाहते थे कि इस सकलन की भूमिका सुमनजी लिखें। सुमनजी के स्वभाव से परिचित होते हुए भी उनकी अत्यधिक व्यस्तता को देखकर हमे डर था कि कही वे इस इस सम्बन्ध मे अपनी असमर्थता न प्रकट कर दें। किन्तु हमारा भय निराधार निकला। सुमनजी ने मुक्तकंठ से हमारे इस निश्चय को सराहा और न केवल उसकी भूमिका लिखने का वचन दिया बल्कि बहुत-से अमूल्य सुझाव भी इस विषय मे हमे दिये। यद्यपि इस भूमिका को लिखने मे सुमनजी को विलम्ब हो गया लेकिन उसका कारण यह था कि अपने नगर के काव्य-सकलन की भूमिका वे योही नही पूरे मनोयोग से लिखना चाहते थे। जब यह भूमिका हमे मिली तो देरी होने के कारण जो तिक्तता अनुभव हो रही थी, वह सौंधी मिठास मे परिवर्तित हो गई। भूमिका इतनी सुन्दर और ज्ञानवर्द्धक थी कि जिसने भी उसे पढा, सराहे बिना न रह सका। इसमे उन्होंने हापुड अचल की साहित्यिक प्रगति के इतिहास-जैसी दुर्लभ सामग्री का सगृहीत किया है। यह सामग्री उनके मस्तिष्क के अतिरिक्त अन्यत्र कही प्राप्य ही न थी। हमारी परिषद् को प्रसन्नता है कि इस इतिहास को सकलन की भूमिका मे पिरोकर सुमनजी ने उसे ऐतिहासिक कृति बना दिया।

एक मूर्धन्य साहित्यकार और हिन्दी-सेवी होने के कारण सुमनजी का हिन्दी मे बडा मान है। आज के कितने ही उद्दीप्त साहित्यकार प्रथमत उनके ही द्वारा प्रकाश मे लाये गए थ। परन्तु ऐसे भी लाग है जिनका साहित्य मे कोई विशेष सम्बन्ध नही है, फिर भी सुमनजी से उनका गहरा स्नेह-सम्बन्ध है। कुछ के लिए वे *बचपन के सैलानी दोस्त* है, कुछ के लिए 'बन्दी-जीवन' के जिन्दादिल साथी और बहुत से लोगो से उनके सम्बन्ध सामाजिक और शिक्षा सस्थाओं के माध्यम से है। प्रत्येक को उनसे मिलकर ऐसा लगता है कि वह अपने किसी आत्मीय से ही मिल रहा है।

कभी-कभी पत्रो के बण्डलो से उनमे उठाये गए विचित्र प्रश्नो और याचनाओ से वे खीझे हुए-से अवश्य लगते है, किन्तु निराश किसी को नही करते। शायद ही ऐसे पत्र उनके पास आते हो जिनका वे उत्तर नही देते। उनका पत्र-व्यवहार इतना नियमित और व्यापक है कि हजारो व्यक्तियो के पते उन्हे जबानी याद हैं। समय-समय पर पुरानी बातो

को दुहराकर वे अपनी स्मृति को ताजा बनाये रखते हैं।

परिश्रम की वे साकार मूर्ति हैं। प्रात पाँच बजे से उठकर रात के दस-ग्यारह बजे तक वे कार्य में लगे रहते है। अनथक परिश्रम उनका जीवन-मन्त्र है।

दिन-रात अनेक समस्याओं मे आकंठ डूबे हुए, दिल्ली-जैसे व्यस्त महानगर मे रहते हुए, इतने विभिन्न क्रिया-कलापो का वे एक साथ निर्वाह करते हैं फिर भी उनके व्यवहार की मिठास ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। उनकी चतुर्दिक् सफलता का रहस्य निश्चय ही उनके परिश्रम, स्मरणशक्ति, हार्दिकता और निरभिमानता मे है।

सुमनजी की इक्यावनवीं वर्षगाँठ पर हापुड की हिन्दी-साहित्य-परिषद् की ओर से मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ और अपनी तथा परिषद् के सदस्यो की ओर से ईश्वर से उन्हे चिरायु करने की प्रार्थना करता हूँ।

हिन्दी-साहित्य-परिषद्,
हापुड़ (मेरठ)

अपनी चाह : अपना खुदा

श्री धर्मपाल अकेला

मेरे सामने एक तस्वीर उभर आती है, सुमनजी की। स्वस्थ सौम्य मुखाकृति, विनम्रता मे मुस्कराती हुई।

सर्वप्रथम एक छोटे-से कस्बे के कवि-सम्मेलन मे मैंने उन्हे देखा था, जहाँ वे सभापतित्व कर रहे थे। जैसे ही मैं काव्य-पाठ कर चुकने के बाद वापस अपने स्थान पर आया, उन्होने मुझे सकेत से अपने पास बुलाया और प्रोत्साहित किया।

हिन्दी की नई पौध को प्रोत्साहन देने मे वे सबसे आगे हैं। नये लोगो को आगे बढाने, उनके सृजन के मार्ग की बाधाएँ दूर करने के लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

देश मे शायद ही किसी साहित्यकार को इतनी बडी सख्या मे भिन्न भिन्न प्रकार के पत्र प्राप्त होते हो, जितने सुमनजी को मिलते हैं।

कोई भाई इन्दौर से लिखते है कि उनके मकान की छतें अधकची रह गई हैं, अगर सुमनजी उनके लिए अनुवाद-कार्य की व्यवस्था न करा सके तो उनका मकान बरसात मे ढेर हो जाएगा। हिन्दी के एक वयोवृद्ध नाटककार एव ख्याति प्राप्त कवि मध्यप्रदेश से लिखते है कि वे भयकर अर्थाभाव मे ग्रस्त हैं और सुमनजी उन्हें किसी प्रकाशक मे कुछ रुपया अग्रिम दिला दें तो वे उसको पुस्तक लिखकर दे।

बिहार के एक राज्य कर्मचारी, किन्तु हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि ने उनसे अपनी कन्या के लिए उपयुक्त वर तलाशने के लिए कहा, तो एक दूसरे सज्जन ने एक लेख ही लिखकर भेज दिया कि सुमनजी इसे कहीं प्रकाशित करा दें।

प्रात से सध्या तक वे व्यस्त रहते है, अपने लिए नही। यदि ऐसा होता तो उनका ही भतीजा राधेश्याम हापुड मे साधारण मुदर्रिस न रहकर दिल्ली की किसी अच्छी शिक्षण-संस्था मे लग सकता था। दूसरो के लिए कार्य करते हुए उनमे एक विनम्र सक्रियता मैंने देखी है।

कभी किसी का टेलीफोन आता है कि कल दिल्ली-प्रशासन की क्षेत्रीय जन-सम्पर्क समिति, जिसके वे सदस्य हैं की बैठक मे उन्हे अमुक प्रस्ताव रखना है, कभी कोई आकर कहता है कि सुमनजी अमुक बच्चे की फीस माफ करा दे।

किसी की माँग होती है कि बच्चा को अमुक स्कूल-कॉलिज मे प्रवेश नही मिल रहा है, और सुमनजी किसी को निराश नही करते।

'सारे जहाँ का दर्द अपने जिगर मे समेटे' वे घर आकर लिखाई पढाई कैसे करते होंगे, यह सोचना उनके लिए (जो उन्हे या उनकी दिनचर्या को जानते है) मुश्किल है, पर सचाई यह है कि वे भयकर रूप से 'पढाकू' है।

किसी भी साहित्यिक विषय पर वे प्रामाणिक जानकारी दे सकते है। उनके निकट के लोग उन्हे 'जीवन्त इन्साइक्लोपीडिया' कहते है और इस सबके अतिरिक्त वे पचास से ऊपर पुस्तकों के लेखक है।

राजधानी के तपे-मँजे साहित्य सेवी सुमनजी के मन मे अपने किये गए कार्यों के बदले मे किसी भी प्रकार की प्रत्याकांक्षा मेरे देखने मे नही आई कई बार मैंने उन लोगों को, जिन्हे सुमनजी ने उनके अस्तित्व सकट के क्षणो मे हर प्रकार की सहायता देकर उबारा है, स्थिति सँभल जाने पर उनकी आलोचना करते देखा है, और यह ज्ञात हो जाने पर भी सुमनजी अवसर पर सहायता करने से नही चूकते। कोई यदि उन्हे यह याद भी दिलाये तो वे केवल मुस्कराकर ही रह रह जाते है। उनकी यह मुस्कराहट मुझे बहुत ऊँची और पवित्र लगती है।

हिन्दी के साहित्यिकों मे अकेले सुमनजी ही ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने प्रियजनों के लिए अपने को होम करना सीखा है। जिन्हे वे अच्छा समझते हैं उनके रक्षण के लिए अपनी पूरी सामर्थ्य का प्रयोग करते है। स्वर्गीय श्री गोपालसिंह नेपाली ने एक बार उनका जिक्र चलने पर बम्बई मे मुझसे कहा था, "सुमनजी के घर के चारो ओर दीवार बेशक हो, पर उनका हृदय सभी के लिए खुला है, वे शायद पैदा ही दूसरो के लिए हुए है और यहाँ मै सोचता हूँ कि मेरी तलाश खत्म हो गई है। मैंने वह व्यक्ति खोज लिया है जिस पर निगाह रखने के लिए अल्लाताला ने पैगम्बर को कहा था, **मन अत्तखजा इलाहु हवाहु (ए पैगम्बर, क्या तुमने उस शख्स पर भी नजर डाली जिसने अपनी चाह को ही**

अपना खुदा बना रखा है, तो क्या तुम खोज-बीन कर सकते हो ?" (अलफुर्कान् २५ ४३)

३३३, जवाहरनगर
श्रीनगर १ (कश्मीर)

चलता-फिरता विश्वकोश

श्री रमेश भसीन

आप जाने किस-किस तरह के विज्ञापन पढते होगे। क्या आपने कभी चलते-फिरते विश्वकोश' का विज्ञापन भी कही पढा है ? यह चलता-फिरता विश्व-कोश दरअसल कोई ग्रन्थ नही है। यह तो एक पदवी' है। जिस तरह लोग 'डाक्टर' आदि की डिग्री प्राप्त करते हैं उसी तरह की यह पदवी समझिए—'चलता-फिरता विश्व-कोश'। हिन्दी-साहित्य-ससार की ओर से यह पदवी हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार क्षेमचन्द्र 'सुमन' को प्रदान की गई है, जो पचास वर्ष पूरे करके इक्यावनवें वर्ष मे प्रवेश कर रहे है।

प्रत्येक 'कोश' म कोई-न-कोई विशेषता होती है। आप किसी लेखक, कवि, आलोचक, सम्पादक या अनुवादक का पता चाहते हो, अथवा यह जानने के इच्छुक हो कि उनका जन्म कब और कहाँ हुआ था, या आपको उसकी कृतियो के सम्बन्ध मे किसी विशेष जानकारी की जरूरत हो तो इस 'विश्वकोश' की सहायता लीजिये। आप दिल्ली म ही रहते है तो केवल फोन द्वारा और दिल्ली से बाहर है तो छ पैसे के पत्र द्वारा आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकते है। भले ही सभी बातो की जानकारी एक ही स्थान से प्राप्त करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है, पर इस 'विश्वकोश' मे आपकी इन सभी समस्याओ का समाधान सहज ही हो जाएगा। इधर आप पत्र लिखेंगे, उधर आपके हाथो मे उसका उत्तर होगा। 'डाइरेक्टरी' म फोन का नम्बर देखने अथवा शब्दकोश मे शब्दार्थ देखने मे आपको देर लग सकती है, पर फोन पर आप सुमनजी से कोई भी जानकारी अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं।

मैं तो सुमनजी का पत्र-सग्रह देखकर अवाक् रह गया। जाने कितने चेहरे उभरे मेरे सामने, और तरह-तरह की आवाज़ें गूंज उठी।

इन्दौर से श्री श्याम् सन्यासी सुमनजी को लिखते है, "अमरीका से इन दिनो दिल्ली मे वाटूमल फाउण्डेशन की श्रीमती वाटूमल आयी हुई है। अभी २८ फरवरी तक रहगी। मेरे एक मित्र उनसे मिलना चाहते है। पहले से समय लेना जरूरी है। उनका

ठीक-ठीक पता-ठिकाना जैसे भी हो, प्राप्त करके भेजो।"

दिल्ली की प्रमुख प्रकाशन-संस्था 'राजकमल प्रकाशन' के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री ओम्‌प्रकाश ने सुमनजी को यह लिखा, "मेरठ से कभी 'ललिता' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका के १६१६-२२ तक के अंकों को हम किस प्रकार देख सकेंगे, इसकी जानकारी केवल आपसे ही मिल सकती है। बहुत अनुग्रह होगा यदि किसी प्रकार कष्ट करके आप इस सम्बन्ध में उत्तर दे सकें।"

राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता से भी जो जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी उसके लिए भी सुमनजी से ही पूछ-ताछ की जाती है। राष्ट्रीय पुस्तकालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री कृष्णाचार्य ने सुमनजी को लिखा, "एक मित्र को (भारतीजी) घनीराम प्रेम के जन्म-वर्ष की खोज है। इसका पता लगाकर लिख भेजें।"

सन् १६६० की बात है। उन दिनों मैं राजपाल एण्ड सन्स में कार्य करता था। एक प्रकाशक और लेखक के मध्य जो भी पत्र-व्यवहार होता है, वह सारा कार्य उन दिनों मेरे द्वारा ही होता था। इसलिए पत्र-व्यवहार द्वारा लेखकों से मेरा परिचय हो जाना स्वाभाविक ही था। हमारी संस्था ने भी साहित्य अकादमी की ओर से हिन्दी की कुछ पुस्तकें प्रकाशित की थीं। साहित्य अकादेमी में हिन्दी पुस्तकों के मुद्रण प्रकाशन आदि का सारा कार्य पिछले दस वर्षों से सुमनजी ही देखते रहे हैं, इसलिए सारा पत्र-व्यवहार उन्हीं के नाम से होता था।

पर सुमनजी से मेरा निकट-सम्पर्क उस समय हुआ, जब उनकी 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' की पाण्डुलिपि प्रकाशनार्थ हमारे यहाँ आई।

पाण्डुलिपि प्रकाशक को भेज देने के बाद अनेक लेखक गोता लगा जाते हैं। पर यह आदत सुमनजी की नहीं है। वे प्रकाशक को तब तक खटखटाते रहते हैं, जब तक पुस्तक प्रकाशित न हो जाए। प्रकाशित हो जाने के बाद पुस्तक पत्र-पत्रिकाओं को समीक्षार्थ गई या नहीं, उसका विज्ञापन यथोचित रीति से हो रहा है या नहीं, यदि वह संकलन है तो सम्बन्धित लेखकों या कवियों के पास इसकी प्रति पहुँची या नहीं—इसकी खोज-बीन वे इस सतर्कता से करते हैं कि प्रकाशक उनसे उकताता नहीं। हाँ, तो पाण्डुलिपि आने की देर थी कि सुमनजी के फोनों की झड़ी लग गई। "कहो शिष्य, पुस्तक प्रेस में चली गई क्या? कम्पोजिंग शुरू हो गई होगी? भई, प्रूफ जल्दी भिजवा दो—आज ही रात को घर भेज देना, मैं सुबह ही देखकर लौटा दूँगा।"

इस तरह का निजी सम्पर्क तो हो गया, पर सुमनजी की ओर मेरा झुकाव तब हुआ, जब उनकी दूसरी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेमगीत' की पाण्डुलिपि हमें प्राप्त हुई। उसे देखते ही एक मिनट के लिए तो मैं स्तब्ध रह गया। उसमें एक सौ पिचहत्तर—जी हाँ, पूरी एक सौ पिचहत्तर—कवयित्रियों के नाम, पूरे पते, जन्म-तिथि, व्यवसाय, उनकी रचनाओं का पूरा विवरण, यहाँ तक कि उनके चित्र भी दिये हुए थे।

पाण्डुलिपि देखते ही लगा कि सही अर्थों मे इस तरह की रचना कोई 'विश्वकोश' ही प्रस्तुत कर सकता है। हाँ तो, उस दिन के बाद जब भी मेरे सामने कोई कठिनाई आ खडी हुई, मैंने तुरन्त सुमनजी को फोन करके समस्या को सुलझा लिया।

प्रत्येक कार्यालय मे रिकार्ड रक्खा जाता है। किसी का रिकार्ड दस वर्ष के बाद नष्ट कर दिया जाता है, किसी का पन्द्रह वर्ष के बाद। पर सुमनजी की सग्रह-वृत्ति का यह हाल है कि अगर आपने आज से चालीस वर्ष पूर्व भी कोई पत्र सुमनजी को लिखा होगा तो वह भी अभी तक उनकी फाइल मे पडा मिल जाएगा।

मुझे सुमनजी के निजी सग्रह मे ऐसे ऐसे बाढ-पीडित पत्र तथा कटिंग्ज देखने को मिले है जिनको हाथ लगाते हुए भी डर लगता है कि कही वे फट न जाएँ। यदि कही लेखकों के पत्रों की प्रदर्शनी की जाए तो दस-पन्द्रह हजार पत्र तो वहाँ सुमनजी ही जुटा सकते है।

आज भी यह हाल है कि जिस दिन सुमनजी को दस-पन्द्रह पत्र प्राप्त न हो और वे उनका उत्तर न दे डाले, वे उखडे-उखडे-से नजर आते हैं। उनका विचार है कि जिस रचना को पढकर पाठकों के पत्रों का अम्बार न लग जाय, वह रचना सही अर्थ मे रचना कहलाने योग्य नही है। 'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेमगीत' के सम्बन्ध मे सुमनजी को इतने पत्र प्राप्त हुए कि उनका सग्रह अपने मे बहुत रोचक हो सकता है। सुमनजी का कहना है कि पाठकों के पत्रों से मुझे अभूतपूर्व तथा प्रचुर प्रेरणा मिलती है।

सुमनजी के मित्रों का अलग-अलग वर्गीकरण किया जा सकता है। उनके एक मित्र आगरा से दिल्ली रवाना होने लगते है, तो चलते समय ट्रक-काल द्वारा सूचना देना जरूरी समझते है, 'भैया...मैं प्रात पठानकोट ऐक्सप्रेस से नई दिल्ली पहुँच रहा हूँ। वहाँ से सीधा तुम्हारे कार्यालय मे आऊँगा। मेरे लिए खाना बनवाते लाना। बाकी मिलने पर. .।' इसे कहते है आत्मीयता। ट्रक-काल पर पैसे खर्च कर देगे, नई दिल्ली स्टेशन से कार्यालय तक का स्कूटर का खर्च वहन कर लेगे, पर भोजन इन्ही के साथ करेंगे। दूसरी तरह के मित्र ऐसे है जो फोन करते है, 'गुरुजी, हम आज ही दिल्ली आये हैं और एक सप्ताह तक यहाँ रहना है। रात को हम आपके यहाँ ही विश्राम करेंगे।'

उनके वे मित्र तो वाकई प्रशसा के योग्य हैं, जो यही सोचकर उनसे मिलने आते है कि "चलो, सुमनजी के पास चलते है, चाय-वाय पियेंगे और घटे-दो घटे गप लडायेंगे।" और इधर सुमनजी कभी मित्रों से ऊबते नही।

किसी भी दफ्तर मे प्राय जिस तरह के पत्र अधिक सख्या मे आते है, उनका एक निश्चित उत्तर पहले से ही तैयार करके रख लिया जाता है और पत्र आते ही उसका पूर्व-निश्चित उत्तर भेज दिया जाता है। सुमनजी ने भी यही नियम अपना रखा है। एकाध पंक्ति मे ही पूरी बात कह देना उनकी विशेषता है।

फोन पर किसी ने इनके शिष्य की शिकायत कर दी तो सुमनजी वही पहले से

तैयार रखा हुआ उत्तर देते है—'खुदा के वास्ते उसको न टोको, शहर मे एक ही कातिल बचा है।' अगर किसी ने कह दिया कि, 'देखिये सुमनजी ! उस व्यक्ति ने मेरा काम नही किया', तो सुमनजी उसका नपा-तुला जवाब देगे—'भाई ! क्या करे ? आप जानते हैं कि ऐसे ही मौके के लिए किसी शायर ने कही कहा है—'हर शाख पै उल्लू बैठा है।' भई, किस किस को समझायें ?' किसी से मिलने का समय निश्चित करना होता है तो सुमनजी इतना ही कहते है—'आज शाम को मुझे . बजे.. पर मिलना, आपसे सत्सग करना है।' और जब कोई यह शिकायत करता है कि आप तो मिलते ही नही, तो सफाई देते हुए सुमनजी कहते है—'भई, टाइम का अभाव है और साथ ही यह भी सुन लीजिए—पहले ख्वाहिश थी कि जाने हमको लोग, अब ये रोना है कि हम क्यो इस कदर जाने गए।'

देखिये सुमनजी को अधिकतर फोन इस तरह के आते है—'मेरे बच्चों को दाखिल करवा दीजिये', ' की फीस माफ करानी है', '. की नौकरी के लिए . से सिफारिश करनी है', ' पुस्तक प्रकाशक से छपवानी है।' सुमनजी हैं कि किसी भी कार्य के लिए किसी को भी इन्कार नहीं करते।

जाने किस-किस तरह के समाज-कल्याण का भार सुमनजी अपने कन्धा पर ढोते रहते है। माछरा मे एक सज्जन लिखते हैं—"मैने हसन निजामी की लिखी हुई अद्वितीय पुस्तक 'बेगमात के आँसू' का 'मुगलों के अन्तिम दिन' नाम से अनुवाद छपवाया था। उसकी केवल प्रति मेरे पास मौजूद है। आप देखना चाहे तो भेज दूँगा। मै चाहता हूँ कि आप अकादमी से अथवा किसी अन्य प्रकाशक द्वारा इसे प्रकाशित करा दे।"

नागपुर-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के प्राध्यापक श्री रामेश्वर शर्मा ने अपने पत्र मे लिखा, "एक कार्य के लिए कष्ट दे रहा हूँ। के पद के लिए मेरे मित्र श्री ने आवेदन किया है। आशा करता हूँ इस कार्य को आप अवश्य करा सकेंगे व मुझे एव मेरे मित्र को अनुगृहीत होने का पुण्य अवसर प्रदान करेंगे।"

कानपुर से एक व्यक्ति लिखते है—'क्या यह सम्भव होगा कि आप दिल्ली के किसी अच्छे प्रकाशक विक्रेता से मेरी 'आदर्श, अवसाद और आस्था' नामक पुस्तक के सोल डिस्ट्रीब्यूटरशिप का अनुबन्ध करा सके।"

शाहजहाँपुर से एक नवोदित लेखक ने सुमनजी को लिखा—"मै अठारह कहानियो का एक सग्रह प्रकाशित करवाना चाहता हूँ। सौ सवा सौ प्रकाशित कहानियो मे से ये चुनी हुई कहानियां होगी। फिर प्रकाशक को भी चुनाव करने की पूरी छूट होगी। मुझे धन की इतनी अधिक खोज नही, जितनी अच्छे प्रकाशक की।"

'डॉक्टरेट' की उपाधि प्राप्त करने लिए थीसिस लिखने वाले भी यदा-कदा पत्र द्वारा सुमनजी से अपनी शकाओं का समाधान करते रहते हैं। नरसिंहपुर से एक पत्र आया—"मै वर्तमान मे सागर-विश्वविद्यालय मे हिन्दी मे पी एच० डी० उपाधि-हेतु

'हिन्दी-साहित्य को नारी कलाकारों की देन' (१९१० से १९६० तक) विषय पर शोध-कार्य कर रही हूँ। आपके द्वारा सम्पादित पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम-गीत' मेरे शोध-कार्य मे अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। मैं कृतज्ञ हूँ।"

आगरा के एक सज्जन तुरन्त प्रत्युत्तर के लिए अपना पत्र यह लिखते हुए भेजते है—"यह पत्र एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से लिख रहा हूँ। कष्ट के लिए पहले ही क्षमा माँग लूँ। मेरी थीसिस का विषय 'स्वातान्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य की गतिविधि' है। उसमें अन्यान्य भारतीय भाषा-साहित्य की स्वातान्त्र्योत्तर गतिविधि का भी तुलनात्मक परिचय देना है। आपसे अधिक उपयुक्त सहायक इस विषय मे मुझे कोई दिखाई नही देता।''

कुरुक्षेत्र से श्री विजय सूद लिखते हैं—" 'पंजाब की आधुनिक हिन्दी-कविता' नामक मेरा प्रबन्ध अब पूर्ण हो चुका है। कुछ ही दिनो दिन उपरान्त मैं देहली आकर उसे आपके चरणो मे प्रस्तुत कर दूंगा।"

कार्य हो जाने के बाद जो व्यक्ति आभार प्रदर्शन करते हैं उनमे सुमनजी के नाम श्री हरिश्चन्द्र पाठक का पत्र मैंने पढ़ा है। वे लिखते है "जब (१९५२) से मैं दिल्ली आया केवल एक व्यक्ति के व्यक्तित्व ने मुझे आकर्षित किया, क्योंकि उनमे वही गुण मुझे मूर्त दिखाई दिये जो एक सच्चे मनीषी एवं निष्ठावान साहित्यकार मे अपेक्षित हैं। और वह आपका व्यक्तित्व है।'

यह 'चलता-फिरता विश्व-कोश' सवेरे साढे आठ बजे घर से निकलने के बाद रात को दस बजे से पहले वापस घर नही पहुँच पाता। फिर रात को भी चैन नही। कई सज्जन तो इसी प्रतीक्षा मे रहते है कि कब रात हो, सुमनजी घर पहुँचे और उनसे फोन पर सत्संग किया जाए।

दिल्ली से छ:-सात मील यानी शाहदरा से भी दो-तीन मील आगे, बिलकुल जगल मे निवास करने पर भी सुमनजी को इन मित्रो की सेना नही छोडती।

कभी ऐसा भी होता है कि सुमनजी थके थकाये विश्राम करने और चैन की साँस लेने जब रात को घर पहुँचते हैं, तो वहाँ कोई न कोई भक्त बैठा मिलता है। क्या मजाल, सुमनजी के चेहरे पर शिकन पड जाय। अपनी मधुर और निश्छल मुस्कान बिखेरते हुए, सुमनजी ऐसे हर व्यक्ति की बात सुनते हैं, भोजन आदि से सत्कार करते हैं और रात मे विश्राम की व्यवस्था भी करते हैं, क्योंकि रात को ग्यारह बजे उनके घर से वापस लौटना भी तो एक समस्या है।

श्रीमती सुमन के स्वभाव की भी कुछ मत पूछिये। जहाँ वे फोन पर यथोचित उत्तर देने की कला जानती हैं, वहाँ घर पर सुमनजी के इन्तजार मे बैठे हुए व्यक्तियो की सेवा का भी उन्हे ध्यान रहता है।

अब सुनिये इस घर के बच्चों की गाथा। आगन्तुक के पास बैठकर वे मनोरंजन

की सामग्री बनना नही भूलते।

अगर किसी दिन रात को दस बजे से पहले सुमनजी घर पहुँच जायें तो श्रीमती जी कहती है—"क्या, क्या तबीयत ठीक नही, या आज बाजार जल्दी बन्द हो गया या कोई सिर खपाने को नही मिला ?" सचमुच सुमनजी उसी समय पर लौटते है, जब लोग सोने की तैयारी म हो और वाहन आदि मिलने मे कठिनाई अनुभव होने लगे। अगर कही वाहन की सुविधा अधिक देर तक उपलब्ध हो और बाजार का कारोबार रात मे देर तक चलता रहे, तो सुमनजी इसमे भी देर मे लौटेगे।

अब आप खुद यह हिसाब बिठाय कि यह 'चलत फिरता विश्व कोश' इतनी रात गए घर लौटकर कैसे इतना काम कर लेता है, कब पत्रो का उत्तर देता है, और कब अध्ययन करता है।

सुमनजी जिससे एक बार मिल ले, उसे वे कभी भूलते नही, जो पुस्तक एक बार पढ ली, उसक सभी प्रसग उनकी याद म तैरते रहते है, और जो कुछ देखा सुना या सोचा-विचारा है उसकी तरलता वे सदा बनाये रखते हैं। कोई उनके सामने फडकता हुआ शेर पढ दे तो उनकी आँखे उसी तरह चमक उठती हैं जैसे किसी सस्कृत अथवा हिन्दी कवि की कविता या कोई अछूता बोल सुनकर अथवा पढकर उनकी रुचि का घेरा बढता रहता है। ज्ञान की प्यास मिटती नही। उनकी अनुभूति मे सदा एक लचक रहती है। यह लचक इस 'चलते-फिरते विश्व कोश' की प्रेरणा है—और शायद यही इसकी उपलब्धि भी।

साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र-भवन, नई दिल्ली १

संस्मरण



(१९६३)

सुमनजी शतायु हों

डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा

श्री सुमनजी से जब पहली बार मिला, मैं हर्षमग्न हो गया। साहित्य-प्रेमी, बहुत शिष्ट और मिलनसार। वे कवि भी है, यह बात मुझे बहुत पीछे मालूम हुई।

वे अपना कर्त्तव्य पालन कितनी रुचि और लगन के साथ करते है, यह मैंने बहुत निकट से देखा है।

मुझे सन् १९५८ म जब आगरा-विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की, तब सुमनजी का बधाई का पत्र तो आया ही, वे स्वय भी झाँसी आये। उनके साथ उनके अनन्य मित्र और अब इस ग्रथ के सम्पादक डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' भी थे।

एक छोटे-से आनन्द-समारोह का आयोजन पारीछा-बाँध पर बेतवा के किनारे किया गया। पारीछा-बाँध झाँसी से लगभग चौदह मील की दूरी पर है। बेतवा नदी का चौडा पाट और नहर के लिए पानी रोकने के लिए बडी चतुराई से ६०-६५ वर्ष पहले यह बाँध बनाया गया था।

इधर-उधर कुछ दूरी पर पहाड और जगल है। बाँध के नीचे पत्थर-रोते और लम्बी-चौडी ऊबड-खाबड चट्टानें हैं, जिनसे लडती, भिडती, टकराती जल-धारा आगे बढती जाती है। बाँध के एक किनारे समतल उद्यान है।

यही वह आनन्द-समारोह हुआ था, जिसका उल्लेख मैने पहले किया है। स्व० श्री मैथिलीशरण गुप्त भी वहाँ आ गए थे--चिरगाँव से पारीछा बाँध छ मील ही है। बडी मौज के साथ समय बीता था। सुमनजी उस दिन गुप्तजी के साथ चिरगाँव भी गये थे। कमलेशजी और मैं तो झाँसी लौट आए थे, सुमनजी को गुप्तजी ने अनुरोध-आग्रह-पूर्वक रात मे वहाँ रोक लिया था।

गुप्तजी के निधन पर भी सुमनजी झाँसी आये थे। झाँसी के 'गणेश-मन्दिर' मे शोक मनाने के लिए जो सभा हुई थी, उसका दृश्य मुझे भूलता नही। सुमनजी के मार्मिक भाषण और हृदयद्रावक कविता ने वहाँ पर उपस्थित जन-समुदाय पर एक जादू-सा कर दिया था। बोलते हुए उनके तो आँसू आये ही, अनेक श्रोता भी विलख बिलख गए थे।

प्रभु से प्रार्थना है कि सुमनजी शतायु हों, चिर सुखी रहे, और जिस प्रकार अब तक हिन्दी साहित्य की सेवा करते चले आ रहे है, करते रहे।

मयूर प्रकाशन,
झाँसी (उ० प्र०)

विकसित-सुरभित सुमन

श्री अनूपलाल मण्डल

मनुष्य-मात्र में एक ऐसी प्रवृत्ति पाई जाती है कि वह अपने आनन्द को न तो अपने-आप में ही सीमित रखकर उसका उपभोग करना चाहता है और न अपने विषाद को दूसरों पर प्रकट किये बिना अपने जी को हल्का कर सकता है। दोनों अवस्थाओं में, वह जब तक अपने मन का उद्‌गार अपने बंधु-बांधवों के बीच प्रकट नहीं कर डालता, तब तक उसे चैन नहीं। विशेषतः जब उसके सामने गाढ़े दिन विकराल बनकर आ खड़े होते हैं और जब उसके लिए कोई चारा नहीं रह जाता, तब उसे अपने हितू-मित्रों की याद आती है, वह एक सहारा ढूँढ़ता है। ठीक यही अवस्था मेरे सामने आ पहुँची थी, जब मैं पटना स्थित बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् के प्रकाशनाधिकारी-पद की सेवाओं से निवृत्त होकर ग्राम्य जीवन बिताने के लिए घर चला आया था। उस समय लगता था जैसे मैं साहित्य-जगत् में ही नहीं, सारे विश्व से विच्छिन्न विच्युत हो पड़ा हूँ। बिहार के साहित्यिक बंधुओं से अपेक्षा थी कि वे मेरी सुधि लेंगे पर ऐसा न हुआ। बिहार से बाहर के साहित्यिक बंधुओं को क्या पता कि मैं कहाँ और कैसा हूँ। मेरे जीवन की लम्बी अवधि नगरों में कटी थी, इसलिए ग्राम्य जीवन मेरे लिए असह्य प्रतीत हो रहा था। मैं शरीर से आधि-व्याधिग्रस्त तो था ही, मन से भी दुर्बल हो गया। ऐसी दुस्सह अवस्था में जिनके कुशल-जिज्ञासा के स्नेह सने पत्र ने मेरे दुःख-दर्द पर मरहम पट्टी लगाई थी, वे हैं मेरे अभिन्न सुमनजी—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'। उस पत्र को पाकर उस दिन मैं निहाल हो गया था—मेरी आँखों से स्नेह के आँसू अबाध झरते रहे थे। उस दिन मैंने जाना था कि सच्चे मित्र की पहचान क्या है।

सुमनजी से परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे पहले पहल बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् में मिला था। उन दिनों परिषद् के संचालक थे भाई शिवजी—साहित्य-देवता पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय, जो गोलोकवासी हो चुके हैं। उन्हीं के सान्निध्य में रहने का सुफल था कि भारत के ऋषिकल्प मनीषियों, चोटी के विद्वानों और वरेण्य सरस्वती के साधकों के दर्शन उपलब्ध होते रहते थे, जिनमें स्वर्गीय आचार्य क्षितिमोहन सेन, महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव, आचार्य काका साहब कालेलकर, स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, डॉ० सम्पूर्णानन्द, सेठ गोविन्ददास, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० मोतीचन्द्र, पंडित जवाहरलाल चतुर्वेदी, पण्डित किशोरीदास वाजपेयी, स्वर्गीय डॉक्टर रघुवीर, श्री अज्ञेय, श्री जैनेन्द्र, श्री प्रभाकर माचवे आदि के नाम विशेष

रूप से उल्लेख्य है। निश्चय ही उल्लिखित महानुभावो के दर्शनो मे और भाई शिवजी के साथ उनके वार्तालापो से मैंने अपने अन्तःकरण को भरा-पूरा किया था।

हाँ, तो तात्पर्य यह कि भाई शिवजी के सान्निध्य मे रहकर बडी-बडी विभूतियो के दर्शनो से जहाँ मैं उपकृत हो चुका था, और उनकी वाणियो का मूक श्रोता मात्र रहा था, वहाँ सुमनजी से परिचय कराये जाने पर मै मात्र श्रोता न रह पाया। मुझे लगा, जैसे उनसे जाने कब की पहचान हो, शायद जन्म-जन्मान्तर की भी हो सकती है। मै सुमनजी की स्मरण-शक्ति का लोहा मानता हूँ। मैं दग रह गया, जब वे सुनाने लगे कि उन्होने कब, कहाँ, किस पत्र मे मेरा कौन-सा लेख पढा है—ऐसे लेखो की उन्होने एक लबी फेहरिस्त मेरे सामने गिना दी। इतना ही नही, मेरे किस उपन्यास मे कौन-सा नायक है और कौन सी नायिका—वे कैसे हैं, उनका निर्वाह किस रूप मे किया गया है—आदि चर्चा उन्होने जब छेड दी, तब मेरे लिए विस्मयाभिभूत होने के सिवा दूसरा चारा ही क्या था! बलिहारी है, उनकी तीक्ष्ण धी की! मगर ये बातें मेरी कृतियो तक ही सीमित न रह सकी, बडे-से-बडे और सामान्य-से-सामान्य लेखको की कृतियो पर भी धडल्ले के साथ बहुत-कुछ उन्होने सुना डाला। दूसरो की कृतियो का सम्यक् रस ग्रहण करना और मुग्धभाव से उन्हे अपने स्मृति-पटल पर सदा के लिए अकित करके सुरक्षित रख छोडना—यह मैंने सुमनजी मे ही देखा। निश्चय ही उनके मित्रो की सख्या बहुत बडी है और यह भी निश्चय है कि वे सबके प्रिय है। इसलिए उनका उपनाम 'सुमन' सर्वथा और सर्वत्र सार्थक है। अपूर्व आकर्षण-शक्ति है उनमे, किसी को भी दो क्षण मे मत्र मुग्ध कर सकते है वे। जैसा व्यक्तित्व मधुर है, वैसी ही उनकी वाणी, वैसा ही उनका आचरण और वैसा ही उनका व्यवहार। पहली भेट मे ही मैं उनसे इतना उद्बुद्ध हो उठा कि कुछ ही क्षणो के वार्तालाप मे मैं 'आप' से 'तुम' पर उतर आया, पहली भेंट मे ही लगा, जाने कब के बिछुडे एक मित्र को मैं पा गया हूँ—बिल्कुल अभिन्न, बिल्कुल एकरस—जैसे दो आत्मा निरावरण होकर एक हो गई हों—एक मे अनुस्यूत!

परिषद् के सेवाकाल मे जब तक मैं पटना मे रहा, जो एक युग से भी किंचित् अधिक था—सुमनजी से अक्सर भेट होती रही। जब कभी बिहार मे उनका दौरा होता, अथवा पटना से गुजरते हुए कलकत्ता जाते-आते, तब-तब वे एक बार मुझसे मिले बिना न रह सकते। उनसे मेरा कोई पर्दा न रह गया था। जब कभी आते, हजार काम छोडकर मेरे डेरे पर आकर मुझसे मिलते, फिर घटो सुख दुख की बातें होती, हँसी ठठोली के गुलछर्रे छूटते, गभीर वातावरण मे ताजगी का अहसास होता, मायूसी का आलम बदलकर उल्लास का समाँ बँध जाता। चाय की चुस्की के बीच अनोखे चुटकुले, दिलचस्प किस्से, गुदगुदाने वाली यादगारें उनसे सुनते चलिए, दिल की एक-एक कली खिलती चलेगी। सुमनजी माहिर है किस्सागोई के फन मे और यही कारण है कि वे आनन फानन मे दूसरो पर पुरजोर असर डाले बिना नही रह सकते।

सुमनजी के अंतरंगतापूर्ण सौजन्य का प्रमाण मुझे तब मिला, जब रिटायर हो चुकने के बाद कुछ दिनों के लिए मैं घर से पटना चला गया था। उन दिनों मेरे मँझले चिरंजीव एम० ए० के बाद वहीं के टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में पढ़ रहे थे, जिससे अपना डेरा तब तक चालू था। पर एक दो बन्धुओं के सिवा अन्य किसी को मेरी उपस्थिति का पता न था। संयोग की बात थी कि उन्हीं दिनों सुमनजी पटना पहुँचे और वहाँ के ज्ञानपीठ प्राइवेट लि० के संस्थापक श्री मदनमोहन पाण्डेय से, जो मेरे अभिन्न मित्रों में एक हैं, मिलते ही पूछ बैठे—क्या अनूपजी का कुछ कुशल-समाचार कह सकेंगे? क्या उनकी चिट्ठी-विट्ठी इधर मिली है? उनके बिना पटना सूना-सूना जैसा लगता है! मदनजी उनकी बातें सुनकर हँस पड़े, फिर हँसते-ही-हँसते उन्होंने कहा—ओहो, देखता हूँ, आप तो उन्हें अब भी याद करते हैं, जब कि वे यहाँ से जाने कब घर चले गए! ऐसी क्या बात है कि आप उन्हें भूल न सके? सुमनजी सहसा कोई उत्तर न दे सके। वे उनकी ओर विस्मित भाव से मौन ताकते रह गए! फिर मदनजी ने, क्षण-भर के बाद गंभीरता से कहा—यदि आप दरअसल उन्हें इतना चाहते हैं तो वे यहीं आपसे सशरीर मिल सकते हैं। क्योंकि सच्चे दिल की पुकार कभी अनसुनी नहीं रहती। सुमनजी सकते में पड़े, पर मदनजी के ओठों पर मुस्कराहट अठखेलियाँ कर रही थी। बात यह थी कि शाम के समय मैं उस प्रेस में अक्सर जाया करता था। उस दिन मैं कुछ पहले चल चुका था, आँगन में प्रवेश करते हुए मुझे मदनजी ने ऊपर से ही देख लिया था। मुझे सुमनजी के आने की कोई जानकारी न थी। मैं नित्य की तरह ज्यों ही ऊपर पहुँचा, मदनजी खुलकर हँस पड़े। मुझसे यह राज छिपा न रहा कि मेरे पहुँचते ही वे खिलखिलाकर क्यों हँसे हैं। हम दोनों ने एक-दूसरे को देखा, सुमनजी ने लपककर मुझे अपने आलिंगन-पाश में बाँधा हम दोनों उसी पाश में बड़ी देर तक आबद्ध खड़े रहे। मदनजी ने मुझे सुमनजी की सारी बातें उसी क्षण कह सुनाईं। मैं नहीं कह सकता कि परोक्ष की उनकी कुशल-जिज्ञासा में उनके निर्मल हृदय की झाँकी से मुझे क्या मिला और कितना मिला! ऐसे मित्र आज कहाँ मिलते हैं!

यह निखिल विश्व आनन्द-स्वरूप है। क्योंकि यह समस्त चराचर जगत् एक अखण्ड, अनन्त, निर्विकार आनन्द से उत्पन्न हुआ है, उसी में स्थित है और उसी में लीन होता है। इसलिए उपनिषद् कहता है—**आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति**—आनन्द से ही प्राणिमात्र का जन्म हुआ है, आनन्द में ही वह जीवन धारण करता है और आनन्द में ही लीन होता है। मानव-जीवन की सार्थकता उसी आनन्द में स्थित रहना और उसी आनन्द का दान करना है। जो जितना आनन्द में स्थित रह सकता है और जो जितना औरों को आनन्द दे सकता है, उनका स्थान उतना ही ऊँचा समझना चाहिए। आनन्द का ही दूसरा रूप प्रेम है। वैसे व्यक्ति के जीवन की क्या सार्थकता, जो आनन्द-स्वरूप जनार्दन को जनता के

रूप मे देख न सका, जो अपने अन्तर के विगलित प्रेम को जगत् मे प्रसारित न कर सका ! आज छल छद्म से परिपूर्ण जगत् मे ऐसे व्यक्ति विरले ही दीख पडते है, जो निश्छल भाव से, निर्व्याज, दूसरो को बन्धुभाव से देख सके उनके आडे समय मे उनका हाथ बटा सके अधिक कुछ न बने तो उनकी मगल-कामना मे उन्मुख बने रहे। मैं सुमनजी को जहाँ तक जान सका हूँ, निस्सकोच कह सकता हूँ कि उनमे आनन्द-दान का नैसर्गिक गुण है, उनके हृदय मे प्रेम की मदाकिनी निरन्तर प्रवाहित होती रहती है, वे वास्तव मे 'सुमन' है—विकसित और सुरभित !

सुमनजी जब-जब मिले, तब-तब उन्होने दिल्ली आने का आमत्रण दिया पर अब तो मेरे लिए दिल्ली दूर की चीज हो गई है। एक समय था—और वह ब्रिटिश सरकार का जमाना था—जब दिल्ली मेरे लिए बहुत करीब थी, पर उस समय सुमनजी से चाक्षुष परिचय न था। अब स्वाधीन भारत की राजधानी दिल्ली का रग रूप सुनता हूँ, कुछ और ही है—और ही है उसकी बहार। देखूँ राजधानी के दर्शन कभी कर पाता हूँ या नही। यदि ऐसा अवसर कभी मिला तो सुमनजी के आमत्रण की रक्षा अनायास कर सकूँगा।

यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है कि सुमनजी अपने कर्मरत जीवन की आधी सदी हँसते खेलते गुजार चुके हैं। उनके सहृदय बधुओ ने इस उत्सव को चिरस्मरणीय बनाने के लिए उन्हे एक अभिनन्दन-ग्रथ भेट करने का स्तुत्य आयोजन किया है। बधुत्व के नाते, इस सवाद को पाकर, उन्ही की स्मृतियाँ, उन्ही को समर्पित करने का यह मेरा तुच्छ आयोजन है। ऋषि-मुनियो ने मनुष्य के लिए 'जीवन शरद- शतम्' का उद्घोष किया है। जिस दीपक की लौ झझा-तूफान मे आधी सदी तक निर्विकार भाव से जलती रही है, उसकी लौ अम्लान निरन्तर एकरस 'शरद शतम्' की सीमा तक जलती रहे—यही मेरी कामना है और यही मगलमय प्रभु से याचना !

समौली (पूर्णियाँ), बिहार

मेरे जेल के साथी

श्री गोपीनाथ अमन

मार्च सन् १९४३ मे हम लोग दिल्ली-जेल से ट्रासफर होकर फीरोजपुर-जेल भेजे गए थे। पजाब के दूसरे अनेक शहरो से भी कुछ राजनीतिक बन्दी उस जेलमे आये। लाहौर से आने वाले, 'बैच' मे एक २८ वर्ष का नवयुवक था—क्षेमचन्द्र

'सुमन'। उसके साथ ही एक-दो दिन के फर्क से आने वालो मे श्री लेखराम (सम्पादक दैनिक 'हिन्दी मिलाप'), श्री जयन्त (सुपुत्र पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति) और श्री केवलानन्द दीपकर थे। जयन्त को मैं उतना नही जानता था जितना उनके पिता को, और श्री लेखराम को एक पत्रकार होने के नाते जानता था, क्योंकि मैं भी उन दिनो पत्रकार ही था और उर्दू के दैनिक 'तेज' मे सहायक सम्पादक की हैसियत से काम करता था, जिसके मुख्य सम्पादक श्री रामलाल वर्मा थे।

क्षेमचन्द्र सुमन' को एक नजर मे देखकर मुझे ऐसा लगा कि यह साहित्यिक अधिक हैं और राजनीतिक कम या स्पष्ट शब्दो मे, यह समझिये कि राजनीतिज्ञो के चक्कर मे आकर वे फँस गए थे। इनके गिरफ्तार होने से पहले इनकी केवल एक पुस्तक 'मल्लिका' ही प्रकाशित हुई थी, अब तो इनकी बहुत-सी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। जेल मे एक-दूसरे का हाल पूछा ही जाता है। पूछने पर मालूम हुआ कि सुमनजी मेरठ जिले के बाबूगढ छावनी के रहने वाले हैं जो किसी जमाने मे एक घुडसवार फौज की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध जगह रही है। इसलिए बेतकल्लुफ होकर स्वय ही अपना परिचय देते हुए वे यह कह दिया करते थे कि मैं पहले बाबूगढ मे 'बँधता' था।

जेलखाने मे समय काटने के लिए हम लोग क्लासे भी लगाते थे। मैं कुछ लोगो को फारसी पढाता था और सुमनजी हिन्दी। मुझसे पढने वालो मे जिसको सबसे ऊँचा पद प्राप्त हुआ, वह श्री वृषभान थे, जो किसी समय पेप्सू के मुख्यमत्री थे। श्री केवलानन्द दीपकर मुझे सस्कृत पढाया करते थे और सुमनजी हिन्दी के प्रमुख कवि श्री जयशकर प्रसाद की 'कामायनी'। जब सुमनजी तरन्नुम के साथ 'कामायनी' के पदो का पाठ करके उनका अर्थ सुनाया करते थे तो उस पर टीका-टिप्पणी भी हुआ करती थी।

उर्दू का एक शेर है

शेखजी, बज्म है यह रिन्दो की,
गर बिगड़ियेगा तो बन जाइयेगा।

हम लोगो ने सुमनजी को 'शेख' ही बना रखा था। वे बिगडते भी बहुत जल्दी थे, और मनाये भी बहुत जल्दी जा सकते थे। कभी-कभी जब वे बिगडने के बाद मुस्कराते और मुस्कराने के बाद जोर से हँसा करते थे, तब यार लोगों को बडा मजा आता था। हम लोग इनके 'कोप' की दशा मे सब-कुछ सुनने को तैयार रहते थे और यह भी जानते थे कि अन्त मे हम इन्हे मना ही लेगे। कोई कोई साथी तो इनसे यह तक भी कह देता था कि यदि हम लोगो के साथ रहना पसन्द न हो तो माफी माँगकर चले जाओ, इससे उनका रोष और भी बढ जाता था और फिर वे कहते थे कि माफी क्या माँगें ? हम किसी की लुटिया चुराकर लाये हैं क्या, या हमने किसी का बैल थोडे ही खोल लिया है ? हमे तो यह भी मालूम नही कि हमने कुसूर क्या किया है। सरकार हमे दामादो की तरह रख रही है तो माफी क्या माँगें ? इन चटपटी बातों से हम लोग मजा लिया करते थे।

सुमनजी की कोठरी मे श्री वृषभान, श्री लेखराम और श्री राजेन्द्रपाल पुरी (सचालक, सैण्ट्रल न्यूज़ एजेंसी, नई दिल्ली) भी रहते थे। चारो मे ही सवेरे नाश्ते पर या दोपहर और रात को भोजन पर काफी चोचें लडा करती थी, क्योंकि सुमनजी और वृषभान दोनो ही दही, चीनी और दूध के शौकीन थे। कभी-कभी तो ऐसा होता था कि ये दोनो महानुभाव ही नाश्ते को चट कर जाते थे और लेखराम तथा पुरी यो ही रह जाते थे। यह बात सुमनजी की कोठरी में ही होती हो ऐसी बात नही, सभी बैरका मे ऐसे महारथी थे। इन चारों की प्रकृति कुछ अलग-अलग थी। पडित लेखराम की तरफ से बराबर यह डर लगा रहता था कि किसी न किसी दिन वे हम लोगों को भारी मुसीबत मे डाल देंगे, क्योंकि उन्होने जेल के बाहर ही लडना काफी न समझा था, जेल के अन्दर भी वे अंग्रेजो से लडना चाहते थे। मेरे जैसे विचारो वाले लोग यह समझते थे कि यहाँ पर मुकाबला कुछ ठीक न होगा। यहाँ न तो कोई हार पहनाने वाला है, न जयकारा बोलने वाला, और न जुलूस मे साथ चलने वाला, मुफ्त मे पिटाई हो जाएगी और कुछ मज़ा भी न आएगा। वही मिसाल होगी कि—

मर गये मरदूद, न फातह न दुरूद।

इस बारे मे मेरी और सुमनसाहब की राय एक-जैसी थी। मै ज़रा बुज़ुर्ग था इसलिए मेरी राय की कीमत ज्यादा थी। बुज़ुर्ग को वैसे ही यह समझा जाता है कि उनकी तबीयत ठडी पड गई है लेकिन जब सुमनसाहब मेरी ताईद करते थे, तो उनका बहुत मज़ाक उडाया जाता था। सुमनसाहब की एक और कला थी—निद्रा। इसकी वजह से कुछ लोग उनको कुम्भकर्ण कहने लगे थे। वैसे सवेरे वह सोते न थे—केवल रजाई से मुँह ढके देर तक पडे रहते थे। जब उनके बारे मे कोई बात कही जाती और उनको बुरी लगती थी तो वह रज़ाई उलटकर बैठ जाते थे। हाँ, उन दिनों 'कुम्भकर्ण' की पदवी उन्होंने अवश्य स्वीकार कर ली थी।

सच बात तो यह है कि जेल मे समय बिताने का प्रश्न सबसे कठिन होता था, खास तौर से उनके लिए—जो केवल नज़रबन्द हो, सज़ा पाये हुए न हो। हम सभी लोग अधिकतर नज़रबन्द थे इसलिए समय काटने के लिए कुछ खेल, कुछ पढाई कुछ आपस मे एक-दूसरे से फब्तियां, कुछ आपस की लडाई, कुछ सरकार को कोसना, कुछ नेताओ को बुरा-भला कहना—और इसके बाद भी जब समय बच रहता था तो कुछ लोग अधिक सोने में ही उसका उपयोग किया करते थे। सुमनजी इस अन्तिम 'आइटम' के प्रसिद्ध महारथी थे।

जेल म मनुष्य का चरित्र ठीक तरह पहचाना जाता है। घर मे बाल-बच्चो मे रहेगे तो अधिक-से-अधिक १५-१६ घण्टे, जिसमे सोने का समय भी शामिल है। दफ्तर या दूकान पर रहेंगे तो ८-१० घण्टे, इसलिए उसका पूरा रूप न घर वालो के सामने आता

है, न दफ्तर और दूकान वालों के सामने। जेल में २४ घण्टे का साथ होता है, वहाँ सबका असली चरित्र मालूम हो जाता है। सुमनजी के लिए बहुत-से लोगों के दिलों में जो एक खास जगह थी उसका कारण इनका भोलापन था, जो आज भी उनमें ज्यों-का-त्यों पाया जाता है। जो रोष वे उस समय जेल-अधिकारियों के विरुद्ध प्रकट किया करते थे अब दिल्ली-प्रशासन की जन-सम्पर्क समिति और क्षेत्रीय समिति की बैठकों और दूसरे मौकों पर जब-तब प्रकट कर दिया करते हैं। शाहदरा में गेहूँ या चीनी, चावल आदि की व्यवस्था ठीक न होने पर उनका 'रोष' और 'प्रकोप' प्रायः उभर जाता है। उनकी आवाज उतनी ही ऊँची है, जितनी जेल में थी, मेरी आवाज अब उस समय के मुकाबले में बहुत मध्यम पड़ गई है।

जेल से आने के बाद एक ऐसा भी समय आया कि जब सुमनजी बहादुरगढ़ रोड पर हाथीखाने में रहते थे जो मेरे उस समय के घर से कोई २-३ फर्लांग पर था। वहाँ के बाद अब वह दिलशाद कॉलोनी, शाहदरा में चले गए। कभी-कभी जब वे अपनी कठिनाइयों का बयान करते हैं तो मैं उनसे मजाक में कहा करता हूँ कि 'दिलशाद कॉलोनी' की जगह इसका नाम 'गमगीन कॉलोनी' रखिये। इनके पड़ोस में स्व० उदयशंकर भट्ट का भी मकान है, परन्तु वे रहते करौल बाग में ही थे। इन दोनों में आपस में काफी बनती थी। कवियों में वहाँ नहीं बनती, जहाँ स्पर्द्धा हो। भट्टजी इन्हें प्यार करते थे और सुमनजी भट्टजी का अदब करते हैं। दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया था, इसलिए बिगाड़ होने की कोई बात ही नहीं थी। अब तो सुना है, फतहचन्द शर्मा 'आराधक' भी वहीं रहने लगे हैं। देखिये, ये दोनों अब क्या गुल खिलाते हैं।

सुमनजी अब अपनी ठीक जगह हैं, यानी साहित्य अकादेमी में जाकर साहित्य-सेवा का उन्हें और भी अच्छा अवसर प्राप्त हो गया है। जन-सम्पर्क समिति, शाहदरा क्षेत्र के भी वे सदस्य हैं और अपने काम में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। एक बात रह गई। मैंने १९४४ में होली पर मूर्ख-मण्डल के एक अधिवेशन में जेल में सुमनजी पर पैरोडी लिखी थी। सम्मेलन में वह मैंने उसी लहजे में पढ़ी, जिस लहजे में सुमनजी कविता-पाठ किया करते थे और यह कहकर पढ़ी कि मुझे यह पर्चा सुमनजी की बैरक के सामने से मिला है। इसका शीर्षक था :

हाय, चार्जशीट आया!

वहाँ नजरबन्दों को हर छः महीने बाद चार्जशीट मिलता था, कि वजह बताओ कि तुमको और अधिक दिन क्यों नजरबन्द न रक्खा जाए? मैंने इस कविता में सुमनजी के हृदय की वेदना प्रकट करने की पूरी कोशिश की थी, और उस समय चूँकि मेरी आवाज भी ऊँची थी इसलिए सुमनजी की यह नकल, जेल में मेरे साथी तमाम मूर्खों ने (जिनमें से कई एक बाहर आकर पार्लियामेंट के मेम्बर और मिनिस्टर भी बन गए) बहुत पसन्द की थी। पूरी कविता इस प्रकार है :

हाय, चारजशीट आया !

अर्ध निशि में आज मैं था, घोर निद्रा में समाया
उस अवस्था मे प्रिये, तुमने मुझे दर्शन दिखाया
वेदना मेरी बढाई और सहसा क्या सुनाया—
हाय, चारजशीट आया !

याद हैं अब तक मुझे लाहौर की वो रगरलियाँ
वे सुहाने पार्क, औ' सौन्दर्य-यौवनपूर्ण गलियाँ
पाठ जिनमे प्रेम का तुमने, प्रिये, मुझको पढाया !
हाय, चारजशीट आया !

आदि से मैं कवि रहा हूँ, हे प्रिये, शृगार रस का
राजनीति, जेलखाना यह कभी मेरे न बस का
इस 'जयन्त' 'केवला'[1] ने, मुझ बिचारे को फँसाया
हाय, चारजशीट आया !

अब न मुझको हे प्रिये, होगे कभी दर्शन तुम्हारे
तुम वहाँ रस भोगती हो, भाग फूटे हैं हमारे
दीन-हीन-मलीन मन है, शुष्क मुख है, क्षीण काया !
हाय, चारजशीट आया !

सुमनजी आज ५० वर्ष के हुए हैं और जिस दिन मैं यह लेख लिख रहा हूँ मैं ६७ वर्ष का हुआ यानी जब मैंने मैट्रिकुलेशन पास किया था उसके बाद सुमनजी इस ससार में आये थे। अन्तर तो बहुत है फिर भी हम काफी दिन से एक-दूसरे के मित्र हैं। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वे चिरजीवी हो और उनकी साहित्यिक ख्याति दिनो दिन बढती रहे !

४७ दरियागज,
दिल्ली ६

१ 'जयन्त' और 'केवलानन्द' लाहौर में सुमनजी के मकान में ही ठहरे हुए थे और केवलानन्द की गिरफ्तारी भी उन्हीं के मकान पर हुई थी। केवलानन्द बाद में 'आचार्य दीपकर' नाम से विख्यात हुए।

एक मधुर व्यक्तित्व

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

बहुधा व्यक्ति के प्रति मेरे मन में आकर्षण कम रहता है। जब मैं सोचता हूँ, जीवन पथ में न जाने कितने व्यक्तियों से साक्षात्कार हुआ होगा, न जाने कितने व्यक्तियों से मेरी भेंट हुई होगी, हो सकता है मैंने उनसे बातें की हों, उनका आतिथ्य भी सोत्साह स्वीकार किया हो, पर कालान्तर में मैं उन्हें भूल गया हूँ। अब तो प्राय ऐसा होता है कि लोग जब कह बैठते है—'जान पड़ता है आपने मुझे पहचाना नहीं', तब मैं चक्कर में पड़ जाता हूँ और कभी-कभी तो मुझे लज्जित भी होना पड़ता है।

बात यह है कि व्यक्ति की अपेक्षा मैं व्यक्तित्व को अधिक महत्त्व देता हूँ। यही कारण है कि जब किसी के व्यक्तित्व की छाप मेरे मन पर पड़ जाती है, तब वह मेरा आत्मीय बन जाता है। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' मेरे ऐसे ही आत्मीय बन्धुओं में से है। बार-म्बार मैंने भूलें की है और कभी ऐसा नहीं हुआ कि समय पर वे मुझे भूल गए हो।

दिसम्बर सन् १६४१ का वह दिन मैं नहीं भूल सकता, जब अबोहर के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन में मैं उस वर्ष की साहित्य-परिषद् का सभापति मनोनीत होकर पहुँचा था। सम्मेलन के अधिवेशन के तीसरे दिन सायकाल पहले साहित्य परिषद् की बैठक होने वाली थी, तदनन्तर कवि-सम्मेलन का कार्यक्रम था। प्रात काल मैं बन्धुवर आचार्य नन्द-दुलारे वाजपेयी तथा महाप्राण निरालाजी से भेंट करने के लिए अपने कमरे से निकला, तो क्या देखता हूँ कि एक व्यक्ति मेरे साथ लग गया है। मैंने जो घूमकर उसकी ओर देखा तो विचार में पड़ गया—कहीं भेंट तो हुई है, पर कहाँ हुई ? यह स्मरण नहीं आ रहा।

इतने में क्या सुनता हूँ—"*वाजपेयीजी, मैं क्षेमचन्द्र 'सुमन' हूँ। गत वर्ष जब आप* लाहौर पधारे थे, तब लक्ष्मी-बिल्डिंग में आपके सम्मान में जो गोष्ठी हुई थी, उसी में आपसे मेरा परिचय हुआ था।"

ओह, तो इतने दिनों से जिनको मैं जानता हूँ, जिनकी कविताएँ मैं चाव से पढ़ता रहा हूँ, जो 'मनस्वी' के सम्पादक रह चुके हैं, जिसे मैं किसी समय बड़े चाव से पढ़ता रहा था, उन्हीं को मैं न पहचान सका ! उस समय मेरी स्थिति उस अभिभूत और ग्रसवद व्यक्ति की-सी हो गई, जिस पर अकस्मात् घड़ा पानी पड़ गया हो !

इस घटना ने एक इंजेक्शन का काम किया। अबोहर से लौटते समय मैं सीधा दिल्ली न आकर लाहौर चला गया था, क्योंकि साहित्यिक बन्धुओं के ऐसे समुदाय के बीच रहने का संयोग, बहुत दिनों बाद मिला था। इस अवसर पर लाहौर में जो कवि-गोष्ठियाँ हुईं, उनमें सुमनजी से नित्य भेंट होती रही। फिर मैं इलाहाबाद लौट गया।

वहाँ जो जीवन-संघर्ष मे पडा, तो सुमनजी के साथ मेरा सम्पर्क कुछ टूट सा गया और एक दिन ऐसा भी आया जब सुमनजी के साधारण-से कार्य के लिए भी मैंने अपनी असमर्थता प्रकट करके छुट्टी पा ली थी, पर सन् ४९ में, जब मैं अपने 'गुप्त धन' उपन्यास के लेखन और प्रकाशन के सम्बन्ध में दिल्ली गया, तो वहाँ मुझे सुमनजी बडे प्रेम से मिले। तब तक मुझे इस बात का स्मरण ही न रह गया था कि मैं सुमनजी के समक्ष एक अपराधी की स्थिति में हूँ। उधर सुमनजी हृदय से इतने गम्भीर कि कभी उन्होंने उसकी चर्चा तक न की! खैर, मैं जब भी दिल्ली जाता उन्हें मेरे आने का पता चल जाता। वे समय निकाल-कर मुझसे अवश्य मिलते। यद्यपि इन भेंटो में शिष्टाचारपूर्ण सामान्य बातो के अतिरिक्त अन्य बातो के लिए विशेष स्थान न था, किन्तु मैंने लक्ष्य किया कि सामान्य बातो में ही वे कोई ऐसा व्यंग्यात्मक चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं कि हाथ मिलाना ही पडता है। ऐसे अवसरों पर वे प्राय उर्दू का कोई शेर या सस्कृत का श्लोक सुना देते है।

यही वह समय था, जब उन्होंने मेरे हृदय में एक आत्मीय बन्धु का सा स्थान ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था, यद्यपि मैं स्पष्ट रूप से कुछ नही समझ पाया था। इसके बाद लगभग तीन वर्ष बीत गए। फिर सन् '५१ मे एक दिन उनका एक पोस्टकार्ड घूमता-फिरता हुआ मुझे मिला, जिसमे उन्होंने मुझसे पूछा था, "कोई उपन्यास भी लिख रहे हैं या नही ?"

उनके इस पत्र ने मुझे पुन चक्कर मे डाल दिया। मैंने इलाहाबाद रहना छोड दिया था। कभी अपने गाँव मगलपुर रहता, कभी कानपुर मे। मैं सोचता रह गया कि सुमनजी को मेरा पता लगा कैसे! अस्तु, मैंने उसी रात दिल्ली को प्रस्थान कर दिया। अगले दिन प्रात काल ही जो मैं उनका मकान खोजता हुआ उनसे मिला तो यह देखकर दग रह गया कि उनकी लाइब्रेरी तो एक सग्रहालय है। साहित्यिक पुस्तको का एक बढिया सक-लन तो उन्होंने किया ही है, पत्र-पत्रिकाओं की पूरी फाइले भी सैकडो की सख्या मे है। मैं उन्हीके यहाँ ठहरा, उन्हीका आतिथ्य मैंने ग्रहण किया। उसी दिन सायकाल उन्होंने एक सामाजिक उपन्यास देने के सम्बन्ध में एक प्रकाशक से मेरा अनुबन्ध करा दिया, जिसके अनुसार मुझे छ मास बाद उपन्यास की पाण्डुलिपि दे देने की शर्त पर पाँच सौ रुपये का 'बियरर चेक' तत्काल मिल गया। उन दिनो सुमनजी एकाकी नाटको के सकलन सम्पादन मे व्यस्त थे। नाटककारो की सूची देखकर मैंने कहा— 'सुमनजी, आप चाहे तो इसमे एक नाम और जोडा जा सकता है।"

उन्होंने पूछा —कौन-सा नाम ?

मैंने बतला दिया—आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी।

उन्होंने किसी प्रकार की आपत्ति किये बिना ही स्वीकार कर लिया।

एक बार मैं श्री रघुवीरशरण बसल (बसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली के सचालक) का पुस्तकालय देख रहा था। सयोग से मुझे वहाँ सुमनजी द्वारा सम्पादित एक पुस्तक

देखने का अवसर मिला, जिसका नाम था 'जीवन-स्मृतियाँ'। पन्ने पलटकर देखा तो उसमें मेरी एक ऐसी आत्मकथा छपी हुई थी, जिसको मैं भी बिल्कुल भूल चुका था। यह तो मुझे स्मरण था कि ऐसा कुछ मैंने लिखा है ! पर कब लिखा है, कहाँ लिखा है, इसका मुझे किंचित् भी स्मरण नहीं था। मैं कृतार्थ भी हुआ और चकित, विस्मित तथा अभिभूत भी।

इलाहाबाद छोड़कर जब से मैं कानपुर में स्थायी रूप से रहने लगा हूँ, तब से कानपुर के कुछ तरुण अपनी-अपनी कृतियाँ लेकर प्रायः मेरे पास आ जाते हैं। कई बार ऐसा भी हुआ कि मैंने सुमनजी के लिए उन्हें एक पत्र लिखकर दे दिया और सुमनजी ने उसी दिन उनकी कृतियों के प्रकाशन का प्रबन्ध ही नहीं किया, बल्कि उन्हें सम्यक् आर्थिक अवलम्ब भी दिला दिया।

सुमनजी के इन सभी गुणों पर मैं जब एक साथ विचार करता हूँ, तो अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि वे हिन्दी के एक प्रतिभासम्पन्न श्रेष्ठ लेखक और कवि ही नहीं, साहित्य-कला के सच्चे पुजारी और मर्मी-पारखी भी हैं। खरी बात कहने में उन्हें संकोच नहीं होता और कलात्मक मर्मवाणी को भाषा के निविडतम गह्वर में सहज ही निकालने में उन्हें देर नहीं लगती। किसी भी कवि, नाटककार, कथाकार, निबन्धकार तथा समीक्षाकार के विषय में कोई भी प्रश्न उनसे कीजिये, वे तत्काल इतना सटीक उत्तर देंगे कि आप आश्चर्य में पड़ जायेंगे। उनके विराट् अध्ययन और सामान्य ज्ञान के सम्बन्ध में यह कहना तनिक भी अत्युक्ति न होगी कि वे एक बुद्धिजीवी चेतन-मानव के रूप में हिन्दी साहित्य के अलिखित इनसाइक्लोपीडिया' हैं।

वे एक ऐसे निस्पृह साहित्य-सेवी बन्धु हैं, जिनकी मित्रता की पृष्ठभूमि में कोई स्वार्थ निहित नहीं रहता, रहता है रचनात्मक प्रतिभा और कौशल के प्रति एक सहज अनुराग। यही कारण है कि अवसर आने पर वे अपने निन्दकों और विरोधियों तक को सक्रिय सहयोग दिये बिना नहीं चूकते। कई अवसरों पर मैंने अनुभव किया है, वे ऐसे-ऐसे साहित्यिक बन्धुओं की चर्चा कर बैठते हैं, जिन्हें आज हिन्दी-जगत् सर्वथा भूल चुका है। हिन्दी-साहित्य के जितने भी मूर्धन्य प्रणेता, विधायक और निर्माता हैं, उनकी कृतियाँ तो उनके संग्रहालय में हैं ही, उनके हस्त लिखित पत्रों का एक दुर्लभ संग्रह भी उनके पास है। लोकप्रियता की दृष्टि से देखें, तो इतनी श्रेणी के बहुत कम (बल्कि एक-आध ही) साहित्यिक दिखाई देंगे। अध्यवसायी इतने हैं कि दिन-रात व्यस्त रहते हैं। पुस्तकों के संग्रहकारों और सम्पादकों की हमारे यहाँ कमी नहीं है, पर उनकी-सी सूझ-बूझ वाला शैलीकार हमें तो आज कोई दिखाई देता नहीं। नवीन अंकुरों को पोषण-सम्बन्धी सक्रिय प्रोत्साहन देने वाले हमारे बीच कितने हैं ?

साहित्य-कला-सम्बन्धी मान्यताओं में सुमनजी जहाँ एक ओर सर्वथा निष्पक्ष और और निर्मम हैं, वहीं वे अन्य आलोचकों की अपेक्षा अधिक उदार और न्यायशील भी हैं।

कोई प्रलोभन उन्हे झुका नही सकता और कोई दलगत अभिसन्धि उन्हे तोड नही सकती। समय-समय पर उन्होने मुझे इतना सहारा दिया है कि मैं उनके आगे अपने-आपको बडा ही सकोचग्रस्त और अभियुक्त-जैसा अनुभव करता हूँ। अनेक बार मैंने सोचा है, सम्बन्धो को एक प्रकार से विच्छिन्न बनाये रखने पर भी जो बन्धु वर्षों तक मेरे-जैसे भुलक्कड, असावधान और सैलानी व्यक्ति का स्मरण किये बिना नही चूकता, वह भीतर से कितना गहन और मानसिक सन्तुलन की दृष्टि से कितना दृढ और पुष्ट है !

साहित्य-सेवी के प्रति एक अटूट लगन के साथ साथ उनमे वह जीवत रसज्ञता और विनोदप्रियता है कि उनके पास बैठकर घण्टा-आध घण्टा हँसते-हँसते बीत जाता है और पता ही नही चलता कि इतना समय हो गया ! स्वय सदा प्रसन्न रहना और अपने बन्धुजनो की शुष्कता या गम्भीरता को मिनटो मे उडा देना उनका एक सहज गुण है।

भगवान् करे, उदात्त और बहुमुखी प्रतिभा का यह साहित्य-सुमन हिन्दी भाषा की सौरभ वृद्धि मे सदा ऐसा ही कृतकार्य होता रहे !

९६/६ किदवईनगर, (१), कानपुर

सच्चे मित्र

डॉ० युद्धवीरसिंह

बन्धुवर श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन' से मेरी घनिष्टता फीरोजपुर-जेल मे उस समय हुई थी जब ४२ के आन्दोलन के सिलसिले मे हम दोनो काफी लम्बे अरसे तक साथ-साथ रहे थे। जेल मे उनकी प्रेरणादायक कविताओ से मुझे भी बडी राहत मिलती थी। वे हिन्दी के एक माने हुए कवि है और साहित्यकारो मे उनका विशिष्ट स्थान है, यह बात तो सभी जानते है, मगर वे एक सच्चे मित्र है, और मित्र की सहायता वे नि स्वार्थ भाव से करते है, यह बात वे ही जानते है जिनका उनसे अधिक सम्पर्क रहा है। सदा प्रसन्नचित्त रहने वाले, सादा जीवन व्यतीत करने वाले, ऊँची भावनाएँ रखने वाले कवि और सच्चे मित्र 'सुमन' की उनकी अर्धशती-पूर्ति पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ साह्लाद अर्पित है।

यह बात भी सभी पर भलीभाँति प्रकट है कि सुमनजी अपनी ओजमयी कविताओ से लोगो को प्रेरणा ही नही देते, बल्कि समय आने पर वे स्वय भी स्वतन्त्रता-सग्राम मे निर्द्वन्द्व भाव से कूद पडे थे। स्वतन्त्रता के उस सघर्ष मे सुमनजी ने अनेक कष्टो का सामना किया, परन्तु उन कष्टो और सघर्षों को कभी कष्ट नही माना और कारागार मे भी सदा

प्रसन्न-वदन ही रहे। उनकी यह प्रसन्नता, मिलनसारिता, छोटों पर प्रेम और बड़ों के प्रति श्रद्धा की भावना ही थी कि उनके चारों ओर एक ऐसा वातावरण बन गया था कि उनके पास हमेशा साथियों का जमाव रहता था। वे सभी को अपनी रचनाओं और व्यवहार से प्रसन्न रखते थे।

फीरोजपुर जेल में चार तो पक्की बैरकें थीं और बाकी छप्पर वाली बैरकें थीं। सुमनजी एक छप्पर वाली बैरक में थे और उस बैरक में रहने वाले सभी साथियों के नेता थे। जेल भर में वह बैरक बड़ी साफ रहती थी। बस, साहित्यिक गोष्ठी हो या सामूहिक कताई अथवा कोई मीटिंग, सुमनजी की बैरक में ही होती थी। जिस दिन सुमनजी की बैरक में इस प्रकार का कोई आयोजन होना तो वे बिस्तरा आदि को इस खूबसूरती से लगा देते थे कि बीच में एक मेज-सी बन जाती थी। मैंने मज़ाक में उसे 'समाधि' कहना शुरू कर दिया और समाधि के बाद उसका नामकरण जब **सुमन-समाधि** किया तो मुझे डर था कि कहीं सुमनजी नाराज न हो जायँ, मगर वे तो बड़े खुश हुए और वह बैरक **सुमन-समाधि** के नाम से मशहूर हो गई। जब भी कोई मीटिंग होती तो ऐलान होता कि अमुक समय अमुक आयोजन **सुमन-समाधि** पर होगा। थी तो मज़ाक की-सी बात, मगर सुमनजी की खुश-मिजाजी का इससे पता चलता है। आखिर एक दिन ऐसा हुआ कि हम तो वहीं रहे और सुमनजी हमें छोड़कर चले गए और जेलखाने में वह **सुमन-समाधि** ही बन गई।

अक्सर कहा जाता है कि जेल और रेल की दोस्ती तो अस्थायी होती है मगर सुमनजी की जेल की दोस्ती इस कहावत का अपवाद साबित हुई। सुमनजी बराबर प्रेम और श्रद्धा से मिलते रहे, और मुझे बड़े भाई की तरह आदर देते रहे। जब भी उनकी कोई रचना प्रकाशित हुई मेरे पास आकर एक प्रति भेंट कर गए। वे एक दिन एक पुस्तक दे गए, जिसका नाम तो भूल गया मगर उसमें कई नेताओं के संक्षिप्त जीवन-चरित दिये हुए थे। वह पुस्तक मुझे बहुत पसन्द आई और उसे पढ़कर पता चला कि ये केवल पद्य ही नहीं, गद्य भी अच्छा लिखते हैं। जिस खूबसूरती से वे जीवनियाँ लिखी थीं वह पढ़ने से ही पता चलता है। वह पुस्तक मुझे इतनी पसन्द आई कि मेरा वश होता तो मैं उसे ९वीं-१०वीं क्लास के पाठ्यक्रम में लगा देता—जिससे देश के नौजवानों को देश के निर्माताओं का परिचय प्राप्त होता।[1]

दिल्ली-शाहदरा में रहने के कारण सुमनजी से श्री आचार्य चतुरसेनजी के यहाँ अक्सर भेंट होती रहती थी। मगर भेंट हो या न हो, उनका स्नेह वैसा ही बना रहता है चाहे

१. इस पुस्तक का नाम 'नये भारत के निर्माता' है, जो उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा न केवल पुरस्कृत हुई, बल्कि वहाँ की तथा अजमेर-बोर्ड की दसवीं कक्षा में कई वर्षों तक पाठ्य-पुस्तक रही। डॉक्टर साहब का स्वप्न इस प्रकार पूरा हो गया। —सम्पादक

देर से मिले या जल्दी। सुमनजी का ध्यान आते ही जेल की **सुमन-समाधि** की बात याद आ जाती है और बड़ी हँसी-सी आती है। मगर वह याद बड़ी मधुर है। यद्यपि उस समय हम यह नही समझते थे कि जेल से निकलने के बाद इतनी जल्दी आज़ादी आ जायेगी, परन्तु यह भी नही समझते थे कि आज़ादी के बाद ये स्वतन्त्रता के पुजारी इस प्रकार भुला दिये जाएँगे। मगर सुमनजी को किसी से कोई शिकायत नही, शिकायत करना उनका स्वभाव ही नही। वे तो **'हर हाल मगन, हर हाल चुस्त'** और आज भी आवश्यकता पडे तो देश के लिए कुर्बानी देने को तैयार है। भारत माँ को अपने ऐसे बेटो पर गर्व है।

कूचा ब्रजनाथ, चांदनी चौक, दिल्ली ६

मनस्वी सुमन

श्री रामचन्द्र शर्मा 'महारथी'

स्वतन्त्र भारत के मानचित्र मे रंग भरे जा रहे थे। जन मानस अभी पराधीनता के पालने मे झूल रहा था। सन् १९४५ की होली हो ली थी। दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन चल रहा था।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने ४० वर्ष के जीवन काल में पहली बार, बडे दबाव और सकोच से अपने प्रयाग वाले गढ से बाहर पाँव रखने का दु साहस किया था। अखिल भारतीय स्थायी समिति की बैठक इस प्रान्तीय सम्मलन के पडाल मे ही बुलाई गई थी।

इस प्रकार प्रान्तीय सम्मेलन ने अपना त्रि दिवसीय अधिवेशन अखिल भारतीय स्तर पर करने का साहस किया था और हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र से आगे बढकर हिन्दी जन-जीवन की परम्पराओ एव भारतीय सस्कृति को अपने प्रचार का माध्यम बनाने का श्रीगणेश किया था।

दिन मे हिन्दी भाषा पर भाषण और प्रस्ताव होने के बाद रात्रि मे सगीत, नाटक और नृत्य के मनहर एव प्रेरक कार्यक्रमो का आयोजन किया था।

पहली रात, सम्मेलन के मच से 'अनन्त की ओर' ले जाने वाले मधुर भारतीय वाद्य-सगीत का रस श्रोताओ के कानो मे घोला गया था। दूसरी रात मे, हिन्दी के सात एकाकी नाटको एव सात्विक छाया-नृत्यो द्वारा भारतीय दर्शन की आकर्षक झाँकी ने उपस्थित जन-समुदाय के मन मे आत्म गौरव का दीया जगा दिया। कार्यक्रम का तीसरा चरण था, 'नवरस प्रदर्शन'। साहित्य, सगीत और नृत्य की त्रिवेणी के इस भावनात्मक

संगम पर जन साधारण का स्नान कराने मे विद्युत्प्रकाश की अपेक्षा अन्तश्चेतना का आलोक भव्य एव अभूतपूर्व था। राजर्षि टण्डन तक उस छटा पर मुग्ध हो उठे थे। मच पर भले घर की पोडशी बालाओं का नृत्य तब तक अनैतिक समझा जाता था, अत केवल ३ फीट ऊँचे सीधे-सादे सभा मच पर कुछ सुसस्कृत परिवारों की नन्ही-नन्ही निश्छल कन्यकाओं की पैंजनियों के स्वर सुर-ताल मे झकृत हो उठे। प्रत्येक रस के बोल गूँजने लगे और रस की फुहार छूट पडी तो वातावरण मे एक सात्त्विक उन्माद छा गया। कृष्ण की बाल-लीलाओं की सी वह दिव्य छटा फिर कल्पना-जगत् मे भी तो देखना नसीब नहीं हुआ।

चौथा और समापन-समारोह था कवि-सम्मेलन। प० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने ऊँचे गावतकिये को मसनद मानकर क्रान्तिकारी अल्हडपन से उस पर अध्यक्ष पद ग्रहण किया। घर वाली अभी घर मे निकाल कर खुले मच पर नही उतारी गई थी। सुपूत ही उसके दूध की सार्थकता सिद्ध करने और अपनी मोदमयी, ओजपूर्ण और चोज-भरी कविताएँ सुनना-सुनाना ही समारोहों की शोभा और गौरव मानते थे। तभी एक औघड युवक पजाब से निष्कासित, अपने गाँव मे नज़रबन्द, मेरठ-पुलिस से आँख-मिचौनी खेलता इस कवि-सम्मेलन के मच पर अकस्मात् कूदकर चिल्ला पडा

है मूक गिरा, बन्दी तन है, ऐसे मे कैसी यह होली!
अब तो शासक के इगित पर चल जातीं दन-दन-दन गोली।

और वह गोली सचमुच श्रोताओं के मन मे लग गई। वह मस्ताना कवि था आज का क्षेमचन्द्र 'सुमन'—साहित्य अकादेमी का निष्ठावान् कार्यकर्ता और हिन्दी-जगत् का जीता-जागता, चलता-फिरता सन्दर्भ-ग्रन्थ।

चुलबुले कवि की इस अदा पर दिल्ली वाले मुग्ध हो गए और युवक का मन भी इस इन्द्रपुरी मे ही अटक गया।

मई, १९४५ मे अपने जन्म-स्थान बाबूगढ ग्राम से नजरबन्दी की पाबन्दी हटते ही इन्होंने अपना डेरा दिल्ली मे आ जमाया।

आते ही विद्या-मदिर लिमिटेड, नई दिल्ली मे इन्हे पुस्तक-सम्पादन का कार्य मिल गया। नई दिल्ली गुलाम नगरी के नाम से प्रसिद्ध थी। स्वतन्त्र वृत्ति वालो के लिए मैदान खाली था। हिन्दी-साहित्य सभा नई दिल्ली के माध्यम से इन्होंने हिन्दी प्रचार मे भी योग देना आरम्भ कर दिया।

फिर जब विधान-परिषद् बनी और राष्ट्र-भाषा का प्रश्न उसके सामने आया तो मेरठ-सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित **राष्ट्रभाषा—हिन्दी** नामक ग्रन्थ के सम्पादन मे इनकी प्रतिभा चमकी।

इसके बाद तो इनके अनेक सकलन प्रकाशित हुए और कई प्रेसो का व्यवस्था-पन-भार इन्होंने बडी कुशलता से सँभाला। सन् १९४२ के हिन्दी-प्रेमी इस राष्ट्रीय कार्य-

कर्ता के योगक्षेम के लिए यह कार्य ठीक होने पर भी यह उनके मन का क्षेत्र नही था। तब तक भाग्य से साहित्य अकादेमी बनी और अड भिडकर सुमनजी उसमे घुस गए। यह स्थान इनकी प्रतिभा और आकाक्षा के अनुरूप था। अब तो अकादेमी और ये दोना अन्योन्याश्रित-से हो रहे है। इसके माध्यम से नाना भाषाविदा से अनायास परिचय, भाषा की शक्ति का अध्ययन और कार्य सचालन का अनुभव इनके भावी जीवन म बहुत काम का सिद्ध होगा, यह निश्चय है।

इनका निवास बहुत दिना सदर के हाथीखाने मे रहा और जब दिल्ली पाव पसारने लगी ता इन्हाने दिल्ली की सीमा पर डेरा जा लगाया। वहा बसी नई बस्ती 'दिलशाद बाग मे अपना नीड बनाने वाले ये शायद पहले पछी थे। अब तो बस्ती के सयोजका से भी अधिक अथक प्रयास करके उसे इन्हाने बाबू गढ ही बना दिया है।

सरकारी कर्मचारी होते हुए भी असरकारी साहित्यिक सामाजिक एव जन-सेवा कार्यों मे ये भरसक याग देत है। क्षेत्रीय जन सम्पर्क समिति और काग्रेस के माध्यम से शाहदरा क्षेत्र की जनता की कठिनाइया दूर कराने म इनके सवेरा और साँझ बीतते है। इस भाग-दौड मे ही लेखा और पुस्तका का रचना-कार्य भी उसी गति से चलता जाता है।

जन्म जात सारस्वत श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने इस प्रकार अच्छे प्रकाशक, साहित्यिक कार्यकर्त्ता, विवेकशील सम्पादक, परिश्रमी अध्येता और सस्कृत के सुविज्ञ पण्डित के रूप मे अपनी लेखनी के बल पर अपना निर्माण स्वय किया है।

१६ सितम्बर, १९६६ का सुमनजी जीवन की आधी शती पार कर लेंगे। जिस गति और मति से वह अभी तक चल है, उससे उनके उज्ज्वल और यशस्वी भविष्य की बडी आशा बँधती है। भगवान् करें कि इन मानव सुमन का ऐसा विकास हो जिसे देखकर जन-जन का मानस हुलस उठे और उनकी शोभा एव सौरभ दिग् दिगन्त मे ऐसा व्याप्त हो कि पूजा के सर्वोच्च स्थान पर उनकी माँग हो।

१८, दीवान हॉल, दिल्ली ६

गतिमान प्रज्ञा का स्पन्दन

श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

"क्यों गुरु, मिलते नहीं हो ! तुमने मिलने का वायदा किया था। मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा ही करता रहा। कभी-कभी तो मिलते रहा करो !"

'आपके लड़के की फीस माफ करने के लिए मैंने स्कूल के मैनेजर से आज सुबह ही कह दिया है। आप बच्चे को साथ लेकर सुबह १० बजे के करीब स्कूल पहुँच जायें।"

(पीछे से आवाज देते हुए) 'बन्धु ! तुम तो हिरन की तरह छलांगें मारते जा रहे हो। ऐसी भी भला क्या जल्दी है ? . अच्छा, मेरा वह काम कर दिया ?" (रुककर उत्तर देते हुए) 'तुम्हें कल ही घर के पते पर कार्ड लिखा था। क्या अभी मिला नहीं ? तुम्हारा काम हो गया है। प्रकाशक ने तुम्हारी पुस्तक छापना मंजूर कर लिया है. ."

दिलशाद कॉलोनी शाहदरा, से प्रतिदिन सुबह साढ़े आठ बजे के करीब अपने दिल्ली-स्थित कार्यालय को रवाना होने वाले यह सज्जन रास्ते पर परिचितों और सामान्य मिलने-जुलने वालों की शिकायतें सुनने उनके निराकरण के लिए तत्परता के साथ किये गए प्रयत्नों की सूचना देने और पुरानी मित्रता को ताजा करते तथा नये सम्पर्क बनाते साहित्य अकादेमी पहुँचते हैं। शाम को भी यही सिलसिला जारी रहता है और पांच बजे कार्यालय की कुर्सी छोड़कर भी रात को दस बजे से पहले वे घर नहीं पहुँच पाते। फिर, घर पर भी विश्राम नहीं। कॉलोनी-निवासियों को भी विविध प्रकार की शिकायतें हैं। वहां भी इनका प्रमुख स्थान है। सुबह और रात का समय कॉलोनी वालों की सेवा और वहां की समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करते बीत जाता है।

यह हैं श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', जो हिन्दी के प्रमुख साहित्यिक होते हुए भी उन खामियों से सर्वथा अलिप्त हैं जो आजकल लगातार बढ़ रही इस बिरादरी के लोगों में फैल रही हैं।

सुमनजी का व्यक्तित्व शानदार है। लम्बा कद, गौर वर्ण, गांधी-टोपी से ढके सिर के नीचे विशाल ललाट, कर्जन फैशन, लम्बा चेहरा, आदतन खादी-वेशधारी, लम्बा कुर्ता, कभी-कभी कुर्ते पर जवाहर-जाकेट, नीचे चौंगदार धोती, पैरों में चप्पल, पर आँखें तीक्ष्ण दूरभेदी, जो कभी किसी पुराने मित्र को चिरकाल से मिलने के कारण मीठा उला-हना देने के लिए चपल हो उठती हैं, और कभी किसी संकटग्रस्त तथा साधनहीन जन तक पहुँचने के लिए सतत निमेषोन्मेष करने लगती हैं, बनावटी दांतों से छिपा मुंह और उसपर शीघ्र-शीघ्र आने वाली मुस्कराहट से अलंकृत होंठों के नीचे दृढ़तासूचक गोल ठोढ़ी—लम्बी टाँगें, सदा लम्बा डग भरने को उतावली। सुमनजी जब भी मिलेंगे, तो दूसरे को मौका देने से पहले स्वयं ही सप्रेम नमस्ते कहते हुए 'कहो गुरु' (या बन्धु) क्या

हाल है ?" इन सहज शब्दो के साथ आपका स्वागत करने को लालायित रहते हैं। कई बार ऐसा हुआ कि हमे उनके साथ चलने का अवसर मिला। जो रास्ता पाँच मिनट मे तय किया जा सकता था उसे उनके साथ चलने मे आध घण्टा लग गया। क्यो ? कदम-कदम पर उनके परिचित मिल जाते और उनके साथ कुशल क्षेम और बातचीत मे ही कितने मिनट लग जाते। हम तो अक्सर कह देते है सुमनजी ! आपके साथ इस प्रकार निभ नही सकती है। आप तो सारे जहा का दर्द हमारे जिगर मे है लिये हुए है। हमे छुट्टी दीजिये, हम तो जल्दी जल्दी अपना रास्ता नापे। सुमनजी कहते अरे भाई ! यह नदी नाव सयोग है। हरेक की सुननी चाहिए अपनी भले ही हम न सुनाये। सेवा के लिए सदा तत्पर रहने के आपके इस गुण से लाभ उठाने के लिए ही सरकार ने आपको दिल्ली प्रशासन की क्षेत्रीय जन सम्पर्क समिति का सदस्य नियुक्त किया है।

सुमनजी से हमारा परिचय तब से है जब वह लाहौर मे हिन्दी मिलाप के सम्पादकीय विभाग मे थे। हम दोनो की शिक्षा सम्बन्धी पृष्ठभूमि एक समान है। वह गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार के स्नातक है जिसके सचालको मे सम्पादकाचार्य पद्मसिंह शर्मा और नरदेव शास्त्री जैसे मनीषी विद्वान थे और हमने गुरुकुल विश्व विद्यालय, कागडी हरिद्वार की गगापार भूमि मे आचार्य श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के चरणो मे १५ वर्ष तक मनन रहकर दीक्षा प्राप्त की। १६३८ मे गगा की बाढ के कारण पुरानी भूमि को छोडकर गुरुकुल के कनखल के पास आ जाने से अब तो दोनो सस्थाओ की सीमाओ मे कुछ गजो का ही फासला रह गया है। एक सामान्य अवसर पर सुमनजी से लाहौर मे पहली मुलाकात हुई। अपनी आदत के अनुसार सुमनजी ने ही इनीशिएटिव लिया। दोनो की पृष्ठभूमि मे गुरुकुलीय शिक्षा होने के कारण यह परिचय बिना किसी औपचारिकता के लगातार बढता गया। फिर हम दोनो हमपेशा थे—अर्थात पत्रकार—इसने सीमेंट का काम किया। देश के विभाजन के बाद हम दोनो के दिल्ली आ जाने और दोनो के मसिजीवी होने के कारण यह घनिष्ठता अब भी अविच्छिन्न रूप से कायम है।

पत्रकार के रूप मे सुमनजी ने पजाब और उत्तरप्रदेश के लगभग आधे दर्जन दैनिक साप्ताहिक और मासिक पत्रो मे काम किया है। प्राक-स्वतन्त्रता युग के हिन्दी पत्रकार कट्टर राष्ट्रीय विचारो के होते थे। सुमनजी का स्थान इस दृष्टि से भी बडा गौरवपूर्ण है। लाहौर के दैनिक हिन्दी मिलाप मे काम करते हुए १६४२ के 'भारत छोडो आन्दोलन मे इन्हे दो वर्ष के लिए फिरोजपुर जेल नजरबन्द कर दिया गया था। वहाँ से मुक्त होते ही इन्हे पजाब से निकल जाने का आदेश दिया गया। उस समय बेकार होकर जब ये अपने जन्म-स्थान, बाबूगढ (जिला मेरठ) मे आ गए तब इन्हे उत्तरप्रदेश सरकार ने वही गाँव मे नजरबन्द कर दिया।

सुमनजी की प्रतिभा बहुमुखी है। उनकी राष्ट्रभक्ति विविध रूप मे शान के साथ मुखरित हुई है। पत्रकार होने के साथ साथ वह सधे हुए कवि मँजे हुए लेखक और पैनी

दृष्टि से साहित्य-आलोचक भी हैं। राजमहल प्रकाशन की त्रैमासिक पत्रिका 'आलोचना' के सम्पादक-मण्डल में आप कई वर्ष तक रहे। आलोचना-क्षेत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त और विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में पाठ्यक्रमों में स्वीकृत आपके 'साहित्य-विवेचन' और 'साहित्य-विवेचन के सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। आपके कई ग्रन्थों पर राज्य-सरकारों द्वारा पुरस्कार व सम्मान भी प्राप्त हो चुका है।

सुमनजी की स्मरण-शक्ति भी अद्भुत है। अपनी मित्र मण्डली में यह 'चलते-फिरते विश्वकोष' कहे जाते हैं। इसका सबसे अच्छा प्रमाण उनके उस बत्तीस पृष्ठों में मुद्रित अभिभाषण से मिलता है, जो उन्होंने ४ नवम्बर, १९६३ को 'बिहार राज्य द्वादश आर्य महासम्मेलन' पटना के अन्तर्गत आयोजित कवि-सम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष के रूप में दिया था। इस अभिभाषण के तैयार किये जाने की पृष्ठभूमि बड़ी मनोरंजक है। सुमनजी को ३० अक्तूबर को पटना से तार मिला कि ४ नवम्बर, १९६३, सोमवार को आयोजित कवि-सम्मेलन के आप अध्यक्ष चुने गए हैं और आप अपना अभिभाषण लिखकर ले आएँ, यहाँ आते ही प्रेस में दे दिया जाएगा ताकि ४ नवम्बर को वह सम्मेलन में वितरित हो सके। इन तीन दिनों में दिल्ली से पटना की यात्रा, अभिभाषण की तैयारी और उसका मुद्रण—सारी ही असम्भवप्राय परिस्थिति थी। सुमनजी के 'चलते-फिरते विश्वकोष' के गुण ने ही इस धर्म-संकट में उनका साथ दिया। १ नवम्बर को रात को ९ बजे दिल्ली में फर्स्ट क्लास में पटना के लिए जब वह चढ़े तो तत्काल भाषण लिखने बैठ बैठ गए। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि साक्षात् सरस्वती ही उनकी लेखनी में अवतरित हो गई है। क्योंकि इस यात्रा की तैयारी उन्हें एक दिन में ही करनी पड़ी, इसलिए किसी सन्दर्भ-ग्रन्थ को साथ ले जाने का समय ही कहाँ था! पढ़ने का तो सवाल ही नहीं उठता। बस, अपनी स्मृतिशक्ति के आधार पर ही दिल्ली से लेकर मुगलसराय तक वे, बिना एक क्षण भी विश्राम किये, लगातार लिखते ही रहे। अगले दिन दोपहर १ बजे के करीब जब गाड़ी मुगलसराय पहुँची तब वे अपना सारा अभिभाषण लिख चुके थे। सन्ध्या ६ बजे के लगभग पटना पहुँचते ही यह अभिभाषण प्रेस में दे दिया गया और ४ नवम्बर को ठीक समय पर मुद्रित होकर वह सम्मेलन में वितरित हो सका।

क्योंकि यह अभिभाषण आर्य महासम्मेलन में पढ़ा जाना था, इसलिए इसका केन्द्र बिन्दु यही था कि हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार में आर्यसमाज ने क्या योगदान दिया है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द गुजरात प्रान्त के होते हुए भी भारत में उस समय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी भाषा में अपने सारे ग्रन्थ लिखे और क्रियात्मक रूप से हिन्दी का प्रचार किया। आर्यसमाज ने अपने आचार्य के आदेश का पालन करते हुए हिन्दी के प्रचार और साहित्य-निर्माण में जो योगदान दिया है, वह भी बड़ा असाधारण और उज्ज्वल है। सुमनजी ने अपने इस अभिभाषण में अपनी स्मृति के आधार पर ही, कई ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण, तथ्य और आँकड़े दिये हैं जो आज

के पाठकों के लिए सचमुच चौंका देने वाले हैं। एक छोटी-सी पुस्तिका के रूप में यह अभिभाषण प्रचुर ठोस सन्दर्भ-सामग्री से आपूरित है और एक जेबी पृष्ठभूमि का काम दे सकता है। सुमनजी के इस भाषण की देश के अनेक साहित्यकारों एवं मनीषियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

व्यक्तिगत जीवन में सुमनजी जहाँ सहृदय, संवेदनशील, मित्र धर्म के पालक, निश्छल और निष्कपट वृत्ति के हैं, वहाँ आत्म सम्मान की रक्षा के लिए भी वे बड़े-से बड़े सांसारिक व भौतिक लाभ को लात मार देने वाले हैं। एक छोटी-सी घटना याद आ रही है। १९५३ में मैं दिल्ली के दैनिक 'जनसत्ता' में सह-सम्पादक था। प्रायः सबसे परिचित होने के कारण सुमनजी का वहाँ काफी आना-जाना था। उन दिनों स्वर्गीय प० इन्द्रजी प्रधान सम्पादक थे। सुमनजी एक प्रकार से उनके प्रिय शिष्यों की तरह ही थे। एक ऐसा अवसर आया जब पंडितजी ने अपने आत्मसम्मान को अक्षुण्ण रखने के लिए 'जनसत्ता' से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद स्वर्गीय वैंकटेशनारायण तिवारी संसद्-सदस्य उसके प्रधान सम्पादक भी नियुक्त हुए। अपने युवाकाल में वे हिन्दी के कुछ मासिक व साप्ताहिक पत्रों के सम्पादक भी रहे थे। राजनीति में पड़ जाने के कारण वे साहित्य क्षेत्र की गतिविधियों से कटे हुए थे। अनुभव एकदम शून्य था। इसका प्रमाण उस समय मिला जबकि उन्होंने एक दिन सुमनजी के साथ कुछ ऐसा व्यवहार किया जो आपत्तिजनक था।

जिन दिनों श्री तिवारी ने कार्य-भार सँभाला था, उन दिनों हिन्दी की नई पीढ़ी के कवियों के सम्बन्ध में श्री सुमनजी की 'नई चेतना के प्रतीक' नामक लेखमाला 'जनसत्ता' में प्रकाशित हो रही थी। श्री तिवारीजी और सुमनजी में, किन कवियों को इस लेखमाला में रखा जाय और किनको नहीं, इस बात पर भयंकर मतभेद हो गया। सुमनजी यह कहकर कार्यालय से उठ गए कि यदि यह लेखमाला छपेगी तो वही कवि इसमें समाविष्ट किये जाएँगे, जिन्हें मैं चाहूँगा, अन्यथा यह नहीं छपेगी। और हुआ भी वही, सुमनजी ने आगे उस क्रम को वहीं रोक दिया। तिवारीजी ने कुछ ऐसे स्थानीय तथाकथित नाम-लिप्सु कवियों के भड़काने पर ही यह व्यवहार उनसे किया था, जो उस लेखमाला में अपना नाम समाविष्ट कराने के लिए उतावले हो रहे थे।

उस दिन के बाद से वे कभी 'जनसत्ता' के कार्यालय में नहीं गये। बाद में तिवारीजी को अपनी भूल मालूम हुई और उन्होंने कुछ साँझे मित्रों द्वारा खेद प्रकट करते हुए सुमनजी को कार्यालय में आमंत्रित भी किया, पर वे अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए। अब वे पिछले दस वर्षों में साहित्य अकादेमी में हैं।

इस प्रकार सुमनजी, वस्तुतः हिन्दी-जगत् में 'पुरानों' और 'नयों' के बीच एक प्रिय पर दृढ़ सेतु-तुल्य हैं। इसी ११ सितम्बर को वे जीवन के इक्यानवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। मंगलमय भगवान् इस राष्ट्र-सेवक और हिन्दीसेवी को दीर्घायुष्य प्रदान करें, जिससे वे और भी तन्मयता तथा निष्ठा से राष्ट्र-भारती की सेवा कर सकें।

६/६२५१ देवनगर,
करौल बाग, नई दिल्ली ५

निर्बन्ध प्रेम के उत्स

ठाकुर श्रीनाथसिंह

यदि आप कवि अथवा लेखक हैं या हिन्दी भाषा और साहित्य से प्रेम रखते है तो आपकी जबान पर श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का नाम आये बिना नही रह सकता। और यदि आपको कभी दिल्ली जाने का अवसर मिले तो वहाँ की साहित्यिक गोष्ठियो मे आपको श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' अवश्य दिखलाई पड जायेंगे। और भले ही किसी और का ध्यान आपकी तरफ न जाय परन्तु श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' आपको ढूँढ ही लेंगे और राजधानी मे आपके जीवन को वे कुछ ऐसा बना देंगे कि आपका अकेलेपन का भान जाता रहेगा।

यह बात मै स्वय अपने अनुभव से लिख रहा हूँ। कोई छ वर्ष पहले की बात है, एक सरकारी नौकरी के सिलसिले मे मुझे दिल्ली जाना पडा। कार्य-भार सँभालने के पश्चात् एक दिन मैं अपने दफ्तर मे बैठा हुआ था कि सहसा टेलीफोन की घंटी बज उठी। मेरे एक मित्र ने रिसीवर उठा लिया। मैंने रिसीवर इस खयाल से नही उठाया कि यहाँ अपरिचित स्थान म मुझे कौन याद करेगा, परन्तु वे मित्र, जिन्होने रिसीवर उठाया था, उसे मेरे हाथ म देते हुए बोले ' लीजिये, श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' आपको पूछ रहे हैं।"

मैंने रिसीवर अपने कान मे लगाया। दूसरे सिरे से श्री क्षेमचन्द्र सुमनजी की आवाज़ आ रही थी। वे धाराप्रवाह लच्छेदार हिन्दी मे स्नेह-वृष्टि कर रहे थे। उस समय उन्होंने क्या-क्या कहा था, इसका तो मुझको अब स्मरण नही रहा, परन्तु उनका तात्पर्य यह था कि वे मुझसे शीघ्र से शीघ्र मिलना चाहते है और एक विशेष साहित्यिक विषय पर परामर्श करना चाहते है। उसी दिन मैं सुमनजी से उनके दफ्तर मे जाकर मिला।

मेरे दिल्ली जाने से पहले एक बार जब सुमनजी यहाँ, इलाहाबाद मे, पधारे थे, तब उन्हे मेरे दो एक साहित्यिक मित्रों से यह ज्ञात हुआ था कि मैं बेकार-सा हूँ। उन्होने उनसे मेरे पास सन्देश भिजवाया था कि मैं अपनी साहित्यिक रचनाएँ, जो भी मेरे पास हो, छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप म सगृहीत करके उनके पास भेज दूं। वे तत्काल उन्हे प्रकाशित करवा देंगे। यह सिलसिला जारी रहेगा और मेरा काम चलता रहेगा। ऐसी एक पुस्तक मैंने सुमनजी के पास भेजी भी थी। शायद वह बच्चों की कविताओं की एक छोटी सी पुस्तक थी और नाम था 'मीठी तानें'।

दिल्ली मे भेंट होने पर सुमनजी मुझे दरियागंज मे उस नवयुवक और सर्वथा नवीन प्रकाशक के पास ले गए जिसने 'मीठी तानें' प्रकाशित की थी। उसने मुझे उसी दम एक खासी रकम दिलवाई जिससे कि मुझे दिल्ली म तकलीफ न हो। उस नवयुवक प्रकाशक ने अपने छोटे-से दफ्तर मे, सुमनजी के साथ मेरी भी, जो खातिर की, मुझे

आज तक भूली नहीं है। इस घटना का जिक्र मैं केवल यह दर्शाने के लिए कर रहा हूँ कि सुमनजी के हृदय मे हिन्दी का कितना अनुराग है। वह नवयुवक प्रकाशक वसल एड कम्पनी के रघुवीरशरण बसल थे। सुमनजी प्रत्येक हिन्दी-प्रकाशक को वे सलाह देने को तैयार रहते है कि वे क्या प्रकाशित करे, और क्या न करे। और नये प्रकाशको को ऐसी सहायता और प्रोत्साहन देने को तैयार रहते है कि उनके कारबार का विस्तार हो और इस प्रकार हिन्दी के अभ्युदय का एक और द्वार खुले।

सुमनजी की बडी इच्छा थी कि किसी दिन मैं उनके घर पर पहुँचकर उनके साथ कुछ क्षण बिताऊँ और भोजन करूँ। इसका भी एक अवसर आया। उन दिनो वे हिन्दी कवयित्रियो के प्रेमगीतो का सग्रह करने मे सलग्न थे। इस सग्रह मे वे श्रीमती महादेवी वर्मा से लेकर आज तक की कवयित्रियो के प्रेमगीत उनके चित्रो के साथ प्रकाशित करना चाहते थे। स्त्रियो के प्रेम-गीत और फिर उनके चित्र प्राप्त करना कोई सहज काम न था, तथापि सुमनजी इस कार्य मे पूर्ण रूप से सफल हुए। हिन्दी की एक कवयित्री बहन ने, जो दिल्ली मे पधारी थी और मेरे पडोस मे ही ठहरी थी, जब यह सुना कि मैं श्री सुमनजी से मिलने उनके निवास पर जाना चाहता हूँ तो वे भी मेरे साथ हो ली। सुमनजी के बताये मार्ग-निर्देशन के अनुसार हम दोनो 'बस' से सुमनजी के निवास-स्थान के लिए चल पडे। नई दिल्ली से पुरानी दिल्ली होते हुए यमुना का पुल पार करके हम शाहदरा पहुँचे।

शाहदरा मे भी दूर 'दिलशाद कॉलोनी' के नाम से एक नया नगर आबाद हुआ है, इसीमे श्री सुमनजी रहते है और अपने निवास का नाम उन्होने अजय-निवास, सभवत अपने पुत्र के नाम पर, रखा है। इस नई बस्ती के प्राय सभी व्यक्ति सुमनजी को उनके मृदु स्वभाव एव व्यवहार के कारण जानते हैं। पूछने पर एक सज्जन ने एक दो-मजिले मकान की ओर इशारा करके कहा, "वह ऊँचा मकान, जिसमे टेलीफोन लगा है, वही सुमनजी का मकान है।" हम को फिर वहाँ पहुँचने मे कठिनाई नही हुई। सुमनजी ने प्रेमपूर्वक हमारा स्वागत किया। वे हमे ऊपर की मजिल मे ले गए। अच्छा-खासा कमरा, किताबो से भरी ऊँची आलमारियो से युक्त, बीच मे बैठने और अध्ययन के लिए यथेष्ट स्थान, खिडकियो से चारो तरफ फैली हुई हरीतिमा का दृश्य, सुमनजी के साथ उनके अध्ययन-कक्ष मे हमने लगभग सारा दिन बिताया और उनके साथ नीचे की मजिल मे आकर सुस्वादु भोजन किया। यहाँ हमे सुमनजी की लेख और सपादन-प्रणाली को बहुत निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वे अपनी सभी चीजे, सभी प्रकार के पत्र-व्यवहार व्यवस्थित ढग से सुन्दर फाइलो मे रखते है। और किसी वस्तु के खोजने मे उन्हे कोई देर नही लगती।

वे इस सुदूर कॉलोनी से राजधानी मे प्रतिदिन दफ्तर के समय जाते हैं और शाम को दफ्तर बन्द हो जाने पर साहित्यिक और सामाजिक समारोहो मे भाग लेते हैं। लेखको और प्रकाशको से मिलते-जुलते हैं। हर एक की समस्याएँ सुनते हैं और स्वजन की तरह

उन्हे सुलझाने की चेष्टा करते हैं। स्पष्ट है कि वे काफी रात-चढे घर पहुँचते होंगे।

जिस रोज मैं दिल्ली से चलने लगा, हिन्दी की कवयित्री श्रीमती लक्ष्मी त्रिपाठी ने मुझसे कहा, "अभी-अभी श्री सुमनजी का टेलीफोन आया था, सम्भवत आपकी पुस्तक, जो उन्होंने किसी प्रकाशक को दिलवाई थी, काफी मात्रा म बिक गई है और सुमनजी आपको कुछ और रुपया दिलवाना चाहते हैं। आप उनसे आज ही मिल लीजिए।" उस समय मुझे अधिक अवकाश न था और जो कुछ मुझे मिल गया था उसीसे मुझको सतोष था, तथापि सुमनजी के मृदु और स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व की इस घटना स मेरे मन पर एक ऐसी छाप पडी जो सदैव अमिट रहेगी। उनकी इक्यावनवी वर्षगाँठ के उपलक्ष्य म मैं उन्हे हार्दिक बधाई देता हूँ और उनके लिए दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

५२८, सुभाषनगर
इलाहाबाद

मेरे हाथीखाने वाले मित्र

ठाकुर राजबहादुरसिंह

साहित्यकार श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से मेरा परिचय पहले मानसिक रूप मे तब हुआ था जब वे अमेठी रियासत से प्रकाशित होने वाले मासिक 'मनस्वी' के सम्पादक थे। पीछे प्रत्यक्ष मुलाकात बडे नाटकीय ढग मे फरवरी, १९४६ मे हुई। वे तब सरकारी चगुल म नही फँसे थे और गोल मार्केट के पास मेरे एक पुराने मित्र और सरकारी स्टेनो महावीरप्रसाद शर्मा के पास रहते थे। एक दिन शर्मा जी के पास बम्बई से आया हुआ मेरा पत्र देखकर सुमनजी ने उनसे पूछ लिया—भई, यह तो किसी साहित्यिक का लिखा पत्र दीखता है, तुम्हारे पास कैसे ?

शर्माजी ने बीच ही म बात काटकर कहा—क्या आप अपने को ही साहित्यिक समझते हैं ? मैं क्या असाहित्यिक हूँ ? मेरे तो ये १९२४ से ही मित्र रहे हैं।

सुमनजी ने देखा और पढा तो उन्हे लगा कि यह उनके जाने-माने राजबहादुरसिंह का पत्र था, इसलिए उन्होने मुझे पत्र लिखा। यह बात द्वितीय महायुद्ध के दिनो की है।

उसके बाद जब मैं स्थायी रूप से दिल्ली आया तो सयोग ऐसा हुआ कि मुझे सुमन जी के सान्निध्य म ही रहने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। उन दिनो व पहाडी धीरज के हाथीखाने वाले एक मकान म रहते थे और वही एक ऊपर का कमरा उन्होने मुझे भी दे दिया था। इस प्रकार हम दोनो 'हाथी खाने वाले मित्र' बन गए।

मुझे वहाँ सुमनजी की साहित्यिक प्रतिभा को निकट से देखने का अवसर मिला। वे कभी तो 'फ्री लांसिग' करने और कभी किसी प्रकाशक के उत्पादन सचालक अथवा प्रेस के व्यवस्थापन का काम, किसी भी हालत मे उन्होंने अपना झण्डा झुकने नही दिया।

मुझे यह बात पहले से मालूम थी कि सुमनजी अपने स्वतन्त्र विचारो के कारण ब्रिटिश सरकार के कारागार मे निवास कर चुके है और उत्तरप्रदेश के तत्कालीन नेता श्री श्रीप्रकाश का सहयोग और सहायता प्राप्त करके हमारे प्रदेश के उच्चतम राजनीतिक सूत्रा मे सम्बद्ध रह चुके है। दिल्ली म उनके निकट रहकर मैंने उनकी वह कर्मठता प्रत्यक्ष रूप मे देखी, जिसके कारण वे राजनीतिक और साहित्यक क्षेत्र म विख्यात हुए।

सुमनजी ने अपने स्वतन्त्र विचारो के कारण कभी रुपये-पैसे की कमी—आर्थिक तगी की भी परवाह नही की, फिर भी मैं कहूँगा कि उन्होने अपनी सात्त्विक लेखनी और मृदु स्वभाव के कारण अन्य कितने ही खुराफाती साहित्यिको की अपेक्षा यश और धन का अधिक अर्जन किया। आज शाहदरा के निकट दिलशाद कॉलोनी मे उनका अपना मकान (अजय निवास) है और उनके पास एक ऐसी प्रशस्त लाइब्रेरी है जो बडे-बडे साहित्यिका के लिए ही नही, धनाढ्यो के लिए भी प्रतिस्पर्धा की चीज है।

मैं यह पहले लिख चुका हूँ कि सुमनजी ने आजादी के आन्दोलन मे आगे बढ चढकर काम किया था और अपने प्रान्त (उत्तर-प्रदेश) की राजनीति मे उनका ऐसा ऊँचा स्थान बन गया था कि उनके बन्दीगृह म होने क समय भी उत्तर-प्रदेश काग्रेस कमेटी के तत्कालीन अध्यक्ष श्री श्रीप्रकाशजी ने मेरठ आकर उनसे मिलने और बातचीत करने के साथ ही उनकी यथोचित सहायता भी की थी।

सुमनजी की साहित्यिक सेवाओ के सम्बन्ध मे इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि उन्होने कितनी ही पद्य-रचनाओ के अतिरिक्त विभिन्न विषया—जीवनी, राजनीति, समीक्षा, सस्मरण आदि पर पचास से अधिक पुस्तकें लिखी हैं जिनका सर्वत्र स्वागत हुआ है और विभिन्न प्रदेशो के साहित्यिका और साहित्य-सस्थाओ ने उन्हें अपने यहाँ बुलाकर सम्मानित भी किया है। सुमनजी ने ऐसे कितने ही कवि-सम्मेलना और गोष्ठिया का सभापतित्व किया है जिनकी गणना शायद वे स्वय भी न कर सकेंगे। दिल्ली के साहित्यिका ने इसीलिए उन्हें 'आचार्य सुमन' कहना शुरू कर दिया है

सुमनजी मे वैयक्तिक आकर्षण इतना है कि १९५० म ससद् का अनुवाद-कार्य छोडकर जब मैं 'नवभारत टाइम्स' का बम्बई सस्करण निकालने गया तो उन्हे एक दिन भी नही भुला सका और दिल्ली से आने जाने वाला से उनके हाल चाल बराबर पूछता रहा। एक बार ता १९५५ की जमुना की भीषण बाढ मे जब उनका मकान डूब गया और वे उसकी छत पर ही रुके रहे तो किसी स्थानीय पत्र मे उनका उसी दशा मे लिया गया चित्र, पत्रो म प्रकाशित हुआ था। बम्बई के साहित्यिको मे उसकी बडी चर्चा रही और मेरे मित्रो ने तो यहाँ तक कहा था कि, "आपके 'हाथीखाने वाले मित्र' तो आजकल हाथी-

रूपीअपने मकान की पीठ (छत) पर ही निवास कर रहे हैं, क्योंकि नीचे तो पानी ही पानी भरा है।

१६५८ मे पुन बम्बई से दिल्ली आने पर मैंने समझा था कि एक बार फिर मुझे सुमनजी का सान्निध्य प्राप्त होगा, और इसी विचार मे मैंने आते ही उनके निवास-स्थान के निकट दद्दा (स्व० राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त) के भू-खण्ड मे लगा हुआ एक प्लाट खरीद लिया था किन्तु अनेक कारणो मे, जिसमे सुमनजी का 'मदखूलये गवरमेंट' होना भी एक है, वह बात बनते-बनते रह गई।

जो हो, सुमनजी को तो अपने सारे जीवन की साहित्यिक तपस्या का फल मिल ही गया और आज वे देश की सबसे बडी सरकारी साहित्यिक सस्था साहित्य अकादेमी के प्रकाशन-विभाग से सम्बद्ध हैं। हां, राजनीतिक दृष्टि से वे सफल नही हुए, क्योंकि उसके लिए कार्य-कुशलता के साथ-साथ जितनी मक्कारी और फरेब अपेक्षित है उसे कभी प्राप्त नही कर सकेंगे।

'गाधी-मार्ग'
राजघाट-सन्निधि, नई दिल्ली १

मेरठ के ज्ञान-प्रत्यूष की एक सुखद किरण

श्री विश्वम्भरसहाय प्रेमी

साहित्य, समाज और सस्कृति के पोषक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' मेरे तीस वर्ष पुराने स्नेही मित्रो मे से हैं। मैंने उनके उदार व्यक्तित्व और स्नेह का समय-समय पर यथेष्ट लाभ उठाया है। मेरठ के साहित्यिक मच पर उनके विचारो को सुनने का मुझे अनेक बार अवसर मिला है। मेरठ के कई कवि-सम्मेलनों मे, जिनका मैं सयोजक था, सुमनजी ने कविता पाठ किया। कविता के सम्बन्ध मे इतना उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ कि मैंने उनकी कविता प्रथम बार ज्वालापुर महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर सुनी थी। गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के उत्सवो पर मैं १६२१ मे जाता रहा हूँ। उमी समय मे मेरा परिचय आचार्य नरदेवजी शास्त्री से हुआ था। उनका मेरे सारे परिवार के प्रति बडा प्रेम था। आग्रह करके वे मुझे महाविद्यालय के उत्सव पर बुलाते थे। मुझे सन् याद नही, परन्तु इतना याद है कि आचार्य नरदेवजी शास्त्री ने अपनी कुटिया मे श्री सुमनजी के बारे मे कहा था कि यह महाविद्यालय का ब्रह्मचारी बडी अच्छी कविता करता है। सम्भवत आचार्यजी सुमनजी की काव्य-प्रतिभा पर ही नही, वरन्

उनके अन्य गुणो पर भी मुग्ध थे।

एक बार की बात है कि महाविद्यालय के उत्सव पर कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया। आचार्य नरदेवजी के पास मैं भी बैठा हुआ। जिस समय कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष का नाम लिया जाना था, तभी सुमनजी ने मेरा नाम अध्यक्ष के लिए प्रस्तुत कर दिया। मैं बड़ असमजस मे पड़ गया। परिचय देते समय सुमनजी ने अपने ऐसे उद्गार प्रकट कर दिए जिनसे प्रकट होता था कि मै उनकी बात को चुपचाप स्वीकार कर लूं। कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर जब मैंने उनसे कहा कि आप क्यों अध्यक्ष नही बने, आप तो एक अच्छे कवि भी है, तो कहने लगे—हम आपका भी तो सम्मान करना था। मैं तो यहाँ का एक सदस्य हूँ ही।

इस घटना को प्रस्तुत करने का मेरा आशय यही है कि सुमनजी अपने स्नेही जन का बड़ा आदर करते हैं और उनके प्रति अपना प्रेम व्यक्त करने मे कभी पीछे नही रहते।

बहुत वर्ष पुरानी बात है कि १६३२ मे मैं 'तपोभूमि' मासिक पत्रिका का सम्पादन करता था। उस पत्रिका मे श्री अलगूरायजी शास्त्री की 'साकेत' की आलोचना प्रकाशित होती थी। आलोचना लगातार दस मास तक प्रकाशित होती रही। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी जैसे महान् कवि के 'साकेत' की आलोचना प्रकाशित करना मेरे लिए काफी कठिन काम था। आलोचना को सुमनजी भी पढते थे। आज सुमनजी उस पर मुग्ध है। वे इस आलोचना की कई बार चर्चा भी कर चुके है। मैं सोचता हूँ कि यह सब इसलिए ही है कि वे अपने साथियो को आगे बढता देखना चाहते थे।

सुमनजी से जिस समय मेरा प्रथम परिचय हुआ तो कहने लगे—आप तो मेरठ के है ही, लेकिन मैं भी आपके जिले का हूँ। उस समय सुमनजी पजाब मे रहते थे। मैंने उनसे उनका पूरा पता मालूम किया। जब उन्होने बताया कि मै हापुड के समीप बाबूगढ का रहने वाला हूँ, तो मैंने कहा, तब आप मेरे से अधिक दूर नही क्योंकि हापुड मे मेरे परिवार के व्यक्ति रहते है।

उस समय मुझे इस बात पर विशेष गर्व हुआ कि सुमनजी जैसे युवक हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि के लिए कृतसकल्प है, मुझे इस बात की और भी अधिक प्रसन्नता हुई कि सुमनजी अपने देश की आज़ादी के लिए सब-कुछ न्योछावर कर देने वाले व्यक्तियो म से है।

सुमनजी ने हिन्दी के प्रसार और साहित्य की अभिवृद्धि के लिए जो कार्य किया है, उसमे उनका एक कार्य यह भी है कि वे हिन्दी और साहित्य के कार्य मे लगे मित्रो को प्रोत्साहन और समुचित सम्मान देने मे कभी नही चूकते। मैं यद्यपि गत चालीस वर्षों से हिन्दी की सेवा मे लगा हूँ परन्तु मेरी अपेक्षा वे अपने मेरठ जिले के पुराने और नवीन साहित्यकारो से अधिक परिचित हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि सुमनजी चाहते है देवनागरी की जन्म स्थली, खडी बोली के जनपद मेरठ, का नाम हिन्दी के कार्य की दृष्टि

से उज्ज्वल बना रहे। जब वे देवनागरी के प्रबल समर्थक प० गौरीदत्तजी की चर्चा करते है तब ऐसा लगता है कि सुमनजी सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की लिपि देवनागरी कर देना चाहते है, स्व० प० तुलसीराम स्वामी और स्व० प० घासीराम जी की चर्चा करके वे यह प्रकट कर देना चाहते है कि मेरठ की भूमि वैदिक साहित्य की रचना के लिए बडी उर्वर रही है। स्व० उमरावसिंह कारुणिक और स्व० मुरारीशरण मागलिक की चर्चा करके वे इस बात का स्मरण कराते है कि मेरठ मे पत्रकारिता और साहित्य-सृजन म भी कमी नही रही है। इन दो महानुभावो ने सन् १९१८ मे 'ललिता' मासिक पत्रिका निकालकर साहित्यिक जगत् मे बडी ख्याति प्राप्त की थी।

कविता की दृष्टि से वे मेरठ को कवियो की भूमि मानते हैं। लोक-साहित्य की रचना म मेरठ ने बडी ख्याति प्राप्त की। कवि शकरदास, कवि बस्तीदास, घीमाराम भटीपुरा निवासी आदि लोक-कवियो ने जो साहित्य लिखा, उसे सुमनजी हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि बताते हैं। स्व० कवि हरिशरण 'मराल' के काव्य पर सुमनजी आज भी मुग्ध हैं। वे चाहते है कि उनकी समस्त रचनाओ का एक सुन्दर सस्करण प्रकाशित हो। आधुनिक कवियो म वे श्री रघुवीरशरण 'मित्र' की रचनाओं का बडा सम्मान करते है। कवयित्रियो मे सुमनजी स्वर्गीया श्रीमती होमवतीजी को बडा आदर देते है। इसी के साथ-साथ वे श्रीमती कमला चौधरी, श्रीमती सावित्री रस्तोगी, श्रीमती मधु अग्रवाल की रचनाओ की बडी प्रशसा करते हैं। उन्होने अपनी 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियो के प्रेम गीत नामक पुस्तक मे इन सबको बडा सम्मान दिया है। उनके हृदय मे भारत के सुविख्यात नाटककार स्व० विश्वम्भरसहाय 'व्याकुल' के प्रति अगाध प्रेम है। व्याकुलजी ने 'बुद्धदेव नाटक की रचना करके और उसे रगमच पर लाकर नाटक-जगत् मे एक महान् क्रान्ति कर दी थी।

भारतीय सस्कृति के प्रकाण्ड पडित, वैदिक साहित्य के निर्माता एव पुरातत्त्व-वेत्ता स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भले ही आज वाराणसी के माने जाते हो परन्तु उनकी जन्मभूमि भी मेरठ जनपद मे ही है। वे पिलखुवा के निकट ग्राम खेडा के रहने वाले थे।

सुमनजी का कहना है कि मेरठ को इन सब पर तो गर्व है ही, परन्तु आज की नई पीढी भी अपने इस जनपद के गौरव की वृद्धि मे सतत अग्रसर है। मेरठ जिले के लगभग एक दर्जन साहित्यकार इस समय बम्बई और दिल्ली के पत्रो एव पत्रिकाओं के सम्पादन मे लगे है। उन्होने अपने सम्पादन-कार्य मे बडी ख्याति प्राप्त की है। इसी प्रकार कितने ही ऐसे व्यक्ति है जो पुस्तक-प्रकाशन के कार्य द्वारा मेरठ के नाम का उज्ज्वल कर रहे हैं।

मेरठ के अनेक व्यक्ति चलचित्रो म भी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। कितने ही व्यक्ति इस समय फिल्म-निर्माता है। प० मुखराम शर्मा ने फिल्म जगत् को अपने अनेक कथानक देकर मेरठ के नाम को बडा उज्ज्वल किया है। सुमनजी इन सबका बडे आदर

से उल्लेख करते हैं। उनको कवि 'दीपक' पर गर्व है जिनके गीतों ने पृथ्वीराज-जैसे विख्यात नाटककार के नाटकों एवं देश की अनेक फिल्मों में स्थान पाया।

सुमनजी मेरठ की चर्चा में श्रद्धेय डॉ० सीतारामजी के नाम का भी उल्लेख करते रहते हैं। डॉ० सीतारामजी ने मेरठ जिले को जो सम्मान प्रदान किया है वह इतिहास के पृष्ठों में सदा ही अंकित रहेगा।

यहाँ मैंने सुमनजी के परिचय के साथ साथ मेरठ के अनेक विद्वानों, साहित्यकारों और कलाकारों का कुछ उल्लेख किया है। इसका एक कारण यही है कि सुमनजी मेरठ के प्राचीन गौरव को सुरक्षित रखना चाहते हैं। इसी के साथ वे इस पीढ़ी के साहित्यकारों, कवियों, पत्रकारों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी सम्मान देना चाहते हैं। परन्तु मैं इसके साथ इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि सुमनजी मेरठ के एक उज्ज्वल रत्न हैं। उन पर न केवल मेरठ को वरन आज सारे भारत को गर्व है। सुमनजी भले ही दिलशाद कॉलोनी शाहदरा में जा बसे हैं परन्तु वे मेरठ के ज्ञान प्रदीप की एक सुखद किरण हैं, जिससे मेरठ जनपद प्रकाशमान है।

सुमनजी एक प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार हैं। वे अनेक शैक्षणिक, सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बन्ध रखते हैं। हिन्दी भाषा के प्रचार में लगे व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में रहने का उन्हें बराबर अवसर मिलता रहा है। यही कारण है कि उनका नाम भारत के प्रत्येक क्षेत्र के साहित्यकारों में आदर के साथ लिया जाता है। मैं उनके गुणों पर मुग्ध हूँ और वे मेरे काम को दृष्टि में रखते हुए मुझे सम्मान देने में कभी कमी नहीं करते। मैं उनकी अर्धशती के अभिनन्दन के पुण्यावसर पर उन्हें अपनी हृदयगत शुभकामनाएँ अर्पित करता हूँ। परमात्मा उन्हें चिरायु एवं सुखी सम्पन्न करें।

प्रेमी प्रेस, सुभाष बाजार
मेरठ

अमेठी के 'सम्पादकजी'

ठाकुर रामसुमेरसिंह

अमेठी में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का आगमन एक अप्रत्याशित घटना थी। सुमनजी जितने ही सीधे सादे थे, उतने ही धुन के पक्के तथा दृढ़ निश्चयी भी। अमेठी का आठ मास का उनका प्रवास एक ऐसी घटना है, जो भूली नहीं जा सकती। वैसे भी सुमनजी की एक मुलाकात को कोई सहज ही नहीं भुला सकता। फिर आठ मास

की वह स्मृति तो अब निधि के रूप मे सुरक्षित है। आज मैं अपने जीवन के सध्याकाल मे जब अतीत की ओर दृष्टिपात करता हूँ, तो जिन महामानवो से मेरा सम्पर्क हुआ उनकी बाते निराली ही लगती है। एसे महानुभावो मे एक ओर पूज्य श्री भाईजी (श्री हनुमान-प्रसादजी पोद्दार), श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्री जयदयालजी गोयन्दका तथा स्वामी अखण्डानन्द जी है, तो दूसरी ओर श्री नन्ददुलारे वाजपेयी प्रो० पी० ए० वाडिया तथा श्री वी० सजीवाराव है। इन महामानवो के बीच म श्री सुमनजी अपने सौरभ से एक अनुपम अनु-भूति प्रदान करते है।

अमेठी प्रवास के वे दिन भुलाये नही भूलते। नित्य-प्रति प्रात काल हम लोग साथ ही शौच-आदि से निवृत्त होने सुदूर जगल मे जाया करते थे। उसके बाद वापस लौटते हुए बाग म पके आम एकत्र किये जाते थे। अधिक-से-अधिक आम सुमनजी के कुरते की जेबो मे ही शरण पाते थ। परन्तु हाथ-मुँह धोने के पश्चात् अधिकाश अच्छे आम मेरे हिस्से मे ही आ जाते थे। आम के मौसम म प्राय प्रतिदिन ही हमारा यह कार्यक्रम रहा करता था। सुमनजी को कभी इससे कोई शिकायत नही हुई। वे स्वभाव से बाहर-भीतर एक-समान है। व्यग्य और विनोद से धनी होते हुए भी वे अपने ऊपर किये हुए विनोद को सहर्ष स्वीकार कर लते है। यह उनके व्यक्तित्व की उदारता है।

एक दिन मैंने उनसे कहा कि 'कल्याण के लिए कोई कविता लिखिये। उन्होने तुरन्त ही साधारण-से कागज पर एक कविता लिख दी। इससे भी अधिक आश्चर्य मुझे तब हुआ, जब मेरी भेजी हुई सुमनजी की वह कविता 'कल्याण' के दूसरे ही अक मे प्रकाशित हो गई।

एक बार स्थानीय कवि-सम्मेलन हुआ। सम्मेलन पर सुमनजी आकाश के समान छाये रह। जनता का पहली बार इस गुदडी के लाल के दर्शन हुए। इस सम्मेलन मे सुमनजी ने कवियो पर भी व्यग्य किया कि कवि-सम्मेलन मे वही सफल हो सकता है, जिसमे कविता सुनाने का ढग हो।

सुमनजी भी अमेठी को सहज ही नही भूल सकते। रात्रि मे श्रीमान् राजा रणञ्जयसिहजी के आह्वान पर चन्द्रमा की शीतल ज्योत्स्ना मे टेनिस का खेल कैसे भूला जा सकता है! टेनिस के खेल मे सुमनजी की प्रतिभा ने कभी उनका साथ नहीं दिया। सुमनजी का जीवन सघर्षमय रहा है, जैसा अधिकाश हिन्दी-साहित्य-सेवियो का हुआ करता है। उनका व्यवहार कबीर की इन पक्तियो के अधिक निकट है

कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होइ॥

भोजन मे सुमनजी को अरहर की दाल विशेष प्रिय थी। उसके बनाने की विधियो पर भी वे प्रकाश डाला करते थे। जैसे अधपकी दाल म दही मिलाने पर, तो वे भोजन को चौबेजी लोगो के चाव से खाते थे।

हम हिन्दी-भाषी अपने साहित्यिकों का मूल्यांकन उनके अभाव में करते हैं। जैसे हम केवल मुर्दा-परस्त हों ! अब समय आ गया है कि हम अपने कवियों, लेखकों, सम्पादकों तथा साहित्य-सेवियों का उनकी जीवितावस्था में मूल्यांकन करें। मेरी समझ में सुमनजी जैसे चलते-फिरते संदर्भ-कोश को अभी हिन्दी जगत् ने परखा नहीं और कदाचित् यदि परख भी लिया, तो उनका उचित मूल्यांकन और समादर नहीं कर सका।

मैंने एक बार सुमनजी को बम्बई आने के लिए आमंत्रित किया। उनका सहज और स्पष्ट उत्तर था कि अर्थाभाव के कारण वे बम्बई आने में असमर्थ हैं। यह उत्तर उस साहित्य-सेवी का है, जिसका जीवन साहित्य-सेवा के लिए उत्सर्ग है।

हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि सुमनजी शतायु होकर हिन्दी तथा मानवता की अधिक से अधिक सेवा करें और हिन्दी-जगत् ऐसे बहुमुखी साहित्य सेवियों का समुचित समादर करे, जिससे कम से कम भारत-भ्रमण में अर्थाभाव उनके मार्ग में रोड़ा बनकर न आये।

प्रधानाचार्य, हिन्दी हाईस्कूल, जोशीबाग,
कल्याण (थाना), बम्बई

कर्मनिष्ठा को समर्पित व्यक्ति

डॉ० दशरथ ओझा

क्षेमचन्द्र 'सुमन' का जीवन उन कर्मठ साहित्यकारों का प्रतिनिधित्व करता है जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के यज्ञ में यथोचित सामग्री के संग्रह का भार सहर्ष वहन किया। स्वतन्त्रता से पूर्व का भारत विदेशी शासन के कारण आर्थिक संकट की ज्वाला में जल रहा था। भारतीय संस्कृति-संरक्षण के इच्छुक एवं संस्कृत-हिन्दी से अनुराग रखने वाले परिवार निर्धनता की चक्की में पीसे जा रहे थे। उस काल में साहित्य-दर्शन के उत्साही अध्येताओं को प्रोत्साहन देने वाली संस्था एकमात्र गुरुकुल थी। सुमनजी ने उसी वातावरण में शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की जहाँ त्याग और तपस्या को वैभव व विलास से अधिक महत्त्व दिया जाता रहा।

राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में दीक्षित स्नातकों को जीविका-अर्जन के लिए जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता था, उनकी एक आकर्षक झाँकी सुमनजी के जीवन में देखने को मिलती है। उस युग की यह विशेषता थी कि अपने संकल्प की सिद्धि में जो जितने अधिक संकटों से जूझते थे, वह उतने ही अधिक आह्लाद का अनुभव करते थे। उस समय

इस बात की होड थी कि कष्ट के क्षेत्र मे कौन कितनी अधिक दौड लगा पाता है। मेरा मत है हिन्दी के ऐसे साहित्यकारों में सुमनजी सबसे आगे की पक्ति मे दौडते हुए दिखाई पडते हैं। मैं उन्हें पिछले बीस वर्षों से दिल्ली के साहित्यकारो की गोष्ठियों में देखता चला आ रहा हूँ। कदाचित् ही ऐसी कोई गोष्ठी होगी जिसमे जवाहर जाकेट-धारी सुमनजी अपने विचित्र व्यक्तित्व से चमकते हुए विद्यमान न हों। गोष्ठियो मे सुमनजी की श्वेत टोपी से सर्वत्र एक विचित्र छटा छा जाती है। सभी गोष्ठियों मे उनका किसी न किसी रूप मे योगदान अवश्य रहता है। इसका कारण यह है कि दिल्ली मे अनुभव के इतने पर्तों को खोलकर सफलता के केन्द्र पर पहुँचने वाला दूसरा कौन है? प्रूफ-रीडिंग से लेकर साहित्य अकादेमी के पुरस्कार-वितरण तक के सभी स्तरों से गुज़रने वाला दूसरा कौन व्यक्ति है? भगवान् की इनके ऊपर कृपा रही है कि इन्हें केवल हिन्दी-साहित्यकारों से ही नहीं, भारत के विभिन्न भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वानों से सम्पर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ। इनके कर्मठ जीवन की दूसरी विशेषता यह है कि आप दो विरोधी मत रखने वाले साहित्यकारो के समान रूप से कृपापात्र बन जाते हैं। दोनों वर्ग इन्हें अपना समझते हैं। इसका कारण यह है कि यह हृदय से दोनो का कल्याण चाहते हैं और साहित्य-समृद्धि के लिए दोनो को समीप लाने का प्रयास करते हैं। ससार मे यह देखा जाता है कि ऐसे प्रयास करनेवाला को दोनो वर्गों का कोपभाजन बनना पड़ता है, किन्तु सुमनजी के व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि वे अपने ऐसे प्रयासों में प्राय सफल हो जाते हैं। मेरे विचार से उनकी इस विलक्षण सफलता का रहस्य है उनका मार्दव। उनका मृदुल स्वभाव उनकी ईमानदारी मे एक क्षण के लिए भी सदेह को टिकने नहीं देता। वे अपनी सहज स्वाभाविक मैत्रीपूर्ण हँसी से सदेह के कुहासो को वेध देते हैं।

उनके कर्मठ जीवन की तीसरी विशेषता है, उनका अध्यवसाय। उनका परिश्रम देखकर लोग चकित रह जाते है। बारह-चौदह घण्टे निरन्तर अध्ययन-अध्यापन मे जुटे रहना उनकी दैनिक चर्या है। इसी का परिणाम यह है कि उनकी सम्पूर्ण सम्पादित, विरचित, अनूदित कृतियो को यदि एकत्रित किया जाय तो एक सुघड पुस्तकालय बन जाय। सुमनजी की चौथी विशेषता है कि वह सबकी सेवा का सदा ध्यान रखते हैं। कदाचित् उनके जीवन का आदर्श है -

सबकी सेवा न पराई वह अपनी ही सुख-संसृति है।

दिल्ली मे हिन्दी मे साहित्य-सभा के सक्रिय कार्यकर्त्ताओं मे सुमनजी का अग्रणीय स्थान रहा है। इन्होंने न जाने कितनी कवि-गष्ठियों मे भाग लिया, कितनो के सभापति रहे, कितनी सभाओं का आयोजन किया। सभा-सोसाइटी की स्थापना और उनके सचालन की अद्भुत क्षमता सुमनजी के कर्मठ व्यक्तित्व की पांचवी विशेषता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य के उपवन मे साहित्यिक विधा की कोई भी ऐसी लता नही जिसमे इनके प्रयास से कोई न कोई सुमन विकसित नहुआ हो। इस प्रकार

अपने कर्मठ जीवन में इन्होंने साहित्य वाटिका को सुशोभित और सुरभित करने का आजीवन प्रयास किया है। इस कारण इनका व्यक्तित्व निखर उठा है। ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि ऐसे कर्मठ व्यक्ति को दीर्घजीवी बनावें जिससे साहित्यकारों में पारस्परिक प्रेम और सौहार्द की वृद्धि हो और साहित्य उपवन उत्तरोत्तर रमणीय बनता रहे।

२, रामकिशोर रोड, दिल्ली ६

उच्चता, संकल्प और साहस-भरा व्यक्तित्व

श्री मन्मथनाथ गुप्त

साहित्यकार के रूप में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने कई ऐसे काम किये जिनके प्रति सबका ध्यान बरबस गया। विशेषकर उल्लेखनीय है उनका कवयित्रियों-सम्बन्धी ग्रन्थ और युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी हुई कविताओं का संग्रह। इन दोनों रचनाओं में उनकी सूझबूझ, मौलिकता तथा सम्पादन-कला का चमत्कार देखने में आया।

प्रथम रचना के सिलसिले में क्षेमचन्द्र 'सुमन' को जो हृदयगामी तजुर्बे प्राप्त हुए सौभाग्य से उनमें से कुछ छिटक छिटकाकर मेरे पल्ले पड गए। उन्हें पहले पहल यह तजुर्बा हुआ कि पढी-लिखी स्त्रियाँ भी भारत में उतनी स्वतन्त्र नहीं है जितनी कि समझी जाती हैं। बहुत सी कवयित्रियों ने सुमनजी से यह शिकायत की कि विवाह के बाद उनकी काव्य-रचना पर बरबस रोक लगा दी गई है। अधिकांश क्षेत्र में यह रोक केवल रचना छपाने तथा उस सम्बन्ध में सम्पादकों से पत्र-व्यवहार करने के अलावा रचना प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में भी थी। यानी पतिजी का यह कहना था कि तुम रचना ही न करो। अजीब बात है कि ऐसे पतियों में एक व्यक्ति वह भी थे, जो अपनी पत्नी के प्रति इसलिए आकर्षित हुए थे कि वह कविता करती है।

जीवन बडा विचित्र है। उसमें पता नहीं कहाँ से सोता फूटता है और कहाँ जाकर खत्म होता है। मैंने कुछ पत्रों को भी देखा जिनसे उक्त अनुभव की पुष्टि होती थी। इस सम्बन्ध में सुमनजी ने कुछ तो भूमिका में इंगित कर दिया था, पर वह अधिक खुलकर नहीं लिख सके थे। सुमनजी के लिए शायद यह अभिज्ञता उतने काम की न हो, पर कोई भी व्यक्ति चिन्तक के रूप में इस पहलू पर गहराई के साथ बिना सोचे नहीं रह सकता। विशेषकर इस ओर इसलिए भी ध्यान जाता है कि अभी हमारे एक चिन्तक श्री नीरद चौधुरी ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि भारत में कुछ ऐसी बात है कि यहाँ लोग

नई रोशनी या नये चिन्तन को बहुत धीरे-धीरे अपनाते हैं। उनका तो कहना है कि अपनाते ही नहीं हैं अपनाने का दिखावा-मात्र करते हैं। भीतर से काटो तो सब वही निकलते हैं जो उनके बाप थे। जो कुछ भी हो, क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने जो अनुभव इस सम्बन्ध में किया, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ और मैं यह मानता हूँ, और शायद सुमनजी भी मानते होंगे कि हमारे चिन्तन में, विशेषकर स्त्रियों के सम्बन्ध में चिन्तन में, आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इस सग्रह से यह समस्या जिस प्रकार मेरे सामने आई, वह मेरे जीवन का एक विशेष मुहूर्त है और इसके लिए धन्यवाद देता हूँ सुमनजी को।

करीब सभी साहित्यकारों से वैयक्तिक सतह पर परिचय होने के कारण क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने युद्ध-सम्बन्धी कविताओं का जो सग्रह प्रस्तुत किया वह बहुत सफल रहा और सबसे बड़ी बात यह है कि वह बाजार में सबसे पहले आ गया। यह उन दिनों की बात है जब चीन ने भारत पर विस्तारवादी आक्रमण किया था। इस प्रकाशन में मैंने देखा कि सुमनजी कितनी फुर्ती से काम कर सकते हैं और उनको कितनी जल्दी दूसरे साहित्यकारों का सहयोग मिल सकता है। यह उनकी व्यावहारिकता और कार्यकुशलता का ही परिणाम है कि लोग इतनी जल्दी उनका सब तरह से सहायता दे देते हैं।

क्षेमचन्द्र सुमन की एक बात और मुझे बहुत पसन्द है और वह यह कि वह गाँव-गँवई की आबहवा में रहते है और राजधानी का जीवन व्यतीत करते हैं। वैसे इसी कारण उन पर एक समय बहुत बड़ी विपत्ति आई थी। उस समय शायद यमुना में बाढ आई थी जिस कारण उनका घर पन्द्रह दिन तक पानी में घिरा रहा और उनकी बहुत-सी पुस्तकें आदि जलमग्न हो गईं। इस प्रकार जीवन के पास बने रहने से उनमें शायद वह रुखाई, जो शहर में रहने से पैदा होती है और अभद्रता के दायरे तक पहुँच जाती है, अभी नहीं आई और न आगे आयेगी। वे व्यस्त हैं, पर इतने व्यस्त नहीं कि रास्ते में किसी से रुखाई से पेश आएँ। हँसी से वह स्वागत करेंगे ही।

मैं समझता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उतना ही स्थायी और महत्वपूर्ण है जितना कि उसके दुश्मन भी मानने के लिए बाध्य होते हैं। यों तो और देशों की तरह हमारे देश में भी कुर्सीपूजक है और कुर्सी पर बैठे हुए व्यक्ति की पूजा होती है, पर कुर्सी से अलग भी व्यक्ति का एक व्यक्तित्व होता है वही असली व्यक्तित्व है। मैंने एक प्रसिद्ध साहित्यकार को जो रेडियो में किसी अच्छे पद पर थे, सेवा-निवृत्त होने के बाद यह परिताप करते हुए सुना कि मैं तो समझता था कि मुझे लोग बहुत चाहते हैं, अब तो कोई एक प्याला चाय के लिए भी नहीं पूछता। इसपर मैंने उन्हें यह कहा था कि वह तो आपकी कुर्सी की पूजा थी! आपकी पूजा तो अब शुरू होने वाली है।

अवश्य यह कहा जा सकता है कि कई व्यक्तियों का व्यक्तित्व केवल उनकी कुर्सी तक ही सीमित होता है। वे उस कुर्सी से गये कि धम्म से अख्याति के पाताल में पहुँच गए। फिर उन्हें कोई नहीं पूछता, न कोई जानता है। गत १८ साल के दिल्ली-

जीवन मे ऐसी कई मूर्तियाँ सामने आईं और चली गईं। पर मेरा यह विश्वास है कि सुमन जी का व्यक्तित्व किसी भी प्रकार उनकी कुर्सी से बँधा नही है और बहुत-से ठोस कार्यों पर, जिसमे उनकी साहित्यिक रचनाएँ भी है, उनके व्यक्तित्व का ढाँचा खडा है। मैं समझता हूँ कि ५० वर्ष की उम्र कोई इतनी उम्र नही है कि अन्तिम बात कही जा सके। इसमे सन्देह नही कि यदि कुछ व्यक्ति अपने ही उद्योगो के द्वारा बनाये हुए होते है तो उनमें सुमनजी की गिनती होगी। मैं चाहता हूँ वे दीर्घायु हो और भविष्य मे और भी ठोस तथा उपयोगी कार्य कर सके।

'आजकल', पब्लिकेशंस डिवीजन,
पुराना सचिवालय, दिल्ली ६

कल्पतरु सुमन

श्री माधव

आज यह सपने की बात मालूम होती है कि लाहौर मे हिन्दी के साहित्यकारो, पत्रकारो और प्रेमियो की एक बडी और पारिवारिक मण्डली थी। सर्वश्री उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, मोहनसिंह सेगर, डॉ० जयनाथ नलिन, अध्यापक रामेश्वर करुण, अनन्त मराल, रामकृष्ण भारती, कुमारी कचनलता सब्बरलाल, लक्ष्मीचन्द्र जैन, डॉ० एल० सी० जैन, राजेन्द्रकुमार जैन, यश, देवदत्त अटल, शकुन्तला भल्ला, उपेन्द्रनाथ अश्क, सावित्री सूरी, देवराज दिनेश, बलराज साहनी, दमयती साहनी, भीष्म साहनी, रामेश्वर 'अरुण', राणा जगबहादुरसिंह आदि उसके सदस्य थे। मण्डली प्रति सप्ताह प्राय लाजपतराय-भवन मे जमा होती थी और साहित्यिक तथा हिन्दी-समितियो का सचालन करती थी या उनको अपना पूरा सहयोग देती थी।

एक दिन उस मण्डली मे एक नई आकृति दीख पडी। खद्दर के कपडो म उसके शान्त-सौम्य रूप ने सबको आकर्षित किया। मालूम हुआ कि यह श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' है, मेरठ से आये है, दैनिक 'हिन्दी मिलाप' के सपादकीय विभाग मे प० खेमराम के सहयोगी है। धीरे-धीरे 'हिन्दी मिलाप' के कलेवर पर सुमनजी की छाप स्पष्ट होने लगी। साहित्य मे उनकी गहरी पैठ और विलक्षण प्रतिभा का सिक्का जम गया। मण्डली ने हिन्दी-साहित्य के शास्त्रीय पक्ष का भार सुमनजी को सौंप दिया। उनकी कविताएँ भी सबको मुग्ध करती रही। बाद मे वे फतहचद वीमेस कॉलेज मे अध्यापक के रूप मे भी खूब चमके। उनकी शिष्याएँ अब तक सुमनजी का स्नेह और दान भूल नहीं पाईं।

मैं समझता हूँ कि श्रीमती रजनी पनिकर को भी सुमनजी का अध्यापकत्व अब तक याद होगा। मण्डली का एक नगण्य सदस्य होने के नाते मुझे भी सुमनजी की कृपा प्राप्त हुई थी, बाद मे पत्रकार के नाते हम लोगों का सम्बन्ध और भी गहरा हो गया था। फिर हम दोनो मे एक गुप्त सम्बन्ध भी स्थापित हुआ। अब वह रहस्य पन्नों के बीच में प्रकट कर दिया जाय तो शायद सुमनजी को कोई आपत्ति न होगी।

सन् '४२ के तूफानी दिनो मे दैनिक 'विश्वबन्धु' के निस्बत रोड वाले दफ्तर मे एक सज्जन पधारे। उनके पास मेरे एक पुराने क्रान्तिकारी मित्र का पत्र था। उसमें लिखा था कि पत्रवाहक सज्जन पर पुलिस की दयादृष्टि है, इनको कही सुरक्षित कर दिया जाय। मैंने उनको ध्यान से देखा। लम्बे, स्वस्थ, सुगठित शरीर से ओज और गाभीर्य का अद्भुत समन्वय झलक रहा था। मालूम हुआ कि वे संस्कृत के विद्वान् है, नाम आचार्य दीपकर है। अकस्मात् दृष्टि उनके पैरो पर पडी और मन शका से भर गया। उनकी एक टाँग कटी हुई थी, उन्हे लकडी का सहारा लेना पडता था। प्रतीत हुआ कि इस खुली पहचान के साथ ये लाहौर मे छिपकर नही रह सकते। सोचा कि इनको प० अमरनाथ शर्मा के पास बैजनाथ (कागडा) भेज दूँगा। वहाँ पाठशाला मे विद्यार्थियो को पढाते रहेगे।

यह सब सोचकर आचार्यजी से पूछा कि आपका सामान कहाँ है? मालूम हुआ कि आर्यसमाज अनारकली मे रखा है। मैने कहा, आप वही चले जायें और बाहर न निकले। मैं शाम को आऊँगा और समुचित प्रबन्ध कर दूँगा। शाम को दफ्तर से उठकर आर्यसमाज की तरफ चला तो यह देखकर दग रह गया कि आचार्यजी अनारकली के चौराहे पर भगवानसिंह की मशहूर दूकान पर लस्सी पी रहे हैं। मैंने समझ लिया कि यह व्यक्तित्व कोई बन्धन स्वीकार नही कर सकता। मैंने इससे नाता जोडा तो यह अपने साथ मुझे भी ले जायगा। पुलिस इस सूत्र को पकडकर मेरे पुराने परिचय तक पहुँच सकती है और कानपुर के भाई जदुनाथसिंह अपनी विकट मण्डली के साथ इस समय भी मेरे प्रबन्ध में ठहरे हुए है। वे कानपुर भी गहरा खेल खेलकर आये है।

स्वीकार करना चाहिए कि मैं डर गया और पिछले पैरो लौट आया, परन्तु सुमनजी नही डरे। उन्होंने आचार्यजी को अपने मकान में ही टिका लिया। सुमनजी और भाई लेखरामजी मेलाराम रोड पर रायबहादुर लाला रामसरनदास की लालकोठी के सामने रहते थे। आचार्यजी के अनुग्रह से पुलिस ने तीन-चार दिन में ही वह मकान देख लिया और एक दिन बडे सवेरे सुमनजी तथा भाई लेखरामजी गिरफ्तार हो गए। सुमनजी के वे काम फिर भी छिपे रह गए, जो सन् '४२ की क्रान्ति के सिलसिले मे गुप्त रूप से करते रहते थे, इसलिए वे सस्ते ही छूट गए, परन्तु मेरे हृदय मे उनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया। आचार्यजी ने सुमनजी से मेरी चर्चा की थी और सुमनजी को मालूम हो गया था कि राजनीति के इस क्षेत्र मे भी मैं उनका समानधर्मा हूँ। अत हम लोगो का स्नेह और भी प्रगाढ हो गया था।

समय की आँधियां ने कितने ही मित्रो से दूर फेंक दिया है परन्तु सुमनजी की स्निग्ध मैत्री अब तक मेरे लिए कल्पतरु के समान है सुमनजी के मित्रो की अनुभूति तो मेरा समर्थन करेगी ही सुमनजी को अपना विरोधी समझने वालो को भी उनसे यही प्रसाद मिलता है। सुमनजी का उन्मुक्त हृदय सबके लिए समान रूप से सौरभ ही वितरित करता है यह दूसरी बात है कि कस्तूरी मृग की भाँति सुमनजी अपनी ही सुगन्ध की खोज में आकुल रहते हैं।

लाहौर से दिल्ली आने के बाद और साहित्य अकादेमी में सम्मिलित होने के बाद सुमनजी ने अभिनन्दनीय सेवाएं की है परन्तु उनकी चर्चा किसी अधिकारी व्यक्ति को ही शोभा देगी। मैंने सुमनजी जैसे अध्ययनशील और संग्रहशील व्यक्ति बहुत कम देखे है। अपने इस व्यसन के कारण वे सजीव विश्वकोश बन गए है आज का साहित्यकार मौलिक मान देता है और पढना पसन्द नही करता। वह सुमनजी के इस व्यसन को दोष मान सकता है परन्तु पत्रकार के नाते मुझे मौलिकता की खोज नही रहती। मैंने सुमनजी से इस अभ्यास की शिक्षा ली है जिसके लिए मैं उनका विशेष कृतज्ञ हू

२६ ए जवाहरनगर दिल्ली ७

अतीत की ज्योतिष्मती स्मृति

डा० परमानन्द शास्त्री

सन् १९४२ की बात है। यद्यपि यह सुखद घटना अतीत के स्थूल आवरण में तिरोहित सी है तथापि वह आज भी नवीन प्रतीत हो रही है कहा भी है— **क्षण क्षण यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।** उसमें मनोहरता क्या हुई जो चीज कुछ समय बाद भद्दी या बोझिल मालूम पडे। मैं अपने घर पर जो लाहौर में कृष्णनगर में था बैठा था। मेरे एक मित्र प्रो० अनन्तमराल शास्त्री अपने एक मित्र को लेकर मुझसे मिलने के लिए आये। बैठे बात हुई। नवागन्तुक व्यक्ति ने नुकीली गाधी टोपी पहनी हुई थी और धवल तथा निर्मल खादी में उनका सुन्दर चेहरा खूब खिला हुआ था कोई गाधी भक्त प्रतीत होते थे। उन दिनो खादी पहनना आज की तरह फैशन न होकर देश के लिए मर मिटने की पुनीत भावनाओं का प्रतीक था। जबकि सारे देश मे भारत छोडो आन्दोलन को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार की गोलियां चल रही हो तब खादी पहनना ब्रिटिश सरकार के लिए एक चैलेंज ही समझा जा सकता था।

मैंने मरालजी से पूछा कि ये कौन हैं ? उन्होंने कहा, ये कवि हैं। अधिक कुछ बताना उन्होंने शायद उचित न समझा। केवल नाम ही बताया—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'।

सान्ध्य लालिमा की मृदुल सुषमा अभी गगन-प्रागण से ओझल नहीं हुई थी। मैंने कहा, "आज लाजपतराय-हाल में कवि-गोष्ठी हो रही है। इनकी कविता का रसास्वाद वहाँ अवश्य कराये।" कवि-गोष्ठी में पंजाब के प्रसिद्ध कवि श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' (उस समय वे लाहौर में ही रहते थे), श्री उदयशंकर भट्ट, श्री माधव और श्री अश्कजी ने अपनी-अपनी कविताएँ पढ़ी। मैंने सुमनजी से भी कविता सुनाने का अनुरोध किया। जो कविता उन्होंने वहाँ पढ़ी वह तो मुझे स्मरण नहीं, परन्तु इतना स्मृति-पटल पर अवश्य अंकित है कि उसमें क्रान्तिकारी युवकों के लिए देश-रक्षार्थ जूझने की उद्दाम प्रेरणा निहित थी। सुमनजी की उस कविता ने सुननेवालों को इतना प्रभावित किया कि वे उनसे कुछ और सुनने के लिए आग्रह करने लगे। सुमनजी ने एक ऐसी ही दूसरी रचना और सुनाई।

इस प्रकार सुमनजी से मेरा परिचय हुआ, जो बाद में धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जब हम दोनों में बहुत बातों में अभिन्नता आ गई, तब मैंने जाना कि सुमनजी आर्थिक संकट में हैं। मैंने कहा कि मैं आपको अपने कॉलिज में हिन्दी-शिक्षण के लिए नियुक्त करवा सकता हूँ तो वे मेरे इस प्रस्ताव से इसलिए सहमत हो गए, क्योंकि उन-जैसे क्रान्तिकारी के लिए यह एक स्वर्ण अवसर था कि जब वे युवक-युवतियों के सम्पर्क में आकर उनमें ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की प्रबल भावना फूँक सकते थे। उन दिनों फतहचन्द कॉलिज फॉर विमैन की प्रबन्धक समिति के मन्त्री श्री पण्डित नानकचन्द बार-एट-लॉ थे। मैंने उनसे सुमनजी को मिलाया और वे उनकी नियुक्ति करने के लिए के लिए सहमत हो गए। इसके बाद मैं कालेज की प्रिंसिपल कुमारी कंचनलता सब्बरवाल के पास सुमनजी को ले गया। कु० सब्बरवाल पाँच विषयों में एम० ए० होने के अतिरिक्त बहुत कुशल प्रशासिका भी थीं। उनका हिन्दी और संस्कृत से विशेष अनुराग था। उनके देशभक्ति-परक भाषण छात्राओं के लिए स्फूर्तिदायक होते थे। मैंने प्रिंसिपल सब्बरवाल से सुमनजी के विषय में बात की और अनुरोध किया कि ऐसे अध्यवसायी, सच्चरित्र एवं कर्मठ युवक की नियुक्ति करके हिन्दी और संस्कृत की प्रगति में मेरी सहायता करें। कुमारी सब्बर-वाल के अनुपम औदार्य तथा सहयोग से सुमनजी की नियुक्ति मेरे विभाग में हो गई।

प्रारम्भ से ही मेरे विचार श्री रामप्रसाद बिस्मिल और चन्द्रशेखर आज़ाद के कारनामों को पढ़कर ऐसे बन गए थे कि मुझे अहिंसा स्वातन्त्र्य-प्राप्ति का अमोघ अस्त्र प्रतीत नहीं होता था। योगिराज श्रीकृष्ण-जैसे महापुरुषों ने भी जब शान्ति के सभी प्रयत्नों को विफल होते देखा तो उन्होंने अर्जुन को गाण्डीव धारण करने के लिए प्रोत्सा-हित किया। श्री सुमनजी भी इस दिशा में मेरी विचारधारा के अनुकूल जान पड़े। हम दोनों में एक प्रकार से आदर्श समन्वय हो गया। उन दिनों १९४२ का आन्दोलन पूरे यौवन पर था। सुमनजी क्रान्तिकारी युवकों से सम्बन्धित तो थे ही। वे ऐसे समाचार-

बुलेटिन भी साइक्लोस्टाइल करवाकर प्रचारित करते थे जिनमें ब्रिटिश नौकरशाही के विरुद्ध जनता को भड़काया जाता था।

इस प्रकार सुमनजी मेरे साथ लगभग ५-६ मास ही कार्य कर पाए थे कि वे सी० आई० डी० की निगाह में आ गए। आखिर एक दिन वह भी आया जबकि २३ मार्च, १९४३ को वे भारत-रक्षा अधिनियम के अधीन गिरफ्तार करके अनिश्चित समय के लिए नजरबन्द कर दिये गए। उनकी गिरफ्तारी पर कॉलिज की छात्राओं में जो तूफान मचा था, वह मुझे भुलाये से भी नहीं भूलता। मुझे याद है कि गिरफ्तारी के बाद लाहौर की पुरानी अनारकली थाने की हवालात में हम कितनी कठिनाई से उनसे मिले थे।

उस समय यह अनुमान करना सर्वथा कठिन था कि भारत के तिमिराच्छादित गगन में भी कभी स्वातन्त्र्य-अरुणिमा विभासित होगी। शहीदों का खून कहिये या देशवासियों की अदम्य भावनाओं का परिणाम समझिये अथवा गांधीजी की विकट तपस्या का मधुर फल कहिये—भारत को स्वतन्त्रता देवी के दर्शन हुए। २२-२३ वर्षों के अनन्तर वही सुमनजी आज लेखक, चिन्तक और अनेक बहुमूल्य ग्रन्थों के प्रणेता के रूप में हिन्दी जगत् में प्रतिष्ठित हैं। वे एक दृढ निष्ठा रखने वाले अध्यवसायी और स्वावलम्बी विद्वान् व्यक्ति हैं।

मैं उनकी अर्द्धशती-पूर्ति पर अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ और करुणा-वरुणालय जगन्नियन्ता से प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें चिरायु प्राप्त हो जिससे वे और भी अधिक यश और सम्मान के भागी बन सकें और सरस्वती समाराधन के पावन यज्ञ में अधिक योगदान दे सकें।

निदेशक, भाषा-विभाग (हिन्दी)
पटियाला

साहित्य-यात्रिक सुमन—लाहौर से दिल्ली तक

डॉ० इन्दुशेखर

सुमन का ध्यान आते ही लाहौर की स्मृति सजग हो उठी है। लगता है अनायास अनारकली, माल रोड, निसबत रोड और लारंस पार्क की हजारों बत्तियां झिलमिला उठी हैं। सौन्दर्य, स्वास्थ्य, जवानी, और मुस्कराते चेहरे वाला लाहौर—जिसकी रंगीनियों को अनेक बार मैंने भारत के प्रमुख नगरों में खोजने का प्रयत्न किया है और उसमें बारम्बार असफल रहा हूँ। अपने ही शब्दों में

पीछे मुड़कर देख रहा हूँ जान नहीं कुछ भी पाता हूँ;
अंधकार में चित्र पुराने खोज-खोज कर रह जाता हूँ।

बहुत बारीकी से विश्लेषण करने पर भी आज तक यह भेद समझ में नहीं आया कि लाहौर में वह क्या आकर्षण था, वह कौन-सा अनूठा बाँकपन था जिसकी झलक अन्य स्थानों पर नहीं मिलती ? इसीलिए लाहौर का नाम आते ही मैं बहक जाता हूँ।

पुरानी स्मृतियों पर पड़ी धूल की परत झाड़ने के बाद सुमन का वह पतला-दुबला शरीर और मुस्कराता हुआ चेहरा उभर आता है। जहाँ तक याद पड़ता है हमारी पहली भेंट हुई थी हिन्दी-भवन में। पंजाब में हिन्दी के विकास और प्रचार के लिए जो लोग प्रयत्नशील थे, हिन्दी-भवन की छोटी-सी दूकान उनके मिलने का केन्द्र था और भवन के अध्यक्ष श्री देवचन्द्र मेरे बहुत अन्तरंग मित्र थे। वे हँसमुख और उत्साही कार्यकर्ता थे। पंजाब में हिन्दी के प्रचार के लिए आरम्भ में हिन्दी-भवन ने बहुत सक्रिय कार्य किया और जब कभी हिन्दी के विकास का इतिहास लिखा जायगा, हिन्दी-भवन का नाम विशेष रूप से उल्लिखित होगा। हम लोगों का एक अपना छोटा-सा दल था जिसके सदस्य थे सर्वश्री हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, माधवजी और करुणेश आदि। गोष्ठी, कवि-सम्मेलन, भोज-दरबार और कभी-कभी बूटी-पान के आयोजन का कार्यक्रम चलता रहता था, क्योंकि जीवन में उत्साह था, कुछ करने की चाह थी और वातावरण अत्यन्त आशाजनक था।

हिन्दी भवन के माध्यम द्वारा श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुज देवचन्द्रजी ने छपाई साज-सज्जा और पुस्तकों के आकार-प्रकार, आवरण आदि में जो भी दिलचस्पी ली, उसमें सुमन का यथेष्ट योगदान था। सुमन से एक बार वहीं मिलकर यह भी पता चला कि गुरुकुल ज्वालापुर के जिन गुरुओं के चरणों में बैठकर उन्होंने अष्टाध्यायी पढ़ी, शंकराचार्य-रचित प्रश्नोत्तरी के श्लोक याद किये, उन्हीं गुरुओं से पाँच वर्ष पूर्व कुछ सीखने का सौभाग्य मुझे भी मिला था। श्री पद्मसिंह शर्मा, नरदेव शास्त्री और स्वामी शुद्धबोध मेरी स्मरण शक्ति और श्लोक-गान से बहुत प्रभावित थे। उनकी देख-रेख में ही सुमन को भी संस्कृत श्लोकों का चसका पड़ा और शायद पंडित काचीदत्त की लहराती बेंत का स्वाद भी हम दोनों ने समान रूप से प्राप्त किया। मतलब यह कि इस परिचय के बाद हम दोनों के बीच संकोच की दीवार स्वयं ही भरभराकर गिर पड़ी और हम दोनों परस्पर बहुत सन्निकट आ गए।

१९३५ में एम० ए० पास करके मैं दिल्ली आ गया और कुछ वर्षों तक पापड़ बेलकर सुमन भी वहीं आ जमे। प्रारम्भ ही से कविता, गीत और तुकबन्दी का दोनों को शौक था इसलिए मिलजुलकर कवि-गोष्ठियाँ को आबाद करने में हमने पर्याप्त परिश्रम किया और कभी-कभी कवि-सम्मेलनों की अखाड़ेबाजी भी निकट से देखी। कवि-सम्मेलन के सिलसिले में सुमन दिल्ली से कुछ कवियों को हापुड़ ले गए, जिनमें उदयशंकर भट्ट,

मैं और सुधीन्द्र भी सम्मिलित थे। रात को कवि-सम्मेलन का दौर चला और कविताएँ खूब जमी। कवि-सम्मेलन से निवृत्त होकर प्रातःकाल चार बजे अपने निवास-स्थान पर आकर हम लोग सो गए। प्रातःकाल आँख खुली तो देखा कि भट्टजी के ठीक सिरहाने बैठा हुआ एक बन्दर काँसे के एक बड़े कटोरे को लेकर पत्थर पर घिस रहा था। कटोरे के घिसने से जो नाद पैदा हो रहा था वह बन्दर को, मालूम पड़ता है, बहुत पसन्द था क्योंकि चारों ओर से उत्सुक आँखों और व्यक्तियों से घिर जाने पर भी उसने अपना यह वीणा-वादन बहुत देर तक नहीं छोड़ा। बन्दर के इस संगीत-प्रेम को देखकर सभी को विस्मय और कौतूहल हुआ। सुमनजी ने पूछा कि आखिर यह बंदर अनूठे ढंग से संगीत का अनवरत अभ्यास क्या कर रहा है? मैंने उत्तर दिया कि शायद रात कवि-सम्मेलन में किसी कवि का स्वर, हो सकता है सुधीन्द्र जी का स्वर, उसे पसंद आ गया है और अपने अनुकृति-प्रिय स्वभाव के कारण हनुमान भक्त यह वानर ब्राह्ममुहूर्त में वही स्वर-साधना कर रहा है।

यह ऐसा समय था जब सुमन को अनेक प्रकार की असुविधाओं और आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ रहा था। दिल्ली के सदर बाज़ार के एक प्रेस में, जहाँ वे प्रूफ-संशोधन का काम करते थे, मेरा अनुज सोमदत्त शर्मा भी वहीं पर था। आर्थिक विषमताओं के बावजूद उस समय भी सुमन की मुस्कान में मैंने कोई अन्तर नहीं पाया। उनकी विनोदप्रियता और मस्ती वैसी ही बनी रही। हृदय में उथल-पुथल मचने पर भी उनके चेहरे पर कोई शिकन दिखाई नहीं दी और आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, कुछ ऐसा लगता है कि एक सुघड़ साधक की भाँति सुमन चला आ रहा है धूप से तपी एकाकी-निर्जन पगडंडी पर, जहाँ छाँह का नाम नहीं, विश्राम के लिए कोई स्थान नहीं, पर साधक अपनी चाल पर ऐसा मस्त है कि उसे इन आवश्यकताओं को देखने और उनके लिए प्रतीक्षा करने तक का अवकाश ही नहीं है। उसे चलना है, इसलिए वह चलता रहा है और आगे भी चलता रहेगा।

धैर्य, परिश्रम, लगन, सूझबूझ और विनोदप्रिय प्रवृत्ति के कारण क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने जो भी स्थान बनाया है, वह उनकी अपनी साधना का फल है। अनेक दिग्गज साहित्यिकों का समय-समय पर अभिनन्दन करके एक स्वस्थ परम्परा की नींव डालने में सुमन ने पर्याप्त सहयोग दिया है। अपने मधुर गायन, सरस कविता, पैनी समालोचना और रोचक वर्णनों द्वारा हिन्दी-साहित्य में तो उन्होंने स्थान बनाया ही है, पर जो स्थान मित्रों, परिचितों और बान्धवों के हृदय में बनाया है वह कहीं अधिक सुखद और सरस है।

भगवान् करें, सुमन सदा हास्यवर्षी हों और साथ-साथ में शतवर्षी भी!

भारतीय दूतावास,
काठमांडू (नेपाल)

इक आग का दरिया है

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी

मुझे पहचानते हो, मै फागुन हूँ !
भोले-भाले कवि के साथ मजाक के कारण
मै बहुत बदनाम हूँ ।
खिड़की से सूखे पत्ते की चिट्ठी मैं ही ला देता हूँ,
पर उस सूखे पत्ते का सन्देश क्या है ?
मुझसे न पूछो !
मानो मैं एक मसखरा नटखट लड़का हूँ ।

एक असमिया कविता की ये पक्तियाँ मुझे गुदगुदाती हैं—कवि है श्री नवकान्त बरुआ । और इधर 'सुमन' की मुस्कान और आँखो मे 'षोडशी-सुलभ' चमक मुझे एक चौथाई सदी मे प्रेम की स्थिरता मे जकड़े हुए है । देखिये, कई बार मैं इससे बुरी तरह छटपटाया भी हूँ । क्योकि मैं स्वभाव मे 'हरजाई' हूँ—एक यायावर जो ठहरा, खानाबदोश ! अगरचे सुमन को भी अपनी यायावरी वृत्ति पर नाज है । वही मुहब्बत, वही तकल्लुफ, वही दिलजोई मुझे यह सब कभी-कभी असह्य हो उठता है । जब देखो एक-न एक अहसान मेरे सिर पर चढाये जा रहे हैं । जबकि खुद यह गुनगुनाते है—'अहसान ना खुदा का उठाये मेरी बला...' मैं कहता हूँ, 'भई, मैं बाज आया इस मुहब्बत से । यह मुहब्बत नही, बोझ है—निरा बोझ ! मुझे बचाओ । मुझ पर तो पहले ही लाखो लोकगीत सवार है, जिनकी अनुगूँज यदा-कदा मेरे सस्मरणो को घेरे रहती है ।' पर यह भला आदमी मेरी एक नही सुनता ।

एक तो करेला, दूसरे नीम-चढा ! हाँ साहब, एक 'सुमन' और उस पर क्षेमचन्द्र 'सुमन' ! बाबूगढ (मरठ) का वासी । बाबूगढ, जो दो नदियो के बीच आबाद है—छोइया और काली नदी के बीच ।

विचित्र सयोग है । हमारी पहली मुलाकात लाहौर मे हुई—रावी के किनारे । फिर हम हरिद्वार मे मिले—गगा-तट पर । और फिर यमुना-तट पर—दिल्ली मे । अब हम दोनो 'दिल्ली वाले' बन गए ।

पिछले सत्रह वर्ष हमने एक साथ बिताये है—दिल्ली मे । इस बीच मैंने कुछ बर्ष के दिन भी गुजार देखे—'आजकल' के सम्पादक की हैसियत से, और फिर वही यायावर बन गया—सडक का आदमी ! और सुमन कई तरह के पापड बेलते हुए आखिर साहित्य अकादेमी के हिन्दी-विभाग मे जा पहुँचे । और अब यह मेरी 'सीनाजोरी' है कि सुमन की कुर्सी को भी दरअसल मैं अपनी ही कुर्सी समझता हूँ ।

राजकमल प्रकाशन को जब मैंने अपनी प्रथम रचना धरती गाती है प्रका- शनाथ भेजी तो यह शर्त लगा दी थी कि इसके प्रूफ सुमनजी देखेंगे। और अब तो यह हाल है कि जब भी कोई कृति प्रेस के लिए तैयार करता हूँ तो उसके स्टाइल और भाव-भूमि की मुद्रा से लेकर उसके कवर डिजाइन तक के बारे में सुमनजी की राय में ही कोई कदम उठाता हू।

सुमन कवि है और आलोचक भी। उनके आलोचक रूप का परिचय विशेष रूप मे मुझे उन दिनो मिला जब उन्होंने चुपके से आलोचना में मेरे निबंधकार रूप पर अपनी टिप्पणी यो दी थी— सत्यार्थीजी की शैली में जो रोचकता सरसता और ग्राहिका वृत्ति है वह हिन्दी के बहुत कम गद्य लेखको मे देखने को मिलेगी। किसी भी गम्भीर से गम्भीर विषय को आधार भूमि बनाकर कहानी और सस्मरण की कला के मोहक आवरण मे आवेष्टित करके अपने अभिप्रेत की उपादेयता सिद्ध करने की जो क्षमता सत्यार्थी जी मे है वह सर्वथा उनकी अपनी चिन्तना ईहा और सूक्ष्मेक्षिका वृत्ति की द्योतक है। मैंने महसूस किया कि सुमन आलोचक होते हुए भी कथा के अन्तराल मे उतरने की क्षमता रखता है।

मैं कहता हू भई कथा साहित्य के आगन मे उतरो! वे चाहे तो अपने ग्राम बाबूगढ पर पूरा उपन्यास लिख सकते हैं।

अग्रेजो के जमाने मे बाबूगढ मे अच्छी खासी छावनी रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात बाबूगढ छावनी को ग्राम फार्म का रूप दे दिया गया। पहले वहा सेना के लिए घोडे तैयार करने का बडा केन्द्र था (ऐसे तीन केन्द्र और थे पूरे हिन्दुस्तान मे—कलकत्ता सहारनपुर और सरगोधा)। अब वहा घोडो की बजाय खच्चर तैयार किये जाते है।

सुमन की आरम्भिक शिक्षा उसी बाबूगढ छावनी के स्कूल मे हुई थी। बाबूगढ का नाम आते ही सुमन को अपने बाबू होने का अहसास हो जाता है। मैं कहता हूँ भले आदमी बाबूगढ पर उपन्यास लिखो! और सुमन मेरी बात को मजाक मे उडा देता है।

भई वह काम तो करना ही होगा।

कौन सा?

वह उपन्यास—दो नदियो के बीच।

और एक बार फिर ठहाका लगता है।

उसका स्वभाव बहुत से कामो मे उसके आडे आता रहा है। विवाहित जीवन के बारह वर्ष (एक तरह से पूरा वनवास) बिता चुकने पर यह भला आदमी कही जाकर एक कन्या का पिता बन पाया। शायद उस कन्या का नाम अर्चना मैंने ही सुझाया था। खूब लड्डू बटे थे।

और फिर अर्चना के जन्म के चार बरस बाद वह दिल्ली मे यमुना पार की

दिलशाद कॉलोनी मे मालिक-मकान बन गया तो फिर मित्रो की अच्छी-खासी दावत कर डाली।

मुझे याद है, मैंने उसके पीछे के लॉन मे शीशम का पेड़ लगाया था। कुछ और मित्रो के हाथो से भी कुछ पेड़ लगवाये गए थे। बाद मे बाढ़ आने के कारण सुमन के उस लान के बाकी पेड़ तो बरबाद हो गए, पर मेरा लगाया हुआ वह शीशम का पेड़ अब भी मौजूद है। यह पेड़ हमारी मित्रता का प्रतीक है।

मैं जानता हूँ, उनके यहाँ मेहमानो का ताँता लगा रहता है (जैसे मेरे यहाँ), और सुमन उफ तक नही करता। मैं तो खैर यात्रा मे दूसरो के यहाँ महीनो पड़ा रहता हूँ, पर सुमन तो बहुत कम घर से बाहर निकल पाता है।

'हाँ, तो वह उपन्यास कब लिखेंगे ?' मैं पूछता हूँ—चार दिन बाद मुलाकात हो, चाहे चार महीने बाद।

'अजी, वह उपन्यास तो अब आपको ही लिखना होगा।' सुमनजी का वही नपा-तुला जवाब होता है।

चिरन्तन पृथ्वी का प्रथम प्रेम सुमन की आँखो मे तैरता रहता है।

उनकी सुपुत्री अर्चना के नामकरण सस्कार मे मैंने पहली बार श्रीमती सुमन के दर्शन किये थे। मुझे याद है, सुमन से कही ज्यादा मैं श्रीमती सुमन के व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ था। लम्बे कद की नारी—एकदम 'पतली छमक'-सी !

जब भी मैं सुमनजी के साथ चुटकी लेते हुए श्रीमती सुमन के सहज-सरल व्यक्तित्व की प्रशसा करता हूँ तो वे कह उठते है, 'अजी, यह क्यो भूल रहे हो कि आपकी पत्नी का 'डिजाइन' भी भगवान् ने सयोग से मेरी पत्नी-जैसा ही बनाया है। वैसी ही पतली-छरहरी देह।' यहाँ मै एक बार चुप रह जाता हूँ और फिर सफाई देने के लहजे मे कहता हूँ, 'भई, मेरे यहाँ तो सारा काम-काज मेरी पत्नी ही करती है। आटा, दाल, नमक, सब्जी-भाजी, घी, कोयला आदि जुटाने की मुझे कोई चिन्ता नही रहती।'

'गुरु, हमारे यहाँ भी यही व्यवस्था चलती है। मैं तो घर का कुछ भी ध्यान नही रखता। सब श्रीमतीजी ही देखती है।'

'भई, तुम उन्हे रुपये-पैसे तो कमाकर देते हो !' मैं भर्राये-से स्वर मे कहता हूं, 'मुझ से बुरा कौन होगा ? बनी-बनाई नौकरी पर लात मार दी। पैसा कमाने का कोई ख्याल नही रखता। बस, मुझे तो अपने घर मे 'अनपेड मेहमान' ही समझिये।'

लाहौर मे सुमनजी दो जगह काम करते थे दिन मे फतेहचन्द कॉलिज फार विमेन मे पार्ट-टाइम हिन्दी-प्राध्यापक, और रात को दैनिक 'हिन्दी मिलाप' मे पार्ट-टाइम सह-सम्पादक। और अब साहित्य अकादेमी मे काम करते हुए वे दो जगह ड्यूटी भुगताते है—अभी अपने कमरे मे अपनी मेज पर बैठे काम कर रहे है, और अभी पिओन आकर कहता है, 'सुमनजी, आपका फोन है,' और यह भला आदमी झट फोन सुनने चला जाता है।

तब मुझे अपना वह मुलाज़मत का ज़माना याद आ जाता है और मैं यह उठता हूँ सुमन-जी, टेलीफोन तो आपकी मेज पर भी होना चाहिए।

'अजी, छोडिये ! वे वह उठते हैं यही क्या कम है कि कहीं भी सही, टेलीफोन उपलब्ध तो है।'

वैसे तो सुमनजी के घर पर भी टेलीफोन है। उसका नम्बर है २१२१३१। मैंने आज तक सुमनजी से कभी उनके घर के नम्बर पर बात नहीं की। यह तभी होगा जब मेरे यहाँ भी टेलीफोन होगा (और वह शायद कभी नहीं होगा)।

हिन्दी के प्रति सुमनजी का दृष्टिकोण एक प्रेमी, भक्त और साधक का है। भाषा के वे धनी हैं। विचारधारा को तंगदिली छू भी नहीं गई। भाव और कल्पना की रसमयी मूर्ति उनके सामने रहती है। धूल-मिट्टी से वे घबराते नहीं।

पुरातन विश्वास है कि धरती गाय के सींगों पर टिकी हुई है और इधर सुमनजी दुनिया-भर का बोझ अपने कन्धों पर लिये घूमते हैं। कई सामाजिक, शैक्षणिक और साहित्यिक संस्थाओं के वे मन्त्री, अध्यक्ष, संरक्षक और पृष्ठपोषक हैं। दिल्ली प्रशासन की शाहदरा क्षेत्रीय जन सम्पर्क समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने अपने क्षेत्र की अभूतपूर्व सेवा की है। और इस पर न जाने चलते-फिरते किस किस की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ओढ लेते हैं। अमुक की सिफारिश करनी है, उसे नौकरी मिलनी ही चाहिए। अमुक की किताब छप जानी चाहिए अमुक प्रकाशक के यहाँ से। अमुक साहित्यकार का अभिनन्दन अवश्य होना चाहिए . और न जाने क्या-क्या ? 'सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है' उर्दू के किसी शायर का यह बोल सुमन पर पूरा उतरता है।

सुमनजी गांधी टोपी पहनते हैं और मैं नंगे सिर रहता हूँ। फिर भी हम दोनों मिलकर 'मीर' का यह शेर गुनगुना उठते हैं

पगडी अपनी सँभालियेगा मीर,
और बस्ती नहीं, यह दिल्ली है !

राष्ट्रीय आन्दोलन में सुमन को जेल यात्रा करने का भी अवसर मिला। यही नहीं कि वह जेल में ही नज़रबन्द रहा हो, जेल से छूटने के बाद अपने गाँव में नज़रबन्द रहने तक की जहमत उसे उठानी पडी। जेल-जीवन और गाँव की नज़रबन्दी के वे तीन वर्ष सुमन ने कैसे काटे, इसे बहुत कम लोग जानते हैं। राजर्षि टण्डन और श्रीप्रकाश जैसे प्रमुख नेताओं ने उन दिनों उनकी दृढ निष्ठा और सहिष्णुता की खुलकर सराहना की थी। पर इस भले आदमी ने कभी अनेक बडे और छोटे सेनानियों के 'क्यू' में खडे होकर अपना 'चैक' कैश कराने की कोशिश नहीं की।

छोटी बडी आकांक्षाएँ हम घेरे रहती हैं। पर मैं जानता हूँ, मेरी ही तरह सुमनजी भी 'कैरियरिस्ट' नहीं। इसलिए वे मुझे और भी प्रिय हैं। तो भी सुमनजी को अपनी सम्भावनाओं का पूरा पूरा अहसास है।

'वाह सुमनजी !' मैं कहता हूँ, 'अच्छा, तो ये ठाठ हैं ! अब इक्यावन वर्ष के कठघरे में खड़े होने जा रहे हो। आपका जन्म किस तारीख का है भला ?'

'सोलह सितम्बर १९१६।'

'आप जानते हैं मेरा जन्म १९०८ का है, आप से आठ वर्ष पूर्व मैं दुनिया में आया था—बिन-बुलाये मेहमान की तरह।'

• 'आपकी जन्म तिथि ?'

'अट्ठाईस मई।'

'गोया यहाँ भी आप मेरे अग्रज ही निकले। अट्ठाईस मई...यानी सोलह सितम्बर से साढ़े तीन मास पूर्व।'

'देखिये सुमनजी !' मैं कहता हूँ, 'महाकाल का पहिया तो घूमता ही रहता है। मुझे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की एक कविता याद आ रही है। कवि ने जैसे स्वयं अपने ही को सम्बोधित करते हुए लिख दिया था—'तुम अपने कीर्ति-रथ को पीछे छोड़ गए। तुम अपने यश से भी बड़े निकले और जब मैं अपनी ओर देखता हूँ तो लगता है, मैं वह कार्य नहीं कर सका, जिसके लिए मैंने खामखाह पचास ऊपर आठ साल यों ही गुज़ार दिए। देखिये, कम-से-कम आप तो बचकर चलिये। दूसरों का काम करते रहने की बजाय कुछ अपना काम करने की आदत भी डालिये।'

'अजी यह नहीं हो सकता।' सुमनजी हँसकर कहते हैं, 'कीर्ति-रथ आगे चलता है या पीछे रह जाता है और यश की मोमबत्ती जलती रहती है या बुझ जाती है—मैं इसकी फिक्र नहीं रख सकता। मेरा अपना कोई काम नहीं। मैं तो दूसरों के काम करते-करते ही मर जाना चाहता हूँ।'

तप-तप कर खूब कुन्दन बन गए हैं सुमनजी। वे खूब जानते हैं कि ज़िन्दगी दीद भी है, हसरते-दीदार भी।

सुमनजी संस्मरणों के असीम भण्डार हैं। जाने किस-किसके किस्से सुनाते हैं। बस समझिये कोई-न-कोई रिकार्ड लगा ही रहता है।

मैं कहता हूँ, 'भले आदमी, अपने संस्मरण ही लिख डालो।'

'अजी छोड़िये, बहुत-से संस्मरण तो 'श्रुति' के कठघरे में ही रह जाते हैं, सबको 'स्मृति' का रूप देने का समय कहाँ है ?'

यहाँ उनके जीवन की एक घटना मेरे मन के पार द्वार खड़ी मुस्करा रही है। खद्दर का एक पूरा थान कोकटी (गेरुए) रंग का खरीदा और हिसाब से चार कुर्ते बनवाये। खूँटी पर टाँग दिये—घर जाकर, ताकि धोबी से धुलवाकर पहने जाएँ। सन् १९४६ की संक्रान्ति का शुभ दिवस था। रात को घर आकर देखा। सभी कुर्ते गायब। पूछने पर श्रीमती ने बताया, 'मैं क्या जानती थी। पहले एक भिखारी आया और उसे ठिठुरते देखकर एक कुर्ता दे डाला। फिर वह भिखारी अपने साथ और भिखारियों का 'व्यूह'

लेकर आ धमका। वे सभी कुर्ते माँग रहे थे। मैं लाचार हो गई। कैसे इन्कार करती, जब एक को कुर्ता दिया जा चुका था? बस जी, मैंने उठाकर बाकी तीनों कुर्ते भी दे दिए। सारी कतार चिल्लाती रही। मैंने दरवाजा बन्द कर दिया। इतने कुर्ते कहाँ थे कि सबको और बाँटती?'

'तो वह उपन्यास कब लिख रहे हैं, सुमनजी?'

'कौन-सा?'

वही...वही...वही...'इक आग का दरिया है और डूब के जाना है!'

'कल्पना' : ५सी/४६, रोहतक रोड,
नई दिल्ली ५

सजीव सन्दर्भ-ग्रन्थ

श्री बाँकेबिहारी भटनागर

लगभग दो साल पहले की बात है। नई दिल्ली के हिन्दी भवन में पुस्तक-भण्डार (लहेरिया सराय और पटना) के यशस्वी संचालक और हिन्दी के तप पूत साहित्यकार आचार्य रामलोचन शरण का अभिनन्दन था। इस अवसर पर हिन्दी के कई वरिष्ठ साहित्यकार उपस्थित थे। उनमें से कइयों ने आचार्यजी की अपरिमित सेवाओं के प्रति अपनी भावांजलि अर्पित की और उनके सरल, छद्महीन व्यक्तित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की। एक-दो को छोड़कर शेष के उद्गार ऐसे थे, मानो सतह के ऊपर ही तैरते हों। न पकड़, न गहनता। किन्तु एक व्यक्ति जब बोलने के लिए खड़ा हुआ तब ऐसा लगा जैसे उसने आचार्यजी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का मन्थन कर रखा है। किसी ने आशा नहीं की थी कि प्रचार से दूर रहने वाले, दिल्ली में औरों की अपेक्षा कम प्रसिद्ध इस साहित्य मनीषी के सम्बन्ध में वह वक्ता इतने अधिकार और इतनी प्रामाणिकता के साथ बोल सकेगा और उनके जीवन की ऐसी छोटी-छोटी बातें बता सकेगा, जिनकी जानकारी उनके किसी अन्तरंग साथी को ही हो सकती थी। उस समय मैं उस वक्ता की ज्ञान-सम्पदा से चमत्कृत रह गया।

उसी समय मैंने किसी को चुटकी लेते सुना, "इनका क्या है! यह तो जब कभी किसी व्यक्ति के स्वागत-समारोह या शोक-सभा में जाते हैं तब पुस्तकों से सारी जानकारी रटकर ले आते हैं और सबके सामने उगल देते हैं।" मुझे ये शब्द कुछ अच्छे नहीं लगे, क्योंकि वक्ता मेरे परिचित थे और उनके प्रति अपनी अच्छी भावनाओं को मैं दूषित नहीं

होने देना चाहता था। फिर भी आस्था के पैरों के नीचे थोड़ी सी काई तो जम ही गई।

कुछ ही दिनों बाद एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार की मृत्यु हुई और मुझे 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित करने के लिए तत्काल उनके संक्षिप्त जीवन-परिचय की आवश्यकता हुई। मैंने कई साहित्यवेत्ताओं को टेलीफोन किया, किन्तु कोई भी जन्म-तिथि आदि की सही जानकारी न दे सका। फिर सहसा उपर्युक्त मित्र का जो ध्यान आया तो फौरन उनसे टेलीफोन मिलाया और सच मानिये, टेलीफोन पर ही मुझे मौखिक रूप में प्रायः सभी ज्ञातव्य सामग्री मिल गई।

इस प्रकार परीक्षा की घड़ियाँ कई बार आईं और मेरे मित्र ने मुझे प्रत्येक बार अपनी अद्भुत ज्ञान क्षमता से उपकृत किया। तभी से मैं उन्हें 'हिन्दी-साहित्य का सदर्भ-ग्रंथ' कहने लगा और यह विशेषण आज दिल्ली के समस्त साहित्य-जगत् में लोकप्रिय हो गया है। यह सजीव संदर्भ ग्रन्थ' और कोई नहीं, शाहदरा निवासी श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ही हैं।

सुमनजी की गिनती मैं अपने अच्छे मित्रों में करता हूँ। वे एक अच्छे मित्र हैं भी। जिसे एक बार अपना मान लेते हैं उसके प्रति समर्पित हो जाते हैं। उसके सुख-दुःख में हाथ बँटाते हैं, उसकी कीर्ति अपकीर्ति के निमित्त बड़े सजग रहते हैं। माना कि जिसे वह नापसन्द करते हैं उससे बड़ी घृणा करते हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जो उन्हें प्रिय हैं उनके प्रति उनके मन में अगाध प्रेम रहता है और वह प्रेम पीपल के पत्ते की तरह हवा में झड़ नहीं जाता।

सुमनजी स्वभाव से बड़े सरल और सीधे है, किन्तु उनका मन बड़ा रसिक है। इस रसिकता का प्रमाण हम उनकी बातचीत, उनकी कविताओं और उनके द्वारा सम्पादित पुस्तकों में—विशेष रूप से 'हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेम गीत' में—मिलता है। अपनी संकलित पुस्तकों द्वारा उन्होंने न जाने कितने कवियों और कवयित्रियों का उपकार किया है। उनका कहना है, 'बड़ों को तो सब पूछते हैं, छोटों का भी तो मूल्यांकन होना चाहिए।' और उनके छोटों की इस परिभाषा में वे लोग भी आ जाते हैं, जिन्होंने अपने जीवन में कठिनाई से आठ-दस अच्छी रचनाएँ रची है। इससे सुमनजी के हृदय की उदारता और विशालता का प्रमाण मिलता है।

सामाजिकता सुमनजी का सबसे बड़ा गुण है। ऐसा शायद ही कोई साहित्यिक, सांस्कृतिक या सामाजिक कार्यक्रम होता हो, जिसमें वे नहीं जाते। घर की दूरी, यातायात की कठिनाइयाँ, दिल्ली में दौड़ते हुए जीवन में और भी अनेक असुविधाएँ—चाहें तो वे भी समयाभाव का बहाना करके अपने बड़प्पन का ढोंग रच सकते हैं, किन्तु वाह रे हिन्दी के प्रति उनकी श्रद्धा और मित्रों के साथ उनका स्नेह ! वह अपने स्वास्थ्य को दाँव पर रखकर छोटे-बड़े सबको प्रसन्न करते हैं। केवल मंत्रियों और मठाधीशों के समारोहों में ही नहीं जाते, बल्कि साधारण साहित्य-प्रेमियों के आयोजनों को भी सफल बनाना

अपना धर्म समझते हैं। ऐसा कितने लोग कर पाते है ?

आज जब सुमनजी अपने जीवन की अर्द्धशती पूरी करने जा रहे है, सात साल बडा होने के अधिकार से मैं उन्हे आशीर्वाद देता हूँ कि अपने यशस्वी जीवन मे वे कम-से कम इतने ही वसन्त और देखे। एक मित्र के नाते मैं आकाक्षा रखता हूँ कि उनके स्नेह और सौहार्द की छाया मुझ पर सदा बनी रहे !

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'
नई दिल्ली

एक तपःपूत साहित्याराधक

श्री रावी

लेखन और पुस्तक-सम्पादन के क्षेत्र मे सुमनजी निर्विवाद रूप से चमक और महक रहे थे जब दिल्ली मे उनसे पहला सस्मरणीय (सामान्य तो २६ वर्ष पहले हो चुका था, आगरा मे) साक्षात्कार हुआ तब शाहदरा मे उनका 'अजय-निवास' रहने-भर को बन गया था और गृह-प्रवेश के बाद बहुत सा शेष निर्माण चालू था। चादनी चौक म मिल तो पकडकर अपने घर ले ही गए। "जब अपना घर बन गया है तो रावी दूसरी जगह कैसे ठहरेगा !" उनका फतवा था। कुछ-कुछ ध्यान पडता है, उस बार प्रयोजनवश मैं किन्ही सम्पन्न नव-परिचित सज्जन के घर ठहरा था और उस रात मुझे बहुत बढिया दावत मिलने वाली थी—इसका आदेश मेरे मेजबान मेरे सामने ही अपनी पत्नी को दे चुके थे—पर सुमनजी के घर रूखे परामठो और सूखे साग पर ही सतोष करना पडा। कुछ क्षण के लिए मैं सोच गया कि सुमनजी को मनोविज्ञान और रसना-विज्ञान का ज्ञान बिलकुल नही है, लेकिन थाली खाली होते ही सत्र का ही नही, गहरे तृप्तिकर स्वाद का भी मैंने तत्काल अनुभव किया, क्योकि यही रस मैं भी अपने आगत मित्रो को—बडे बडे मेवा, मिष्टान्न-भोजी, सम्पन्न मित्रो को भी गुड और मूँगफली के दाना अथवा दाल के रस से सयुक्त रोटिया द्वारा अपने नवीन आश्रमीय आतिथ्य मे देने लगा था। उस बार कई दिन उनके घर रहा। बडा सजीव वातावरण और पोषक मानसिक आहार मिला, उनके घर मे ही नही, पडोस तक में। पडोस में थे, शरदेन्दुजी और उनकी पत्नी उर्मिला वार्ष्णेय। वे एम० ए० थी, पता नही शरदन्दु जी भी थे या नही। दिन भर यह दम्पती भाई-बहन की तरह रहता, परस्पर आवाजकशियाँ करता और शाम को सुमनजी के घर छोटी-मोटी अदालत भी लग जाती।

अपने बिस्तर की तन्द्रा में मैं रात का आरम्भ और अंत मेज-लैम्प के सहारे जमे हुए सुमनजी के गम्भीर अध्ययन और लेखन के साथ मुझे दिखाई देता। उम्र में वह मुझसे कुछ छोटे होंगे—यदि ठीक समय पर ही हम उनका अर्द्धशती का अभिनन्दन कर रहे हैं—पर विद्वत्ता, काव्य और लेखन की विपुलता के क्षेत्र में तो वह मुझसे आगे हैं ही (कला की किसी विधा में अवश्य ही मैं उनसे आगे सिद्ध हो सकता हूँ) इस नाते उनकी गुरुता को मन-ही-मन स्वीकार करते हुए मैंने सृजनशीलता की कुछ प्रेरणा भी उनसे थोड़े से दिनों में प्राप्त की थी। वह आगे मेरे बड़ी काम आई।

सुमनजी ने साहित्य अकादेमी में दायित्व का पद सँभालकर व्यक्तिगत रूप से भी जो कार्य किया वह समग्र भारतीय साहित्य जगत् के सामने सुदृश्य है। बड़े-बड़े साहित्यिक आयोजनों का आयोजन और उनकी सफलता उनकी अविरल कर्मठता के ही सुबीज-सम्पन्न सुफल हैं।

साहित्य अकादेमी के (तत्कालीन) लम्बे बरामदे के बगल में बने हुए कमरों में कई महत्त्वपूर्ण सम्पर्क मुझे सुमनजी द्वारा ही सुलभ हुए। लेखनी के साथ तूलिका के भी चटपट चितेरे प्रभाकर माचवे भी उन्हीं के पकड़ाये मेरी पकड़ में आये, पर मेरा ही 'ग्रिप' कुछ ढीला रहा और मैं अब तक उनके निकट नहीं आ पाया।

इधर कई वर्षों में दिल्ली आना-जाना मेरा बहुत घट गया और उसीके साथ सुमनजी का प्रत्यक्ष सम्पर्क भी। मेरे मैत्री-क्लब के वे सदस्य बने और उस नाते व्यवहार-सूत्र जुड़ा रहा। संस्था का वार्षिक शुल्क अवसर देर में भेजा तो क्षमा-याचना के मरहमी शब्द भी साथ भेजे। मुझे शिकायत है कि वे अभी तक मेरे घर और इसीलिए मेरे अधिक निकट नहीं आये। लेकिन पचास के पहले ऐसी निकटता दुष्कर होती है, सो उनके जीवन के इस मध्य और महत्त्वपूर्ण, नव-सृजन-प्रेरक मोड़ के बिन्दु पर अभिनन्दन के साथ अपना और अपने वीरभद्र का तोहफे भरा निमन्त्रण भी उनके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मैत्री-क्लब,
पोस्ट—कैलास (आगरा)

आदर्शवादी और व्यवहार-कुशल

श्री लेखराम

काल के आवरण के कारण धुँधली पड गई स्मृतियो मे झाककर देखने की चेष्टा करता हूँ। नजर तो आता है, किन्तु सब कुछ बिल्कुल स्पष्ट नही है। सुमनजी से पहली भेंट कब और कैसे हुई, वे कैसे और कब उस मकान मे आकर बसे, जिसमे कि मैं लाहौर मे रहता था। इसका उत्तर सही-सही नही मिल पा रहा। इतनी बात स्पष्ट है कि लाहौर मे 'मिलाप' मे हम साथ-साथ कार्य करते थे तथा भाटी गेट स्थित मकान से साथ ही-साथ पकडे गए थे। इससे स्पष्ट ही है कि लाहौर के इस मकान मे हम एक साथ सम्भवत काफी समय पूर्व से, कम-से कम चार-छ मास से रहते थे। एक ही मकान मे निवास करने तथा एक ही कार्यालय मे काम करने की बात जबकि स्पष्ट है, तब इनसे जुडे अन्य सूत्र उतने स्पष्ट नही। और अधिक तलाश करने पर अन्य कोई सुराग नही मिला तब मेरे उनसे सम्बन्ध वैसे घनिष्ठ नही थे, अथवा बाद के दिनो मे जब हम आपस मे पर्याप्त घुल मिल गए तब पुरानी स्मृतियाँ फीकी होकर एकबारगी ही स्मृति-पटल से धुलकर साफ हो गई।

इस प्रकार सुमनजी से वास्तविक सम्बन्ध जेल जीवन से ही प्रारम्भ होता है। साथ पकडे जाने के उपरान्त, दो मास तक हवालात मे बन्द रहने के बाद, एक दिन साथ ही हमने जेल की ड्योढी मे प्रवेश किया। दिल्लीवासी होने के कारण फीरोजपुर जेल मे, जो कि वास्तव मे दिल्ली क राजनीतिक कैदियो का केन्द्र था, मेरे परिचितो की कोई कमी नही थी। पर सयोग ऐसा बना कि जेल मे भी दोनो को टिकने का ठिकाना एक ही मिला। एक टैण्ट के आधे भाग को, जो उस समय खाली पडा था, हम दोनो ने घेर लिया।

मै जीवन मे स्वतन्त्र, बिल्कुल एकाकी कभी नही रहा था। सदैव परिवार और मित्रो की छत्रछाया मुझ पर बनी रही। इसलिए मुझे सहारे की आवश्यकता थी। सुमनजी की इस सम्बन्ध मे स्थिति मुझसे कही उत्तम थी। वे लाहौर मे बिल्कुल अकेले ही रह रहे थे। फलस्वरूप मैं सुमनजी के सहारे टिक गया। यह उनकी सहृदयता और उदारता थी कि उन्होने यह भारी-भरकम बोझ हँसी-खुशी स्वीकार कर लिया।

कुछ दिन बाद ही सुमनजी के इस परिवार मे स्वामी केवलानन्द दीपकर, श्री वृषभान एडवोकेट और श्री राजेन्द्रपाल पुरी भी सम्मिलित हो गए। श्री शिवदत्त काले भी कुछ दिन के लिए इस परिवार के सदस्य रहे, किन्तु शीघ्र ही जेल की अवधि समाप्त हो जाने पर वे रिहा होकर चले गए। श्री दीपकर भी कुछ समय बाद इस परिवार से पृथक् हो गए। शेष बचे चार व्यक्ति लगभग एक वर्ष तक साथ रहे। उनके पारस्परिक सम्बन्ध निरन्तर घनिष्ठ होते चले गए। बाद के दिनो मे, काल, स्थान और पद की दूरी

और अवरोध भी इन सम्बन्धों मे कोई विशेष अन्तर नही उत्पन्न कर सके। आज तक ये सम्बन्ध लगभग उसी प्रकार बने हुए है। उस काल के विशेषाधिकार भी उसी रूप मे आज भी स्थायी है।

जेल का जीवन काफी अजीब होता है। खास तौर पर नजरबन्दी का जीवन, जिसमे कारावास की अवधि सर्वथा अनिश्चित रहती है। १९४२ अर्थात् 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की नजरबन्दी विशेष रूप मे कठिन थी। अग्रेज दूसरे महायुद्ध मे उलझे हुए थे। ऐसे समय म किसी आन्दोलन का छिड़ना उनके लिए सर्वथा असह्य था। काले कानूनो का दस म बोलबाला था। तनिक-सा भी सन्देह होने पर किसी भी व्यक्ति को बिना पूछताछ किये दफा १२९ के अन्तर्गत दो मास तक जेल मे या पुलिस की हवालात मे सडाया जा सकता था। इसके बाद दफा १२६ लागू करके उसे वर्षो तक जेल मे नजरबन्द रखा जाता था। इसके लिए किसी प्रकार की अदालती कार्रवाई, न्याय का नाटक खेलने की भी जरूरत नही थी। जिसे चाहा पकडकर जेल मे ठूँस दिया। कोई पूछने वाला नही था।

स्वय जेल म भी पग पग पर पाबन्दियाँ लगा दी गई थी। पढने लिखने की छूट नही थी। खेल-कूद पर रोक लगी हुई थी। समाचार-पत्रो के नाम पर 'इलस्ट्रेटेड वीकली' और दो चार टटपूँजिये अग्रेजी, उर्दू और हिन्दी के दैनिक पत्र थे। घर से किसी प्रकार की खान पीन की सामग्री नही मँगाई जा सकती थी। यदि कोई छूट मिली हुई थी, तो यही कि अपनी रोटी अपने सामने अपनी देख रेख मे, पकवा सकते थे। रोटी मे ईंट-ककर के टुकडे खाने म इस प्रकार मुक्ति अवश्य मिली हुई थी।

फलस्वरूप जेल का वातावरण निष्क्रियता, शून्यता और घुटन से पूर्ण था। बनियान और जाँघिया जेल म राजनीतिक कैदियो और नजरबन्दो की सामान्य पोशाक थी। इस प्रकार जेल में हम सब लोग लगभग नगे ही रहते थे। किन्तु यह नगापन शरीर तक सीमित नही था। सारा दिन फुर्सत और कोई काम न होने से अपने-आपको छिपाने के लिए जो व्यस्तता की ओट रहती है, अब वह शेष नही थी। दूसरी ओर घुटन भी हमे नगा हो जाने को मजबूर करती थी। परिणाम यह था कि जिस प्रकार हम शरीर से नगे नजर आते थे, उसी प्रकार भीतर से भी नगे थे। इस नगेपन की सामान्य जानकारी इस बात से मिल जाती है कि आधा चम्मच चीनी और छटाँक अथवा आधी छटाँक दूध के लिए झगडे हो जाते थे। किन्तु बडी-बडी बातो मे भी यह नगापन इसी प्रकार स्पष्ट था। जेल वार्डर का यद्यपि सार्वजनिक रूप मे 'बायकाट' था, किन्तु कुछ लोग 'सबसे प्रेम' करने के उच्च आदर्श के नाम पर उससे सम्पर्क बनाये हुए थे। लोकतन्त्र के विरुद्ध होते हुए भी प्रेम का यह आदर्श कुछ बुरा और विशेष चुभने वाला नही था। चुभने वाली बात थी, उच्च आदर्श की ओट मे जेल-वार्डर से सम्पर्क बनाये रखकर उससे अवैध रूप मे बाहर से खाने-पीने और अन्य प्रकार की सामग्री मँगाना। पक्षपात, पार्टीबाजी, जबरदस्त

का ठेंगा जैसी अन्य चुभने वाली बातों का भी नग्न प्रदर्शन था। ये सब बातें किसी भी भावुक व्यक्ति को बेचैन बना देने वाली थीं।

जेल वह प्रयोगशाला थी, जिसमें सुमनजी ने अपने-आपको तपाया और अपने व्यक्तित्व को पिघलाकर नये सांचे में ढाला। वातावरण की जो विचित्र प्रतिक्रिया इस कोमल-हृदय व्यक्ति पर हुई वह मेरी कल्पना में बिल्कुल स्पष्ट अंकित है। सुमनजी मेरे नेत्रों के सम्मुख खड़े उच्च स्वर में इस समय भी ये घोषणा करते दृष्टिगोचर होते हैं—**अब की बार जब मैं जेल आऊँगा तब . करूँगा।** कवि होने के नाते धधकता आग का गोला वे पहले ही से थे, *जिसमें स्नेह की अग्नि प्रज्वलित थी।* किन्तु इस अग्नि परीक्षा ने उनका रूप बदल दिया। वे निर्भय बन गए, उनमें व्यावहारिक बुद्धि आ गई तथा जीवन के अनेक कटु सत्यों से, जिनके बारे में उनकी जानकारी केवल मौखिक थी, अब उनका वास्तविक परिचय हो गया। जेल ने जहां उन्हें रुलाया वहां हँसना और खेलना भी सिखाया और इस प्रकार उन्हें अपेक्षाकृत सतुलित बना दिया। जन्म सिद्ध और उच्च अधिकारों के लिए संघर्ष करने की बात तो वे पहले ही जानते थे, किन्तु छोटे-मोटे निजी अधिकारों के लिए संघर्ष किस प्रकार किया जाता है, यह बात उन्होंने यहां सीखी। उनमें हीनता की भावना का जो किंचित् अंश था, उसके अधिकांश को भी धोकर साफ कर देने में वे सफल हो गए और उनका व्यक्तित्व स्पष्ट ऊपर उभर आया। धीरे धीरे वे अधिकाधिक लोकप्रिय बनते चले गए। आज भी यह क्रम उसी प्रकार बना हुआ है।

वे आदर्शवादी किन्तु साथ ही व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं। मित्रों के वे ऐसे मित्र हैं, जिन पर आंख मूँदकर पूरी तरह भरोसा किया जा सकता है। किन्तु इस सबसे भी बड़ी बात यह है कि वे ऐसे मनुष्य हैं, जिनमें जीवन के ज्वार और भाटे में भी प्रेम की मन्दाकिनी सदैव तरंगित रहती है। और यही मेरी दृष्टि में सुमनजी की सबसे बड़ी विशेषता है, जो उनकी लौकिक सफलताओं से भी कहीं अधिक मूल्यवान है।

आज जबकि सुमनजी ने जीवन के पचास साल पूरे कर लिये हैं, तब मैं उनके दीर्घ जीवन की *कामना के साथ ही यह अभिलाषा भी अपने हृदय में रखता हूँ* कि सुमनजी की यह मनुष्यता की भावना उनमें इसी प्रकार शाश्वत बनी रहे। जीवन के उतार-चढ़ाव उसमें किसी प्रकार का अवरोध या बाधा उपस्थित न कर सकें।

जनसम्पर्क-विभाग (दिल्ली-प्रशासन)
अलीपुर रोड, दिल्ली ६

मेरा दोस्त सुमन

श्री विष्णु प्रभाकर

सुमन महत्त्वाकांक्षी है। पर महत्त्वाकांक्षी कौन नहीं होता ? सुमन यारबाश है। यारबाश बहुत कम लोग होते हैं। सदा सजग, सजीव, सक्रिय, सुमन अपनी इसी विशेषता के कारण 'सुमन' है। हर व्यक्ति मे कोई-न-कोई विशेषता होती है। लेकिन कुछ विशेषताएँ ऐसी होती है जो 'स्व' के अतिरिक्त 'पर' को सदा निगल जाने को आतुर रहती हैं। कुछ ऐसी होती हैं जो 'पर' के अस्तित्व मे ही अपना अस्तित्व सार्थक समझती हैं। सुमन की विशेषता इसी दूसरी श्रेणी की है। इसीलिए उसकी महत्त्वाकांक्षा कभी आडे नहीं आई। उसकी सक्रियता देखकर अचरज हुआ है। बहते पानी की तरह सदा कलकल-छलछल करते रहना उसे प्रिय है। भले ही उस कलकल-छलछल मे मादक संगीत न हो पर जीवन्त उमग अवश्य है। वह अपने चारो ओर भीड पसन्द करता है दोस्तो की भीड। ऐसे दोस्तों की भीड, जो निहायत बेतकल्लुफ हो, जो उसके कहने पर कुछ करने को आतुर रहे और जिनके लिए वह स्वय भी कुछ करने का अवसर पा सके। काम करना और काम करा लेना, दोनो उसे खूब आते हैं।

सुमन सदा कुछ-न-कुछ करने को आतुर रहता है। इसलिए जहाँ वह होता है वहाँ शोर होता है। समस्याएँ उठती है सस्थाएँ उभरती हैं। सभापतित्व होता है। कवि-सम्मेलन राजनैतिक सम्मेलन, शिक्षण सस्थान, यहाँ तक कि वृक्षारोपण-समारोह, नही तो अपने ही घर मे मुण्डन या ऐसा ही कोई सस्कार। कुछ भी हो, सुमन के रक्त मे उत्तेजना भरी रहती है। वह न हो तो सुमन 'सुमन' नहीं है। नई कॉलोनी उभर रही है। साथ मे बहुत सी समस्याएँ उभर रही है। बसावट की समस्या, प्रकाश की, यातायात की, सैलाब की। सुमन है कि पूरी शक्ति और पूरी ईमानदारी के साथ उनको व्यवस्थित कराने मे लगा है। और वह करा लेता है। बस ड्राइवर और कण्डक्टर तक उसके दोस्त बन जाते है। वस्तुत वह अधिकार तो चाहता है, पर उसे कर्म के माध्यम से और सबके हित मे सबके साथ मिलकर भोगना चाहता है। इसीलिए जिनके भी सम्पर्क मे वह आता है, वे उसके मित्र ही हो सकते हैं। उनका सुख-दुःख यथाशक्ति उसका अपना सुख-दुःख ही रहता है।

अपने पारिवारिक उत्सव भी वह जन समारोह के स्तर पर मनाता है। वही उमग, वही उत्साह, वही गहमागहमी ! जहाँ वह है, मनहूसियत पास नही फटकती।

सतत सघर्षशील—साहित्य मे, राजनीति मे, व्यवसाय मे, खेल मे कहीं भी वह आकाश से नही उतरता। धरती के परस मे से आकार लेता हुआ सब पर छा जाता है। यह बात नही कि उसे गुस्सा न आता हो, टकराव न होता हो, या वह दूसरे रास्ते न

जानता हो। महत्त्वाकांक्षी सबसे परिचित रहता है। सब सवर्षों के लिए प्रस्तुत रहना है। लेकिन सुमन कुटिल नहीं। छाती में भरकर छुरा घोपना वह नहीं जानता। विपरीत परिस्थितियों में भी वह सामने की कुर्सी खींचकर मन्द मन्द मुस्कराता हुआ अजीब सी शरारत आँखों में भरे बड़ी बेतकल्लुफी से यही कहेगा देखो यार बात यह है देखो भाई विष्णुजी अपना तो यह उसूल है।

और फिर कुछ मिनट के बाद वह उसी तरह मुस्कराता खिलखिलाता हुआ मोटे से पोटफोलियो को बगल में दबाये लौट जाएगा। लेकिन तब तक वातावरण पूरे-का पूरा बदल चुका होता है। ऐसा व्यक्ति दुश्मन नहीं बना सकता और कुछ भले ही बना ले।

सुमन की लोकप्रियता का एक और कारण भी है। वह चलता फिरता विश्व कोश है। जीवन के जिस क्षेत्र में वह सजग रहा है आर्यसमाज हो पत्रकारिता हो सम्पादन हो स्वतन्त्रता संग्राम हो उस क्षेत्र की सारी घटनाएँ उसकी जिह्वा पर है। पूरे अंचल के व्यक्तियों तक की एक लम्बी सूची वह देखते देखते बनवा सकता है। किसने कब क्या किया किसका किससे क्या सम्बन्ध है किससे कब उसकी पहली मुलाकात हुई तब वहाँ कौन-कौन थे क्या क्या बात हुई थी यह वह ऐसे बता देता है जैसे वह घटना अभी घट रही हो। उस दिन मैं कह बैठा याद नहीं आ रहा तुमसे पहली बार कब मिला था ?

वह मुस्कराया। बोला तुम्हें याद नहीं लेकिन मुझे याद है। दिल्ली में अमुक अमुक तारीख का जब पहला हिन्दी पत्रकार सम्मेलन हुआ था तब तुमसे मुलाकात हुई थी। उस वक्त सुधीन्द्र जगदीश चतुर्वेदी शम्भूनाथ सक्सेना आदि साथ थे अरे वही शम्भूनाथ सक्सेना जो विचार में काम करते थे।

सहसा हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। वह सारी घटना जैसे आँखों के सामने फिर से तर गई। उसने यहाँ तक बता दिया कि उस समय वह जो फोटो खिंचा था उसमें कौन किसके पास और क्या बैठा था। फिर कहा और देखो दूसरी बार तुमसे लाहौर में मुलाकात हुई थी। तुम कोई परीक्षा देने आये थे और हम प्रेमीजी के घर से कृष्णनगर तक साथ साथ पैदल गये थे। जयनाथ नलिन भी साथ में थे। अरे भई हरिकृष्ण प्रेमी के घर ही तो मिले थे। ऊपर पड़छत्ती में तो मैं रहता था और कृष्णनगर करुणजी के घर पर माधवजी भी थे और उन दिनों अनन्तमराल शास्त्री भी वहीं थे।

वह सब मुझे याद था। लेकिन मुझे सुमन की वह मुलाकात सबसे अधिक याद है जो दिल्ली में हौजकाजी के चौराहे के पास हुई थी। उन दिनों वह जेल से छूटा ही था और अपने गाँव बाबूगढ़ में नजरबन्द था। सहसा बगल में पुस्तक दबाये और लपक झपक करता हुआ मुझे हौजकाजी के चौराहे पर दिखाई दिया तो मैं चकित रह गया। मुस्कराते हुए उसने धीरे से कहा अरे भई घर नहीं चलूँगा और किसी से कहना मत

यहाँ आने की आज्ञा नही है, अभी लौट जाऊँगा। और हाँ, भाई साहब से नमस्कार कह देना।"

कई क्षण तक वह वही खडा-खडा बात करता रहा। फिर चला गया। भाई साहब और वह दोना काफी दिन तक जेल मे एक साथ रहे थे। उन दिनो के अनेक सस्मरण दोनो से ही मैंने सुने थे। और उनमे सुमन का यही रूप उभरा है जिसको मैंने अकित करने की चेष्टा की है। यो सुमन मे और भी बहुत-सी खूबियाँ हैं और गिनाना ही हो तो खराबियाँ भी गिना सकता हूँ, लेकिन उसमे ऐसी कोई खराबी नही है जो असाधारण हो। लेकिन खूबियाँ कुछ ऐसी है जो असाधारण हैं। जैसे, सुमन को किताबे सग्रह करने का शौक है। शौक बहुतो को होता है, लेकिन किताबो की कद्र करना कोई विरला ही जानता है। सुमन उन्ही विरलो मे से है। वह किताब के साथ वही बर्ताव करता है जो एक जीवन्त प्राणी के साथ किया जाता है। इसीलिए वह जिससे भी किताब माँगकर लाता है उसको वह बडे आग्रह के साथ लौटा देता है। अगर उसमे कुछ खराबी हो तो उसे ठीक भी करा देता है। अपने जीवन मे मैंने एक ही और ऐसा व्यक्ति देखा है, अन्यथा सब इसी सिद्धान्त के पक्षपाती हैं कि 'किसी को पुस्तक देना मूर्खता है। और यह उससे भी बडी मूर्खता है कि कोई पुस्तक लेकर वापस लौटाई जाए।" मैं स्वय पुस्तके खरीद कर सग्रह करता हूँ माँग कर लाता हूँ माँगने पर देता भी हूँ, इसीलिए मैं इस बात को इतनी गहराई से समझ सका हूँ।

सुमन ने हिन्दी की सेवा की है। हिन्दी मे अनेक प्रान्तीय भाषाओ के साहित्य को लाने का प्रयत्न किया है। अनेक बिखरी हुई चीजो का सम्पादन करके उन्हे सुलभ बनाया है। सुमन कवि भी है, और भी बहुत-कुछ लिखता-पढता है। लेकिन ये सब बातें ऐसी है जो बहुतो मे होती हैं और जिनकी मात्रा के सम्बन्ध मे मतभेद भी हो सकता है। लेकिन सुमन मे जो मित्रता का भाव है, जो साथीपन है, जो दूसरो को समझने और अपने आगे बढने के साथ-साथ दूसरो के लिए भी कुछ करने की उत्कण्ठा है वह विरल ही मिलती है। इसीलिए सुमन मुझे प्रिय है और इसीलिए उसके मित्रो की सख्या पर कोई अकुश नही है। मनुष्य के लिए इससे अधिक गर्व की बात और क्या हो सकती है कि वह मित्र बन सके। सुमन सचमुच ही मित्र जाति का है।

८१८ कुण्डेवालान,
अजमेरी गेट, दिल्ली ६

अनदेखी आत्मीयता

श्री रामेश्वर गुरु

ऐसे भी व्यक्ति जीवन में सम्पर्क स्थापित करते हैं जिनमें प्रत्यक्ष दरस-परस नहीं रहता, जिनसे साक्षात् कोई पहचान नहीं रहती, और जिनको चित्र में भी सहसा जाना नहीं जा सकता। फिर भी अनदेखा साम्य और अकारण उपजी प्रेरणा ऐसी कुछ आत्मीयता स्थापित करती है कि जो सहज ही आश्चर्य पैदा कर दे। भाई क्षेमचन्द्रजी 'सुमन' से मेरी अनदेखी आत्मीयता है। यदि कभी प्रसंग आवे और हम दोनों कहीं मिलें तो मुमकिन है बिना परिचय कराये हम एक-दूसरे को पहचान भी न पायें। पर इस भौतिक अपरिचय से आत्मीयता में कभी कोई बाधा नहीं आने की। अकारण और निःस्वार्थ स्नेह की दृढ़ता को न दूरी तोड़ सकती है, न समय ढीला कर सकता है।

क्षेमचन्द्रजी का एक पत्र आया। पत्र आत्मीयता का था। आश्चर्य हुआ, प्रसन्नता भी हुई। दूर शहर दिल्ली में अपनापन जतलाने वाला कोई हो सकता है, यह महसूस हुआ। देश के ऐतिहासिक केन्द्र-नगर में गहन स्नेही कुछेक हैं, उनमें एक की और सहज वृद्धि हुई, यह कम सतोष की बात नहीं थी। पत्र में कुछ सामग्री माँगी थी, थोडा सहयोग चाहा था और कुछ नामों की फेहरिस्त घटाने-बढाने की बात लिखी थी। सुमनजी स्त्री-गीत-कारों के सम्बन्ध की सामग्री एक संकलन के लिए जुटा रहे थे। मुझे आश्चर्य था कि दिल्ली में बसे इस साहित्य-साधक को मेरे अस्तित्व का पता कैसे और क्योंकर लग सका ! मैंने पत्र का उत्तर दिया। उत्तर का उत्तर आया, पत्र-व्यवहार का क्रम चल पड़ा। शिष्टाचार की कृत्रिम सीमाएँ ढीली हुईं, आत्मीयता का क्षेत्र विस्तृत हुआ। मैंने अपना दृष्टिकोण निस्संकोच उन्हें लिखा और उन्होंने अपनी बात बेलाग मुझे समझाई। अपनी समझ में मैंने जो ठीक समझा, उन्हें लिख भेजा। पत्र-व्यवहार की पृष्ठभूमि विशुद्ध साहित्यिक थी, पर उसमें श्रमवद्धता थी एक-दूसरे को समझने की और एक-दूसरे के सहयोग से कार्य-सम्पादन कर लेने की। एक पत्र में स्वर्गीय पंडित लोचनप्रसाद पाडेय और पंडित मुकुटधर पाडेय के सम्बन्ध की जानकारी चाही थी। जानकारी-सम्बन्धी कुछ भ्रम था। भ्रम-निवारण करते हुए मैंने वाछित मैटर लिख भेजा। अन्य कोई व्यक्ति होता तो सम्भव था, गुस्ताखी पर नाराज हो जाता, पर क्षेमचन्द्रजी इस साहित्यिक कमजोरी से मुक्त हैं। उन्हें सन्तोष हुआ, हर्ष हुआ और पत्रोत्तर देते हुए अपना दृष्टिकोण भी व्यक्त किया।

मेरा परिचय पत्र-व्यवहार वाला परिचय है। मेरा रिश्ता साहित्य-स्तर का, साहित्यिक कुटुम्ब का है। मैंने उन्हें धुन का पक्का पाया, योजनाओं को मूर्त रूप देने वाला पाया और अध्ययन-प्रवृत्ति का पोषक पाया। पिटी-पिटाई गली से हटकर साहित्य-निर्माण करने में उनका विश्वास है और इसीलिए उनके संकलनों में अभिनवता है,

मौलिकता है, नई सूझ और नय विचार हैं, वे नया मैटर प्राप्त करते रहने मे विश्वास करते है और अपरिचित साहित्यिका से, साहित्य-प्रेमियों से, साहित्य के विद्यार्थियो से सम्पर्क साधकर उन्हे अपन बडे कुटुम्ब मे मिलाते रहते हैं। मैं भी इसी तरह उनके बडे कुटुम्ब का एक मेम्बर बना हूँ। अब तो जब तक जीवित हूँ उनका कुटुम्बी जन बना रहूँगा और इस नाते कामना करता रहूँगा कि क्षेमचन्द्र भाई अबाध साहित्य-सेवा रत रह और अपने अध्ययन, मनन और चिन्तन का लाभ हिन्दी-ससार' को दे। उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना है !

दीक्षितपुरा,
जबलपुर (म० प्र०)

'गति' के प्रतीक 'सुमन'

श्री गोपालप्रसाद व्यास

सुमनजी के सम्बन्ध मे क्या लिखूं ! निकट वे कभी मेरे रहे नही, दूर कभी गये नही। साहित्य मैंने उनका पढा नही, और कामो मे उनके शरीक हुआ नही। पर आदमी को जानन तथा मानने के लिए क्या ये चीजें बहुत जरूरी हैं ? आप किसी को न जान और न मान इसस जो आदमी चल रहा है, बढ रहा है और विकासमान है— उसम क्या काई विशेष अन्तर आता है ?

सुमनजी विकासमान व्यक्ति है। लगन और जीवट के आदमी हैं। अपने पैरो पर खुद खडे हुए हैं और अपना रास्ता वे स्वय बना रहे हैं। यह क्या कोई कम बात है ? इस सघर्षशील और स्वार्थपरक दुनिया के थपडो मे कौन कहाँ टिक पाता है और कहाँ कितना चल पाता है ? सामान्य स्थिति से जो स्वय उठकर असामान्य स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न करता है, वही मेरे लिए सही आदमी है, और वही आज के युग के लिए वरेण्य भी।

मजिल किसन देखी है, और कौन कहाँ तक पहुँचा है। पहुँच जाने पर भी किस-किसका पहुँचना किस-किसने स्वीकार किया है ! इसलिए महत्त्व मजिल का नही, महत्त्व चलन का है। सुमनजी चले है, चल रहे हैं, और चलेंगे भी। इसलिए वे मेरे लिए रूप व और गध के प्रतीक नही, गति के प्रतीक हैं। उस गति के, जिसे मैं प्यार करता हूँ। गति को प्यार करूँ और उसके प्रतीक 'सुमन' को अस्वीकार करूँ, यह कैसे हो सकता है !

सुमनजी असम्भव को सम्भव बनाने वाले हैं। खास तौर से तब, जबकि आदमी

सम्पादक की कुर्सी पर बैठा हो और उन्हे फोन करे—"भई, रागेय राघव चल बसे, उनकी कौन-कौन-सी किताबे है, कहाँ वे पैदा हुए थे, क्या-क्या विशेष वे जीवन मे कर गए ?" तो दूसरी ओर से उत्तर तत्काल समाधानपूर्वक मिलता है।

"अन्नपूर्णानन्द गये, चित्र चाहिए सुमनजी, साथ मे एक छोटा सा लेख भी। और देखना, कल सवेरे दस बजे तक मिल जाय, देर न हो !" और सुमनजी है कि दस बजने मे अभी दस मिनट की देर है, और चित्र तथा लेख-समेत हाजिर !

एक बार हमारे पत्र के सचालको ने कहा, "सरकुलेशन बढाने के लिए प्रभाकर के परीक्षार्थियो के लिए एक लेखमाला हमारे पत्र म छपनी चाहिए।" समस्या थी कि साहित्य, भाषा, छन्द, अलकार आदि विविध विषयो पर अलग अलग लेख कौन लिखे ? सुमनजी की तलाश हुई। उन्होने पूछा, "लेख कितना बडा हो, और कब किस समय तक प्रेस म आ जाया करे !" मेरी समस्या तत्काल हल हो गई।

केवल पत्र-पत्रिकाओ के लिए लेख लिखना ही नही, अगर कोई कवि सम्मेलन करना हो, सभा बुलानी हो, किसी का स्वागत या विदाई करनी हो, तो उसके लिए निमन्त्रण-पत्र भेजने से लेकर भाषण देने और अभिनन्दन-पत्र लिखने तक का सारा काम सुमनजी आनन-फानन म कर सकते है।

इतना ही क्यो ? राजधानी मे किसी को अपना समर्थन चाहिए तो वह सुमनजी की शरण मे जाय। यदि किसी का विरोध कराना हो तो सुमनजी से उसकी योजना बनवाये। पर खूबी यह कि वे समर्थन के लिए समर्थन करते हैं, और विरोध के लिए विरोध! अपने लिए तो वे जैसे है, वैसे ही है ! यह गति का एक दूसरा पहलू है। प्रगति के पथ मे गति के ऐसे कई मोड आते ही है।

प्रभु से प्रार्थना है कि 'गति' के प्रतीक सुमनजी जीवन म कभी 'दुर्गति' के शिकार न हो, और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए जिस पथ को उन्होने चुना है, उस पर सतत गतिमान रह !

दैनिक हिन्दुस्तान,
नई दिल्ली १

जीवन-तरु पर खिला हुआ जवा-कुसुम

श्री देवदत्त शास्त्री

तेईस-चौबीस वर्ष पुरानी याद अब भी ताजा है। मैं कश्मीर से लौटा था। लाहौर की बीडन रोड पर अपने एक सम्भ्रान्त मित्र के यहाँ ठहरा था। उनके घर एक लड़की आती-जाती थी, उसका नाम था स्वर्ण। वह हिन्दी में कहानियाँ लिखने का अभ्यास कर रही थी। एक दिन उसने चर्चा या गप-शप के दौरान एक ऐसे व्यक्तित्व का ज़िक्र छेड़ा जिसे सुनने के लिए मुझे बरबस आकृष्ट होना पड़ा था। स्वर्ण कह रही थी, "भई क्या बताऊँ देखने में बड़ा भोला, बोलने में बहुत ही मीठा, लेकिन उसके अन्दर भरी हुई है आग-ही आग। बहुत सुन्दर कविता लिखता है, बहुत मस्ती से कविता पढ़ता है। जब वह कविता पढ़ता है तो उसके रोम-रोम से शोले बरसते नजर आते हैं। . "

स्वर्ण भावुक बनी कहे जा रही थी। मैंने बीच में ही टोका, "यह तो बताओ कि क्रान्ति और शान्ति इन दो ध्रुवों के बीच टिका हुआ वह 'धूमज्योति सलिलमरुता सन्निपात कौन-सा मेघ' है जो लाहौर में गरज रहा है, तड़प रहा है, कड़क रहा है ?"

स्वर्ण ने कहा, "अजी आप कुछ-का कुछ समझ रहे हैं। मैं सच कहती हूँ, हवा में गाँठ बाँधने की कोशिश नहीं कर रही हूँ। वह ऐसा ही है, ऐसा ही है। बड़ा प्यारा आदमी है। किसी दिन भी बरतानिया सरकार की संगीनें उसे घेर लेंगी, वह रह नहीं पाएगा लाहौर में।"

मैंने कहा, "सब ठीक है—मानता हूँ, किन्तु उसका नाम क्या है ?"

"उसका नाम क्षेमचन्द्र 'सुमन' है। कल यशजी से मैं कहूँगी। वह आपकी भेंट उससे जरूर करा देंगे। या आप ही चले जाइयेगा 'हिन्दी मिलाप' कार्यालय में !"

बात आई और चली गई, किन्तु क्षेमचन्द्र 'सुमन' यह नाम दिल में घर बनाकर टिक गया।

इसके बाद सन् १९४४ में घूमता-घामता मैं मुरादाबाद गया। वहाँ मंडी धनौरा में 'शिक्षा-सुधा' नाम की एक मासिक पत्रिका निकलती थी। कुछ ऐसे वजूहात थे कि चार-छः महीने वहीं टालने या काटने की जरूरत थी, सो 'शिक्षा-सुधा' में काम करने लगा। वहाँ देखा तो मुझसे पहले एक सम्पादक क्षेमचन्द्र 'सुमन' काम करके चले गए थे। शायद उन्हें भी अपने कुछ दिन टालने या काटने थे वहाँ। दिल में सोचा, 'हो न हो, यह वही स्वर्ण का बताया हुआ क्षेमचन्द्र 'सुमन' तो नहीं है !' पत्रिका के संचालक मास्टर साहब (स्व० रामकुमार अग्रवाल) से पूछा तो उन्होंने बताया कि "यह अपने मेरठ जिले के ही हैं, लाहौर में रहते थे। पंजाब-सरकार द्वारा पहले फीरोजपुर-जेल में नज़रबन्द किये गए और अब वहाँ से निर्वासित कर दिये गए हैं। आजकल अपने गाँव में ही नज़र-

पन्द है। अच्छे कवि हैं। आर्यसमाजी विचारों के हैं। ज्वालापुर महाविद्यालय के स्नातक हैं। हम तो चाहते थे कि यहां रहें, लेकिन वह टिक न सके।

यह सुनकर मुझे पक्का विश्वास हो गया कि यह और कोई नहीं, स्वप्न का बनाया हुआ वही 'अंगारा' लाहौर का क्षेमचन्द्र सुमन ही है। मैं छः महीने वहां काटकर चला आया और 'अभ्युदय' साप्ताहिक (प्रयाग) का सम्पादन करने लगा। अचानक एक दिन मुझे एक खण्ड काव्य समालोचनार्थ डाक से मिला। उसका नाम 'कारा' था। उलट-पुलटकर किताब देखी तो रचयिता का नाम क्षेमचन्द्र 'सुमन' लिखा था और उसमें कवि का चित्र भी छपा था। चित्र में कवि का मासूम सा चेहरा देखकर और नाम पढ़कर स्वप्न की बात याद आ गई। पुस्तक की भूमिका में 'सुमन' ने अपनी पीड़ाओं, अपने संघर्ष और अपने योद्धा-जीवन का जो संक्षिप्त परिचय दिया था, उसमें 'सुमन' के प्रति मुझमें अनन्य स्नेह पैदा हो गया।

दो तीन वर्ष बाद मैं दिल्ली गया तो वहां एक ऐसे परिवार में ठहरा, जहां कवियों, क्रान्तिकारियों, लेखकों और पत्रकारों का ही जमघट रहता था। अजीब दुनिया थी वह भी। इस विचित्र परिवार का हर सदस्य अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुए था। राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक विचारधाराएं सबकी भिन्न भिन्न थीं। किन्तु उस अनेकता में भी एकता थी, उस भिन्नता में भी अभिन्नता थी, जैसे जल और उसकी तरंग को एक दूसरे से न तो भिन्न कहा जा सकता है और न अभिन्न।

इस परिवार के आंगन में ही मैंने सर्वप्रथम क्षेमचन्द्र 'सुमन' को देखा। हम दोनों यद्यपि पहली ही बार मिले थे और एक दूसरे के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से सर्वथा अपरिचित थे, फिर भी अचरज होता है यह सोचकर कि हम दोनों ऐसे मिले मानो बरसों से एक साथ रहते हुए कभी एक-दूसरे से अलग ही न हुए हों। सच कहता हूं, एक-दूसरे का परिचय जानने या पूछने की न तो आवश्यकता हुई और न उधर ध्यान ही गया। बड़े मजे की जिन्दगी थी वह। उस परिवार का हर व्यक्ति सारी दुनिया को मुट्ठी में भरकर दिल्ली में तहलका मचाता था। कहीं कवि सम्मेलन का आयोजन हो रहा है, तो कहीं पत्रकार गोष्ठी चल रही है, तो कहीं क्रान्तिकारी योजनाओं पर विचार चल रहा है। कहीं लेखकों के संगठन की बात सोची जा रही है, तो कहीं पूंजीवादी प्रकाशकों के विरुद्ध अभियान शुरू करने के लिए कमर कसी जा रही है।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' देखने में सचमुच कुमारी स्वप्न के शब्दों में 'प्यारा और भोला' था, किन्तु अपने कार्य, जीवन और विचारों में वह बहुत ही सशक्त, सन्नद्ध एवं क्रान्तिकारी था। उसमें असामान्य संगठन-शक्ति थी। नई नई योजनाएं बनाने में वह बड़ा माहिर था। स्वाभिमान और स्वावलम्बन की पूंजी से ही वह उस समय राजधानी में रह रहा था, कहीं नौकर नहीं था, किसी पूंजीपति की छाया भी उसे नहीं मिली थी, फिर भी पत्नी और बूढ़ी मां के साथ सपरिवार वह दिल्ली में दहाड़ रहा था। शायद कुछ ही दिनों बाद

अर्चना' नाम की एक कन्या भी सुमन के उस छोटे-से परिवार मे आ गई थी।

दूसरे को सम्मान देना शायद 'सुमन' का स्वभाव है। पहली ही नजर मे वह मुझे आदर से देखने लगा। कुछ भी हो, सुमन ने प्रारम्भ से ही मुझे सम्मान दिया है। हम दोनो के बीच वर्षों का अन्तराल उपस्थित होने पर भी, कभी पत्र-व्यवहार न होने पर भी, एक-दूसरे के प्रति स्नेह और आदर के भाव मे कभी कमी नही आई।

अगर कोई मुझसे पूछे कि 'सुमन' का परिचय क्या है? तो मैं एक वाक्य मे कहूँगा कि अनेक सघर्षों और उतार-चढावों का नाम क्षेमचन्द्र 'सुमन' है। कवि की भाषा मे कहना हो तो कहूँगा कि 'सुमन जीवन-तरु पर खिला हुआ, वह जवाकुसुम है, जिसे साहित्य-देवता ने स्वय अपने सिर पर चढा लिया है।' इसीलिए आज 'सुमन' साहित्य-देवता का श्रृंगार बना हुआ हिन्दी-मन्दिर को अपनी सुगन्ध से सुवासित कर रहा है। वह कभी न मुरझाने वाला 'सुमन' है, जिसकी मुस्कान मे साहित्य मुस्कराता है, जिसकी हर पखुरी मे सर्जन की सुगन्ध वास करती है। जो निसर्ग के धरातल पर पनपते ही खिल उठा है, जिसकी हर लरज म 'ऐतरेयब्राह्मण' के सचरण-गीत—'चरैवेति-चरैवेति' की झन्कार मुखरित होती है।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' का हृदय विचारो और प्रेरणाओ का मधुमय उत्स बन गया है। उसका व्यक्तित्व परिवर्तनो की लहरो मे अपने व्यक्त और अव्यक्त रूपो की एकता लेकर साहित्य म प्रतिफलित हुआ करता है। मैं कहना चाहता हूँ कि मेरा प्यारा 'सुमन' वह वीणा है जिसे मिजराव की जरूरत नही, वह खुद ही बजता है

मिजराब का मुहताज नहीं साजे-मुहब्बत,
वह आप ही बजता है, बजाया नहीं जाता।

सुमन न १६ सितम्बर '६५ को जिन्दगी की पचासवी सीढी पर पैर रख दिया है। वह मुझसे उम्र मे ढाई बरस छोटा है, किन्तु साधना, श्रम और सर्जना मे ढाई गुना बड़ा है। वह मेरा समानधर्मा है, वह मेरा अभिन्न मित्र है। जिन्दगी की राह पर मे मैं आगे-आगे चल रहा हूँ और वह मेरी छोडी हुई पगडडी को राजपथ बनाता हुआ, काँटो की छाती पर पैर रखता हुआ आगे बढ रहा है। पीछे मे मुझे ललकार रहा है, 'चलते रहो, चलते रहो!' 'चरैवेति-चरैवेति' यही उसका जीवन-दर्शन बन गया है। चलते रहने को वह 'सतयुग' कहता है और रुक जाने को 'कलियुग'। जो काँटे उसके पथ को रोकते थे वही अब उसका अभिनन्दन कर रहे हैं। जो शूल पग-पग पर उसे पीडा पहुँचाते थे, वे अब फूल बनकर उसके पथ पर बिछे जाते हैं। आगे बढने के उत्साह से समरयात्रिक सुमन का कहना है—आकाक्षाएँ, सिद्धियाँ यदि मुझे अमर न बना सकें तो इनका क्या प्रयोजन!

सच कहता हूँ, मुझे सुमन की जीवन-गति से रश्क हो रहा है। सोचता हूँ, खीझता हूँ कि मैं इससे ढाई वर्ष पहले इस दुनिया मे क्यो आ गया? जो सुख इसके पीछे चलने मे है, इसके बनाये पथ पर चलने मे है अथवा इसके हाथ मे हाथ डालकर चलने मे है

वह इससे आगे चलने मे हरगिज नही। लाचार हूँ, रुक भी नही सकता और पीछे लौट भी नही सकता। फिर भी मै 'सुमन' के आगे-आगे उसकी 'जय जयकार' बनकर, उसका अभिनन्दन बनकर चल रहा हूँ। वह अपना यशोगान सुनता हुआ पीछे-पीछे चलता रहे, चलता रहे, यही कामना है!

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग

मेरे उपनामरासी

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

आज पच्चीस वर्ष बीत गए, किन्तु बात कल की-सी मालूम पड़ती है। जनवरी सन् १९४१ ई० मे मैंने मण्डी धनौरा, जिला मुरादाबाद से प्रकाशित होने वाले एक मासिक पत्र 'शिक्षा-सुधा' का सम्पादन-कार्य सँभाला था। जीवन मे शिक्षक या सम्पादक बनने की ही साध थी। परमेश ने वैसा अवसर दिया था, निदान सम्पादन-कार्य सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मैंने सन् १९४१ ई० की जनवरी के तीसरे सप्ताह मे 'शिक्षा-सुधा' के सपादक के रूप मे कार्य-भार ग्रहण किया था। उसकी कुछ सम्पादकीय टिप्पणियाँ तो मैंने स्वय लिखी थी, किन्तु दो या एक टिप्पणी के मूल लेखक 'शिक्षा सुधा' के सचालक श्री रामकुमार अग्रवाल थे। उनकी लेखनी से जो टिप्पणी लिखी गई थी, उसका शीर्षक था—" 'शिक्षा सुधा' सुमन से सुमन को!" अक प्रकाशित होने पर जब मैने सर्वप्रथम उस टिप्पणी के शीर्षक को पढा तो अर्थ लगाया कि श्री रामकुमार अग्रवाल अपने सु दर मन मे 'शिक्षा-सुधा' के सम्पादन का कार्य-भार मुझे सौप रहे है, इसी भावना से सम्बद्ध इस शीर्षक की टिप्पणी लिखी गई है, लेकिन आदि से अन्त तक पूरी टिप्पणी पढने पर पता चला कि बात कुछ और ही और भाव कुछ निराला ही है।

उस समय तक मैं यह समझता था कि हिन्दी साहित्य मे 'सुमन' नाम से दो ही व्यक्ति सेवा कर रहे है—एक श्री रामनाथ 'सुमन' और दूसरे श्री शिवमगलसिंह 'सुमन'। उस समय तक मैं अपने को साहित्य सेवी मानता तो न था, किन्तु चुपके-चुपके कुछ दम-सा जरूर भरता था। अह के मनोराज्य की परिधि को कुछ विस्तृत बनाकर उसमे जब अधिक से अधिक 'सुमन' नाम के साहित्य सेवियो के नाम लिखने बैठता तो तीन की सख्या से आगे न बढ पाता था। लेकिन जिस दिन मैंने जनवरी सन् १९४१ ई० की 'शिक्षा-

सुधा' में वह टिप्पणी पढ़ी तो पता चला कि हिन्दी-साहित्य में एक व्यक्ति और है, जो आयु में मुझसे एक वर्ष बड़ा है और 'सुमन' नाम से ही हिन्दी-प्रेमियों तथा हिन्दी-सेवियों में विख्यात है, जिसका कि पूरा नाम है – क्षेमचन्द्र 'सुमन'। इसी साहित्यिक बन्धु ने मुझसे पहले जुलाई सन् १९४० ई० में 'शिक्षा-सुधा' का सम्पादन-पद सुशोभित किया था और उक्त पत्रिका को पर्याप्त रूप से गौरवशालिनी एवं लोकप्रिय बनाया था। उसके साहित्यिक शृंगार को बढ़ाने में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने वास्तव में चार चाँद लगा दिए थे। वह साहित्यिक बन्धु अर्थात् मेरे उपनामराशी भाई श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', दिसम्बर सन् १९४० ई० में 'शिक्षा-सुधा' के सम्पादक-पद से त्याग पत्र देकर चले गए थे, तदुपरान्त जनवरी सन् १९४१ ई० मैंने उक्त पत्रिका का सम्पादन-कार्य करना आरम्भ किया था। तब मैं भी अपने नाम के पीछे 'सुमन' उपनाम लिखा करता था। इसीलिए श्री रामकुमार अग्रवाल ने 'शिक्षा-सुधा' सुमन से सुमन को' शीर्षक से टिप्पणी लिखी थी।

यही वे मधुर क्षण थे जब मैंने अपने साहित्यिक बन्धु श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के साहित्यिक स्वरूप से परोक्ष परिचय प्राप्त किया था। फिर संयोगवश तीन मास के उपरान्त मेरे उपनामराशी बन्धु श्री क्षेमचन्द्र सुमन मण्डी धनौरा आये और मेरे नेत्रों ने भी अपार आनन्द प्राप्त किया। साहू रामशरणजी तथा श्री चेतनस्वरूपजी श्री क्षेमचन्द्र सुमन के साहित्य-प्रेमी साथियों में से थे। साहित्यिक एकता के नाते वे मेरे भी अच्छे मित्र बन गए थे। सन्ध्या-समय एक बगीची में हम लोग अर्थात् साहू रामशरणजी, चेतनस्वरूपजी, सागरमलजी रामकुमारजी और मैं भाई क्षेमचन्द्रजी के साथ साहित्यिक चर्चा करने लगे। कुछ समय बाद श्री रामकुमार अग्रवाल तथा साहू रामशरणजी के प्रस्ताव पर भाई क्षेमचन्द्र सुमन' ने अपनी दो रचनाएँ (कविताएँ) सुनाईं। उस दिन मैंने भाई सुमनजी के हृदय से तथा उनकी काव्यात्मक प्रतिभा से साक्षात् परिचय करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। काव्य में जो उदात्तता और ऊँचाई है, कवि के स्वभाव में भी वह पाई जाती है। जिसमें वह उदात्तता है, वही वास्तव में सच्चा कवि है। उस उदात्तता की झलक उस दिन मेरे मन की आँखों ने भाई क्षेमचन्द्रजी में देख ली थी और बाद में ज्यों-ज्यों मैं उनके जीवन के निकट आता गया, त्यों-त्यों उस झलक में मैं गहरी चमक और आडम्बरहीन आकर्षण ही पाता गया।

भाई सुमनजी में एक ऐसी सहज स्नेहमयी मिलनसारिता है कि प्रथम बार के परिचय में ही वे किसी भी सहृदय को अपना बना लेते हैं। दो-तीन महीनों के अन्दर ही मैं भाई सुमनजी के परिवार का एक व्यक्ति बन गया था। किसी-न-किसी साहित्यिक समारोह के नाते भाई सुमनजी मुझे हापुड़ और बाबूगढ़ बुलाते ही रहते थे। बाबूगढ़ उनकी जन्मभूमि है और हापुड़ उनका आँगन है। उनके घर और आँगन में बड़े आत्मीय-भाव को प्राप्त करते हुए मैंने उनके साथ अनेक साहित्यिक चर्चाओं एवं कविगोष्ठियों में भाग लिया है। उनके मित्रों की संख्या को देखकर कोई सहज ही में उनकी लोक-

प्रियता को समझ सकता है। साहित्यिक अथवा सामाजिक कार्यों मे अपने मन, मस्तिष्क और शरीर से कुछ-न-कुछ योग देते रहना भाई सुमनजी का एक स्वभाव है अथवा कहिए कि उनका एक जन्मजात गुण है। साहित्य के क्षेत्र मे वे एक हिन्दी-सेवी है, तो राजनीति के क्षेत्र म गाधी-सेवी। काग्रेस मे रहकर देश-सेवा के लिए उन्होने जेल यात्रा की है और कारावास का कष्ट भी झेला है।

'शिक्षा-सुधा' से त्यागपत्र देकर भाई क्षेमचन्द्रजी नवम्बर १६४१ ई० म 'हिन्दी-भवन' लाहौर मे हिन्दी-सेवा के लिए चले गए थे। सन् १६४२ के आन्दोलन मे सरकार ने उन्हे राजबन्दी बना लिया था। दिनाक २२ मार्च, सन् १६४४ ई० को मुझे भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' के राजबन्दी बनाये जाने का समाचार उनके बडे भाई प० लखीरामजी शर्मा के पत्र से मिला था। तब मैंने सुमनजी को, अर्थात् फीरोजपुर (पजाब) डिस्ट्रिक्ट जल के 'ए' क्लास के राजबन्दी श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को, एक पत्र लिखा था। उस पत्र की शब्दावली इस प्रकार है

दिनाक २२-३-१६४४

प्रिय बन्धुवर, सस्नेह वन्दे!

आपके बडे भाई साहब प० लखीरामजी शर्मा के पत्र से विदित हुआ कि आपको सरकार ने १२६वी धारा मे डिस्ट्रिक्ट जेल, फीरोजपुर का राजबन्दी बना लिया है। इस समाचार से चिन्ता और हर्ष दोनो ही हुए, परन्तु अन्त मे विजय हर्ष की ही रही। कारावास किसी अवधि के साथ है या अनिश्चित समय तक ? भैया, इसमे कोई सन्देह नही कि—

जितने कष्ट कंटकों मे है,
जिनका जीवन-सुमन खिला;
गौरव-गंध उन्हें उतना ही,
यत्र तत्र सर्वत्र मिला।"

मुझे पूर्ण आशा और विश्वास है कि आप जीवन की आपत्तियो का सप्रेम आलिंगन करेंगे। सदैव योग्य सेवा एव स्नेह-भाव का ही अभिलाषी हूँ।

आपका भाई
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कई वर्षों के उपरान्त जब भाई सुमनजी दिल्ली मे आकर राजकमल प्रकाशन मे काम करने लगे, तब फिर अचानक अलीगढ मे एक दिन हम दोनो मिल गए। मै उन्हे घर लिवा ले लाया और रात भर गत जीवन की कथा सुनता रहा। हम दोनो को पता भी न चला कि वह रात कब और किस तरह बीत गई।

साहित्य-अकादेमी, दिल्ली मे आने पर भाई सुमनजी ने मुझसे मेरा सक्षिप्त परि-

चय माँगा था, जिसे उन्होंने अकादेमी की परिचय-पुस्तिका में प्रकाशित कराया था। सम्भवतः यह सन् १९६० ई० की बात है। तब तक मैं अम्बाप्रसाद 'सुमन' से डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' हो गया था और मेरी पी-एच० डी० उपाधि का शोध-प्रबन्ध 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित भी हो चुका था। भाई सुमनजी के स्नेहमय आग्रह के फलस्वरूप ही मैंने अपना संक्षिप्त परिचय उनके पास भेजा था। उनके स्नेह के कारण ही मुझमें और मेरी कृति 'ब्रजभाषा शब्दावली' में लेनिनग्राड (रूस) के प्रसिद्ध हिन्दी-साहित्यकार श्री पी० ए० बारान्निकोव का परिचय हुआ और वे मेरे साहित्यिक बन्धु बने।

भाई सुमनजी अपने मित्रों से मित्रता निभाने में सफल मित्र और सच्चे साथी हैं। उनके व्यवहार में लेश-मात्र भी अन्तर नहीं आया है। उनकी स्वाभाविकता और आडम्बरहीन मिलनसारिता जैसी पहले थी, वैसी ही आज है। सन् १९४१ के श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' में और सन् १९६६ के साहित्यकार श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' में मैं कोई अन्तर नहीं पाता हूँ। वही सहज भाव और वही बातों का बेतकल्लुफ लहजा। दिल्ली के हिन्दी-साहित्यकारों के समाज में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' की लोकप्रियता प्रथम श्रेणी की है। नव-लेखन को प्रोत्साहन देने में वे लब्धप्रतिष्ठ हैं। किसी भी संस्था या मित्र को दिल्ली में यदि कहीं कवि-गोष्ठी का आयोजन करना हो तो उसे केवल सुमनजी से निवेदन कर देना ही पर्याप्त है शेष सब-कुछ स्वतः ही हो जायगा।

अलीगढ़-विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

हाथियों में सुमन

श्री चिरंजीत

बात सन् १९४८ की है। मैं उन दिनों 'वीर अर्जुन' कार्यालय दिल्ली द्वारा प्रकाशित मासिक 'मनोरंजन' का संपादन कर रहा था। एक शाम दिल्ली के कोमल-कांत कवि और मेरे परम मित्र स्व० श्री शंभुनाथ 'शेष' आये और बोले—"हाथी-खाना चलोगे ?"

मैं प्रेस के लिए मैटर तैयार करने में तल्लीन था। दफ्तर से जाने से पहले प्रेस-रूपी दैत्य की उदर-पूर्ति का प्रबन्ध करना भी बहुत जरूरी था, अतः शेषजी के प्रश्न का उत्तर देने के बजाय मैंने अनमने भाव से पूछा, "हाथीखाने में क्या है ?"

"सुमन !" शेषजी ने मुस्कराकर कहा।

मैं अब भी प्रेस के मैटर मे उलझा हुआ था। मैंने कहा, "वाह शेषजी, हाथीखाने मे भला सुमन कैसे हो सकता है ! अगर वहाँ कोई फूल होगा भी, तो हाथियो ने उसे तोड़कर, कुचलकर या तो उदरस्थ कर लिया होगा या मिट्टी मे मिला दिया होगा।"

शेषजी की मधुर मुस्कान एकाएक गर्वीली हो गई और वे बोले, "मित्र, वह फूल कोई मामूली फूल नही है। वह है तीखे काँटो वाला गुलाब का फूल। उसे तोडने के प्रयत्न मे कई हाथियो की सूँडें तक छलनी हो चुकी है।"

"क्या !" सहसा मेरे मुँह से निकला। चमत्कारी गुलाब के इस ज़िक्र ने मेरा ध्यान प्रेस के मैटर की ओर स एकाएक हटा दिया और तभी शेषजी की बात मेरी समझ मे आ गई। उनका सकेत था यशस्वी एव निर्भीक पत्रकार, कवि और आलोचक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' की ओर। मुझे तब तक ज्ञात नही था कि मित्रवर सुमनजी नई दिल्ली के गोल मार्केट का छोडकर पुरानी दिल्ली के पहाडी धीरज इलाके के हाथीखाना नामक मुहल्ले मे आ बसे है।

यह बातचीत आज से कोई दो दशक पुरानी हो चुकी है। इस बीच सुमनजी पुरानी दिल्ली का हाथीखाना छोडकर शाहदरा के पास दिलशाद कॉलोनी मे जा बसे हैं। फिर भी हाथियो म फूल के उक्त रूपक द्वारा उनके जीवन तथा व्यक्तित्व की वह तात्त्विक व्याख्या आज भी उतनी ही सटीक और सत्य है, जितनी बीस वर्ष पहले थी। बल्कि कहना चाहिए, सुमनजी के सम्पूर्ण सघर्षरत, परन्तु उत्फुल्ल जीवन एव व्यक्तित्व की इससे अधिक सही कोई व्याख्या हो ही नही सकती। उनका अन्तरग मित्र होने के नाते मैं जानता हूँ कि वे पहले राजनीतिक हाथियो से घिरे हुए थे, बाद मे वे साहित्यिक हाथियो मे घिर गए—और आज भी घिरे हुए है। कुछ हाथियो न स्वत प्रस्फुटित धरती के इस 'सुमन' को कुचलकर निगलना चाहा, परन्तु काँटो के कारण निगल न सके। कुछ हाथियो ने देवता की पूजा के बहाने इसे तोडकर काल-प्रवाह मे वहाना चाहा, परन्तु बहा न सके। कुछ हाथियो ने इसे अपने मस्तक का शृगार बनाकर इसे हवा म उडाना चाहा, परन्तु उडा न सके। यह सुमन नि स्वार्थ देश-भक्ति, निष्ठा और हिन्दी-सेवा के दृढ वृन्त पर रस-रग-गध का अक्षय भडार लिये उन्मुक्त भाव से खिला रहा और सदा खिला रहेगा।

बहुत कम लोग जानते हैं कि मेरी जन्मभूमि पजाब को सुमनजी की साधना-भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। सुमनजी से मेरा सर्वप्रथम परिचय सन् १९४१ मे लाहौर मे गुरुवर प० उदयशकर भट्ट के निवासस्थान पर हुआ था। सयोग की बात है कि तब मै तो पजाब से दिल्ली मे आ बसा था और सुमनजी स्वतत्रता-सग्राम के सिपाही और हिन्दी-सेवी के रूप मे पजाब के सास्कृतिक केन्द्र मे जा बसे थे। उन दिनो मैं दिल्ली मे कवि-सम्मेलनो मे भाग लेने के लिए प्राय पजाब जाया करता था। तब तक सुमनजी के काव्य की

दबी-घुटी कलिका खिलकर फूल बन चुकी थी। सुमनजी का पहला काव्य-संग्रह 'मल्लिका' सन् १९४३ में पंजाब में ही प्रकाशित हुआ था। उन्हीं दिनों दिल्ली में मेरे पहले काव्य-संग्रह 'चिलमन' के प्रकाशन की योजना चल रही थी। यह समान कवि-कर्म ही हमारी आजीवन मैत्री का कारण बना। स्वतन्त्रता-संग्राम की चेतना से अनुप्राणित, काव्यानुराग-रंजित सीधे एवं सरल सुमनजी ने पहली ही मुलाकात में निश्छल स्नेह और अपनत्व से मुझे अपना बना लिया था। मैं तब दिल्ली छोड़कर वापस पंजाब जाना चाहता था। कहना न होगा, मेरी इस इच्छा के पीछे सुमनजी का स्नेहाकर्षण भी था। मैंने कई बार कोशिश की थी कि मैं लाहौर पहुँचकर दैनिक 'हिन्दी मिलाप' में उनका सहयोगी बन जाऊँ, परन्तु भाग्य को कुछ और ही मंजूर था। १९४२ की क्रांति की आंधी के वेग में सुमनजी जेल में चले गए। जेल से छूटे, तो जिला मेरठ स्थित अपने गांव बाबूगढ़ में नज़र-बंद कर दिये गए, और फिर १९४५ में मेरे-जैसे मित्रों का आकर्षण उन्हें दिल्ली खींच लाया। कहा जा सकता है कि मैं तो पंजाब वापस जा न सका, सुमनजी ही मेरे पास दिल्ली चले आए।

दिल्ली में ही 'सुमन' पूरी तरह खिलकर गुलाब बना। कुछ प्राणियों ने इस गुलाब के कांटों की शिकायत की—और वे आज भी कर रहे हैं। दरअसल बात यह है कि ऐसे प्राणियों को सुमनजी के कांटे ही दिखाई देते हैं, उनकी स्नेहिल-कोमल पंखुड़ियां नहीं।

जब हम श्री क्षेमचन्द्र सुमन के समूचे साहित्यिक कृतित्व पर दृष्टिपात करते हैं तो उनके 'सुमन' उपनाम की सार्थकता पूरी तरह सिद्ध हो जाती है। कवि, पत्रकार और आलोचक के रूप में सुमनजी ने हिन्दी-साहित्य की बगिया की अद्वितीय शोभा बढ़ाई, अपनी प्रतिभा के अक्षय सौरभ से भाव-लहरियों को सुवासित किया और अपनी काव्यात्मा के मधु-मकरंद से काव्य-प्रेमी भौंरों तथा तितलियों की प्यास बुझाई।

सुमनजी का काव्य-साहित्य अधिकांशत: 'मल्लिका', 'बन्दी के गान' और 'कारा' में संगृहीत है। महाकवि निराला ने 'मल्लिका' की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था—"सरल-ललित पदावली, स्वस्थ भावना और कारुण्य की तीव्रता इस साधना-प्रधान कवि की कविता के चमत्कारात्मक रूप हैं।" सन् '४२ की क्रांति के सम्बन्ध में रचित खंड-काव्य 'कारा' को हिन्दी-साहित्य के विद्वानों ने अपने विषय का पहला ग्रंथ घोषित किया था। तीनों काव्य-ग्रंथों में स्वाधीनता-संग्राम में जूझती हुई भारत की तरुण पीढ़ी की मर-मिटने की बलिदानी भावना, आशा-निराशा, साहस और करुणा की ऐसी उदात्त अभिव्यक्ति मिलती है, जो हिन्दी-काव्य-साहित्य का गौरव कही जा सकती है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद सुमनजी की साहित्य-साधना में एक ऐसा परिवर्तन आया, जिसके कारण उनकी गणना हिन्दी-साहित्य के गौरवशाली उन्नायकों में होने लगी। सुमनजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य के इतिहास को इलाहाबाद और बनारस-

जैसे दो तीन नगरों की संकीर्ण परिधि से निकालकर अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने का बीड़ा उठाया। उनके इस अभियान के फलस्वरूप उनके 'हिन्दी साहित्य नये प्रयोग' और 'साहित्य-विवेचन'-जैसे ग्रंथों द्वारा अनेक नये-पुराने साहित्य-साधक प्रकाश मे आये साहित्य-सृजन की क्षेत्रीय व्यापकता प्रमाणित हुई और हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप की भूमिका तैयार हुई। उनके ये ग्रंथ कई दृष्टियो म 'तार-सप्तक'-जैसे सकलनो से भी अधिक महत्त्व रखते हैं। इसी सिलसिले मे सुमनजी ने हिन्दीतर भारत की प्रमुख भाषाओ के साहित्यो के सम्बन्ध म एक विशाल परिचय-ग्रथमाला की परियोजना बनाकर अकेले उसे कार्यान्वित किया। सुमनजी का यह महान् राष्ट्रीय कार्य ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। उन्होने एक नि स्वार्थ राष्ट्रसेवी के रूप मे अपने-आप को छिपाकर, पृष्ठभूमि म रखकर दूसरो के व्यक्तित्वो एव कृतित्वो को विज्ञापित तथा आलोकित किया।

इसी सन्दर्भ मे मुझे सन् १९५२ की एक घटना का स्मरण हो आता है। उन दिनो मैं दिल्ली से प्रकाशित होने वाले लोकप्रिय पत्र 'साप्ताहिक जनसत्ता' का सम्पादन कर रहा था। तब तक सुमनजी की नि स्वार्थ हिन्दी सेवा, ओजस्विनी साहित्य साधना और अटूट लगन की सुगध चारो ओर फैल चुकी थी। एक दिन मैंने सुमनजी से पत्र म प्रकाशनार्थ एक कविता मागी। वे बोले, 'बधु, अब मैं अपने दु ख-दर्द की सकुचित परिधि से निकलकर दूसरो के दु ख-दर्द का भागीदार बन गया हूँ। इसीलिए मै आत्माभिव्यक्ति और आत्मविज्ञापन के बजाय नई पीढी की प्रतिभा के मुकुलो को प्रस्फुटित एव प्रख्यात देखना चाहता हूँ। यदि चाहो तो मैं उन नये प्रतिभाशाली कवियो के सम्बन्ध म एक लेख-माला शुरू कर सकता हूँ, जिन्हे गुटबदी के कारण साहित्यिक मान्यता नही मिली।"

मुझे विचार पसन्द आया और सुमनजी ने 'साप्ताहिक जनसत्ता' मे 'नई चेतना के प्रतीक' शीर्षक से नये कवियो के सम्बन्ध मे उच्च कोटि की एक लेखमाला शुरू की, जिसका समस्त हिन्दीभाषी प्रातो मे स्वागत एव अभिनन्दन हुआ। परन्तु यह स्वागत और अभिनन्दन साहित्यिक जगल के कुछ स्वनामधन्य हाथियो को बहुत ही बुरा लगा और न चाहते हुए भी मुझे वह लेखमाला बन्द करनी पडी। यह सब होने पर भी सुमनजी हतोत्साह नही हुए। उन्होने उपेक्षित और लुक छिपे साहित्यकारो एव मूक साधको को प्रकाश मे लाने का अपना मगल-कार्य जारी रखा। इसी प्रयत्न के अन्तर्गत उन्होने नये कवियो तथा कवयित्रियो के कई परिचय-ग्रथ एव सकलन प्रकाशित किये हैं और लगता है, भविष्य मे भी प्रकाशित करते रहगे। ऐसे नि स्वार्थ तथा दृढप्रतिज्ञ हिन्दी-सेवी के सम्मुख किसका माथा श्रद्धा से नहीं झुक जाएगा?

हाँ, सुना है कि हाथियो को हिन्दी के इस गुलाब का अस्तित्व अब भी अखरता है, परन्तु काँटो के कारण वे उससे जरा दूर ही रहते है।

आकाशवाणी,
नई दिल्ली

कर्मठ व्यक्ति : शानदार व्यक्तित्व

श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' । पिछला इतिहास देखता हूँ तो वे मेरे बचपन के साथी हैं । लँगोटिया यार कहना पसन्द करता, किन्तु न तो वे लँगोटी पहनते थे और न मैं । हमने इस प्रकार के बन्धन को कभी पसन्द नहीं किया । वे मेरे पुराने बन्धु हैं, आत्म-बन्धु । हम चार भाई हैं । माताजी ने उन्हें अपना पाँचवाँ पुत्र माना था—उनके स्वभाव के कारण । वे हमारे मेरठ वाले मकान में आते, रहते, खाते-पीते, लड़ते झगड़ते और भविष्य के जीवन की योजनाएँ बनाया करते । हमारे परिवार में पर्व, उत्सव-त्यौहार बहुत मनाये जाते और खाने पीने के विविध पदार्थ बड़े आडम्बर के साथ बनते । मुझे स्मरण नहीं पड़ता कि वह कौन-सा पदार्थ छूट जाता था, जिसे माताजी 'सुमन' के लिए सुरक्षित नहीं रख छोड़ती थीं । वह बराबर का हिस्सा पाता था । बचपन का वह स्नेह अभी भी चला आ रहा है—**लरिकाई की प्रेम कहौ अलि, कैसे छूटै ?**

पिछले इतिहास को और वर्तमान को देखता हूँ तो दिखता है कि सुमनजी सखा से बन्धु, बन्धु से सलाहकार, सलाहकार से मार्ग-दर्शक और मार्ग-दर्शक से गुरु, मुझसे गुरुतर बनते चले गए है। स्नेह और बेतकल्लुफी तो अब भी पहले-जैसी ही है। किन्तु वे जैसे थोड़ा अलग कटकर ऊँचे उठ गए हैं । कारण, मैंने अपने मिटते हुए व्यक्तित्व को मिटने दिया है, और वे मिट-मिटकर बनते रहे हैं । उनका व्यक्तित्व मिट-मिटकर ही बना-सँवरा, निखरा और दृढ़ता को प्राप्त कर सका है । स्वाभिमान के नाम पर मैं अपने अहंकार की रक्षा करता रहा हूँ, और सुमनजी अहं को मिटाकर सबके बनते चले गए हैं । मैं सीमाओं में सिकुड़ता रहा हूँ और वे व्यवहार-कुशलता के कारण विस्तृत क्षेत्र में सँभले हैं ।

शान्ति, समझौता और जोड़—ये तीन गुण सुमनजी के रहे । उग्रता, विद्रोह और तोड़—मैंने इन्हें अपनाया । सुमनजी ने सदा ही इनसे बचकर चलने की सलाह दी । मैंने जो रास्ता चल सकने में असमर्थ होने के कारण छोड़ा वे उस पर चलकर मंजिल तक पहुँचे । प्रूफरीडरी में मैं असमर्थ रहा, वे प्रूफरीडर से प्रेस के मैनेजर, मालिक की सीमा तक पहुँचे । छोटी पुस्तकें लिखना मैंने पसन्द नहीं किया, वे छोटी छोटी पुस्तकों से लेकर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख सके । आज उनकी कई दर्जन पुस्तकें मार्केट में हैं, और मैं मार्केट से कट गया हूँ । मेरी ही क्या बात है, अनेक ऐसे हैं, जो अपनी कठोर गर्दन के कारण छोटे द्वारों को पार नहीं कर पाते और अँधेरे-बन्द कमरे में ही घिरे रह जाते हैं, किन्तु इसके विपरीत सुमनजी झुककर निकल गए हैं, और बड़े विस्तृत क्षेत्रों में जा पहुँचे हैं । उन्होंने कठोरता के स्थान पर सुदृढ़ता को, और साथ ही लचक को प्रधानता दी है । उनके जीवन-सिद्धान्तों और व्यवहार-गुणों में एक अद्भुत फ्लैक्सीबिलिटी रही है । सफलता के लिए

यह आवश्यक है। सुमनजी का व्यक्तित्व एक सफल व्यक्तित्व रहा है। जहाँ आम तो क्या खास खास आदमी भी अनेक क्षत्रों से अपरिचित रह जाते है वहाँ सुमनजी का परिचय क्षत्र विशाल और विस्तृत है।

वे सफाईपसन्द व्यक्ति है। पुस्तकों को वे बड करीने से सजाकर रखते है। बात चीत म भी वसी सफाई पसन्द करते और बरतते हैं। उन्हाने अपना निजी मकान बनाया है। सच तो यह है कि वे अपने मित्रो परिचितो के दिलो म पहले ही अपना निजी मकान बना चुके है।

लोग कहते हैं कि सुमनजी हल्के आदमी हैं हल्के लेखक है। हाँ सुमनजी हल्के आदमी है अपने व्यक्तित्व का बोझ किसी पर नही डालते किसी से चरण वन्दना नही कराते सरलता से सबसे मिलते है। किसी को भुलाते नही सब किसी की सहायता के लिए दौड पडते हैं। हल्के लेखक है उनकी भाषा सबको समझ मे आती है शब्द जाल वहाँ नही है। उनकी पुस्तको के लिए कोई कुजी नही लिखनी पडती। कोई घुमाव फिराव नही सीधी सरल शली।

सुमनजी कमठ व्यक्ति है अपने परो पर खड। अपना जीवन अपने हाथो से निर्मित किया है—*कोई पैतृक सम्पत्ति नही शिक्षा के लिए कोई सहायता नही आगे बढने के लिए* कोई सिफारिश नही।

मुझे याद है कि एक बार अतिवृष्टि के कारण सुमनजी का मकान अपार जल राशि म डूब गया था। मकान की छत पर खड हुए चिल्ला चिल्लाकर वे अपने जीवित रहने का प्रमाण दे रहे थे। सच तो यह है कि सुमनजी का सारा जीवन ही ऐसा रहा है। कितने ही दुष्टजनो ने अपने दुर्व्यवहार और कुदृष्टि के जल प्लावन म सुमनजी को डुबाने के प्रयत्न किये किन्तु वे अब भी अपने व्यक्तित्व की सुदृढ नीव पर बने जीवन के मकान की छत पर खड सबसे ऊपर खड पुकार पुकारकर कह रहे है कि मै जीवित हू और शान के साथ जीवित हूँ।

इस कमठ व्यक्ति को शानदार व्यक्तित्व को शतश प्रणाम!

आकाशवाणी,
जालन्धर सिटी

'सुमन'—काँटों पर खिली एक मुस्कान

श्री हसकुमार तिवारी

क्षेमचन्द्र 'सुमन' !

इस नाम के साथ ही एक ऐसे व्यक्ति ऐसे व्यक्तित्व की तस्वीर आँखो मे आ जाती है, जो जिन्दगी के हर मोर्चे पर सदा लडता ही आया है—अथक, अप्रतिहत, और पेशानी पर न तो पडने दिया है कभी बल, न चेहरे पर शिकन ! जिसने बाधाओं मे ही राह बनाकर मजिल तक काँटो पर चलने की कोशिश की है। दु ख के काले नकाब को बडी-बडी कठिनाई से हटाकर ही सुख का मुख देखा है। लाख आँधी-पानी हो, कपास की सुई हिल-डुलकर जैसे उत्तर पर ही जा खडी होती है, हजार मुसीबतो मे डोलता-डगमगाता यह आदमी अपनी धुन पर ही अडिग रहा है। चुस्त पाजामा और शेरवानी या बन्द गले के कुरते मे एक स्वस्थ लम्बा कद। घुटी हुई मूँछ-दाढी। सिर पर गाधी-टोपी। जब देखो, किसी-न किसी धुन मे अपने मन से उलझता-सुलझता चला जा रहा है, पर आप पर निगाह पडी नही कि डूबती उतराती आँखो मे वही सहज चमक आ गई, होठो पर खेल गई वही चीन्ही जानी मुस्कान ! एक पल मे चिन्ता के अतल तल से आँखो की ऊपरी सतह पर आ रहे। ये है क्षेमचन्द्र 'सुमन' !

सन् '४३ की बात है शायद। मैं एक सोलहा आने साहित्यिक साप्ताहिक 'ऊषा' का सपादन कर रहा था। सुमनजी अनमाँगे मोती-जैसे सौजन्य-भरे एक पत्र की कुछ पक्तियो मे, नेह-भरे कुछ हरफो मे मेरे पास आये और मेरे नितान्त अपने-से हो गए। इन लम्बे पच्चीस साल की अवधि मे अपनी और मेरी जिन्दगी के अनेक चढाव-उतारो मे वे एक ही से अचल-अविचल अपने है, जैसे बहती धारा पर किनारे खडे पेड की छाया खडी होती है। बहती धार पर खडी छाया की उपमा से निर्विकार-निश्चल निरर्थकता का भ्रम हो सकता है लेकिन नही, उनका सतत कर्म-तत्पर व्यावहारिक जीवन तो प्रेरक रहा ही है, वे बहुत बार अपनी सूझ-बूझ से भी प्रेरित करते रहे हैं। लिखने-लिखाने मे सदा जोर-जबर्दस्ती करके भी काम कराते रहे हैं। भारतीय भाषाओ और साहित्य पर उन्होने एक सीरीज निकालने की सोची और बगला पर मुझसे एक किताब लिखाकर ही रहे। मैंने 'सौन्दर्यशास्त्र' पर एक किताब शुरू की। उनसे जिक्र किया, तो अपने मन से ही अपने सग्रह से तत्सबधी सामग्रियाँ भेज दी। इस प्रकार वे महज मुझे ही प्रेरित करते रहे हो, सो नही, जाने कितनो से इस प्रकार स्नेह प्यार की जिद से काम कराया। स्वय तो काम करने से वे कभी थकते ही नही, ऐसा लगता है।

यो बहुत खिलते-खुलते नही—ऊपरी आवरण उनका सख्त, गम्भीरता का है, मगर चट्टानो के नीचे उमगे झरने-जैसी मस्ती ही उनकी असलियत है। आज अब कम

लोग यह जानते हैं कि सुमनजी ने कभी कविता भी की है। गद्य के लम्बे-सपाट राजपथ पर आज उन्हे निर्बाध चलते देखकर यह कल्पना भी नही की जा सकती कि कविता की कानन-वीथियो से उन कदमो को, कल्पना के कुज मे रमने से उनके इस वास्तव व्याव-हारिक मन को कभी लगाव भी रहा है—पर उन्होंने कविताएँ लिखी और मस्ती मे सम्मेलनो मे उन्हे सुनाया भी। वैसे अनेक सम्मेलनो मे साथ रहने का गवाह मैं हूँ।

लेकिन उनकी कुशल व्यावहारिकता से यह हैरत बेशक होती है कि वे आखिर कवि कैसे हुए! न वह लापरवाही, न वह गैर-जिम्मेदारी, न निराशा से टूट-फूट जाने की पस्ती। जीवन मे आगे की हर राह बन्द दिखी, मगर चलते रहे, कठिन-से-कठिन कसौटी मे हँसते रहे, हर बाधा से लडते और जूझते रहे—मजिल मिलने की बात सोची भी कैसे जाए, मगर अपनी राह उन्होंने आप बनाई जरूर। लाख कुछ हो, मैंने उन्हें कभी टूटते नही देखा। मायूसी की विषम-से विषम परिस्थितिया मे भी मुझे उनसे मिलने का मौका मिला है, मगर जब तक बात उन्होंने बताई नही, उनकी बेफिक्र हँसी और ताजगी से असलियत का पता नही चल सका और इस तरह वे आज भी वैसे ही लडते हुए सिपाही है—न सरदार हुए, न शायद होने की कामना है।

सुमन से इसीलिए मुझे प्यार है। वास्तव मे वह प्यार करने लायक दोस्त है—वक्त की किसी आँच से उसकी मिताई के साफ काँच पर मैल नही आया—मैं उनकी इस खूबी का बहुत ही कायल हूँ। वे बाधाओ से रुके नही, आफतो से झुके नही, दु खो से दुखे नही—यह मुझे वास्तव मे बडी बात लगी है, जो उनकी किसी भी कृति और किसी भी कृतित्व से कीमती है। इसी मानी मे उनके उपनाम 'सुमन' की सार्थकता मैं मानता हूँ। नाम के साथ उपनाम जोडने की इस अन्धी परिपाटी का मैं कभी हामी नही रहा। यह मुझे कतई पसन्द नही थी कभी। नाहक एक पूँछ लगाने की जरूरत भी क्या आखिर? पहले की तरह कविताओ मे उसे कहीं लिखा नही जाता। और फिर नाम बुरा हो तो उपनाम रख लेने का अर्थ भी है, यो इसका क्या तुक भला? मगर 'सुमन' का उपनाम मैं बर्दाश्त कर गया...इस आदमी का वह सही परिचायक है ..यह काँटो पर की खिली मुस्कान है .सुन्दर, प्यारी!

मानसरोवर, गया (बिहार)

ध्येयवादी मिशनरी

श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

लगभग पच्चीस वर्ष पहले की बात है। दिल्ली में प्रथम हिन्दी पत्रकार-सम्मेलन हुआ था। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने यह सम्मेलन बुलाया था और 'विश्व-मित्र'-सपादक श्री मूलचन्द्र अग्रवाल इसके अध्यक्ष थे। उस समय हिन्दी के क्षेत्र में काम करने वाले विभिन्न पत्रकार बहुत बडी संख्या मे उपस्थित हुए थे। मैं उस समय तक नियमित पत्रकार नही हुआ था। जीवन-यापन के लिए वकालत करता था, लेकिन शौकिया पत्रकार बन चुका था। पत्र-पत्रिकाओं मे लेख लिखना या एकाध मासिक पत्र-पत्रिका का सम्पादन करना और 'लीडर' तथा 'यूनाइटेड प्रेस' के लिए समाचार भेजना, यह मेरी पत्र-कारिता के कुछ काम थे। सम्मेलन में भाग लेने की मेरी बडी इच्छा थी और इसलिए मैंने अपने गुरुवर डॉ० सत्येन्द्र से, जो उन दिनो आगरा की 'साधना' का सम्पादन कर रहे थे, प्रतिनिधि के रूप मे दिल्ली जाने की अनुमति मांगी। उन्होंने मुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर ही नही भेजा, बल्कि 'साधना' के 'परिचय-अक' के लिए कुछ सामग्री एकत्र करने का भी भार मुझे सौंप दिया। इसलिए इस पत्रकार संघ के अधिवेशन मे जितने पत्रकार-मित्र उपस्थित हुए थे, उनसे मिलने-जुलने का मुझे एक और अवसर भी मिल गया।

हिन्दी पत्रकार संघ के इस अधिवेशन मे जो पत्रकार उपस्थित हुए थे, उनमे पुरानी पीढी तो समाप्तप्राय हो गई। सर्वश्री बाबूराव विष्णु पराडकर, प० कृष्णकान्त मालवीय, गणेशशकर विद्यार्थी, प० इन्द्र विद्यावाचस्पति, प० रामगोपाल विद्यालकार, प० सत्यदेव विद्यालकार, सिद्धनाथ माधव आगरकर-जैसे श्रेष्ठ सपादक अब नही रहे। कुछ ऐसे पत्रकार बन्धु थे जो उस समय अत्यन्त सचेष्ट थे, परन्तु जो आज उतने सक्रिय नहीं दिखाई देते। कुछ ने पत्रकारिता का धधा ही छोड दिया। इसी सम्मेलन में मेरी भेंट श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से हुई। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि पिछले पच्चीस वर्ष मे श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' उसी लगन और उत्साह से साहित्य और हिन्दी-सेवा मे लगे हुए हैं, जिस उत्साह से वह आज से पच्चीस वर्ष पूर्व दिखाई देते थे।

सुमनजी के सम्बन्ध मे जो सबसे बडी बात दिखाई देती है, वह यह है कि सुमनजी आज भी वैसे ही दीखते है जैसे कि वह पच्चीस वर्ष पहले थे। उनकी शारीरिक बनावट मे, उनकी वेशभूषा मे, उनकी विचारधारा मे इन पच्चीस वर्षों के सघर्ष के परिणामस्वरूप कोई कटुता, रूक्षता अथवा किसी प्रकार की ऐसी दशा का परिचय नहीं मिलता जो इस बात का सकेत करती हो कि यह छरहरा युवक-सा दीखने वाला व्यक्ति जीवन के पचास वर्ष और साहित्य-सेवा के तीस वर्ष काट चुका है। इसका मुख्य कारण, जैसाकि मैं समझता हूँ, सुमनजी के व्यक्तित्व का प्रसाद गुण है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने हिन्दी पत्रकारिता के वे दिन देखे है, जब पत्रकार का जीवन पूर्णतया कटकाकीर्ण था और आज के युग मे जबकि लेखन और पत्रकारिता से अर्थ-सचय की भी सम्भावना हो गई है, सुमनजी आर्थिक दृष्टि से अब भी उसी चौराहे पर खडे है। यानी उनके आर्थिक प्रयास अपने दैनिक रोजमर्रा की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए ही काफी होते है। परन्तु आप उन्हे गिडगिडाते या शिकायत करते नही सुन सकते। यह आत्मविश्वास और स्वावलम्बन की भावना है जो उनके चित्त और शरीर क यौवन को कायम रखे हुए है और हम सब लोगो को इससे उत्साहित होना चाहिए प्रेरणा लेनी चाहिए।

हिन्दी लेखको की श्रद्धाजलि तब तक पूरी नही मानी जाती जब तक कि लेखक उस व्यक्ति क साथ अपने व्यक्तिगत परिचय के प्रमाण न दे दे। इस महान यज्ञ के अवसर पर मैं इस नियम का अपवाद नही बनना चाहता। जैसा कि मैने लिखा पिछले पच्चीस वर्षों से सुमनजी के साथ मेरे सम्बन्ध रहे हैं और उनका मुझपर प्यार रहा है। मजे की बात यह रही है कि कभी भी कोई ऐसा अवसर नही आया जबकि मुझे सुमनजी की कोई सेवा करने का मौका मिला हो, लेकिन इसके बाद भी उनका प्रेमभाजन होना मेरे लिए स्वभावत प्रसन्नता की बात है। शायद इसका कारण यह है कि बहुत सी बातो मे उनके विचारो स मेरा मन मिलता है और बहुत सी समस्याओ पर हम लोग जो एक राष्ट्रीय आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य स देश की समस्याओ पर विचार करने के आदी रहे ह सोचते विचारत है। हिन्दी भवन की बैठको मे हम लोगो को अवसर मिलना जुलना होता था। अब तो वह बैठक ही नही होती, वैसे जब साहित्य अकादमी का कार्यालय कनॉट प्लेस म था तो उनके कमरे मे साहित्यिको की चौकडी जमा हो रहती थी।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन ने हिन्दी-साहित्य की बहुविध सेवा की है। आज भी वह राष्ट्रीय महत्त्व के काय को कर रहे हैं। परन्तु मैं उनकी जिस सेवा को कभी नही भूल सकूँगा, वह है साहित्य अकादमी द्वारा भारतीय भाषाओ की पुस्तको की प्रदर्शनी, जिसका हिन्दी मण्डप उन्होने सजाया था। आज स कोई दस-बारह वष पूव विभिन्न विषयो पर हिन्दी की चोटी की पुस्तकें, मैं समझता हूँ साढे तीन हजार पुस्तक होगी, इकट्ठी करके उन्होने बिना कुछ कहे बता दिया था कि देश की भाषाओ मे विचार के क्षेत्र मे हिन्दी का स्थान कहाँ है। प्रत्येक विषय पर विशेष तौर पर, वैज्ञानिक और तकनीकी विषयो पर, हिन्दी-पुस्तकें सगृहीत थी। अन्य भाषाओ की पुस्तकें भी उसी क्रम म लगी हुई थी और उस सबको देखने वाले को यह स्पष्ट पता चल जाता था कि हिन्दी की पुस्तकें विषय और अपनी महत्ता दोनो के अनुसार देश की सभी भाषाओ की पुस्तको से आगे हैं। हमने अन्य सेक्शनो के लोगो को यह कहते हुए सुना कि हिन्दी-क्षेत्र निकट का था, इसलिए उसको पुस्तकें जल्दी मिल गईं, अन्य क्षेत्रो की नही आ सकी। पर बात यह नही थी। बात यह थी कि सुमनजी ने इस प्रदर्शनी की महत्ता को आँक लिया था और उन्होने

एक ध्येयवादी मिशनरी ने रूप में अपना सारा वैयक्तिक परिचय, सार्वजनीन ज्ञान और अपने प्रेमपूर्ण निजी व्यवहार का लाभ उठाकर उस प्रदर्शनी को सजाया था और इस प्रकार, जबकि यह कहा जाता था कि हिन्दी में साहित्य ही नहीं है, हिन्दी भाषा की धाक सारी भाषाओं पर जमा दी थी। इसके बाद अनेक प्रदर्शनियाँ हुई हैं—जिनमें यह प्रयत्न किया गया है, पर जो बात सुमनजी ने कर दिखाई थी, वह दोहराई नहीं जा सकी।

सुमनजी ने अपने पचास यशस्वी वर्ष पूर्ण किये हैं। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह उनको इससे भी अधिक यशस्वी पचास वर्ष और दे जिससे कि वे अपने अनुभव और ज्ञान से हिन्दी जनता को और भी अधिक लाभान्वित कर सकें।

५५ काकानगर, नई दिल्ली ११

मन, वचन और कर्म से एकरूप

श्री कल्याणमल लोढा

सुमनजी का नाम हिन्दी की नई पीढ़ी के लिए कर्मठ शक्ति और कर्त्तव्य-परायणता की प्रेरणा है। मेरा सुमनजी से बहुत निकट का प्रत्यक्ष परिचय नहीं रहा फिर भी उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से मैं भली प्रकार अवगत हूँ। कुछ समय पूर्व वे कलकत्ता आये थे तब उनसे मिलने का और उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बंगीय हिन्दी-परिषद् के स्वागत-समारोह में बोलते हुए उन्होंने अपने जीवन के जो संस्मरण सुनाये उनमें उनकी निःस्पृह साधना, निष्काम कर्म-शक्ति का हम सब पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। कलकत्ता में कोई हिन्दी-भवन नहीं है, उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ। जिस प्रकार आदरणीया महादेवीजी ने एक बार कलकत्ता में हिन्दी-भाषा-भाषियों को अविलम्ब हिन्दी-भवन तैयार करने की प्रेरणा दी थी, उसी प्रकार सुमनजी ने भी इस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने के लिए कलकत्ता के वृहत्तर हिन्दी-समाज को उत्साहित किया। उनकी वाणी में जहाँ दृढ़ता थी, वहाँ ओज भी था। सचमुच उनकी चिन्तन-शक्ति अद्भुत है।

मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व की सफलता उसके वचन, विचार और कार्य की एक-रूपता में है। कुछ व्यक्ति केवल सोचते हैं, कुछ व्यक्ति वचन के धनी हैं और कुछ केवल कार्य करना जानते हैं। अंग्रेजी में जिसे 'ए परफैक्ट कम्बीनेशन ऑफ हेड, हार्ट एण्ड हैण्ड' कहा गया है, वह सुमनजी के जीवन और व्यक्तित्व में पूर्णतया विद्यमान है। मन, वचन और कर्म की यह एकरूपता ही उनकी सफलता के रहस्य की कुंजी है।

आज जबकि भाषायी सकीर्णता और साहित्यिक गुटबन्दी के कारण रचनात्मक शक्ति और प्रतिभा, अनेक सदर्भों म अशक्त और निष्पन्द हो रही है ऐसे समय आवश्यकता है उन विचारको और कार्यकर्त्ताओ की, जो उसे सत्सकल्पयुक्त करके नवीन शक्ति और स्फुरणा से भर दें। सुमनजी का व्यक्तित्व ऐसा ही व्यक्तित्व है। ईश्वर उन्हे शतायु करें।

हिन्दी-विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

कार्यार्थी : श्रेयार्थी

श्री जयन्त वाचस्पति

भाई सुमन के अभिनन्दन का समाचार पाकर कुछ ऐसा लगा कि दिल्ली एक बार मेरे निकट फिर आ गई। कल्पना मे घूम गए अनेक ऐसे व्यक्ति—जो दिल्ली के थे, दिल्ली के हैं और जिन्हे दिल्ली ने अपना लिया है। सुमन भी अब दिल्ली वाले हैं। जिस वफादारी से वे दिल्ली के हो गए है उसका श्रेय दिल्ली के साहित्यकार उन्हे दें, विधिवत् उनका अभिनन्दन कर, यह उचित ही है। फिर 'सुमन' उन कुछ साहित्यिको म से हैं जिनको भुलाना सम्भव नही वह अवसर मिलते ही अपनी याद दिला देते हैं।

साहित्य अकादेमी-जैसी महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली अखिल भारतीय साहित्यिक सस्था के केन्द्रीय कार्यालय से सम्बद्ध सुमन-जैसे जागरूक साहित्यजीवी को हाफ सचुरी हिट करने पर मैं बधाई देता हूँ।

सुमनभाई से मेरा परिचय काफी पुराना है। बात जनवरी १९४१ की है। दिल्ली मे अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ का प्रथम अधिवेशन हो रहा था। उसके मनोनीत अध्यक्ष 'विश्वमित्र'-सचालक *श्री मूलचन्द्र अग्रवाल (अब स्व०) कलकत्ता से आने वाले* थे। ट्रेन भोर मे सुबह ६ बजे आती थी।

स्वागत समिति का कार्यालय पत्थर वाला से जामा मस्जिद जाने वाली सडक और जामा मस्जिद डिस्पेंसरी की ओर से आने वाली सडको के तिराहे पर 'ज्योति भवन' मे था। रात भर स्वागत समिति के सदस्य जागे थे और स्वागत समिति कार्यालय मे ही अध्यक्ष की अगवानी करने के लिए स्टेशन की ओर चल दिए थे।

उन दिनो की दिल्ली असली दिल्ली थी, उसका दिल्लीपन गया नही था। रात

का चौकीदार अपनी शानदार आवाज़ में 'जागते रहो' का नारा लगाता था, हर तीसरे कदम पर अपना लट्ठ सड़क पर ठोकता था, पीतल के हमाम में से मिट्टी के सौंधे-सौंधे सकोरे में डालकर चाय देने वाला घमंडीलाल सारी रात मोती सिनेमा के सामने वाली पटरी पर अपने खास लहजे में पुकारता था 'क्या गरियोम', और परौंठे वाली गली के लाला मच्चोमल की अस्सी वर्षीया माताजी एक झीनी-सी, बिना किनारे की धोती पहने हाथ में पूजा के फूलों आदि की चाँदी की डलिया लिये 'हरि ओम्'-'हरि ओम्' की रट लगाती हुई यमुना की ओर जाया करती थी।

उस जाड़े की रात में हम लोग स्टेशन को चले तो एक फुरहरी-सी आई। घमंडीलाल से एक-एक सकोरा चाय लेकर पी। चाय से भी जब विशेष गरमी न आई तो एक चकल्लस सूझी। मैंने एक हाथ-रिक्शा वाले से स्टेशन तक का भाड़ा पूछा। (उन दिनों दिल्ली में हाथ से खींचे जाने वाले रिक्शे ही चला करते थे।) उसने शायद दो आने माँगे। मैंने उससे कहा, 'शर्त एक है, तुम बैठोगे, मैं चलाऊँगा।" रिक्शा वाला मज़ाक को नहीं समझ सका। मैं रिक्शा ठेलता हुआ चल दिया। खाली रिक्शा ले जाने का कोई तुक नहीं था इसलिए उस दल में से सबसे हल्के जिस व्यक्ति को उसमें बैठने का निमन्त्रण दिया गया, वह व्यक्ति था क्षेमचन्द्र 'सुमन', जो मोती सिनेमा से पुरानी दिल्ली के रेलवे-स्टेशन तक बड़ी शान से उस रिक्शा में बैठकर गया था। अगर वह दावा करे कि उसकी रिक्शा को एक बार जयन्त वाचस्पति ने खींचा था तो वह गलत नहीं होगा।

उस ऐतिहासिक रिक्शा-यात्रा में ताली बजाने वाले सर्वश्री विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी', श्रीराम शर्मा 'राम' बनारसीदत्त 'सेवक' और लेखराम बी० ए० भी थे।

उन दिनों सुमन' फ्री-लांसर थे और सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली पधारे थे। बाद में १९४२-४३ में जब मैं दिल्ली, उत्तरप्रदेश और पंजाब की पुलिस को चकमा देता हुआ कुछ दिन लाहौर रहा था तो मेरा अड्डा 'हिन्दी मिलाप' के तत्कालीन सम्पादक भाई लेखराम के यहाँ था। 'सुमन' भी उन दिनों लेखरामजी के साथ ही काम किया करते थे और उनके पास ही रहते थे। सो उनसे चकल्लस हुआ करती थी।

मुझे अपने यहाँ आश्रय देने के कारण जब लेखरामजी को गिरफ्तार किया गया तो लेखरामजी के सहवासी होने के नाते 'सुमन' भी बड़े घर पहुँच गए और साढ़े तीन महीने की हवालात के बाद जब मुझे फीरोज़पुर-जेल में ले जाया गया तो देखा कि भाई लेखराम, सुमन तथा आचार्य दीपंकर आदि सभी साथी वहाँ पहले से मौजूद हैं।

मैं फीरोज़पुर राजनैतिक जेल का सबसे व्यस्त और मस्त व्यक्ति था। मेरा अधिकांश समय पढ़ने और लिखने में बीतता था और कभी-कभी जब पढ़ते-लिखते आँखें थक जाती थीं तो मुझे किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश होती थी जिसके साथ मैं साहित्य और कला के सम्बन्ध में बातचीत कर सकूँ। तो कभी-कभी भाई सुमन के साथ किसी एकान्त कोने में बैठकर चर्चा कर लेता था और प्रायः उनकी कविताएँ भी सुना करता

था। शायद अपना 'कारा' नामक काव्य भी उन्होने जेल मे ही प्रारम्भ कर दिया था। कभी कभी जेल म हम साहित्य-गोष्ठी किया करते थे। उसमे 'सुमन' अपनी कविताएँ बडी मस्ती और तरन्नुम से सुनाया करते थ। इसी कारण उनका नाम ही वहाँ 'कविजी' पड गया था। कुछ लोग मजाक मे उन्हे 'सुमन बहनजी' भी कह दिया करते थे।

गाँव म नजरवन्दी के दिन बिताने के बाद 'सुमन' ने दिल्ली को ही अपना स्थायी निवास बनाया और मैं एक लम्बे अरसे के लिए दिल्ली से दूर-दूर ही रहा। शायद १९५६ मे फिर भाई सुमन के निकट आने का अवसर मुझे तब मिला जबकि मुझे मकान की तलाश थी और मैं शहर मे नही रहना चाहता था। शाहदरा से दो मील की दूरी पर दिलशाद कॉलोनी मे मुझे सुमनजी ने एक कॉटेज दिलवा दिया और मैं उनके पास ही रहने लगा।

इस अरसे मे वह अच्छे-खासे पंजीपति बन गए थे। उनका अपना मकान था, *जिसमे टेलीफोन लगा था। उनकी लाइब्रेरी मे हजारो किताबे थी।* बडे-बडे कुछ ऐसे ग्रन्थ भी थे, जिन्ह देखकर मुझे डर लगता था। उनके घर खाना खाने पर उडद की दाल —कि जिस पर करीब पन्द्रह मिलीमीटर गाव का देसी घी तैरता होता था— और पीली देसी शक्कर तथा घी खाने को मिलता था। कॉलोनी मे वह पहले व्यक्ति थे कि जिन्होने मक्खियो और मच्छरो का प्रवेश घर म रोकने के लिए दरवाजो और खिडकियो मे जाली-दार पल्ले लगवा लिये थे। सब कमरो मे पंखे लगवाये थे और एवरक्लीन लैट्रीन बनवाई थी। इसीसे पता चलता था कि सुमन न केवल साहित्यिक थे, साथ ही वह एक सफल व्यावहारिक व्यक्ति भी थे, और मुझे विश्वास है, अब भी है।

अक्तूबर, १९५७ मे एक बार लगातार कई दिन तक बडी बारिश हुई। पानी की निकासी की उचित व्यवस्था न होने के कारण जब पानी चढता चढता कमरो के फर्श से भी ऊपर जाने लगा और उसमे अनेक प्रकार के जीव-जन्तु तैरते दीखने लगे तो मैंने घबराकर दिलशाद कॉलोनी छोड दी। *बाद मे एक बार यू० पी० रोडवेज की बस से* सफर करते हुए मैंने दूर से देखा कि सुमनजी के 'अजय-निवास' पर एक और मंजिल बन गई है।

दिल्ली के साहित्य-समाज म भाई 'सुमन' एक बहुत ही चुस्त और कर्मठ कार्यकर्त्ता है और बहुत से युवक साहित्यिक तो उन्हे 'गुरु' कहते है। इसके साथ ही मैं शाहदरा के सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र मे भी उनका प्रभाव देख चुका हूँ। शाहदरा मे तो वह एक प्रकार से 'किंग-मेकर' है।

भगवान् सुमनभाई को बहुत लम्बी उम्र दे और वह अपनी सेंचुरी, ओवर सेंचुरी मनाये, यह मेरी कामना है।

फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया
नामरूप, लखीमपुर (असम)

सुन्दर मन वाले 'सुमन'

श्री ब्रजकिशोर 'नारायण'

हिन्दी साहित्य की फुलवारी मे अनेक 'सुमन' हैं, किन्तु श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' की सुषमा और सुगन्ध का कोई सानी नही है। स्वरूप म, साक्षात्कार म, वार्तालाप मे, व्यवहार मे, सुख म, दु ख मे, लाभ मे, घाटे मे, हर जगह और प्रत्येक पहलू के प्रकाश मे यह व्यक्ति एकदम अपना ही प्रतीत होता है।

भाई 'सुमन' से मेरी मित्रता बहुत पुरानी है। १९४१ मे हम लोग लाहौर मे मिले थे। मैं कविवर हरिकृष्ण 'प्रेमी' के साथ रहता था। शाम की गोष्ठियो मे कविवर प० उदयशकर भट्ट, श्री माधव, प्रो० अनन्त 'मराल', कविवर (स्व०) करणजी तथा अन्य अनेक साहित्यकारो का दल एकत्र होता था। भाई जयनाथ 'नलिन', श्री यश, प्रो० वशिष्ठ, डॉ० वाहरी, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार, श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, श्री बट्टक और श्री त्यागी तो इन गोष्ठियो की जान हुआ करते थे। उदीयमानो मे प्रतिभाशाली कवि श्री दवराज दिनेश' और श्री (स्व०) भटनागर की अठखेलियो के क्या कहने! 'हिन्दी मिलाप' और अन्य हिन्दी-मासिको का सारा सम्पादक-मण्डल लारेंस गार्डन से लेकर लाजपतराय-भवन की शोभा बढाता था और हर रोज एक नये राज की ताजगी का अहसास उत्पन्न कराता था। भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' इन अहसासो की बुनियाद थे। नियमितता, नाश्ता-जलपान, यातायात और श्रवण-पाठन की सारी व्यवस्था इन्हीके जिम्मे रहती थी। क्या मजाल कि कही भी कोई गफलत हो जाय! जरा भी चूक रह जाय!! थोडी-सी भी शिकायत हो जाय!!!

जवानी का स्वर आरोह पर रहने के कारण सुमनजी उन दिनो कविताएँ गाकर पढते थ। भैया भट्टजी, प्रेमीजी, करणजी, नलिनजी और मैं सभी काककण्ठी कवि थे किंतु 'सुमन' की काकली से समा बँध जाता था। जब कभी अमृतसर से चिरजीत लाहौर आ जाते थे तो सुमनजी मे जैसे स्वर की दुहरी सुगन्ध समाहित हो जाती थी। फिर जो सुर-सन्धान चलता था तो अन्य भाषाओ के कवि-सम्मेलन हम अल्पभाषियो का लोहा मान लेते थे।

कवि-सम्मेलनो मे कई बार, कई जगह जाकर, बडी-बडी कडवी अनुभूतियाँ हुई थी। स्वागत-समिति वालो से कम, साथियो से अधिक। मगर इन सभी अनुभूतियो मे भाई 'सुमन' ही एक ऐसी बेदाग हस्ती सिद्ध होते थे कि कही भी कोई अह नहीं, अल्पमात्र भी बनावट नही! किंचित् भी कलुष नही। वही सरलता, वही हँसी, वही त्याग और वही उदारता! मुझे सुमनजी के इस स्वभाव ने बहुत मोहा। नतीजा यह हुआ कि हम औरो से अधिक अभिन्न हो गए। साथ-साथ नाश्ता, साथ-साथ भोजन और साथ-साथ

सैर ! जिस गोष्ठी में मैं न जाऊँ, 'सुमन' गायब ! जिस कवि सम्मेलन के नोटिस में 'सुमन' का नाम न छपे उसमे 'नारायण' नदारद !! गरज, कि हम एक-दूसरे के इतने निकट आ गए, जैसे सहोदर हो। प्रभु की यह अशेष कृपा है कि आज तक वह निकटता प्रगाढ़ ही होती चली जा रही है। कही भी कोई व्यवधान उपस्थित नही हुआ।

भारत का विभाजन हुआ तो लाहौर सबसे ज्यादा बिखरा। उस बिखराव के हम साहित्यकार सबसे बड़े शिकार बने। कोई कही फेंक दिया गया, कोई कही। मै अपने प्रान्त बिहार म लौटा और सरकारी नौकरी कर ली। सुमनजी भी कई जगह घूमते घामते साहित्य अकादेमी म अधिष्ठित हो गए। दिल्ली और पटना की दूरी कम नही है। फिर भी सुमनजी और मेरा मिलाप साल मे तीन-चार बार हो ही जाता है—**बहाने बहुत हैं जो मिलने पे आयो।**

मैं जब केन्द्रीय आकाशवाणी की हिन्दी परामर्शदात्री समिति का सदस्य मनोनीत हुआ तो हर तीसरे महीने दिल्ली जाने का डौल लगने लगा। दिल्ली जाकर और अपना दायित्व निभाकर सबसे पहली भेंट भाई सुमनजी से ही करता हूँ। उन्हे साथ म लेकर भटनागर भैया का दर्शन करता हूँ, फिर और कही। न जाने क्या, यह 'सुमन' नाम का व्यक्ति मुझे इतना अपना क्या प्रतीत होता है ? मेरे मन ने यह प्रश्न पिछले पच्चीस वर्षों म पच्चीस सौ बार से ज्यादा किया होगा ! मगर हर बार मैं निरुत्तर ही रहा हूँ। आज जो एक उत्तर सूझा है तो यह एक लघु कृति भी उभर आई है कि भाई 'सुमन' का अस्तित्व अपने नाम को तो सार्थक करता ही है, अपने उपनाम की भी पूरी महिमा मुग्धकारी बनाता है। वह सुन्दर मन वाली ऐसी मानव विभूति है जिससे देवत्व तरसे ! दानवता डरे !! ईश्वरत्व गौरवान्वित हो !!!

२२-२३ एम. एल ए क्लब
गार्डिनर रोड, पटना-१

मेरी भविष्यवाणी

श्री क्षितीशकुमार वेदालंकार

सुमन—मेरा साथी, मेरा हमदम, मेरा दोस्त, मेरा सहपाठी—सतीर्थ्य, मेरा हम-उम्र !

पर सच कहूँ, जितना निराश मुझे मेरे इस साथी न किया है उतना और किसी ने नही किया।

विद्यार्थी-जीवन भी कैसा विचित्र होता है ! किताबों की, ख़यालों की, वाद विवादों की, लेखन-पठन की, कविता करने की, सपनों की दुनिया और अपने साथियों तथा अपने बारे में तरह-तरह की भ्रान्त धारणाएँ बनाने की दुनिया। संसार के कर्म-क्षेत्र में आने पर किसी को किसी की भाग्य धारा कहाँ बहा ले जाएगी—यह उस समय कौन कल्पना कर सकता है ! परन्तु स्वर्णिम स्वप्नलोक के साम्राज्य पर किशोर-मन के एकच्छत्र अधिकार को तो कोई छीन नहीं सकता !

सबसे पहले तो मुझे उपनामों से चिढ़ है। जब भी कभी कोई कवि अपना उपनाम रखकर कविता करता है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यक्ति आत्म-वंचक होने के साथ-साथ पर-वंचक भी है। अन्यथा जिस नाम से उसे सब साथी और इष्ट मित्र जानते है, उसी नाम से कविता करने में उसे क्या साँप सँघता है ? यदि आत्म-गोपन ही उपनाम का उद्देश्य हो तो साथ में असली नाम भी रचना के साथ क्या प्रकाशित किया जाता है ? जिस तरह गुप्त दान को अधिक पुण्य का काम समझकर अपने नाम से ही कुछ लोग गुप्त दान की घोषणा किया करते हैं क्या उपनाम में भी वैसा ही पुण्य छिपा है ? मुझे तो ऐसा लगता था कि उपनाम से कविता करने वाले में आत्मविश्वास का अभाव होता है। कवि नाम प्रकट किये बिना अपनी कृति को (जैसे जननी अपनी सन्तान को) बाज़ार के चौराहे पर फेंक देना चाहता है और यदि वह कृति कीर्ति-लाभ करे तो तुरन्त उस सन्तान की वैधता की घोषणा करके मातृत्व की स्थापना कर दी जाती है—अन्यथा वह कृति अवैध सन्तान का भाग्य भोगे—सर्जक बेपरवाह !

और फिर 'सुमन' उपनाम से तो मुझे ख़ास नफ़रत थी (यथार्थ सुमन से नफ़रत—इसका अर्थ न लगाया जाए) ! यह उस युग की बात कहता हूँ जब हम यह समझा करते थे कि 'भारत भारती' से अच्छी कविता हो ही नहीं सकती—वही कवित्व का आदर्श है, और यदि उससे भिन्न भावों या शैली की कविता करने की हिमाकत कोई कवि करता है तो उसे कारागार भेज दिया जाना चाहिए। सम्भवतः वह गुरुकुलीय वातावरण का ही प्रभाव था कि निपट शृंगार रस की कविता करने वालों को तो हम वाजिबुल-कत्ल या फाँसी पर चढ़ाने के लायक ही समझा करते थे। राष्ट्र की पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने की उतावली वाली भाव-भूमि में हमें हृदय की कोमल वृत्तियों की अभिव्यक्ति देश-द्रोह से कम नहीं लगती थी।

और उपनाम के रूप में 'सुमन' शब्द का चुनाव हमें उस बद्धमूल धारणा के प्रति विद्रोह लगता था। विदेशी दासता के काँटे को उखाड़ने के लिए जब हम 'कण्टकेनैव कण्टकम्' की आराधना करने पर तुले थे, तब यह सुमन की उपासना करने वाला प्रतिगामी तत्त्व सर्वथा अस्वीकार्य होना चाहिए। सुमन उपनाम मर्दानगी का नहीं, ज़नानेपन का द्योतक है। शायद किसी नवनीत सम कोमलांगी तरुणी को ही यह शोभा देता है। पुरुष होकर 'सुमन' उपनाम रखना मानसिक स्त्रैणता का बोध ही अधिक कराता था।

बात अपने मन की कह रहा हूँ। परन्तु मुझे लगता है कि मैं उस समय के अपने सभी साथियों के मन का यथार्थ विश्लेषण कर रहा हूँ। जहाँ अहर्निश ब्रह्मचर्य, पौरुष, राष्ट्रोद्धार, पठन-पाठन और शास्त्रोपदेश की चर्चाओं का ही बाहुल्य हो तथा शृंगार रस के काव्यों का अध्ययन सर्वथा वर्जित हो, उस वातावरण में इससे भिन्न मनोवृत्ति के विकास की कल्पना भी नहीं की जानी चाहिए।

तो श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' अपने सहपाठियों के सामने सबसे पहले कवि रूप में प्रकट हुए। अपने-आपको 'फैशनबल' और 'विद्रोही' प्रकृति का सिद्ध करने की प्रवृत्ति वाले विद्यार्थी ही उस वातावरण में हिन्दी में कविता करने का साहस करते थे, क्योंकि संस्कृत में श्लोक या निबन्ध की रचना वहाँ नियम थी और हिन्दी की रचना अपवाद। गुरुकुल की गोष्ठियों में या सभाओं में, जिनमें छात्रों के साथ उनका अध्यापक-वर्ग भी अवश्य सम्मिलित होता, ये रचनाएँ सुनाई जाती। संस्कृत-रचना सुनाने वाले छात्र अभिजात-वर्ग के, अनुशासनप्रिय, प्रतिभाशाली और विशिष्ट समझे जाते एवं हिन्दी रचना सुनाने वाले छात्र विद्रोही, अनुशासनहीन, प्रतिभा के नाम पर यथा-तथा और सामान्य जनता श्रेणी के समझे जाते।

ऐसी ही एक सभा का दृश्य मेरी आँखों के सामने तैर रहा है

पग धरती सिर आसमान—घास का खुला मैदान। दरियाँ बिछी हैं। श्रोताओं के रूप में अध्यापक और छात्र-वर्ग आगे-पीछे यथास्थान बैठे हैं। सभापति के लिए भी किसी मेज और कुर्सी की आवश्यकता नहीं, एक ऊँची चौकी रख दी गई है। उसी पर पालथी मारकर बैठे वे वक्ताओं को क्रम-क्रम से बुलाते हैं। सहसा अपना नाम सुनकर बिना किसी नाज-नखरे के महाकवि क्षेमचन्द्र 'सुमन' उठते हैं। ऊबड़-खाबड़ शक्ल, ऊबड़-खाबड़ वेष। श्रोताओं में कानाफूसी—'पट्ठे ने क्या नाम रखा है—सुमन! जैसे संसार में सबसे सुन्दर यही हो।' '...भाई, इसका क्या दोष है? गुरुकुल में दर्पण रखना-देखना तो मना है, है न? इस बेचारे ने कभी शीशे में अपनी शक्ल देखी ही नहीं। हो सकता है कि यह अपने-आप को सर्व-सुन्दर ही समझता हो (यह मानना होगा कि गुरुकुल में भी सौन्दर्य बोध की वृत्ति सर्वथा समाप्त नहीं हो जाती)।' तभी कविता के शब्द कानों में पड़ने शुरू होते हैं—न लहजा, न लय, न स्वर! शक्ल और वेष की तरह आवाज भी ऊबड़-खाबड़!

उस युग में कविता सुनाने से पहले कविगण छन्द का नाम भी पहले ही बता दिया करते थे और प्रायः कठिन-से-कठिन छन्द में ही रचना किया करते थे। छन्द का नाम पहले से बता देने का प्रयोजन कदाचित् यह होता था कि श्रोताजन भी अन्दाज लगा लें कि कवि महोदय ने छन्द के इस चौखटे में बँधकर किस तरह कलाबाजी खाई और दिखाई है। पर हिन्दी की कविता का क्या छन्द? सुमन ने सु-मन से बिना छन्द का उल्लेख किये कविता-पाठ शुरू ही किया था कि किसी ने उच्च स्वर से पूछा 'छन्द?'

कवि महोदय के उत्तर देने से पहले ही दूसरे कोने से आवाज़ सुनाई दी : 'छन्द क्या पूछते हो, सीधा ही रबड छन्द है तो सही'—और इस पर सारी श्रोता-मण्डली खिल-खिला पडती है।

पर कवि महोदय हतप्रभ नही होते, ग्रामोफोन मे भरे रिकार्ड की तरह कविता सुनाते ही जाते हैं। तब श्रोताओ के धैर्य की परीक्षा होती है। श्रोताओ के बिदकने पर भी जो वक्ता न बिदके उससे श्रोता सघर्ष करने पर तुल जाते है। फिर तो जैसे दोनो ओर दो मोर्चे लगते है—एक ओर अकेला कवि और दूसरी ओर श्रोताओ की अक्षौहिणी। एक श्रोता कहता है—'कविता का केवल छन्द ही रबड नही है, इसका आकार भी पाचाली का चीर है।'

और कविता-पाठ जारी है। श्रोताओ का असन्तोष भी लगातार बढता जा रहा है। जब श्रोताओ का सामूहिक धैर्य भी समाप्त हो गया तो सबने मिलकर तालियाँ बजानी शुरू कर दी। पर महाकवि अजेय योद्धा बनकर मैदान मे डटा है। श्रोताओ का यह सामूहिक प्रहार भी उसे मैदान मे हटा नही सका। परिणाम ! तालियो का सिलसिला बढता गया। सभापति का श्रोताओ को अनुशासन मे रहने का आदेश और उपदेश भी चलता रहा। और सत्य यह है कि श्रोताओ की वह अक्षौहिणी एक छोटे-से सुमन को भी कुचल न सकी। वह तभी बैठा, जब उसकी कविता समाप्त हो गई—पसीने मे तर ब-तर। परन्तु बैठने के क्षण भर बाद ही चेहरे पर सहज मुसकान—उसे विजय की मुसकान कहूँ या जन-असहिष्णुता के प्रति उपेक्षा के कारण सहज आत्म-विप्तता !

मुझे मन मे लगा कि यह आदमी नीम पागल है। जब उसके सहपाठी और चौबीस घटे के साथी ही उसकी कविता नही सुनना चाहते, तब यह उन्हे कविता सुनाता ही क्या है ! क्या रखा है कविता मे—केवल मानसिक व्यायाम ही तो है यह। बिना बात के मन को शब्दो की उधेड-बुन मे उलझाये रखना और आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाना न भले आदमियो का काम है, न ही उसमे जीवन की यथार्थता है। कहाँ है जीवन मे कविता ? आधुनिक जीवन मे निरा गद्य ही तो भरा है—कविता-शून्य है यह युग। कविता करना मानसिक विकृति है, जीवन का विद्रूप है, अस्वाभाविकता है। केवल पगले ही कविता करते है।

सुमन की उस सभा की घटना के बाद मैंने मन मे चाहा था और पूरे हृदय से यह कामना की थी कि सुमन कविता न करे। मन-ही-मन भविष्यवाणी की थी और इस भविष्यवाणी से मुझे मनस्तोष भी हुआ था कि यह आदमी कभी कवि नही बन सकता। मैंने सोचा—चलो, यह आदमी आवारा होने से बच जाएगा।

पर सुमन तो ठहरा नीम-पागल। सचमुच उसने मुझे बहुत निराश किया है, इतना कि उसपर गुस्सा आये बिना नही रहता। मैंने कितना सोच-समझकर और सब प्रकार की परिस्थितियो का आकलन करके उसीके हित की दृष्टि से भविष्यवाणी की थी कि

यह व्यक्ति कभी कवि नही बन सकता, इसे कवि नही बनना चाहिए। परन्तु उसने मेरी भविष्यवाणी को कही का नही रखा, मुझे स्वय मेरी दृष्टि मे धराशायी कर दिया। अब धरापृष्ठ पर चित्त पडा जब मैं ऊपर की ओर आँख फेरकर उसके कवि-रूप को और उसके काव्यों तथा कविता-सग्रहो को देखता हूँ तो एक प्रकार के आध्यात्मिक अवसाद से मन भर जाता है।

तब रह-रहकर एक ही बात मेरे मन मे बारम्बार उभरती है कि उसका 'सुमन' नाम आत्मवचना भी है और परवचना भी। यदि सुमन का अन्वर्थ यह व्यक्ति फूल-सा कोमल होता तो वह अवश्य मेरी भविष्यवाणी को फलवती सिद्ध होने देता, वह उस सभा की उस पहली (कदाचित् !) कविता के बाद ही मुरझा गया होता। उतना विरोध और उतनी असहिष्णुता कही किसी कोमल फूल को दिन का प्रकाश देखने देते ! 'सुमन' सुमन नही है, यह व्यक्ति अपने अन्तस्तल के किसी कोने मे दृढ वज्र छिपाये हुए है और वह वज्र गोपनीय ही बना रहे, इसीलिए उसने द्वार पर 'सुमन' उपनाम का पहरेदार बिठा दिया है।

उसी भाग्यहीन को कवित्व का वरदान मिलता है जिसकी मति विधाता पहले ही हर लेते है। अपने इष्ट-मित्रो की समस्त सद्भावनाओ के विपरीत सुमन भाग्यहीनता के उसी पथ पर इस द्रुतगति मे दौडा कि गुरुकुल का स्नातक बनने के पश्चात् समाज का सक्रिय सदस्य बनने पर उसे प्रथमत कवि-रूप मे ही मान्यता मिली। न केवल मान्यता ही मिली, प्रत्युत स्थान-स्थान पर उसके अभिनन्दन हुए और कवि सम्मेलनो की अध्यक्षता के निमन्त्रणो का ताँता लग गया। जब कवि-रूप म सुमन प्रतिष्ठित हो गया और प्रतिष्ठा पा गया तब मैने भी मन मारकर उसे कवि मान लिया। अपने मन की किस वक्रतान्त्रिक साधना से उसने यह कवि-प्रतिष्ठा अर्जित की थी उसे मेरे या सुमन से भिन्न कोई व्यक्ति कैसे जान सकता है ? मैंने मन-ही-मन कवि सुमन से समझौता करना चाहा। मैं उसकी बढती हुई प्रतिष्ठा को देखकर मन मे यह सोचकर आप्यायित होता रहा कि आखिर वह मेरा साथी ही तो है, उसकी प्रतिष्ठा मे साथी के नाते मेरी भी प्रतिष्ठा छिपी हुई है।

पर मैं उसे क्षमा तब भी नही कर सका। कवि है—केवल कविता मे ही नही, स्वभाव मे भी पूरा कवि है—अर्थात् एकदम आवारा ! तभी तो उसके दो ही काम हैं—जेल जाना या कविता लिखना। जिस तरह कविता करना भले लोगो का काम नही, वैसे ही जेल जाना। परन्तु जो स्वभाव से आवारा हैं उन्हे ये दोनो चीजे अनायास रास आ जाती है। जेल जाना या कविता लिखना एक ही सिक्के के दो पहलू है—उस सिक्के का नाम है आवारगी। मैंने सोच लिया अब यह व्यक्ति इस आवारगी से उबर नहीं सकता, क्योंकि न तो यह देश की आवाज के नाम पर जेल जाना छोड सकता है और न ही अन्तरात्मा की आवाज के नाम पर कविता लिखना। मेरे ज्योतिष मे उसकी जीवन-रेखा इसके आगे नही जा सकी। मेरी ओर से चित्रगुप्त की बही मे उसकी भाग्यलिपि के खाने

मे इसमे आगे दवात की स्याही ही उलट गई थी।

उन दिनो मेरे मन मे लेखको और खासकर पत्रकारो के प्रति बडी श्रद्धा थी। मैं उन्हे लोकोत्तर पुरुषो की कोटि मे गिनता था। जहाँ तक देशभक्ति का प्रश्न है, मैं पत्रकारिता को भी कृष्ण-मन्दिर के प्रवास से कम महत्त्व नही देता था। बल्कि मैं यह समझता था कि देश की सेवा की खातिर अनपढ लोगो को जेल जाना चाहिए और पढे-लिखे लोगो को पत्रकारिता का पेशा अपनाना चाहिए, क्योकि जन-जागरण के लिए पत्रकारिता से बढकर और कोई उपाय नही। इस दृष्टि से लक्ष्य समान होते हुए भी, जेल जाने मे नाटकीयता बेशक अधिक थी, परन्तु पत्रकारिता से वह ठहरती थी नितरा अवर कोटि मे ही। और फिर पत्रकार आवारा तो नही समझा जाता न!

जब जेल और कविता की उपासना मे अनवरत रत सुमन को मैंने आवारगी से उबरते नही देखा, तब मैंने मन-ही-मन दूसरी भविष्यवाणी की 'यह व्यक्ति कवि भले ही बन जाए (क्योकि वह तो आवारगी का दूसरा नाम है), परन्तु पत्रकार नही बन सकता।'

परन्तु मैं आपके सामने किस मुँह से कहूँ कि इस सुमनवा ने मुझे यहाँ भी कही का नही रखा। वह न केवल सफल पत्रकार ही बना, वरन् अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रो का सम्पादक भी बना। अनेक पुस्तको का सम्पादक बना और अनेक मौलिक ग्रन्थो का प्रणेता भी बना। और उसकी पुस्तको की सख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढती गई।

तब मैंने अपने मन की लगाम ढीली छोड दी। सोचा, सर्वभक्षी अघोरियो की तरह इस व्यक्ति के दीन-ईमान का कुछ पता नही है, पता नही कब किस पर लार टपका बैठे। इसलिए इसके बारे मे कोई भविष्यवाणी करने की बात मन मे भी नही लानी चाहिए।

परन्तु मन का राज्य तो स्वच्छन्द है। वहाँ योगियो की बुद्धि का अनुशासन भी व्यर्थ हो जाता है। वह परिचित-अपरिचितो के बारे मे तरह-तरह की भविष्यवाणियाँ करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है। अनुभव-शासित बुद्धि का अनुशासन भी जब कृतकार्य नही हुआ तो अकस्मात् पता नही किस कुघडी मे मेरा मन एक यह भविष्यवाणी और कर बैठा कि जो व्यक्ति मूलत कवि या लेखक है वह आलोचक कभी नही बन सकता। कवित्व और लेखन मन की सृजनात्मक और सश्लेषणात्मक वृत्ति के द्योतक हैं तो आलोचन-प्रत्यालोचन मन की विध्वसात्मक और विश्लेषणात्मक वृत्ति के द्योतक हैं। एक व्यक्ति दोनो प्रकार की मनोवृत्तियो का एक साथ ही धनी नही हो सकता।

परन्तु एक दिन जब हिन्दी की, अपने समय की और अपने स्तर की एकाकी आलोचना-विषयक त्रैमासिक पत्रिका 'आलोचना' की सम्पादक-मण्डली मे 'सुमन' का नाम देखा तो मैं जैसे फिर आसमान से धरती पर आ गिरा। मुझे सहसा विश्वास नही हुआ कि यह वही अपना हमदम और अपना साथी 'सुमन' है। मैंने पत्रिका पर यथास्थान छपे उस नाम को ही सम्बोधित करके कहा, 'वाह पट्ठे, आलोचक भी बन बैठे! आखिर कब से?'

जब तसल्ली न हुई तो एक दिन भेंट होने पर इन्ही शब्दो मे अपना सवाल मैंने उसके मुँह पर भी दाग दिया। सुनकर वही उन्मुक्त हँसी—नीम-पागलो की-सी, विश्व-जयी हँसी, सुमनो-भरी हँसी, वज्रश्री हँसी। फिर उसने गिनाया—"मेरी आलोचना-विषयक अमुक पुस्तक बी० ए० के कोर्स मे है अमुक एम० ए० के कोर्स मे, अमुक प्रभाकर के, और अमुक अमुक परीक्षा के।"

तब सचमुच मेरे मन ने हथियार ही डाल दिए। उसने कहा, 'यह आदमी नही, औघड है, पूरा औघड! पता नही, इसने तन्त्र-साधना के बल पर कौन-कौन से भूत-प्रेत सिद्ध कर रखे है। जितनी भी भविष्यवाणियाँ करो, सब झूठी सिद्ध कर देता है। इसके पास कोई तन्त्र-बल है, या मन्त्र-बल?'

और एक दिन इसी रहस्य के उद्घाटन के लिए मैं अचानक 'सुमन' के दौलतखाने (हाथीखाने) मे पहुँच गया। देखा कि सुमन पिला हुआ है—जैसे अखाडे मे पहलवान कपडे उतारकर और लँगोटा कसकर पिल पडते है अखाडा खोदने या कुश्ती लडने के लिए, वैसे ही सुमन भी कागज़ के अखाडे मे कलम की कुदाल लेकर पिला हुआ था। दोनों ओर दो टाइ-पिस्ट बैठे थे। एक ओर का टाइपिस्ट उन कागजों को टाइप कर रहा था जो आधी रात तक बैठकर लिखे गए थे और दूसरी ओर के टाइपिस्ट को सद्य लिखित कागज दिये जा रहे थे और वह धडाधड टाइप किये जाता था।

मैंने पूछा, "यह क्या हो रहा है?" सुमन ने कहा, "क्या बताऊँ यार, एक किताब सब्मिट करनी है, उसकी तारीख निकली जा रही है। अगर तीन दिन के अदर यह काम नही हुआ तो मैं दौड मे पिछड जाऊँगा। पिछले दो दिनो से यही हाल है। खाना पीना सब बन्द, सिर्फ चाय-ओवल्टीन और लेखन!" मैंने मन मे कहा, 'यह आदमी नही, शैतान है। यह हाड-मास का पुतला नही, मशीन है। प्लास्टिक की नही, ऐन पक्के इस्पात की। इसके पास तन्त्र-बल या मन्त्र-बल नही, यन्त्र-बल है। इसके हाथों की इसी लोहे की मशीन ने सब भूत-प्रेत सिद्ध कर रखे हैं।'

तभी मुझे ध्यान आया किसी महापुरुष का यह कथन, "प्रतिभाशाली व्यक्तियों मे प्रतिभा केवल एक प्रतिशत होती है, ६६ प्रतिशत तो पसीना ही होता है।' सुमन आज जो भी कुछ है, अपने पसीने की ही करामात है। पसीने के लुब्रिकेशन से ही उसके हाथो की मशीन लगातार चलती रहती है।

सुमन के पसीना-प्रेरित पौरुष की गोलाबारी ने मेरी भविष्यवाणियो के सभी पैटन-टैंक कागज़ के खिलौना की तरह भले ही उडा दिए हो, पर मैं भी पाकिस्तान की तरह अपना हठ छोडने को तैयार नही हूँ। उक्त भविष्यवाणियाँ मैंने मन-ही मन की थी, आज तक कभी वे ज़बान पर नही आई थी। जब सुमन कवि बन गया, पत्रकार बन गया, सम्पादक बन गया और आलोचक भी बन गया—लगभग कौडी भर उसकी लिखी मौलिक पुस्तको और लगभग दो कौडी सम्पादित पुस्तकों का अम्बार लग गया, तब मैंने सोचा कि

मेरी भविष्यवाणिया के सफल न होने का मुख्य कारण यह है कि वे मन ही-मन की गई थी। यह तो मेरी ही भलमनसाहत है कि मैं खुले आम सार्वजनिक रूप मे उनकी विफलता स्वीकार कर रहा हूँ। सम्भव है कि मैंने सार्वजनिक रूप मे कोई भविष्यवाणी की होती तो वह सफल सिद्ध हो जाती। कम-से-कम उसकी सफलता या विफलता के अन्य लोग साक्षी तो होते।

अब सुमन के कवि लेखक या आलोचक-रूप से घृणा करना मैंने बन्द कर दिया है। प्रत्युत वह घृणा अब प्रेमातिशय मे परिवर्तित हो गई है। परन्तु इतने दिनो के साहचर्य के पश्चात् अनुभवी डॉक्टर की तरह मैं भी रोग के सही निदान पर पहुँच गया हूँ। जैसे कोई जीर्ण रोग कभी किसी अग म पीडा उत्पन्न कर देता है, कभी किसी अग मे, वैसे ही सुमन का कवित्व, लेखकत्व, आलोचकत्व—ये सब एक ही रोग के आनुषगिक उपद्रव हैं। तरह-तरह के उपचारो म जैसे रोग का शमन नही होता, केवल दमन होता है, और फिर व्याधि किसी-न किसी रूप म उभरती रहती है, वैसे ही सुमन की मूल व्याधि है—आवारागर्दी। फ्रायड के 'काम' की तरह यह आवारागर्दी की व्याधि उसके अवचेतन मे छिपी है, उसकी नस-नस म भिदी है। यह मानसिक आवारगी की वृत्ति ही उसे भँभीरी की तरह घुमाती रहती है—कभी कविता मे, कभी लेखन मे, कभी सम्पादन मे और कभी जन-सेवा मे। लिखने-पढने स फुरसत मिल नही पाती कि जन-सेवा की सनक पाँव मे चक्कर बाँधे रहती है।

मान लीजिए कि आपका सुमन से कोई परिचय नही है, समान व्यसन या समान शील वाले सख्य का भी आप दावा नही कर सकते, परन्तु कही से आपने उसका नाम सुन लिया है और आप जा धमकते हैं उसके दौलतखाने पर। जान न पहचान, जबरदस्ती के मेहमान! समय कुसमय का भी आप ध्यान नही रखते। आपको अपना काम निकालने की धुन है। रात के विषम प्रहर म आप पहुँच गए और आजिजी से कहने लगे—"अरे भाई सुमनजी, अमुक काम है, जरा अमुक आदमी के पास तक चले चलिए!" लीजिये, सामान्य निहोरे और मिन्नत की भी बिना अपेक्षा रखे, मौसम की बिना परवाह किये यह पेशेवर जन-सेवी आपके साथ चल देता है। भला, ऐसे समय घर से बाहर पाँव रखना सद्गृहस्थो का काम है क्या? बताइये, यह आवारागर्दी नही तो और क्या है?

अब मैं हाथ उठाकर सार्वजनिक रूप से अपनी अन्तिम भविष्यवाणी करता हूँ कि यह आदमी सब-कुछ कर सकता है, किन्तु अपनी आवारागर्दी का मानसिक विलास नही छोड सकता। कलाकारो के मन के किसी कोने मे जो आवारा छोकरा आसन जमाये बैठा रहता है और नाना दिशाओ मे साहसिक अभियान के लिए चुलबुलाता रहता है, वही आवारा शरारती छोकरा सुमन के मन मे भी बैठा हुआ है, जो उसे लगातार आगे-आगे भगाता रहता है।

मुझे पूरा विश्वास है कि सुमन मेरी इस भविष्यवाणी को मिथ्या सिद्ध नही कर

सकेगा। अगम्प्रज्ञात समाधि मे बैठकर मैंने उसके रोग का जो निदान किया है सम्भव है कि अब भी जिन लोगों को सुमन से अपना कोई काम निकालना हो वे ठकुर सुहाती के लिए उसके मुंह पर मेरी इस भविष्यवाणी का प्रत्याख्यान करें, किन्तु मैं अपने गवाह के रूप मे सुमन की ही पत्नी को पेश करूँगा। और तब मुझे विश्वास है कि मेरी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होगी—विजय का सेहरा मेरे सिर बँधेगा और मेरा साथी, मेरा हमदम मेरा दोस्त सुमन जाएगा चारो खाने चित्त !

'दैनिक हिन्दुस्तान',
नई दिल्ली ।

कल के अध्यापक और आज के लेखक

डॉ० कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

बात है तो पुरानी पर याद करती हूँ तो आज भी वह बहुत अच्छी जान पड़ती है। अक्तूबर, १९४२ की घटना है। मैं उन दिनों लाहौर के फतहचन्द कॉलिज फार विमेन की प्रधानाचार्या थी। मैं अपने कार्यालय मे किसी आवश्यक काय म व्यस्त थी कि कॉलिज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० परमानन्द शास्त्री (जो आजकल पटियाला मे पजाब-सरकार के भाषा विभाग के निदेशक है) ने एक ऐसे युवक से मेरा परिचय कराया जो एड़ी से चोटी तक स्वदेशी वस्त्रों से अलंकृत था। उन्होंने उस युवक को अपने कॉलिज मे रिक्त हिन्दी-अध्यापक के स्थान पर नियुक्त करने की अनुशसा भी मुझसे की। युवक देखने मे सरल, दृढ-प्रतिज्ञ और परिश्रमी लगता था, अत एक उड़ती-सी नजर उस पर डालकर मैंने भी उनकी बात का मन ही-मन अनुमोदन किया। इस प्रकार मैंने जिस युवक को जाना, वह और कोई नहीं श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' थे।

जिन दिनो सुमनजी हमारे उस परिवार मे सम्मिलित हुए थे उन दिनों अगस्त-क्रान्ति का प्रख्यात आन्दोलन अपने पूरे चढाव पर था। श्री सुमनजी के विचारो और उनकी गतिविधियो से मैं थोड़ी-बहुत तो परिचित थी, परन्तु जब एक बार विद्यालय के छात्रावास की एक बालिका ने मुझसे आकर यह बताया कि उसे सुमनजी ने एक चौकोर बक्स सा लाकर होस्टल मे रखने को दिया है, तब मैंने जाना था कि यह विनम्र, शालीन, अध्यवसायी और सीधा सादा लगने वाला व्यक्ति कितना कठिन है। उस असमजस को मैंने तुरन्त भाँप लिया और वह बक्सा उसके पास से मँगाकर मैंने अपने कार्यालय म रख लिया।

मै पहले ही मे भुक्तभोगी थी। विद्यालय मे एक राष्ट्रीय कविता पढने के अपराध मे न जाने कितने दिन मुझे भी छाया की भाँति पीछे घूमते विदेशी सरकार के भेडियो मे बच-बचकर रहना पडा था। सुमनजी के उस बक्से का रहस्य एक मिनट मे ही मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गया। निश्चय ही सुमनजी द्वारा लाये गए उस टाइपराइटर से कोई भयकर क्रातिकारी पत्र निकलता होगा, जिसे छिपाने की आवश्यकता तथा अनिवार्यता उन्होने अनुभव की। मुझे यह तो ठीक तरह याद नही कि वह टाइपराइटर मेरे पास कितने दिन छिपा रहा और कब वह मैंने उसी छात्रा के द्वारा सुमनजी को लौटा दिया। सुमनजी विद्यालय मे अपना कार्य पूरी तत्परता और निष्ठा मे निबाहते रहे और मैंने भी उन पर यह प्रकट नही होने दिया कि इस सम्बन्ध मे मैं कुछ जानती हूँ।

इस बीच सुमनजी कुछ दिन के लिए सहसा गायब हो गए। जब वे विद्यालय मे वापस लौटे तो विद्यालय की वे दो छात्राएँ भी गिरफ्तार कर ली गईं, जिनसे उनका सीधा सम्पर्क था। कैसा विचित्र दृश्य था वह, जबकि लगभग सारा ही कॉलिज पुलिस द्वारा घिरी हुई उन दो छात्राओ को द्वार तक पहुँचाने आया था! इस घटना के २-३ दिन बाद सुना कि सुमनजी भी भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिये गए। गिरफ्तारी के बाद उन्हे पुरानी अनारकली थाने की जिस हवालात मे रखा गया था, वह सौभाग्य से हमारे विद्यालय के पास ही थी। सुमनजी की गिरफ्तारी की खबर जब हमारे कॉलिज मे पहुँची तो मुझे याद है कि लडकियो मे जोश का समुद्र ठाठे मार रहा था। बडी क्लासो की कुछ लडकियाँ तो सुमनजी को देखने के लिए थाने की हवालात तक भी गई थी। आज सचमुच उन दिनो की याद करके रोमाच हो आता है।

उस दिन कौन जानता था कि हमारे भाग्याकाश मे भी उषा की लालिमा दीख पडेगी? फिर भी कैसी विचित्र, कितनी सशक्त, कितनी सजीव थी वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति की आकाक्षा कि जिसने जन-जन के मानस को कुछ कर गुजरने के लिए व्याकुल कर दिया था! स्वतन्त्रता-प्राप्ति के १८-१९ वर्ष पश्चात् तो उन दिनो की याद ऐतिहासिक-सी ही जान पडती है। कभी-कभी ऐसा जान पडता है कि वे पुराने सभी साथी क्रान्तिकारी थे, अध्यापक थे, छात्र थे, और न जाने क्या-क्या थे! उन्ही मे मे एक हैं श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', आज के लेखक, मनीषी, विद्वान्, अनेक गम्भीर ग्रन्थो के प्रणेता और अतीत के अध्यापक, क्रान्तिकारी, अहिंसावादी, किन्तु दृढ सत्याग्रही।

सुमनजी को सबसे पहले मैंने जाना था एक सीधे-सादे साथी अध्यापक के रूप मे, जिनका 'क्रान्तिकारी' रूप बाद मे मेरे सामने और भी निकटता मे प्रस्तुत हुआ। लुके-छिपे ही सही, अध्यापन करते हुए मेरे सम्मुख वे तब स्वतन्त्रता-युद्ध के एक सेनानी के रूप मे ही प्रकट हुए थे। शायद आज भी वह उतने ही कर्मठ, दृढप्रतिज्ञ और स्वाभिमानी लगते है जैसे कि पहले थे। उनकी वह सरलता, कर्मठता के आवरण से आवेष्टित होकर सघर्षशीलता मे अवश्य बदल गई है। उनकी अर्धशती-पूर्ति पर अपनी अनन्त शुभ काम-नाएँ प्रकट करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता अनुभव हो रही है।

प्राचार्या, महिला महाविद्यालय, लखनऊ

लाहौर के 'पण्डितजी'

श्री देवदत्त प्रदस

श्री क्षमचन्द्र सुमन कवि लेखक पत्रकार निबन्धकार आलोचक—एक शब्द मे समथ माहित्यकार तो हैं ही। इससे भी अधिक सुमन एक विश्वस्त साथी एव मित्र हैं।

विश्वव्यापी दूसरा महायुद्ध सारे ससार की जनता को अपनी लपेट मे ले रहा था। तानाशाहो के कुचक्रो म कितने ही राजनीतिज्ञ फस चुके थे और निरीह जनता बमो के भीषण आघातो से व्याकुल थी और त्राहि त्राहि कर रही थी।

समस्त यूरोप युद्ध की अग्नि ज्वालाओ म क्षत विक्षत हो रहा था। भारतीय जनता अग्रजो के झूठे वायदो म तग आ गई थी और अग्रजी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का सगठन कर रही थी। भारत के देशभक्त मजदूर किसान और जनता के दूसरे वग युद्ध के विरुद्ध युद्ध के लिए कटिबद्ध हो रहे थे। कांग्रेस के भूमिगत बुलटिन छपते थे। कम्यूनिस्ट और लाल झण्डा साइक्लोस्टाइल करके जनता म बाटे जा रहे थे। अग्रेज सरकार की सतक सी० आई० डी० भूमिगत प्रकाशित समाचारपत्रो की खोज मे रात दिन एक कर रही थी। वह देश के कोने कोने मे क्रान्तिकारी कायकर्ताओ को गिरफ्तार करने के लिए खोजती छापे मारती और जो कोई भी मिलता उसे गिरफ्तार करके जेल के सीखचो के पीछे बन्द कर देती थी। जो पुलिस की दृष्टि बचाकर निकल गया भाग गया उसे पकडने के लिए भारी इनाम घोषित किया जाता था।

भारत के कितने ही क्रातिकारी भूमिगत काम कर रहे थ। वे अपनी वेश भूषा बदलकर दूसरे प्रान्तो मे क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित कर रहे थे।

उन दिनो साथियो ने मुझे भूमिगत काम सौंपा था। भूमिगत कार्यालय छापा खाना और देश क विभिन्न भागो से आये फरारो को सुरक्षित स्थानो मे छिपाना और उनके लिए हर प्रकार की सुविधा की व्यवस्था करना मेरा काम था। अग्रेज सरकार धोती-कुरते वाले साहित्यकारो को पजाब म दब्बू समझती रही है और उनकी सादी वेश भूषा मे वह उन्हे क्रान्ति क प्रति अरुचि रखने वाले तत्त्व समझती थी। जब कभी पजाब की सी० आई० डी० को इन साहित्यकारो क बारे म पक्की रिपोट मिलती तब पुलिस वालो म भगदड पड जाती और वे सगीन तानकर १८५७ की प्रथम स्वाधीनता की लडाई क अवशेषो की खोज करने लगते थे।

मैं लेखक हू या नही यह मैं नही जानता पर इतना जरूर है कि कुछ प्रमुख लेखको से मेरा सपर्क रहा है जिन्होने समय-समय पर क्रान्तिकारी कार्यों मे सहयोग ही नही दिया बल्कि जेल की काल-कोठरियो को भी प्रकाशित किया है। उनमे श्री माधवजी

और स्वर्गीय रामेश्वर 'करुण' के घरों में अनेक बार फरारों को सुरक्षा मिलती रही है। भाभी और चाची कभी-कभी गोरी-गोरी लड़कियों को अबेर-सवेर घरों में आते और जाते देखकर चौंकती थीं और उन्हें जब असलियत का ज्ञान होता तो वे बहुत आदर-सत्कार करती थीं।

१ मई, १९४२ का 'मई-दिवस' हम शानदार ढंग से मनाना चाहते थे और चाहते थे कि 'लाल झंडा' साइक्लोस्टाइल की छपाई की अपेक्षा प्रेस में छपकर निकले। मैं हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'भारती प्रेस' में गुप्त रूप से गया और उनसे अपनी बात कही। उनसे बात करते-करते एकाएक कहीं से लम्बा-सा, पतला-सा, खादी की वेश-भूषा में एक युवक आ गया। मैं चौंका और चुप हो गया।

"डरो नहीं, यह क्षेमचन्द्र 'सुमन' हैं—" श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' बोले और उन्होंने मेरा परिचय सुमन से कराया। तब मैंने उन्हींके सामने १ मई की सारी योजना कह दी।

"अटल, बहुत कठिन है। तुम...भारती प्रेस पर पहले ही पुलिस नजर रखती है और तुम..."

"नहीं, प्रेमीजी ! मुझे तो...भारती प्रेस में ही 'लाल झण्डा' छपवाना है।"

"अच्छा !"

प्रेमीजी ने सुमन की ओर रहस्यपूर्ण ढंग से देखा और स्वीकृति दे दी।

'लाल झण्डा' छप गया। रात-रात में गेली-शेली के मारे चिह्न गायब हो गए। पंजाब की पुलिस बहुत बौखलाई, पर 'छपाई' का भेद न पा सकी।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' पंजाब की रत्न, भूषण और प्रभाकर की परीक्षाओं के छात्र-छात्राओं को परीक्षोपयोगी व्याख्यान दिया करते थे। हमारी कार्यकर्त्रियाँ भी व्याख्यान सुनने और राजनीतिक सम्पर्क स्थापित करने इन व्याख्यानमालाओं में जाती थीं।

'भाई साहब ! आप सुमनजी को जानते हैं ? परीक्षोपयोगी व्याख्यानों के साथ-साथ वे राष्ट्रीय विचारों का प्रचार भी करते हैं। अंग्रेजशाही के विरुद्ध उनकी वाणी आग-सी उगलने लगती है।" श्रीमती शकुन्तला शारदा ने मुझे सूचित किया।

"जानता हूँ, पर .."

वह जानती थी कि मैं अपने भूमिगत जीवन के कारण अपने मित्रों से मिल नहीं सकता।

"तुम उनका पता-ठिकाना जानो और मिलो। वे अपने कार्य में विश्वस्त सहायक सिद्ध होंगे।" मैंने उसे कहा और हम दोनों ने मिलकर सुमनजी का नाम 'पण्डितजी' रख लिया, क्योंकि सही नाम प्रकट होने से सुमनजी पर आफत आ सकती थी।

उस दिन से हमारे कितने ही काम 'पण्डितजी' द्वारा सम्पन्न होने लगे। कोई गुप्त चीज रखनी हो तो 'पण्डितजी', और किसी भूमिगत प्राणी को छिपाना हो तो

पडितजी। सच मे हमारे बीच मे वे इसी नाम से परिचित थे— सुमनजी' को कोई नही जानता था, पर पडितजी' को सभी जानते थे—भले ही उन्होंने उन्हे देखा हो या न देखा हो।

मैं गिरफ्तार हो गया और अनिश्चित काल के लिए नज़रबन्द कर दिया गया। गिरफ्तारी से पहले श्री यश (सपादक 'हिन्दी मिलाप') से कहकर श्री सुरेश को मिलाप के सपादकीय विभाग मे रखा दिया। वह भी पुलिस की लपेट मे आ गया। जब उससे कुछ मिला-मिलाया नही तो पुलिस ने उसे छोड दिया। फिर वह 'रफाक्त कमेटी' मे काम करने लगा, उसके पत्र आते रहते थे। उसने लिखा कि 'पडितजी किले मे हैं पुलिस मारपीट कर रही है", यह सांकेतिक भाषा मे लिखा था। मैं समझ गया और निश्चिन्त हो गया क्योंकि पुलिस चालीस-पचास क्रांतिकारियो पर जो केस चलाना चाहती थी, वह टांय-टांय-फिस्स हो गया था। अब मैं और पण्डितजी खतरे से परे थे।

लाहौर का शाही किला कितना भयावह था, यह तो भुक्त-भोगी ही जानते है। पजाब के कितने ही लीडरो ने पुलिस की मार के डर से सब उगल दिया था। पर सुमन-जी दूसरी धातु के बने थे पुलिस उनसे कुछ नही जान सकी। फिर भी पुलिस ने उन्हे बख्शा नही, पजाब से उन्हे निर्वासित कर दिया गया और उनके अपने गाव मे नज़रबन्द कर दिया। इसकी सूचना मेरे जेल से रिहा होने पर फतहचन्द कालिज की छात्रा सुश्री पुष्पा गुप्ता ने मुझे दी कि आपके पडितजी पकडे गए थे और अब अपने गाव मे नज़रबन्द है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' निर्वासित

४८ घण्टे में पंजाब छोड़ने की आज्ञा मिली

लाहौर २३ अगस्त—हिन्दी मिलाप के सहकारी सम्पादक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' जो भारत रक्षा विधान के अधीन नजरबन्द थे और बाद में पञ्जाब सरकार ने उन्हें लाहौर म्युनिसपैलिटी सीमा में नजरबन्द कर दिया था, यू० पी० सरकार ने इन्हें उन के गांव बाबूगढ़ जिला मेरठ में नजर बन्द कर दिया है। पंजाब सरकार ने इन्हें आज्ञा दी है कि वह ४८ घण्टे तक पञ्जाब से निकल जाएं।

२३ अगस्त '४४ के दैनिक 'हिन्दी मिलाप' में प्रकाशित समाचार

विभाजन के बाद पहाडी धीरज के हाथीखाने (लाहौर के शाही किले मे भी एक हाथीखाना था) के छोटे-से कमरे मे बैठे भाभी के परांठो के साथ-साथ हम लोग अपनी आप-बीती सुना रहे थे और 'लाहौर के पण्डितजी' मुस्करा रहे थे।

कम्युनिस्ट पार्टी आफिस,
बैंक स्ट्रीट, करोलबाग, नई दिल्ली ५

मेरे बाल-सखा

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

उत्तर भारत की प्रमुख शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में मुझे एक सहाध्यायी और बाल-सखा के रूप में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को छात्र-जीवन में ही जानने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। बचपन से ही वे अपनी साहित्यिक प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। प्रारम्भ में छोटे-छोटे विषयों को लेकर तुकबन्दी करना उनका दैनिक व्यापार था। बाद में धीरे-धीरे उस तुकबन्दी ने ही प्रौढ़ कविता का रूप धारण कर लिया। इस प्रवृत्ति की पुष्टि और समृद्धि के लिए उन्होंने सैकड़ों प्राचीन तथा नवीन कवियों की अनेक रचनाएँ कण्ठस्थ कीं। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि उनकी कविताओं में धीरे-धीरे प्रौढ़ता आ गई।

सुमनजी ने स्वयं ही अपना उपनाम सुमन इसलिए रखा कि उन्हें सुमन (फूल)-सा बनने की अत्यधिक ललक थी। वे जहाँ अपने सौरभ से दिग् दिगन्त को परिपूर्ण करना चाहते थे, वहाँ फूल के समान हृदय की कोमलता भी उनमें थी। सुमनजी की यह प्रवृत्ति केवल कवित्व की ओर ही नहीं थी अपितु उसके माध्यम से हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में भी वे अपना स्थान बनाना चाहते थे। कविता के अतिरिक्त अनेक सामयिक विषयों पर भी वे यदा-कदा अपनी लेखनी चलाते रहते थे। उनका हस्तलेख बहुत सुन्दर था। लेखनी और सुलेख दोनों का अद्भुत समन्वय उनमें हो गया था। गुरुकुल-जीवन में ब्रह्मचारियों के द्वारा सम्पादित पत्रिकाओं के प्रकाशन की सुविधा उन दिनों नहीं थी, अतः ब्रह्मचारी अपने हाथ से लिखकर ही पत्रिकाएँ प्रकाशित किया करते थे। अपने छात्र-जीवन में सुमनजी के द्वारा सम्पादित 'सुधांशु' और 'किशोर-मित्र' नामक पत्र अपनी अनेक विशिष्टताओं के लिए आज भी याद किये जाते हैं। उनके अपने संपादन-काल में 'सुधांशु' के जो 'कवितांक', 'वसन्तांक', 'गुरुकुलांक' और 'शिक्षांक' निकले, वे इतने लोकप्रिय हुए थे कि उनकी माँग बाहर से भी होने लगी थी। 'किशोर-मित्र' के 'ऋष्यंक' और 'विजयांक' आदि विशेषांक सुमनजी के अध्यवसाय और निष्ठा के परिचायक थे। गुरुकुल में सुमनजी ही उन दिनों अकेले ऐसे छात्र थे, जो बड़े-से-बड़े विशेषांक के लिए अच्छी-से-अच्छी सामग्री का संचयन और संकलन अनायास कर लेते थे।

बचपन से ही जमकर काम करने का सुमनजी का स्वभाव रहा है। सैकड़ों पृष्ठों के विशेषांक को अकेले ही सुन्दर अक्षरों में लिखना साधारण काम नहीं था। साथ ही उस विशेषांक को सजाने के लिए कलाकार का हाथ भी अपेक्षित था। वह काम भी सुमनजी को ही करना पड़ता था। अपने गुरुकुलीय जीवन में वे स्वयं लेखन के अतिरिक्त अपने दूसरे साथियों को भी सदा प्रेरित करते रहते थे। उनकी प्रेरणा तथा उद्बोधन का

ही यह सुपरिणाम हुआ कि हमारे बहुत-से साथी आज कुशल लेखक और कवि बन गए है। सुमनजी अपने कार्य और व्यवहार से इतना अधिक प्रभावित कर देते हैं कि व्यक्ति उनकी इच्छा के अनुरूप चलने के लिए बाध्य हो जाता है।

कवित्व और लेखन के अतिरिक्त श्री सुमनजी बचपन से एक सफल वक्ता भी रहे है। गुरुकुल की प्राय सभी सभाओं मे सक्रिय रूप से भाग लेने के साथ-साथ समय समय पर वे उनके उपमन्त्री, मन्त्री और अध्यक्ष भी रहे थे। उनकी नोक-झोंक सभाओं मे प्राण फूंक देती थी। किसी भी साहित्यिक विषय पर वे बिना बोले नही रह सकते थे। अपने प्रतिपक्षी को कैसे हराया जाए, उसके तर्कों को कैसे काटा जाए, उसका मुँह कैसे बन्द किया जाए, इन बातों में इनकी सूझ-बूझ अनोखी होती थी। कभी-कभी तो श्रोता इनके मनोरजक तथा मधुर व्यग्य विनोदपूर्ण भाषण को सुनकर हँसते-हँसते लोट-पोट तक हो जाते थे। भाषण शक्ति भी इनमें असाधारण थी। जनता को अपने भाषण से मन्त्र-मुग्ध करने मे ये पूर्णत दक्ष थे। इनके भाषणों मे रोचक कथानकों और सुमधुर पद्यों का समावेश तथा तथ्यों का सकलन हम सभी छात्रों के लिए आकर्षण की वस्तु होता था।

वास्तव मे स्वय वक्ता बनने की उतनी महत्त्वाकाक्षा उनमे न थी, जितना कि अपने अनेक दूसरे साथियों को व्याख्याता बनाने मे वे अपना गौरव समझते थे। विद्यार्थियों को स्वय भाषण लिखकर देना और उन्हे भाषण-प्रतियोगिताओं मे बोलने के लिए प्रेरित करना तथा विजय-श्री उन्हें ही दिलवाना सुमनजी के प्रतिदिन के कार्य थे। सुमनजी के द्वारा लिखे गए भाषणों को रट-रटकर भाषण-प्रतियोगिता में भाग लेने वाले तथा पुरस्कार प्राप्त करने वाले हमारे गुरुकुल महाविद्यालय के कई स्नातक आजकल विधान सभा और ससद् के सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित है और उनकी वक्तृत्व-कला का सर्वत्र समादर होता है। उनको सुयोग्य व्याख्याता बनाने का सम्पूर्ण श्रेय श्री सुमनजी को है।

अपने छात्र-जीवन मे सुमनजी खेल के मैदान में भी पीछे रहने वालो मे नही थे। वे हॉकी और फुटबाल के अच्छे खिलाडी भी रहे हैं। जिन दिनों वे 'मनस्वी' के सपादक बनकर अमेठी राज्य गये थे, तब उन्हे वहाँ के राजा साहब के आग्रह पर 'टेनिस' भी सीखनी पडी थी। इन खेलो की तरह जीवन-सघर्ष के क्रीडा क्षेत्र मे भी हार मानना वे नही जानते। उनका लक्ष्य रहता है—'कार्य वा साधयेय शरीर वा पातयेयम्' (या तो कार्य को पूरा करूँगा, नही तो शरीर को समाप्त कर दूँगा)। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण उन्हे भावी जीवन में भी अनुपम सफलता मिली है।

धीरे-धीरे सुमनजी की प्रतिभा निखरने लगी और उनका परिचय पचपुरी (हरिद्वार के समीपवर्ती क्षेत्र का नाम) के कवियों और लेखकों से हो गया। गुरुकुल के उत्सव पर होने वाले 'आर्य किशोर सभा' और विद्वत्कला परिषद्' के आयोजनो मे वे विशेष रूप से भाग लेते थे। इन दोनों सभाओं के कार्यक्रमो के लिए ब्रह्मचारियों की

तैयार करना भी इनका ही काम होता था। गुरुकुल के उत्सव पर होने वाले 'कवि-सम्मेलन' में सुमनजी का सहयोग अनिवार्य होता था। वे ही प्राय उस सम्मेलन के आयोजक और कर्ता-धर्ता होते थे। अपनी सामयिक रचनाओं से जन-मन को आकृष्ट करना उन्हें अच्छी तरह आता है। सोते और ऊँघते हुए लोगों को जागृत करके कविता सुनने के लिए तैयार करना भी वे भली-भाँति जानते हैं। गुरुकुल के उत्सव मण्डप में सुनाई गई उनकी वीर रस की कविताएँ मृतकों में भी जान फूँक देती थीं।

सुमनजी आर्य किशोर सभा के वसन्त-पंचमी के अवसर पर होने वाले वार्षिक समारोहों में कभी मन्त्री, कभी अध्यक्ष आदि रहते थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण सुमनजी आर्य-किशोर-सभा (जो गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार के छोटे बालकों की सभा है) के रजत-जयन्ती समारोह के स्वागताध्यक्ष भी बनाये गए थे।

मुझे यह अच्छी तरह याद है कि सन् १९३७ में जब वे उक्त सभा के रजत-जयन्ती समारोह के स्वागताध्यक्ष बनाये गए थे, तब उनका भाषण मुद्रित रूप में वितरित हुआ था। सुमनजी के प्रयत्न से ही प्रख्यात पत्रकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करने वहाँ पधारे थे। श्री ओम्प्रकाश मित्तल की अध्यक्षता में छात्र-सम्मेलन हुआ था। श्री मित्तल का मुद्रित भाषण भी बहुत दिन तक हम छात्रों के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत बना रहा।

इस सभा की ओर से प्रत्येक वर्ष वसन्त-पंचमी पर जो कवि-सम्मेलन होता था, उसमें सामान्य कविताओं के अतिरिक्त कुछ समस्याएँ भी रक्खी जाती थीं। जो छात्र उन समस्याओं की सर्वोत्तम पूर्ति करता था, उसे पुरस्कार प्राप्त होता था। श्री सुमनजी उन सभी प्रतियोगिताओं में भाग लेते थे। सच तो यह है कि रोचक समस्याओं का चयन भी प्राय सुमनजी ही किया करते थे। इनमें से कुछ 'समस्याएँ' ऐसी भी होती थीं, जो मनोरंजक होने के साथ-साथ गुरुकुल की तत्कालीन गतिविधि पर भी प्रकाश डालती थीं और कुछ 'समस्याएँ' छात्रों के जीवन से भी सम्बद्ध होती थीं। 'बरसो घनश्याम इसी वन में', 'हो गया प्रवेश अन्धकार में प्रकाश का', 'श्याम घटा घिरि बूँद न आई', 'ऐ गोपाल, यशोदा के लाल, सभी जन चाहत प्रीति तिहारी' आदि अनेक 'समस्याएँ' छात्र-जीवन की कुछ मनोरंजक घटनाओं से सम्बद्ध थीं। सुमनजी की कविता की प्रवृत्ति धीरे-धीरे इतनी बढ़ गई थी कि वे कविता में ही नोक-झोंक का कार्य करते थे। छात्र-जीवन का उत्साह था, अत काफी समय तक कविता में ही उनका कार्य-कलाप और उधेड़-बुन चलती रहती थी। उनकी ऐसी भी चुनौती अपने साथी छात्रों को रहती थी कि जिसको कविता बनाने का उत्साह या अभिमान हो, वह अखाड़े में आकर उनसे मोर्चा लेने का साहस करे। सुमनजी के छात्र-जीवन की यह साधना ही उन्हें भावी जीवन में एक सफल लेखक, कवि और आलोचक बना सकी है।

जहाँ तक उनके सम्पादन आदि का प्रश्न है, वे दिन-प्रतिदिन निरन्तर उन्नति

ही करते रहे। अब वे केवल 'सुधाशु' और 'किशोर-मित्र' के ही सम्पादक न थे, बल्कि धीरे-धीरे उनकी माँग बाहरी ससार में भी होने लगी थी। सन् १९३७ में वे सबसे पहले 'आर्य' साप्ताहिक के सम्पादक के रूप में कार्यक्षेत्र में अवतरित हुए थे। इस समाचार पत्र को लोकप्रिय बनाने का सम्पूर्ण श्रेय आपको ही दिया जा सकता है। इसमें आप प्रत्येक सप्ताह अपनी एक या दो कविताएँ देते थे, साथ ही सामयिक और धार्मिक विषयों पर अपने विचार भी प्रस्तुत करते थे। बाहर के साहित्यिक जगत् के सम्पर्क में लाने वाला वह प्रथम सम्पादकत्व था, जहाँ से उनका वास्तविक विकास प्रारम्भ हुआ।

उन दिनों मैं भी कुछ कविता लिखा करता था और प्राय प्रति सप्ताह हम दोनों की कविताएँ 'आर्य' में प्रकाशित होती थी। बाद में मेरी प्रवृत्ति उस दिशा में मन्द पड गई और सुमनजी इस क्षेत्र में निरन्तर आगे बढते रहे। फलस्वरूप इधर-उधर होने वाले प्राय सभी कवि सम्मेलनों से सुमनजी की माँग आने लगी। जनता के प्रोत्साहन के फलस्वरूप उनकी अभिरुचि उधर और भी बढती गई। सम्पादन के क्षेत्र में 'आर्य' के सम्पादन से आपको जो अनुभव प्राप्त हुआ उसके फलस्वरूप उन्हें आगरा से निकलने वाले साप्ताहिक 'आर्यमित्र' के सम्पादन का कार्य-भार प्राप्त हुआ। अपने नवीन उत्साह, उमग और अथक परिश्रम करने की प्रवृत्ति ने इन्हें 'आर्यमित्र' में भी सफलता प्रदान की। इनके समय के 'आर्यमित्र' के साधारण अक और विशेषाक अत्यधिक लोकप्रिय हुए। उसके बाद वे अमेठी राज्य के 'मनस्वी' पत्र के सम्पादक हुए और बाद में मडी धनौरा, मुरादाबाद से प्रकाशित होने वाली 'शिक्षा-सुधा' का सम्पादन किया।

लाहौर के दैनिक 'हिन्दी मिलाप' में भी सुमनजी सहकारी सम्पादक रहे थे। उन्हीं दिनों लाहौर में इनका परिचय और सम्बन्ध कुछ क्रान्तिकारी तत्त्वों से हो गया और इनमें भी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति जागृत हो गई। फलत लाहौर में आपका मकान एक प्रकार से क्रान्तिकारी तत्त्वों का केन्द्र ही हो गया। सभी प्रकार के क्रान्तिकारी तत्त्व वहाँ मिल सकते थे। श्री सुमनजी के जीवन में इस प्रवास ने क्रान्ति का एक मन्त्र फूँका, जो उस समय से आज तक प्रज्वलित है। श्री सुमनजी साहित्यिक साधना को अर्थकरी विद्या नहीं मानते, और न वे अर्थोपार्जन के लिए लिखते और कविता करते हैं। वे क्रान्ति के एक देवदूत के रूप में लिखते-पढते हैं। सुमनजी की इन्हीं क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों के कारण उन्हें १९४२ की राष्ट्रीय क्रान्ति के समय जेल भी जाना पडा और जेल से छूटने के बाद भी अग्रेजी सरकार की क्रूर दृष्टि उन पर रही और वे अपने गाँव में भी नजरबन्द रखे गए।

श्री सुमनजी बचपन से ही विनोद प्रिय रहे हैं। वे जब तक ठट्ठा मारकर हँस न लें और दूसरे को हँसा न लें, तब तक उनकी रोटी हजम नहीं होती। यही कारण है कि जीवन के अत्यन्त कठोर और घोर सघर्ष के दिनों में भी उन्होंने अपनी हिम्मत नहीं छोडी और दु खों तथा कष्टों को हँस हँसकर सहते रहे। कारावास की कठोर यातनाएँ

भी उन्हें अपने लक्ष्य से विचलित न कर सकीं।

सुमनजी में समाज-सेवा का भाव बचपन से ही है। वे अपने-आपको समाज के साथ मिलाकर चलना चाहते हैं। उन्हें अपनी उन्नति और प्रतिष्ठा उतनी प्रिय नहीं है, जितनी कि अपने साथियों और सहयोगियों की। वे अपने साथियों और सहयोगियों की वृद्धि में बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान दे सकते हैं। उनके पास जो भी सेवा-सहायता पाने की भावना से आता है उसे वे निराश नहीं करते, चाहे वह विद्यार्थी हो, प्रकाशक हो, साहित्यिक हो, राष्ट्रीय नेता हो या समाज-सेवी। उनके सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति उनका ऋणी अवश्य हो जाता है। कभी-कभी उनकी यह अतिशय उदारता अपात्रों और कुपात्रों को भी प्राप्त हो जाती है, फलस्वरूप वे उसका दुरुपयोग भी कर बैठते हैं। पर सुमनजी को इसका कोई मलाल नहीं है। कतिपय प्रकाशक उनकी कृतियों से सम्पन्न और समृद्ध हो गए और उन्होंने इन्हें धोखा भी दिया। पर सुमनजी ने यह सब सहज भाव से सहा। वे किसी के प्रति अशुभ भावनाएँ कभी मन में नहीं लाते।

अपने छात्र-जीवन में आचार्य शुद्धबोधतीर्थ और आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेद-तीर्थ (कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार) की कृपादृष्टि सदा सुमनजी पर रही है। साहित्यिक सेवा के क्षेत्र में आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ और पं० पद्मसिंह शर्मा को वे अपना गुरु मानते रहे हैं और उनके ही पद-चिह्नों पर चलते भी रहे हैं। अपने इन गुरुओं के समान ही वे निष्काम कर्मयोगी होने में विश्वास रखते हैं। सच तो यह है कि इन आचार्यों ने ही अपने छात्रों में यह निष्काम कर्म करने का बीज रोपा था, जो आज इधर-उधर प्रस्फुटित हो रहा है।

श्री सुमनजी की इस ५०वीं वर्ष ग्रंथि पर अपना हार्दिक अभिनन्दन प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह राष्ट्र के इस कर्मयोगी को निरन्तर अभ्युदय की ओर सकुशल अग्रसर करता हुआ चिरायु करे। 'शिवास्ते सन्तु पन्थान:।'

गवर्नमेंट डिग्री कॉलिज,
ज्ञानपुर (वाराणसी)

मधु-धार रजत-रश्मि-सी !

ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'

कस्तूरी मृग नाभि से निकलती है। नाभि-नाल का सम्बन्ध माता से ही नहीं रहता, मातृभूमि से वह शाश्वत सूत्रों के साथ अखंड रहता है। नाभि हम उसे भी कहते है, जहाँ से सच्चिदानन्द की स्रोतस्विनी प्रवाहित हुआ करती है। एक नाभि विशाल वह है, जिससे हिन्दी के शत शत साहित्यकार उपकृत हो रहे है, वह नाभि राष्ट्र-भारती की है।

पर मैं एक नाभि की बात आज विशेष कहने जा रहा हूँ 'सुमन' की नाभि भी है— उसी का प्रत्यक्ष चमत्कार सप्राण हिन्दी साहित्य मे है— क्षेमचन्द्र 'सुमन'। इन शब्दो के साथ मैं उन्हे प्रणाम कर रहा हूँ क्योकि यह नाभि सारे राष्ट्र की दिशि-दिशि अपना ओजस्वी स्वर उसी तरह सस्वर करती रहेगी जिस तरह मधुच्छन्द की अधिकारिणी सजीवनी शक्ति मधु-धार रजत रश्मि की सी अजस्र वर्षा करती रहती है।

सन् बयालीस के आन्दोलनपूर्ण तुमुल क्षणो म जिन साहित्यकारो ने कारावास की यातनाएँ नही सही, और राष्ट्र वेदी पर अपने ही स्वेद की तपिश मे नही तपे, उन साहित्यकारो के बारे मे क्या कहूँ! लगता है कि वे एक साक्षात् देवत्व का दर्शन करने से वचित रह गए। भारत राष्ट्र के बीसवी सदी के इतिहास मे सन् बयालीस का आन्दोलन वैसा ही समझिये, जैसा कि वीर पुगव पुरुष के नग्न वक्ष पर उसकी शोभायमान रोमा-वली हुआ करती है। सन् बयालीस हमारी स्वतन्त्रता की वह अंतिम प्रसव वेदना थी, जो स्पष्ट सूचना दे देती है कि अब हुआ ही समझिये।

उस आन्दोलन मे, एक मोटे अन्दाज से लगभग तीन हजार आदमी ब्रिटिश सत्ता के दमन-चक्र के शिकार हुए और मृत्यु को प्राप्त हुए। किन्तु इससे चौदह गुने अधिक व्यक्ति गिरफ्तार हुए और उन्होने कारावास की कठिन यातनाएँ भोगी। उनमे से एक विनीत व्यक्ति इन पक्तियो का लेखक भी रहा, जिसका पहला सौभाग्य यह था कि वह पुलिस की गोलियो से मरते हुए बचा था, और दूसरा सौभाग्य यह था कि वह साधारण परिवार की सीमाओ से उठाकर राष्ट्र के कठोर परीक्षा निकष पर या तो साक्षात् बलि हो जाने के लिए, या जीवन पर्यन्त राष्ट्रीय सग्राम की स्वर्ण अनुभूतियो का सूत्रकार बन जाने के लिए खुला छोड दिया गया था, और तीसरा सौभाग्य यह था कि जहाँ सन् बया-लीस के दिग्गज राष्ट्र कर्णधारो का सान्निध्य भी मिला, वही पर.. मणि सदृश क्षेमचन्द्र 'सुमन' का उसी तरह अन्तरग सम्मिलन प्राप्त हुआ था, जिस तरह खाली धनुष पर प्रत्यचा चढते ही तूणीर का एक तीर ऊर्ध्व गति हो जाने के लिए मचल जाया करता है। क्या

कहा जा सकता है कि हम दोनों में से कौन प्रत्यंचा-शोभित धनुष रहा, कौन तीर रहा—पर एक बात तो स्पष्ट है कि मानो हम दोनों ही इस कारावास-प्रवास में दो हाथ और एक तीर-चढ़े धनुष की तरह जीवित रहे। उन क्षणों को न कभी भुलाया जा सकता है, और न ही उनकी गरिमा को धुँधलाया जा सकता है। सन् बयालीस के दो वर्षीय कारावास में मुझे जीवन की सबसे पहले समृद्धि की—उस समृद्धि की एक मुक्ता भरी सीपी के तुल्य उपलब्धि सुमनजी के साथ बिताये जीवन की वे अनुपम, अद्भुत और अद्वितीय कार-रात्रियाँ हैं।

सुमनजी के लिए, कुछ लिखने का, या कुछ कहने का जब भी अवसर आया है तो मैंने सदा संकोच ही किया है। कारण है इसका। जिस तरह सुहागिनी अपने अन्तरंग रमण के सुहाग की घड़ियों को इसलिए याद नहीं करती क्योंकि वे समुद्र की विशाल लहरों के तुल्य बहुत दीर्घ हुआ करती हैं उसी तरह सुमनजी की वह कथा बहुत लम्बी है। और इन अभिनन्दन क्षणों में उसका कौन सा पक्ष सबसे अधिक समुज्ज्वल समझकर प्रस्तुत किया जाय, यह रुचिवर्धक समस्या मेरे लिए कम है, सुमनजी के लिए अधिक।

सन् बयालीस के बाद लक्ष लक्ष नागरिकों के नाभि-नाल का विच्छेद भारत-विभाजन घोषित होते ही पश्चिमी पंजाब से सदा-सदा के लिए हो गया था। पर सुमनजी का वह सम्बन्ध तो सन् बयालीस में ही हुआ, यह मैं मानता हूँ। वे लाहौर की आबहवा में परिपक्व हुए ऐसे आस्था-फल के तुल्य थे जिसकी मधुरिमा केवल लाहौर की भूमि में ही सम्पुष्ट हो सकती थी। शक्ल से वे आर्यसमाजी लगते थे, जब हँसते थे तो लगता था कि पंजाब की रत्न-भूषण-प्रभाकर परीक्षाएँ हँस रही हों। जब वे अपने दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर और उन्हें व्योम मुखी मुद्रा बनाकर प्रवचन किया करते थे, तो लगता था कि अपने भू-भाग का ओजस्वी तरुण उन विकट क्षणों में जेल की चहारदीवारी का बन्दी होकर भी उन्मुक्त है और आकाश में उड़ते हुए पंछियों के साथ या अठखेलियाँ करती बदलियों के साथ बीसवीं सदी का यक्ष बना हुआ अपनी अभीप्सित दिशा में उड़ चला है। मैं उनकी इसी अदा पर फिदा था और कुर्बान था।

हम हम दोनों फीरोजपुर-जेल में थे। जिस तरह विरहिणी के दिन एक सौ होते हैं और रातें एक सौ होती हैं, उसी तरह जेल की बंदी अवस्था के दिन और रातें हुआ करती हैं। शायद तीन मास मैं उनके साथ रहा। मुझे तो पंजाब हाईकोर्ट ने ससम्मान छोड़ दिया था, तो मैं घर चला आया। पर सुमनजी अपनी नजरबन्दी को पीछे से भोगते रहे।

मेरा यह विश्वास है कि जिस समय किसी भी तरुण की तरुणाई स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करने के लिए सौभाग्यवती होनी चाहिए, उस समय वे देश के लिए कुरबानी

देते हुए सानन्द सोल्लास नजरबन्दी भोग रहे थे। उस कारावास में वे कुछ उसी तरह से तपे जैसे बारह वर्ष की वनवास यात्रा में पांडव अपने न्याय पक्ष के लिए कटिबद्ध होने गए। जब भी मैं दिल्ली जाता हूँ तो उन्हें आज भी साहित्य के धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र का एक संघर्ष रत सेनानी के रूप में ही देखता हूँ।

फीरोजपुर की जेलयात्रा से पहले भी सुमनजी पंजाब के लोकप्रिय कवियों में अपना एक प्रतिष्ठित स्थान रखते थे किन्तु इस कारावास ने सुमनजी की लेखनी को एक नई दिशा दी—वे गुंजनवती अनुभूतियों के सिद्ध गद्यकार हो गए।

मैं नहीं जानता कि उनके घनिष्ठ और प्रगाढ़ मित्रों ने कभी इस बात को ध्यान से सीखने समझने की कोशिश की है या नहीं पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि फीरोजपुर के इस कारा प्रवास ने उनके व्यक्तित्व में एक मुरखाव का पर चौड़ दिहाड़ लगाया था—वह था राष्ट्रभारती के क्षेत्र में एक सफल राजनीतिक बन जाने का। यह फीरोजपुर जेल की देन है। इस बारे में मुझे कोई शक नहीं। दिल्ली में हिन्दी की त्रिविध विधाओं को प्रश्रय देने का और राष्ट्रभारती के अनेक पहलुओं को सबल बनाने का जो काम सुमनजी निरन्तर करते रहते हैं वह सब उनके सफल राजनीतिज्ञ होने के कारण ही सम्भव हो पा रहा है।

सुमन का साहित्य-क्षेत्र में क्या स्थान है, यह सोचने का उचित अवसर अभी नहीं आया है। हां वे हिन्दी के दृढ़ स्तम्भ किस रूप में हैं यह मूल्यांकन करने की अभिवंदनीय घड़ी अवश्य आ गई है।

सुमन का एक शाब्दिक अर्थ है फूल। पर भावी हिन्दी का बृहद् शब्दकोष यह नया अर्थ भी लिखने के लिए बाध्य होगा क्षेमकर किसलयों का सम्पूर्ण विहँसता रूप।
क्षेमचन्द्र सुमन हमारे बीच ऐसी ही प्रिय विभूति हैं।

जैमिनी प्रकाशन,
माधो भवन, महात्मा गांधी मार्ग, कलकत्ता

जीवन-संघर्ष में विजयी श्री 'सुमन'

श्री रतनलाल बंसल

सन् १९४५ ४६ की बात है। देश का वायुमंडल आजाद हिन्द फौज के बलिदानी वीरों की कहानी और नारों से गूंज रहा था। लेखन और साहित्य-सेवा अभी व्यवसाय नहीं बना था, अतः कवि और लेखक भी अपनी कृतियों से आजाद हिन्द फौज की भावना और लक्ष्य को जन-जन के हृदय में प्रविष्ट करा रहे थे। उन दिनों ही दिल्ली से प्रकाशित होने वाले कतिपय पत्र-पत्रिकाओं में एक नये साहित्यकार और कवि के दर्शन हुए। नाम था श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'। उनकी कृतियों का विषय भी देश की स्वाधीनता था। भाषा में जोश और शैली मार्मिक थी। आजाद हिन्द फौज के वीरों के अभिनन्दन में भी उनकी कुछ कविताएं पढ़ने को मिली। समाचारपत्रों से यह भी सूचना मिली कि राजधानी ने इस नये साहित्यकार का बहुत ही उत्साहपूर्ण स्वागत किया है। यह भी सूचना मिली कि देश की स्वाधीनता केवल उनकी लेखनी का ही विषय नहीं है, उनके जीवन का भी लक्ष्य है और इसके लिए उसने कष्ट भी उठाये हैं। मेरा युवक मन भी उनकी ओर खिंचा और पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ। उत्तर-स्वरूप प्राप्त पत्रों में स्नेह-सौजन्य और विनम्रता थी, जो मुझे खींचकर दिल्ली ले गई। सुमनजी के दर्शन हुए। कुछ बातें हुईं, जो कार्य था, उसमें सहयोग मिला और मैं यह गर्व लिये हुए दिल्ली से वापस लौटा कि सुमनजी जैसा साधनाशील साहित्यकार, कवि, देशभक्त व्यक्ति न केवल मेरे परिचय की परिधि में है, बल्कि मेरा मित्र भी है। मैं प्रायः सोचा करता हूँ कि उन दिनों ऐसी बातों और घटनाओं से जैसा सन्ताप और आनन्द प्राप्त होता था, वह अब कहाँ, और क्यों, खो गया? क्या उन दिनों अनुभव शून्य मन इतना भोला था कि कांच के टुकड़ों को हीरा समझकर अपने को धन्य मान लेता था, या अब ही कोई ऐसी विनाशकारी हवा चली है कि उसने हीरों को कांच बना दिया है। दुनिया कुछ भी कहे, मुझे दूसरी बात ही तर्कसंगत लगती है। मैं नहीं मानता कि ये सब लोग, जिनकी एक दिन हम जय बोलते थे और आज गालियां देते हैं, उस समय भी गालियों के ही योग्य थे। ऐसा क्या हुआ, इसके विश्लेषण में मैं इस समय नहीं जाऊँगा।

इसके पश्चात् प्रायः सुमनजी से भेंट होती रही। संयोगवश मेरे कुछ रिश्तेदार दिल्ली पहुँच गए और सुमनजी उनके मित्र ही नहीं, एक प्रकार से उनके परिवार के ही सदस्य बन गए। उनके ही यहाँ रहना-सोना, खाना पीना। उन दिनों श्री सुमनजी अपनी कठिनाइयों में जूझ रहे थे। राजधानी के साहित्यकारों में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो चुकी थी और स्वतंत्र लेखन को जीवन-यापन का साधन बना लेने वाले व्यापारिक दांव-पेचों के साथ अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष रत थे। इस संघर्ष में सुमनजी भी थे और अवसर के अनु-

कूल मित्र तथा सहायक खोज लेने में कुशल श्री सुमनजी इस संघर्ष में विजयी ही हुए, हारे नहीं। इसके परिणामस्वरूप श्री सुमनजी के नाम से अनेक पुस्तकें बाजार में आई। कुछ उनके द्वारा सम्पादित, कुछ उनकी लिखी हुई। श्री सुमनजी अधिकाधिक प्रसिद्ध होते गए और उसी अनुपात से उनकी कृतियों में भी कलापक्ष का ह्रास होता गया। पूंजीवादी समाज-व्यवस्था में ऐसा होना अनिवार्य भी था।

श्री सुमनजी ने प्रारम्भ में राजधानी की राजनीति में भी मोर्चा लगाया। किन्तु दो-दो मोर्चों पर लड़ने की क्षमता उनमें नहीं थी। यदि वे आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न होते तो आज दिल्ली की राजनीति में निश्चय ही वे एक प्रमुख व्यक्ति होते। किन्तु वस्तु-स्थिति को समझ लेने में कुशल श्री सुमन शनैः शनैः राजनीतिक मोर्चे से पीछे हटते गए और फिर साहित्यिक मोर्चे पर ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति से लड़ते रहे। आज भी वे केवल साहित्य तक ही सीमित हैं। साहित्य अकादेमी में कार्य करते हैं, घर-गृहस्थी का सुख सुविधा से पालन-पोषण करते हैं, मित्रों से निश्छल रूप से मिलते हैं, परिचितों को घनिष्ठ मित्र बनाते हैं, शत्रुओं की शत्रुता अधिक नहीं बढ़ने देते—और यों राजधानी में ठाठ से जमे हुए हैं।

सुमनजी को देखकर मुझे प्रायः एक शेर याद आता है :

> कमी फलक ने की न बिजलियां गिराने में,
> रकीबों ने छोड़ा न सय्याद ने मिटाने में।
> हजारों कोशिशें बावाखिलाफ ने कर लीं,
> बड़े रियाज़ के तिनके थे आशियाने में।

श्री सुमनजी विजय और सफलता के मार्ग पर इसी प्रकार आगे बढ़ते जायँ, यही कामना है।

फीरोज़ाबाद (उ० प्र०)

जन-जीवन-उद्यान का सुरभित सुमन

श्री राजेन्द्र शर्मा

पच्चीस अप्रैल, १९६४। सुबह-सुबह फोन मिला कि सुमनजी की अम्मा का स्वर्गवास हो गया। शाहदरा बार्डर से भी तीन-चार फर्लांग के अन्तर पर 'धूनी' रमाने वाले सुमनजी के जंगल में मंगल चरितार्थ करने वाले 'अजय-निवास' की राह पकड़ी, तो सोचता रहा कि इस बियाबान स्थान में कौन पहुँचेगा ? और अम्मा की

अन्तिम-यात्रा का प्रबन्ध तो बड़ा ही कठिन होगा ! लेकिन जब मैं 'अजय-निवास' पहुँचा तो आश्चर्यचकित रह गया। सुमनजी की 'पर्णकुटी' के सामने दरी बिछी थी और उस पर अनेक व्यक्ति बैठे हुए थे। सुमनजी भारी मन से अम्मा के दुलार-प्यार की कहानियाँ सुनाते-सुनाते गद्गद हो जाते थे और सुनने वाले भाव-विभोर ! वहाँ उपस्थित व्यक्तियों में मैंने अपने पुराने सहयोगी 'नवभारत टाइम्स' के संपादक श्री अक्षयकुमार जैन और नगर निगम की स्थायी समिति के अध्यक्ष श्री ब्रजमोहन को तो सहज ही पहचान लिया। दूसरे लोगों में शाहदरा के जन-जीवन से निकट संबंध रखने वाले कांग्रेसी कार्यकर्ता, समाज-सेवक तथा कई छोटे-बड़े व्यक्ति थे। बाहर से संयोगवश भाई पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' भी आये हुए थे।

कुछ ही समय बाद मुझे और कमलेशजी को 'एडवांस पार्टी' के रूप में निगम-बोध घाट पहुँचने का निर्देश हुआ, ताकि वहाँ पहुँचने वाले इष्ट मित्रों को सूचना हो सके। और आखिर जब अम्मा (हाँ ! प्यार और श्रद्धा से वे सभी के द्वारा 'अम्मा' की आत्मीयता भरी आवाज़ से ही सम्बोधित होती थीं।) का पार्थिव अवशेष निगमबोध पहुँचा, तो मैंने देखा, शाहदरा के अतिरिक्त दिल्ली और नई दिल्ली से लगभग दो सौ-ढाई सौ व्यक्ति वहाँ पहुँच चुके थे। इनमें प्रसिद्ध पत्रकार, साहित्यकार, लेखक, पुस्तक प्रकाशक, प्रेस-संचालक, सरकारी दफ्तरों के सुमनजी के अनेक नये-पुराने सहयोगी, शिक्षा-शास्त्री और सामाजिक नेता मौजूद थे। कहने का तात्पर्य यह कि जीवन के हर क्षेत्र का छोटा-बड़ा व्यक्ति वहाँ मौजूद था। उस दिन मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' सचमुच सार्वजनिक जीवन में जनता के सेवक हैं, और जैसे वह अपने संपर्क में आने वाले हर व्यक्ति का कुशल-क्षेम चाहते हैं, उसी प्रकार उनके दुःख में भी हिस्सा लेने वाले हितैषियों की कोई कमी नहीं है।

यह सही है कि सार्वजनिक क्षेत्र में सुमनजी ने शाहदरा में रहकर, जो सेवाएँ की हैं, उनसे उनके अधिकांश साहित्यकार मित्र अपरिचित हैं। पर जब मैं दो साल पूर्व नवीन शाहदरा में रहने आया तो मुझे मालूम हुआ कि सुमनजी केवल वही साहित्यकार नहीं हैं, जिन्हें मैं गत बीसियों वर्षों से जानता हूँ—इससे बढ़कर वह सही अर्थों में जनता के निःस्वार्थ सेवक भी हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति का मार्ग सदैव कण्टका-कीर्ण होता है, और जो साहस के साथ निष्पक्ष होकर सार्वजनिक क्षेत्र में रहता है वह तो सचमुच ही अंगारों पर चलने का दुस्साहस करता है—दुस्साहस इसलिए कि उसे मंत्र साधकर अग्नि को शान्त करने का जादू नहीं आता।

सुमनजी कई मित्रों की दृष्टि में ज़रूरत से ज़्यादा 'सामाजिक' व्यक्ति हैं। होंगे, पर मैं मानता हूँ कि उनके स्वभाव में ये गुण विद्यार्थी-जीवन में ही विकसित होने शुरू हो गए थे। वे सार्वजनिक क्षेत्र में जो सेवाएँ कर रहे हैं, उनको यदि एक ही वाक्य में कहना हो, तो मैं कहूँगा कि 'वे पर-दुःख दुखी रहते हैं' और उनका जीवन-सूत्र होगा—परहित

सरिस धर्म नहिं भाई। उन्होंने स्वयं कष्ट उठाया है और दूसरों का (उनके लिए अपनों का ही) कष्ट दूर किया है।

छात्रावस्था का यह गुण सुमनजी में आयु के साथ-साथ निरन्तर विकसित होता रहा। छात्रावस्था में ही सुमनजी कांग्रेस के स्वाधीनता-आन्दोलन से प्रभावित हुए थे। गुरुकुल के वातावरण ने उन्हें भावनाओं से राष्ट्रीय और कर्म से देश-सेवक बना दिया। आज तक इन्हीं दो किनारों के बीच उनकी जीवन धारा बहती रही है। ६ जुलाई १६५४ को सुमनजी शहर की भीड़ भाड़ से निकले। हाथीखाने का मकान छोड़कर जब वे शाहदरा की शहरी बस्ती से लगभग तीन मील और आगे जंगल में आये—दिलशाद कॉलोनी का तब ऐसा ही रूप था, तो उनके अनेक शुभचिंतकों ने भौंह सिकोड़ी, यहाँ तक कि घरवाला और घरवाली ने भी 'विरोध पत्र' प्रस्तुत किया। पर अपने कर्म और विचारों पर दृढ़-संकल्प का ध्वज लिये आगे बढ़ने वाले सुमनजी ने किसी की न सुनी। उस समय न तो दिल्ली तक पहुँचने के लिए कोई सीधी बस सर्विस थी न ही प्राइवेट बसों का आज-जैसा तांता लगा रहता था। राशन-पानी की व्यवस्था भी तीन मील दूर शाहदरा आकर जुटानी पड़ती थी। दिलशाद कॉलोनी में आज तो लगभग ढाई सौ व्यक्तियों के पचास परिवार रह रहे हैं, पर उनमें से सब लोग यह नहीं जानते कि आज वे जिन नागरिक सुविधाओं का लाभ वहाँ उठा रहे हैं, उन्हें उपलब्ध कराने में अकेले सुमनजी ने ही कितना युद्ध' किया है—और वह भी सिर्फ कलम के बूते पर।

दिलशाद में बसने के बाद पहला संघर्ष दिल्ली ट्रांसपोर्ट अण्डरटेकिंग से शुरू हुआ। उनकी प्रार्थनाओं पर कोई ध्यान न देकर डी० टी० यू० की बस सर्विस शाहदरा बॉर्डर तक नहीं आ रही थी। सुमनजी ने इसके लिए सैकड़ों प्रतिवेदन प्रस्तुत किये, अधिकारियों से मिले और आखिर 'रसरी आवत जात तें सिल पर होत निसान' ११-ए नम्बर की बस सर्विस शाहदरा-बार्डर तक जाने लगी। आज सहस्रों व्यक्ति उस बस-रूट से लाभ उठा रहे हैं। डी० टी० यू० से उनका संघर्ष लम्बा चला है और आज भी इसमें यदा-कदा जोश और जोर आ जाता है। यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि सुमनजी शाहदरा क्षेत्रीय जन सम्पर्क समिति के सन् ६० से सदस्य हैं और अब तीसरी बार इस समिति में चुने गए हैं। इस हैसियत से वे बराबर शाहदरा की जनता की सुविधाओं के लिए जद्दो-जहद करते रहते हैं। अस्तु, बस-सर्विस में सुधार के लिए उन्होंने जो बीड़ा उठाया वह अब तक उठाया हुआ है। पहले शाहदरा बार्डर के लिए बस-सर्विस हर नब्बे मिनट बाद थी, अब इसका अन्तर बीस मिनट है। आप अनुमान लगा सकते हैं कि उनके प्रयासों का क्या परिणाम सामने आया है। इसी तरह केन्द्रीय सैक्रेटेरियट तक सीधी बस चलवाने में भी उन्होंने बड़ा संघर्ष किया। पहले शाहदरा से सैक्रेटेरियट तक एक ही बस जाती थी, अब पाँच बसें जाती हैं और एक तो सीधी शाहदरा-बॉर्डर से चलती है। इसी तरह विश्वविद्यालय तक भी सीधी बस सर्विस चालू हो चुकी है।

बस यात्रा की सुविधा के साथ ही सुमनजी ने कौडिया पुल के निकट सार्वजनिक मूत्रालय बनवाने के लिए निगम-अधिकारियों को बाध्य किया। इसके अतिरिक्त अब गाजियाबाद जाने वाली ३२ नं० सर्विस में भी बॉर्डर के यात्रियों को बैठने की सुविधा हो गई है। दिल्ली लौटते हुए यह सर्विस शाहदरा में भी यात्री लेती है। यह भी सुमनजी की सूझ-बूझ से हुआ है। 'सूझबूझ' मैं इसलिए कहता हूँ कि डी० टी० यू० को भी इससे आर्थिक लाभ हुआ है। जब-जब डी० टी० यू० ने उनकी बात अनसुनी की तब-तब उन्होंने पत्रों का सहारा लिया और दैनिक पत्रों में सपादक के नाम पत्र प्रकाशित करवाकर दिल्ली-शाहदरा के नागरिकों के लिए विभिन्न सुविधाओं की माँग की।

दिलशाद कॉलोनी में पहुँचने के बाद सुमनजी जब जुलाई, १९५४ में ही वहाँ तक बिजली पहुँचवाने में सफल हो गए, तब उन्होंने टेलीफोन के दफ्तर की घंटी बजाई। और दिसम्बर' ५४ में यह घंटी उनके अजय-निवास में भी बजने लगी। आजकल के युग में टेलीफोन एक बड़ी सुविधा है। इससे व्यक्ति घर से बाहर न जाकर भी, दूर-दूर तक घूम आ सकता है। और यह सत्य भी सुमनजी के जीवन में चरितार्थ हुआ। लगभग एक वर्ष बाद ही ५ अक्तूबर '५५ को जमना में भयंकर बाढ़ आ गई। पीछे से यमुना की नहर का पानी शेषनाग की सहस्र जिह्वाओं की तरह लपलपाता हुआ दिलशाद कॉलोनी में घुस आया। सुमनजी अपनी गृहस्थी का सामान बटोरकर छत पर जम गए और परिवार को गाँव भेजकर स्वयं उसी टापू में रॉबिन्सन क्रूसो बन गए। दस दिन तक वे सिर्फ टेलीफोन से ही इधर-उधर घूमते रहे और जीवट के धनी सुमनजी ने तनिक भी हार न मानी, यह उनकी निर्भीकता का ही द्योतक है। कैसा धैर्य और साहस इस व्यक्ति में है!

अब बाढ़ का कोई खतरा नहीं है, फिर भी दिलशाद कॉलोनी अभी तक एक

जल-मग्न दिलशाद गार्डन जहाँ एक मकान की छत से आवाज आती है

(हमारे कार्यालय संवाददाता से)

दिल्ली शाहदरा से दो मील दूर दिलशाद गार्डन नामक एक बस्ती आज भी बाढ़ के पानी में डूबी हुई है। वहाँ के निवासी पानी भरता हुआ देखकर पहले ही मकान खाली करके भाग गए थे। केवल एक मकान की छत से कभी-कभी आवाज आती रहती है जो हिन्दी के कवि श्री क्षेमचन्द्र सुमन की है। सिर्फ टेलीफोन ही उनके इस आत्मनिर्वासन का साथी है जो कम से कम उनकी पुकार तो दूसरों तक पहुँचा रहा है। अभी राज्य सरकार और शाहदरा म्युनि-सिपल कमेटी तो इस इलाके का पानी निकालने की चिन्ता नहीं करते और पानी खुद निकल सके और वहाँ से ? मगर पानी को धरती माता स्वयं पी रही है जिससे अब वह ६ फुट से केवल ३ फुट रह गया है। श्री सुमन को भोजन आसपास के लोग नाव द्वारा पहुँचा रहे हैं।

'दैनिक हिन्दुस्तान' १० अक्तूबर '५५

टापू ही बनी है—वह इस अर्थ में कि मुख्य जी० टी० रोड से दिलशाद कॉलोनी को मिलाने वाली कोई सीधी 'सम्पर्क सडक' नही है और सुमनजी इसके लिए बराबर सघर्ष-रत हैं। इस व्यक्ति के जीवन में मानो सघर्षों का आना ही नियम है। और वैसा ही नियम है, उनके ध्वस्त होने का भी।

राशनिंग से पूर्व दिल्ली-प्रशासन ने शाहदरा के नागरिको पर जब यह प्रतिबध लगाया कि वे दस किलो से अधिक गेहूँ नही खरीद सकते, तो सुमनजी ने पत्रो मे इस हिटलरशाही आदेश की खिलाफत की। फलस्वरूप इस आज्ञा के विरुद्ध उनका पत्र कई दैनिक पत्रो में प्रकाशित हुआ और अधिकारियो को तुरन्त कार्रवाई करने के लिए विवश होना पडा। दिलशाद कॉलोनी म रहने वाला के लिए परमिट बनाये गए ताकि वे एक माह का राशन इकट्ठा ही खरीद सके। अब तो खैर दिल्ली मे राशनिंग ही हो गया है।

सुमनजी के व्यक्तित्व मे सादगी के दर्शन होते हैं जरूर, पर वे भीतर से उतने ही दृढ है। सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति को प्राय विष के कडवे घूँट कठ में रखने पडते है। व्यक्ति की सफलता उसके समकालीन कार्यकर्ताओ के लिए प्राय ईर्ष्या का विषय बन जाती है। सुमनजी पर भी ऐसे 'सकट' आते रहे हैं, पर वे उन झूठे बादलो की तरह निकल गए जो बरसते नहीं। शाहदरा म सास्कृतिक कार्यक्रमो का श्रीगणेश सुमनजी के यहा बसने के बाद ही होता है। बालूशाही की मिठाई और आस पास के गाँवा के लिए अनाज की मडी के लिए ही शाहदरा की ख्याति रही है। धीरे धीरे आबादी बढी और जनता मे स्वाधीनता के बाद सास्कृतिक एव राजनीतिक चेतना भी आई। सुमनजी ने शाहदरा को उसका सबसे बडा सास्कृतिक आयोजन १९५७ में दिया जब कि डॉ० 'कमलेश' की अध्यक्षता में एक बडा कवि-सम्मेलन यहाँ हुआ। इसमें देश के लगभग सभी गण्यमान्य कवियों ने भाग लिया। दूसरा कवि-सम्मेलन २२ जनवरी, १९६३ को हुआ, जिसमे राष्ट्रीय रक्षाकोष के लिए २२०० रुपया एकत्र हुआ, जो २४ फरवरी को भेंट किया गया। चीनी आक्रमण के समय जन-मानस मे अभूतपूर्व जाग्रति उत्पन्न करने में सुमनजी ने दिन-रात एक कर दिया। अपने कुछ प्रमुख सहयोगियो के साथ मिलकर उन्होंने दस हजार रुपये इकट्ठे किये और उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिरहुसैन को आमन्त्रित करके उन्हे थैली भेंट की गई। १९६२ के समय ही श्यामाप्रसाद मुखर्जी हायर सैकण्डरी स्कूल की ओर से ११०० रुपया राष्ट्रीय रक्षा-कोष मे भेट किये गए। इसके पीछे भी सुमनजी की प्रेरणा ही काम कर रही थी। इस समारोह में शिक्षा-सचालक श्री बी० डी० भट्ट भी उपस्थित थे।

श्यामाप्रसाद मुखर्जी स्कूल का उल्लेख होते ही सुमनजी की उन सेवाओ की चर्चा करना भी आवश्यक हो जाता है, जो उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र म की है और कर रहे है। उनके बहुत-से साहित्यिक मित्रो को सभवत यह पता ही नही है कि वे श्यामाप्रसाद मुखर्जी स्मारक हायर सैकण्डरी स्कूल की प्रबन्ध-समिति मे गत छ वर्षों से काम कर रहे हैं और आजकल तो वे उसके मैनेजर है। श्यामाप्रसाद मुखर्जी स्कूल मे आजकल दो शिफ्टें लगती है—सुबह लडकियो की और शाम को लडको की। लगभग ९०० छात्र इसमे

शिक्षा पा रहे है। इस स्कूल के छात्रों ने सुमनजी से प्रेरणा ग्रहण करके कई छात्रीय स्तर के वाद-विवादो मे भाग लिया है और पुरस्कृत हुए है। सुमनजी के प्रयास से ही उस स्कूल मे विज्ञान की कक्षाएँ आरभ हुई और भवन का विस्तार हुआ। आज भी इस स्कूल का विस्तार कार्य बराबर चल रहा है।

कन्याओं की शिक्षा को प्रोत्साहन देने वालो मे सुमनजी सबसे आगे हैं। गत तीन वर्षों से वे आर्यकन्या पाठशाला, शाहदरा के अध्यक्ष हैं। इसमे ११०० बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही है और दो शिफ्टो मे स्कूल लगता है। इस सस्था मे भी क्रमिक सुधार हो रहा है। परिणाम तो निश्चय ही उन्नत हुए हैं। कॉलेज का शाहदरा मे बडा अभाव था। इसके लिए भी सुमनजी न सबसे पहले १९५९ मे आवाज उठाई। उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् और विश्वविद्यालय-अधिकारियों को उन्होंने बराबर लिखा और झकझोरा। आखिर १९६४ मे विश्वविद्यालय के अधिकारियो और विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग ने श्यामलाल गुप्ता कालेज का ओखला में सस्था का श्रीगणेश करने का निश्चय रद्द किया और शाहदरा मे कॉलेज खोलने की आज्ञा दी। १९६४ से यह कॉलेज चालू हुआ, जिसमे आज लगभग २५० लडके-लडकियाँ शिक्षा पा रहे है। सुमनजी की ये कुछ ऐसी सेवाएँ है, जिनका बहुत-से लोगो को पता तक नही। बताइये, नीव का पत्थर क्या कभी दिखाई देता है?

राष्ट्रीय कांग्रेस की शाहदरा शाखा के लिए भी सुमनजी ऐसे ही नीव के पत्थरो म से हैं। आश्चर्य की बात यह है कि वे कांग्रेस के चवन्नी वाले सदस्य भी नही है, पर ऐसे सदस्यो से बढकर रचनात्मक कार्य करनेवालो मे वे सबसे आगे हैं। दिल्ली कॉर्पोरेशन के पहले चुनावो में शाहदरा की पाँच सीटो मे से जब ४ सीट जनसघ छीन ले गया तो कांग्रेसी नेताओ की आँखें खुली। सगठन को मजबूत बनाने का काम जिन लोगों को सौंपा गया उनमें सुमनजी भी थे। परिणाम देखने मे आया १९६० के निगम के चुनावो में, तराजू का पलडा कांग्रेस की तरफ भारी हो गया। ४ सीटें कांग्रेस को मिली और सिर्फ १ जनसघ को। इस जीत पर सबसे अधिक बधाई मिली सुमनजी को, जिन्होंने अपने मित्र श्री ब्रजमोहन के निमत्रण पर दिन-रात एक करके कांग्रेस का प्रचार किया और सगठन को नई स्फूर्ति एव प्रतिष्ठा दी। श्री ब्रजमोहन पुराने पत्रकार हैं, उन्होंने जब सुमनजी का सहयोग माँगा तो सुमनजी ने नगर-कांग्रेस के इस युवा अध्यक्ष को भी पूरा-पूरा सहयोग दिया। इन सभी कार्यक्षेत्रो में सुमनजी आज भी अथक परिश्रम करके बराबर अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहे हैं, जबकि शायद उनका स्वास्थ्य उन्हे इस बात की पूरी अनुमति नहीं देता। शाहदरा के जन-जीवन-उद्यान का यह एक ऐसा पूर्ण विकसित सुमन है जिसकी ओर बरबस ध्यान आकृष्ट होता है, क्योंकि पचास पतझड अपने सिर पर से गुजारकर भी यह सदाबहार फूल की तरह सुरभित है और रहेगा।

द्वारिकापुरी,
शाहदरा,-दिल्ली ३२

निष्काम कर्मयोगी

श्री करनसिंह प्रभाकर

हिन्दी-साहित्य के महारथी, माँ भारती के सच्चे सपूत श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' उन व्यक्तियों में से एक हैं, जो जीवन को सच्चे अर्थों में जीते हैं। वे साहित्य और समाज की अनवरत सेवा करते हुए अपने जीवन की पचास मंजिलें पार कर चुके हैं। उनका यह अर्द्धशताब्दी का जीवन त्याग, तपस्या और सेवा का ज्वलन्त उदाहरण है। समाज सेवा का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जिसमें इस सुमन की सुगन्ध न फैली हो। यौवन काल की बात छोड़िये, जबकि ये स्वाधीनता संग्राम के सिपाही के रूप में जेल में बन्द रहे, घर पर नजरबन्द रहे, आजकल (वार्धक्य की ओर कदम बढ़ाते हुए) भी वे अनेक सभा संस्थाओं के कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। सच तो यह है कि वे स्वयं एक चलती-फिरती संस्था हैं। उनकी कार्यक्षमता और संगठन शक्ति अद्भुत है। उनकी सेवा करने की प्यास कभी तृप्त नहीं होती। जब वे किसी सामाजिक कार्य को अपने हाथ में ले लेते हैं, तो बस, फिर उनका खाना पीना और आराम हराम हो जाता है। स्मरण रखिये, उनकी समाज सेवा ख्याति, यश अथवा किसी पद प्राप्ति के लिए नहीं, केवल स्वान्तः-सुखाय है। सेवा में उनकी आत्मा को असीम आनन्द मिलता है। मैं तो उन्हें एक निष्काम कर्मयोगी के रूप में देखता हूँ। उनके कितने ही पुराने कांग्रेसी साथी अपना जेल जाने का सर्टिफिकेट दिखाकर आज ऊँचे पदों पर विराजमान हैं, जनता के लीडर बने हुए हैं, परन्तु सुमनजी ने सदा पद और लीडरी से घृणा की है। हाँ, उन्होंने दूसरों को अवश्य लीडर बनाया है। मैं कितने ही ऐसे राजनीतिक नेताओं को जानता हूँ, जिनको चमकाने में सुमनजी का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

एक बार जब दिल्ली में विधान सभा बनी तो सुमनजी ने कांग्रेस के चुनाव-आन्दोलन में दिन रात एक कर दिया। मैंने उनसे कहा—"सुमनजी! आप स्वयं कांग्रेस टिकट पर किसी क्षेत्र से चुनाव क्यों नहीं लड़ते ?" वे हँसकर बोले—"अरे भई मुनिजी! (वे संकोची स्वभाव के कारण मुझे प्यार से 'मुनिजी' कहकर पुकारते हैं) हम तो छप्पर उठाने वाला में हैं। दूसरों को छप्पर की छाया में बैठे देखकर ही हमें आनन्द मिलता है।" वास्तव में उन्हें नींव की ईंट बनने में आनन्द आता है, चोटी का कलश बनना वे पसन्द नहीं करते।

सुमनजी ने साहित्य क्षेत्र में जहाँ स्वयं सफलतापूर्वक लेखनी चलाई है, वहाँ अनेक नये साहित्यकारों को जन्म देकर भी साहित्य की कम सेवा नहीं की। नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाना वास्तव में उनकी एक हॉबी है। इस दृष्टि से मैं तो उन्हें

आधुनिक युग का 'द्विवेदी' कहा करता हूँ। मैंने जब अपनी पहली कविता (तुकबन्दी कहूँ तो ठीक है) झिझकते हुए उनके सामने रखी तो उसे पढ़कर वे बोले—"अरे भई वाह! तुम तो बड़ी अच्छी कविता लिख लेते हो। अभ्यास करो, कवि बन जाओगे।" दूसरे दिन उन्होंने वह कविता शुद्ध करके (यों कहिये कि उसका कायाकल्प करके) मुझे दी। उसी शाम को वे मुझे अपने साथ एक कवि सम्मेलन में ले गए और वही कविता मुझसे पढ़वाई। स्वयं दाद दी और अपने मित्रों से दिलवाई। सुमनजी की कृपा से मैं कवि तो न बन सका, हाँ, कविता-प्रेमी अवश्य बन गया।

सुमनजी के घर का दरवाजा अतिथि-सत्कार के लिए हर समय खुला रहता है। परिचित अथवा अपरिचित जो भी व्यक्ति उनके घर पर आता है, उसका सप्रेम स्वागत होता है। वे अपरिचित व्यक्ति से भी उसी आत्मीयता के साथ मिलते हैं, जैसे किसी घनिष्ठ मित्र से मिल रहे हों। उनकी सरलता, सादगी और मिलनसारिता ने उन्हें सर्व-प्रिय बना दिया है। उनके सरल स्नेह का झरना सबके लिए समान रूप से प्रवाहित रहता है। कृत्रिमता और आडम्बर से वे कोसों दूर रहते हैं। उनकी निश्छलता और निरभिमानता ने उनके व्यक्तित्व को ऊँचा उठा दिया है। कोई ही ऐसा दिन जाता होगा जबकि उनके घर पर मित्रों तथा अतिथियों का जमघट न रहता हो। इनमें बहुत से तो 'अनचाहे मेहमान' भी होते हैं, परन्तु सुमनजी समान रूप से सबका सत्कार करते हैं, सबके दुख-सुख में शामिल होते हैं, यथाशक्ति सबका हित-साधन करते हैं। एक बार उन्होंने मुझसे हँसकर कहा था—"भई, हम तो पाँचों पाडवों की बुद्धिमत्ता पर आश्चर्य करते हैं जिन्होंने अज्ञात रूप से विराट् नगर में एक वर्ष व्यतीत कर दिया। हमसे तो दिल्ली-जैसे विशाल नगर में एक दिन भी छिपकर नहीं रहा जा सकता।" कहने का तात्पर्य यह था कि वे दिल्ली के किसी भी कोने में मकान लेकर रहें, 'अनचाहे मेहमान' उन्हें ढूँढ ही लेते हैं। भला सुमनजी-जैसा त्यागी, स्नेही और उदार-हृदय व्यक्ति छिपकर रह सकता है? इस अनूठे सुमन की सुगन्ध तो स्वत ही चारों ओर फैल जाती है।

अपनी निस्पृहता, उदारता और दानशीलता के कारण सुमनजी को अनेक बार आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, परन्तु ये कठिनाइयाँ इस धीर पुरुष को कभी अपने पथ से विचलित नहीं कर सकीं। सुमनजी का व्यक्तित्व अनेक अग्नि-परीक्षाओं में तपकर निखरा है। एक दिन मैं सुमनजी के घर पर बैठा हुआ था। घरेलू समस्याओं पर चर्चा चल रही थी। बीच में हाथ तंग रहने की बात आ गई। तब प्रतिमाजी (सुमन-जी की पत्नी) से न रहा गया। वे कुछ तीव्र स्वर में बोलीं—"इनका हाथ तंग क्यों न रहे, जो कमाते हैं वह तो यार-दोस्तों को खिला देते हैं।" तब सुमनजी मुस्कराये और बोले—"मैं क्या करूँ, मुल्ला की दाढ़ी तो ताबीजों में ही जाती है।" इस पर हँसी का वह

फव्वारा छूटा कि वातावरण ही बदल गया। सुमनजी अपने हँसमुख स्वभाव के कारण वातावरण को बदलने में बड़े पटु हैं। वास्तव में सरस्वती के उपासकों पर लक्ष्मी की कृपा चाहे न रही हो, परन्तु सरस्वती की कृपा से उन्हें उस अमूल्य धन की प्राप्ति हो जाती है, जिसके सामने संसार के सारे धन तुच्छ है—वह है सन्तोष धन!

सुमनजी त्रिगुणात्मक हैं। उनमे तीन विशिष्ट गुण है—विपत्ति मे धैर्य, अभ्युदय मे क्षमा और संघर्ष-काल मे साहस-पराक्रम। कठिन आपत्ति के समय साहस और धैर्य से काम लेना वे जानते है। एक बार जब यमुना मे बाढ आई तो समस्त दिलशाद कॉलोनी जलमग्न हो गई। लोग अपने-अपने मकानों को छोड प्राण बचाकर भागे। सुमनजी के मकान में ६-७ फुट तक पानी भर गया। वे कई दिन तक बिना कुछ खाये-पिये अपने मकान की छत पर बैठे रहे, ताकि आस-पास के गाँव वाले बस्ती के मकानों का सामान लूटकर न ले जायें। सुमनजी को अपने प्राणो की चिन्ता नहीं, पड़ौसियो के मकानों की चिन्ता थी। अन्त मे जब उन्होंने स्वर्गीय नेहरूजी को फोन किया, तब उनकी सहायता के लिए दो-तीन नौकाएँ आईं।

सुमनजी से मेरा परिचय आज से बीस-बाईस वर्ष पहले उस समय हुआ, जब वे दिल्ली में पहाड़ी धीरज पर मेरे पड़ौस के मकान में आकर रहे। पहली मुलाकात मे ही मैं उनके स्नेह-पाश मे ऐसा बँधा कि उनके परिवार का एक सदस्य ही बन गया। वे मुझे अपने छोटे भाई के समान प्यार करते हैं परन्तु मैं उन्हें अपना साहित्यिक गुरु मानता हूँ। किसीसे नाराज होना तो वे जानते ही नहीं। कभी किसी कारणवश उन्हे क्रोध आता भी है तो तुरन्त शान्त हो जाते हैं। एक बार मेरी किसी गलती पर उन्होंने मुझे प्यार की फटकार लगाई। मैं आत्म ग्लानि के कारण कई रोज तक उनके घर पर न गया। जब कुछ दिनों बाद अर्चना (उनकी पुत्री) के जन्मोत्सव पर मैं कुछ झिझकता हुआ उनके पास गया तो वे मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"अरे, तुम इतने दिनों से कहाँ थे? भले आदमी, तुम्हारे बिना तो मेरी तबीयत ही न लगी।" मेरी आँखों में आँसू आ गए और मेरे मन की सारी ग्लानि धुल गई। वास्तव मे वे अपने मन मे किसी के प्रति विद्वेष की गाँठ बाँधकर नहीं रखते। वे बाहर और भीतर से एक-जैसे है, उनका हृदय गंगा-जल की भाँति पवित्र है।

सुमनजी जन्मजात साहित्यकार हैं। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण साहित्य और समाज की सेवा में बीता है। मातृभूमि और मातृभाषा के इस सच्चे सेवक पर आज सारे हिन्दी-जगत् को गर्व है। उनकी पचासवी वर्षगाँठ पर मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएँ अर्पित करता हुआ प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि यह अनुपम 'सुमन' अपनी चतुर्दिक् सुगन्ध से चिरकाल तक साहित्य और समाज को सुवासित करता रहे!

घामडौज (गुड़गावाँ)

हमारे 'भ्राता जी'

श्री प्रकाशवीर शास्त्री

बात अब से लगभग ३० साल पुरानी है, जब गुरुकुल ज्वालापुर में पढ़ने के लिए मैं दाखिल ही हुआ था। गुरुकुल की दुनिया कॉलिजों तथा विद्यालयों के वातावरण से सर्वथा पृथक् ही होती है। क्योंकि बराबर चौबीसों घंटे गुरुओं के सम्पर्क में रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। प्रारम्भ में मुझे जब माँ-बाप गुरुकुल में पढ़ने के लिए छोड़ आए, तो महीनों तक मन लगने की समस्या बनी रही। उस समय फिर धीरे-धीरे यह जानने की इच्छा हुई कि अपने पड़ौसी कहाँ-कहाँ के छात्र यहाँ अध्ययन करते हैं जिनसे सम्पर्क किया जाय।

मुझसे कई वर्ष पहले जो पड़ौसी विद्यार्थी वहाँ ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत कर रहे थे उनमें हापुड़ के निकटवर्ती एक गाँव बाबूगढ़ के निवासी श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' भी थे। प्रारम्भ से ही साहित्यिक रुचि होने के नाते उनका झुकाव लेख और निबन्ध लिखने के अतिरिक्त कविता की ओर भी था। क्योंकि वह मुझसे कई श्रेणी आगे थे इसलिए उनकी गतिविधियाँ देखकर ही मैं स्वयं तथा मेरे दूसरे सहपाठी गर्व अनुभव करते थे।

गुरुकुल में प्रायः देश के सभी कोनों के छात्र अध्ययन के लिए आते हैं। उन दिनों वैसे भी गुरुकुल की ख्याति दूर-दूर तक थी। साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा और आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ तो गुरुकुल ज्वालापुर में बराबर अध्यापक और संस्था-संचालक बनकर कार्य कर ही रहे थे, साथ ही महाकवि शंकरजी, रत्नाकरजी, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त आदि तत्कालीन हिन्दी के महारथियों के लिए भी ज्वालापुर का गुरुकुल एक तीर्थ-स्थान था। इसीलिए यहाँ से हिन्दी-साहित्य को जो अनूठी निधियाँ समय-समय पर मिलती रहीं उनमें श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का स्थान विशेष है।

पूत के पाँव पालने में ही दीख जाते हैं। प्रारम्भिक श्रेणियों में ही सुमनजी अपनी चटपटी तुकबन्दियों के लिए प्रसिद्ध हो गए थे। ठहाके वाली उनकी हँसी भी प्रारम्भ से ही उन्हें आकर्षण का केन्द्र बनाकर चली है। गुरुकुल के छात्रावास में हो या नहर की पटरी पर, जहाँ भी दो चार ब्रह्मचारी ठहाके मारकर हँसते मिलते, हम समझ लेते कि उनमें सुमनजी जरूर होंगे। आजकल का तो पता नहीं, परन्तु विद्यार्थी-अवस्था में अरहर की दाल से उनका विशेष प्रेम था। वैसे भी सुना जाता है कि चावल और अरहर की दाल साहित्यिकों का विशेष भोजन है। ज्वालापुर के गुरुकुल में तो कुछ यह प्रसिद्ध-सा भी हो गया था कि अरहर की दाल जिस दिन भोजनशाला में बने उस दिन



(१९५९)

आटा कुछ अधिक लगना चाहिए। उन महारथियों में, जो 'अरहर की दाल आज बनी है' सुनकर दस-पाँच दंड अधिक लगा लेते थे या फिर नहर की पटरी पर दौड़ने की गति कुछ तेज कर देते थे, उनमें सुमनजी भी एक थे। क्योंकि हमसे यह श्रेणी में आगे थे, इसलिए गुरुकुल का टिपिकल शब्द 'भ्राताजी' आज भी उनके लिए प्रयुक्त करने में बड़ा आनन्द आता है। गुरुकुल की सबसे बड़ी गाली 'दुष्ट' मानी जाती थी। किसी व्यक्ति ने यदि दूसरे को अकारण ही 'दुष्ट' कह दिया तो उसकी शिकायत आचार्य तक पहुँचती थी। परन्तु कुछ के लिए यह कोई विशेष अपमानजनक बात नहीं थी, अपितु उन्होंने 'दुष्ट' शब्द को अपने सामान्य व्यवहार में ले लिया था।

सम्भव है साहित्य अकादेमी के वातावरण में रहकर कुछ परिवर्तन हो गया हो, लेकिन सुमनजी के ये अपने दो पेटेंट वाक्य थे, अपने से बराबर वाले अथवा बड़ों से जब मिलते तो कहते, 'कहो बन्धु! क्या हो रहा है?' और अपने से छोटों से कहते, 'कहिये, क्या दुष्टता चल रही है?' मेरा नम्बर भी सौभाग्य से दूसरा में था। 'ऋग्वेद' के इस कथन के अनुसार कि श्रेष्ठ मित्र मित्र के लिए सब-कुछ दे देता है—सुमनजी वरेण्य सखा हैं। विपत्ति बँटाने वाले भाई हैं, बन्धु हैं। बन्धु वही है, जो विपत्ति बँटावे।

व्यक्ति के जीवन में उतार-चढ़ावों का भी अपना एक अजीब-सा मिश्रण होता है। आज के क्षेमचन्द्र 'सुमन' कभी गुरुकुल के अपने समय के मस्तमौला छात्रों के नेता रहे होंगे, यह कल्पना भी आसानी से नहीं की जा सकती। उन्होंने अपना जीवन स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर बनाया है। मस्ती की स्वभाव प्रारम्भ से ही रहने के कारण एकाकीपन से उन्हें कुछ चिढ़-सी रही है। इसीलिए आज भी कहीं चलना होता है तो दो-चार को साथ लेकर चलते हैं। ऊपर उठना होता है तो भी अकेले नहीं उठते। घर बनाकर रहे रहेंगे तो भी मित्र-मण्डली के साथ—यह उनका स्वभाव ही बन गया है। सुमनजी का व्यक्तित्व बाँटकर खाने में ही जीवन की सफलता मानता है, और उसी में सुख अनुभव करता है।

गुरुकुलीय शिक्षा से प्रभावित होने के कारण उनके विचारों में आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द की स्पष्टवादिता और निर्भीकता भी स्पष्टतः झलकती है। साहित्यिक क्षेत्र में जहाँ उनकी कलम पहले क्रांतिकारियों और शहीदों का स्मरण करना अधिक पसन्द करती है, वहाँ उनकी भाषा में उन उपेक्षितों और निराश्रितों की आवाज भी अधिक सुनने को मिलेगी जिनकी ओर सामान्य लोगों का ध्यान कम ही जाता है। इसका बहुत बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि स्वातन्त्र्य-समर में क्रांति की चिनगारियाँ जहाँ सबसे पहले उठी थीं वहीं मेरठ में हिन्दी के इस निष्ठावान् उपासक ने जन्म लिया। गुरुकुल को अपने ऐसे स्नातकों पर अभिमान है।

१ केनिंग लेन,
नई दिल्ली १

सुमनों के सुमन

श्री महेशचन्द्र शास्त्री

समुद्र के किनारे भारत की परम रमणीय नगरी बम्बई में रहने वाले एवं व्यस्त मनुष्य के लिए हिमालय की तलहटी में बसे हुए प्रशान्त प्रदेशों का क्या महत्त्व है, यह तो कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है।

गंगा की सुशीतल एवं पावन धाराओं से घिरे हुए वनप्रान्तों एवं खेतों के बीच बसे हुए प्राचीन शिक्षणालयों में जिनका जीवन परम सात्त्विकता के साथ बीता हो, सचमुच वे व्यक्ति धन्य हैं!

ऐसे ही महाभाग व्यक्ति हैं श्री सुमनजी! जब वे महाविद्यालय ज्वालापुर में पढ़ते थे तब एक खिलते हुए देवपुष्प के तुल्य अथवा उदित होते हुए 'सुधांशु' के तुल्य हमारे सामने आते हैं।

हमें याद है कि छात्रावस्था में पत्रिकाओं के संचालन-संपादन में सुमनजी का उत्साह अवर्णनीय था। 'सुधांशु' के अंक उनके हृदय के प्रतिबिम्ब हैं। उनमें जो कवित्व भरा रहता था उसपर अधिकांश प्रभाव सुमनजी का ही होता था। जो कविताएँ उसमें प्रकाशित होती थीं, सभाओं में सुनाई जाती थीं या व्यक्तिगत गोष्ठियों में गाई जाती थीं, वे आज भी हमारी स्मृतियों में अपनी सरसता के अंश को अंकित किये हुए हैं। सुमनजी को कैलासवासी सती के ईश और महेश से विशेष प्रेम था। बड़ा वर्णन किया है उन्होंने इनका।

सभाओं में मेज के चारों ओर घूम घूमकर जिस तल्लीनता से वे अपनी कविताएँ सुनाते, वह अपूर्व ही थी। न तो सुनने वाले, तालियाँ बजाकर या 'वाह-वाह' करके थकते थे, और न रस सागर में निमग्न सुमनजी ही काव्य-रस-वृष्टि करते अघाते थे।

आज सम्भवतः कोई यह विश्वास भी न करे कि अपने छात्र-जीवन में सुमनजी का आहार एक समय में चालीस रोटियाँ, कई कटोरी अरहर की दाल, गुड़, घी और हरी मिर्च का रहा है।

इस सीमा के निर्माता केवल सुमनजी रहे हैं। शायद वे पूरे महाविद्यालय के इतिहास में इस दृष्टि से अद्वितीय ही रहे हैं।

सहारनपुर और आगरा में केवल लेखनी का सहारा लेकर जीवन का आरम्भ करने वाले सुमनजी को एक साधु के रूप में मैंने देखा है। केवल भोजन-निवास या बारह रुपये मासिक पाने वाले सुमनजी को हमने उसी प्रकार का आतिथ्य करते देखा है जैसाकि

वे आज करते हैं। इस साधु के द्वार पर जो भी आ जाय, वह इसी अनुभूति को लेकर जायेगा कि सुमनजी सचमुच 'सुमन' हैं।

अजमेर के स्टेशन पर आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व, प्रथम श्रेणी के बाहर, एक भिखारी ने जब सुमनजी की ओर देखकर कहा, 'बाबू तुम्हारी कलम आबाद रहे' तो सुमनजी रीझ गए। झट से जेब से एक रुपया निकाला और कहा, 'मेरी कलम के लिए शुभाशीर्वाद देने वाले! यह मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार कर!'

यह सब देखकर मुझे लगा कि सचमुच यह 'सुमन' लेखनी का पुजारी है।

आज भी जब-जब मैं दिल्ली पहुँचता हूँ तब सुमनजी से मिलने का मेरा कार्यक्रम प्रमुख रहता है। यह क्या छिपाया जाय कि इस मिलन के पीछे उनके आलू-मेथी के परांठा का, बढ़िया चाय का और एक समय घर पहुँचकर धुली उड़द की दाल और मिस्सी रोटियों का प्रलोभन नहीं रहता?

फिर भी मेरा मुख्य हेतु तो यही रहता है कि भारत के दूर दूर प्रांतों में फैले हुए और वर्षों से बिछुड़े हुए अपने साथियों का कुशल क्षेम मालूम किया जाय।

सुमनजी से किसी एक साथी का पता पूछिये कि बस, फिर क्या है! आप उसके सबंध में उससे भी अधिक जानकारी पा जायेंगे जो सम्भवत एक कुशल पण्डा ही दे सके। बीस-बीस और तीस तीस वर्षों के पुराने बिछुड़े हुए साथियों का जब ऐसा परिचय मिल जाये तो भला बताइये, अपने पण्डे को दक्षिणा में क्या नहीं दिया जा सकता!

यह सुमनजी का भोलापन है कि वे दक्षिणा की एक अच्छी भली राशि से वंचित रह जाते हैं।

श्री सुमनजी ने जीवन के पचास वर्ष पूर्ण किये हैं, परन्तु लगता यही है कि वे अभी वहाँ तक नहीं पहुँचे हैं। बुढ़ापे के वास्तविक चिह्न तो हैं—निराशा, उत्साह का अभाव, शिथिलता आदि। परन्तु मैं जब भी सुमनजी से मिला हूँ, तभी मुझे आशा के 'सुमन' खिलते दिखाई पड़े हैं, उत्साह का सागर उमड़ता हुआ प्रतीत हुआ है और हर बात में गतिशीलता का अनुभव हुआ है।

इन सभी बातों से लगता है कि सुमनजी के जीवन में शायद वार्द्धक्य कभी आयेगा ही नहीं।

परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह हमारे इस साधु-स्वभाव, सरल-निर्मल अन्तःकरण वाले बन्धु और साथी को चिरजीवी और चिरयुवा करे!

भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी पथ, बम्बई ७

'सुमन' : एक अन्वर्थ संज्ञा

डॉ० राजेन्द्र शुक्ल

खट, खट खट्-खट्, खट्

"कौन है भाई, भीतर चले आओ! दरवाजा खुला है।"

—और सहमता सा आगन्तुक भीतर प्रविष्ट हुआ। गृह-स्वामी अपरिहार्य सामाजिक नित्य-कर्म (शेविंग) में तल्लीन हैं। नवागत को देखते ही गगनचुम्बी ध्वनि में कहते है, "अच्छा.. आप हैं। आइये, विराजिये!"

अचानक श्मश्रु उन्मूलनकारी हाथ रुक गया। आगत छात्र ने सोचा, 'शायद पहचान नहीं पाये ?। फिर यह 'आइये, विराजिये' क्यों ? सम्भवत शिष्टाचारवश ..' वह मयोजक परिचय-सूत्र के प्रस्तुतीकरण पर विचार करने लगा..

हठात् गृहपति पुन चहक पडते हैं, "हाँ बन्धु, तुम्हारी कविता की ध्रुव पक्ति मुझे अभी तक याद है—फिर भी पीछे हट न सकूँगा।"

फिर माना दपण-स्थित अपने प्रतिबिंब से बातें करने लगते हैं, "रुको, स्मरण करके और पक्तियाँ भी सुना सकता हूँ—बढ़िया चीज थी। हाँ, एक और लाइन याद आ गई—

रवि-शशि-तारे जड़-जगम की हस्ती क्या है,
स्वय विधाता भी आकर मुझसे टकराये—
फिर भी पीछे हट न सकूँगा!

आगन्तुक का भ्रम निरस्त हो जाता है और वह श्रद्धाभाव से गृह-स्वामी के समक्ष नत मस्तक हो जाता है।

प्रस्तुत प्रसग की पृष्ठभूमि म है—गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में सम्पन्न एक कवि सम्मेलन, जिसके अध्यक्ष थे उपर्युक्त गृह-स्वामी श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', और इस सस्मरण का लेखक ही तब छात्र-अतिथि के रूप मे उनके घर आया था—दिल्ली में ठहरने का कोई और ठिकाना न होने के कारण।

आयु में किशोर होने पर भी आगन्तुक अनुभवशून्य नही था। दिल्ली-जैसे नगरों मे अतिथि भार समझा जाता है, यह उसे ज्ञात था, तथापि कुछ स्नेह के वशीभूत होकर और कुछ विवशता मे यहाँ चला आया था—शकित-सा। किन्तु सुमनजी का व्यवहार अपेक्षा से भिन्न पाकर वह चकित रह गया।

इस बीच सुमनजी क्षौलन-कर्म से निवृत्त हो चुके थे। बोले, "अच्छा, अभी तक आप खडे ही हैं! श्रीमानजी, कृपा करके पधार जाइए!"

और आगत स्नेहिल प्रतिक्रिया के वशीभूत होकर कुर्सी पर बैठ गया।

कुछ इस प्रकार मैंने सुमनजी को पहली बार निकट से देखा था।

उस समय अवचेतन मन में कुछ ऐसी भावना उत्पन्न हुई थी कि शायद मेरी वह कविता ही महत्त्वपूर्ण रही हो और इसीलिए सुमनजी को मेरा ध्यान बना रहा हो। पर एक बार इस भ्रम के निवारण का भी अवसर आ गया।

कई लोग कहते है कि सुमनजी को कवि सम्मेलनों व कवि-गोष्ठियों आदि की अध्यक्षता करने का रोग है। मैंने भी एक बार यही शिकायत उनसे की थी। तब उन्होंने किंचित् गंभीर मुद्रा बनाकर कहा था—"देखो भाई, अपन मन में प्रसाद, निराला और *मैथिलीशरण गुप्त बनने की बड़ी लालसा थी। पर परिस्थिति चक्र से जूझते रहने के* कारण हम नहीं बन सके। इन सम्मेलनों और गोष्ठियों में जाने के लिए तो मैं था तैयार हो जाता हूँ कि शायद हमारी प्रेरणा प्रोत्साहन और पथ-प्रदर्शन से ही कोई माई का लाल वह बन सके, जो हम न हो सके।"

"इसके अलावा एक बात और है"—उनकी बात अभी समाप्त नहीं हुई थी—'आज के हिन्दी-कवियों में नये-पुराने का जो विवाद चल रहा है उसके कारण कवि-सम्मेलनों के आयोजकों के सम्मुख एक विचित्र समस्या आ जाती है। अध्यक्ष जिस धड़े का होगा, दूसरा धड़ा कवि सम्मेलन का पूर्ण बहिष्कार करता है। इसलिए आयोजक लोग हम-जैसों की खोज करते है, जिनके कारण धड़ेबाज़ी का बहिष्कार बहिष्कृत हो जाता है। यह क्या माता वीणापाणि की सेवा नहीं है, भैरी ?"

मौनं स्वीकृति लक्षणम् के अनुसार यह तर्क मुझे अमान्य न था।

एक और प्रसंग याद आता है जबकि सुमनजी ने किसी से कहा था—'देखिये साहब, हम उस भूमि *(बाबूगढ़, मेरठ)* में *उत्पन्न हुए है जहाँ १८५७ की भारतीय क्रान्ति* का जन्म हुआ था। वह मिट्टी ऐसी है जो चोट खाकर दबती नहीं बल्कि प्रहारक के सिर पर प्रहार करती है।'

उस समय मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि 'सुमन' नाम से इस अक्खड़ व्यक्तित्व का सामंजस्य कैसे संभव है! पर परवर्ती अनेक अनुभवों ने इस नाम की सार्थकता भी सिद्ध कर दी। संस्कृत के एक श्लोक में कहा गया है—***कीटोऽपि सुमनः संगादारोहति सतां शिरः***—अर्थात् तुच्छ कीड़ा भी सुमन (पुष्प) की संगति के कारण महाजनों के सिरों पर प्रतिष्ठित हो जाता है। सुमनजी के नाम की सार्थकता सचमुच इस तथ्य में निहित है कि कितने ही नगण्य व्यक्तित्व उनके सत्संग का लाभ उठाकर लब्धप्रतिष्ठ हो गए है।

सुमनजी के अपने कुछ पारिभाषिक शब्द है, जिनका अर्थ उनको अति निकट से जानने वाला व्यक्ति ही समझता है। उनका स्थायी भाव केवल 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में प्रकट होता है, पर संचारी भावों का परिचय इन्हीं पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से होता है। उदाहरण के लिए जब वे किसी को दूर से हाथ के प्रश्नात्मक संकेत से 'कहो बन्धु!' कहकर बुलाये तो समझ लेना चाहिए कि आगत के प्रति सुमनजी प्रसन्न हैं।

इसके विपरीत यदि 'कहो हज़रत' के रूप में संबोधित किया जाए तो समझ लेना चाहिए कि सम्बन्धित व्यक्ति ने या तो वचन-भंग किया है या सुमनजी को उसके विरुद्ध कोई गंभीर शिकायत है।

साहित्य अकादेमी का कार्यालय ही सुमनजी को पा सकने का एक निश्चित स्थान है। अन्यथा तो 'रमता जोगी, बहता पानी' वाला हाल है। वहाँ यदि सुमनजी किसी से कहें—'किसी भवन का भेजना ज़रा,' तो इसका अर्थ यह है कि कुछ क्षणों में एक मुस्कराता हुआ चपरासी उपस्थित होगा। मुस्कराता वह इसलिए है कि साहबी से पीड़ित उसे सुमनजी के कक्ष में ही स्नेह मिलता है और यदि कभी डाँट-डपट भी सुननी पड़ती है तो बुजुर्गाना झिड़की के रूप में जो कभी मन को बेधती नहीं।

नव-वर्ष के अवसर पर तो ये 'भक्तगण' बहाना खोज-खोजकर सुमनजी के कमरे में आते हैं, क्योंकि अनेक प्रकाशकों से सम्बन्धित होने के कारण अनेक उत्तम व दुर्लभ कैलेण्डर सुमनजी के पास आते हैं और अन्ततः वे सब 'भक्तों' के घरों की दीवारों पर जा विराजते हैं। उनमें से एक भी सुमनजी के निवास पर नहीं पहुँच पाता।

इसी प्रकार सुमनजी परोक्ष में 'यार' संबोधन उनके लिए सुरक्षित रखते हैं जो पुनः-पुनः चेतावनी पाने पर भी अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आता। 'जनाब' का संबोधन उन लोगों को प्राप्त होता है जो आयु और अनुभव में न्यून होकर भी स्वयं को तीसमारखाँ समझते हैं और जब-तब वे सुमनजी को 'सोलह दूनी आठ' पढ़ाने की कोशिश में लगे रहते हैं।

सुमनजी को अपने बच्चों की आयु-वृद्धि का ज्ञान उनकी ऊँचाई देखकर नहीं, अपितु लेटे हुए लंबाई देखकर होता है, क्योंकि बच्चों को सोता हुआ छोड़कर ही वे घर से निकलते हैं और जब आधी रात के आस-पास घर लौटते हैं तो बच्चे खर्राटे भरते हुए मिलते हैं। रह गई रविवारों तथा अन्य छुट्टियों की बात—उस दिन तो सुमनजी के पैर का सनीचर और भी अपने पूरे जोश पर होता है।

परहित सरिस धरम नहिं दूजा—सुमनजी के जीवन का मूलमंत्र है। वे हर मूल्य पर व कभी-कभी हानि उठाकर और अपने सम्बन्धों की मधुरता को खतरे में डालकर भी अहर्निश इस व्रत की पूर्ति में लगे रहते हैं।

एक बार जब मैं सुमनजी से मिलने के लिए साहित्य अकादेमी के कार्यालय पहुँचा तो वे एक युवक के पीछे पड़े हुए थे। कुछ देर ध्यानपूर्वक श्रवण करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि युवक को सुमनजी के प्रयत्नों से ही नौकरी मिली और अब वह जीवन में सुव्यवस्थित है। उसके साथ किसी कवि-कन्या के विवाह की चर्चा है, पर युवक कवि के दैन्य के कारण बिदक रहा है। सुमनजी अपनी आन-बान-शान इस बात पर दाँव चढ़ाये हुए थे कि युवक या तो स्वयं को कृतघ्न स्वीकार कर ले अथवा कृतज्ञता सिद्ध करने के लिए कवि-कन्या से विवाह करने को तैयार हो जाय।

उनके तूणीर से निकलते हुए तर्क बाण कुछ इस प्रकार थे—' विवाह आखिर मेरा भी हुआ है। अपने सारे जीवन के अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि दहेज मे मिले कुछ चाँदी के टुकडो की तुलना मे तुम्हारी भावी पत्नी म सौम्यता सुशीलता, विनम्रता आदि गुणो का होना अधिक आवश्यक है। इनके अभाव मे गृहस्थ जीवन कैसा नरक हो जाता है—अपने अनेक मित्रो के घरा पर राज मैं देखता हूँ और तुम भी अवश्य देखते होगे। फिर लडकी का पिता कवि है—सच्चा कवि जिसने कविता के माध्यम से समाज की सेवा करते रहने के कारण कभी अपने व्यक्तिगत हितो और अपने बच्चो के भविष्य की चिन्ता नही की। तुमने पिछले दिन बहुत दु ख म काटे है आज सुखी हो। कुछ ऐसा करो कि तुम्हारा भावी जीवन आज से अधिक सुखी हो और एक कवि की असमर्थता मे तुम उसके किसी काम भी आ सको। आखिर ईश्वरीय न्याय भी तो कोई चीज है तुम्हारे इस उपकार का बदला वह न जाने कैसे दे।"

युवक निरुत्तर होकर सब सुनता रहा और उस विषय पर विचार करने का आश्वासन देकर चला गया।

कुछ दिन बाद विदित हुआ कि सुमनजी अपने प्रयत्नो म सफल रहे थे।

स्मृति की दृढता सुमनजी की अपनी विशेषता है। युगो बाद मिलने पर भी वे तुरन्त बताते है कि आपका गत पत्र कहा से और कब आया था और उसमे क्या लिखा था। आवश्यक और अनावश्यक सभी पत्रो का उत्तर लिखना और आगत पत्रो को व्यवस्थित रखना उनका एक व्यसन है। यद्यपि यह व्यसन उन्हे बडा महँगा पडता है क्योकि इस कार्य पर श्रम, बुद्धि तथा जेब-खर्च का एक बडा अश उन्हे लगाना पडता है।

सुमनजी की स्मृति की अचूकता का एक प्रसग स्मरण आता है। मेरे पास एक अनुसधित्सु आये थे चाहते थे कि मै उन्हे 'हिन्दी-साहित्य को आर्यसमाज की देन के विषय मे ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ बताऊँ। कुछ ही दिन पूर्व मेरे पास बिहार से सुमनजी का एक अध्यक्षीय भाषण पुस्तक रूप मे आया था जो लगभग इसी विषय पर था। अपना श्रम बचाने के लिए वह भाषण मैंने शोधार्थी को दे दिया और उनसे आग्रह किया कि वे इसे प्रमाण-रूप मे स्वीकारे और उद्धृत करे।

वही रिसर्च स्कॉलर महोदय एक बार रास्ते चलते मिल गए। मैंने पूछा—"कहिये, उस भाषण का कुछ उपयोग किया आपने ?"

बडे सकोचपूर्वक उन्होने उत्तर दिया—' मैंने वह भाषण अपने निर्देशक को दिखाया था। उनका मत है कि यह भाषण बहुत जल्दी म लिखा गया प्रतीत होता है इसलिए इसमे तिथि-क्रम सम्बन्धी कई भूले रह गई है।"

उनका यह उत्तर और उनके निर्देशक का यह निर्णय न केवल सुमनजी की स्मृति के लिए अपितु मेरी एक बद्धमूल धारणा के लिए भी चुनौती था। मैं तिलमिला उठा और उत्तर दिया—"देखिये, आपके निर्देशक के निर्णय का 'पूर्वार्द्ध' तो सत्य हो सकता है, क्योकि

ऐसे भाषण प्राय सुमनजी रेल के सफर मे ही तैयार किया करते है। पर 'उत्तरार्द्ध' की सत्यता पर मुझे भारी सन्देह है। सुमनजी की स्मृति प्राय. धोखा नही देती। फिर भी आपकी बातो मे कोई सार है या नहीं, यह जानने के लिए मैं आपके निवास पर एक मास बाद आऊँगा। तब हम लोग ग्रथो की सहायता मे सत्यासत्य का निर्णय करेंगे। इस बीच आप अपने कथन के प्रमाण एकत्र कर लें।"

एक सप्ताह बाद ही वे महाशय मेरे पास पहुँचे और क्षमा माँगते हुए बोले—"वस्तुत उस भाषण के विषय मे हमारी प्रतिक्रिया ही कुछ अनावश्यक 'त्वरा' मे व्यक्त हुई थी। ग्रथो म ऊहापोह करने पर भाषण में त्रुटियाँ नही मिली।"

मुझे यह लगता है कि 'सुमनोत्तरा' की चर्चा किये बिना यह लेख अधूरा ही रह जाएगा। सुमनोत्तरा से मेरा आशय सस्कृत के किसी प्रसिद्ध ग्रथ से नही है, अपितु श्रीमती सुमन से है जिनके घर म सुमनजी की स्थिति 'पेइग गेस्ट' से अधिक कुछ नही है। वे न केवल तन अपितु मन और विचारो म भी सुमनजी से ऊँची हैं—इसीलिए यह नाम उनके सर्वथा योग्य है। हम सबके लिए वे विशेषत श्रद्धा पात्र इसलिए भी है कि वे सुमनजी के ही नही, सुमनजी की कुछ महत्त्वपूर्ण भूलो—'अजय आदि सतानो'—के सुधार मे भी दत्तचित्त है। यही उनके जीवन का यजन (मिशन) है, क्योकि सुमनजी तो कुछ ऐसे 'बिजी विदाउट वर्क' किस्म के जीव है कि उन्हे तो अपनी भूलो के विषय मे भी सोचने का अवसर नही मिलता।

अन्त मे यही कामना है कि प्रभु इस स्वर्ण-जयन्ती के बाद सुमनजी की 'हीरक-जयन्ती' और 'प्लेटिनम-जयन्ती' मनाने का अवसर भी हमे दे!

हिन्दू कॉलिज,
दिल्ली ■

संकल्पो का सूर्योदयी साहित्यकार

श्रीमती रजनी पनिकर

मेरे विद्यार्थी-जीवन से लेकर साहित्यिक जीवन के कई मोडो पर आज तक सुमनजी ने मेरा जो पथ प्रदर्शन किया है, सही रास्ता दिखाया है, वह मेरी जीवन यात्रा का सबल सम्बल बन गया है।

बीच म से बात लेकर चलना ठीक नही। सिलसिलेवार कहूँ तो शायद बहुत कुछ छूट जाएगा। फिर भी पुरानी बात की याद आज भी ताजा है। उन्नीस सौ चयालीस

का जाडा, नवम्बर-दिसम्बर का महीना होगा, ठीक तारीख तो याद नही, पर घटना याद है।

फतेहचन्द कॉलिज फॉर विमेंन के खुले प्रागण म धूप जरा-सी नीचे उतर आई थी। लाहौर की सर्दी मे जाती हुई धूप का रसास्वादन कॉलिज की सब लडकियाँ टोलियाँ बनाकर कर रही थीं कि हमारी प्रिंसिपल कुमारी कचनलता सब्बरवाल एक व्यक्ति को लिये हुए लडकियों की टोली के पास आकर खडी हो गई। हमसे आगन्तुक का परिचय करवाती हुई वे बोली—"यह रहे तुम लोगो के पडितजी। जो लडकियाँ कान्वेण्ट से आई हैं या जिन्हे हिन्दी कम आती है, उन्हें यह नियमित श्रेणी के अलावा भी हिन्दी पढायेंगे—कविता, व्याकरण आदि।"

हम लोगो की शैतान-टोली ने एक उडती नजर से पडितजी का 'मुआइना' कर डाला। खादी के स्वच्छ धवल लिबास मे, तिरछी गाधी टोपी लगाये हुए पडितजी लडकियो को बडे 'स्मार्ट' लगे। तब तक ल.गो की यह कल्पना थी कि 'पडितजी' नाम के साथ एक फूहडपन जुडा रहता है। वह कोट-पतलून भी पहने हो तो ढीली-ढाली, ऊबड-खाबड ही होगी। उन दिनो पगडी का रिवाज भी पडितो मे बहुत था। हिन्दी-प्राध्यापक का माथे पर तिलक लगाना भी जरूरी था। सुमनजी हमारी कल्पना से सर्वथा विपरीत लगे। वे ऐसे 'आधुनिक टाइप' के पडितजी थे, जो पहली ही भेट मे हम लोगो को सहज ही भा गए।

उत्सुकता मिश्रित कौतूहल से हम उन्ह देख ही रही थी कि विशेष रूप मे मेरा परिचय करवाती हुई मिस सब्बरवाल बोली—"सुमनजी, हमारी यह लडकी कविता भी लिखती है, इण्टर की छात्रा है, और कॉलिज-मैगजीन की सम्पादिका भी। हिन्दी-अंग्रेजी-डिबेट मे भी यह बढ-चढकर हिस्सा लेती है।" और भी बहुत-सी बातें, जो उस समय इतनी महत्वपूर्ण न थी, मेरा परिचय देते हुए हमारी प्रिंसिपल ने सुमनजी से कही।

"सुमनजी, इसके गुणो का बखान तो बहनजी (प्रिंसिपल) ने कर दिया।" सावित्री सूद (मेरी अभिन्न सखी) उसी समय बीच मे बात तोडती हुई बोली, "मेरा रौब आप पर कैसे गालिब होगा?" इस पर सब लडकियाँ हँस पडी।

मुझे ठीक से याद नही कि सुमनजी ने इसका क्या उत्तर दिया था, पर इतना तो याद है कि आगे चलकर वह उनकी बडी 'मुँहबोली' शिष्या बन गई और आजकल भी वह सुमनजी को उसी आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखती है।

उन दिनो स्वतन्त्रता-सग्राम की लहर जोरो पर थी। मैं भी राष्ट्रीय कविताएँ लिखा करती थी। उन कविताओ का सशोधन, आवश्यकता पडने पर, सुमनजी ही किया करते थे।

सुमनजी 'ट्यूटर प्रोफेसर' नियुक्त हुए थे। लडकियाँ प्राय दोपहर के बाद उनसे पढती थी—जब कॉलिज की अपनी निर्धारित पढाई समाप्त हो जाती। अक्सर कमरे मे न

बैठकर लडकियाँ लॉन मे बैठना पसन्द करती थी। सावित्री सूद एक पुराने वृक्ष के ठूंठ पर चढकर बैठ जाती। यदि सुमनजी कहते कि "यह क्या हो रहा है?" तो वह तपाक से उत्तर देती—"पुराने ज़माने के आश्रमो मे लडकियाँ यो ही वृक्षो पर बैठकर पढा करती थी। सुमनजी, आप शकुन्तला के ज़माने को नही जानते क्या? वह ऐसे ही पढती थी।"

फिर सब लडकियाँ कहकहे लगाती और तब पढाई शुरु होती। इसका यह अर्थ नही कि हम लोग सुमनजी का कहना नही मानती थी। दरअसल कॉलिज की सभी लड-कियाँ उनका बडा आदर करती थी। सुमनजी से सभी छात्राएँ यद्यपि बहुत हिल-मिल गई थी, पर उन्होने कभी भी किसी मर्यादा की रेखा पार नही की। हम सबका विश्वास उन पर पूरी तरह जम गया था।

कुछ ही महीने पढा पाये थे सुमनजी, कि इन्हे अकस्मात् जेल जाना पडा। कुछ दिन तक तो हमने भाभी से सम्पर्क मे रखा—वह उस समय मेरठ मे थी। फिर अनेक बाधाओ के कारण सब छूट गया।

१६४६ की गर्मियो मे मैं एम० ए० की परीक्षा देने के बाद अपनी सखी सावित्री सूद के पास शिमला गई हुई थी कि अचानक सुमनजी की जेल-जीवन मे लिखी हुई कवि-ताओ के सग्रह 'बन्दी के गान' का पार्सल हम लोगो को मिला। सुमनजी से टूटा हुआ सम्पर्क फिर से स्थापित हो गया। सुमनजी के साथ शुरू से ही थोडा-बहुत पारिवारिक सम्बन्ध भी था। वह हमारे घर प्राय आया करते थे। मेरे माता-पिता तथा भाइयो से उनका अच्छा परिचय था।

१६४८ मे मैं पजाब-सरकार मे असिस्टेंट इन्फॉरमेशन आफिसर के पद पर काम कर रही थी। शिमला मे उन दिनो प्राइवेट प्रेसो की कमी होने के कारण पजाब-सरकार के बहुत-से पैम्फलेट और पाक्षिक हिन्दी 'प्रदीप' दिल्ली से ही छपवाना पडता था। 'प्रदीप' का सपादन मुझे ही करना पडता था। सुमनजी उसके प्रकाशन में भरपूर सहायता देते थे, क्योकि वह उसी प्रेस में छपता था जिसके वे व्यवस्थापक थे। कुछ घटो के आडर पर ही ब्लाक बनवा देना, हर काम तुरन्त करवा देना मुझे कभी नही भूलेगा।

मेरा प्रथम उपन्यास 'पानी की दीवार' प्रकाशन के लिए तैयार था। मैंने दिल्ली के एक नामी प्रकाशक को पाण्डुलिपि दे दी, सुमनजी से पूछा तक नही, बतलाया भी नही। प्रकाशक ने कहा कि वह पुस्तक प्रकाशित कर देगा। मैं मन-ही-मन बडी खुश थी कि इस बार बिना सुमनजी से पूछे, बिना उन्हे बताये, पुस्तक के प्रकाशन की अपने-आप व्यवस्था हो रही थी।

एक महीने बाद, प्रकाशक महोदय बोले, "यदि कागज़ खरीदने का प्रबन्ध आप अपने पैसे से कर दें, तो पुस्तक जल्दी प्रकाशित हो जाएगी।"

बात मुझे बहुत अखरी। इतना क्रोध आया कि बतलाना कठिन है।

सुमनजी को बुलाकर पूरी परिस्थिति उन्हे समझाई तो उन्होने आश्वासन दिया

कि कुछ ही दिनों में पुस्तक का कान्ट्रैक्ट किसी अच्छे प्रकाशक से करा देंगे और या पानी की दीवार चार महीने बाद मार्केट में भी आ गई।

पुस्तक का अच्छा स्वागत हुआ।

सुमनजी ने कहा कि उनके जो भी सम्बन्ध उस नामी प्रकाशक से हों मुझे उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

उनकी उस सलाह का महत्त्व मैंने हमेशा समझा है और अब भी मुझे उनके परामर्श से हौसला मिलता है।

रेडियो में अपने हिस्से का ब्राडकास्ट तो सभी करते हैं पर किसी समय बीमारी के कारण या अन्य किसी कारण से कोई टाकर यदि नहीं आ पाता था तो सुमनजी में इतनी क्षमता है कि दो घण्टे पहले बतला दीजिये तो वार्ता लेकर चले आएंगे। किसी भी विषय पर लेख लिख लेना सुमनजी के लिए सदा सहज रहा है।

किसी संस्था के उद्घाटन भाषण से लेकर आलोचना साहित्य के गूढ़ से-गूढ़ सिद्धान्त भी सुमनजी के लिए कठिन नहीं। सुमनजी सब लिखकर भी कुछ ऐसा दिखलायेंगे मानो कुछ हुआ ही न हो।

दुःख सुख में एक बार जिसे अपना मित्र मानकर सुमनजी किसी को ग्रहण कर लेते हैं फिर वे समय और जोखिम का विचार नहीं करते। सब-कुछ सह लेते हैं। साहित्यकार का हृदय करुणापूर्ण होता है सुमनजी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। भीषण गटबन्दियों के कारण बहुत से साहित्यकार तो कभी उभर ही न पाएँ यदि सुमनजी जैसे मिशनरी साहित्यकार बीच बचाव अथवा मार्गदर्शन करने वाले न हों अंगुली पकड़कर रास्ते पर ले जाने वाले न हों। वे वास्तव में सच्चे रूप में सूर्योदयी साहित्यकार हैं।

समय निकालकर किसी की चीज को पढ़ना मनन करना और फिर उसपर कुछ न कुछ लिखना सुमनजी अपना कर्तव्य मानते हैं। नया लेखक जब इनके पास जाता है तो सुमनजी उसे प्रकाशक दिलवा देते हैं। जब लेखक का अपना कोई स्तर बन जाता है तो प्रायः ऐसा होता है कि वही लेखक उनका दुश्मन बन जाता है। सुमनजी हैरान होते हैं कि उनसे उसके प्रति ऐसी क्या खता हुई कि वह दुश्मन बन गया। वह शायद छोटी सी बात भूल जाना चाहते हैं कि उन्हें किसी ने सहायता दी इसलिए वह उस सीढ़ी तक पहुँच पाए जहाँ वह आज हैं। सबके सामने सत्य स्वीकारने में उन्हें शर्म आती है। हर व्यक्ति या लेखक के जीवन में कोई संस्था या व्यक्ति पीछे रहता है जो उसे सहारा देता है—आगे बढ़ाता है। सुमनजी ने ऐसे कितने व्यक्तियों को आगे बढ़ाया है यदि इसका हिसाब लगाया जाए तो संख्या दहाई से भी ऊपर जाएगी।

साहित्य में अक्सर लोग अखाड़ेबाजी करते हैं। एक गुट बना लेते हैं और उसीके माध्यम से अपने को और अपने मित्रों को प्रोत्साहन देते हैं। सुमनजी ने बहुत-से लोगों को प्रोत्साहन दिया पर अपना गुट या अखाड़ा कभी नहीं बनाया। मुझे एक भी ऐसा

व्यक्ति याद नहीं पड़ता जिसके लिए उन्होंने मना किया हो कि इसको रेडियो में प्रोग्राम न दो, यह मेरी पार्टी का नहीं। दूसरे आलोचक और साहित्यकार तो लिखते समय नाम भी उन्हीं के गिनाते हैं जो उनके अपने गुट के होते हैं। इस मामले में सुमनजी ही केवल 'विश्वसनीय' हैं। अभी तो नहीं, पर आज से पचास वर्ष बाद पता चलेगा कि वे लोग लेखकों का ही नहीं, हिन्दी भाषा का भी बड़ा अहित कर रहे हैं।

ऐसे आलोचक, जो दलबन्दी में जुटे हैं, दरअसल वे पाठकों को वस्तुस्थिति का ज्ञान ही नहीं होने देते। वह केवल अपने विषय में तथा अपने आदमियों के विषय में ही लिखते हैं। किसी अन्य भाषा में ऐसा नहीं होता कि रचनाकारों को गुटबन्दी की वजह से ऐसे दबा दिया जाय मानो वह पैदा ही न हुए हों, मानो उन्होंने कुछ लिखा ही न हो।

सुमनजी को जब भी अवसर मिलता है, अन्याय होने पर वे साहित्यकार को बचा लेते हैं। कोई भी साहित्यकार इससे बढ़कर इनसे क्या अपेक्षा रखेगा? हिन्दी में सुमनजी-जैसे मिशनरी भावना के साहित्यकार दो-चार और हों तो क्या कहना! मेरे-जैसे सुमनजी के शिष्य आज भी उस ज्योति को ज्वलन्त रखना चाहते हैं, जिसे उन्होंने अपनी प्रेरणा से प्रदीप्त किया।

सुमनजी आज साहित्य अकादेमी में एक प्रतिष्ठित पद पर हैं। भारत के नामी प्रकाशक उनसे राय लेकर पुस्तकें प्रकाशित करते हैं। सुमनजी की अपनी पुस्तकें अनेक यूनिवर्सिटियों में पाठ्य-क्रम में लगी हुई हैं। इस स्तर पर पहुँचने के लिए उन्हें क्या-क्या मुश्किलें नहीं उठानी पड़ीं! सुमनजी ने सदा केवल यही आदर्श सामने रखा कि उन्हें हिन्दी की सेवा करनी है और अपनी सेवाओं के बल पर परिवार का भरण-पोषण करना है।

सुमनजी के पास ऐसा कोई संरक्षक नहीं था जो उनकी योग्यता के प्रमाणपत्र के रूप में उनकी सहायता करता। उन्होंने जहाँ कहीं भी आवश्यकता पड़ी, स्वयं ही अपना रास्ता बनाया।

जो लोग अपना रास्ता स्वयं बनाते हैं उन्हें सहायता देने वाले कम मिलते हैं, रोड़े अटकाने वाले ज्यादा। सुमनजी ने कभी हिम्मत नहीं हारी। वे आगे बढ़ते गए। अपने जीवन में पग-पग पर उन्हें कितने अभावों को सहना पड़ा, इसे केवल वे स्वयं जानते हैं या फिर उनका परिवार।

आकाशवाणी, कलकत्ता

सहृदय सुमनजी

डॉ० रघुराज गुप्त

सुमनजी से मेरी संक्षिप्त-सी मुलाकात आज से लगभग अठारह साल पहले लाहौर में हुई थी। मैं उन दिनों राजनैतिक शरणार्थी के रूप में बी० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। विभाजन के बाद हम लोग दिल्ली चले आए और मैंने भी वहाँ विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। पढ़ते-पढ़ते प्रकाशक बनने की धुन सवार हुई। कुछ मित्रों से कर्ज लिया। १६४८ में हैदराबाद की समस्या बड़े जोर पर थी। मैंने आव देखा न ताव, और सीधा डॉ० लंकासुन्दरम्—जो उन्हीं दिनों हैदराबाद होकर लौटे थे और हैदराबाद पर विशेषज्ञ माने जाते थे—से मिला और उनसे एक छोटी पुस्तक लिखने का अनुरोध किया। वे तैयार हो गए। सप्ताह भर में किताब आ गई। अब छपाई का सवाल आया। सुमनजी उन दिनों दिल्ली के एक प्रेस के व्यवस्थापक थे। मैं उनके पास गया। यह मेरी उनसे दूसरी मुलाकात थी। वे मुझ-जैसे टटपूँजिया प्रकाशक की पुस्तक छापने को तैयार हो गए। कुछ ऐसा हुआ, जैसे ही किताब छपकर तैयार हुई हैदराबाद पर भारतीय सेना का अधिकार हो चुका था। अब हमारी किताब का कोई महत्त्व न रह गया। वह फेल हो गई।

उसके सालों बाद मेरे प्रकाशक को समाजशास्त्र पर मेरी पुस्तक छपाने के लिए एक अच्छे प्रेस की जरूरत पड़ी और पुन सुमनजी से मेरा टकराव हुआ। अब तक वे एक दूसरे बड़े हिन्दी प्रेस के व्यवस्थापक बन चुके थे। उन्होंने रात रात भर जागकर मेरी पुस्तक छापी, जैसे कि वे स्वयं अपनी पुस्तक छाप रहे हों। यहीं पर मुझे भाषा पर उनके अधिकार का परिचय मिला। अच्छे-अच्छे लेखकों की वाक्य रचना को उधेड़ देना उनके बाएँ हाथ का खेल है। पर तरुण लेखकों की रचनाएँ वे बड़े प्रेम से सुधार देते हैं। अभी भी हिन्दी के अनेकानेक पी-एच०डी० उनसे शुद्ध हिन्दी लिखना सीख सकते हैं।

प्रूफ रीडिंग का तो मैं उन्हें गुरु मानता हूँ। उन्हें गलतियाँ निकालने में वह महारत है जो शायद हिन्दी में दो चार लोगों को ही होगी। मुद्रण की किसी भी अशुद्धि को देखकर उन्हें हार्दिक कष्ट होता है। यदि हिन्दी के लेखकों, प्रकाशकों और मुद्रकों में शुद्धता के प्रति सुमनजी से दसवाँ हिस्सा भी आग्रह हो, तो हिन्दी के पाठकों का क्रोध और बौखलाहट बहुत कम हो सकती है।

पर इन सबसे भी बड़ी चीज, जो सुमनजी के पास है वह है उनकी सहृदयता, जिसका कि आजकल सर्वत्र ही अभाव है। किसी से भी उनका कितना भी सामान्य परिचय क्यों न हो वे सदा उसके सुख दु ख के साझीदार बन जाते हैं। मैं जानता हूँ कि जब वे प्रेसों की मैनेजरी करते थे तो मजदूर लोग उनसे कितना प्रेम करते थे और उनका

कितना आदर करते थे। अपने सुसंस्कारों के अलावा इसका एक मुख्य कारण मैं यह भी समझता हूँ कि उन्होंने जिंदगी की ऊँच-नीच खूब देखी है, जगह-जगह पापड़ बेले हैं, इसीलिए वह दूसरे के दर्द को अच्छी तरह समझते हैं। यह निश्छल मानवीयता सुमनजी का सबसे बड़ा गुण है। सुमनजी स्वाभिमानी परले सिरे के हैं। उन्हें ऐसे लोगों का सम्पर्क पसन्द नहीं जो तथाकथित बड़े लोगों के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं। स्वाभिमानी और संघर्षरत लोगों की स्वयं के दिल से कद्र करते हैं।

मैं तो किसी भी साहित्यिक में सबसे बड़ा गुण उसकी सहृदयता और स्वाभिमान मानता हूँ, और इन दोनों में ही सुमनजी अद्वितीय हैं। वे चिरायु हों और हिन्दी की अधिक-से-अधिक सेवा करें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

ए-२ मालदा रोड कॉलोनी, निशातगंज, लखनऊ

'ट्राई-कलर' और 'एवरग्रीन' सुमनजी

श्री रामावतार त्यागी

जिस आदमी ने मेरी खुरदरी जिन्दगी को रेतकर कई जगह चिकना किया हो, जिस आदमी ने मेरे अविजित अहंकार पर, जिसे मैं अपना मानवोचित स्वाभिमान समझता आया हूँ, अपनी गीली हथेली फेरकर कई बार प्यार के चश्मे बहाये हों, उस आदमी के बारे में मैं कुछ लिखूँ और अगर वह प्रशंसा-जैसा लगे तो उसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं है, मजबूरी हो सकती है।

सुमनजी के लेखक, कवि, आलोचक, विद्वान् या पत्रकार से तो मेरा सिर्फ परिचय ही है, पर दोस्ती मेरी उनके आदमी से है। मुझे, जो हर सामाजिक नियम को तोड़ना अपना धर्म समझता है, बराबर सुमनजी का प्रेम प्राप्त है, जबकि उनका खयाल है कि वे नियमों को बनाने के लिए ही पैदा हुए हैं। यह अपने-आपमें कितनी विचित्र बात है कि मेरे-उनके विचारों में इस चौड़ी खाई के बावजूद हमारे सम्बन्ध कायम हैं जिन्हें काटने के लिए हम दोनों कई बार कैंची चलाते-चलाते मूर्च्छित हो गए हैं।

वे इतने सरल व्यक्ति हैं कि उन्हें चकमा देने में मुझे कभी दिक्कत पेश नहीं आई। अक्सर उनकी सरलता को व्यक्त करने के लिए मैंने विशेषणों की खोज की है, पर मुझे खीझकर हर बार शब्दकोश बंद कर देना पड़ा है।

१९४९ या ५० में मैंने पहली बार उन्हें देखा था, शायद सर्दियों में, तब भी वे आज ही की तरह गंभीरता (शाल) साथ रखते थे, इतने ही चुस्त थे, इतने ही बातूनी

भी। पर मैं एक नजर म भाप गया था कि इस आदमी को पूरी जिन्दगी ठगा जा सकता है। १६ साल तक अपने मिशन म सफल रहने के बाद आज जब मैं असलियत को जाहिर कर रहा हूँ तब भी मुझे पूरी आशा है कि मेरी सफलता के द्वार भविष्य मे भी खुले ही रहगे।

तब व हाथीखाने मे रहते थे (उनके मुताबिक व बधते थ) कि एक रात किसी कवि-सम्मेलन म पकड़कर रात को साथ अपने घर ल गए। ठीक से तो याद नही शायद श्री देवराज दिनश भी साथ थे। तब उनके बच्चे तो घर पर नही थे पर सदियो मे उनके लिए लाकर रखी गई बराडी की छोटी सी शीशी का मरी नजर मे बचना मुमकिन नही था। उसे देखते ही एकदम कई बीमारियो का बहाना मैंने बनाया—गला खराब जुकाम सिर दद बदहजमी। सुमनजी चितित थे इतनी रात गए किस वद्य को लाया जाय कि सामने हुए मैंने कहा—जरा सी वह क्या होती है कडवी-कडवी बराडी-सराडी अगर मिल जाती तो बडा आराम पडता। इतना सुनना था कि बात की बात म सुमनजी ने बराडी की वह शीशी मेरी नजर कर दी जस कि वद्य मरीज को दवा दे रहा हो।

रात मज से कटी और जब उठा तब भी उन्ह चिन्तित स्वर म यह कहते पाया—गुरु अब स्वास्थ्य कसा है? गुरु उनका तकिया-कलाम है।

जिन्हे मैं तो नही पर आम तौर पर लोग कुव्यव कहते है उनम सिफ विजया पान तक ही उनकी रसाई है। न जाने कब से वे उसका सेवन करत है पर शायद आज भी हर बार गायत्री का जाप करते है। न जाने किस करामाती की सगत का यह असर हुआ कि जब उन्होने दिलशाद कालोनी म मकान लिया तो शुरू के दिनो म उन्हे प्रति रविवार भाग छानने का शौक चराया। साप्ताहिक भाँग-गोष्ठी के नियमित सदस्य मैं और जगदीश विद्रोही होते थे तथा अस्थायी सदस्यो मे पडित उदयशकर भटट का नाम उल्लखनीय है। जिस दिन भट्टजी नही होते मैं और विद्रोही भाग छानत वक्त सुमन जी का गिलास जरा तेज कर देते। यह सब पहल म ही तय होता था। भाग छानकर हम योजना के अनुसार सुमनजी के साथ कुछ दूर निकल जाते और इसरार करते कि व अपनी जवानी के दिनो म लिखे प्रम-गीत सस्वर सुनाय। सरल सुमनजी को हमारी मक्कारी से क्या गरज! बस व अपने प्रम गीत गाने लगते। आख बन्द करके गाते रहते और हम दोनो खुसर फुसर करते हुए उनका आनन्द लेते रहते। जब उन्ह मौन होते देखते हम विनयपूवक कहते—समनजी वह रानी वाला गीत तो रह ही गया और तब होता रानी वाला गीत जिस भग की तरग मे गाते गाते सुमनजी तरल हो जाते थे। उनकी यह तरलता ही हमारे आनन्द का कारण थी। उनके आँसुओ पर हम हसते थे—आज सोचता हूँ हम कितनी दुष्टता करते थ!

शादी रमानाथ की हो या त्यागी की लेकिन दौड धूप मे लग है सुमनजी। पुरस्कार मे रमानाथ से सुनन को मिलता है दो आने की टोपी लगाय घूमते है और

त्यागी से गालियाँ, पर उनके चेहरे मे शिकन नही आती। न जाने किस धातु से इनका निर्माण हुआ है कि उनपर घृणा का जग नही लगता।

एक हमारे दोस्त है कानपुर मे। नाम से मुन्नू गुरु। स्मरणीय नवीनजी के बडे भक्त। नवीनजी से जब कभी भेंट हो जाती तो प्रश्न होता, 'क्या रग है मुन्नूगुरु ?' गुरु का मस्त मौला उत्तर सुनने के लिए ही अक्सर नवीनजी यह प्रश्न करते थे और जब सुनने को मिलता, 'हरी गाते है, लाल दिखाते है, आसमा स्वच्छ है, अपना तो ट्राई-कलर है बाबू !' तो नवीनजी ठहाका लगाते। सुमनजी मुन्नूगुरु तो नही है, पर लगता है आदमी वे भी ट्राई-कलर है। सिर पर सफेद टोपी, नीचे गहरी बादामी सी अचकन और उम्र उनकी एकदम ग्रीन। ग्रीन जब मैं कहता हूँ तो मेरा प्रयोजन है कि वे कच्ची उम्र के आदमी है। ढोग वे चाहे जितना रचें कि पचास साल के हो गए, पर असल मे वे कच्ची उम्र के लडके है। तबीयत उनकी पके लोगो मे नही, कम उम्र के लडको मे ज्यादा लगती है। लडको के साथ 'गुरु' कहकर ठहाके लगाना और बात-बात पर हाथ मिलाना उनका भरपूर शौक है। वे रहस्यवादी या प्रयोगवादी हँसी नही हँसते, बल्कि 'उन्मुक्त हास' उनकी खूबी है।

अगर आप सडक पर या शहर मे कही इनसे मिलेगे, तो आपको मेरी बात पर अविश्वास की जरूरत नही होगी। लेकिन, अगर कही अजय-निवास मे चले गए, जिसे मैं 'अजायबघर' कहा करता हूँ तो आपको लगेगा कि मैंने एकदम गलतबयानी की है। यह घर न होकर एक लाइब्रेरी या सग्रहालय है और इसमे रहनेवालो के लिए यह शर्त है कि वे इसका एक भी कागज इधर-उधर नही करेंगे। शायद हिन्दी की कोई ही ऐसी किताब होगी, जो इस सग्रहालय मे इतने करीने से रखी न मिले, जितने करीने से स्वय लेखक ने न रखा होगा। पत्र-पत्रिकाओ की फाइलें, कटिंग्स, सदर्भ—सब यहाँ उपलब्ध है।

सुमनजी खुद मे एक सदर्भ-ग्रन्थ हैं। किसी लेखक को अगर अपने दादा का सही नाम या शौक याद न हो, तो सीधे सुमनजी से मालूम कर सकता है। किसी लेखक का कहाँ और कब विवाह हुआ, इसे जानना सुमनजी अपना नैतिक कर्तव्य समझते है। व्यक्ति-रूप मे हिन्दी का इतना बडा एन्साइक्लोपीडिया और लडको के साथ हँसी-मजाक—ये सुमनजी की जिन्दगी के दो विसगत छोर है।

किसी भी दिन सुमनजी के घर फोन कीजिये, उत्तर कुछ इसी तरह का मिलेगा, अमुक की शादी मे गये है या अमुक की उठावनी मे गये है, पर इसके बावजूद उनकी नई-नई पुस्तकें आती रहती है। न जाने वे कितनी शक्ति के स्वामी हैं कि मैं उन्हें कभी थकते नही देखता। तेज चलना, तेज लिखना, गर्ज कि तेज धारा-सा इनका जीवन, पर रस मे लबालब!

सुमनजी के प्रसग मे एक वारदात का जिक्र करना जरूरी है। बात काफी पुरानी है मेरी शादी की। सुमनजी, बालस्वरूप राही, विद्रोही आदि के साथ मैं अपनी पत्नी को

नागपुर में विदा कराकर ला रहा था। नागपुर-स्टेशन पर, हमने अचानक देखा कि वरिष्ठ हिन्दी-पत्रकार आराधकजी, जो मेरे सहयोगी भी हैं प्लेटफॉर्म पर घूम रहे हैं। बस सुमनजी ने प्रस्ताव रखा कि दिल्ली तक आनन्द लिया जाय। बोले— देखो, तुम लोग सिर्फ चुप रहोगे।" हम लोग अपने डिब्बे में सवार हो गए और सुमनजी आराधकजी को लेकर दूसरे डिब्बे में जा बैठे। आराधकजी हैरान थे कि आखिर माजरा क्या है। सुमनजी ने धीरे-धीरे आनन्द लेना शुरू कर दिया— 'गुरु, ये लोग बड़े दुष्ट हैं। बेचारी अकेली महिला दिल्ली जा रही है और यार लोग उसके पीछे लग लिये हैं। मुझसे यह हरकत न देखी गई, तो आपके साथ आ बैठा हूँ।" अब जागा आराधकजी का ब्राह्मण रोष। सुमनजी बराबर उन्हें उकसाते और उनसे आलोचना-दर आलोचना सुनकर आनन्द-विभोर होते जाते।

रास्ते में हम लोग जब दोनों के लिए खाना लेकर पहुँचे तो आराधकजी को यह बताने के बाद भी कि गुरु, दुष्ट लोग खाना भी उसी बेचारी का उड़ा रहे हैं, भोजन खुद भी डकार गए। पर सरल-हृदय आराधकजी तब भी सुमनजी की आनन्द लोलुपता को नहीं समझे।

हालत यह कि हम नमस्कार करें तो भी आराधकजी से मुश्किल से जवाब मिले। गर्ज कि जब नई दिल्ली आई और हम गाड़ी से उतर गए तो भी आनन्द की आखिरी चुस्की लेने के लिए सुमनजी ने धीरे से आराधकजी से कहा— गुरु दुष्टों का उतरना तो पुरानी दिल्ली था, पर देखो, उतर गए नई दिल्ली। आखिर, बेचारी का घर देखे बिना इस दुश्चरित्र त्यागी को चैन कहाँ।' सुना तो आराधकजी मुझसे और भी कुपित।

मैं एक-दो दिन बाद जब दफ्तर पहुँचा और मालूम हुआ कि सुमनजी की आनन्द-कथा से आराधकजी मेरे प्रति अत्यन्त क्षुब्ध हैं तो मैं घबराया।

मैंने जब आराधकजी को शादी की बात बताई तो पारा पलट गया और आराधकजी छः मास तक सुमनजी से नाराज रहे। आज भी सुमनजी को मुझसे यह शिकायत है कि उन्हें भरपेट आनन्द दिलाने के बाद मैंने आराधकजी पर यह राज क्या प्रकट किया? सुमनजी और आराधकजी पड़ोसी हैं। अब भी इस घटना को लेकर उनमें यदा-कदा हल्की-सी 'चख चख' हो जाती है।

'नवभारत टाइम्स',
नई दिल्ली १

भाई हो तो ऐसा...

श्रीमती प्रकाशवती

लम्बा कद साधारण दोहरी काठी और गेहुएँ रंग पर भकाभक खादी का आवेष्टन गहरी किन्तु अन्तर्वेधिनी दृष्टि मे शिशु-सी निश्छल सरलता और इन सब के ऊपर होंठो के वक्रिम कोण पर आत्मीयता की सदाबहार मुस्कान, जिसकी उपलब्धि जीवन के घोर संघर्ष और दारुण आत्ममंथन के बाद ही होती है—यही हैं भाई सुमनजी ! और पहली ही भेंट मे अपनी बात मनवा लेने मे सक्षम इतने कि जिसका कोई जवाब नही। 'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियो के प्रेमगीत' के प्रकाशन के दौरान उनसे मेरा साक्षात्कार इसी प्रकार हुआ।

सन् १९६१ की दो अगस्त की वह संध्या मेरे जीवन मे अविस्मरणीय रहेगी। अपने कमरे मे ताला डालकर मैं पुस्तकालय की ओर अग्रसर हुई ही थी कि चपरासी ने बतलाया—दिल्ली के दो प्रोफेसर मिलना चाहते है।

एक साथ कई प्रश्न कौंध उठे। जीवन मे कई प्रोफेसर और साहित्यिको से इस प्रकार मिलने के खट्टे मीठे अनुभव का स्वाद मन मे भरा था, किन्तु अब तो पीछे लौटना भी असम्भव था। पुस्तकालय का समय हो चुका था अत मन-ही-मन आशंका और प्रतिषेध के अनेक तीर अपने तूणीर मे संजोती पुस्तकालय मे प्रविष्ट हुई।

लेकिन अपनी मेज के पास पहुँचकर क्षण-भर को ठिठक गई। एक सूट-बूटधारी कोई देसी साहब थे, दूसरे जिनकी गांधी-टोपी की छाँव वाली गहरी गम्भीर दृष्टि से मेरी आँखें टकराई तो लगा, अंगारे अपने-आप ही बुझ गए।

मुझे याद है, अभिवादनार्थ हाथ भी पहले उन्होंने ही उठाया और अपने नाम का परिचय भी स्वयं ही दिया था। साथ वाले सज्जन ने तबले की थाप मिलाई और उनसे मेरा परिचय ऐसी मिथ्या प्रशस्ति और आडम्बरपूर्ण वाक्यो मे देना आरम्भ किया कि मेरी दबी क्रोधाग्नि मे घी की आहुति-सी पडी !

केवल दो-तीन दिन पूर्व अपने कहे जाने वाले एक अभिन्न से कुछ ऐसी ही दारुण मर्मान्तक घटना घटित हुई थी कि उसने मेरी सम्पूर्ण चेतना को झकझोर दिया। उस पर यह प्रशस्ति उसी प्रकार लगी :

> ग्रह गृहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
> ताहि पियाइय बारुणी, कहहु कौन उपचार॥

मेरे आज तक के पिये गए सभी ज्वालक जहर उबल-उबलकर होंठो पर उफनते रहे और सुमनजी केवल मर्माहत-से बैठे सुनते रहे।

सहसा ही मेरे विद्रोही भावो को एक झटका-सा लगा, जब मेरा दूसरा बेटा,

जिसकी चपगाँव भी उसी दिन थी एक साधारण सी बाँसुरी लेकर किलकिलाता हुआ वहाँ आ गया। साथ वाले सज्जन जाने क्या सकपका गए और सुमनजी की आँखें आर्द्र हो उठी थीं। उन्होंने कहा था— तभी मुझे तुमसे न मिलने देने का प्रयास हो रहा था बहन! किसी ने कहा टी० बी० सेन्टर में है और किसी ने कहीं। यहाँ तक कि एक सज्जन ने कहा—मुझसे मिलना नहीं हो सकता। नलिनजी (अब स्वर्गीय) से मिला तो उन्होंने ही समय और स्थान बताया! और अब यह भी समझ में आ रहा है कि तुम्हारे सम्बन्ध में जितने प्रश्न मैंने पूछे वे एकदम मौन क्या रह गए!

सुमनजी कवयित्रियों की कविताओं और तस्वीरों का संग्रह कर रहे थे। मुझसे भी कविता और चित्र का आग्रह किया।

कठिन जीवन-संघर्षों से मैं टूट सी रही थी। और लगता था जैसे इन सब बातों का दायित्व मेरी रचनाओं को ही है सो अपने हाथों ही अपनी रचनाओं के उच्छेद का व्रत ले लिया! भूले भटके कोई चीज लिखी भी जाती तो उसे जलाकर चाय बनाकर पी जाती!

क्या?

क्योंकि मेरी रचनाओं को प्रकाशित न करने का हमारे पत्रों प्रकाशकों और रेडियो वालों ने भी कुछ ऐसा मिला-जुला कदम उठाया था कि विवश होकर मुझे अपनी रचनाओं को नष्ट करना पड़ा था! मेरी जीविका का आधार मात्र ७५) रुपये की सम्मेलन की नौकरी भर ही थी और उस पर चार चार बच्चों की परवरिश और शिक्षा-दीक्षा का विकराल प्रश्न!

सुमन भैया ने घंटे भर की ही भेंट में मुझमें वह आत्मबल विश्वास और संकल्प जगाया जिसे मैं भूलती जा रही थी। उन्होंने अपने इस प्रस्तावित संकलन की सामग्री में से कई लुप्त विस्मृत और विवश बहनों की रचनाएं पत्र और चित्र मुझे दिखलाये।

उन्होंने चलने के पूर्व मुझसे वचन ले लिया कि मैं विश्वासपूर्वक लिखती रहूंगी। कविताएं और चित्र तो भेजूंगी ही और कभी किसी के डराने पर अपनी रचनाओं के साथ अन्याय नहीं होने दूंगी! आज भी वह वाक्य मुझे नहीं भूलता— बहन मुझ पर विश्वास करो मैं तुम्हारा भाई हूं। लिखती जाओ और लिखती जाओ! मैं तुम्हारी रचनाओं को लोगों के सामने लाऊंगा।

उनका संकेत मेरी उस विवशता पर था जिसने मेरी अनेक उत्कृष्ट रचनाओं को दूसरे के नाम से छपने पर बाधित किया था!

सुमन भैया के कथन की सार्थकता इस भेंट के ठीक छः मास के बाद ही सामने आई। मेरा प्रथम प्रकाशित उपन्यास (लिखित नहीं) चार परत साहित्य देवता के चरणों पर आया। उन्हीं के प्रयत्न से मैं उपन्यास लेखिकाओं की पंक्ति में आ गई।

लेकिन यह तो परिचय की पहली कड़ी है। शाहदरा के उस साफ सुथरे आवास

के अतिथि-कक्ष में प्रवेश करते ही सामने वाली दीवार पर पर कबीर का एक दोहा टँगा है। जिसका सार यह है कि थोड़े में ही निर्वाह करना सन्तोषी की सही पहचान है। कबीर की लोक परलोक-समन्वयकारी दृष्टि ने इस सत्य को परखा था और अपनी तृप्ति के साथ साधु की संतुष्टि की माँग की थी। मुझे लगा, कबीर की यह भावना जिसमें रूपायित होकर रही है वह निश्चयेन कबीर की तरह ही फक्कड़ है।

फिर दूसरी तरफ दृष्टि जाते ही स्वाभिमानी कवि रहीम की पंक्तियाँ अपने आयाम में निखार भरती मिलीं

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरें, मोती, मानुस, चून॥

तीसरी ओर दृष्टि पड़ते ही जन-जन-मंगलकारी श्री तुलसीदास का यह दोहा दृष्टिगोचर हुआ—

तुलसी संत सुअंब तरु, फूलि फलहिं परहेत।
इतते वे पाहन हनें, उतते वे फल देत॥

भाई सुमनजी के व्यक्तित्व, उनके स्वाभिमान, उनकी विनम्रता, परोपकारप्रियता और विश्व बन्धुत्व की परख कराने वाली पंक्तियाँ सचमुच उनके जीवन में घुल मिलकर चरितार्थ हो चुकी हैं। इन्हीं में उनकी अटूट साधना का रहस्य निहित है। उनके कुछ क्षण के आतिथ्य के बाद आपको लगेगा—यहाँ केवल पार्थिव भूख की ही नहीं, मानसिक क्षुधा की तृप्ति का भी बड़ा शुद्ध और पवित्र भोजन है! सुमनजी समान तत्परता से व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनों का समाधान करते हैं।

तीन हाथ का वह हाड़-मांस का पुतला केवल अपने ही लिए नहीं जीता। काम, काम, इतने कामों के अंबार कि देखकर आश्चर्य होता है कि यह अकेला आदमी कैसे इतना काम कर लेता है!

अकेले सुमनजी ही नहीं, उनका पूरा परिवार इस व्रत में सन्नद्ध है। कबीर की तरह फक्कड़, रहीम-जैसे स्वाभिमानी और तुलसी-जैसे परोपकारी विनम्र और उदार मानव की सहधर्मिणी भी उनकी गृहस्थी का केन्द्र हैं। परिवार का, आगत अतिथियों और भाई सुमनजी के समस्त शैव गुणों का अकेली पार्वती की तरह समाधान करती उन महीयसी को मैंने निरन्तर कर्मरत देखा है।

मेरा कोई सगा बड़ा भाई नहीं। जितनी देर उस गृहिणी की स्नेह-छाया में रही, वे क्षण मेरे जीवन के बड़े ही सुखद स्वप्न की तरह हैं!

इन सबों के साथ ही एक और दर्शनीय और अविस्मरणीय वस्तु है—सुमनजी के आवास का ऊपर वाला उनका निजी अध्ययन-कक्ष! एक बड़ी-सी लाइब्रेरी! उनकी अध्ययनशीलता और लगन को देखकर बड़ी प्रेरणा मिलती है। भाई सुमनजी का यह कक्ष अपने-आपमें एक अजायबघर है। पत्रों के रूप में कितनी दुखी-संतप्त आत्माओं के मौन

मुखर भाव वहाँ सचित हैं। श्रद्धा और विश्वास की कितनी धरोहरें वहाँ सुरक्षित है और भविष्य के कितने कार्यक्रम वहाँ अपना रूप पा रहे है, इसकी तुलना अन्यत्र नहीं। व्यक्ति और व्यक्तित्व का असाधारण साम्य वहां देखने को मिलता है।

इन देव दुर्लभ गुणो के अतिरिक्त करीब चार दर्जन मौलिक, सकलित और सपादित कृतिया वे धनी भाई मुमनजी का सही मूल्याकन वर्तमान और भविष्य की पीढ़िया की अमानत है। सघर्षों से जूझकर उन्होने अपना उदाहरण आप प्रस्तुत किया है। एक साथ आलोचक, कवि, लेखक और पत्रकार ही नहीं, समाज-सुधारक और सफल वक्ता के रूप मे सुमनजी लोगो मे समादृत और प्रिय है।

ऐसे भाई की बहन होने के नाते मुझे भी अपने सघर्षों से जूझने की प्रेरणा मिली है, बल मिला है, स्नेह और सहानुभूति मिली है। भाई सुमनजी की उदारता, सौजन्य और कर्मठता अनेक भूले-भटको का मार्ग निर्देश करती रहेगी। इस अर्धशताब्दी-समारोह के मगल-अवसर पर मेरी शुभकामनाएँ है—वे सौ शरद् जिएँ। सौ वर्षों तक देखने और सुनने की सामर्थ्य से अनुप्राणित रहकर अपनी सपूर्ण आयु का उपभोग इसी प्रकार मातृभाषा की समृद्धि के लिए करते रहे। उनका सुयश दिगन्तव्यापी हो।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
कदम कुआँ, पटना

•

मेरे गुरु : मेरे सरक्षक

श्री प्रबोधचन्द्र पाठक

गुरुकुल नियमित जीवन-यापन की प्रतिनिधि सस्था है। वहाँ रहते हुए साधारण जीवनोपयोगी वस्तुओ का दर्शन भी दुर्लभ होता है। विशेष रूप से खान-पान विषयक सामग्री का नितान्त सयम रखा जाता है। प्रात साय नियमित भोजन मे दाल रोटी और सब्जी चावल आदि होते है। परन्तु रुग्णावस्था मे रोगी छात्रो के पथ्यानुसार उन्हे खिचडी, दलिया और अन्य इसी प्रकार का हल्का भोजन दिया जाता है। छात्रो की दृष्टि मे यह परिवर्तन एक विशेष महत्त्व रखता है। इसीलिए गुरुकुलो मे प्राय इस विशेष भोजन के लिए स्वाभाविक और अस्वाभाविक दोनो प्रकार के रोगी देखने मे आते है। ऐसे वातावरण मे यह समझना सर्वथा कठिन होता है कि छात्र वास्तविक रोगी है या दलियार्थी।

ऐसा ही एक मधुर सस्मरण आज भी मेरे सामने उभर रहा है। गुरुकुल प्रवेश के

चौथे ही दिन मै अचानक तीव्र ज्वर से तख्तशायी हो गया। ज्वर की तेजी और घरवालो के सद्य विछोह से मैं बडा उद्विग्न और अशान्त-सा आश्रम के बरामदे मे तख्त पर पडा था। नया-नया होने के कारण अन्य छात्रो से अभी परिचय भी नही हो पाया था। दूसरी विशेष बात यह थी कि मेरी उम्र अपने अन्य साथियो से बहुत कम थी और शारीरिक आकार तथा रचना का तो वर्णन ही क्या करूँ! मैं लेटा-लेटा लगभग रो रहा था। उसी समय खद्दर का कुर्ता खद्दर की लुंगी और जवाहर-जाकट पहने किसी उच्च श्रेणी के एक छात्र ने आकर पूछा—

'क्यो भाई! दूध का बुखार है या दलिये का?"

मैंने उन्हे कोई उत्तर नही दिया और जोर से रो पडा। उनकी वेश-भूषा और आयु से मैं उन्हे वैद्यजी भी नही समझ सका, और न ही अध्यापक। परन्तु जब समीपस्थ पुराने छात्र ने उन्हे 'भ्राताजी, नमस्ते' कहकर अभिवादन किया तो मैंने जाना कि यह भी बडी कक्षा के छात्र हैं और हमारे आश्रम के सरक्षक भी। मुझे रोता देखकर बडे स्नेह से उन्होने मेरे सिर पर हाथ फेरा और मेरे पास ही बैठकर बोले—"क्या घर की याद आ रही है?" मैंने कहा—"जी। और बुखार भी तेज है।" ज्वर की तीव्रता और मेरी बेचैनी देखकर वे तुरन्त मेरा माथा दबाने लगे और बोले—"रो मत! मैं तेरा बडा भाई जो हूँ। फिर तुझे किस बात की चिन्ता है!" इन शब्दो से मुझे बडा धैर्य, प्रगाढ स्नेह और एक ममतापूर्ण आश्वासन मिला।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' से यह मेरा प्रथम और अमिट परिचय था। सुमनजी उन दिनो अध्ययन भी करते थे और छोटे छात्रो के सरक्षक भी थे। सुमनजी का भ्रातृ-स्नेह छोटे छात्रो के लिए इतना अमूल्य था कि कोई भी अपने को अकेला अनुभव नही करता था। यह सौभाग्य की बात है कि मैं उन पर अपना जो विशेषाधिकार समझ बैठा था, उससे मैं कभी वंचित नही रहा।

गुरुकुलीय जीवन मे सुमनजी के जीवन की विशेष रूप से चार धाराएँ बह रही थी। छात्रावस्था मे ही छोटे छात्रो का सरक्षण-कार्य करते हुए वे बच्चो को पिता का स्नेह दे रहे थे। व्याख्यान-आदि के क्षेत्र मे उनका पाण्डित्य एक बडे व्याख्याता के रूप मे था और विद्वत् कला परिषद् की पत्रिका के सपादन और लेखन मे एक कुशल सम्पादक और लेखक का व्यक्तित्व निहित था। किसी भी कवि-सम्मेलन मे उन्हे कविता-पाठ करते सुना जा सकता था। इस प्रकार जिस व्यक्ति को जो विषय प्रिय था, वह उस विषय मे सुमनजी को अग्रणी पाता था।

गुरुकुलीय जीवन बिताकर जब मैं १९४७ मे दिल्ली आया तो उस समय मैं एक ऐसे चौराहे पर खडा था, जिसकी किसी भी दिशा का मुझे ज्ञान नही था। जब मेरी अधूरी शिक्षा ने मुझे किसी भी निश्चित दिशा की ओर प्रेरित न होने दिया तो मैंने आर्यसमाज की एकमात्र सस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा मे शरण ली। वहाँ रहकर मैंने हिन्दी

का टाइप सीख लिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी जगत् मे एक क्रान्ति आ गई और हिन्दी की हजारो पुस्तक राजधानी मे छपने लगी। मुझे मेरे एक मित्र ने बताया कि यदि मैं प्रकाशको और लखको से सम्पर्क स्थापित करू तो मुझे हिन्दी-टाइप का बहुत सा काम मिल सकता है। उस मित्र ने कहा— देखो तुम पहाडी धीरज पर हाथीखाने चले जाओ वहा हिन्दी के एक बहुत बड लखक रहत है—सुमनजी ! मेरा उनसे खास परिचय तो नही है पर इतना जानता हू कि वह तुम्हे काफी काम दिला सकते है। वहाँ तुम्हे बहुत-से लखको का मजमा लगा मिलगा। चाय के दौर चलते मिलगे। इस लम्बी अवधि मे मैं अपने गुरुकुलीय सरक्षक सुमनजी को लगभग भूल-सा गया था और उक्त मित्र के कथनोपरान्त भी यह कल्पना नही कर सका कि यह वही सुमनजी होगे।

हाथीखाना पहाडी धीरज पर सुमनजी सपरिवार रह रहे थ। लगभग दोपहर बाद मैं वहा पहुचा और दरवाजे के बाहर खडा होकर यह सोचता रहा कि सुमनजी से मिलने पर किस प्रकार बात करूगा ! क्योकि मैं दिल्ली के बड आदमियो के घर जाकर उनसे बातचीत करने के तौर-तरीको से एकदम अपरिचित था।

घर क भीतर बहुत से व्यक्तियो के बातचीत करने की आवाज आ रही थी। मुझ सबके बीच पहुचने मे और भी सकोच हो रहा था। अचानक ही मरे पीछे दो सज्जन और आ पहुँचे और बिना रुके नि सकोच भाव से अन्दर जाने लगे। तब मैंने उनस पूछा—

क्या आप इसी मकान मे रहत हैं ?

नही क्यो ?

मै श्री सुमनजी से मिलना चाहता हू।

मिल लो वे अन्दर ही होगे आवाज आ तो रही है।

चिरपरिचित आवाज सुनकर मैं भी सन्देह मे पडा हुआ सोच ही रहा था कि स्वर परिचित सा लगता है। पर सदिग्धावस्था म मैं बाहर ही खडा रहा। सभवत नवागन्तुको न अन्दर जाकर मर प्रतीक्षा करने की सूचना दी हो। क्योकि कुछ देर बाद ही जीने की ऊपर वाली सीढी से सुमनजी ने मुझ पुकारकर कहा—

कौन है भाई ! ऊपर आ जाओ वहा क्या खड रह गए ? क्योकि जीना कुछ घुमावदार था इसलिए हम दोनो एक-दूसर को न देख पाये थे।

मैं ऊपर जाने लगा तो सुमनजी की दूसरी आवाज फिर सुनाई पडी और यह आवाज उनकी धर्मपत्नी के लिए थी— सुनती हो एक कप पानी और बढा देना। एक सन्त और टपक पड हैं। उधर से क्या उत्तर मिला भगवान जाने ! शायद उत्तर मिला भी न हो और न ही सुमनजी न उत्तर की प्रतीक्षा ही की होगी। क्योकि यह तो उस घर का सबस अधिक पवित्र कृत्य या दैनिक समारोह रहता था। जसा कि मुझ सुमनजी के सतत सम्पर्क म आन पर बाद मे ही विदित हुआ।

ऊपर पहुचकर सुमनजी को मैंने जब देखा तो हर्षातिरेक म मरी आखो म आँसू

आ गए। दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया, दोनों ने स्नेह की पुरानी भावना का स्पर्श किया। चेहरे पर वही निर्लेप-निर्व्याज मुस्कराहट थी। बोले—

"तूने यहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा! कब आया, कहाँ से आ रहा है, क्या कर रहा है, कहाँ ठहरा है?" आदि इतने सारे प्रश्न सुमनजी ने एक साथ पूछ डाले। किसी भी प्रश्न का उत्तर मैंने नहीं दिया।

सारे प्रश्नों के उत्तर में मैंने एक निजी, विशेषाधिकार का प्रश्न कर दिया—"आप इतने वर्ष तक कहाँ रहे? महाविद्यालय में आने के बाद आपसे कहीं सम्पर्क ही नहीं हुआ?"

सुमनजी ने उत्तर दिया— "महाविद्यालय छोड़कर मैंने नगर घाटों का पानी पिया और अब १९४५ से यहीं हूँ।"

तब तक मैं एक ओर बैठ गया था। दो-एक पहले से जमे हुए सन्तों ने मेरी ओर लक्ष्य करके सुमनजी से मेरा परिचय पूछा तो उन्होंने एक संक्षिप्त-सा परन्तु सार्वजनिक उत्तर दिया—"यह भी मेरा एक चिरजीव है।"

यहाँ से सुमनजी के साथ मेरे जीवन का दूसरा अध्याय प्रारम्भ हुआ, जिसकी इतिश्री आज भी नहीं हुई।

सन् १९४६ से लेकर १९५२ तक मुझे सुमनजी का इतना सहयोग प्राप्त हुआ कि मेरी जेब सदा भरी रही। परन्तु सुमनजी दूरद्रष्टा थे। वे मेरी उस समय की तात्कालिक आर्थिक सहायता से स्वयं सन्तुष्ट नहीं थे। उन्हें मेरे इस कार्य से सन्तोष नहीं था। इसलिए उन्होंने मेरा संस्कार करना आरम्भ कर दिया, पत्रकारिता के क्षेत्र में। एक वर्ष के अन्दर ही उन्होंने मुझे इस योग्य बना दिया कि मैं किसी हिन्दी पत्र-पत्रिका में कार्य कर सकूँ। यही नहीं, सन् १९५२ में स्व० प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के संपादन में 'जनसत्ता' नामक एक दैनिक पत्र ने दिल्ली में जन्म लिया और उसके उद्घाटन के दिन ही थी सुमनजी मुझे जनसत्ता-कार्यालय में छोड़ आये। इस अवधि में सुमनजी पता नहीं राजधानी के कितने प्रेसों में व्यवस्थापक के रूप में कार्य करते रहे और छोटते रहे और एक दिन साहित्य अकादेमी के सरकारी कार्यालय में पदासीन हो गए। मेरा आवागमन वहाँ भी बना ही रहा। मेरे लिए सुमनजी यहाँ भी शान्त नहीं रहे। एक दिन मुझे भी उन्होंने कृषि-मन्त्रालय की एक हिन्दी की मासिक पत्रिका के कार्यालय में पहुँचाकर दम लिया।

सौभाग्य और दुर्भाग्य की लकीरों ने मुझे बाध्य कर दिया कि मैं सुमनजी की छत्र-छाया से दूर न रहूँ। सुमनजी दिल्ली छोड़कर दिलशाद कॉलोनी शाहदरा जा बसे तो मैं भी शाहदरा में ही रहने लगा। यहाँ रहकर मैंने अपने घर-गृहस्थ का उत्तरदायित्व किन्हीं अंशों में सुमनजी पर थोप दिया। इस प्रकार सुमनजी के साहचर्य और वरद हस्त का मुझे सौभाग्य मिला। दुर्भाग्य इसलिए कह रहा हूँ कि मैं अब भी उनसे जोंक की तरह चिपटा हुआ हूँ और उन्हें यदा-कदा तंग करता ही रहता हूँ।

शाहदरा आकर सुमनजी ने जीवन में एक नया और प्रशंसनीय मोड़ ले लिया।

वह स्पष्ट रूप से नागरिक राजनीति के अखाड़े में कूद पड़े। जिन व्यक्तियों के पूर्वज भी कभी चुनाव-क्षेत्र का दर्शन न कर पाये, वे सुमनजी का सशक्त और दुर्भेद्य समर्थन और सम्बल पाकर चुनावों में जीतने लगे। शाहदरा की शिक्षा-संस्थाओं में होने वाले भ्रष्टाचार और अनियमितता का सुमनजी ने समूल उन्मूलन कर दिया।

शाहदरा कस्बा काफी समय से साहित्यिक गतिविधियों से बिल्कुल अलग थलग पड़ा था। वहाँ के निवासियों में साहित्यिक चेतना जागृत करने का श्रेय केवल श्री सुमनजी को रहा है। सुमनजी के अधिनायकत्व में कई विशाल कवि सम्मेलन, अनेक कवि गोष्ठियाँ आयोजित होती रही हैं। बारह वर्ष के अथक परिश्रम से आज शाहदरा की जनता इस योग्य हुई है कि जहाँ इस प्रकार की गतिविधियाँ पाई जा सकती हैं। शाहदरा निवासियों की साहित्यिक गतिविधियों को चिरस्थायी रखने के लिए ही श्री सुमनजी ने यहाँ 'हिन्दी कला-केन्द्र' संस्था को जन्म दिया था।

आज इस उपनगर का यह सौभाग्य है कि नागरिकों की कल्याण-समिति की ओर से श्री सुमनजी ही उनका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। सुमनजी के सदा बहार होने की आभा नगर निवासी भी उतनी ही पाते हैं जितनी मैं पाया करता हूँ। सुमनजी की विशालता की एक बात और कह दूँ। साहित्यिक जगत् में श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने बड़ी ख्याति पाई है और सुमनजी के साथ जो उनका निकट सम्बन्ध काफी समय से चला आ रहा है, वह मित्रता की सीमा से बहुत दूर पहुँचकर भ्रातृ सीमा में परिवर्तित हो चुका है। इन दोनों के निःस्वार्थ, निश्छल सौहार्द को देखकर मुझे अपना स्नेह शिथिल होता जान पड़ा। मैंने इस भ्रम का निराकरण सुमनजी से किया तो वह बड़े शान्त, गम्भीर पर विनोदी स्वभाववश बोले—"कमलेश, मेरा भाई है, तो तू भी तो मेरा चिरजीव है।"

गली पुराने डाकखाने वाली,
शाहदरा, दिल्ली ३२

जिसने स्वार्जन पर ही गर्व किया

श्रीरंजन सूरिदेव

दिलदारी और ताजगी की प्रतिमूर्ति 'सुमनजी'। जी हाँ, दिलदारी और ताजगी की साक्षात् मूर्ति 'सुमनजी'। आपकी मनहूसियत रफूचक्कर हो जायगी, दिल बाग-बाग हो जायगा। आप उनसे अवश्य मिलिये—दिल्ली जाकर, दिलशाद कालोनी में।

आकृति पर अनवरत बागो-बहार का अम्बार। पैनी आँखों की चमक ओठो पर आकर थिरकती-मुस्कराती हुई। वाणी में विनोद की चिकोटियाँ और चुटकियाँ। व्यवहार मैत्री और सद्भावपूर्ण। एक बार के परिचय में ही युग-युग की जान-पहचान और घनिष्ठता स्थापित करने की सहज क्षमता से भरपूर। धोती, कुरता, बंडी और फिर उसपर गाधी-टोपी।—इस सीधे-सादे-से लिबास में लिपटे सुमनजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व जितना प्रभावक है, उतना ही रुचिकर।

प्रतिभा और परिश्रम के धनी सुमनजी आचार और विचारों में यदि पूर्ण आर्य हैं, तो साहित्यिक बुद्धि और बौद्धिक तीक्ष्णता की दृष्टि से आचार्यों में प्राप्य विलक्षणता और विचक्षणता से विभूषित। यही कारण है कि साहित्य के उद्यान में इस सुमन के खिल जाने से रसवादियों की चहल पहल बढी ही है, दिन प्रतिदिन। फिर भी, सुमनजी की मौलिकता या विशेषता है कि ये किसी से लोहा नहीं लेते और न किसी से अपना ही लोहा मनवाना चाहते हैं। निर्द्वन्द्वता और तटस्थता ही इनकी स्वस्थ महत्ता है। फिर भी ये अपनी महत्ता में ही खो जाने वाले जीव नहीं, अपितु अपनी महत्ता और सीमा के प्रति सतत जागरूक रहने वाले हैं।

सुमनजी का पूरा नाम है क्षेमचन्द्र 'सुमन'। 'क्षेम' यदि क्षेम, यानी रोजी-रोटी का प्रतीक है, तो 'चन्द्र' भावलोक, यानी कविता-कला की ओर सकेत करता है। कहना यह है कि सुमनजी धरती पर रहकर भी आसमान की बातें करते हैं। और इस प्रकार, उनके नाम को पूरी अन्वर्थता, जो स्वभावतया अपेक्षित है, मिल जाती है। यो समझें धरती और आसमान के कुलाबों को मिलाने के क्रम में सुमनजी पद्य और गद्य दोनों पर समान अधिकार के साथ सवारी करने की ताकत रखते हैं। इसलिए, ये यदि एक ओर **गद्य कवीना निष्कर्ष वदन्ति** की चुनौती को हँसते हुए स्वीकार करते हैं, तो दूसरी ओर **कवित्व दुर्लभ लोके** की ललकार के सामने भी कभी उन्नीस नहीं पड़ते।

पटना में अपनी साहित्यिक प्रतिभा का प्रस्तार करते हुए सुमनजी का नैकट्य अर्जित करने के दो तगड़े अवसर मुझे प्राप्त हुए हैं। एक बार पटना के प्रसिद्ध गाधी मैदान में। बिहार-राज्य द्वादश आर्य महासम्मेलन के अवसर पर जिस कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया था, उसके सभापतित्व का गुरुतर भार सुमनजी के ही सबल कन्धों पर था। एक कवि होने के नाते, उस सम्मेलन में, मैं भी पाँचवें सवार के रूप में शामिल कर लिया गया था। उस अवसर पर इन्होंने जो अध्यक्षीय भाषण दिया था, उसका साहित्यिक सन्दर्भ और शोध की दृष्टि से अपना अनुपेक्षणीय महत्त्व है। इन्होंने महर्षि दयानन्द और हिन्दी के सम्बन्ध में अपने मार्मिक उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था

"महर्षि दयानन्द ने जिन दिनों आर्यसमाज की स्थापना की थी, उन दिनों देश में सर्वत्र उर्दू का ही बोलबाला था। उन्होंने सर्वप्रथम आर्यसमाज के माध्यम से हिन्दी को आर्यभाषा की गौरवपूर्ण सज्ञा से अभिहित किया। उन्होंने पुरानी फक्कड़ी हिन्दी को

न अपनाकर हिन्दी-भाषा को सर्वथा नई विचार-भूमि प्रदान की। वे भाषा को साहित्यिक दृष्टि से अलंकृत नहीं करते थे। एक समाज-सुधारक का दृष्टिकोण ही उनकी भाषा में परिलक्षित होता है। एक बार जब पंजाब में उनसे किसी सज्जन ने उनके समस्त ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करने की अनुज्ञा माँगी, तब उन्होंने उन्हें बड़े प्रेम से जो उत्तर दिया था, वह आज भी हिन्दी की स्थिति को अत्यन्त दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करता है 'भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लगेंगे और जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी, वे इस आर्यभाषा का सीखना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।' वास्तव में महर्षि दयानन्द की यह भावना अक्षरशः चरितार्थ हुई और देश के कोने-कोने में उनके क्रान्तिकारी विचारों को जानने तथा समझने के लिए ही हिन्दी का प्रचलन तेजी से हुआ।"

इस प्रकार, आर्य महाधिवेशन के विशाल भव्य पण्डाल के प्रांगण में गूंजती हुई हिन्दी की शब्दध्वनि निनादित होकर न केवल पटना तक ही सीमित रही अपितु तरंगित होती हुई दिल्ली-दरबार तक भी पहुँच गई थी।

सचमुच, सुमनजी के उक्त मुद्रित भाषण को पढ़ने वाला कोई भी सुबुद्ध व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि सुमनजी के अन्तस्तल में हिन्दी के प्रति न केवल विशुद्ध निष्ठा है, अपितु दर्द भी है। दर्द भी वह, जो आस्था, विश्वास और स्नेह को कभी डिगने नहीं देता। इस प्रकार, सुमनजी को यदि हिन्दी के एकनिष्ठ सेवक कहने के साथ ही हिन्दी का दर्दीला व्यक्तित्व भी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं ही मानी जायगी। सही बात तो यह है कि सुमनजी की गद्यनिष्ठा पद्य में दर्द बनकर उभरती है। और इस प्रकार ये मूलतः कवि हैं, गद्यकार बाद में। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकेगा कि आज की गद्यात्मक परिस्थिति ने इनके कवि को अपनी बरगदी छाँह का बिरवा बना दिया है। इसलिए, इनके पद्य की खाद पर पनपा हुआ इनका गद्य निश्चय ही गौरवशाली है, ऐसी हमारी मान्यता है।

दूसरी बार बिहार-हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की बच्चनदेवी-साहित्य-गोष्ठी में सुमनजी की भाषण शैली और वक्तृत्व-कला से परिचित-प्रभावित होने का महार्घ संयोग मिला। भाषण का विषय 'हिन्दी का संस्मरण साहित्य' था। सुमनजी ने अपने भाषण में संस्मरण-साहित्य की जो रूपरेखा उपस्थित की, उसकी ऐतिहासिक क्रमिकता तथा विवेचनात्मक विशदता एवं सूचनात्मक सूक्ष्मता इतनी सटीक उतरी थी कि गोष्ठी में उपस्थित विभिन्न वर्ग और वय वाले विद्वान् आप्यायित और गद्गद हो उठे थे। संस्मरण-साहित्य के सम्बन्ध में सुमनजी की मान्यता जितनी फैली हुई है, उस फैलाव को उस गोष्ठी में इन्होंने गागर में सागर बनाकर रखा था, फिर भी इनका वह भाषण अपर्याप्त नहीं समझा गया। सारा ही भाषण रिकार्ड किया गया था।

सुमनजी, निश्चय ही, अपनी हिन्दी-सेवा के प्रति जितने आस्थालु हैं, उतने ही आत्मना विश्वस्त भी। फलत इनमें सर्जना की मौलिकता की अनल्पता है। इनका रचना-पक्ष इनके रचनाकार में कहीं अधिक लब्धप्रतिष्ठ है। इस प्रकार, सुमनजी एक सिसृक्षु साहित्यकार हैं और इसीलिए सृष्टि की वेदना से आकुल इनकी लेखनी मानवता का वह चित्र उरेहती है, जिसमें समाज की पीडा का सफल प्रतिबिम्बन रहता है।

गद्य और पद्य के क्षेत्र में सुमनजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी होने से इनका कवि जितना मधुर है आलोचक उतना ही प्रखर। सच पूछिये तो आलोचना के क्षेत्र में इनकी पकड बहुत ही दृढ और पैठ बडी गहरी है। साहित्य की विविध विधाओं में ये अपनी लेखनी साधिकार और नि शक दौडाते हैं, और हर विधा में इनकी मौलिकता काबिले-दाद होती है। निर्वैयक्तिकता ही इनके साहित्य-सर्जन की उल्लेख्य विशेषता है।

इन प्रातिभ गुणों के अतिरिक्त सुमनजी में एक और विशेषता है, और वह है सघटन-शक्ति। कई सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक और शैक्षिक सस्थाओं से सम्बद्ध होते हुए भी इनकी साहित्य-साधना की शिखा कभी मन्द नहीं पडती। ये अपने-आप में एक सस्था हैं। समय का साहित्यिक सामाजिक सदुपयोग करना तो कोई इनसे सीखे।

सुमनजी साहित्यिक होने का जितना अधिकार रखते हैं, उससे कहीं अधिक अधिकार राष्ट्रभक्त होने का भी इन्हें है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय इन्होंने 'कृष्ण-मन्दिर' में रहने का अवसर प्राप्त किया है। कहने का तात्पर्य यह कि साहित्य हो या राजनीति, देश-सेवा ही इनका प्रमुख उद्देश्य है।

सुमनजी से मेरा परिचय अनौपचारिक है। इनके चुम्बकीय व्यक्तित्व और प्रभावक व्यवहार में खिचकर मैं अनायास ही इनके आत्मीयों की पक्ति में पहुँच गया। फिर तो इनकी जिन्दादिल जिन्दगी की जन्नत का मजा मेरे लिए नायाब नहीं रहा। जब भी पटना आते, 'दर्शन देने' चले ही आते हैं। गुरुता के आडम्बर में लिपटे रहना इन्हें कतई पसन्द नहीं। खिलकर रहने और खुलकर मिलने-जुलने में ही इन्हें अच्छा लगता है। जब दिल्ली में विराजते हैं, तब अपनी स्नेहिल चुटकियों से भरी चरपरी चिट्ठियों से निरन्तर आनन्द देते रहते हैं।

सुमनजी सही मानों में 'आत्मीय' हैं। किसी को एक बार अपना लिया, तो आजीवन निबाहने का ही व्रत ले लिया · **आमरणान्ताः प्रणयाः।**

सुमनजी एक प्रबल आस्थावादी साहित्यकार हैं। यह उधार-पैंचे पर विश्वास करने के बजाय स्वार्जन पर ही अधिक गर्व करते है। ये दूसरों के हौज में हाथ नहीं डालते, अपितु स्वय कुआ खोदकर पानी पीते हैं। मैं इस स्वाभिमानी स्वयसेवक साहित्य-सेवी के प्रति सहज ही श्रद्धा-नत हूँ।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
राजेन्द्रनगर, पटना

मस्त-मलंग आदमी

श्री रामनरेश पाठक

श्री क्षमचन्द्र सुमन को मस्मृत करता हू तो मुझ सस्कृत के कई श्लोक याद आते हैं। यथा—

पयसा कमल कमलेन पय
पयसा कमलेन विभाति सर ।
मणिना वलय वलयन मणि
मणिना वलयेन विभाति कर ॥
शशिना च निशा निशया च शशि
शशिना निशया च विभाति नभ ।
कविना च विभु विभुना च कवि
कविना विभुना च विभाति सद ॥

सच यह व्यक्ति जो क्षम चन्द्र और सुमन तीनो ही है क्योकि क्षमत्व चन्द्रत्व एव सुमनत्व इसकी व्यक्तिवाचकता की भाववाचकता है किसी भी सभा सलाप और गोष्ठी को विभा ही प्रदान करता है। आलोचना के सम्पादक मडल म सम्मेलित हो यह नाम मुझ पहले पहल दिखा था तो लगा था कि यह छायावादी कमे प्रभत्वाकाक्षी साहित्यिको मे अट पाया है ?

फिर एक बडा अन्तराल रहा। मै अछूता ही रहा इस नाम स इस व्यक्ति के कृतित्व मे।

सम्भवत १९६१ मे एक दिन हिमाशु श्रीवास्तव ने कहा कि सुमनजी पटना म आये हुए है और बिहार की कवयित्रियो से उनकी रचनाएँ तथा परिचय आदि एकत्रित कर रहे है। मैंने जिज्ञासा की भई य वही आलोचना वाले सुमनजी है या कोई और ? हिमाशुभाई ने बताया—वही हैं।

मैंने सोचा हिन्दी का पश्चिम भारतीय साहित्यिक क्योकर बिहार वालो पर उदार हुआ क्योकि आजतक इतिहास लखन काव्यादिक सकलन आदि म तो बिहार क हिन्दी साहित्यकारो के प्रति भूरि भूरि अनुदारता बरती गई है और उस पर भी यह व्यक्ति लघमानवीय परिवार मे रहा है यह क्या करेगा बिहार की कवयित्रियो की रचनाओ आदि का ? फिर ध्यान आया सम्भवत भवभूति की आकाक्षा का कोई प्रतिफलन उदग्र हुआ है कुछ होगा छोडो लोग आते ही जाते रहते है। सुमन मिले नही उस बार तो जी म जी आया एक अकाड म बचा।

परन्तु यत्पूर्वम् विधिना ललाटलिखित तन्मार्जितु क क्षम ’सम्पूर्ण चरितार्थता म

समक्ष हुआ। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का पत्र आया कुमारी राधा के नाम कि वे 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' के लिए अपनी रचनाएँ, अपनी परिचिति और अपना चित्र भेजें। राधाजी ने मुझसे पूछा, "भेज दूँ?" मैंने कहा—"अवश्य, आदमी सही है, लघुमानव नहीं।" बात आई-गई हो गई। कुमारी राधा ने सामग्री नहीं भेजी। श्री 'सुमन' तुले बैठे थे। राधाजी के पास फिर दो-दो दिन के अन्तराल में पत्र आये और कई आये। उनके ऊपर लाल स्याही में आवश्यक, शीघ्र, शीघ्रातिशीघ्र और अनिवार्य आदि संकेतक लगे थे। राधाजी ने कहा 'भई यह हठी सम्पादक है।" मैंने कहा, "किंतु शठ नहीं है, भेज दें, प्रमाद ठीक नहीं होता।"

और, सेर पर सवा सेर तो तब बैठा, जब शान्ताजी (शान्ता सिनहा) ने श्री 'सुमन' के वैसे ही पत्र उन्हीं संकेतकों के साथ दिखलाये, जो उनके नाम आये थे। मैं हँसता रहा, खूब, कई दिनों पर वैसा हँसा था, सो शान्ताजी ने कहा, "बात क्या है?" मैं कोई उत्तर देता कि नर्मदेश्वरजी आ गए और कह बैठे, "इ सुमनजी के हथी, अच्छा काम कर रहलथी है, शान्ताजी से कहहुन ऊ रचना भेज देथी।" बात यह थी कि शान्ताजी गीत बहुत ही कम लिखती हैं और वह भी प्रेमगीत, समस्या थी। शान्ताजी ने कह दिया कि वे भेज देंगी तो मैं, नर्मदेश्वर, गोपीकृष्ण घूमने निकल आये। बहुत देर तक 'सुमन' विषय रहे आलाप-सलाप के। सुमन' की कर्मठता, उनका 'फौलोअप', पत्रों में उगती आत्मीयता, हिन्दी के गुट्टी साहित्यिक, सकलन,-समीक्षाएँ, हिन्दी-साहित्यकी गतिविधि साहित्यिका की समझदारी आदि पर 'सुमन' को घेरकर बातें हुईं।

फिर एक छोटा अन्तराल रहा और मैं दिल्ली पहुँचा। कोई दिसम्बर, ६१ रहा होगा या जनवरी, ६२। मेरे साथ कुमारी राधा भी थी। एक दिन दोपहर में हम दोनों रवीन्द्र-भवन पहुँचे—साहित्य अकादेमी के दफ्तर। वहाँ 'सुमन' के कक्ष का पता लेकर अनुमति माँग, उनकी मेज तक पहुँचे। देखा कि हिमांशु जोशी-जैसा दिखने वाला कोई एक व्यक्ति उनके पास बैठा है और मेज की उस तरफ कोई कांग्रेसी शकल का चाई जैसा व्यक्ति, काम में उलझा है। मेरी ओर दृष्टि उस व्यक्ति की नहीं पड़ी, वह कुमारी राधा की ओर उन्मुख, परिचय-अपरिचय के बीच कुछ क्षण झूलता रहा, कि उसके बोल फटे —"शायद, कुमारी राधा, बिहार की कवयित्री—" और फिर एक आत्मीय दो गज फैली हँसी गूँजी। राधाजी मेरी ओर उन्मुख हुईं, परिचय सूत्र 'सुमन' की ओर बढ़ाया, 'राम-नरेश पाठक' कि वह व्यक्ति मेज से टकराते-टकराते बचते, गिरते, पड़ते आया और मुझे बाँधे रहा—"कमबख्त तू भी, चल यार, आज का दिन ठीक रहा।" मैंने कहा कि 'भई, मैं अपनी सोच रहा हूँ, एक साहित्यिक मिला है, वह भी सरकारी, अपने दफ्तर में और दिल्ली में, **एकैकम् अपि अनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्**। फिर बीस-बीस गज लम्बे कई ठहाके लगे, वातावरण सुखद रहा, उचित और आत्मीय। 'सुमन' साहित्यिक अफसर नहीं हैं, जानकर प्रसन्नता हुई। उस दिन 'सुमन' से विदा लेकर अच्छे ख्यालात लेकर हम

लौटे। 'सुमन' मस्त मलग आदमी है, जोर से खुलकर अकुठ निर्ग्रन्थ ठहाके लगा सकते है, बनावटी नही है अभी तक 'अफसर' नही हुए है, काग्रेसी वेष और भूषा मे प्रपची नही है, छिप-छिपाव, रख-रखाव नही करते मिलते है तो टूटकर—जैसे मौज दरिया मे, और अलग होते है तो जुडकर जैसे मौज किनारे से।"

'सुमन' ने उस यात्रा के दौरान हमे अपने घर पर खाने को बुलाया था, हम गये भी थे। दिल्ली से दूर शाहदरा, गाँव ही दीखा था तब। हम दूरी से झुँझलाये भी थे। पर वह ऊब और खीझ 'सुमन के घर पहुँचकर कपूर हो गए थे। वही दिखावटी कुछ नही था जैसे छोटे भाई-बहिन घर पर आये हो बहुत दिनो पर, वैसी ही बात और आव रण था। 'सुमन' का निजी अध्ययन-कक्ष, सग्रहालय और पुस्तकालय दोनो ही है। उन्होने कवयित्रियो के अजीब बेबसी से भरे कई पत्र, कई अनदेखे साहित्य-सकलन कई पाडु-लिपियाँ दिखलाई थी और हम लोग हिन्दी साहित्य इतिहास के अलिखित अश की सामा-जिकी और कारणिकी पर बहुकोणिक और कही-कही कोणस्पृग वृत्तात्मक चर्चाएँ करते रहे थे। इसी चर्चा के बीच कतिपय मित्र कवियो और कवयित्रियो के चर्च्य सम्बन्धो पर भी हम बातें करते रहे थे। 'सुमन की वाराणसीयता और कवि-सम्मेलनी कवियो के इतित्व और वृत्तत्व से आवलित रसमयता का परिचय भी इसी भेंट मे मिला था। प्राय शाम ढले हम लौट आये थे शाहदा से दिल्ली।

उस बार दिल्ली से पटना लौटा तो मैं सुमन परिवार' का अग बन चुका था और बीच की सारी जगहे पट गई थी।

इसके बाद 'सुमन' मिले मेरे घर पर। बात यह थी कि पटना मे द्वादश आर्य महा सम्मेलन हो रहा था और इस अवसर पर एक बृहद् कवि सम्मेलन होने को था। कवि-सम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष थे—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'। वे आने वाले हैं सूचना थी, पर इस भले आदमी ने यह नही लिखा था कि वे मेरे साथ ही ठहरेंगे। मैं घूम-घामकर दस बजे रात को घर लौटा, तो देखा कि वे मेरी चौकी पर सिद्धासन जमाये हुए कुछ लिख रहे है, जैसे वे अपनी चौकी पर बैठे कभी-कभार लिखा करते है। मैने हठात् पूछा—"भई, कब आये, बडी असुविधा हुई होगी।" वे छूटते ही सिर गडाये (ही) बोले, "भले लडके, रात दस पर है, तुम्हे अभी ही आ जाना था ? यार, अभी मेरा भाषण अधलिखा पडा है, सो, आते ही चाय पी है और लिखना शुरु कर दिया है, सारी रात ट्रेन मे लिखता रहा हूँ, बस यह पूरा हो ल, फिर बातें करेंगे।" मै कपडे वपडे बदलने मे लगा। नौकर से भोजन का हिसाब किताब पूछा। कुछ विशेष की व्यवस्था करने की ओर प्रवृत्त हुआ तो 'सुमन' बोल उठे, "यार, तू भाषण नही लिखने देगा। सब गडबड सडबड करेगा। घर मेरा, व्यवस्था करेगा तू, चुप बैठ और जागता रह।" सो, मैं चुप रहा, 'सुमन' भाषण लिखते रहे। कोई एक बजे रात को ठडा भोजन मिला उन्हे। वे खा रहे थे, भाषण पढकर सुना रहे थे। "भई, बडे जीवट वाले हो, लगता है गुरुकुल के स्नातक हो,' मैंने कहा। "ता

तुम लोगों की तरह यूनिवर्सिटी में नहीं आया हूँ, यह सच है, गुरुकुल में ही रहा हूँ।" उन्होंने कहा, "अब तू 'मैटर' दे, बिहार के आर्यसमाजी साहित्यकारों के बारे में, तो भाषण आगे बढ़े।" मैं कोई तीस-बत्तीस मिनट तक उन्हें कुछ सही-गलत जानकारी देता रहा था, वे सुनते रहे थे। खा-पीकर उन्होंने फिर लिखाई शुरू की थी, मैं सो गया था। वह भाषण सुबह सात बजे तक भी पूरा लिखा नहीं जा सका था और सुमन 'या निशा सर्व-भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' का प्रमाण बनते रहे थे। दिन के बारह बजे तक शायद, वह लिखाई पूरी की थी उन्होंने और तब उसकी छपाई के लिए हम दोनों ज्ञानपीठ के श्री मदनमोहन पांडेय के पास गये थे। श्री पांडेयजी हमारे अभिभावक हैं और 'हेल्पर ऑफ दी लास्ट रैसार्ट' भी। पहले तो हमारी खूब गत बनाई उन्होंने और तब 'प्रेस' को भाषण छापने को दिया। हम वहीं बैठे उनका स्नेह प्राप्त करते रहे और बीच-बीच में 'प्रूफ' भी पढ़ते रहे। सन्ध्या तक 'प्रिण्ट-आर्डर' देकर हम लौटे और तब बातें शुरू हुईं, घर, बगीचे और परिवेश की बातें।

'सुमन' का वह भाषण ऐतिहासिक है, परिमाण और गुण—दोनों ही निकषों पर सुपुष्ट। यही 'सुमन' की विवेकशीलता विघ्नों के बीच में भी उद्देश्योपलब्धि, कठिन कर्मठता एवं सतत जागरूकता का एक प्रमाण भी है। यह भाषण जब पढ़ा गया था, लोग उनकी गवेषणात्मकता और अनुसंधित्सु-प्रवृत्ति पर चकित थे। वह एक पूरा-का-पूरा शोध-निबन्ध था, तात्त्विक शोध-निबन्ध।

श्री 'सुमन' ने इस कवि-सम्मेलन की सफल अध्यक्षता की थी और उन्होंने अपनी कविताएँ भी सुनाई थीं। मैंने समझा था—'सुमन नेता हैं, नहीं हैं, तो हो सकते हैं' और कवि-सम्मेलन से घर तक की वापसी तो खूब थी। सारा गांधी मैदान हम बीसेक व्यक्तियों के अतिप्लुत ठहाकों से ठसाठस भर गया था और 'सुमन' किशोरोचित प्रगल्भता से स्व० राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन, छविनाथ पांडेय, बेढब बनारसी, बेधड़क बनारसी और कई कृती साहित्यकारों से सबद्ध लतीफे सुनाते ही जा रहे थे। यह माहौल कोई गांधी मैदान से नागेश्वर कालोनी (महज आधा मील से कम की दूरी) तक दो घंटे में हमें घर किसी तरह पहुँचा सका था। मैंने जाना था—'सुमन' पर वार्द्धक्य का दुष्प्रभाव कभी नहीं पड़ेगा।

'सुमन' एक बार और पटना आये थे। हाँ, इस कवि-सम्मेलन के अवसर पर आगमन के समय वे कई दिन पटना में मेरे साथ ठहरे थे और उनके कारण कई साहित्यिकों (स्वनामधन्य, सुख्यात और अख्यात) के दर्शनों का सौभाग्य मुझे मिला था। मुझे आभास मिला था—'सुमन' एक अच्छे संयोजक एवं संगठक हैं।

'सुमन' दूसरी बार पटना आये थे, एक पुस्तक-प्रदर्शनी में—साहित्य अकादेमी के प्रतिनिधि के रूप में और दूसरी जगह ठहरे थे। मेरे पास सूचना आई थी कि 'सुमन' आये हैं, वहीं दूसरी जगह ठहरे हैं, तलाश रहे हैं। मैंने जाने से इन्कार कर दिया था। बड़ा

गुस्सा था, भाई 'सुमन' पटना आएँ और दूसरी जगह ठहरें, तो मैं क्यों मिलूँ ? लाट साहब हों तो घर के हों या फिर और कहीं के, मेरे लिए नहीं। मैं दिन-भर कोप में रहा, शाम को दफ्तर से घर पहुँचा ही था कि देखा बरामदे में लाट साहब करबद्ध खड़े हैं, बोलती बन्द है। मैं चुप भीतर चला गया तो आवाज आई, "भले आदमी, कोई तुझे ही जबरदस्ती स्टेशन में पकड़कर ले जाये, आने ही न दे, तो क्या तू कुश्ती लड़ेगा उससे, यार थूक गुस्सा, भला बन, अब ऐसी गलती नहीं होगी। ले, मैं कान ऐंठता हूँ, अब की बार उबार!" मैं पसीजा, बाहर आया और एक-दूसरे को भींचे हम पाचेक मिनट खड़े रहे। 'सुमन' निश्छल, प्रसन्न, विनयी, भद्र और सत्पात्र हैं, मैंने डायरी में लिखा था उस रात।

इस यात्रा में 'सुमन' ने कई निर्विवाद ऐतिहासिक संकलनों की पाण्डुलिपियाँ दिखाई थीं, 'नारी तेरे रूप अनेक' जिसमें बड़ा ही साहसिक था। पता नहीं, यह संकलन आया या नहीं।[1] यह बड़ा ही मूल्यवान और कई दृष्टियों से प्रतिनिधि ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय मूल्य का संकलन है। इस बार लगा था, 'सुमन' एक विशिष्ट साहित्यिक परिकल्पक हैं, ऐतिहासिक परियोजनाएँ बनाते हैं, उन्हें कार्यान्वित करते हैं, हिन्दी का भंडार भरते हैं।

इधर 'सुमन' पत्रों में ही मिले हैं। उनके प्रति मैंने कुछ अपराध किये हैं। उनकी माँ का लोकान्तरण हुआ, मैं नहीं गया, उन्होंने कुछ और काम सौंपे, मैंने एक नहीं किया। वे हफ्ते में दो चिट्ठियाँ बिना नागा लिखते रहे, मैंने उत्तर नहीं दिया और यह सब मैं भविष्य में भी करता ही रहूँगा। परन्तु, 'सुमन' बड़े भाई हैं, बुरा नहीं मानेंगे, मैं सुखी हूँ, वह खुद दुखी हो लेंगे, मुझे दुखी नहीं करेंगे, क्योंकि वे और कुछ अन्यथा किसी व्यक्ति, समूह, संस्था, समुदाय, भीड़ या गुट्ट के प्रति कर ही नहीं सकते, यह स्वभाव है उनका।

श्री 'सुमन' ने कई व्यक्तियों और संस्थाओं का हित साध दिया है, उन्हें मदद पहुँचाई है, संकट से उबार लिया है और वह भी अपने को बदनामी की सीमा तक पहुँचाकर। मैं जानता हूँ, मेरे पास प्रमाण हैं, अनेक दृष्टान्त हैं। लोगों ने श्री 'सुमन' के विरोध में भी झूठ और गलत प्रचार किये हैं, परन्तु 'सुमन' ने उन्हें माफ कर दिया है। वे आदमी अच्छे हैं।

श्री 'सुमन' से मेरी एक शिकायत भी है कि उन्होंने मेरा अब तक कोई काम नहीं किया है, यद्यपि सब किसी का काम वे कर ही देते हैं। उनका कहना है—"तू दिल्ली आए तो तेरा काम हो, नहीं आता है, तो फिर भला-चंगा पटना में ही रह, पान खा, रिक्शे पर राजेन्द्रप्रसाद सिंह के साथ घूम, और विश्राम कर!"

श्री 'सुमन' कहीं पर बड़ी गहरी पीड़ा से गुजरते होते हैं तब, जब वे अपने राग, अनुराग-स्वराग की बातें करते हैं। एक ऐसे ही दिन मैंने उन्हें आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की कुछ पंक्तियाँ सुनाईं थीं, तो वे बहुत देर तक मार्मिक मुद्रा में अस्त रहे थे।

१. यह संकलन इन दिनों मुद्रणाधीन है।

पक्तियाँ यों थी—

> पीर बतलाऊँ तुम्हे किस भाँति अपनी,
> ये फफोले फूटने वाले नहीं हैं।
> लाख बिलखाऊँ, खिझाऊँ, मैं दुराऊँ,
> प्राण मेरे छूटने वाले नहीं हैं !

श्री 'सुमन' ने पुन उदित होकर पूछा था, "फिर जीने की नीति और शर्त ?" मैंने पुन शास्त्रीजी की ही पक्तियाँ दुहराई थी—

> जीवन का व्रत एक चाहिए, एक चाहिए नेम।
> एक सखी हो क्षमा, और बस एक सखा हो प्रेम ॥

इसी तरह श्री 'सुमन' के बारे मे अच्छे, भले, कितने ही सस्मरण, वृत्त और कथाएँ हैं, आपको सब एक ही बार बता दूँ, इतना अल्पपण मैं नहीं हूँ।

सच, यह व्यक्ति क्षेम, चन्द्र और सुमन तीनो ही है। इस कथन का मर्म मैं समझता हूँ, 'सुमन' समझते होंगे शायद, और हिन्दी का साहित्येतिहास समझता होगा।

अन्त मे मैं आपसे एक बात पक्की तौर पर कहना चाहता हूँ कि श्री 'सुमन' एक सफल व्यावसायिक साहित्यिक भी हैं साहित्य की राजनीति के दाँव-पेंच भी बडी कुशलता से सँभालते है, अनिष्ट से भी बचते-बचाते रहते हैं, अखबारो मे, पत्र-पत्रिकाओ मे और विशिष्ट सकलना मे सदैव दिखाई भी पडते रहते हैं, हिन्दी-जगत् के सूर्यम्पश्य और असूर्यम्पश्य—दोनो ही क्षेत्रो मे विश्रुत भी हैं।

खुदा-हाफिज
शुभास्ते सन्तु पन्थान ।

श्रम एवं नियोजन विभाग,
नया सचिवालय, पटना

सौमनस्य के प्रतीक

श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह

"मैं यह मानता हूँ कि सुमनजी सौमनस्य के प्रतीक है।"

"जानते हैं, राजेन्द्रभाई ? श्री क्षेमचन्द्रजी 'सुमन' अब इक्यावन के हो रहे हैं,...विश्वास करेंगे आप ?"

"क्या बकते हो ? तुम भी कभी-कभी 'भेंटी ठीकने'[1] लगते हो बज्जिका में, आदमी की उम्र का पता चेहरे से चलता है—अभी-अभी तो पिछले साल आये थे मुजफ्फरपुर, मिले तो थे तुम—वे पचास साल के लगते थे ? तकरीबन चालीस का कह सकते है उन्हे।"

"आपको विश्वास ही नही होता तो क्या कहूँ ? १६१६ ई० मे जन्म हुआ था उनका, यह १६६६ चल रहा है, भाईजी ! तब से उनकी भी साहित्य गंगा मे पचास बार 'दाहर'[2] आया और गया है।"

"आश्चर्य है, दीनेन्दु ! वैसा कान्तिमान चेहरा, उतनी एनर्जी, इतना काम करते हैं, कितनी दौड-धूप मे रहते है कि दिल्ली का शायद ही कोई लेखक इतना व्यस्त रहता हो, फिर इस उम्र में स्वास्थ्य ऐसा कैसे रहता है उनका ?'

"मैं समझता हूँ, भाईजी ! बहुत सयमी और 'ऐक्टिविटी' मे रस लेनेवाले हैं सुमनजी, ऐसे आदमी की मानसिक और शारीरिक आदत बहुत अनुशासन मे रहती हैं, न दिनचर्या मे किसी अनुपात की गडबडी होती है, और न खेद या विषाद होता है, यानी कभी 'फैटीग' नही होता, जो उम्र का बोध करा देता है।"

"दीनेन्दु ! यही बात कुछ साल पहले बेनीपुरीजी मे थी, लोग कहते थे कि वे कभी बूढे नही होंगे और इसके सबूत भी थे उनके वे ठहाके, जो औरो को भी लोट-पोट कर देते थे, और उनकी लेखनी के वे चमत्कार, जिनमे जवानी कुलाँचें भरती रहती थी। वही बात, वही मस्ती, कुछ भिन्न प्रकार की प्रसन्न गम्भीरता, और सबके लिए सुलभ अपनापा—यही विशेषताएँ हैं सुमनजी के स्नेही स्वभाव की। मैं तो कहता हूँ—यह उदारता और अभिजात शुभाकांक्षा की विरासत जिस पीढी तक खत्म हो चली है, उस पीढी के अन्तिम प्रतिनिधि हैं— सुमनजी !"

"ठीक ही कहते है आप, अभी पिछले साल जब बेनीपुरीजी की पैंसठवी वर्षगाँठ के समारोह से प्राय हफ्ता-भर पहले वे यहाँ आये थे—एक दिन ही रुक सके यहाँ—उस एक दिन मे ही लगा कि वे सभी नये-पुराने लेखको के चिरकाल से पारिवारिक सम्बन्धी रहे है और सभी से व्यक्तिगत बातचीत में कितने व्यावहारिक पहलुओ पर पूछताछ करते और राय देते थे, अपने निरन्तर सहयोग का विश्वास दिलाते थे ! यह खुलापन, यह सौहार्द, नये लेखको के लिए इतनी सुचिन्ता और सभी सम्भव साहाय्य की चेष्टा—यही गुण तो अग्रज लेखको मे नही के बराबर रह गये है।"

"जानते हो, मेरा उनसे जो परिचय हुआ था, वह भी स्मरणीय है। पहली भेंट मे ही वे मेरे अभिभावक हो गए। उन दिनो राजकमल प्रकाशन से त्रैमासिक 'आलोचना' जो प्रकाशित होती थी, उसके सम्पादको मे भाई धर्मवीर भारती और उनके कुछ मित्र

१. अन्दाज से गुजरे हुए बयस की घटना बताना । २. बाढ

थे, किन्तु कार्य भार सुमनजी के ही सधे कन्धों पर था। स्व० डॉ० रांगेय राघव की एक पुस्तक 'प्रगतिशील साहित्य के मानदंड' भारतीजी ने मुझे समीक्षार्थ भेजी थी। मुझे मार्क्सवाद की संस्कृति सम्बन्धी स्थापनाएँ, रचनात्मक कला-सम्बन्धी मान्यताएँ कभी सहमति के योग्य नहीं जान पड़ी। मैंने डॉ० राघव की पुस्तक पर अमार्क्सवादी समीक्षा लिख भेजी। स्वीकृति की सूचना सुमनजी के जिस पत्र में मिली, उसमें उन्होंने मुझे बहुत प्रोत्साहित किया और हवाला दिया कि मेरी कुछ कविताएँ, कहानियाँ वगैरा पढ़ने का उन्हें सयोग मिला है किन्तु आलोचना-क्षेत्र में भी उन्हें मुझसे बड़ी आशाएँ हैं। 'आलोचना' के १२वें अंक में समीक्षा छपी और मैं तभी कुछ कार्यवश दिल्ली गया। यह बात शायद जुलाई १९५४ की है। कुछ वर्ष बाद तो स्व० राघव ने मेरी समीक्षा के उत्तर में एक पुस्तक ही लिख दी— 'काव्य, यथार्थ और प्रगति'।"

"अच्छा ! तो १९५४ में ही आपकी मुलाकात उनसे हुई थी, तब भी ऐसे ही दीखते थे ?"

"अरे, बिलकुल ऐसे ही ! जरा और दुबले थे, बस ! ऐसा हुआ कि पत्र तो मैंने लिख ही दिया था कि दर्शन करूँगा। उन दिनों श्री राजेन्द्र शर्मा भी 'मधुकर' नाम का एक मासिक-पत्र सम्पादित करते थे, प्रकाशक भी थे उसके—उनसे भी पत्र-व्यवहार था, वे शक्ति-नगर में रहते थे और मैं भी अपने एक मित्र के घर वहीं रुका था। पहले शर्माजी के घर ही पहुँच गया। वहीं से शर्माजी ने कहीं टेलीफोन करके पता लगाया कि सुमनजी राजकमल प्रकाशन के दफ्तर में हैं और कुछ देर रुकेंगे। शर्माजी और मैं—दोनों ही शक्तिनगर से फैज़ बाज़ार के लिए चल पड़े। दफ्तर में ही सुमनजी के प्रथम दर्शन की अभिलाषा पूरी हुई। मुझे गले से लगाते हुए सुमनजी ने कहा—'भूमिका की प्रति जब ५१ में मिली थी, आपका चित्र देखा था जो परिकल्पना थी, आज साकार हो गई।' मैंने कहा—'आपका स्नेह मेरे लिए सौभाग्य की बात है।' सुमनजी हँसते हुए बोल पड़े—'सौभाग्य तो पारस्परिक होता है।' सैंडविचेज़ और कॉफी के दौर में राजकमल प्रकाशन के सर्वेसर्वा (तत्कालीन) श्री ओमप्रकाशजी, श्री देवराजजी और शर्माजी के साथ मैं भी श्रोता ही बना रहा, जब तक सुमनजी कहते रहे कि पहली बार दिल्ली देखने वाले भारतीय पर कैसे-कैसे प्रभाव पड़ते हैं, खासकर जब वह बुद्धिजीवी हो, रचनाकार या कलाकार हो। उन्होंने कहा कि भावुक मन पर विचित्र कौतूहल और करुणा छा जाती है, जब वह महसूस करता है कि ऐतिहासिक महापुरुषों का जीवित स्पर्श बार-बार मिल जाता है, तबीयत घनी हो जाती है यह सोचकर कि अवशेषों के उस भाग पर आज पाँव पड़ रहे हैं, जिस पर हमारे संस्कारों में बसी हस्तियों के पाँव पड़े थे। सुमनजी स्पष्ट कह रहे थे कि आधुनिक जगत् में सभी बड़े शहरों के संगठन समान हो गए हैं। सड़कें, मकान, दूकानें, सिनेमाघर, थाने, अदालत, अस्पताल, कॉलिज, धर्म-स्थान, सवारियाँ, अखबार, पुस्तकें, पार्क आदि-आदि—सभी बड़े शहरों के रचना-द्रव्य एक-जैसे हो गए हैं। ऐसी एकरसता में उन्हें दिल्ली और

बम्बई बहुत पसन्द है। क्योंकि दिल्ली में खंडहरों और ऐतिहासिक अवशेषों का विशिष्ट आकर्षण है और समुद्र से सुदूर बसने वालों के लिए बम्बई तो स्वप्नपुरी ही है। किन्तु उनके अनुसार उनका स्वभाव है कि जिस वस्तु के प्रति अधिक आकर्षण हो उसे कम ही देखा परखा जाए—तभी आकर्षण कायम रहता है। वे दिल्ली में भी खंडहरों और अवशेषों को अधिक नहीं देखते।"

"कमाल है—हाँ, अभिभावक बन जाने की क्या बात कही आपने प्रथम दर्शन में ?"

"अरे, क्या बताऊँ ? वे मेरे पारिवारिक सदस्यों के बारे में पूछने लगे—जब राजकमल प्रकाशन से निकलकर मैं उनके साथ स्कूटर रिक्शा पर कनाट प्लेस की तरफ जाने लगा। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई यह जानकर कि मैं अपने परिवार में अकेला ही पुरुष हूँ। बहुत देर तक समझाते रहे कि परिवार के अकेले गार्जियन की जवाबदेही क्या होती है और उसके अधिकार क्या होते हैं। उन्होंने बताया कि हर परिवार वे ऐसे पुरुष से अपेक्षा की जाती है कि वह व्यक्तिगत रुचियों और लालसाओं को सीमित करे और यदि लेखक कलाकार हो, तो अपने यश की समस्या को गौण समझकर पारिवारिक सन्तोष और समृद्धि की समस्याओं को मुख्य स्थान दे—अपनी दिनचर्या में। उन्होंने दुःख प्रकट किया कि अपने देश में मात्र लेखक किसी मध्यवर्गीय परिवार की जीविका के लिए अब तक पर्याप्त साधन नहीं हो सका है, इसीलिए जीविका और रचना की असम्बद्ध दिशाओं में लेखक का व्यक्तित्व दो टुकड़ों में बँट जाता है और दिनचर्या के साथ महत्त्वाकांक्षा का ताल-मेल बैठाना असम्भव हो जाता है। सुमनजी कह रहे थे कि मुझे यदि नौकरी नहीं करनी है, तो सौभाग्य की बात है फिर भी अपने परिवार की नौकरी अन्यत्र नौकरी से ज्यादा सूझ-बूझ का काम है। ये बातें अभिभावक-रुचि को प्रकट करती हैं जिनसे जीवन में एकाकी रहने वाले को बेहद तोष मिलता है।'

'उस दिन आप कितनी देर तक उनके साथ रहे ?'

'करीब तीन घंटे। हम लोग 'साहित्य अकादेमी' के कार्यालय में पहुँचे। वहाँ श्री प्रभाकर माचवे और श्री युगजीत नवलपुरी से मुलाकात हुई और विहार के साहित्यकारों के बारे में देर तक बात हुई। माचवेजी से मेरा परिचय १९५० से ही था और नवलपुरीजी तो मेरे आस-पास के क्षेत्र से ही बढ़कर वहाँ पहुँचे हैं। सुमनजी ने बातचीत के सिलसिले में सर्वश्री शिवपूजन सहाय, बेनीपुरी, नलिनविलोचन शर्मा और राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह से अपने सम्बन्धों की चर्चा की और कहा कि बिहार के लेखकों में कई सद्‌गुण हैं—एक तो यह है कि वे आत्म प्रचार में विश्वास नहीं रखते, दूसरा यह कि उनमें तटस्थ भाव से मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति है और तीसरा यह कि सभी लेखक आत्म निर्भर रहने की चेष्टा करते हैं, किसी के कन्धे पर सवार नहीं होना चाहते। सभी लोग इस बात पर हँसने लगे। मैंने सुमनजी से कहा कि ये सद्‌गुण आज के वातावरण में बहुत घाटा देते हैं, यानी तात्कालिक महत्त्व पाने में बाधा पैदा करते हैं, जब कि चर्चा और प्रचार के शॉट-

कट का इस्तेमाल करके न जाने कितने लेखक गुटबन्दियों के कारण आनन-फानन में मशहूर हो जाते हैं। यह तथ्य अलग है कि कुछ लेखक अपने सद्गुणों में ऐसे बंधे हैं कि वे अन्यथा कुछ करने में समर्थ नहीं होते। सुमनजी ने ज़ोर देते हुए जवाब दिया कि तात्कालिक महत्त्व के प्रलोभन में पड़कर भी लेखक को जब वास्तविक श्रेय पाने के लिए ओछेपन से छूटना पड़ता है तब सभी तात्कालिक तिकड़म व्यर्थ सिद्ध होते हैं और अधिक उदारता, स्वाभाविकता एवं अपने प्रति तटस्थता की ज़रूरत पड़ती है।"

'बिलकुल पते की बात कही थी उन्होंने। हाँ, यह तो बताइए कि आपके परिवार से कभी उनकी मुलाकात हुई है? वे जब यहाँ आए थे, तब तो आपका परिवार शहर में नहीं था।'

"हुई है मुलाकात, थोड़ी देर के लिए। जब मैं '६१ में दिल्ली गया था, परिवार मेरे साथ था। फिर राजकमल प्रकाशन में ही उनका दर्शन हुआ। '५८ में मेरा एक उपन्यास प्रकाशित हुआ था राजकमल प्रकाशन से—'अमावस और जुगनू', कुछ उसके सम्बन्ध में हिसाब-किताब के लिए—अन्य कार्यों से भी मैं वहाँ गया था। मुलाकात हुई, मैंने अपनी पत्नी से परिचय कराया, बच्चे से पाँव-लगी करवाई। बड़े प्रसन्न हुए। राजकमल प्रकाशन से हिसाब साफ करवाने में भी उन्होंने अपनी सिफारिश कर दी। उन दिनों वे हिन्द पॉकेट बुक्स के लिए हिन्दी कविता के सौ सर्वश्रेष्ठ प्रेम-गीतों का सम्पादन कर रहे थे। अपने पत्र में उन्होंने मुझे सूचना दी थी कि वे मेरा एक प्रिय गीत रखना चाहते हैं—*शिशिर की रात भर जागे तुम्हारी याद में सपने*, जो 'भूमिका' में ही सन् '५० में प्रकाशित हुआ था। मैंने सुझाव देने की धृष्टता की थी कि पुरानी शैली के गीत अब नहीं जँचते, मेरी एक नवगीत रचना यदि पसन्द आए तो रख लें, जो 'मादिनी' में सन् '५५ में छपी थी—'मधुमुखी'। सुमनजी ने स्वीकार कर लिया और लिखा कि उस गीत को वे 'धर्मयुग' में पहले ही पढ़ चुके हैं, जब सचित्र छपा था और उन्होंने तब पसन्द भी किया था। राजकमल प्रकाशन के कार्यालय में उस संकलन के सम्बन्ध में और मेरे गीत के सम्बन्ध में भी वे अपने विचार प्रकट करते रहे। संकलन की योजना की कहानी भी उन्होंने दुहराई, जो परिपत्र में भेजी गई थी और वे अपना विश्वास प्रकट कर रहे थे कि हिन्दी में ऐसे वैषयिक संकलनों की परम्परा ज़रूर आगे बढ़ेगी। उन्होंने दूसरे दिन मुझे साहित्य अकादेमी के कार्यालय में बुलाया था। *मैं गया और एक विशेष समस्या लेकर गया।* मैं पारिवारिक रूप से प्रधान मंत्री का दर्शन करना चाहता था। समस्या कठिन थी, क्योंकि मुझे उनका कुछ समय मिलना चाहिए था कि मैं अपनी पुस्तकें उन्हें भेंट कर सकूँ और कुछ साहित्य-सम्बन्धी बातें भी करूँ। प्रधानमंत्री का प्रातःकालीन समय उन दिनों पाकिस्तान से पधारे सांस्कृतिक शिष्ट मण्डल के सदस्य ले लेते थे और यह सिलसिला कई दिनों तक रुकने वाला नहीं था, किन्तु मुझे दिल्ली से जल्दी ही लौटना था। सुमनजी ने कठिनाई समझकर भी कई बार अधिकारियों को टेलीफोन किया और तीसरी सुबह का समय मेरे लिए निश्चित

करवा दिया। मैं जब प्रधानमंत्री से मिलकर लौटा और सुमनजी से मिला तो इटरव्यू की तस्वीर भी उन्हे दिखलाई। उन्होंने कहा—'किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व से साक्षात्कार होने के बाद जरूर ऐसा लगता है कि वैयक्तिक कुण्ठाएँ बहुत कमजोर पड गईं।' उनके मार्मिक निष्कर्ष पर मैं देर तक सोचता रहा।"

"एक बात बतलाएँ—पिछले साल जब सुमनजी मुजफ्फरपुर आए थे, सुना है कि उन लेखकों से वे खुद मिलने गए थे, जो किसी कारणवश उनके स्वागत-समारोह मे आ नही सके थे—क्या यह सच है ?"

"बिल्कुल, उन्होने खुद मुझसे कहा कि मिलने चलेंगे। सच तो यह था कि हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनी मे भाग लेने के लिए वे पटना आने वाले थे, तभी उनका पत्र मुझे मिला था कि पटना पहुँचकर मिलूँ और मैं गया भी था। श्री बेनीपुरीजी के जन्म दिवस-समारोह की आयोजन-चर्चा मैंने उनसे की। उन्हे बड़ा दु ख था कि समारोह तिथि पर वे उपस्थित नही रह सकते थे, क्योंकि उस तिथि को दिल्ली म बहुत जरूरी सरकारी कार्य था। इसी-लिए उन्होंने कार्यक्रम बनाया कि लौटने के पहले ही वे मुजफ्फरपुर पहुँचकर बेनीपुरीजी से मिल लें। उनके आगमन से चौबीस घटे पूर्व तो मैं यह खबर लेकर मुजफ्फरपुर पहुँचा, स्वागत-सभा आयोजित की—सयोगवश कुछ लेखको को सूचना नही मिल सकी। श्री रामचन्द्र भारद्वाज के साथ वे मेरे घर पधारे और मुझे उनके आतिथ्य का सौभाग्य मिला। बेनीपुरीजी के निवास पर हम लोग साथ ही गए। यद्यपि बेनीपुरीजी पूरे स्वस्थ नही थे फिर भी सुमनजी के साथ जब तक वे रहे, अस्वस्थ होने का कोई लक्षण उनमे नही दीख रहा था। दोनो लब्धप्रतिष्ठ लेखको की बातें होने लगी, एक-दूसरे के साक्ष्य हम लोग सुन रहे थे। सुमनजी ने बेनीपुरीजी के सम्पादक जीवन की चर्चा की और खासकर उनकी डायरी के पृष्ठों की, जो 'नई धारा' मे छपे थे।"

"स्वागत-सभा मे तो वे बेनीपुरीजी से अपने चिर-व्यापी सम्बन्धों के ही ससमरण सुनाते रहे और श्री पद्मसिंह शर्मा के प्रसग साम्य की चर्चा करते रहे। उन्होने बिहार-विश्वविद्यालय के प्राध्यापको से अनुरोध किया कि वे बेनीपुरीजी के साहित्य पर सम्मानो-पाधि देने की और शोध करवाने की व्यवस्था करे। स्वागत सभा की काव्य गोष्ठी भी उनकी वाणी से गौरवान्वित हुई। अनन्तर वे कई लेखको के घर पर मिलने गए, जिनमे श्री रामजीवन शर्मा 'जीवन' के घर पर मैं उनके साथ गया था। वहाँ सुश्री कुमुदिनी और सुश्री विनोदिनी ने अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा मागी, जिनकी रचनाएँ 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियो के प्रेमगीत' मे सुमनजी ने प्रकाशित की थी और जो श्री जीवनजी की आत्मजाएँ है।"

"भैया ! मुजफ्फरपुर छोड़ने के पूर्व उन्होंने आपको कुछ सन्देश दिया था क्या ?"

"अरे, सन्देश क्या ? वे स्वय मेरे लिए आदर्श सन्देश है। एक महत्त्वपूर्ण बात

जाने के कुछ पूर्व कही थी उन्होंने। बात चल रही थी उनकी रचनाओं की। तेतालीस में उनकी कविताओं की पहली कृति छपी थी—'मल्लिका', दूसरी पैंतालीस में छपी 'वंदी के गान' और तीसरी काव्य-कृति थी 'कारा', जो खण्ड-काव्य के रूप में छियालीस में प्रकाशित हुई, फिर कोई काव्य-कृति देखने में नहीं आई, यद्यपि वे काव्य-लेखन से विमुख नहीं हैं। मैंने पूछा कि इसका कारण क्या है कि वे ऐतिहासिक, राजनीतिक, जीवनी-कृति, आलोचनात्मक, संस्मरण-कृति, निबन्ध-कृति और सम्पादित साहित्य सतत प्रकाशित करवाते रहे, किन्तु काव्य रचना की कोई पुस्तक नहीं ? उत्तर में उन्होंने एक ही बात कही—'अब मुझे आप लोगों की और अन्य कवियों की कविताएँ प्रस्तुत करने में अधिक उत्साह और रस मिलता है।' मैंने इस बात का सही अर्थ समझा और कहा—'कवियों का कुछ नहीं बिगड़ता सुमनजी ! वे मनमानी करते हैं और कहते हैं—आज तो सबसे ज्यादा मनमानी है, मगर कविता का बहुत कुछ बिगड़ जाता है किसी के पक्ष या विपक्ष में आलोचकों का आग्रह बढ़ने से। मेरी तरह के लोग क्या करें जो स्वभावतः लिखने को विवश हैं, फिर भी गीतकार उन्हें प्रयोगशील नई कविता का कवि कह देते हैं और नये कवि उन्हें गीतकार, कहानीकार उन्हें उपन्यासकार मानते हैं और उपन्यास-लेखक कहते हैं कहानीकार, प्रगतिशील आलोचक उन्हें परम्पराग्रस्त सिद्ध करते हैं और परम्परावादी अपारम्परिक—और सारा गोरखधंधा मात्र इस कारण होता है कि वे गुटबन्दी में रहकर 'कमिटेड' नहीं हो सकते। केवल अपनी रचना-प्रक्रिया के प्रति ईमानदार हैं। क्या करेंगे वे ?"

सुमनजी ने मेरी पीठ थपथपाई और विराट आस्था का सन्देश देते हुए भवभूति के शब्दों में कहा

> ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
> जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्न.।
> उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समान धर्मा,
> कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

"अस्तु। मैं भी उन्हें सौमनस्य का प्रतीक मानता हूँ।"

मधुरिमा, हरि सभा,
मुजफ्फरपुर, (बिहार)

श्रमजीवी साहित्यकारों के भामाशाह

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

वैसे तो सुमनजी से मेरा परिचय उनके नाम से बहुत पुराना था, परन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं उन्हें पिछले दस वर्ष से जानता हूँ। साहित्य अकादेमी के दफ्तर की बात है। मुझे अपने उपन्यास 'खम्मा अन्नदाता' के लिए कोई प्रकाशक ढूँढना था, एक श्रेष्ठ प्रकाशक। भाई यज्ञदत्त शर्मा ने सुझाव दिया, 'आप सुमनजी के पास चले जाइए, वे आपका काम अवश्य ही करा देंगे।'

मैं सीधा सुमनजी के पास चला गया। जैसे ही मैंने अपना नाम बताया, वे खुशी से उछलकर बोले, "आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपके दोनों उपन्यास 'सन्यासी और सुन्दरी' व 'दीया जला ! दीया बुझा !!' मेरे पास हैं। मैंने उन्हें पढ़ा है। बहुत ही अच्छे उपन्यास हैं। आप निश्चित रूप से एक दिन गौरव प्राप्त करेंगे।" उनकी इस बात से मुझे बहुत संकोच हुआ और मैं सोचने लगा कि सुमनजी के समक्ष मुझे यह प्रस्ताव रखना चाहिए या नहीं कि आप मेरे नये उपन्यास के प्रकाशन की किसी अच्छे प्रकाशक से सिफारिश कर। जैसे ही हम लोग चाय पान से निवृत्त हुए वैसे ही सुमनजी ने मेरे संकोच को समझकर यह पूछा "कोई विशेष काम है ?" मैंने तनिक सहमते हुए कहा, "बात यह है कि ..." मैं फिर चुप हो गया। वे सम्पूर्ण आत्मीयता से बोले, "कहिए, कहिए, संकोच न कीजिए।"

मैंने सारी स्थिति उन्हें समझाई। वे प्रफुल्लित होकर बोले, "आप जरा ठहरिए, मैं अभी आपकी बात कराये देता हूँ।" सुमनजी थोड़ी देर के लिए अदृश्य रहे। बाद में आये और बोले, "हालांकि आज यहाँ बहुत ही आवश्यक काम है, लेकिन ये काम तो जीवन-भर लगे ही रहेंगे। पहले आपका ही काम करूँगा।" सुमनजी शायद उस समय किसी प्रकाशक को फोन पर साधने के लिए ही अदृश्य हुए थे।

सुमनजी तुरन्त अपना बैग लेकर आफिस से मेरे साथ चल पड़े। उनका जाना था कि मेरा काम हो गया। उन्होंने नेशनल पब्लिशिंग हाउस से मेरे उस उपन्यास के प्रकाशन की व्यवस्था ही नहीं कराई, बल्कि मुझे अढ़ाई सौ रुपये पेशगी भी दिलवाए।

अग्रिम धन लेकर मैं तो चला आया, परन्तु सुमनजी ने प्रकाशक से अनुरोध करके जहाँ उसके प्रकाशन में जल्दी कराई वहाँ उसके सम्बन्ध में आकाशवाणी, नई दिल्ली से समीक्षा करते हुए अपने स्पष्ट किन्तु प्रोत्साहनपूर्ण शब्दों से भी मुझे कृतार्थ किया। 'खम्मा अन्नदाता' को उन्होंने महापंडित राहुल सांकृत्यायन के 'राजस्थानी रनिवास' और आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'गोली' नामक उपन्यासों की शृंखला में एक अभिनव अभिवृद्धि कहा। उनकी ये पंक्तियाँ मेरे भावी जीवन में प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हुईं ... 'खम्मा अन्नदाता' के

चरित्र-चित्रण और कथा- वाह मे जो स्वाभाविकता मुझे देखने को मिली, वह इधर हिन्दी के नये उठते हुए बहुत कम उपन्यासकारों की कृतियों मे है।...इसमे राजस्थान की शोषित-पीड़ित जनता का जैसा स्वाभाविक चित्रण लेखक ने किया है, कदाचित् वैसा दूसरे उपन्यासों मे कम ही देखने को मिलेगा।"

सुमनजी सचमुच साहित्य-संसार के भामाशाह हैं। साहित्य के मामले मे वे अपने जीवन का सर्वस्व तक दान करने को तत्पर रहते हैं। एक बार जब राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर मेरी उनसे बातचीत हुई तो वे बड़े विश्वास और गर्व से बोले, "मैं अपने जीवन को होम सकता हूँ। हिन्दी को कोई इस महान् पद से नही हटा सकता। उसे जो गौरव मिला है उसे पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित करने का अवसर तो अब आया है। अभी भी खेद है कि हमारे राजनैतिक नेता सकुचित स्वार्थों से दबे हुए हैं।"

मैं उन्हे एक कर्तव्यनिष्ठ विभूति के रूप मे भी जानता हूँ। साहित्य मे भ्रष्टाचार फैलाने वाले लोगो की वे मिथ्या प्रशसा या स्तुति कभी नही कर सकते। एक बार उन्होंने मुझे बताया था कि प्रकाशको मे सम्बन्धित उनके एक तीखे और सच्चे लेख के प्रकाशन से एक बहुत बडे प्रकाशक उनसे इतने रुष्ट हुए कि उन्होंने उनसे एक पुस्तक सकलित कराई थी, जो बाद मे नही छापी। लेकिन उन्हें इसकी कोई परवाह नहीं। हिन्दी के प्रकाशक अपने कर्तव्य से च्युत हैं। बहुत शोषण करते हैं और श्रम व योजना से कुछ भी नही लिखाते और न छापते। कभी-कभी इसका नतीजा यह निकलता है कि वे कूड़ा-करकट ही छाप देते हैं।

प्रेस-लाइन के वे शहशाह कहे जा सकते है। वे रातों-रात एक पुस्तक छपाकर तैयार करा सकते हैं क्योंकि उन्हे इतना ज्ञान है कि फलाँ प्रेस मे फलाँ प्रेस-जैसा टाइप है। और तो और, जब वह पुस्तक प्रकाशित होकर बाज़ार मे आती है तब आपको लगेगा कि एक ही प्रेस मे छपी है। इसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने अपने स्वार्थों को त्यागकर अनेक कम्पोज़ीटर, फोरमैन, मशीनमैन बनाये हैं जो सुमनजी की एक हांक पर रात-दिन एक कर देते हैं। वे सुयोग्य सम्पादक भी हैं। सम्पादक भी केवल पत्रों के नही, पुस्तकों के भी। उनकी कई सकलित पुस्तकों को मैंने देखा है। उनमे उन्होंने सदा ही परम्परागबद्ध सकलना से परे हटकर बहुत-सी नवीन प्रतिभाओं को प्रोत्साहित किया है।"

वे तकाज़ा भी करते हैं, लेकिन अपने उधार का नहीं। वे तकाज़ा करते हैं और पठानी तकाज़ा करते हैं, पर केवल पुस्तकों का ही। कुछ नाराज़ से होकर बोलेंगे, 'आपकी इधर तीन पुस्तकें छपी है, मुझे नही मिली। कल आप आएँ तो उन्हें अपने साथ लेते आएँ वर्ना आप अगली बार बिना चाय पिये और खाना खाये जाएँगे।' किसी को भी अपने घर बुलाकर आतिथ्य करने मे उन्हे बडा आनन्द आता है। उनके पास अत्यन्त विशाल पुस्तकालय है और अपने प्राणपण से वे उस भण्डार की श्रीवृद्धि मे सलग्न हैं। किसी भी नये लेखक की कोई उत्कृष्ट कृति उनकी निगाह मे गुज़र भर जाय, वे उसे अपने प्रोत्साहन

का पत्र अवश्य लिखगे। उनके स्पष्ट और रचनात्मक सुझाव नई प्रतिभाओ के लिए बडे उपादेय होते है। किसी प्रकाशक ने यदि नये लेखक को यह कह दिया कि आप सुमनजी से भूमिका लिखा लायें मैं पुस्तक छाप दूंगा तो सुमनजी अपने समस्त कार्यों को छोडकर उस लेखक की पुस्तक पढने मे लग जाएँगे। भूमिका तो लिखेंगे ही, साथ ही एक चिट्ठी भी लिख देंगे कि पुस्तक सर्वथा पठनीय है। लेखक को प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए।

ऐसे है—करुणा और मिलनसारिता के सगम श्री सुमनजी। भगवान् ऐसे मनीषी और मा भारती के अनन्य उपासक को शतायु करें।

साले की होली
बीकानेर (राजस्थान)

धर्म धुरीण धीर नय नागर

श्री सुभाष विद्यालकार

मुझे नही मालूम कि सुमन जी से मेरा परिचय कब हुआ किन्तु ऐसा याद आता है कि बचपन म ही मैं उनसे परिचित हो गया था। सभवत इस परिचय को तीन दशाब्दिया व्यतीत हो चुकी है किन्तु मुझे ऐसा एक भी प्रसग स्मरण नही आता जिसमे हमारे बीच किसी प्रकार की कटुता पैदा हुई हो। घोर स्वार्थों स भरे आज के इस युग मे मेरे लिए यह अनुभूति बहुत महत्त्वपूर्ण है और शायद यही कारण है कि दिल्ली म रहने के बावजूद व्यस्तताओ म उलझे रहने के कारण सुमनजी स न केवल महीनो अपितु कभी-कभी तो वष भर भेट न होने पर भी उनके स्नेह मे मुझे कभी कोई कमी या कृत्रिमता दिखाई नही देती। उन्हे मैंने सदैव बडे भाई के रूप मे माना है और आज मैं जो कुछ हूँ उसम भी सुमनजी क प्रत्यक्ष और परोक्ष पथ प्रदशन का बडा हाथ है। उनका पथ प्रदशन मुझे ही उपलब्ध हुआ हो, ऐसा मै नही समझता। सुमनजी के जीवन क तीन मुख्य पहलू हैं—साहित्यिक, राजनीतिक, और सामाजिक। इन तीनो ही क्षेत्रो म उनका परिचय क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। उन्होने अनेक मूधन्य राजनीतिज्ञो, साहित्यकारो और पत्रकारो को आगे बढाया है और उनका पथ प्रदशन भी किया है। मुझे भलीभाति स्मरण है कि सुमनजी ने ही मेरी पहली रचना 'शिक्षा सुधा' म प्रकाशित की और इस प्रकार बचपन मे ही उन्होने मेरे मन म पत्रकारिता का अकुर सहज ही रोप दिया था।

उन दिनो मैं गुरुकुल कागडी मे चौथी या पाँचवी श्रेणी म पढता था। लेख कैसे

भाषा भाषियो के लिए भी उपादेय ठहराया। उन्होंने लिखा था

'आज जबकि भारतीय साहित्य में नव जागरण के चिह्न दृष्टिगत हो रहे हैं, तब श्री जोतवाणी जैसे उत्साही नवयुवक का यह प्रयास सर्वथा अभिनन्दनीय ही कहा जाएगा। हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि मे तो इस सग्रह से योग मिलेगा ही, साथ ही पाठकों को एक उपेक्षित किन्तु उदयोन्मुखी भाषा के साहित्यकारों की कला से परिचित होने का स्वर्ण अवसर भी प्राप्त होगा।"

हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि के लिए अन्यान्य भाषाओं के लेखकों व अनुवादकों को प्रोत्साहन देने में सुमनजी सदा तत्पर रहे है। मेरे-जैसे कई अहिन्दी-भाषी भाई होंगे जो सुमनजी के कहने पर हिन्दी में भी लिखते होंगे। उनके सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप तेलुगु, कन्नड, मलयालम, मराठी, गुजराती, कश्मीरी, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं पर हिन्दी म परिचयात्मक पुस्तकें निकली है। इस जन ने भी उनके कहने पर भारतीय साहित्य-परिचयमाला के लिए 'सिन्धी और उसका साहित्य' नामक पुस्तक का मसविदा तैयार किया। इधर कई वर्ष से प्रकाशक की कुछ उदासीनता और व्यवस्था-परिवर्तन के कारण इस पुस्तकमाला का प्रकाशन रुक-सा गया है। मेरी उस अप्रकाशित पुस्तक के विभिन्न अध्याय 'साहित्य-सदेश', 'भाषा', 'राष्ट्र भारती', 'धर्मयुग' तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि पत्रिकाओं में छपते रहे है। परन्तु उस पुस्तकमाला के अन्तर्गत वे कब प्रकाश मे आयेंगे, यह तो सुमनजी ही जाने ! मैं तो उनके आदेश का पालन कर चुका हूँ।

सुमनजी के जीवन की अर्द्धशती के अवसर पर अहिन्दी-भाषियों का ध्यान सहज ही उनके व्यक्तित्व के इस पहलू की ओर जाता है। आशा है, हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बीच आदान प्रदान की भावना बढ़ाने में भविष्य मे वे और भी अधिक सफल होंगे।

सिन्धी विभाग, देशबन्धु कालिज
कालकाजी, नई दिल्ली

निर्भीकता और निष्पक्षता की प्रतिमूर्ति

डॉ० सियारामशरण प्रसाद

नित्य हजारों व्यक्ति जन्म लेते हैं, नष्ट होते हैं। परन्तु, वे अपनी छाप नहीं छोड़ पाते। सबमें वैयक्तिक प्रतिभा की वह प्रकर्षपूर्ण ज्योति नहीं होती जो काल के थपेड़ो को झेलते हुए भी इतिहास के पृष्ठों पर चमकते रहे। इसके विपरीत जो कलाकार

होते है जिनमे वैयक्तिक विशिष्टता का आलोक-पुंज होता है वे ही इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्ण रेखा खीचकर अविस्मरणीय बन जाते है। श्री क्षेमचन्द्र सुमन ऐसे ही प्रौढ प्रतिभा के स्वर्णालोक से प्रदीप्त पुरुष है जिनका मात्र कृतित्व ही श्लाघ्य नही है अपितु व्यक्तित्व भी अत्यन्त उज्ज्वल तथा आकर्षक है।

सुमनजी वास्तव मे निर्भीकता स्पष्टता निष्पक्षता और उदारता की प्रतिमूर्ति है। वे जीवन संघर्ष के मध्य आस्था के पुण्य स्नेह के बल पर निष्कम्प जलनेवाले दीप हैं। एक निर्धन सामान्य परिवार मे जन्म लेकर वे टूटे नही प्रत्युत निर्भीकता से सदैव जगमगाते रहे। राष्ट्रीय आन्दोलन मे जेल की यातनाओ पारिवारिक संकटो और युग के प्रहारो से वे विचलित नही हुए और स्वाभिमान से बढते रहे निर्भीकता मे कर्मनिष्ठ बने रहे। उनकी निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता का साक्षात प्रमाण मुझे उनमे उस दिन मिला जब मैंने पूछ लिया— रामधारी सिंह दिनकर के काव्य के सम्बन्ध मे आपकी क्या धारणा है? सुमनजी ने दिनकरजी के अनेक समर्थको और रामवृक्ष बेनीपुरी के सम्मुख दिनकरजी के कृतित्व पर अपनी तर्कपूर्ण स्पष्ट धारणाए व्यक्त की। उन्होने इतनी स्पष्टता तथा निष्कपटता से दिनकरजी के कवित्व का विवेचन किया जिससे सभी निरुत्तर हो गए। फिर तो मैंने मैथिलीशरण गुप्त डा० रामकुमार वर्मा अज्ञेय बालस्वरूप राही आदि अनेक नये पुराने साहित्यकारो के सम्बन्ध मे प्रश्न किये और उनके उत्तर मे उनके उदार और निर्भीक आलोचक का दायित्व प्रकट होता रहा। नि सन्देह सुमनजी का व्यक्तित्व उन स्वार्थवादी व्यक्तियो एव साहित्यकारो की तरह कदापि नही है जो अवसर की ताक मे रहते है और जिनके विचार वैयक्तिक स्वार्थपरता के अनुरूप सदैव परिवर्तित होते रहते है। श्री सुमन स्पष्ट रूप मे साफ ढग से सोचते है और निर्भीकता मे अपनी साहित्यिक एव वैचारिक धारणा प्रकट करते हैं। छोटी छोटी सकीर्ण परिधियो मे आबद्ध रहनेवाले साहित्यकार और व्यक्ति भले ही क्षण भर के लिए उनकी स्पष्टता से ईमानदार आलोचना से नाराज हो जाए परन्तु सुमनजी का व्यक्तित्व जैसे भय को जानता ही नही। स्वय निर्मित व्यक्तित्व का यह स्वाभाविक गुण होता है।

जिस सीमा तक उनके व्यक्तित्व मे निर्भीकता है उसी सीमा तक उनमे भावपूर्ण हृदय है सहृदयता है कोमलता और भावुकता है। वे एक ओर कर्मठता के अदम्य पुजारी हैं तो दूसरी ओर उदारता सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति। सचमुच वे स्नेहशील प्रेम-पूरित उदार हृदय रखते हैं जो उनके कवि व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। उनसे मिलने वाला उनके अपनत्व स्नेह सिंचित स्वभाव को अनुभव किए बिना नही रहता। जब वे बडो से मिलते है तो अपार श्रद्धा और आदर के साथ उनके चरणो तक को छूने मे सकोच नही करते और छोटो को एक बडे भाई तथा अभिभावक की तरह वक्ष से लगा लेते है। उस क्षण उनके उदार भाव प्रवण प्रेमपूरित हृदय की छाप अनायास मन पर गहरी पडती है। जब सुमनजी के प्रथम दर्शन का शुभ सौभाग्य मिला और मैंने अपना परिचय देते हुए कहा—

"मैं सियारामशरण प्रसाद हूँ," तो उनके चेहरे पर आत्मीयता भरी स्नेह से पल्लवित प्रसन्नता छा गई और उन्होंने झट से मुझे वक्ष से लगा लिया, जैसे वर्षों से बिछुड़े भाइयों का मिलन हो। मुझे लगा जैसे वे मेरे चिर-चिर से परिचित हों। उनके ऐसे आचरण में मैं नई पीढ़ी के प्रति उनके स्नेह और उदारता तथा शुभ कामना की आन्तरिक भावना की अभिव्यक्ति ही मानता हूँ। और जब मैंने सकोच और पीडा से कहा—"मुझे दिल्ली से लिखा आपका पत्र मिला था परन्तु इसी बीच मेरे चाचाजी का देहावसान हो गया इसीलिए आपसे मिलने पटना नहीं·· " तो मेरा वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि स्वाभाविक रूप से उनके मुख पर इस समाचार से सवेदना का भाव झलक आया। निश्चय ही इतने अपनत्व भाव से पूर्ण और सवेदनशील व्यक्ति विरले ही मिलते हैं। कुछ क्षण तक वातावरण शान्त रहा, जैसे वेदना सम्पूर्ण वातावरण पर छा गई हो। फिर कुछ क्षणों के उपरान्त वातावरण को दूसरी दिशा म मोडते हुए मैंने कहा—"आप कुछ दिन और यहाँ ठहरते तो बड़ा आनन्द रहता।" उत्तर में सुमनजी ने मुस्कराते हुए कहा—"मेरी भी बडी इच्छा थी कि कुछ समय यहाँ रहूँ, भैया बेनीपुरीजी के जन्मदिन समारोह मे सम्मिलित होऊँ। लेकिन मेरा इतना व्यस्त कार्यक्रम है कि ठहरना कठिन है।.. आप लोगों के प्रति प्रेम ने ही मुझे पटना से मुजफ्फरपुर बुलाया है।" और कुछ क्षण रुककर पुन बोले—"मुझे तो आरम्भ से ही बिहार के साहित्यकारों के प्रति अत्यन्त अपनापन रहा है। यहाँ की लीचियाँ प्रेम से खाई है, आमों का भी सेवन किया है।" और जब मैंने बीच में ही टोकते हुए कहा—"परन्तु बाहर के लेखक बिहार के प्रति बडी उपेक्षा-भावना रखते है।" तो मेरा कहना जैसे उन्हें झकझोर गया। वे गभीर हो गए। फिर शब्दों पर बल देते हुए उन्होंने कहा—"ऐसे लेखक अपनी सकीर्णबुद्धि का परिचय देते हैं।.. बिहार ने प्रत्येक दिशा मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, जो उपेक्षा-योग्य कदापि नही है। परन्तु आज गुटबदी का बोलबाला है। सकीर्ण घेरों मे रहने वाले ही बिहार के प्रति उपेक्षा की भावना रखते है। मेरा तो स्पष्ट मत है कि गुटबदी में कभी भी स्वस्थ साहित्य का सृजन नही हो सकता। इसीलिए जब भी मैंने कोई स्वतन्त्र कार्य किया, सकलन सम्पादित किया, बिहार को उचित सम्मान दिया और देता रहूँगा।"

जब वे हम लोगों के बीच से विदा लेने लगे उस समय का वातावरण भी अत्यन्त मार्मिक हो उठा। भाव विभोर होकर उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया। उनकी आँखें छलछला आईं और कठ अवरुद्ध हो गया। निश्चय ही इस आचरण मे उनका प्रेम, उनकी सहृदयता और उदारता तथा सौम्यता की ही प्रधानता थी।

सुमनजी की स्मरण-शक्ति भी अत्यन्त तीव्र है। वे छोटी-छोटी बातों को भी पता नहीं कैसे याद रखते हैं! कब किस पत्रिका मे कौन-सी रचनाएँ पढी, कौन-कौन-सी मेरी पुस्तकें उन्हें मिली और 'कला भारती' से प्रकाशित 'दृष्टि' के कौन-कौन अक उन्हें विशेष पसद आए, कौन साहित्यकार कहाँ के निवासी हैं आदि ऐसी अनेक छोटी-बडी बातें उन्हें याद

रहती है। यही उनके व्यक्तित्व की एक-मात्र विशेषता है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' गांधीवादी राजनीति में विश्वास रखने वाले साहित्यकार हैं। गांधीवादी त्यागशील आचरण, अहिंसावादी स्वभाव, सरलता तथा आत्मबल की ज्योति से उनका व्यक्तित्व दीप्त है। औसत कद, गौर वर्ण, खादी के वस्त्र और आचरण की शुद्धता उनके शुद्ध विश्वासी व्यक्तित्व के परिचायक हैं। वे अपने व्यस्तता भरे जीवन में भी अनेक व्यक्तियों, कलाकारों की सदैव सहयोग सहायता करने में जागरूक प्रहरी की तरह तत्पर रहते हैं। निश्चय ही यह उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिफलन है। वे क्रियाशीलता और कर्मठता के भंडार हैं। विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक, प्रशासनिक और शैक्षणिक संस्थाओं से वे मात्र सम्बद्ध ही नहीं हैं प्रत्युत उनके लिए रचनात्मक कार्यों की सिद्धि में तत्पर रहते हैं। इस दृष्टि से वे व्यक्ति नहीं, गांधीवादी रचनात्मक सृजनात्मक शक्ति से पूर्ण एक संस्था प्रतीत होते हैं। परन्तु सुमनजी राजनीति को साहित्य से कभी बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। वर्तमान राजनीति पर दृढ़ता से अपनी राय देते हुए उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहा था— 'उस देश का कभी भी कल्याण नहीं हो सकता जहाँ राजनीति साहित्य पर हावी हो जाए, जहाँ राजनीतिज्ञों के सम्मुख साहित्यकार उपेक्षित किये जाएँ।' आगे उन्होंने भारत की वर्तमान स्थिति पर असन्तोष व्यक्त करते हुए कहा था—'यहाँ की स्थिति से अत्यन्त पीड़ा होती है। आज यहाँ सरस्वती उपेक्षित हो रही है। जब तक यहाँ यह परिस्थिति बनी रहेगी, भारत का कल्याण नहीं होगा। राजनीतिज्ञों के संकेत पर साहित्य चले यह सरस्वती का अपमान है, साहित्यकारों के लिए खेद की बात है। मैं ऐसे साहित्यकारों के प्रति कभी भी विश्वास नहीं रखता जो राजनीति के गुलाम बन गए हैं।'' अतः स्पष्टरूपेण सुमनजी साहित्य की दिव्य प्रतिभा के पुजारी हैं, भौतिक उपलब्धि के नहीं।

यह भी सत्य है कि सुमनजी सामयिक चेतना से साहित्य को दूर हटाकर कल्पना कुंज में उसे भटकाना श्रेयस्कर नहीं मानते। वे तो साहित्य और राजनीति में घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, सन्तुलित एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, इसीलिए उनके साहित्य में राष्ट्रीय जागरण और देश-काल से सम्बद्ध रचनाएँ भी मिलती हैं, परन्तु वे साहित्य की दासता के समर्थक नहीं हैं। वे किसी भी शर्त पर सरस्वती को गुलामी की शृंखला में देखना औचित्यपूर्ण स्वीकार नहीं करते।

सुमनजी का व्यक्तित्व जहाँ विराट्ता से समन्वित है वहाँ उनका कवित्व भी चिन्तन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का परिचायक है। उन्होंने जहाँ आलोचना के क्षेत्र में निष्पक्षता का परिचय दिया है, सन्तुलित आलोचना का मापदण्ड प्रस्तुत किया है, वहाँ अपनी महत्त्वपूर्ण काव्य कृतियों द्वारा हिन्दी के गौरव को समृद्ध किया है। उनकी काव्य कृतियों में जहाँ सुमनजी का राष्ट्र प्रेम, सामाजिक मानवतावादी चेतना और कवि का संवेदनशील भावना-प्रवण हृदय व्यक्त है वहाँ उनमें जीवन की अनुभूति की सचाई है और इसलिए ये रचनाएँ

स्वाभाविक रूप से पाठकों पर अपना गहन प्रभाव छोड़ती हैं। इनकी कविताओं में भावना की ऐसी निश्छलता है जो कवि के व्यक्तित्व का सही रूप में प्रतिनिधित्व करती है। इनकी आलोचनात्मक कृतियाँ साहित्य-समीक्षा के सिद्धान्तों को, मूल्यों को प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। इन कृतियों में जहाँ सुमनजी की लेखनी की प्रौढ़ता प्रकट है वहाँ विचारों का सन्तुलन और ईमानदार, निष्पक्ष मूल्यांकन पाठकों को प्रभावित करता है। जैसा मैंने पहले लिखा है कि वे ईमानदार आलोचक हैं, गुटबंदी से अलग स्वतंत्र मौलिक रचनाकार हैं, इसलिए वे आलोचना में किसी गुट, वाद या व्यक्ति के अनौचित्यपूर्ण मूल्यांकन की चेष्टा कदापि नहीं करते और यह एक ऐसा तत्त्व है जो साहित्य-जगत् में इन कृतियों का स्वाभाविक महत्त्व प्रतिष्ठापित कर देता है।

ऐसे निश्छल, उदार, सौम्य तथा अकलुष व्यक्तित्व के प्रति मेरी सम्पूर्ण श्रद्धा निवेदित है।

कला भारती, सराय सैयदअली,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

जेल-जीवन की स्मृतियाँ

आचार्य दीपंकर

सुमनजी से मेरा पहला परिचय १९४२ के आन्दोलन के सिलसिले में लाहौर में हुआ था। उस समय वे दैनिक 'हिन्दी मिलाप' में काम करते थे और भाटी गेट के पास के एक मकान में रहते थे। उसी मकान में पण्डित लेखराम भी रहते थे, जो अति सौम्य एवं गम्भीर व्यक्ति हैं। वे उन दिनों दैनिक 'हिन्दी मिलाप' के सम्पादक थे। मुझे यह तो ठीक याद नहीं है कि उनके मकान पर मैं कब पहुँचा था और किस तरह आत्मीयता बढ़ते बढ़ते यह नौबत आई कि हम लोग उनके सर्वस्व के 'मालिक' बन बैठे, परन्तु इतना खूब याद है कि सुमनजी ने '४२ के आन्दोलन में हमें कितना आश्रय दिया था और उनकी उदारता हमारे लिए कितनी उपयोगी सिद्ध हुई थी।

आन्दोलन के सिलसिले में काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० के० एन० गैरोला, श्री शान्तिस्वरूप शर्मा और मैं तथा अनेक दूसरे आन्दोलनकारी उत्तरप्रदेश तथा दिल्ली से लाहौर पहुँचे थे। हम सभी की गिरफ्तारी के वारंट थे और हम गिरफ्तारी से बचकर अपना आन्दोलन चालू रखना चाहते थे। परन्तु, हमें ठिकाना मिलना मुश्किल था और दिल वाले लोग ही हमें आश्रय दे सकते थे। सुमनजी का कमरा और उनका उदार

सहयोग पाकर हम लोग जितने मग्न थे यह आज भी हम सब लोग भूले नही हैं।

सुमनजी ने साम्राज्यवाद की नजरो म केवल यही अपराध नही किया था कि उन्होने बागियो को अपने यहाँ आश्रय दिया था बल्कि वे स्वय भी प्रबल साम्राज्य विरोधी और देश भक्ति की भावनाओ म ओत प्रोत थे। परन्तु फिर भी वे सक्रिय राजनीति म नही उतरे और विशुद्ध साहित्यिक और कवि क रूप म ही अपना योगदान देते रहे।

ऐसी स्थिति म दूसरे आन्दोलनकारियो की तरह सुमनजी का गिरफ्तार होना भी स्वाभाविक और अनिवार्य था। इसलिए कि साम्राज्यवाद के पिटठुओ की नजरो से सुमनजी की यह गतिविधि कैसे छिपी रह सकती थी? परन्तु फिर भी जो काम आगे पीछे या देर से होता वह मेरी बेवकूफी के कारण तत्काल हो गया और काव्य-बसन्त का यह कोकिल जेल क पिंजरे म बन्द कर दिया गया।

बात १४ मार्च १९४३ की है जब मैं झनम और स्यालकोट म सी० आई० डी० को किसी तरह चकमा देकर लाहौर पहुचने म कामयाब हुआ। परन्तु रेलवे-स्टेशन पर ही फिर से उनकी नजरो म चढ गया और मैंने भूमिगत जीवन की कलाबाजियो के चाहे जितने पत्ते दिखाये परन्तु शाम क ८ बजे जब सुमनजी के मकान पर पहुँचा तो १० मिनट बाद ही पुलिस क सैकडो आदमियो न सुमनजी का मकान घेर लिया। मुझे क्या पता था कि जो तागे वाला मुझे उनके मकान तक लाया था वही पुलिस को भी भेद दे देगा।

मैं शिकारी कुत्तो की झपेट स बच भयभीत शिकार की तरह सुमनजी क कमरे मे चारपाई पर आँख मूदकर लेटा ही था कि सहसा पुलिस क दो मुस्टडो ने मुझे दबोच लिया। मकान की व्यापक तलाशी ली गई एक एक कागज टटोला गया और एक नौकरशाह लखरामजी की बुआजी पर गुर्राया कि ये सुमन और लखराम देखने मे तो इतने सीधे मालूम पडते है परन्तु अन्दर म बडे खूखार है। इतने बुरे आदमियो को घर पर ठहराते है। सबकी खबर ली जाएगी। मुझे वे उसी समय पकडकर ले गए। पहले थाने मुजग म रखा और बाद म दो महीने किले क हाथीखाने का अधेरा दिखाया। हम लोगो क ये दोनो आश्रयदाता सुमन और लेखराम भी २३ मार्च १९४३ को प्रात गिरफ्तार कर लिये गए। स्वतन्त्र वातावरण और स्वच्छन्द कविता-कानन मे चहचहाती चिडियाँ पिंजरे म डाल दी गई।

करीब ३ महीने बाद जब म जून १९४३ म फीरोजपुर कैम्प जेल मे भेजा गया तब वहाँ जाकर मेरी सुमनजी तथा दूसरे साथियो एव सहयोगियो से मुलाकात हुई। इससे पहले तीन महीने तक कोशिश करके भी मैं सुमनजी का कोई कुशल क्षेम न जान सका। फिर उस तहखाने म कोशिश भी क्या की जा सकती थी? परन्तु इस बीच म मेरा भावुक मन सुमनजी क लिए बहुत व्याकुल एव चिन्तित रहा। मैं प्राय सोचा करता था कि जिस व्यक्ति ने हमे आश्रय दिया हर तरह स हमारी सहायता की जो केवल कवि और साहित्यिक ही है उसके साथ हम लोगो ने अन्याय किया है। उसका निवास-स्थान

को अपनी गतिविधियों का खुला अखाड़ा बनाकर हमने अच्छा नहीं किया। यदि सुमनजी गिरफ्तार हो गए, तो हम लोगों को क्या कहेंगे ! शायद धिक्कारें। कहें कि कमबख्तों ने हमें मरवा दिया।' यही सोचकर फीरोजपुर कैम्प-जेल में जब पहली बार सुमनजी मिले तो मैं आँख उठाकर उन्हें देख तक न सका। परन्तु सुमनजी तो कवि ठहरे, दूसरों के मन की बात सहज ही भाँप जाते हैं। उन्हें मेरी झेंप को समझते देर न लगी। बोले—"और देखो, मेरे साथ लेखराम भी यहीं है। वे देखो, हाथी की तरह धरती कँपाते दौड़े चले आ रहे हैं।" मुझे अच्छी तरह याद है वह शाम, जब सैकड़ों नजरबन्दों में घिरा हुआ मैं 'सुमन' और लेखराम से बार-बार गले मिला था।

सुमनजी डेढ़ साल तक फीरोजपुर कैम्प जेल में ही नजरबन्द रहे। रिहाई के बाद लाहौर-कॉरपोरेशन की सीमा तक रहने की पाबन्दी उन पर लगा दी गई। लाहौर और डेरागाजीखाँ की जेलों में मेरा तबादला कर दिया गया। जेल के इन दिनों में सुमनजी को मुझे और भी बहुत निकट से देखने और परखने का मौका मिला। मैंने यह अनुभव किया कि 'सुमन' में परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बैठा सकने की असाधारण क्षमता है। मुझसे यह बात छिपी नहीं थी कि लाहौर में वे आजीविका के लिए ही गये थे। जो कमाते थे उसका बड़ा हिस्सा उन्हें घर भी भेजना पड़ता था। शायद अनावश्यक आर्थिक बोझ से बचने के लिए ही वे लाहौर में अकेले रहा करते थे। घर में पत्नी, माता, पिता और परिवार के सभी लोग थे, जो सुमनजी से आर्थिक सहायता की अपेक्षा रखते थे। परन्तु 'सुमन' एक बार जब जेल में पहुँच गए तो उन्होंने घर का ध्यान ही छोड़ दिया। वे वहाँ इस तरह निर्लिप्त एवं प्रसन्नचित्त रहते थे कि उन्हें देखकर दूसरों की चिन्ताएँ भी लुप्त हो जाती थीं। क्योंकि मैं उनके व्यक्तिगत जीवन से भलीभाँति परिचित था, उनकी सामाजिक व आर्थिक जिम्मेदारियाँ भी जानता था, इसीलिए सुमनजी के इस मस्त रहनेवाले निर्द्वन्द्व रूप ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया। मेरी नजरों में उनके प्रति आदर के भाव और भी गहरे हो गए।

जो लोग राजनैतिक जेलों में रहे हैं, वे यह जानते हैं कि जेल की सकुचित चहार-दीवारियों का प्रभाव शरीर के अलावा मन पर भी पड़ता है। आदमी की मनोवृत्ति अत्यधिक सकुचित हो जाती है और कभी-कभी तो वह इतनी तुच्छ सी बातों के लिए कलह तक पर उतर आता है कि बाहर आकर वे बातें सुनाने में भी लज्जा अनुभव होती है। परन्तु इस डेढ़ साल में मैंने सुमनजी को किसी भी छोटी बात के लिए कलह करते नहीं देखा। जेल में वे इसी तरह सामान्य एवं प्रकृतिस्थ जीवन व्यतीत करते रहे, जैसे बाहर ही रह रहे हों। हम लोगों के भोजन, वस्त्र एवं अन्य जीवनोपयोगी साधनों का प्रबन्ध अपने ही साथी मिलकर बारी-बारी से किया करते थे। साधनों की कोई कमी नहीं थी, परन्तु फिर भी हमने बड़े-बड़े लोगों को विशेष सुविधाओं का उपभोग करते देखा है। जो सीधा प्रस्ताव रखते हुए झेंपते थे, वे स्वास्थ्य खराब होने के नाम पर उनकी माँग करते थे।

कुछ अपने मुख से प्रस्ताव न रखवाकर अपने दोस्तो से रखवाते थे। मैंने सुमनजी को कभी भी इतने नीचे धरातल पर उतरते नही देखा। जो मिला इस्तेमाल कर लिया, जो परोस दिया गया वह खा लिया, और जो सुविधा मिल गई उसे ही बहुत कहकर अंगीकार कर लिया।

जेल में यद्यपि मेरे बहुत-से दूसरे मित्र भी थे। उनमे से आज बहुत-से मन्त्री, सभा-सचिव आदि अनेक जिम्मेदारी के पदो पर है। क्योंकि मैं सबसे बाद मे पकडा गया था इसलिए आन्दोलन के किस्से-कहानिया सुनाने का मसाला और आकर्षण मेरे पास अत्यधिक मात्रा मे था। परन्तु इन तमाम बातो के बावजूद, जेल मे भी सुमन मेरे अन्तरग मित्र थे और कभी-कभी तो हम घटो इकट्ठे बैठकर ईरान-तूरान की हाँका करते थे।

हमारा जेल-जीवन वास्तव मे एक खासी-अच्छी पिकनिक था। इसमे बहुत-से मुर्दादिल भी जिन्दादिल बन जाते थे और जब भी कभी अपने व्यस्त जीवन की हमे वे घडियाँ याद आ जाती है तो हृदय मे गुदगुदी-सी उठने लगती है। अधिकाशत हम लोग बीस से तीस साल की आयु के बीच मे थे, जो बूढे ठेरे थे भी वे उमगो की तरगों मे हम जवानो से पीछे नही रहते थे। हमे ऐसा सदा ही अनुभव होता रहता था कि भविष्य हमारा है, केवल हमारा है, और हम ही उसके भाग्यविधाता है।

जेल मे सभी कुछ तो था—नाटक-मण्डली थी, खिलाडियो के दल थे, वाद-विवाद-प्रतियोगिताएँ चलती थी, शास्त्रार्थ होते रहते थे, मार्क्सवाद और गाधीवाद पर गोष्ठियाँ चला करती थी, कवि-सम्मेलन और मुशायरे होते थे, जलसे होते थे और प्रात काल राष्ट्रीय गान चला करता था। कालिदास ने ठीक ही तो कहा है कि 'उत्सवप्रिया हि मानवा.' और मैं दृढ विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जेल मे भी मनुष्य अपनी उत्सव-प्रियता का परित्याग नही करता।

मुशायरो मे श्री गोपीनाथ 'अमन' के तराने गूंजा करते थे। अमनजी का शरीर और गर्दन जितने ही ज्यादा मरियल-से थे उतनी ही ज्यादा बुलन्द आवाज उनकी निकला करती थी। यह अन्तर्विरोध आज तक मेरी समझ मे नही आया। कवि-सम्मेलनो मे सुमनजी की कविताओ की खूब धूम रहती थी और इस तरह जेल क्या थी, एक अच्छा-खासा उत्सव-प्रागण सा बना रहता था। जेल जीवन मे सरसता लाने का बडा श्रेय सुमनजी की कविताओ को था। लेखराम तथा जयन्त की आकर्षक कहानियाँ भी वहाँ बडे चाव से सुनी जाती थी।

सुमनजी और कुछ बाद मे है, पहले वे कवि है, और यही रूप जेल मे उनके व्यक्तित्व पर छाया रहता था। अपने व्यस्त राजनैतिक जीवन मे अब मैं बहुत कम उनके सम्पर्क मे आ पाता हूँ। पता नही, आजकल भी उनकी कविता-कामिनी की कापी बगल-गीर रहती है या नही? परन्तु उन दिनो (जेल के सघर्षमय जीवन मे) भी वे सदा विरह की कविता गा गाकर यह दिखाते रहते थे कि शायद विरह ने ही कविता की पहली पक्ति

का निर्माण किया था और यह विरह जितना मनोहारी है उतना जीवन का कोई भी दूसरा पहलू अधिक स्थायी नहीं रहता। कविता मैं भी कर लेता हूँ—या कहिये कि लिख लेता था, परन्तु कभी मिलन और विरह ने मेरा साबका नहीं पडा। शायद इसीलिए कवि 'सुमन' हमेशा बाजी मार ले जाते थे और मेरी कविता एक अच्छा-खासा 'थीसिस'-सी बनकर रह जाती थी।

कैम्प-जेल मे हम करीब डेढ सौ नजरबन्द थे और इतने ही सजायाफ्ता राजनैतिक बंदी। जेल-जीवन को सुखी एव गौरवमय बनाने का श्रेय सभी लोगो को था और सब लोगो का बलिदान एव ऊँचे आदर्श के लिए आहुति देने की प्रवृत्ति ही हमारा मनोबल बढाती रहती थी। परन्तु यदि मैं यह कहूँ तो अतिशयोक्ति नही होगी कि सुमनजी का उदार व्यवहार इसमे विशेष योगदान करता रहता था।

आज सुमनजी के बारे मे ये पक्तियाँ लिखते समय न जाने अपने वहाँ के कितने साथियो की याद ताजा हो उठी है। सभी लोगो के परिवार थे, कारोबार और धन्धे थे एव विभिन्न रुचियाँ तथा जीवन-लक्ष्य थे। परन्तु फिर भी सब लोग मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए उस तम्बू के नीचे इकट्ठे होकर एकाकार हो गए थे। आज उनके बलिदानो तथा कुर्बानियो की याद करके शरीर मे सिहरन-सी पैदा होती है। हमारे साथ कुछ बूढे थे सत्तर साल के, कुछ बच्चे थे चौदह और पन्द्रह वर्ष के, जिन्हे स्कूलो मे पकड लिया गया था और कुछ जवान थे, जिनके यौवन के साथ ही उमगो का ज्वार ठाठें मार रहा था। परन्तु उन सबके बारे मे यहाँ नही लिखा जा सकता।

लगभग डेढ वर्ष जेल मे रखकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद और नौकरशाही हमारे कवि का मनोबल तोडना चाहती थी। जब वह नही टूटा और अधिक दिनो तक जेल में रखना सम्भव प्रतीत नहीं हुआ तो उसने दूसरी चाल चली। मेरठ की हापुड तहसील के एक गाँव मे, जहाँ कवि ने जन्म लिया था, उसे नजरबन्द कर दिया। सगे-सम्बन्धियो, मित्रो और सहयोगियों से सभी रिश्ते लम्बे जेल-जीवन ने तोड दिये थे, आर्थिक साधन मटियामेट हो चुके थे, और जो कवि रोज कुआ खोदकर पानी पीता था उसके लिए गाँव मे नजरबन्द रहना भयानक यातना का कारण बन गया। परन्तु इससे भी कवि का मनोबल नही टूटा।

यदि सुमनजी चाहते तो साम्राज्यवाद और उसकी नौकरशाही से सहज ही क्षमायाचना करके अपनी यह पाबन्दी हटवा सकते थे। परन्तु ऐसा करना कवि के आत्मगौरव एव राष्ट्रीय आस्थाओ के विपरीत था। उसने सब-कुछ सहन किया। अभावों का वह आघात उसके मनोबल को बढाने मे सहायक ही सिद्ध हुआ। नजरबन्दी के उन दिनो मे उनकी पत्नी ने जिस साहस के साथ उनसे सहयोग किया वह प्रशसा के योग्य है। उसने बुरे-से-बुरे दिन देखे, परन्तु घबराई नही, उसने अभावो की दुनिया मे अपना यौवन बीतते देखा, परन्तु कभी मुरझाई नही, और उनका सबल सहयोग पाकर ही सुमनजी अपने जीवन का पुनर्गठन करने मे सफल हो सके।

मैं भी मेरठ के एक गाँव बौंहा में नजरबन्द था और उसी तरह की पाबन्दियों का शिकार था, जिस तरह के बन्धन सुमनजी पर थे। अपने शैशव में ही बाहर रहते-रहते मैं मेरठ का पता और रास्ता ही भूल गया था। परन्तु अंग्रेजी नौकरशाही नहीं भूली थी और उसने मुझे बनारस में नजरबन्द न करके इस गाँव में नजरबन्द किया था। एक दिन, यहीं सुमनजी का एक पत्र मुझे मिला। पत्र पढ़कर मुझे पुनः सारी बातें याद हो आईं। परन्तु दुर्भाग्य से पाबन्दियों के कारण हम मिल नहीं सकते थे, हालांकि दोनों एक ही जिले में रह रहे थे।

अब हमारे सभी संगी-साथी बिछुड़ गए हैं। कोई राजनीति में आया था तो वहीं रह गया, और कुछ अपने-अपने पुराने व्यवसायों और धन्धों में वापस लौट गए। सुमनजी ने एक भी दिन खराब किए बिना फिर से अपनी कलम उठा ली और साहित्य-सेवा के काम में लग गए। इस बीच भी मेरा उनसे यदा-कदा सम्पर्क बना ही रहा है, यद्यपि इस सम्पर्क के जीवित रखने का श्रेय भी सुमनजी को ही है। वे अपने मित्रों और सहयोगियों को कभी भूलते नहीं, और न उन्हें भूलने ही देते हैं। अपने मित्रों से सम्पर्क कायम रखकर सुमनजी विशेष सुख का अनुभव करते हैं। शायद इसीलिए उनकी आमदनी का एक निश्चित और बड़ा हिस्सा भारत सरकार के डाक व तार-विभाग के पास चला जाता है।

सुमनजी की एक बड़ी विशेषता और भी है। उनके जो मित्र साहित्य के क्षेत्र में सरस्वती की सेवा कर सकते हैं, वे उन्हें अनवरत उकसाते रहते हैं। मुझे याद है कि एक बार मैंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर गवेषणा करनी शुरू की थी और सुमनजी ने मेरी संक्षिप्त टिप्पणियाँ देखी थीं। तब से कम-से-कम दसियों बार वे मुझे ताने मार चुके हैं कि वह पुस्तक तुम क्यों पूरी नहीं करते। परन्तु मैं लज्जित हूँ और सुमनजी को कोई जवाब नहीं दे पाता। मुझे मालूम है कि मेरी ही तरह वे अपने दूसरे लेखक मित्रों को भी उकसाते रहते हैं और उन्हें यथाशक्ति सहयोग भी देते हैं।

सुमनजी के चरित्र की एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि वे जिस परिस्थिति में भी डाल दिये जाएँ उसमें रो-रोकर आँसुओं के कुंड नहीं भरते और अवसर हाथ लगते ही अपनी ही पगडण्डी पर जा चढ़ते हैं। उदाहरण के लिए—१९४२ के राजनैतिक आन्दोलन में उन्हें परिस्थितियों ने बीच भँवर में ला पटका था। वे स्वयं नहीं कूदे थे। वे किसी भी मूल्य पर अपना साहित्य-सेवा का कार्य छोड़ना नहीं चाहते थे। परन्तु जब राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा इस लोगों की करतूतों के कारण वे राष्ट्रीय आन्दोलन में आ ही गए तो कभी रोये-धोये नहीं, कभी उन्होंने इसका पश्चात्ताप नहीं किया। जिस स्वाभिमान के साथ उन्होंने सारी यातनाएँ सहीं, उस पर प्रत्येक हिन्दी-लेखक गर्व और गौरव का अनुभव कर सकता है। परन्तु ज्यों ही राजनैतिक आन्दोलन का ज्वार-भाटा उतरा वे परिस्थितियाँ अनुकूल होते ही सम्पूर्ण मन से साहित्य के क्षेत्र में कूद गए, एक दिन भी राजनीति के चक्कर में फँसे नहीं रहे।

सुमनजी कम्युनिस्ट नहीं हैं। परन्तु मेरे-जैसे न जाने कितने कम्युनिस्टों से उनकी प्रगाढ़ मैत्री है। वे कांग्रेसजन भी नहीं हैं, परन्तु न जाने कितने लोग उन्हें इसी रूप में देखते हैं। वे जनसंघी, आर्यसमाजी या पुनरुत्थानवादी नहीं हैं, परन्तु न जाने कितने पुनरुत्थानवादी उन्हें अपना सगा समझते हैं। वास्तव में सुमनजी 'समन्वयवादी' हैं और नये तथा पुराने को साथ लेकर चलना चाहते हैं। यही कारण है कि दिल्ली के सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने वह लोकप्रियता प्राप्त कर ली है, जिसके लिए लोग तरसते हैं। उनकी यह 'समन्वयवादी लोकप्रियता' अब इस सीमा तक पहुँच गई है कि लोग उनसे 'ईर्ष्या' तक करने लगे हैं। बस, इसीमें सुमनजी की सेवा-साधना की सार्थकता है।

सुमन ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए कलम के साथ-साथ हाथ में बन्दूक लेकर संघर्ष किया है। आज साम्राज्यवाद तो हट गया है, परन्तु उस प्रेत की काली परछाईं 'पाकिस्तान' के रूप में चुनौती बनकर हमारे सामने आई है। उधर लेनिन का नाम कलंकित करने वाले बर्बर चीनी नेता उसी हिमालय की चोटियों पर दहाड़ रहे हैं। देखने हैं कि नये सुमन हमारे प्रौढ़ सुमन की तरह कलम के साथ हाथ में बन्दूक लेकर इस चुनौती का कितने साहस के साथ मुकाबला करते हैं ?

मेरी शुभ कामना है कि मेरा मित्र कवि सुमन अपने जीवन की सम्पूर्ण शताब्दी पूरी करे और कार्यालयों की शुष्क फाइलों में माथा-पच्ची करने के साथ-साथ नये जीवन के प्रेरणादायी गीत लिखे, जिनमें कला और श्रम का पसीना साथ-साथ बहता चले।

'चन्द्रिका'
शिवाजी मार्ग, मेरठ

मेरे प्रेरक : मेरे निर्माता

श्री रघुवीरशरण बंसल

आदरणीय सुमनजी के विषय में क्या लिखूं, कहां से लिखूं और कितना लिखूं यह मेरे लिए एक समस्या बन गई है। सुमनजी के साथ मेरा सन् १६४० से सम्बन्ध रहा है और आज इस सम्बन्ध को पच्चीस वर्ष हो गये हैं। यदि सम्बन्धों के आधार पर कोई आयोजन करना हो तो मैं सुमनजी के सम्बन्धों के प्रति एक रजत-जयन्ती-समारोह मनाने का अधिकारी हूँ। मेरी बात में वजन है कि सुमनजी के आधे जीवन में मेरा धूप-छांह-जैसा परिचय रहा है।

मैंने सुमनजी को सबसे पहले मण्डी धनौरा जिला मुरादाबाद म एक सार्वजनिक गभा मे कवि के रूप मे देखा था। यह बात सन १९४० की है। मण्डी धनौरा म श्री दयानन्द त्रिवेदी महात्मा गाधीजी द्वारा चलाये गए व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन मे (१९४०) भाग लेने गये थ। उनके विदाई-समारोह म श्री सुमनजी ने एक कविता पढी थी जिसकी प्रथम पक्ति मुझे अभी तक याद है—वधु हँसते हुए जाओ!

उस समय श्री सुमनजी मण्डी धनौरा म प्रकाशित होने वाले 'शिक्षा-सुधा' मासिक के सम्पादक थ। श्री सुमनजी इस स्थान पर कुछ मास ही रहे और वह वहा से लाहौर चले गये। सुमनजी ने लाहौर की तत्कालीन साहित्यिक चर्चाओ गोष्ठियो मे भाग लेना प्रारम्भ किया और उसीके साथ वह राजनीतिक गतिविधिया म भी सक्रिय राजनीतिज्ञ के रूप मे भाग लेते रहे। सन् १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन मे आपने लाहौर स ही भाग लिया था। कुछ समय पश्चात ब्रिटिश नौकरशाही ने सुमनजी को उनके जन्म-स्थान बाबूगढ म ही मई १९४५ तक नजरबन्द किया था।

मई १९४५ मे नजरबन्दी के पश्चात मेरी श्री सुमनजी से दूसरी भेट पुन मण्डी धनौरा म ही हुई। उस समय श्री सुमन जी गुप्ता ब्रादर्स के भागीदार श्री सागरमल गग की पुत्री श्रद्धाकुमारी के विवाह मे भाग लेने आये थे और मैं उस समय मण्डी धनौरा के डाकखाने मे क्लर्क के रूप मे काय करता था। नजरबन्दी के पश्चात सुमनजी नई दिल्ली की प्रकाशन सस्था विद्यामन्दिर (प्रा०) लिमिटेड म प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष होकर आ गये थे। वे उस समय गोल मार्केट के पास रहते थे। यहा पर यह लिखना भी अनुचित न होगा कि श्री सुमनजी न उस समय आज के प्रसिद्ध एव ख्याति प्राप्त उपन्यासकार श्री गुरुदत्त की दो कृतियाँ स्वाधीनता के पथ पर पथिक एव उन्मुक्त प्रेम' प्रकाशित एव सम्पादित की थी।

गोल मार्केट की चर्चा करना मेरे लिए कुछ आवश्यक है। मैं सुमनजी से जब अपने स्थान चादपुर स मिलने पहुँचा तो मुझे गोल मार्केट के नाम पर केवल ब्लैक मार्केट का नाम याद आता रहा। दुर्भाग्य से मैंने पूछा भी एक पुलिस वाले से कि ब्लैक मार्केट कहा है। सिपाही ने कहा मेरे साथ थाने चलो वहाँ पता चल जायगा। खैर मुझे किसी प्रकार गोल मार्केट नाम का स्मरण हो आया और मैं सुमनजी से उनके स्थान पर मिला। उस समय मैंने देखा कि सुमनजी का घर साहित्यिको का अखाडा बना हुआ था।

सन १९४५ से १९६६ तक मैंने सुमनजी को विभिन्न रूपो मे देखा है किन्तु उन सभी रूपो का ध्येय था हिन्दी साहित्य की सेवा। सुमनजी ने सन १९४५ से १९५५ तक विभिन्न प्रसो मे प्रेस-व्यवस्थापक तथा विभिन्न प्रकाशन-गृहो म प्रकाशन विभागाध्यक्ष के रूप मे काय किया। इसके साथ-साथ सुमनजी का लेखन-व्यवसाय भी चलता रहा। सन १९४५ से १९४७ तक दिल्ली म सुमनजी ने जो कृतियाँ हिन्दी साहित्य को भेंट की उनम मल्लिका' 'बन्दी के गान' कारा, नये भारत के निर्माता, लाल किले की ओर',

'आज़ादी की कहानी', 'जैसा हमने देखा', 'जीवन-स्मृतियाँ प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त सन् १९५० से १९५५ तक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने प्राइमरी से लेकर एम० ए० तक की पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण किया और उनको विभिन्न शिक्षा-विभागों एव विश्वविद्यालयों मे पाठ्यक्रम के रूप मे मान्यता प्रदान हुई। सुमनजी की एक पुस्तक 'साहित्य-विवेचन' विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों मे एम० ए० मे स्वीकृत हुई और वह आज भी उसी रूप मे चल रही है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' राजधानी के विभिन्न साहित्यिक आयोजनों के भी सूत्रधार हैं। सन् १९४५ मे दिल्ली मे जिन कवियों की चर्चा होती थी, उनमे श्री पुत्तूलाल वर्मा 'करुणेश', श्री दीनानाथ 'दिनेश', शम्भुनाथ 'शेष', ईशकुमार 'ईश', गोपालप्रसाद व्यास, क्षेमचन्द्र 'सुमन', बाबूराम पालीवाल, शैलेन्द्रकुमार पाठक एव नवीनचन्द्र आर्य के नाम प्रमुख हैं और इन्ही के साथ हम-जैसे कुछ छुटभैये भी थे, जो इन लोगो के सहारे कवि-सम्मेलनों मे कविता-पाठ का अवसर प्राप्त कर लेते थे। सुमनजी की प्रेरणा पर मैंने कविता लिखना प्रारम्भ किया और दिल्ली के अतिरिक्त सुमनजी के साथ दनकौर (जिला बुलन्दशहर) एव हापुड (जिला मेरठ) के कवि सम्मेलनों मे भी गया और सुमनजी के सभापतित्व मे कविताएँ पढी।

उन दिनों सुमनजी का सम्बन्ध 'नया हिन्दुस्तान' के सह-सम्पादक श्री शैलेन्द्र-कुमार पाठक से भी अधिक था। मैं श्री शैलेन्द्रकुमार पाठक के सम्पर्क मे सुमनजी के माध्यम से ही आया था और आज तक मैं उन दोनों के बीच की कडी बना हुआ हूँ। पाठक के साथ निर्वाह करना कोई सरल कार्य नही है। किन्तु आज बीस वर्षों से मेरी पाठक के साथ बडे आराम के साथ निभ रही है। सन् १९४५ मे दिल्ली मे तरुण कवियों के मार्गदर्शक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' एव शैलेन्द्रकुमार पाठक ही थे। उस समय चावडी बाजार मे दिल्ली प्रिंटिंग प्रेस के ऊपर जहाँ 'नया हिन्दुस्तान' का कार्यालय था वहीं पर शैलेन्द्रकुमार पाठक रहते थे और यह स्थान राजधानी मे आने वाले साहित्यकारों की सराय था।

'साहित्यिक सराय' का जब उल्लेख हो ही गया है तो यहाँ पर यह लिखना भी असगत न होगा कि इस साहित्यिक सराय मे तीन व्यक्तियों का विशेष सहयोग था—श्री शैलेन्द्रकुमार पाठक, क्षेमचन्द्र 'सुमन' एव किसी अश तक इन पक्तियों के लेखक का। इस सराय मे आने वाल व्यक्तियों मे श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', राजेश दीक्षित, घनश्याम अस्थाना, (आगरा), श्रीराम शर्मा 'प्रेम', मनोहरलाल ऊनियाल 'श्रीमन्' (देहरादून), रामकुमार चतुर्वेदी, जगदम्बाप्रसाद त्यागी, वीरेन्द्र मिश्र (ग्वालियर), श्री देवराज दिनेश (लाहौर), डॉ० आनन्द (जालौन) के नाम प्रमुख हैं। काव्य-क्षेत्र मे श्री सुमन ने उस समय इन कवियों को प्रकाश मे लाने का विशेष कार्य किया था और आज जो काव्याकाश मे ये कवि अपनी काव्य-प्रतिभा से आलोकित हो रहे हैं उसमे सुमनजी का ही हाथ है।

सन् १९४६ से १९५० तक मेरा सुमनजी के साथ सम्पर्क तो रहा, किन्तु इतना नहीं जिसे घनिष्ठ कहा जाय। कारण, मैं उस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक उग्र कार्यकर्ता बन चुका था और संघ-कार्यालय में ही रहता था। इधर सुमनजी पक्के गांधीवादी थे। इस कारण राजनीतिक विचार-धारा का परस्पर विरोध था। किन्तु उससे मित्रता पर आँच नहीं आई। सन् १९४८ में मेरठ में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कवि-सम्मेलन को भुला देना भी यहाँ असंगत न होगा कि उस समय पाठक ने जरा से रोष के कारण कवि-सम्मेलन को भंग कर दिया था, उस समय मैं और सुमनजी दोनों ही पाठक को शांत न कर सके। यद्यपि पाठक अपनी अड़ पर अड़े रहे किन्तु उसकी अड़ सत्य-पक्ष पर थी।

सन् १९५० से ५५ तक सुमनजी का जीवन स्वतंत्र लेखक के रूप में रहा और उस समय सुमनजी ने जीवन निर्वाह के लिए पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण-कार्य को एक यज्ञ की भाँति किया और उसमें विशेष सफलता भी मिली। पाठ्य-पुस्तकों के प्रणयन की प्रेरणा भी मुझे सुमनजी से ही मिली। मैंने भी सुमनजी की देखा-देखी पाठ्य-पुस्तकें लिखनी प्रारम्भ की और सन् १९५१ में मेरी लिखी हुई पाँच पुस्तकें पंजाब शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत हुईं, जो मेरे लिए बड़े गौरव की बात थी। पाठ्य-पुस्तक-लेखन के व्यवसाय में सुमनजी मेरे गुरु हैं।

सुमनजी ने १९५०-५५ वर्ष के समय में मैसर्स आत्माराम एण्ड संस दिल्ली तथा राजकमल प्रकाशन दिल्ली दोनों प्रकाशन-संस्थाओं में कार्य किया। सुमनजी की प्रेरणा से मैं सन् १९५२ से पी० सी० द्वादश श्रेणी एण्ड कम्पनी (प्रा०) लिमिटेड, जो पाठ्य-पुस्तक-प्रकाशन की संस्था थी, के शिक्षा-प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने लगा। इस प्रकार प्रकाशन-व्यवसाय में आने की प्रेरणा भी मुझे सुमनजी से ही मिली।

सन् १९५५ में सुमनजी पहाड़गंज स्थित विश्वभारती प्रेस के व्यवस्थापक होकर आ गए और कुछ समय कार्य करने के पश्चात् सुमनजी साहित्य अकादेमी में चले गये। इधर १९५७ से मैंने एक प्रकाशक का भागीदार बनकर प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ किया था और १९५८ में श्री कमलेश जी (जो सुमनजी के अभिन्न अंग हैं) की कृति 'वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व' प्रकाशित की। यद्यपि कमलेशजी से मेरा परिचय दिल्ली की साहित्यिक सराय में हो चुका था, किन्तु यह प्रगाढ़ हुआ प्रकाशन के पश्चात् ही और वह भी सुमनजी के द्वारा।

सुमनजी ने सन् १९६५ में स्टार बुक सैण्टर के आयोजन में कहा था—'मैं हिन्दी-प्रकाशकों का पुरोहित एवं पण्डा हूँ।" वास्तव में उनका यह कथन पूर्णतया सत्य है। पुरोहित का एक कर्म यह भी होता है कि दो नये प्राणियों को विवाह-सूत्र में बाँधकर उन्हें दाम्पत्य-जीवन को व्यतीत करने के लिए आशीर्वाद प्रदान करे। सुमनजी ने

द्वारा मेरे प्रकाशन गृह मे भी कुछ लेखक आये हैं और उस समय इन्होंने अपने पुरोहित-कर्म को भली-भाँति निभाया है।

सुमनजी सन् १९५६ के प्रारम्भ मे दिलशाद कॉलोनी मे आ गये थे। उस समय उन्होंने अपना मकान खरीद लिया था और वह मुझे भी बार-बार शाहदरा आने के लिए प्रेरित कर रहे थे क्योंकि सन् १९५३ मे मैंने भी एक प्लाट नवीन शाहदरा मे ले लिया था, पर बनवाया नही था। सुमनजी का बार-बार का आग्रह रग लाया और मैं सन् १९६२ म अपना मकान बनवाकर नवीन शाहदरा मे रहने लगा। फिर क्या था, सुमनजी ने मुझे अपना उत्तराधिकारी समझकर शाहदरा के साहित्यिक एव राजनीतिक जीवन मे लगा दिया। आज तक हम दोनो एक ही पथ के पथिक होने के कारण परस्पर सहयोग से कार्य कर रहे हैं।

सुमनजी के साथ रहते-रहते २५ वर्ष पूर्ण हो गये है। इस लम्बी अवधि मे उनसे मेरा परिचय उनके कार्य, व्यापार, विचार-धारा एव परिवार के साथ धूप-छाँह की भाँति रहा है। मैंने उनके जीवन-क्रम को बडे समीप से देखा है। वे सदैव अपने व्यक्तियो द्वारा ही छले गये हैं और छलने वाला की दृष्टि मे वे मूर्ख बनाये गये हैं। किन्तु उनके ललाट पर कभी क्रोध की रेखा नही देखी गई। जिस किसी को भी 'सुमन' जी ने अपना कह दिया उसने उनमे औघडदानी की भाँति सब कुछ पा लिया। सुमन कभी-कभी क्रोधी बनने का भी अभिनय करते हैं, किन्तु अपनी सौम्यता के कारण वे उसमे पूर्ण रूप मे असफल ही रहते हैं।

सुमनजी ने कभी अपने लिए अथवा अपने परिवार के लिए चिन्ता नही की। वे साहित्य, हिन्दी एव काग्रेसी विचार-धारा की चलती फिरती जीवित सस्था है। इसका विश्वास न हो तो कभी आप सुमनजी के साथ शाहदरा के बाजार मे चले जाइये। आपको शाहदरा के बाजार को पार करने मे कम-से-कम तीन घण्टे लग जायेंगे, क्योंकि इन्होने सभी के दुःखो को समाप्त करने का दायित्व ले लिया है और हर छोटे-बडे का कार्य आज भी कर रहे है।

सुमनजी ने आज तक अपने जीवन का जो कुछ निर्माण किया है, उसमे इनका अश कम है और उनकी जीवन-सगिनी श्रीमती 'प्रतिमा सुमन' का अधिक। उन्होंने सुमनजी की समस्त कमजोरियों को अपने मे ही को समेट लिया है और वे उर्मिला की भाँति तपस्या करते हुए सुमनजी को इस बात के लिए कभी नही कहती कि तुम्हारा परिवार के प्रति भी कुछ दायित्व है या नही। रविवार के दिन यदि सुमनजी भाग्य से घर म रह जायें तो प्रतिमाजी को और अधिक परिश्रम करना पडता है। चाय की केतली अँगीठी पर ही रहती है। भोजन कब खाया जायेगा और कितने व्यक्ति खायेंगे इसकी चिन्ता बनी रहती है। फिर भी वह मुस्कान के साथ सुमनजी को कभी यह महसूस नही होने देती कि तुम्हारा यह कार्य एक सद्गृहस्थ के लिए कहाँ तक ठीक

है और तुम जो कुछ कर रहे हो वह कितना अव्यावहारिक है।

मैं सुमनजी से आयु में छोटा हूँ। अतएव श्रद्धा-भरे उद्गार लेकर उनकी अर्द्ध-शती पूर्ति पर अपनी भाव कुसुमांजलि अर्पित करता हूँ।

मसल एण्ड कम्पनी
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

धुन के धनी

श्री श्रीपाल जैन

पिछले ग्यारह वर्षों में मैं 'सुमनजी' के इतना निकट रहा हूँ कि आज जब उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का विवेचन करने बैठा हूँ तो डरता हूँ कहीं वस्तुगत न होकर निरा विषयगत ही न हो जाऊँ। अतः यहाँ, वहाँ, कहीं मेरी उनके प्रति भक्ति छलके तो पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' तीव्र पसन्द व नापसन्द के व्यक्ति हैं। वह जिस व्यक्ति या वस्तु को चाहते हैं, जी जान से चाहते हैं, और जिसे घृणा करते है उससे तीव्र घृणा करते हैं।

आरम्भ से ही मेरे ऊपर उनकी कृपादृष्टि है। इसका कारण मेरी कम, उनकी पसन्द ही अधिक है।

यों तो सुमनजी का नाम सन् १९४९-५० में ही सुन लिया था, बाद में उनकी पुस्तकों के माध्यम से भी उन्हें जाना, परन्तु उनके साथ मेरा साक्षात्कार मई १९५५ में हुआ। उनके ही एक मित्र मुझे दिलशाद कालोनी में मकान दिलवाने की गरज से उनके पास ले गये थे। तभी सुमनजी ने मुझे अपना लिया और आज तक अपना वरद हस्त मेरे ऊपर यथावत् बनाये हुए है। ११ वर्ष की अवधि में ऐसे अनेक प्रसंग आये जबकि उन्होंने मेरी अत्यधिक सहायता की। मैं कई बार सोचता हूँ कि मुझमें तो ऐसा कुछ नहीं कि वे मेरा इतना खयाल रखें, पर यह उनके स्वभाव का एक पक्ष है। अक्सर महत्त्वहीन सामान्य व्यक्ति को महत्त्व देकर असाधारणता देने की उनकी आदत है।

इसी प्रसंग में मुझे याद आया श्री बनवारीलाल का विदाई-समारोह। वे दिलशाद कालोनी में डी० एल० एफ० के एक स्टोर-कीपर थे। सुमनजी डी० एल० एफ० की इस कालोनी में सबसे पहले आकर बसे थे। उनसे श्री बनवारीलाल का सम्पर्क होना स्वाभाविक था। किन्तु जिस समय मैं दिलशाद कालोनी में जाकर रहा, उस समय तक श्री

बनवारीलाल, सुमनजी के परिवार के एकअभिन्न अग बन चुके थे। बहुत लोगो को उनके सुमनजी के रिश्तेदार होने का भी धोखा होता था। कुछ दिनो बाद जब उनका वहाँ से तबादला हो गया तो सुमनजी की प्रेरणा से उनकी विदाई मे एक समारोह का आयोजन किया गया। जल्सा हुआ, भाषण हुए, दावत हुई, फोटो खिचे—कैसा हृदयस्पर्शी दृश्य था—उस समारोह को देखकर कोई नही कह सकता था कि डी० एल० एफ० के एक मामूली स्टोर-कीपर का तबादला हो गया है, उसकी विदाई मे यह आयोजन हो रहा है। बल्कि यही लगता था कि कोई अफसर या बडा आदमी बिछुडकर जा रहा है जिसके उपलक्ष्य मे ये ठाठदार पार्टी हो रही है। मेरे मन पर इस घटना का बडा गहरा प्रभाव पडा तथा सुमनजी के प्रति मन मे भक्तिभाव जगा।

एक ओर जहाँ सुमनजी मे हम पर-दु ख-कातरता तथा आत्मीयता पाते है, वहाँ उनमे एक ऐसे दृढ व्यक्तित्व के भी दर्शन होते है जो अपनी धुन का धनी है, अपने सकल्प पर अडिग है और अपने निश्चय पर अविचल है। लाख मुसीबतें, हजार बाधाएँ भी उन्हे अपने मार्ग से विचलित नही कर सकती। सन् १९५५ की बाढ के दिनो मे कौन कह सकता था कि कोई दिलशाद कालोनी मे रह पायेगा। सारी बस्ती और आस-पास के जगल की तो बात ही क्या, मकानो के कमरो मे सात-सात, आठ-आठ फुट पानी था। सारी किताबें, फरनीचर और अन्य सामान बाढ़ की भेट चढ गया था। सारी बस्ती खाली हो गई थी, फिर भी केवल सुमनजी की छत पर से एक आवाज (फोन द्वारा) आती थी, दुनिया ने लाख समझाया, घर वालो का भी धैर्य छूट गया, परन्तु क्या मजाल जो सुमनजी के निश्चय मे बाल-भर भी फर्क आया हो। वह आज तक वही उसी बस्ती और उसी मकान मे कायम है। बाढे आती है और निकल जाती है, पर यह अपनी धुन का धनी अपने स्थान पर खडा है।

सुमनजी के चरित्र की यह विशेषता उनके पैत्रिक सस्कारो, गुरुकुल की शिक्षा तथा क्रान्तिकारी सघर्षपूर्ण जीवन की देन है। लाहौर से निष्कासित किये जाने तथा अपने गाँव बाबूगढ (मेरठ) मे नजरबन्द किये जाने पर जिन विपत्तियो का सामना सुमनजी और उनके परिवार को करना पडा, उनमे साधारण आदमी तो खडा ही न रह पाता। यह उनके लिए गर्व की बात है कि उन्होने उन आपदाओ का मुकाबला न केवल उद्यम, साहस एव दिलेरी से किया अपितु कालचक्र की उस कठोर भट्टी मे से वे कुदन बनकर निकले। 'वन्दी के गान' से सुमनजी के उन दिनो के भाव विचारो का परिचय मिलता है।

सुमनजी की साहित्य-साधना तथा जन-सेवा मे उनकी धर्मपत्नी का भी भारी योग है। जीवन मे शायद ही कोई ऐसा अवसर आया हो जबकि उन्होंने अपनी सुविधा-असुविधा तथा कष्टो की शिकायत की हो, वरना सुमनजी को उनसे हमेशा अपने कार्यों मे सहयोग ही मिला है। उनमे सुमनजी से अपने-आपको परिस्थितियो के अनुसार ढाल लेने

की प्रबल क्षमता है। औरों की सुख सुविधा के लिए अपने को कष्ट में डालना उनका सहज स्वभाव बन गया है। किसी भी समय कोई अतिथि आ जाय, वहाँ उसका बराबर स्वागत सत्कार होगा। समय हो, न हो, भोजन जलपान आदि की तत्काल व्यवस्था अवश्य होगी। इसके लिए सुमनजी को न तो कुछ कहने की आवश्यकता है और न ही आगन्तुक को। सुमन परिवार की एक विशेषता यह है कि उसमें आत्म सन्तोष और थोड़े में गुजारा कर लेने की प्रबल भावना पाई जाती है। आवश्यकता भर मिल जाय, जिससे अपनी मोटी मोटी जरूरत पूरी हो जायें और अतिथियों का स्वागत सत्कार भी होता रहे।

सुमनजी का यह फक्कड़पन केवल घर में ही देखने को मिलता हो, सो बात नहीं। प्रवास में तो वे और भी अलमस्त हो जाते हैं। गत वर्ष पुण्य श्लोक स्व० दद्दा के मासिक श्राद्ध पर वे दिल्ली से झाँसी (चिरगाँव) गये तो मुझे भी अपने साथ ले गये। शाम को दफ्तर में फोन आया, 'तुम्हें आज रात की ट्रेन से मेरे साथ झाँसी चलना है तैयार होकर आठ बजे तक दिलशाद कालोनी आ जाओ। आदेश में कुछ अधिकार युक्तता भी थी। सुमनजी के साथ प्रवास का अवसर, फिर चिरगाँव तीर्थ की यात्रा—दिक्कता के बावजूद मैं साथ जाने का लोभ संवरण न कर सका।

रास्ते भर हर स्टेशन पर सुमनजी के प्रशंसक, हितैषी, मित्र उन्हें मिलने आते रहे ग्वालियर स्टेशन पर तो कुछ प्रेमी सज्जन पूरा भोजन ही लेकर उपस्थित थे। झाँसी पहुँचे तो श्रद्धेय वर्माजी का आदमी लिवाने आया था। झाँसी भर में सुमनजी के आने की धूम थी ज्यों ही पहुँचे, मिलने आने वालों का ताँता लग गया। साहित्यिक चर्चा, कुछ प्रकाशकों की, कुछ सम्पादकों की। मगर बातों का सिलसिला खत्म ही न होता था, बीच बीच में कुछ खान पान चलता रहता था, सुमनजी का वह रूप जो झाँसी में देखा, दिल्ली में तो कभी देखने में ही नहीं आया था। नये शहर में आने के बाद अकेलेपन, अजनबीपन का अनुभव होता है, परन्तु सुमनजी तो जैसे दिल्ली में वैसे ही झाँसी, ग्वालियर में। शायद देश के अन्य भागों में भी वे उतने ही लोकप्रिय होंगे। बड़े बड़े साहित्यकारों के साथ सत्संग, छोटे-मोटे उदीयमान साहित्यकारों की भक्ति भावना—किसी किसी की भूमिका लिखने की फरमाइश, अपनी रचनाओं के लम्बे चौड़े पाठ, (कई बार बड़ी बोरियत होती थी) पर सुमनजी कभी किसी का दिल नहीं तोड़ते थे। वहाँ समारोहों, गोष्ठियों में सुमनजी का रूप ही कुछ अनूठा देखा, जहाँ जाते थे, वे ही वे दिखाई पड़ते थे, बोलते थे तो लोग मुग्ध होकर उन्हें सुनते थे। मासिक श्राद्ध की सभा में तो सुमनजी ने श्रोताओं को सचमुच रुला दिया था। वक्तृत्व अपने-आप में एक कला है, सुमनजी जहाँ लेखनी के (गद्य पद्य दोनों) धनी हैं वहाँ वाणी के भी वरद पुत्र हैं, श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने की अद्भुत क्षमता उनकी वाणी में है। उनके चरणों में मेरा प्रणाम।

६६५/२२६–ए १, कैलाशनगर, दिल्ली ३१

ममतामयी दृष्टि

श्री श्यामसुन्दर गर्ग

जुलाई, १९४६ की बात है, जब पहले-पहल मैंने दिल्ली के राजहंस प्रेस में श्री सुमनजी के दर्शन किये थे। उन दिनों वे राजहंस प्रेस में मुद्रित होने वाली पुस्तकों के सम्पादन और प्रूफरीडिंग के लिए नये-नये ही आये थे। मैं अपने बड़े भाई श्री श्यामकुमार गर्ग (अध्यक्ष राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स) के साथ उसी प्रेस में हिन्दी-कम्पोजिंग के काम को देखता था। आते ही सुमनजी से मेरा टकराव हो गया—जब उन्होंने राष्ट्रनायक श्री जवाहरलाल नेहरू की नई पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी' के मशीन-प्रूफ को इतना रंग दिया कि उससे हमारे कम्पोजीटर चौंक उठे।

प्रूफों में सुमनजी ने इतने संशोधन तथा परिवर्तन किये थे कि यदि उनके अनुसार उनको ठीक किया जाता तो सारा दिन फार्म को तैयार करने में ही लग जाता। सुमनजी अपनी बात पर अड़े हुए थे कि ये सब अशुद्धियाँ ठीक होने के बाद ही फार्म मशीन पर छपने दिया जायगा और मेरा कहना था कि यदि आपको इसमें फेर-बदल ही करनी है तो आप कापियों में कर दें।

बात बहुत बढ़ गई तो प्रेस के मुख्य प्रबन्धक श्री सन्तराम 'विचित्र' को बीच में मदाखलत करनी पड़ी और यह निश्चय हुआ कि इस फार्म की अशुद्धियाँ प्रेस के खर्चे पर लगा दी जाएँ और भविष्य में जो भी पुस्तक कम्पोजिंग में दी जाय, सुमनजी को दिखाये बिना शुरू न की जाय ताकि यदि आवश्यकता हो, तो उसमें परिवर्तन कर दिये जाएँ।

उस दिन मैंने जाना और समझा कि सुमनजी किसी भी पुस्तक में जाती हुई अशुद्धि के लिए कितने सतर्क, सचेष्ट और उद्विग्न रहते हैं।

उन दिनों दिल्ली में शुद्ध, स्वच्छ और सुन्दर कलात्मक मुद्रण के लिए राजहंस प्रेस की तूती बोल रही थी। इसका समस्त श्रेय विचित्रजी की सूझ-बूझ, सुव्यवस्था, कार्य-तत्परता तथा सुमनजी की सम्पादन-पटुता को ही दिया जा सकता है। राजधानी तथा बाहर के प्रायः सभी प्रमुख प्रकाशकों की पुस्तकें राजहंस प्रेस में मुद्रणार्थ आती थीं। भारती भण्डार, सस्ता साहित्य मण्डल, नवयुग साहित्य सदन, शिवलाल अग्रवाल आदि भारत के कई ऐसे प्रमुख प्रकाशक थे, जिनकी अधिकांश पुस्तकें उन दिनों राजहंस प्रेस में ही मुद्रित होती थीं। प्रेस में सुमनजी की उपस्थिति ही उनकी निश्चिन्तता का कारण थी। वे सभी इस बात से पूर्ण आश्वस्त थे कि सुमनजी के रहते उनके प्रकाशन सर्वांशतः शुद्ध और सुन्दर छपेंगे। विचित्रजी की सुव्यवस्था तथा सुबुद्धि बाबू (राजहंस प्रेस के मालिक, जो भगवान् के प्यारे हो गये।) की सहृदयता और सुजनता ने तो उसमें मणि-कांचन-संयोग का कार्य किया था।

कैसी भी बडी-से-बडी और कठिन-से-कठिन पुस्तक प्रेस मे आ जाती, सुमनजी अपनी व्यवहारकुशलता तथा कार्यतत्परता से उसे यथा सुविधा यथा समय पूरा कराकर ही दम लेते।

शुरू-शुरू मे हमारे कम्पोजीटरो मे सुमनजी के सशोधनो के कारण जो घबराहट और उत्तेजना फैल गई थी, धीरे-धीरे उसने सुमनजी की सहृदयता के कारण प्रेम और बन्धुत्व का रूप धारण कर लिया, और एक समय ऐसा भी आया कि जिस काम को सुमनजी पूरा कराना चाहते उसे आनन-फानन मे पूरा कर डालते और जिसे न चाहते वह सचालको के लाख सिर पटकने पर भी लटका ही रह जाता।

सुमनजी की सहृदयता तथा सुजनता का परिचय मुझे तब मिला जब उन्होने हमारे साथ काम करने वाले एक कम्पोजीटर को कम्पोजिग का काम छुडाकर लेखन-कार्य की ओर उन्मुख किया। बात यह थी कि वह कम्पोजीटर शरीर से कमजोर था, और प्राय बीमार रहा करता था। सुमनजी ने न केवल उस दमघोटू काम से निजात दिलाई, बल्कि उसे सदा के लिए अपने सरक्षण मे ले लिया। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि रात-दिन कम्पोजिग मे लगे रहने के कारण उसकी जो प्रतिभा लोहा हो चुकी थी, वह थोडे ही दिनो मे सुमनजी के पारस-समान व्यक्तित्व का स्पर्श पाकर कुन्दन बन गई। इन महानुभाव का नाम करनसिह 'दुखी' था। सुमनजी ने 'दुखी' नाम को हटाकर उसे अपने नाम के आगे 'प्रभाकर' लिखने की सलाह दी, क्योकि करनसिह 'दुखी' हिन्दी प्रभाकर परीक्षा भी उत्तीर्ण थे। सुमनजी के साहचर्य से श्री प्रभाकर के जीवन मे जो परिवर्तन आया, उसीका सुपरिणाम यह है कि वे आज कई मौलिक पुस्तको के लेखक तथा सफल अध्यापक के रूप मे अपनी जीविका अर्जित कर रहे है। स्वास्थ्य भी उनका अब बहुत अच्छा हो गया है। इसमे कोई सन्देह नही कि यदि श्री करनसिह कम्पोजिग की लाइन मे ही रहते तो कदाचित् वे अब तक 'दुखी' नाम को ही सार्थक करते रहते।

सुमनजी के अत्यधिक निकट आने का सौभाग्य मुझे उन दिनो और भी अधिक मिला, जब सन् १९४७ मे राजधानी मे साम्प्रदायिक उत्पात हो रहे थे। सुमनजी का मकान मेरे ही मकान के पास पहाडी धीरज पर हाथीखाने मे था और मैं उन दिनो सर्वथा एकाकी जीवन बिता रहा था। सुमनजी ने अपना परिवार दगो के कारण गाँव मे भेज दिया था। रात को करनसिह प्रभाकर और मैं साथ-साथ भोजन किया करते थे। सुमनजी रोजाना रात मे किसी-न किसी कवि या साहित्यिकार को अपने यहाँ आमत्रित कर लिया करते और खूब गोष्ठियाँ जमती। एक घटना मुझे अभी तक भूली नही। शायद जुलाई का महीना था। जमना मे बाढ आ जाने और साम्प्रदायिक दगो के आतक के कारण उन दिनो एक रात को श्री महावीर अधिकारी और श्री गोपालकृष्ण कौल गाजियाबाद से जाकर सुमनजी के मकान पर ही ठहर गये थे।

हम सब एकाकी थे। अत रोजाना शाम को बूटी (भग) छानने का कार्यक्रम

सम्पन्न हुआ करता था। दैनिक कार्यक्रम के अनुसार उस दिन तो और भी जमकर छनी। इतनी कि मैंने भोजन बनाते समय भूल से परौंवठों में भी पिट्ठी की जगह भांग भर दी। बूटी की लहर में भोजन इतना अधिक खाया गया कि कुछ कह नहीं सकते, फिर भी रात में रबडी तथा बरफी की जरूरत महसूस होने लगी। करफ्यू लगा हुआ था और ब्लैक-आउट भी। मैंने किसी-न-किसी तरह कहीं से रबडी व बरफी का जुगाड किया। फिर क्या था, रबडी तथा बरफी खाने के बाद बूटी (भांग) ने और भी रंग पकडा। रात के १० बजे अचानक क्या देखता हूँ कि श्री महावीर अधिकारी घबराकर कह रहे हैं—"बन्धु, मेरा तो दिल बैठा जा रहा है और यदि तुरन्त कोई उपचार नहीं किया गया तो मैं अभी दम तोड दूंगा।" अधिकारीजी कहते जा रहे थे—"देखो, मेरी तो पिंडलियां कांप रही हैं, सिर चक्कर खा रहा है, जल्दी कुछ करो, यदि मुझे बचाना है तो!" अधिकारीजी की हालत देखकर हम सभी का नशा हिरन हो गया और सबके हाथों के तोते उड गये। हमें परेशानी में पडा देखकर पड़ौस की एक महिला तुरन्त आम का अचार ले आई और हम लोगों ने अधिकारीजी को अचार खिला-खिलाकर उनके कष्ट का उपचार किया और तब ही राहत की सांस ले सके। यह घटना मुझे आज तक भुलाये नहीं भूलती और अधिकारी-जी के मस्तिष्क पर तो इसका इतना अधिक असर हुआ है कि अभी तक वे सुमनजी के घर आने में भी कतराते हैं।

सन् १९५० में जब हम दोनों भाइयों ने राजहंस प्रेस का काम छोडकर अपना ही प्रेस लगाने की योजना बनाई तो ठाकुर राजबहादुरसिंह तथा सुमनजी ने न केवल हमें बढावा दिया बल्कि रात-दिन हमारे साथ बैठकर प्रेस को जमाया। प्रेस का नाम 'हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस' भी उन्हीं का सुझाया हुआ है। प्रेस में सबसे पहली पुस्तक भी सुमनजी की छपी थी और कई दिन तक उन्होंने रात-रात भर जागकर उस पुस्तक को तैयार करवाया था। वह पुस्तक आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट की ओर से प्रकाशित हुई थी।

कई बार ऐसा भी हुआ है कि सुमनजी प्रेस में बैठकर लिखते गए और पुस्तक कम्पोज होती गई। ऐसी स्थिति में भी मैंने उनकी ध्यान-मुद्रा तथा कर्मठता में तनिक भी कमी नहीं देखी। वे 'हर हाल मगन, हर हाल चुस्त' रहने वाले प्राणी हैं। उनकी 'जीवन-स्मृतियाँ' तथा 'साहित्य विवेचन' नामक पुस्तकों के पहले संस्करण मेरे ही प्रेस में इतने कम समय में और इतने सुन्दर छपे थे कि उनसे मेरे प्रेस की कार्य-क्षमता तथा प्रसिद्धि को चार चांद लग गए और इन्हीं कारणों से १९६२ में भारत सरकार से सुन्दर छपाई पर राजपुरस्कार श्रेष्ठता प्रमाणपत्र भी मिला। आज इस प्रेस का हिन्दी-मुद्रण में जो स्थान तथा महत्त्व है उसकी नींव में सुमनजी के अटूट परिश्रम, निःस्वार्थ निष्ठा तथा सौजन्यपूर्ण मैत्री के बीज निहित हैं। साहित्यिक अकादेमी में चले जाने के कारण सुमनजी यद्यपि हमारे कार्य में उतनी रुचि नहीं ले पाते, किन्तु उनके स्नेह तथा सौजन्य में अब भी कोई कमी नहीं आई। वे अब भी प्रेस में घण्टों-घण्टों जमकर अपने सरस व्यंग्य-विनोद

से यहाँ के वातावरण को मुखरित करते रहते हैं।

एक और घटना राजधानी के सुप्रसिद्ध युवा कवि श्री शम्भुनाथ शेष के निधन की है। सुमनजी ने ऐसा अनुभव किया मानो शेष के रूप में उनका बडा भाई उनसे असमय में छिन गया। उनके असहाय परिवार की अवस्था देखकर उनका मन इतना उद्विग्न हुआ कि राजधानी के अन्य मित्रों के सहयोग से सुमनजी ने हजारों रुपये की राशि थोड़े ही दिनों में एकत्रित कर दी और इस राशि को एक व्यावसायिक संस्थान में लगाकर उसका ब्याज नियमित रूप से उस परिवार के भरण पोषण के लिए देते रहने की व्यवस्था कर दी। शेषजी का बडा लडका रवीन्द्र उन दिनों छोटा ही था और वह आठवीं कक्षा में पढता था। सुमनजी ने डी० ए० वी० हायर सेकण्डरी स्कूल के प्रिंसिपल श्री हरिश्चन्द्र से कहकर उसकी फीस तथा पुस्तकों की स्थायी व्यवस्था करके उसके अध्ययन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। प्रसन्नता की बात है कि चिरंजीव रवीन्द्र अब बी० ए० (आनर्स) करके अग्रजी एम० ए० की तैयारी कर रहा है। सुमनजी ने प्रयत्न करके उसे आकाशवाणी में भी लगवा दिया है।

ऐसी अनेक घटनाएं हैं। जिनसे सुमनजी की सहृदयता पर सेवा परायणता और मित्र धर्म निर्वाह पर अच्छा प्रभाव पडता है।

मेरे ही विवाह में वे दिल्ली से टक्सी करके बड़े कठिन मार्गों को पार करते हुए रात में आठ बजे मेरी ससुराल में पहुँचे थे। जाड़े के दिन थे और उन्हें दमे का दौरा पड़कर ही चुका था। इतनी भयंकर परिस्थिति में भी उन्होंने अपना निश्चय नहीं छोडा। जो निश्चय कर लिया उसे पूरा करके दम लेने की आदत उनकी है।

एक और घटना उस समय की है जब दिल्ली के हिन्दी-कम्पोजिंग-शास्त्र के महारथी और सुमनजी के एकनिष्ठ साथी श्री श्यामसुन्दर शर्मा उर्फ गुरुजी का फरवरी १९५६ में देहान्त हुआ। उनके देहान्त का दुष्प्रभाव सुमनजी पर इतना पडा कि उन्होंने उनके निधन के बीस दिन बाद ही यह लाइन छोड दी और वे अकादेमी में पहुँच गए। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से सुमनजी को प्रेस व्यवस्थापकी ही अधिक लाभदायक थी किन्तु शर्माजी के निधन से उन्होंने ऐसा अनुभव किया जैसे उनकी कमर ही टूट गई हो। सुमनजी ने अकादेमी में जाकर भी शर्माजी के असहाय परिजनों के भरण पोषण का कितना ध्यान रखा इसका ज्वलन्त प्रमाण मुझे उस समय देखने को मिला जबकि उन्होंने जगह जगह घूमकर उनके परिवार के निर्वाह के लिए लगभग चार हजार रुपये की राशि एकत्र कर दी और मुझे ही उसको खर्च करने का अधिकार दे दिया। प्रत्येक मास ६०) शर्माजी के परिवार को तब तक दिये जाते रहे जब तक कि यह राशि समाप्त नहीं हो गई। इस बीच उनके सुपुत्र जगदीश की शिक्षा का यथोचित ध्यान भी उन्होंने रखा और अब वह लडका दिल्ली के ही एक प्रेस में अपनी जीविका सफलता से चला रहा है।

मैं तो कहूँगा सुमनजी सिर्फ छपने के लिए आई किसी पुस्तक की भाषा में

आवश्यक संसाधन करने के स्तर पर ध्यान देने की तरह अपने मित्रों के कष्ट-कलाप में भी उसी ममतामयी दृष्टि से योगदान देते हैं। वे जीवन को भी किसी शिल्पी की रचना के रूप में देखने के चिर-अभ्यस्त हैं।

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली ६

एक सदाबहार फूल

श्री शैवाल सत्यार्थी

कुमन, गुलाब, जूही, मोगरा, बेगम, बेलिया—अनगिनत नाम हैं, असंख्य फूल हैं। 'सदाबहार'—इस नाम का कोई फूल है या नहीं—मुझे नहीं मालूम। किन्तु, दिल्ली की दिलशाद कालोनी में खिलने-मुस्कराने वाले एक ऐसे ही सदाबहार फूल की कहानी मैं यहाँ लिखने बैठा हूँ।

सुमनदा से मेरे परिचय का प्रारम्भ पत्रों के द्वारा ही हुआ। साक्षात्कार तो बहुत बाद की बात है। पत्रों में प्रतिबिम्बित, उनके सौजन्य तथा स्नेह-सारल्य ने मुझे असाधारण रूप से प्रभावित किया।

मैं सोचता हूँ, बड़ा या अच्छा लेखक होने से पहले—यह ज्यादा जरूरी है कि उसके पास एक अच्छा और बड़ा मनुष्य-मन भी हो। अन्यथा सब व्यर्थ है, महत्त्वहीन है। महान् लेखक तो अनेक हैं, किन्तु, किस सीमा तक वे मनुष्य भी हैं—यह प्रश्न, यह आशंका—बड़ी सहज और स्वाभाविक है?

मुझे लगा कि यह अनिवार्य और प्रथम गुण सुमनदा में है—पहले वे मनुष्य हैं, फिर कुछ और।

और या पत्राचार चलता रहा।

कि एक दिन एक खत मिला—"मैं मैथिलीशरणजी के मासिक श्राद्ध में सम्मिलित होने चिरगाँव जा रहा हूँ। तुम टिफन-सहित ग्वालियर स्टेशन पर मिलो। भोजन से अधिक, मिलने की इच्छा है।

—सुमन"

टिफन तो तैयार हो गया। स्टेशन भी पहुँच गए। यहाँ तक तो सब-कुछ बहुत आसान था। अब मुश्किल यह थी कि उन्हें पहचाना कैसे जाए? पहले कभी देखा नहीं—न प्रत्यक्ष में, और न चित्र ही।...ट्रेन भी आ गई, दिल्ली से आने वाली मेल—इतनी बड़ी ट्रेन, ढेर सारे लोग—फिर भी पहचानना मुश्किल न हुआ। इतना सब कोलाहल भी सुमन-

दा के अलग-थलग व्यक्तित्व को ढँक—छिपा न सका—गौर वर्ण, भगवा रंग की शेरवानी, चूड़ीदार पायजामा और बड़ी आत्मीय मुस्कान।

झाँसी से लौटकर लगभग दो दिन वे ग्वालियर रहे। मैं चाहता था कि उनसे कुछ प्रश्न पूछूँ, किन्तु, घर पर ठहरने के बावजूद भी इसके लिए समय नहीं मिल सका—गोष्ठियाँ, सम्मान-समारोह और चाय डिनर से फुरसत तो हो। और सुमनजी वापस चले गए। प्रश्न निरुत्तरित ही रहे।

इस बात को एक वर्ष से ऊपर हो गया। सुमनजी के पत्र बराबर आते रहे।
फिर अभी, उस दिन उनका एक टैलीग्राम मिला

"Reaching by mail 14th

—Suman'

इस बार सुमनजी ने कहा—"तुमको बार-बार लिखा, तुम प्रश्न लेकर दिल्ली नहीं आए—तो मैं उत्तर लेकर खुद ही ग्वालियर आ गया हूँ।"

किन्तु, इस बार भी वही तमाशा—रात को साहित्य-सभा में सम्मान। लौटे तो बहुत देर हो गई। जैसे-तैसे 'इन्टरव्यू' के लिए बैठे तो नींद आने लगी। तय हुआ कि सुबह जल्दी उठ जाएँगे।

सुबह के प्रश्नोत्तर-कुछ यों है—

"··· प्रेरणा के वे कौन से प्रेरक-सूत्र है, जिन्होंने आपको साहित्यकार बनाया ?" उस सुबह का मेरा पहला प्रश्न था।

' 'भारत भारती' के माध्यम से मेरे मन में राष्ट्रीयता के अंकुर उगे। देव से कविता के रीतिकालीन सौंदर्य के प्रति आकृष्ट हुआ और प्रसाद के 'आँसू' तथा 'कामायनी' ने जीवन में पीड़ा तथा अभाव के प्रति सहज सहानुभूति जगाई।" सुमनजी थोड़ा रुके, फिर बोले—"कबीर का फक्कड़पन, रहीम का स्वाभिमान और तुलसी की परोपकार परायणता—मेरी जीवन-यात्रा में प्रमुख सहायक रहे हैं।

"पद्मसिंह शर्मा और महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मुझे समीक्षा तथा पत्रकारिता की ओर उन्मुख किया। अपने छात्र जीवन में पद्मसिंहजी और द्विवेदीजी के मध्य होने वाले पत्राचार तथा वार्तालाप को पढ़ तथा सुनकर संस्मरण-साहित्य के प्रति मेरा रुझान हुआ और ऐसी रचनाएँ ढूँढ-ढूँढकर पढ़ीं।

"स्विट मार्डेन की 'आगे बढ़ो' तथा जान स्टुअर्ट मिल की 'लिबर्टी'—(जिसका अनुवाद 'स्वाधीनता' के नाम से द्विवेदीजी ने किया था) नामक पुस्तकों से मुझे बहुत प्रेरणा मिली।

"छात्र-जीवन ही में—'हिन्दू पंच' का बलिदान-अंक तथा 'चाँद' का फाँसी-अंक देखा और देश के लिए कुछ कर गुजरने तथा स्वाधीनता-संघर्ष में स्वयं को होम देने की भावना

का भी बीजारोपण हुआ। आर्यसमाजी वातावरण मे पढने के कारण, सुधारवादी प्रवृत्तियो की ओर सहज झुकाव हुआ और धार्मिक मतान्धता तथा कठमुल्लापन के प्रति विद्रोह जगा।

"जिन दिनो मेरे साहित्यकार ने आँखें खोली, असहयोग-आन्दोलन जोरो पर था—अत धार्मिक कट्टरता पर राष्ट्रीय रग अधिक चढ गया।

"पत्रकार, कवि और लेखक बनने की भावना शुरू से ही थी, क्योंकि मैं अपने छात्र-जीवन से ही उन्हें लोकोत्तर पुरुष समझता था। मेरी मान्यता थी कि सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय और साहित्यिक जागरण की दिशा मे इनका अभूतपूर्व योगदान रहता है, तो वैसा ही बनने का मन हुआ।"

"एक काम करते हैं शैवाल"—सुमनजी ने कहा—"शेव के लिए पानी गर्म करवा दो, तो मैं शेव भी करता जाऊँगा और प्रश्नोत्तर भी चलते रहेंगे।"

और फिर, उन्होने शेव बनानी शुरू कर दी।

"अब मैं आपसे एक राजनीतिक प्रश्न करता हूँ"—मैंने कहा—"सास्कृतिक दृष्टिकोण से, आपको प्रिय राजनीतिक नेता कौन है ?"

"गाधी'—शेव रोककर वे बोले—"क्योंकि मैं उनको भारत की सास्कृतिक धरोहर ही मानता हूँ। उनमे राजनीति के साथ साथ धार्मिक, सास्कृतिक और साहित्यिक चेतना का असाधारण समन्वय था। उन्होने भारतीय स्वाधीनता के लिए उन सब ही उपकरणो को अपनाया था कि जिनका श्रीगणेश महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के द्वारा देश की जनता मे पहले से ही कर दिया था। और या, दयानन्द के अधूरे कार्य को ही—गाधी ने आगे बढाया, ऐसी मेरी मान्यता है।"

इसके पश्चात्, और प्रश्नोत्तर न हो पाए—कारण, प्रो० जगदीश तोमर, भाई शैलेन्द्र गोयल, सुरेश 'आनन्द' आदि कवि-मित्र आ गए। फिर और-और चर्चाएँ प्रारम्भ हो गईं।

"ग्वालियर मे—भाई शैवालजी का निवास, आपके साहित्य अकादेमी के ऑफिस से कम नही है—साहित्यिक सम्मिलन तथा गोष्ठियो का केन्द्र, ग्वालियर की सर्वश्रेष्ठ गोष्ठियाँ यहाँ हुई हैं।" जगदीशजी ने सुमनजी से कहा।

"यही तो मैं देख रहा हूँ।" शेव बन चुकी थी, सुमनजी ने उठते हुए कहा।

भोजन के लिए जब हम बैठे तो, कुछ हल्के-फुल्के प्रश्न तब भी चलते रहे।

प्रश्न आपका प्रिय फूल ?

उत्तर गुलाब।

प्रश्न . पसन्दगी के वस्त्र ?

उत्तर खादी। विशेषतः हल्के रंगों की। धोती, कुर्ता और सदरी (वॉस्कट)।

प्रश्न . प्रिय रंग ?

उत्तर केसरिया। प्रारम्भ से ही मेरी शिक्षा गुरुकुल के वातावरण में हुई थी, अतः शौर्य, साहस और पराक्रम की गाथाएँ पढ़ने के कारण—मन में वैसे ही संस्कार जम गए थे कि राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए जूझने वाले वीरों ने केसरिया बाना धारण किया था और वैसा ही बनने की तीव्र ललक मेरे मन में भी थी।"

प्रश्न *साहित्य की किस विधा में आपने लिखना प्रारम्भ किया ?*

उत्तर कविता में।

प्रश्न तो वह कौन-सी काव्य-पंक्ति है जिसे आपने सर्वाधिक गुनगुनाया हो ?

उत्तर **"किसी की याद की मेरे हृदय में हूल होती है,**
विरह के इन क्षणों में क्यों व्यथा के शूल बोती है।"

तांगा जब स्टेशन के लिए चल दिया, तो रास्ते में मैंने सुमनजी से—उनके जीवन की उस घटना के विषय में पूछा, जो चिर-स्मरणीय बन गई हो ?

हमारा तांगा, ग्वालियर की विख्यात 'स्वर्णरेखा' नदी (इतिहास प्रसिद्ध नाला, जो अब इस नाम से पुकारा जाता है) के उस किनारे पर पहुँच चुका था जहाँ उसे लाँघ न पाने के कारण, महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के साथ युद्ध करती हुई वीरगति को प्राप्त हुई थी। यहाँ रानी की एक प्राचीन समाधि है, और एक नवीन मूर्ति भी—जिसका उद्घाटन पिछले दिनों श्री यशवंतराव चह्वाण ने किया था—नाले और मूर्ति को देखते-देखते, मुझे लगा कि सुमनजी की आँखों में एक चमक आ गई है।

"यों तो जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिन्हें प्रयत्न करके भी नहीं भूल पाता।" अतीत के अंतराल में डूबते हुए-से उन्होंने कहा—"किन्तु सन् १९५५ में जब जमना में भयंकर बाढ़ आई तो, मेरे मकान में भी लगभग पाँच-छः फुट पानी आ गया। बच्चों को पहले ही बाढ़ की आशंका से बाहर भेज दिया था—मैं अकेला ही वहाँ रह गया था। आबादी के और लोग भी अपने-अपने मकान खाली कर चुके थे।

"तो, उस भयावह रात्रि के नीरव सन्नाटे में—बारह बजे के लगभग वहाँ पानी आया—और जब, मेरे जीवन भर की अर्जित पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाओं तथा लेखों की बहुत-सी कतरनों की मेरी सम्पत्ति, और बड़े प्रयत्न से सहेजे गए पत्र पानी में तैरने लगे तो मुझे लगा कि स्वयं मेरी जल-समाधि हो गई है। बहुत-सा सामान मैं नहीं बचा पाया, जिसका मुझे आज भी दुःख है। चौबीस घण्टों के अनवरत संघर्ष के पश्चात्, बहुत-सी चीज़ें ऊपर चढ़ा पाया। उन दिनों टेलीफोन ही मेरा साथी था, उसीके माध्यम से मैंने अपने लिए सहायता के उपक्रम जुटाए थे। आलमारियों की पुस्तकें पानी के कारण, आपस में इतनी चिपक गई थीं कि पानी उतर जाने के बाद—उनमें से उनको निकालना कठिन हो गया और आरी से काटकर ही वे निकाली जा सकीं।

"मेरी पुस्तकों की बर्बादी के साक्षी—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी अवश्य हैं, जो बाढ़ के कुछ दिनों बाद मेरे घर पधारे थे। मेरे बाढ़ में घिर जाने का समाचार, जब पत्रों में छपा तो, अनेक इष्ट-मित्रों ने मुझसे सम्पर्क किया—लेकिन उनमें से जगत्प्रकाश चतुर्वेदी नाव द्वारा मेरे पास तक पहुँचे। और यों, नाव से ही जिन्दगी चली।

"सांप, मेंढक और चूहा, एक ही डाली पर—मौत के खौफ ने उन्हें इकट्ठा कर दिया था। घर में कई सांप थे, किन्तु डर कोई न था।

"प्रसादजी की 'कामायनी' का प्रलय-दृश्य साक्षात् उपस्थित था—और उस सुनसान—बियाबान जंगल में मैं निपट अकेला था—एक विवश और मौन दर्शक।"

ट्रेन में अभी देर थी। स्टेशन के 'टी-हाउस' में हम लोग जा बैठे। हम लोगों के आग्रह पर सुमनजी ने अपनी एक कविता सुनाई

क्यों पूछ रहे मुझसे परिचय?

मैं दीन कुटी का वह पंछी,
जिसकी पीड़ा ही चिर संगी,
जो सदा वियोगी रहा, कभी पा सका न अपना स्वप्न-निलय।
क्यों पूछ रहे मुझसे परिचय?

"अब तुम्हारा कोई प्रश्न तो शेष नहीं है, शैवाल?" सुमनजी ने पूछा।

"प्रश्न तो अभी अनेक शेष हैं किन्तु आपका जीवन-दर्शन क्या है—यह जानने के लिए मैं अधिक उत्सुक हूं?" मैंने कह दिया।

हम लोग प्लेटफार्म पर निकल आए। वहीं चहलकदमी करते हुए, सुमनजी ने बताया—"मैं अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही अध्ययनशील रहा हूँ। संघर्ष को मैं अपना मूल ध्येय मानता हूं। वास्तव में निरन्तर संघर्ष करते रहने की भावना तथा अनवरत अध्ययन करने की लालसा ने ही मुझे इस क्षेत्र में बढ़ने की प्रेरणा दी है। जिन कार्यों को कोई भी न कर सके, ऐसे कार्यों में सहज ही हाथ लगाने की मेरी आदत-सी हो गई है। लेखन, अध्ययन, चिन्तन और मनन के बौद्धिक कार्य से जब जी ऊबने लगता है, तब जन-सेवा की पावन मन्दाकिनी में अवगाहन करके मैं अपने में ताजगी पाता हूं।

"जीवन में समझौता करने का मेरा स्वभाव नहीं। किसी भी प्रश्न पर अड़ जाने और अपनी ही बात मनवाने की मेरी आदत है। इस दुष्प्रवृत्ति के कारण मुझे कभी-कभी बहुत हानि भी उठानी पड़ी है। मैं टूट जाना अधिक पसन्द करता हूँ, झुकना नहीं जानता। यदि ऐसा न होता तो, मैं भी राजनीति के पथ पर अग्रसर होकर कहीं का कहीं पहुँच गया होता। आज के युग में विचार-स्वातन्त्र्य की बलि देकर, झूठी प्रतिष्ठा का ढोंग किया जाता है।

"अपनी रचनाओं के माध्यम से मैंने इतने प्रशंसक तथा शुभैषी पाठक प्राप्त किए हैं कि उनसे मुझे अपने कर्म-पथ पर निरन्तर बढ़ते जाने की अदम्य प्रेरणा मिलती रही है।

मुझे यह कहने मे तनिक भी सकोच नही कि ऐसे पाठको का अमित प्यार पाने का सौभाग्य मुझे अपनी साहित्य-यात्रा मे पग-पग पर मिला है।

"कबीर का फक्कडपन, रहीम का स्वाभिमान और तुलसी की परोपकार परायणता मेरे जीवन के दृढ आधार-स्तम्भ है।'

ट्रेन आ गई और सुमनजी को लेकर चली भी गई—किन्तु, उस सदाबहार फूल की खुशबू वातावरण मे बिखर गई, और बिखरी ही रही।

ज्ञानमन्दिर प्रकाशन,
ग्वालियर १

'सुमन' बिखेरता सुगन्ध

श्री हिमांशु श्रीवास्तव

सन्ध्या के लगभग चार बज रहे थे। मैं अपने अग्रजतुल्य कवि श्री रामप्रिय मिश्र 'लालधुआँ' के साथ पटना के रेलवे स्टेशन पर उस द्वार के सामने खडा था, जिस द्वार से मुसाफिर बाहर निकल रहे थे। दिल्ली से अभी अभी एक गाडी पहुँची थी। बहुत-से मुसाफिर उधर मे आ रहे थे। यह कहना मुश्किल था कि इन मुसाफिरो मे हमारा अतिथि कौन है!

एकाएक मैंने द्वार पर आते हुए एक सावले और लम्बे व्यक्ति से पूछा, "क्या आप दिल्ली से आ रहे है?"

उत्तर मिला, "जी हाँ।"

मैंने दूसरा प्रश्न किया "क्या आपका शुभ नाम श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' है?'

इस प्रश्न का उत्तर 'हा' मे न मिलकर इन शब्दो मे मिला, 'ओह, तो आप हिमाशुजी हैं। वाह भई, पहचान गए? बडा कष्ट हुआ आपको।'

लालधुआजी ने मुझसे बतलाया था कि सुमनजी मेरे सहपाठी रह चुके है और उस रोज रेलवे-प्लेटफार्म पर सुमनजी ने जैसे ही मुझसे हाथ मिलाया, मुझे कहना पडा, 'कृपया अब आप अपने सहपाठी श्री रामप्रिय मिश्र 'लालधुआ' से मिलिए।"

मैं सुमनजी को पहचान गया और लालधुआजी नही पहचान सके, यह कोई बडी बात नही है। दोनो को बिछुडे बहुत रोज हो भी तो गए थे। परन्तु, सुमनजी इसके लिए सबसे मेरी प्रशसा करते रहे।

मैं उन दिनो ज्ञानपीठ (पटना) के प्रकाशन विभाग का काम देखता था।

लालधुआँजी भी वही थे। सुमनजी से पत्राचार यों प्रारम्भ हुआ कि ज्ञानपीठ और साहित्य अकादेमी के बीच यह बात तय हुई थी कि कन्नड के उपन्यास 'शान्तला' का हिन्दी-अनुवाद ज्ञानपीठ मे प्रकाशित होना है। सारी बातें तय हो चुकी थीं, पर पाण्डुलिपि नही आ रही थी। एक रोज मदनमोहन पाण्डेय ने मुझसे कहा, "साहित्य अकादेमी से 'शान्तला' की पाण्डुलिपि नही आ रही है। आप डॉ० प्रभाकर माचवे को अपने हस्ताक्षर से एक पत्र लिखें।"

मदनमोहन पाण्डेय ज्ञानपीठ के प्रबन्ध-निर्देशक है। उन्हे यह बात मालूम थी कि डॉ० प्रभाकर माचवे के साथ मेरे बहुत अच्छे सम्बन्ध है। मैंने साहित्य अकादेमी के पते पर ही प्रभाकर माचवे को पत्र लिखा और अनुरोध किया कि वे कृपापूर्वक 'शान्तला' की पाण्डुलिपि भिजवा दे। पर, इसका उत्तर मिला भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' के हस्ताक्षर से। उत्तर अनुकूल था और कहा गया था कि पाण्डुलिपि शीघ्र ही भेजी जाएगी।

फिर 'शान्तला' की पाण्डुलिपि आई। मुद्रण-कार्य होने लगा। यहाँ सुमनजी के एक गुण पर प्रकाश डालना आवश्यक है। 'शान्तला' का प्रूफ साहित्य अकादेमी को हमारे यहाँ से एक बार देखकर भेजा जाता था। दिल्ली से जो प्रूफ आते, वे सुमनजी के पढे होते थे। ग्रन्थ-सम्पादन म सुमनजी बडे दक्ष है। वाक्य-गठन पर तो वे ध्यान देते ही है, हिज्जे की एकरूपता को नहीं भूलत। साढे चार सौ पृष्ठो के उपन्यास के प्रूफ बराबर आते-जाते रहे, लेकिन हिज्जे म उनसे कही भी चूक नही हो पाई। मैं अकेले मे उनकी प्रशसा किया करता था और अब तो लिखकर कर रहा हूँ।

तो पहली बार उस समय सुमनजी पटना आए थे, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के वार्षिकोत्सव मे साहित्य अकादेमी का प्रतिनिधित्व करने।

सुमनजी को हमने आग्रहपूर्वक ज्ञानपीठ मे ही ठहराया और उनका अधिकाश समय मेरे ही साथ बीता—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् म, बाजार मे, और साहित्यिक मित्रो के यहाँ।

सौभाग्य से तब दिनकरजी भी पटना मे ही थे। मैंने सुमनजी के सम्मान मे एक गोष्ठी आयोजित की।

दिनकरजी से कहा, "एक कवि-सम्मेलन भी होगा। आप सभापतित्व कीजिए।"

दिनकरजी बोले, "अच्छी बात है।"

तब न जाने मेरे मन मे क्या आया, मैंने दिनकरजी से पूछा, "आप खुश तो है?"

दिनकरजी ने कहा, "खुश तो हूँ ही। सुमनजी मेरे बडे प्यारे हैं। मगर सुनो भाई, मुझे भी कविता पढने का समय देना होगा।"

सोचिए, तब मैंने कितनी प्रसन्नता का अनुभव किया होगा। मैंने कहा, "आप तो सभापति ही रहेंगे। बडे कवि अक्सर पीछे अपनी कविताओं का पाठ करते हैं।"

दिनकरजी हँस पडे।

गोष्ठी हुई और बडी सफल रही। पटना के प्राय सभी प्रमुख कवि पधारे। बीच बीच म ठहाके दिल्लगी। मुझे स्मरण है कि तब हमने सुमनजी से भी कविता-पाठ करने का अनुरोध किया था और उन्होने अपनी एकाधिक कविताएँ सुनाई थी। तब हर कोई प्रसन्न था और सुमनजी अपनी मिलनसारिता की सुगन्ध बिखेर रहे थे।

सम्भवत चौथे रोज सुमनजी ने मुझसे कहा सुनो यार जरा दिनकरजी के यहाँ चलो।

मैं चलने को तैयार हो गया।

दिनकरजी अन्दर थे। खबर दी गई तो निकले। मेरा खयाल है कि तब वे सम्भवत काव्य-सृजन म लगे थे। चेहरा गम्भीर था। पर एक मिनट बाद वे हल्के नजर आए। हम चाय पीने लगे तो दिनकरजी ने मेरी ओर सिगरेट का पकेट बढा दिया। मैंने एक बार सुमनजी की ओर देखा तो वे बोले सकोच क्यो करते हो ले लो।

तब दिनकरजी बोले देखो प्यारे कप्स्टेन है।

इससे पहले मुझे स्मरण नही है कि दिनकरजी के सामने बठकर मैंने कभी सिगरेट पी थी।

दिल्ली के साहित्यिक अखाड की बाते चल पडी। सुमनजी ने सबकी प्रशसा की। किसी की शिकायत नही। हाँ बीच म दिनकरजी ने एक-दो बार मेरे स्वास्थ्य के विषय मे पूछा क्योकि उस भट से एक साल पहले मुझे लकवा मार गया था।

अब तो कई साल बीत गए। सुमनजी कई बार पटना पधारे और मुझे ढूढकर मिले। जसे ही आए तो जहा टिके वही से फोन किया। बुलाया क्या स्वय आने को ही तैयार रहे। यह उनका बडप्पन है।

सुमनजी-जसे दोस्तनवाज साहित्यकार विरल होते है। यहा तो हर साहित्यिक पर दूसरे साहित्यिक के लिए जासूस होता है। वास्तविक व्यक्तित्व को जेब के हवाले करता है और एक सभय समय पर परिवत्तनशील व्यक्तित्व को ओढकर सामने आता है।

बिना किसी स्वार्थ के या भावी स्वार्थ की आशा किए बिना (और भला मुझ जसे अकिंचन स उनका स्वार्थ भी क्या सधता ?) वे जब भी मिले मुझसे एक बहुत बडे प्रकाशक का उपन्यास देने के लिए कहते रहे। बार-बार बोले अच्छी रायल्टी मिलेगी। वास्तव म उस प्रकाशक के यहाँ से मेरी रचनाए प्रकाशित होने से मेरी भी प्रतिष्ठा बढती पर मैं कुछ कर न सका। सुमनजी ने खुलकर कहा तुम्हारी रचनाए साधारण लोगो के यहा स प्रकाशित नही होनी चाहिएँ। लकिन मैं समझता रहा कि सुमनजी मेरा उत्साह बढाते है। अब इस सम्बन्ध मे वे मुझसे नही कहते शायद वे मेरे सन्तोष को देखकर दुखी हो गए।

मैं यहाँ एक बात स्पष्ट कर दू। इस सम्बन्ध मे मैंने सोचा कि प्रकाशक अन्तत

'बनिया' होता है। एक ओर यह सुमनजी की बात रखेगा और दूसरी ओर इनसे एक के बदले दस का लाभ उठा लेगा।

आजकल किसी की साहित्यिक प्रतिभा की नाप-तौल करना बड़ा कठिन हो गया है क्योंकि साहित्यिक मठाधीश तराजू अपने हाथों में रखे हुए है। जैसे सड़े हुए आलू को ग्राहक सब्जी बेचने वाले को तराजू पर चढ़ाने ही नहीं देता, वैसे ही जो साहित्यकार किसी मठविशेष की अधीनता नहीं स्वीकार किए रहता है, उसे ये मठाधीश तराजू पर चढ़ने ही नहीं देते। साहित्य समीक्षा और पत्र-पत्रिका—इन दोनों ही क्षेत्रों में ऐसे ऐसे मठाधीश विराजमान हैं।

मेरे-जैसे साहित्यकार की दृष्टि में यह प्रसन्नता की बात है कि सुमनजी ने न तो किसी साहित्यिक मठ की अधीनता स्वीकार की, और न वे स्वयं मठाधीश बने। यदि ऐसी बात होती, तो अब तक सुमनजी के दर्जनों काव्य-संग्रह प्रकाश में आए होते, अनेक ग्रन्थ चर्चा के विषय बने होते। चुपचाप बैठा हुआ देख रहा हूँ कि आज बहुत से मठाधीशों की उन सारी रचनाओं से गम्भीर अर्थ निकाले जा रहे हैं, जिनमें भाव, भाषा और शैली के साथ मात्र अनर्थ किया गया है।

हम दोनों अकेले में घण्टों साथ रहे हैं। साहित्य-सम्बन्धी बातें हुई हैं। सुमनजी ने किसी साहित्यकार के प्रति अनास्था अथवा घृणा नहीं व्यक्त की। उनके व्यक्तित्व की न तो बैठक में परदा टँगा है, न रसोईघर में।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने पचास वर्ष पूरे कर लिये हैं और इस अवसर पर यह विशाल ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह मेरे लिए अति प्रसन्नता का विषय है कि अब हम जीवित अवस्था में ही अपने श्रेष्ठजनों का सम्मान करना जानने लगे हैं। उनकी मृत्यु के बाद 'अमुकजी स्मारक समिति' के लिए चन्दा-बही की छपाई की परम्परा बन्द होनी चाहिए।

मैं नहीं जानता, मेरी आयु कितने वर्ष की है, कब तक जीवित रहूँगा। परन्तु, यदि जीवित रहा, तो इस बात की प्रतीक्षा करूँगा कि जब सुमनजी सौ साल के हों, तब भी उनकी जयन्ती मनाई जाए, अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित हो और उसमें भी मेरा एक संस्मरण उनके विषय में हो।

ईश्वर मेरे इस बड़े भाई-तुल्य निश्छल, निष्कपट और सहृदय साहित्यकार को दीर्घायु करे, यही उससे प्रार्थना है।

खजांची रोड, पटना ४

दिलशाद साहित्यकार

श्री शिवकुमार गोयल

सुप्रसिद्ध हिन्दी-सेवी, सुकवि, आलोचक एव सहृदय व्यक्तित्व के धनी, आदरणीय श्री क्षेमचन्द्र जी 'सुमन जिला मेरठ की उन विभूतियो मे से है जिनके व्यक्तित्व एव कृतित्व के कारण मेरठ का नाम ऊँचा हुआ है। सुमनजी की गणना देश के शीर्षस्थ साहित्यकारो म है।

श्री सुमनजी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९५६ मे दिल्ली के 'नवभारत टाइम्स' के कार्यालय मे भाई श्री फतहचन्द शर्मा 'आराधक ने कराया था। वैसे वे पिताजी (भक्त रामशरणदासजी) से काफी समय पूव से ही परिचित थे। उस प्रथम भेंट के शुभावसर पर ही मैं श्री सुमनजी क सरल तथा सहृदय व्यक्तित्व स आकर्षित हो गया था। फिर तो अनेक बार उनस भेट करने व प्ररणा प्राप्त करने का मुझे अवसर मिला। मैंने सुमनजी के अन्दर एक महान् व निस्पृह व्यक्तित्व क दशन किये। मैंने उन्ह एक व्यक्ति नही, अपितु 'सजीव सस्था' के रूप मे ही सदैव निहारा।

बाबूगढ (मेरठ) मे जन्म लेने के कारण सुमनजी को मेरठ ही क्या अपने समस्त जनपद से ही विशेष आकषण व लगाव रहा है। मेरठ, हापुड व गाजियाबाद म उनके मित्रो की भारी सख्या है। 'सुमन ही जो ठहरे। कुछ ही क्षण म, एक बार की भेंट म ही वे मन पर पूरी तरह से छा जाते हैं। उनके सरल तथा निश्छल व्यक्तित्व क जादू मे कोई भी बच नही सकता।

मेरठ मे भी मैंने अनेक बार सुमनजी को स्व० श्री मदनगोपाल सिंहल अथवा दैनिक 'प्रभात के सम्पादक श्री वि० स० विनोद के यहाँ कभी घण्टा घण्टा ठहाके लगाते, कभी गम्भीरतापूर्वक किसी विषय पर चर्चा करते और कभी कवि गोष्ठी म कविता पाठ करते बिलकुल निकट से देखा है। उनक चुटकुले, मीठे तीखे व्यग्य एव ठहाके कभी भी नीरसता को पास नही फटकने देते। उनका मुस्कराता हुआ मनस्वी चेहरा कभी किसी को मुरझाने नही देता एव सहयोग देने के लिए सदैव तत्पर रहने की उनकी उदात्त भावना कभी किसी को निराश नही होने देती।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सह-सम्पादक व मेर मित्र भाई श्री जयप्रकाश भारती का सन् १९६३ मे शुभ विवाह था। विवाह मे सम्मिलित होने के लिए श्री बाँकेबिहारी भटनागर, 'नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन, प्रसिद्ध कवि श्री वीरेन्द्र मिश्र, श्री बालस्वरूप राही, श्री गोविन्दप्रसाद केजरीवाल तथा आराधक आदि राजधानी क अनेक साहित्यकार बारात मे सम्मिलित होने के लिए मेरठ आये हुए थे। श्री सुमनजी का अभाव हम सभी को खटक रहा था। बारात की शोभा यात्रा प्रारम्भ ही हुई थी कि

अचानक मैंने देखा कि पीछे से आकर सुमनजी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया। देखते ही मैं खिल उठा। उनका हाथ छुआ तो देखा वह ज्वर से बुरी तरह से भुन रहे थे। भीषण कडकडाती ठण्ड मे, बीमार होते हुए भी वे दिल्ली से मेरठ भागे-भाग आये थे—अपने एक स्नेह-भाजन पत्रकार बन्धु को शुभाशीर्वाद देने के लिए। यह उनकी सहृदयता का ही प्रतीक है।

सुमनजी ने स्वाधीनता-आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया था। सन् १९४२ मे 'भारत छोडो' आन्दोलन मे वे लाहौर में गिरफ्तार किये गए। वे देश की स्वाधीनता के लिए फीरोजपुर जेल मे पूरे दो वर्ष तक यातनाएँ सहन करते रहे। पजाब सरकार द्वारा पजाब से निष्कासित कर दिये जाने पर वे अपने ग्राम बाबूगढ (मेरठ) आ गए। सुमनजी को सक्रिय नेता समझकर उत्तरप्रदेश सरकार ने बाबूगढ मे नजरबन्द कर दिया। लगभग दस मास तक वे अपने गाँव मे नजरबन्द रहे।

सुमनजी ने फीरोजपुर जेल मे 'कारा' नामक एक रोचक खण्ड-काव्य की रचना की थी। इस सुन्दर खण्ड काव्य मे सन् १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन का सरस वर्णन सुमनजी ने अनोखे ढग से किया है। 'कारा' में सुमनजी ने देश के युवकों का यों आह्वान किया है—

हम बढ़ें, हमारे जीवन मे, बरबस तूफान अधीर उठे।
सदियो से सोते भारत के, तरकस का तीखा तीर उठे॥
युग-युग से परवशता पिजरे, का बन्दी भारत कीर उठे।
है जग लगा जिसमे पावन, वह वीरों की शमशीर उठे॥
हम जलती आहो से रिपु के, प्राणो को जलता छोड़ चलें।
'जयहिन्द' हमारा नारा है, हम लालकिले की ओर चलें॥

सुमनजी ने जहाँ अपनी तेजस्वी लेखनी के माध्यम से स्वाधीनता-सग्राम मे योग दिया वहाँ उनकी ओजस्वी वाणी ने भी देश की तरुणाई को जागृत करके स्वाधीनता के अमर यज्ञ मे अपने को सहर्ष समर्पित करने का आह्वान भी किया। नजरबन्द रहते समय उन्होने 'कारा' के अतिरिक्त 'बन्दी के गान' नाम के काव्य-सकलन की रचना भी की थी। अगस्त क्रान्ति के रोचक इतिहास के रूप मे उनके 'हमारा सघर्ष', 'नेताजी सुभाष', 'आज़ादी की कहानी' आदि राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत ग्रन्थ उल्लेखनीय है।

मुझे श्रद्धेय प० बनारसीदास चतुर्वेदी से उपेक्षित क्रान्तिकारियो पर लिखने की प्रेरणा मिली। मैंने क्रान्तिकारियो पर काफी लिखा। सुमनजी ने अनेक बार मेरे लेखो की सराहना करके मुझे प्रोत्साहन दिया। क्योंकि श्री सुमनजी स्वय स्वाधीनता-सग्राम के एक सेनानी रहे हैं अत उन्हे क्रान्तिकारियो व शहीदो के प्रति भारी श्रद्धा है। उन्होने मुझसे एक दिन कहा था—"स्वाधीनता-सग्राम के उपेक्षित व अनजाने सेनानियों को प्रकाश में लाना अत्यावश्यक है, क्योकि आजादी की नीव के वास्तविक पत्थर तो वे ही है।"

सुमनजी ने गत दिनो 'कुरु प्रदेश के साहित्य-सेवी' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना हाथ मे ली है। उनकी धारणा है कि प्रादेशिक आधार पर साहित्यिक इतिहास लिखे जाने चाहिएँ।

१६ सितम्बर को सुमनजी की अपनी आयु के इक्यावनवे वर्ष मे पदार्पण कर रहे है। मैं भी इस शुभावसर पर अपने श्रद्धेय, प्रेरणा व प्रोत्साहन के अजस्र स्रोत एव निस्पृह साहित्य-सेवी के श्रीचरणो मे अपनी शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ। सुमनजी की जन्म-शताब्दी पिलखुवा मे मनाई जाए, यह मेरी हार्दिक आकाक्षा है।

पिलखुवा (मेरठ)

सुमनजी के सान्निध्य में

श्री प्रणवपुष्प कम्ठान

"मेरे सिर्फ दो दोस्त हैं बचपन के हरि भैया और दूसरे भाई कमलेश।" सुमनजी के 'हरि भैया' ही मेरे पिताश्री है। उन्ही पिताश्री के गुरुकुल के एक मात्र साथी, दोस्त, भाई, 'सुमनजी' मेरे पिता-तुल्य हैं। एक की आँख दुखी दूसरे की आँख रोई। कोई दुराव नही, कोई छिपाव नही। एक को दु ख-दर्द दूसरे ने पीडा महसूस की। सयोग ने, एक रास्ते पर जाने वाले दोनो मुसाफिरो को अलग-अलग पगडडियो पर छोड दिया। सुमनजी दिल्ली मे आकर व्यवस्थित हो गए और उनके 'हरि भैया' अभी भी अस्थिर हैं, तीन साल से अधिक एक जगह टिक नहीं पाते (डिप्टी-कलक्टर, मध्यप्रदेश), पत्रो के माध्यम से ही सुख और दु ख जानते रहे, जनाते रहे।

पूज्य दद्दा के प्रथम श्राद्ध दिवस पर, श्री सुमनजी दिल्ली से चिरगाँव गये। ग्वालियर के मोह एव हम लोगो की अपार श्रद्धा ने उनको रुकने के लिए विवश कर दिया। वह भाई श्रीपाल जैन के साथ रुक भी गये। मुझे खोजने का प्रयत्न किया तो धुन के धनी सुमनजी ने ढूँढ ही निकाला। मिले, ऐसे मिले, देखने वाले चकित। गले लगा लिया। सिर पर न जाने कब तक अपना वरद हस्त फेरते रहे। क्या-क्या पूछा और मैंने क्या-क्या उत्तर दिया, कुछ याद नहीं पडता। माँ सरस्वती के वरद पुत्र का समर्थ हस्त मेरे मस्तक पर था। सध्या को मध्य भारतीय हिन्दी सभा मे सुमनजी के सम्मान मे गोष्ठी आयोजित की गई। चर्चाएँ हुईं, रचनाएँ हुई और अन्त मे परिचय प्रारम्भ। मेरे गुरुवर डॉ० कोमलसिंह सोलकी, मत्री साहित्य सभा, परिचय सभी का करा रहे थे। मेरा नम्बर आना भी स्वाभाविक था। इसी बीच सुमनजी सोलकीजी से कह रहे थे, "भाई इसका

क्या परिचय ? अपना ही चिरजीव है।" सुमनजी बता रहे थे, सभी सुन रहे थे और मैं गौरव का अनुभव कर रहा था। सुबह कुछ अन्य मित्र आ गये, चर्चाएँ हुईं शंकाएँ हुईं और इन सबके अन्त में सुमनजी द्वारा समाधान। सभी सन्तुष्ट थे।

कुछ दिन सुमनजी के सान्निध्य में दिल्ली रहने का अवसर प्राप्त हुआ। सुबह से शाम, शाम ही नहीं, रात भी हो जाती, किन्तु एक मिनट भी छुटकारा नहीं। एकदम व्यस्त, बुरी तरह व्यस्त। सच बात तो यह है कि उनकी इतनी अधिक व्यस्तता से मैं ऊब भी जाता। किंतु उनमें वही ताजगी, वही प्रसन्नता, जो चलते समय मैंने घर पर देखी थी। प्रसन्नचित्त, परिचित मुस्कान, अद्भुत व्यक्तित्व। रात को दस बजे घर पर हम लोग ठिकाने लग पाते। घर पर डाक का अम्बार लगा रहता वे उसमें खो जाते, और मैं आराम से सो जाता। पुस्तकालय में अपनी पुस्तकें दिखाते समय अवश्य ही मैंने उनके मुख पर विषाद की एक लम्बी रेखा देखी थी। दुःख में डूबकर बताया, 'बस यही पुस्तकें बचा पाया हूँ, यहाँ की बाढ़ ने सब खत्म कर दिया। ऐसा लग रहा था न जाने उनको कितना कष्ट, कितनी पीड़ा है? अब इनको देखकर ही सन्तोष कर लेता हूँ।' हिन्दी की पूरी वर्णमाला 'अ से लेकर ज्ञ' तक के अक्षर वाले व्यक्तियों के पत्र सुरक्षित, क्रमबद्ध तिथिबद्ध रखे हैं। राम जाने, उनमें क्या-क्या है? सुमनजी को उन पत्रों से बहुत ही मोह, ममता, एवं रुचि है। जीवन की संचित निधि पत्रों में मधुर और तीखी स्मृतियाँ ही शेष हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व सुमनजी ने पुनः ग्वालियर की यात्रा की। इस बार की स्थिति कुछ अजब ही सी थी। उनके 'हरि भैया' शिवपुरी से चलकर और सुमनजी भारत की राजधानी दिल्ली से चलकर ग्वालियर आये, दो पुराने दोस्त फिर एक लम्बे अरसे के बाद मिले, गले मिले, आँखें छलछला आईं, गिले शिकायत किये। मैं तो बस यही जानता हूँ इस कलयुग में ऐसे दोस्त कम ही मिलते हैं। पता नहीं, मेरी कुछ प्रवृत्तियों का सुमनजी ने कैसे अनुभव किया। मुझे उस समय समझ में आया जब बस-स्टैंड पर वे समझाने लगे, 'साहित्य में कुछ नहीं धरा, पहले पढ़ लो, जमाना पढ़ाई का है, और तुम साहित्यकार बनने को तुले हो", वे कहते रहे, मैं सिर झुकाये सुनता रहा, "ऐसे काम नहीं चलेगा। सुन लो मुझे आश्वासन दो।" मैंने निर्णय के स्वर में सहमति प्रकट कर दी। प्यार से कहने लगे, "साहित्यकार बनो, नाम पैदा करो, मैं कब मना करता हूँ, पर भाई पढ़ने में यह सब विघ्न क्या?" इतना ही नहीं, मुझे उस समय आश्चर्य हुआ जब दिल्ली से सुमनजी का पत्र कुशलता से पहुँचने के स्थान पर यह आया

"प्रणव,

इस बार मैंने तुमसे जो बातें की हैं, उनकी ओर ध्यान देना, अन्यथा जीवन सफल नहीं हो सकेगा। पहले पढ़ लो, बाद में कुछ और करना। तुम्हारी गतिविधि जानकर अत्यन्त असन्तोष है। डटकर परीक्षा की तैयारी करो। पूर्ण

सन्तुष्टि उस दिन होगी जब परीक्षा म उत्तीण होने की खबर मिलगी।

सुमन

अपने प्रभु स मात्र यही कामना है कि मा भारती व इस भव्य पुत्र को शतायु करे। हम उनसे कुछ ग्रहण कर सक नई पीढी को उनसे अजस्र प्ररणा प्राप्त होती रहे। साहित्य मनीषी का स्वस्थ अध्ययन मनन एव चिन्तन हमारा पथ्य बने। बस ।

भारती भवन,
लक्ष्मीगज ग्वालियर

सुमनजी जैसा मैंने समझा

श्री मदन विरक्त

श्री क्षमचद्र सुमन देश के प्रतिभा सम्पन्न ओजस्वी एव राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत व्यक्तियो म हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन म उन्होने अपनी लेखनी द्वारा जो सेवाएँ राष्ट्र को अर्पित की है उन्हे भुलाया नही जा सकता।

मरा भी सुमन जी स गत दस वष से परिचय है। कई बार इ होने समय समय पर मेरा माग प्रदशन किया है साहित्य सेवा म रत रहने को प्ररणा दी है। जब मैं इनसे पहली बार मिला तो उस समय की यह घटना मुझ आज भी उनके स्नेह और सौहाद की याद दिलाती है।

महानन्द मिशन हरिजन कालिज गाजियाबाद मे दीक्षान्त समारोह का आयोजन विभिन्न कायक्रमो द्वारा सम्पन्न हो रहा था। ४ माच १९५५ शुक्रवार सायकाल ८ बज दीक्षान्त समारोह म एक अखिल भारतीय कवि सम्मलन का आयोजन हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री जयचन्द्र राय और श्री राधश्याम शलभ द्वारा किया गया। इस कवि सम्मेलन म देश के लगभग सभी प्रान्तो स प्रमुख कवियो के अतिरिक्त नये नये कवियो को भी निमन्त्रित किया गया था।

महानन्द मिशन हरिजन कालिज गाजियाबाद क दीक्षान्त समारोह म आयोजित कवि सम्मेलन का निमन्त्रण पत्र मुझ एक कवि के रूप म बुलन्दशहर भजा गया। तद नुसार मैं भी इस कवि सम्मेलन मे पहुँचा। सयोजक महोदय ने सक्षिप्त परिचय के साथ मदन और विरक्त को व्यग्य विनोदपूण शब्दो म पुकारते हुए मुझस कविता पाठ क लिए अनुरोध किया। मच पर बैठ हुए कवियो के जमघट स उठकर मैं माइक तक पहुँचा

और मैंने हिम्मत के साथ कविता पाठ आरम्भ कर दिया। मैं एक बार घबराया अवश्य (उस समय नया कवि जो था), किन्तु कविता-पाठ शुरू कर ही दिया। कविता के बोल थे—अकेला रहा हूँ अकेला रहूँगा।

मैं लगभग आधी कविता सुना चुका। जनता बड़े धैर्य के साथ मेरी कविता सुन रही थी। अध्यक्ष महोदय बार-बार मेरी पीठ पर आशीर्वाद का हाथ रखकर मेरा उत्साह बढ़ा रहे थे और मैं बड़ी सफलता के साथ कविता-पाठ में व्यस्त था। मैंने कविता समाप्त की। श्रोताओं ने तालियों की गड़गड़ाहट में कविता का अभिवादन और साथ ही ऊँचे शब्दों में दूसरी कविता सुनने की उत्सुकता प्रकट की।

मैं चिन्ता में पड़ गया यह सब देखकर कि कौन-सी रचना सुनाऊँ। क्योंकि कवि-सम्मेलन के लिए यह एक ही रचना मैंने उस समय अच्छी तरह से तैयार की थी। फिर भी कविता तो सुनानी ही थी। मैंने श्रोताओं का आभार प्रकट करते हुए हिम्मत के साथ दूसरी रचना सुनानी शुरू कर दी, जिसके बोल थे—हम मजदूरों की छाती पर मिलें चलाने वाले सुन!

यह रचना पहली रचना से एकदम भिन्न थी और श्रोता, संयोजक तथा कवि-बन्धु भी यह आश्चर्य कर रहे थे कि ऐसी रचना इसके कण्ठ में इसके द्वारा भी क्या रची जा सकती है?

इस रचना का भी मैंने पूरी सफलता से पाठ किया और अध्यक्ष महोदय की ओर झुकते हुए एक हाथ से उनके चरण छूने का प्रयास किया। क्योंकि आज की इस अखाड़ेबाजी के दंगल में कविताओं को पूरा सुनवा देना अध्यक्ष महोदय का ही काम था। कविता के प्रत्येक छन्द पर अध्यक्ष महोदय मेरी पीठ पर अपना हाथ रखते थे और मुझे उत्साहित करते थे। उनके प्रति मेरी श्रद्धा जम गई और उनकी मेरे प्रति। उन्होंने मुझे अपनी गोदी में भर लिया और अनेक प्यार भरे शब्दों में रचनाओं के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक भाव व्यक्त किये।

क्या आप जानते हैं वह कौन थे? वह थे श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', जिन्होंने मुझे समझा और मैंने उन्हें। रात भर उनके सान्निध्य में रहने का मौका मिला। उन्होंने मुझसे मेरे जन्म से उस दिन तक की मेरी सारी कहानी सुनी और मैंने उनकी।

राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर अनेक बार जेल-यातनाएँ सहकर कोई कवि या साहित्यकार माँ सरस्वती का उपासक बन जाए, यह उसका सौभाग्य ही समझिए। यह श्रेय सुमनजी को मिला। उन्होंने इस क्षेत्र में अपनी सेवाओं से तथा साहित्य-साधना में माँ सरस्वती का सम्मान किया।

एक आन्दोलनकारी, क्रान्तिकारी और माँ सरस्वती का पुजारी यह सब-कुछ श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के गुण हैं। दूसरों के लिए अपने आगे से रोटी का टुकड़ा भी उठाकर दे देना उनकी सदा की आदत रही है। राष्ट्रीय आन्दोलन में भी इसी भावना को लेकर अपना

धन, अपनी जायदाद और अपने वस्त्र आदि साधन तक भी दूसरो के लिए वे सदा देते रहे। इसी प्रकार साहित्यिक क्षेत्र मे भी उन्होने अनेक ग्रन्थो की रचना की और न जाने कितने फुटकर लेख और कविताएँ लिखी। वे भी राजनीति मे हिस्सा ले सकते है, 'नेता' बन सकते है लेकिन नही। वे तो हमेशा से 'देने' ही रहे है। इसलिए दूसरो को ज्ञान देना, दूसरो के कल्याण के लिए मार्गदर्शन करना, उनका प्रथम कर्तव्य रहा है। सुमनजी की जेब सदा खाली ही रहती हैं, क्योंकि मित्रो को पैसे की जरूरत जो रहती है।

सुमनजी आज भी वैसे के वैसे हैं। आज भी गरीब, असहाय, साहित्यकार और समाज-सेवी के लिए अपना सब-कुछ निछावर करने को तत्पर है। मुझे उनसे बडी प्रेरणा मिली है और इतना सघर्ष करते हुए, इतनी कुरबानी करते हुए जब उन्होने आज तक हिम्मत नही हारी, तो मैं कैसे हिम्मत हार जाऊँ, यह बात हर समय मेरे दिमाग मे रहती है। उनकी प्रेरणा से मैं उन्ही भावनाओं को मन मे लेकर साहित्य साधना और समाज-सेवा, दोनो म आगे बढने के लिए प्रयत्नशील हूँ। मेरी इतनी थोडी सी जिन्दगी का राज-धानी के साहित्यिक और समाज-सेवा के क्षेत्रो मे अपना एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है जो कभी नही मिट सकता। इस सबका श्रेय श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को है, जिन्होने आज से लगभग ग्यारह वर्ष पहले मुझे सघर्ष और साधना करने की प्रेरणा दी। मैं उनका आभारी हूँ। मेरी कामना है कि वे दीर्घायु हो।

१६६, पुरानी बिरला लाइन,
सब्जी मडी, दिल्ली-७

सहज और सरल मानव

डॉ० र० श० केलकर

युग के साथ जीवन के मूल्य भी बदलते रहते हैं, पर जीवन की चेतना नही बदला करती। इसीलिए मानव जितनी चाहे वैज्ञानिक उन्नति कर ले, पर फिर भी वह रहेगा मानव ही। यही बात सुमनजी के बारे मे भी कही जा सकती है। साहित्यिक जीवन मे प्रगति करने के बाद भी सुमनजी वही हैं जो पहले थे—यानी मानव के मानव ही रहे। देश बदला, दिल्ली बदली, साहित्य की विधाएँ बदली, पर सुमनजी के मानव मे जरा भी परिवर्तन नही हुआ।

सुमनजी से मेरा प्रथम परिचय साहित्य अकादेमी के दफ्तर मे २ अप्रैल सन् १९५९ को हुआ था। मुझे अब भी याद है कि दोपहर को लगभग तीन बजे के करीब जब वे

मुझसे मिल रहे थे तो कुछ समय तक मैं उन्हें निर्निमेष देखता रहा था। गांधी टोपी-विहीन केश, विकुंचित मस्तक, लम्बा खादी का कुरता, उस पर खुले बटनों वाली जवाहर-वास्कट, सफेद धोती, पैरों में चप्पल, कण्ठ बार-बार साफ करने के बाद भी भारी-भरकम आवाज़ आदि एक साथ उस मूर्ति में विद्यमान देखकर—जो मेरे सामने क्षेमचन्द्र 'सुमन' के नाम से अवतरित हुई थी—मैं कुछ सहम-सा गया था। मुझे लगा था कि इस व्यक्ति में दो विरोधी तत्त्व विद्यमान हैं—वह एक साथ कलम और खड्ग धारण किए है। इस विरोध के बारे में मैं बराबर सोचता रहा था। दिन बीतते गये। इस दौरान कई लोगों ने मुझसे इनकी प्रशंसा की और कई ने निन्दा की। पर इस निन्दा या स्तुति का मेरे मन पर ज़रा भी प्रभाव नहीं पड़ा।

सुमनजी को मैं केवल धारणा का विषय नहीं बनाना चाहता था बल्कि जानना चाहता था कि वे एक साथ इतने नरम-गरम क्यों हैं? इसीलिए मैं उनके व्यवहार को बड़ी ही बारीकी से देखता रहा था और लगभग दो साल के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जो नरम है वही गरम हो सकता है क्योंकि उनके व्यवहार से मेरे सम्मुख उस सत्य का उद्घाटन हो चुका था कि वे स्पष्ट वक्ता हैं—कटु आलोचक हैं। क्योंकि उनका हृदय निष्कपट है और अपनी स्पष्टवादिता में वे अपने कवि की मधुरिमा नहीं घोल पाते, इसीलिए जनता उनके निष्कपट हृदय को देख नहीं पाती। उनकी स्पष्टवादिता में मिठास के अभाव का कारण खोजते समय मुझे लगा था कि उसके लिए वे उत्तरदायी नहीं हैं। उनका जीवन ही इस तरह ढला है। उनकी आदर्शवादिता, मानवीय संवेदना और राष्ट्रीयता ने उन्हें नरम बनाया है और जीवन के कटु आघातों ने गरम। एक दिन वह आया जब मेरे इस निष्कर्ष का समर्थन अपने-आप ही हो गया।

बात दोपहर की थी। कार्यालय में कागज़ के हिसाब को लेकर कुछ झगड़ा खड़ा हो गया और सुमनजी बिगड़ उठे। मैंने अत्यन्त विनम्रता से उन्हें समझाने का प्रयत्न किया, "आप आपे से बाहर न हों और शान्ति से बात को समझने का प्रयत्न करें। जब तक आप यहाँ हैं, हिसाब ठीक से रखना तो सीखना ही होगा।" पर सुमनजी के ऊँचे भाषण ने मेरी विनम्र बात को तत्काल धराशायी कर दिया। वे और भी अधिक बिगड़ उठे और कहने लगे, "आपने भी अच्छी बात कही। हिसाब रखना ही आता तो अकादेमी में क्यों आता, अपनी प्रकाशन-संस्था ही न खड़ी कर देता!" सुमनजी की इस बात का मेरे पास कोई जवाब नहीं था। उनका उत्तर सुनकर मुझे हँसी आ गई। मैंने मुस्कराते हुए उनसे कहा, "सुमनजी, यह बात बिलकुल ठीक है कि आपको यहाँ नहीं आना चाहिए था। आप जन्मजात नेता हैं, अच्छा होता यदि आप नेता ही बने रहते। पर नेता बनकर भी तो हिसाब से आपकी छुट्टी न होती, बल्कि शायद और भी सही हिसाब रखना पड़ता। घर का हिसाब भी तो आप रखते होंगे? फिर यहाँ का हिसाब रखने में आपको क्या आपत्ति है?"

तब तक सुमनजी नरम पड़ चुके थे। वे हँसकर बोले, "यही तो सारी समस्या है।

घर का हिसाब भी श्रीमतीजी ही देखती हैं। आपके पवित्र सान्निध्य में यह भी कह दूं,"—उन्होंने गला साफ करते हुए कहा—"एक बार श्रीमतीजी ने कुछ सौदा लाने के लिए मुझे दस रुपये का एक नोट दिया था। मैं नोट लेकर उसी दुकान पर गया जहाँ से श्रीमतीजी सौदा लाया करती थी। जब दुकानदार ने उस वस्तु का भाव पौने दो रुपये सेर बताया तो मैंने बिगड़कर कहा—'भई तुम भी कमाल करते हो। तुम्हारी ही दुकान से यह वस्तु श्रीमतीजी सवा दो रुपये सेर ले जाती है और तुम मुझसे पौने दो रुपये कह रहे हो।'

"दुकानदार फौरन बोला—'अच्छा आपसे सवा दो ही ले लूंगा।' उसने सवा दो रुपये काटकर बाकी जो पैसे दिये, बिना गिने ही घर पहुँचकर मैंने वे श्रीमतीजी को थमा दिए और आराम की साँस ली। पर उस काण्ड का उपसंहार होना अभी बाकी था। श्रीमतीजी ने जब पैसे गिने तो भड़ककर बोली, 'इसमें तो आठ आने कम है।' मैंने सफाई देते हुए कहा—'ठीक तो है, दुकानदार मुझसे पौने दो रुपये माँग रहा था। बड़ी हीलो-हुज्जत के बाद उसने सवा दो रुपये लिये है।'

"श्रीमतीजी ने जो कुछ मुझसे कहा वह सब अब क्या कहूँ, पर वे फौरन दुकानदार के पास पहुँची और अठन्नी वसूल कर लाईं। तब कहीं मेरी समझ में आया कि पौने दो और सवा दो रुपये में आठ आने का अन्तर होता है। उसके बाद कभी भी घर का सौदा लाने को उन्होंने मुझसे नहीं कहा।"

यह है उनका मानव, जिस पर युग के वातावरण का रंग नहीं चढ़ा है। वे केवल दो टूक बात ही जानते है। जिस बात को वे गलत समझते है उसका डटकर विरोध करते हैं, पर जो मुसीबत में होता है उसके लिए उनके हृदय से सहानुभूति की अजस्र धारा फूट पड़ती है और उस समय वे सारे विरोध को भूल जाते हैं।

साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली १

सुमन : सौमनस्य

श्री रतनलाल जोशी

सुमनजी से मेरी जब-जब भेंट होती है तो हर बार महर्षि पतंजलि का यह सूत्र मेरी स्मृति पर कौंध जाता है

सत्वशुद्धि-सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय जयात्मदर्शन-
योग्यत्वानि च।

वास्तव मे, सुमन और सौमनस्य का प्रकृत न्याय उनके व्यक्तित्व मे बिना किसी बाधा के चरितार्थ होता है। पतंजलि की कसौटी पर सुमनजी को कसने का मेरा अभिप्राय उन्हे राजयोग या हठयोग का साधक सिद्ध करना नही है। योग के ये दोनो मार्ग उनके लिए अवरुद्ध है और सुमनजी भी उधर जाने की तबीयत नही रखते। किंतु चार आँखें होते ही उनके शिशु-सरल मुख पर जो मनमोहिनी मुसकान खिल जाती है वह आज के जमाने मे हजार मे एक चेहरे पर भी देखने को मिल जाये तो देखने वाले को अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिए। सुमनजी के मन की यही दुर्लभ सिद्धि मेरी स्मृति को खीच-कर पतंजलि के योग-सूत्रो तक ले जाती है और वहाँ मुझसे आग्रह करती है कि मैं उस जोड का मोती ढूंढूं।

अभिव्यक्तियो का पुंज ही तो व्यक्तित्व है, और अभिव्यक्तियाँ ? वे विशेष कुछ नही, महज नौकाएँ हैं, जो हमारे उपार्जनो को जीवन-सरिता मे ढोकर दूसरे तट पर ले जाती हैं। सुमनजी की कई अभिव्यक्तियाँ प्रकाश मे हैं। और, निश्चय ही वे उनके तप, स्वाध्याय और मधु-संचय-प्रवृत्ति की सिद्धियाँ हैं। वे काफी मूल्यवान हैं, हिन्दी के लिए और उनके स्वय के लिए भी ! और, जब मैं उनके स्वभाव की प्रकृत प्रफुल्लता को इन सारी अभिव्यक्तियो से बेहतर मानता हूँ तो मैं इन सिद्धियो की अवमानना नही करता, बल्कि उन्हे समवेत रूप मे परखकर ही उनके व्यक्तित्व के सम्मोहन की चर्चा करता हूँ।

उपार्जन बडे महत्त्व के होते हैं, कीर्ति की महक को भी कौन नजर-अन्दाज करेगा, सफलता के लोहे को भी कौन नही मानेगा और अभिव्यक्ति के कौशल के प्रदर्शन-मोह को तो ईश्वर भी काबू मे नही कर पाता। और, ये सब मनुष्य के व्यक्तित्व मे अभिन्न रूप से समाहित हैं। किन्तु व्यक्तित्व के सिलसिले मे जो महिमा हृदय और उस गंगोत्री से निकलने वाली सहृदयता की है, भला उसे कोई पहुँच सका है ! हृदय की मिठास से बढकर वही कुछ और भी है क्या ?

हृदयान्नापरः परः।

यह है हृदय की महिमा। हृदय के कारण ही तो जीव ईश्वर है। सुमनजी के

हृदय की निधि के बारे में मैं इस स्थापना को खींच-तान नहीं मानूंगा, क्योंकि आज हृदय की महिमा को जितनी बुलंदगी से कहने की जरूरत है उतनी पहले कभी नहीं थी। आज हमारे प्रयत्नों के द्वार पर ढेर-की-ढेर सिद्धियां चेरी बनकर खड़ी रहती हैं—यह प्रयत्न की विजय-यात्रा का युग है, कोई भी अर्जन आज असम्भव नहीं। किंतु यह प्रयत्न इतना समर्थ कहां है कि स्वाति बूंद बनकर मन की सीपी में मोती को जन्म दे सके, पेड़ की शाख पर फूल खिला सके।

हृदय की यही कुव्वत सुमनजी ने पाई है और इसीकी बदौलत वे आपको—हमको प्यारे लगते हैं, अनियारे लगते हैं—

को बिन मोल बिकात नहीं
मतिराम लहै मुसकान मिठाई!

बिकने बिकाने की ये बातें क्या आज पुरानी हो गई? रसविहीन ठूंठ रह गई? कैसे? अपनी मृत्यु से तीन महीने पहले आइंस्टीन अपने उन प्रेम पत्रों के जवाब लिखने बैठा था जिनको वह अपनी सत्तरह साल की उम्र से संजोये हुए था। ये प्रेम-पत्र आइंस्टीन की उस प्रेमिका के थे जो अपना हृदय उसे अर्पण कर चुकी थी—ऐसा अर्पण जिसे उसने आजीवन कुंवारी रहकर निभाया। विज्ञान की गुत्थियों में उलझा मन, कीर्ति-ख्याति से सुरभित जीवन आइंस्टीन को हृदय के इस अर्पण के सामने रीता लगा!

सुमनजी के सौमनस्य, उनके स्वभाव की सुगंध के प्रति अपना पक्षपात अप्राकृतिक या अनुचित मैं या नहीं मानता कि उन्होंने अपनी सारी कामयाबियों के बावजूद भाग्य की इस देन की दिल से रक्षा की है अपने को उँडेल-उँडेलकर उन्होंने जीवन के इस गुलाब को इन पचास बरसों तक सींचा है।

'दैनिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली १

कृतित्व

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

श्री फतहचन्द शर्मा 'आराधक'

राजधानी के साहित्यकारो में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' कवि और आलोचक के रूप में विशेष ख्याति अर्जित कर चुके हैं। अब तक उन्होने हिन्दी ससार को जो चार दर्जन से अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भेंट किये है उनमे कविता आलोचना, जीवनी एव इतिहास सम्बन्धी ग्रथ प्रमुख है। श्री सुमनजी की इन कृतियो में से तीन पुस्तकें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं और लगभग पाच छ ग्रथ विभिन्न विश्वविद्यालयो की परीक्षाओ मे पाठ्य-ग्रथ के रूप मे स्वीकृत हैं।

श्री सुमनजी के साहित्यिक जीवन के उत्कर्ष का श्रेय वास्तव मे उत्तर भारत की प्रसिद्ध शिक्षा-सस्था गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर को है, जहाँ पर उन्होने सपादकाचार्य प० पद्मसिंह शर्मा और आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ-जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारो तथा शिक्षा शास्त्रियो की देख रेख में ज्ञानार्जन किया था। वास्तव मे उनकी साहित्यिक प्रतिभा को विकसित करने में उक्त दो विभूतियों का बड़ा हाथ है।

श्री सुमनजी ने अब तक जितने भी ग्रन्थ लिखे है वे इस बात के प्रमाण हैं कि उनका अध्ययन व्यापक तथा प्रतिभा बहुमुखी है। एक कवि के रूप में सर्वप्रथम सुमनजी ने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया और बाद में पत्रकारिता अध्यापन और लेखन आदि के विभिन्न क्षेत्रो में अपनी प्रतिभा के ज्वलन्त कण बिखेरे है। उनकी 'मल्लिका', 'बन्दी के गान' और 'कारा' नामक प्रकाशित कृतियो को देखकर उनकी काव्य प्रतिभा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इनकी तीनो कृतियो की भूमिकाएँ क्रमश आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, श्री रामनाथ 'सुमन' तथा श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ने लिखी हैं। उनके साहित्य में जहाँ हमारे राष्ट्र निर्माताओ के यशस्वी जीवन का अकन किया गया है वहाँ उनके साहित्य पर नेताजी और आज़ाद हिन्द सेना तथा लाल किले की गौरव-गाथा भी अकित की गई है। इस सन्दर्भ मे 'हमारा सघर्ष', 'आज़ादी की कहानी', 'नये भारत के निर्माता', 'नेताजी सुभाष', 'लाल किले की ओर' आदि पुस्तकें विशिष्ट स्थान रखती है। उनका दृष्टिकोण सदा से जीवन मे महात्मा गाधी और उनके द्वारा परिचालित विचारधारा का पोषक रहा है। इस दृष्टि से भी उन्होने जो रचनाएँ आकलित की है, वे भी अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। 'काग्रेस का सक्षिप्त इतिहास', 'गाधी भजन माला' तथा 'बापू और हरिजन' नामक उनकी ऐसी ही कृतियाँ है। अन्तिम पुस्तक पर उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कार ही प्रदान नही किया, अपितु उसे अपने हरिजन-कल्याण-विभाग की ओर से प्रकाशित भी किया है। इसके विपरीत हिन्दी साहित्य के उन्नायक साहित्यिक महारथियो को भी उनकी लेखनी अपनी श्रद्धा के प्रसून चढाये बिना नही रही। इस क्रम मे उनके

'जैसा हमने देखा' और 'जीवन स्मृतियाँ' आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों के अतिरिक्त सुमनजी ने साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में भी जो कई ग्रंथ लिखे हैं, उन ग्रंथों में 'साहित्य विवेचन', 'हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति', 'हिन्दी साहित्य नये प्रयोग' तथा 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

नई प्रतिभाओं को आगे लाने का काम सुमनजी के जीवन का एक अंग-सा हो गया है। अभी पिछले दिनों नई पीढ़ी के प्रमुख गीतकार 'नीरज' और रामावतार त्यागी के सम्बन्ध में उनकी दो पुस्तकें 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि' नामक पुस्तक माला के अन्तर्गत प्रकाशित हुई हैं। इसी शृंखला में उनकी 'हिन्दी के लोकप्रिय गीतकार' नामक एक और पुस्तक अभी अप्रकाशित ही पड़ी है। जिसमें आज के लगभग बीस प्रमुखतम गीतकारों का परिचय बड़ी ही संवेदनपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ-साथ सुमनजी ने लगभग दो वर्ष तक प्रसिद्ध त्रैमासिक पत्रिका 'आलोचना' के संपादन में भी सहयोग दिया था। इनके कार्यकाल में 'आलोचना' के कई महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित हुए थे।

'सम्मेलन के सभापति' नाम से एक विशाल सन्दर्भ ग्रंथ तैयार करने की भी उनकी योजना है। इस ग्रन्थ में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभी सभापतियों की जीवनी तथा तत्कालीन भाषणों का संग्रह होगा। ग्रन्थ लगभग तैयार है। खेद है कि किसी अच्छे प्रकाशक के अभाव में वह अभी अप्रकाशित ही पड़ा है। हिन्दी में आत्म-चरित-सम्बन्धी साहित्य के अभाव का अनुभव करके हिन्दी के प्रतिनिधि साहित्यकारों के आत्म-चरित संग्रह करके उन्हें प्रकाशित करने का विचार भी उनके मन में बहुत दिन से है। यह सन्दर्भ ग्रंथ अपनी विशेषताओं के कारण अद्वितीय होगा। इसमें तीन खण्ड होंगे १ द्विवेदी काल, २ प्रगति काल और ३ अत्याधुनिक काल। द्विवेदी युग के साहित्यिकों के आत्म-चरित लगभग एकत्रित हो चुके हैं और इनका प्रथम प्रकाशन 'जीवन स्मृतियाँ' नाम से प्रकाशित भी हो चुका है। शेष दो खण्ड धीरे-धीरे तैयार होंगे। प्रयत्न जारी है। सुमनजी ने 'सरस्वती सहकार' नाम से हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से एक संस्था का भी सूत्रपात सन् १९५० में किया था। इस संस्था का काम लेखकों को प्रकाशक और प्रकाशकों को लेखक ढूँढकर देना था। कुछ दिन निस्वार्थ भाव से यह काम हुआ भी। सुमनजी ने इस संस्था के माध्यम से बहुत-से लेखकों और प्रकाशकों को अपूर्व सहायता प्रदान की। हिन्दी में यह अपने ढंग की यह एकमात्र संस्था थी। विदेशों में तो ऐसी अनेक संस्थाएँ चल रही हैं।

सुमनजीने अपने समस्त कार्यों में एक जो सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है वह है 'भारतीय साहित्य परिचय' नाम से भारत की समस्त प्रमुख प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य पर प्रकाश डालने वाली एक पुस्तकमाला का प्रकाशन और संपादन। इस पुस्तकमाला के अन्तर्गत लगभग ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा सत्रह और

पुस्तकें इस शृंखला में प्रकाशित करने की योजना है।

मैं सुमनजी की सूझ-बूझ पर गम्भीरतापूर्वक विचार करता हूँ तो इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि व ऐसे साहित्यिक कार्यों में हाथ डालते हैं, जिन्हे साधारणत कोई भी व्यक्ति या संस्था हाथ मे लेना नहीं पसन्द करती। अभी ३ वर्ष पूर्व उनकी 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' नामक एक छोटी-सी सम्पादित कृति ने हिन्दी साहित्य मे एक तहलका सा मचा दिया। हिन्दी में कदाचित् यही सबसे पहली पुस्तक है जिसकी पैंतीस हज़ार क लगभग प्रतियाँ एक वर्ष में बिक गईं। जो लोग कहते हैं कि हिन्दी-कविता बिकती नहीं, उसके पाठक नहीं है, उसके लिए सुमनजी ने एक प्रशस्त पथ तैयार कर दिया है।

सुमनजी की कार्य-प्रणाली कुछ ऐसी है कि वे एक काम मे से दूसरे-तीसरे काम का मार्ग भी ढूंढते रहते है। जब वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' नामक पुस्तक के सकलन और सम्पादन मे व्यस्त थ, उन्हीं दिनो उन्होंने मन ही मन यह सकल्प कर लिया था कि क्यों न उन महिलाओं की सेवाओं का भी मूल्यांकन किया जाये, जिन्होने अपनी काव्य-कृतियों से हिन्दी के भण्डार की अभिवृद्धि की है। परिणामत वे काम में जुट गए और लगभग एक वर्ष के कठोर परिश्रम और अनवरत अध्यवसाय के बल पर 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' नामक ऐसा सन्दर्भ-ग्रन्थ हिन्दी के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया, जो अपनी अनेक विशिष्टताओं के कारण हिन्दी-साहित्य म अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ मे महादेवी वर्मा से लेकर आज तक की १७५ कवयित्रियों द्वारा लिखे गए प्रेमगीत सकलित है। साथ ही प्रत्येक कवयित्री का जीवन-परिचय और चित्र भी इसमे दे दिया गया है।

आजकल भी वे चुप नहीं बैठे है। चुप बैठना जैसे उन्होंने सीखा ही नहीं। निरन्तर 'काव्य शास्त्र-विनोद' और साहित्य-चर्चा' जैसे उनका व्यसन हो गया है। निरन्तर अध्ययन और चिन्तन के बीच वे कोई-न-कोई ऐसी योजना तैयार कर लेते है, जो वास्तव मे निराली तो होती ही है, साथ ही उसका साहित्यिक महत्त्व भी होता है। इन दिनों उन्होंने 'नारी तेरे रूप अनेक' नामक एक बृहत् सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार किया है, जिसमें खडी बोली के प्राय सभी कवियो की ऐसी रचनाएँ आकलित है, जो उन्होने समय-समय पर नारी के सम्बन्ध में लिखी हैं। यह ग्रन्थ भी लगभग तैयार है और शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

यह सत्य है कि जब से सुमनजी साहित्य अकादेमी में चले गए है तब से उन्होंने इधर कम ध्यान दिया है, किन्तु फिर भी नये-पुराने लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन मे वे अब भी सहायता करते ही रहते है। इस प्रकार सुमनजी साहित्य को केवल व्यवसाय न मानकर उसे एक उदात्त सेवा के रूप मे सम्पादित करके अपना कार्य कर रहे हैं।

एफ १५, दिलशाद कॉलोनी,
शाहदरा, दिल्ली ३२

सुमनजी की साहित्य-सेवा

डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल

सुमनजी के सम्पूर्ण साहित्यिक कृतित्व पर विचार करते समय साहित्यिक क्षेत्र मे उनका एक निश्चित स्थान निर्धारित कर पाना कठिन प्रतीत होता है। उनमे कवि की प्रतिभा एव कल्पना-शक्ति, समीक्षक की आस्वादन-वृत्ति एव सूत्र-शैली, निबन्धकार की विवरण-वृत्ति एव व्याख्या क्षमता और पत्रकार एव सम्पादक की सचयन-वृत्ति तथा व्यवस्था-पटुता सम्मिलित रूप मे दृष्टिगोचर होती है। आज से बीस वर्ष पूर्व जब मैंने मेरठ नगर मे, मेरठ कॉलिज के अध्यापक के नाते प्रवेश किया था तब अनेक साहित्यिक समारोहो मे निरन्तर उनका नाम सुनते हुए मुझे उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय मे विशेष जिज्ञासा हुई थी। उनके नाम की जितनी चर्चा थी उतना उनका साहित्य न पाकर मेरे मन म यह प्रश्न भी उठा था कि तब फिर इतनी ख्याति का रहस्य क्या है, केवल प्रचार या कुछ ठोस कार्य भी ? क्रमश उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करने पर मै इस परिणाम पर पहुँचा कि वे साहित्य स्रष्टा की अपक्षा साहित्य के निर्माता अधिक है, सृजन की अपक्षा सगठन की प्रतिभा उनमे अधिक है। एक प्रकार से उन्होने अपनी सृजन-लालसा को,—अपने सर्वप्रथम प्रबुद्ध कवि को—साहित्य के प्रचार. प्रसार और साहित्य के वातावरण निमाण के लिए समर्पित कर दिया है। इसीलिए उन्हे साहित्य का सच्चा समर्थ सेवक कहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

सुमनजी के सम्पूण साहित्यिक कार्य की पृष्ठभूमि मे उनके गुरुकुल निवास (ज्वालापुर) और आर्यसमाज के सस्कारो की गहरी छाप विद्यमान है। इस प्रारम्भिक शिक्षण ने न केवल उनका कार्यक्षेत्र ही निश्चित किया, अपितु उन्ह कार्यविधि मे प्रशिक्षित भी किया। यदि वे गुरुकुल मे न रह होते तो कदाचित् कवि अर्थात् एक श्रेष्ठ गीतिकार ही बनते, यदि गुरुकुल मे उद्बुद्ध होन वाले कवि की ही रक्षा करते तो राष्ट्रीय धारा के एक श्रेष्ठ कवि बनते, परन्तु गुरुकुल के वातावरण, आर्यसमाज की शिक्षा और प्रतिभाशाली नेताओ एव विद्वानो के सम्पर्क ने उनकी प्रतिभा को विशेषत पत्रकारिता के क्षेत्र की ओर प्रेरित किया, जिसने क्रमश एक श्रेष्ठ सम्पादक और सकलनकर्ता के रूप मे उन्ह आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे प्रतिष्ठित किया है। साहित्य की अपेक्षा साहित्यकारो और साहित्यिक परिस्थितियो का उन्होने अधिक सफलतापूर्वक निर्माण किया है। इस कार्य मे गुरुकुल की अन्य देन ने भी उनकी विशेष सहायता की है और वह है उनकी सतत गम्भीर स्वाध्याय की प्रवृत्ति। उनकी समस्त साहित्य-साधना उनके इस स्वाध्याय से ज्योतित और परिपुष्ट है।

सुमनजी की साहित्य-सेवा तीन धाराओ मे विभाजित दिखलाई पडती है—

मौलिक साहित्य का सृजन, विकीर्ण साहित्य का संकलन-सम्पादन और साहित्यिक समारोहों की अध्यक्षता एवं उनमें किये गए अभिभाषण अथवा साहित्यिक योजनाओं के विषय में उनका पत्र-व्यवहार। यदि उनके पूरे कार्यक्षेत्र पर ही दृष्टिपात किया जाए तो एक चौथा पक्ष और भी है— 'लेखन, अध्ययन, चिन्तन, मनन के बौद्धिक कार्य से ऊबकर जनसेवा की पावन मन्दाकिनी में अवगाहन करके अपने में ताजगी लाना।'[1] जनसेवा की पावन मन्दाकिनी में अवगाहन की यही वृत्ति उन्हें दीक्षा स्वरूप गुरुकुल से प्राप्त हुई थी जिसने उन्हें कभी विशुद्ध साहित्यकार अर्थात् एकान्तसेवी साहित्य स्रष्टा नहीं बनने दिया। इसी ने उनकी नेतृत्व प्रतिभा को प्रबुद्ध किया और उन्हें विशेषतः साहित्य के संगठन-कार्य की ओर मोड़ दिया। सौभाग्य से उनका कवि और सहृदय रसास्वादक सदैव जागरूक रहा, जिससे उनकी साहित्य-सेवा में राजनीति की माया ने प्रवेश नहीं पाया, उसमें रूक्षता एवं कृत्रिमता नहीं आने पाई और वह अपने सांस्कृतिक मार्ग पर ही अग्रसर होती रही।

सुमनजी का मौलिक साहित्य, सम्पादित और संकलित की अपेक्षा परिमाण में सीमित और आकार में लघु होते हुए भी यह निश्चित विश्वास उत्पन्न करता है कि यदि वे लेखन के क्षेत्र में ही स्वयं को नियन्त्रित रखते तो हिन्दी के श्रेष्ठ गीतिकारों में अथवा उच्च श्रेणी के समीक्षकों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेते। हिन्दी साहित्य के विकास क्रम को परखने और इतिहास के उपकरण संग्रहीत करने की भी उनमें अपूर्व कुशलता है, पर इस क्षेत्र को भी वे अपना एकाग्र अध्यवसाय नहीं प्रदान कर पाये। उनके इस कार्य को व्यक्ति नहीं संस्थाओं की आवश्यकता है। जीवनी और संस्मरण लेखन के क्षेत्र में भी उनकी विशिष्ट प्रारम्भिक प्रतिभा झलकती है, पर इस क्षेत्र में भी दूसरों के लिए दिशा निर्देश करके वे स्वयं हट गए हैं। साहित्यिक शैली में यदि वे राष्ट्रीय अथवा स्वाधीनता संग्राम के इतिहास पर ही कोई बड़ा ग्रंथ लिखते तब वह भी एक विशिष्ट अनुकरणीय प्रयास होता। परन्तु साहित्य के माध्यम से जनसेवा की भावना ने उन्हें किसी एक विशिष्ट रचना-क्षेत्र में टिकने नहीं दिया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में, 'किसी भी मौलिक या सम्पादित रचना में हाथ लगाते समय मेरे सामने वे असंख्य पाठक होते हैं जो अच्छे साहित्य के अध्ययन की लालसा अपने मन में सँजोये रहते हैं।'[2] असंख्य पाठकों की चिन्ता रखने वाले इस व्यक्ति ने अपनी प्रतिभा के विकास और विस्तार की उतनी चिन्ता नहीं की, जितनी जनता के विकास की। इसीलिए उसकी साहित्यिक रचनाओं में श्रेष्ठ प्रतिभा के स्फुल्लिंग जगमगाये तो, पर व्यापक प्रकाश की रेखा नहीं बना पाए, जैसे कि चिनगारी अपना अस्तित्व दूसरों में डालकर विलीन हो जाए। फलतः 'मल्लिका' का गीतिकार, 'बन्दी के गान' और 'कारा' का करुण ओजस्वी कवि, 'नेताजी सुभाष', 'पं० पद्मसिंह शर्मा', 'जैसा हमने देखा', 'नये भारत के निर्माता' और 'साहित्यिकों के संस्मरण'

1. देखिए 'मेरा साहित्यिक जीवन' शीर्षक उनका एक लेख।
2. 'मेरा साहित्यिक जीवन'।

संग्रहीत करने वाला जीवनी-लेखक, 'हमारा संघर्ष', 'आजादी की कहानी' और 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' लिखने वाला इतिहासकार, तथा कुछ साहित्यिक और सामाजिक निबन्ध लिखने वाला शैलीकार, साहित्यिक समीक्षा-ग्रन्थों[1] में कुछ समय साहित्य-साधना और सृजन के लिए रमने वाला समालोचक इस समस्त साधना को जनसेवा की भूमिका बनाकर आगे बढ़ आया। इस प्रकार सुमनजी का समस्त साहित्य-सृजन उनके कुशल साहित्य-सम्पादन में सहायक हुआ है और इस क्षेत्र में उनसे अब भी बहुत-सी आशाएँ हैं।

समीक्षा और सम्पादन का अत्यन्त निकट सम्बन्ध होता है। वही व्यक्ति सफल सम्पादक बन सकता है जिसे साहित्य-समीक्षा का भी पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान हो। सुमनजी एक सफल समीक्षक है, इसीलिए वे अब कुशल सम्पादन के पथ को प्रशस्त करते जा रहे हैं। समीक्षक के रूप में भी मौलिक आचार्यत्व का आसन ग्रहण करने की अपेक्षा उन्होंने असंख्य पाठकों, विशेषतः छात्रों को ही अपनी दृष्टि में अधिक रखा है। वह तैयारी भी सम्पादन-कार्य के ही अधिक काम आई। यदि वे चाहते तो कुछ और भी बृहत् एवं विस्तृत समीक्षा-ग्रन्थ लिख सकते थे (शायद अब भी लिखें), इनसे भी अधिक हिन्दी साहित्य, विशेषतः समकालीन हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थ लिखने में यदि वे जुटते (इस दिशा में अभी बहुत आशा है) तो और भी महत्त्वपूर्ण कार्य करते। पर सुमनजी ने हिन्दी के अज्ञात साहित्य और साहित्यकारों को और जनशिक्षण एवं राष्ट्रीय जीवन के प्रसारण की दृष्टि से भारतीय साहित्य की परिचय-माला के जिस कार्य को हाथ में लिया है वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि वह ही हिन्दी साहित्य और भारतीय साहित्य के इतिहास-लेखन में दुर्लभ सामग्री के रूप में उपादेय सिद्ध होगा।

सुमनजी के सम्पादन और संकलन-कार्य का मूल्यांकन करने से पूर्व उनकी समीक्षात्मक कृतियों का भी महत्त्व जान लेना आवश्यक है। यद्यपि इन कृतियों की रचना उच्च कक्षाओं (स्नातक और स्नातकोत्तर) के छात्र-छात्राओं की दृष्टि से की गई है, पर उनमें इन कक्षाओं के अध्यापकों और हिन्दी-साहित्य के अनुसंधानकर्ताओं के लिए भी बहुत-सी अमूल्य और उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। ये कृतियाँ आवृत्ति-पाठ और सार संग्रह के रूप में भी बड़ी उपयोगी प्रतीत होती हैं। श्री शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में—"एक साधारण विद्यार्थी और एक मर्मज्ञ अध्येता दोनों के साहित्यिक ज्ञान की पीठिका बन सकती हैं।"[2] इनमें हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं और काव्य रूपों पर पहली बार विचार किया गया है और उनकी स्पष्ट वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत की गई है, और इस प्रकार भावी समीक्षकों के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया है। 'साहित्य विवेचन' पर अपना अभिमत देते हुए डॉ० नगेन्द्र-जैसे सुधी समीक्षक ने लिखा है—"मैं समझता हूँ गद्य-

१. 'साहित्य-सोपान', 'आधुनिक हिन्दी साहित्य', 'हिन्दी साहित्य: नये प्रयोग' और 'साहित्य विवेचन के सिद्धान्त'।

२. 'साहित्य विवेचन', आवरण पृष्ठ, प्रथम संस्करण।

गीत, रेखाचित्र और रिपोर्ताज का विवेचन सबसे पहले इसी ग्रन्थ मे हुआ है।"[1] संस्मरण, जीवनी और आत्मकथा-जैसी गद्य की नवोदित या अल्पायु वाली विधाओ का भी अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण इस कृति मे पहली बार ही हुआ है, जो इन साहित्य-रूपो के प्रामाणिक और समधीत समीक्षको तथा अनुसधायको के लिए दिशानिर्देश मे निसन्देह सहायक होगा। जीवनी और आत्मकथा के सूक्ष्म अन्तर को प्रकट करने वाली यह पैनी दृष्टि एव सूत्र-शैली दर्शनीय है—"जीवनी लिखने वाले को दूसरे के दोष और आत्मकथा लिखने वाले को अपने गुण कहने मे सचेत रहने की आवश्यकता है।"[2] 'हिन्दी साहित्य नये प्रयोग' मे लोकगीत पर लिखा गया एक पूरा अध्याय अपने विषय का श्रेष्ठ समीक्षात्मक लघु प्रबन्ध है, जो लेखक की विशद विवेचना-शक्ति और सूक्ष्म विश्लेषण की क्षमता को प्रकट करता है।

गभीर स्वाध्याय, पैनी दृष्टि और सतुलित शैली ने सुमनजी की इन सक्षिप्त और सहायक समीक्षात्मक कृतियो को भी एक विशिष्ट गरिमा प्रदान कर दी है। इनमे अनेक नये दृष्टि-बिन्दु, नए या अनचीन्हे अथवा उपेक्षित नाम (साहित्यकारो एव कृतियो के) सुव्यवस्थित आलोचना-शैली, निजी आस्वादन पर आधारित रसात्मक उद्धरण, सूक्ति-मय—सुगम एव सारगर्भित परिभाषाएँ और बहुत सी उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री एक साथ ही प्राप्त हो जाती है। डॉ० सत्येन्द्र ने ठीक ही कहा है—"एक ही स्थान पर सिद्धात, उदाहरण और इतिहास की त्रिवेणी का आनन्द लेने की इच्छा रखने वाले इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत करेंगे।"[3] खेद है कि हिन्दी मे इस प्रकार की छात्रोपयोगी पुस्तके बहुत कम ही लिखी गई हैं जिनकी सामग्री सर्वथा प्रामाणिक हो और जिनमे विषय का क्रमबद्ध एव साग विवेचन प्राप्त हो सके, साथ ही जो अध्येता और अध्यापक की सहायता एव सामान्य पाठको मे साहित्यिक अभिरुचि के जागरण का कार्य कर सकें। इससे पुन स्पष्ट है कि सुमनजी म साहित्य सचार की इच्छा कितनी प्रबल है, इतनी कि उसने उनके साहित्य-सृजन की लालसा पर पूरा अधिकार पा लिया है अथवा उसे सर्वथा समाज-सेवा के मार्ग पर मोड दिया है।

'हिन्दी साहित्य नये प्रयोग' या 'साहित्य विवेचन'-जैसी कृतियो मे सुमनजी ने एक ओर तो अपने पाठको को हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम को परखने की दृष्टि दी है, दूसरी ओर भारतीय और पाश्चात्य दोनो ही काव्यशास्त्रो के आधार पर विभिन्न साहित्य-विधाओ—कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, गद्य गीत, जीवनी, सस्मरण, आत्म-कथा, रेखाचित्र, स्केच रिपोर्ताज और समालोचना के विविध स्वरूपो का आस्वादन और आलोचन करने की क्षमता भी प्रदान की है। इनमे यद्यपि साहित्यिक सिद्धान्तो एव तत्त्वो

१. 'साहित्य विवेचन के सिद्धान्त' की भूमिका में
२. 'साहित्य विवेचन', तीसरा सस्करण, पृ० २५८
३ वही, आवरण पृष्ठ, प्रथम सस्करण

की मौलिकता विशेष नही है, परन्तु स्वाध्याय और विषय-संयोजन की मौलिकता अवश्य है। इनमे दूसरे लेखको की सामग्री का अपहरण नही है, पिष्टपेषण, अनुसरण और अनुकरण भी नही है, वरन एक सच्चा स्वाध्याय-मार्ग बनाने का प्रयास वास्तविक श्रम और साहित्य के उपहार मे जनता की सेवा करने की प्रबल भावना है। जहाँ-जहाँ लेखक ने पाठक, विशेषत विद्यार्थी की चिन्ता न करके अपने विचार को निर्द्वन्द्व होकर व्यक्त करने का प्रयत्न किया है वहाँ-वहाँ एक मौलिक समालोचक का ओज आलोकित हो उठा है। उदाहरण के लिए, जहाँ अन्य अनेक आलोचकों ने हिन्दी की प्रगतिवादी कविता की कटु समीक्षा मात्र की है वहाँ सुमनजी ने उसे अपने प्रेरणा-स्रोत यथार्थवादी रूसी साहित्य का अनुकरण करने की शिक्षा भी दी है—"जिस रूसी साहित्य का अनुकरण हमारे आधुनिक साहित्यिक कर रहे हैं वह सत्य और वास्तविकता मे आमूल डूबा हुआ है, वह अपने दुःख मे बहुत प्राचीन और आँसुओ मे बहुत बुद्धि-सम्पन्न है। वह साहित्य वास्तविक जीवन के अभावो से उत्पन्न हुआ है और उसमे क्रन्दन और विद्रोह का स्वर मस्तिष्क से नहीं हृदय मे निकला है। फिर ऐसे साहित्य का अनुकरण करके ही हमारे आधुनिक लेखक अपने साहित्य मे जीवन की वास्तविकता क्यो नही ला सकते ? इसका कारण यही है कि हमारे साहित्यकारो ने इसकी तीव्रता के आगे सिर झुका दिया है। वे इसकी उष्णता तो प्राप्त कर सके हैं, किन्तु प्रकाश नही।"[1]

आलोचक के ओज का उत्तम उदाहरण उक्त उद्धरण मे प्राप्त होता है। दृष्टि की तीव्रता, विश्वास की दृढता, कथन की वक्रता एव सतुलन और सास्कृतिक उन्नति की सच्ची आकाक्षा इसमे व्यक्त होती है। काव्य कृतियो के आस्वादन मे भी सुमनजी ने अनेक स्थलो पर नवीनता प्रकट की है और बात को अपने ही ढग से कहा है। 'कामायनी' मे प्रकृति के सम्बन्ध मे उनकी यह कथन शैली मुझे विशेष प्रिय लगी—"हम प्रकृति को इस कथानक का चौथा पात्र कह सकते हैं। पात्रो की भाग्यलिपि के अनुसार ही प्रकृति मे वसन्त, उषा अथवा प्रलय के चीत्कार प्रकट होते है।"[2] इसी प्रकार हिन्दी साहित्य मे खडी बोली का स्वागत करते हुए उनका यह कथन भी उनकी अपनी सूझ को प्रकट करता है—"ब्रज भाषा और खडी बोली की प्रतिद्वद्विता सास्कृतिक दृष्टि से लाभकारी सिद्ध हुई। खडी बोली के कवियो ने उस दरबारी सस्कृति का भी बहिष्कार किया जिसका ब्रजभाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध था।"[3]

पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने वाले कुछ लेखो मे सुमनजी एक अत्यन्त जागरूक और सतर्क प्रहरी के रूप मे सामने आये हैं। इनमे कही तो वे अज्ञात तरुण साहित्यकारो अथवा लोकप्रिय कविया और लेखको को प्रकाश मे लाते हुए दिखलाई पडते हैं और कही

१. 'हिन्दी साहित्य : नये प्रयोग', पृष्ठ ६८
२. वही, पृ० ४०
३. वही, पृ० ८

कबीर की तरह साहित्यिक मठाधीशों का पर्दाफाश भी करते हुए दिखलाई पड़ते हैं, और अपने आक्षेपों को सप्रमाण उपस्थित करते है। उनके लेखों से प्रतिष्ठित साहित्यकारो और आध्यापक-आलोचकों की अपहरण लीला की जानकारी प्राप्त करके उन अपहरण-कर्ताओं के पतन पर इतना आश्चर्य नहीं होता जितना कि लेखक की जागरूकता और साहित्य के पथ में पावनता लाने के दृढ़ संकल्प पर होता है। हिन्दी साहित्य के बहुमुखी विकास पर उनकी दृष्टि घूमती हुई दिखलाई पड़ती है। अपने एक लेख 'ये सम्पादक ये प्रकाशक' में उन्होंने एक बड़ी मौलिक और महत्त्वपूर्ण बात कही है। इसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य की वास्तविक परिधि और परिभाषा को समझने की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। हिन्दी में आज ऐसी अनेक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं और सकलनो में प्रकाशित होने लगी हैं जो अन्य भाषाओं से अनूदित होती हैं पर अनुवादक का नाम न देकर या अनूदित होने का कोई भी संकेत न करके इस तथ्य को छिपाया जाता है। यह प्रवृत्ति न केवल हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए अनिष्टकारी है वरन् अन्य भाषाओं के साहित्य के इतिहास के लिए भी। इससे हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों और प्रतिभाओं को समझने एवं परखने में भी भ्रम हो सकता है और अन्य भाषाओं के साहित्य के भी वास्तविक और मौलिक रूप को समझने में भूल हो सकती है। सुमनजी अनुवाद के विरोधी नहीं हैं, पर मौलिक और अनूदित साहित्य को पृथक् रखना आवश्यक मानते हैं। इसी प्रकार वे अन्य भाषा-भाषियों का हिन्दी साहित्य के रचना-क्षेत्र में हार्दिक स्वागत भी करते हैं पर उनके द्वारा हिन्दी को अपनी अभिव्यंजना का माध्यम बना लेने के बाद ही। प्रेमचन्द और सुदर्शन तथा उनके बाद की पीढ़ी में उपेन्द्रनाथ अश्क, देवेन्द्र सत्यार्थी, हंसराज रहबर, प्रकाश पण्डित आदि, तथा आज और भी अनेक लेखक, उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि से हिन्दी में आये हैं पर हिन्दी को सीखकर और उसमें अभिव्यंजना की सामर्थ्य प्राप्त करने के बाद ही। हिन्दी के 'मार्केट' में इन्होंने अनधिकृत रूप से प्रविष्ट होने का प्रयत्न नहीं किया था जैसे कि आज के अनेक नामधारी हिन्दी-लेखक, "जिनमें से अधिकांश ऐसे निकलेंगे जिन्हें यदि हिन्दी का डिक्टेशन भी कभी लेना पड़े तो उससे उनकी हिन्दी योग्यता उजागर हो जाएगी।"

सुमनजी ने उक्त लेख में जिस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है उससे हिन्दी के कितने अध्यापक और शोध-निर्देशक अवगत थे यह कहना कठिन है, पर इसका प्रमाण स्वयं लेखक ने ही दे दिया है कि इन नकली हिन्दी लेखकों को असली मानकर हिन्दी साहित्य के विकास पर किये जाने वाले शोधकार्य में उन्हें सम्मिलित किया जाने लगा है।[1]

मैं स्वयं उन अध्यापकों में से हूँ जो कृश्नचन्दर, ख्वाजा अहमद अब्बास, फिक्र तौंसवी, सलमा सिद्दीकी, राजेन्द्रसिंह बेदी, अमृता प्रीतम और करतारसिंह दुग्गल को हिन्दी

१. दे० श्री शंकरदेव अवतरे का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग'।

का तेरत मानने लगा था और उनके द्वारा हिन्दी की श्रीवृद्धि और शैली के नये उपहार प्राप्त होते देखकर अत्यन्त प्रसन्न था। सहसा इस भ्रम के टूट जाने से मुझे दुःख ही हुआ है,पर सुमनजी की मर्मदृष्टि का परिचय प्राप्त करके आश्चर्यपूर्ण प्रसन्नता भी कम नहीं है। सुमनजी का यह अकेला लेख उनकी जागरूक इतिहास-दृष्टि का परिचय देने के लिए पर्याप्त है।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यदि सुमनजी समीक्षा के क्षेत्र में कुछ अधिक काल तक ठहरते तो हिन्दी को श्रेष्ठ साहित्य—इतिहास ग्रंथ और साहित्य-सिद्धान्तों, साहित्य-विधाओं, साहित्यिक कृतियों तथा साहित्यकारों के जीवन-दर्शन पर महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रदान करते। उनकी सूझ, परख और विवेचन-शैली को देखकर उनके समीक्षक का पूर्ण विकास देखने की अभिलाषा अवश्य होती है। मैंने 'साहित्य-विवेचन' के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का एक पत्र सुमनजी की फाइल में देखा था, जिसका यह उद्धरण अपने मत की पुष्टि के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ। आचार्यजी ने लिखा है—"मुझे ऐसा लगा है कि आपने भिन्न-भिन्न विचारों के संकलन में जितना श्रम किया है, उतना अपना अभिमत प्रतिपादित करने में नहीं किया है पर इससे एक लाभ ही हुआ है, विद्यार्थी को सब-कुछ समझकर अपना मार्ग स्थिर कर लेने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। फिर भी यदि आप अपना मत कुछ अधिक बल देकर प्रकट करते तो मुझे अच्छा ही लगता।"[1] सुमनजी ने न केवल अपनी समीक्षात्मक कृतियों में अपना मत अधिक बल देकर नहीं व्यक्त किया, वरन् अपने सम्पूर्ण साहित्य-सृजन में ही उन्होंने अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह उभरने नहीं दिया है और उसे साहित्यिक लोकसेवा के लिए विसर्जित कर दिया है। यों भी कह सकते हैं कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व का आस्वादन और अवगाहन स्वयं न करके उसे जनता के लिए छोड़ अपने 'साहित्यिक जीवन' की व्याख्या उन्होंने स्वयं इस प्रकार की है—"कबीर का फक्कड़पन, रहीम का स्वाभिमान और तुलसी की परोपकार-परायणता ही मेरे जीवन के दृढ़ आधार-स्तम्भ हैं।"[2] इन आधार-स्तम्भों को मानने वाला व्यक्ति कोमल गीतिकार बनने से सन्तुष्ट नहीं रह सकता था, केवल कवि-जीवन की परिधि में बँधना भी स्वीकार नहीं कर सकता था, उत्कृष्ट समीक्षक बन सकता था जिसके लिए वह रुका भी, पर तुलसी की परोपकार-परायणता ने प्रबल होकर उसे अध्येताओं, पाठकों और साहित्यकारों की सेवा के मार्ग पर प्रस्थित कर दिया। इस प्रकार साहित्य की व्याख्या, व्यवस्था और संगठन ही सुमनजी की साहित्य-सेवा का मुख्य लक्ष्य बन गया जिसके लिए सम्पादन-कार्य ही समुचित क्षेत्र प्रस्तुत करता प्रतीत होता है। वे वस्तुतः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के उत्तराधिकारी प्रतीत होते हैं।

सुमनजी की मौलिक कृतियाँ लगभग सोलह हैं और सम्पादित ग्रंथ लगभग पचास।

१. पत्र-सदर्भ हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, १३ १२-५८।
२. 'मेरा साहित्यिक जीवन', शीर्षक लेख।

उनके कुछ अभिभाषण भी स्वतन्त्र निबन्धो या लघु प्रबन्धो की श्रेणी मे रखे जा सकते हैं। इन सम्पादित ग्रथो मे सभी प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित दिखलाई पडती है—कविता, भजन, नाटक, निबन्ध, सस्मरण, जीवनी आदि। इन समस्त रचनाओ की मूल प्रवृत्ति समकालीन और सामयिक साहित्य को, जिसका जनता के जीवन मे सीधा या निकटतम सम्बन्ध है और जिसमे राष्ट्र का सामान्य जीवन अभिव्यक्त होता है या उसे प्रभावित करने की क्षमता है, प्रकाश मे लाना है। इनमे कविता की दृष्टि से 'गाधीभजनमाला' का भी स्वागत है, आजाद हिन्द फौज से सम्बन्धित और चीनी-आक्रमण के विरुद्ध हिन्दी के वरिष्ठ कवियो के उद्गार भी सकलित हैं, हिन्दी के लोकप्रिय कवियो अर्थात् कवि-सम्मेलनो के सितारो की वाणी भी सग्रहीत है (नीरज और रामावतार त्यागी) और 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' तथा 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियो के प्रेमगीत' भी बटोरकर ग्रथ के रूप मे प्रस्तुत कर दिये गए हैं। 'एकाकी-सगम' और एकाकी नाटको का 'नीर-क्षीर' भी इन सम्पादित-सकलित रचनाओ मे मिलेगा, पर जिस प्रकार सुमनजी के मौलिक साहित्य मे नाट्य कृतियो का सर्वथा अभाव है, उसी प्रकार सम्पादित कृतियो मे भी उनकी सख्या नाममात्र की ही है। यह सुमनजी की प्रतिभा और रुचि की एक सीमा है, अर्थात् नाट्य साहित्य ने उन्हे अधिक आकृष्ट नही किया है। कुछ साहित्यिक निबन्धो का सकलन और हिन्दी के गद्य-लेखको के प्रतिनिधि निबन्ध भी है, पर विशेष उल्लेखनीय सकलन है, *'राष्ट्रभाषा-हिन्दी' जिसमे हिन्दी के विभिन्न साहित्यिको और भाषाशास्त्रियो के लेख* विशेष दृष्टिकोण को आधार बनाकर सग्रहीत किये गए हैं। गद्य की सम्पादित रचनाओ मे प्रमुख स्थान सस्मरणो और जीवन-स्मृतियो का है—'जैसा हमने देखा', 'प० पद्मसिह शर्मा', 'जीवन-स्मृतियाँ' (कतिपय साहित्यकारो के आत्मचरित), 'साहित्यिको के सस्मरण' और 'नेताओ की कहानी, उनकी जुबानी'। इस श्रेणी की रचनाओ से तीन बाते प्रकट होती है—१ गद्य-साहित्य की इस नवीन विधा की ओर सुमनजी का झुकाव (जिसकी आलोचना का सूत्रपात भी उन्होने अपनी समीक्षात्मक कृतियो मे किया है), २ साहित्य के समान ही साहित्यकारो और उनके जीवन को प्रकाश मे लाने की आवश्यकता का अनुभव, और ३ जन शिक्षण के लिए विशेष वातावरण के निर्माण का प्रयत्न। 'भारतीय साहित्य परिचय माला' (उर्दू, तमिल, तेलगु, मालवी, मराठी, बगला, अवधी, भोजपुरी, सस्कृत, प्राकृत और गुजराती भाषाओ के साहित्य पर प्रकाश डालने वाली रचनाएँ) की योजना मे सुमनजी का और भी अधिक व्यापक राष्ट्रीय उद्देश्य प्रकट होता है, अर्थात् भारतीय साहित्य मात्र की एकता को सामान्य जनता के लिए हृदयगम कराना। सुमनजी के इस सम्पूर्ण सम्पादित साहित्य मे साहित्य के माध्यम से जनता का सास्कृतिक उत्थान और राष्ट्रीय सगठन करने की उत्कट लगन प्रकट होती है। यह अध्यवसाय और व्यवस्था का कार्य है। यदि वे अपनी सृजन-प्रतिभा को मौलिक साहित्य की रचना मे ही सीमित रखते तो यह कार्य नही कर सकते थे और तब उन्हे साहित्यिक जागरण पैदा करने का

इतना अधिक श्रेय भी नही मिल सकता था।

सुमनजी का साहित्यिक नेतृत्व और सगठन पटुता उनके प्राक्कथना और अभिभाषणों मे भी दर्शनीय है। उनके प्राक्कथनो या प्रस्तावनाओ मे अनचीन्हे साहित्यकारो और आचलिक या प्रादेशिक साहित्य को मान्यता देने का स्तुत्य प्रयत्न तो है ही, पर साथ ही इन प्रस्तावनाओ मे उन्होने मूल्यवान विचार और मौलिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिए 'विहँसते फूल विकसती कलियाँ' शीर्षक (हापुड के कवियो के) काव्य-सकलन की प्रस्तावना मे उन्होने एक ओर मार्मिक अवतरणो का चयन करते हुए इन 'कनिष्ठ' कवियो को 'ज्येष्ठ' मान प्रदान किया है, साथ ही हापुड नगर की साहित्य-चेतना का क्रमिक विकास और बिखरे उपकरणो का सग्रह-सन्देश भी देते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की एक नई दिशा की ओर सकेत किया है—"आचलिक और जनपदीय आधार पर ऐसे सकलनो का प्रकाशन निश्चय ही एक स्वस्थ परम्परा का द्योतक है। मेरी ऐसी मान्यता है कि यदि हिन्दी साहित्य का सही मूल्याकन करने की ओर हमारे समीक्षको और इतिहासकारो का ध्यान गया तो ऐसे ऐसे सकलन ही उनको दिशा-निर्देश करने मे सहायक होगे।' अज्ञात और किशोर लेखकों के ऐसे सच्चे हिमायती हिन्दी मे कितने हैं? और उनके साहित्य की उपादेयता को परखने वाले समीक्षक भी कितने हैं? सुमनजी ऐसे हितैषियो और समीक्षको का आह्वान करते हैं। प्रादेशिक आधार पर लिखित साहित्य के इतिहासो की पृष्ठभूमि मे अखिल भारतीय स्तर पर बृहत्तर इतिहास के लेखन की उनकी कल्पना निश्चय ही अत्यन्त भव्य और राष्ट्रीय सगठन मे साहित्य के गौरव की सूचक है। शास्त्रीय साहित्य की अपेक्षा प्रादेशिक और आचलिक साहित्य मध्यम श्रेणी की जनता के हृदय के अधिक समीप होता है और उसमे राष्ट्रीय जीवन की क्रान्ति के दर्शन अधिक सूक्ष्मता पूर्वक किये जा सकते हैं। सुमनजी ने उसी आचलिक साहित्य के मूल्याकन और सग्रह की ओर हिन्दी के सुधी समीक्षको का ध्यान आकृष्ट किया है, जिसके लिए स्वय उनके पास प्रभूत सामग्री और उस सामग्री को सँजोने का कौशल भी है। ग्रथो और पत्र पत्रिकाओ के साहित्य के अतिरिक्त उनके अध्यवसायी स्वाध्याय ने न जाने कितने प्रदेशो का आँचलिक साहित्य अपनी डायरियो, फाइलो और स्मृति-पटो मे बटोर रखा है जिसकी झलक कभी वार्तालाप मे, कभी उपरोक्त-जैसी प्रस्तावनाओ मे और कभी साहित्यिक समारोहों के अभिभाषणो मे मिलती रहती है। एक बार कानपुर मे अपने सम्मान मे आयोजित किसी गोष्ठी म सुमनजी ने कानपुर की साहित्यिक सामग्री और साहित्यकारो का जो परिचय दिया था उसे सुनकर श्रोता चकित ही रह गए थे, क्योकि उन्ह स्वय अपने प्रदेश की साहित्यिक सम्पदा का इतना ज्ञान नही था। इसी प्रकार एक बार अनायास ही वार्तालाप मे उन्होंने बरेली के प० राधेश्याम कथावाचक और वहाँ की अज्ञात साहित्यिक सामग्री तथा प्रारम्भिक जागृति के सम्बन्ध मे जो सकेत देने प्रारम्भ किये तो उन्हे देखकर मुझे भी आश्चर्य हुआ था, क्योकि बरेली का निवासी होकर भी मुझे

इतनी जानकारी नही थी। इसी वार्तालाप मे उन्होने मेरठ के भी आचलिक साहित्य के सग्रह और साहित्यकारो के जीवन-वृत्त के आकलन की चर्चा चलाई थी, जिसमे मुझे क्षेत्रीय शोधकार्य (फील्ड रिसर्च) की नई दिशा झलक पडी थी।

सुमनजी के एक विशिष्ट अध्यक्षीय भाषण का उल्लेख और करने का लोभ सवरण मैं नही कर सकूँगा, जिसे एक छोटा सा शोध प्रबन्ध कहना भी अत्युक्ति न होगी। बिहार-राज्य द्वादश आर्य-सम्मेलन पटना मे कवि सम्मेलन के अध्यक्ष पद से प्रस्तुत किया गया यह भाषण वक्ता की स्मरणशक्ति और शोधवृत्ति का एक ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करता है। बत्तीस पृष्ठ की इस पुस्तिका (पैम्फलेट) मे बिहार राज्य के सास्कृतिक परिचय और राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी के स्तवन की सामयिक भूमिका के अनन्तर वक्ता ने महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की भारतीय सस्कृति और साहित्य को देन पर जितना सारगर्भित वक्तव्य दिया है वह मानो एक उमडती हुई मनीषा का साक्षात्कार कराता है। इस अभिभाषण मे पुन यही धारणा बनती है कि सुमनजी का सुधी साहित्यकार न जाने किन किन प्रतिकूल परिस्थितियो का शिकार बनकर पूरी तरह प्रकाश मे नही आ पाया अथवा एक निश्चित राजमार्ग नही पा सका। अब भी उनके पास बहुत सी साहित्यिक सामग्री और साहित्य-प्रसार की योजनाएँ दबी पडी है जो साहित्यिक सहयोगियो और सच्चे साहित्य-सेवियो की प्रतीक्षा कर रही है। उन्होने अनजाने साहित्यकारो को प्रकाश मे लाने का पुण्य अर्जित किया है, साहित्य के आस्वादको और पाठको की सख्या मे वृद्धि की है, जनता मे साहित्यिक सस्कार सचारित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है, साहित्य को राष्ट्रीय एकता एव सगठन का माध्यम बनाने का सफल आयोजन भी व कर रहे है, फिर भी वे कुछ अकेले से है, अधूरे से हैं। एक व्यक्ति मे अनेक सस्थाएँ झाक रही हैं, एक जीवन मे अनेक योजनाएँ झलक रही है और दो आँखो मे अनेक स्वप्न उमड रहे है। जीवन की अर्धशताब्दी की रजतरेखा पर खडा यह व्यक्ति हमारी इस शुभकामना का सर्वाधिक अधिकारी है कि ईश्वर उसे शत शरद का स्वस्थ सात्विक जीवन प्रदान करे कि उसकी साहित्य-सेवा के समस्त स्वप्न पूरे हो सकें अथवा उचित उत्तराधिकारियो को प्राप्त हो जायें।

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग,
मेरठ कालिज, मेरठ

'भाव-सत्यता' और 'व्यंजना' के कवि

डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' हिन्दी के एक जाने-माने साहित्यकार हैं, जो कवि, समालोचक, निबन्धकार, सम्पादक आदि विविध रूपों में, लगभग तीस वर्षों से, हिन्दी की अनवरत सेवा करते चले आ रहे हैं। उक्त रूपों में कवि-रूप उनका एक प्रमुख रूप रहा है, जिसके माध्यम से उनके गत्यात्मक और भावुक व्यक्तित्व के अनेक उच्च गुणों का प्रकाशन हुआ है। 'मल्लिका' (सन् १९४३), 'बंदी के गान' (१९४५) और सन् १९४२ के आन्दोलन से सम्बद्ध 'कारा' (१९४६) उनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं, जिनमें से प्रथम दो मुक्तक हैं और अन्तिम रचना (लेखक के शब्दों में) 'इतिवृत्तात्मक राजनैतिक खण्डकाव्य'। इन सबके साथ हिन्दी के सम्मान्य कवियों व समीक्षकों की सामिक भूमिकाएँ भी जुड़ी हैं। ये सभी रचनाएँ लगभग १५ से लेकर २५ वर्ष पूर्व तक की प्रकाशित हैं।

उक्त कृतियाँ उस युग की प्रसूति है जिसमें हमारे राजनीतिक और साहित्यिक—दोनों ही क्षेत्रों में भारी ऊहापोह हो रहे थे। स्वातन्त्र्य-संग्राम अपने उत्कर्ष पर था, ब्रिटिश दमन व शोषण का चक्र पूर्ण वेग से गतिमान था। सन्'४२ का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन उस युग की हमारी राजनीतिक सरगर्मी का निदर्शक है। साहित्य के क्षेत्र में छायावाद अपना जीवन प्राय पूरा करके प्रगतिवाद के लिए मार्ग छोड़ रहा था (यों, छायावाद प्रच्छन्न रूपों में आज भी जीवित है!), पंत, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, अचल व भगवतीचरण वर्मा हिन्दी-कविता के रंगमंच पर थे, श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन' उभर रहे थे। 'बच्चन' भी अपने ढंग से युग पर छाये हुए थे—अपने एकांत निजी व मंजुल प्रणय-स्वर के साथ, जिसमें वैयक्तिक वेदना व निराशा की गहरी अँधियाली व्याप्त थी। 'बच्चन' का गीत-स्वर, लोक-प्रभाव की दृष्टि से संभवत सबसे अधिक गहरा व मोहक था। 'एकांत संगीत', 'निशा निमन्त्रण', 'विकल विश्व' और 'आकुल अन्तर' इस दृष्टि से उनकी समृद्ध रचनाएँ हैं। उक्त सभी कवियों के प्रभाव का रहस्य संभवत इसमें निहित है कि छायावादी रहस्य कल्पना का कुहरा भेदकर वे प्रणय की अभिव्यक्ति में स्पष्ट व सुदृढ स्वर में बोले। लौकिक प्रेम-पात्र के आध्यात्मीकरण की उन्हें इस युग में अब कोई आवश्यकता नही जान पड़ी। मानव का ही यह चोला हमारी रात-दिन की व्यथा-वेदना, प्रेम-वासना, हास-रुदन, सबके साथ पावन व मोहक है, उसमें अपावनता कहाँ!—यही प्रणय का दर्शन हो चला था। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से पृथ्वी पर चलते सामान्य मानव का, उसके समस्त भौतिक परिवेश के साथ, जो महत्त्व स्थापित हुआ, और मानवतावादी अमरीकी विचारक बैबिट आदि ने

जो मानववाद प्रचारित किया, उसने भी, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप मे, उक्त दर्शन के निर्माण मे पाश्चात्य साहित्य के माध्यम से समयोचित सहायता पहुँचाई होगी। यों, यह वस्तु अनजानी भी नही थी। अपभ्रशकाल व रीतिकाल की कविता का मुख्य स्वर मुख्यत स्वच्छन्द प्रणय भावना से ही निर्मित था। वही स्वर नवीन व्यक्तिवाद व मानव-गौरव भावना से सयुक्त होकर आधुनिक हिन्दी-कविता मे पहली बार अपनी पूरी माधुरी, मुक्तकठता (कीट्स के शब्दो मे—' with full throated ease") के साथ फूट-पड़ा गया। वासना-पिण्ड (?) मानव के प्रणय के इस गौरव-गान के पीछे अनेक स्थूल-सूक्ष्म दार्शनिक विचारधाराएँ काम कर रही है। मानव प्रणय का यह गौरव छायावाद युग मे भी था, इसमे सन्देह नही पर रहस्य व अध्यात्म के एक झीने-सुनहले व कामदार आवरण मे।

'सुमन'जी की मुख्य काव्य रचनाएं उसी राजनीतिक साहित्यिक युग मे लिखी गई है अत उसका स्मरण यहाँ कुछ आवश्यक समझा गया।

आरम्भ मे ही यह स्पष्ट कर देना ठीक होगा कि सुमनजी के काव्य मे विराट कल्पना की आकाश पाताल-व्यापी धमाचौकडी कही नहीं मची है, क्षितिज के पार व जन्म-जन्मान्तरो के आर पार झाँकने की जिज्ञासा करने और उसकी विवृत्ति देने के उद्योग मे भी वे निरत नही हुए हैं और काव्य शिल्प का फुरसत मे किये जाने वाला अमीरी झीना काम भी उनके काव्य मे शायद ही कही दिखाई पडे। वे केवल एक सहज व सवेदनशील कवि हैं, जिनका एक मात्र गुण है पूर्ण भाव सत्यता के साथ अकृत्रिम शैली मे आत्म प्रकाशन। हमारी दृष्टि मे यह किसी भी कवि का आधारभूत लक्षण है। सुमनजी के इस गुण से ही हम आकृष्ट हुए है। उनके पास नि सदेह एक भावुक और कान्त हृदय हैं।

पहले हम सुमनजी की काव्य-वस्तु को लें। वे मूलत राष्ट्रीय भावना और प्रणय-भावना के कवि है। उन्होने अपने को राष्ट्र के तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक जीवन से एकाकार किया है वे स्वातन्त्र्य-सग्राम मे निरत सघर्षशील राष्ट्र के जीवन की धारा मे सक्रिय रूप से स्वय उतरे है, उन्होने उसके आघातो-प्रत्याघातो को स्वय सहा है और एक विदग्ध कवि के रूप मे जो अनुभूतियाँ उन्होन सगृहीत की हैं उन्हे उन्होने मार्मिक वाणी दी है। वे अनेक बिन्दुओ पर युगीन जीवन के प्रगाढ सम्पर्क मे आये है, और जो चैतन्य उन्हे प्राप्त हुआ है उससे उनकी राष्ट्रीय कविता और प्रणय-कविता दोनो ही पुष्ट व समृद्ध हुई हैं। काल्पनिक अनुभूतियो के स्वप्निल कवि प्राय सघर्ष-निरत कवियों के परिपक्व अनुभूति फल को कच्चे माल के रूप मे ग्रहण करके, उसे कल्पना व शैली के रग रोगन से आकर्षक बनाकर, ऊँचे भावो चलाते है। पर सघर्ष मे स्वय जूझते कवियो को अपनी वस्तु खराद पर चढाने का अवसर या अवकाश परिस्थितिवश नही मिल पाता। मैं समझता हूँ कि युग की जीवन-धारा के साथ जूझते हुए कवियो का मूल्याकन करते

समय इस तथ्य को ध्यान मे रखना नितान्त उचित होगा। सुमनजी की कविता परिमाण मे अल्प है और उसमे अवकाश-सुलभ शैली की पच्चीकारी नही है, पर उसमे सघर्ष-युग का तेज बराबर दिखाई पडता है।

सुमनजी के हृदय मे राष्ट्र-प्रेम और प्रणय, दोनो साथ-ही-साथ प्राय एक-दूसरे को शक्ति पहुँचाते हुए विकसित व पुष्ट हुए है। यो दोनो के मूल मे स्थायी भाव 'रति' है, अत उक्त दोनो प्रकार के प्रेम एक ही बीज के दो अकुर हैं। पर वे ऐसे सतुलित रूप मे लहलहाये है कि उन्हे देखकर चित्त प्रसन्न होता है। मैं इसमे कवि हृदय की स्वस्थता का दर्शन करता हूँ और सुमनजी को इसके कुशल निर्वाह का श्रेय देना चाहता हूँ। एक ओर कवि कहता है—

देश-प्रेम-स्वातन्त्र्य-समर मे, चलकर तुमको अमर करूँ मैं ?[1]

वारता हूँ मातृ-भू पर प्राण, जीवन एक मेला।[2]

जग 'विद्रोही है' नित कहता।[3]

और दूसरी ओर वह यो भी गा उठता है—

मेरे गायन ने अपने स्वर तुम पर ही बलिदान किये हैं।[4]

तो एक ही हृदय मे दोना महत् भावो को साथ साथ खिलते देखकर कवि-हृदय की सहज मानवीयता, स्वस्थता व व्यापकता से हमारा हृदय प्रभावित हो उठता है।

कारा' राष्ट्रीय भावनाओ मे उबलते बलि-पथ के गायक विद्रोही कवि का 'इतिवृत्तात्मक राजनैतिक खण्डकाव्य' है, जो नृशस व अत्याचारी शासक के जुल्मो का सीधा-सीधा व यथार्थ चित्र अकित करता है। इसमे सुमनजी की प्राण-ज्वाला पूरे उत्कर्ष के साथ लहकती दिखाई देती है। पर काव्य गुणो की दृष्टि से यह रचना उनकी अन्य रचनाओं की तुलना मे उतनी आकर्षक नही बन पडी है। 'मल्लिका' और 'बदी के गान' मे भी अनेक राष्ट्रीय गीत व कविताएँ सकलित हैं। निश्चय ही इनमे कवि की रचनाएँ अधिक प्रौढ व मँजी हुई है।

राष्ट्रीय कविता की भूमि काफी विस्तृत होनी या हो सकती है। उसका प्रसार राष्ट्र के बाह्य रूप सौन्दर्य (भौगोलिक सुषमा) से लेकर सूक्ष्मतम मनोभावनाओ तक रहता है। सुमनजी ने प्रथम रूप की ओर, जो काव्य-दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नही है, प्राय नही देखा है और दूसरे क्षेत्र मे भी वे राष्ट्रीय परिस्थितियो के प्रति अपनी वैयक्तिक प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्ति तक ही सीमित रहे है, जो अभिधा मे भी पर्याप्त सशक्त व प्राणवान हुई है। सब-कुछ मिलाकर, राष्ट्रीय कविता के सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता

१. 'बन्दी के गान' पृ० ६
२. वही, पृ० १६
३. 'मल्लिका' पृ० ३४
४. 'बन्दी के गान' पृ० ४८

है कि उसमे 'सुमन'जी के अस्तित्व के मौलिक तत्त्व प्रचुर मात्रा मे विद्यमान हैं।

४ प्रणय-शृंगार के कवि के रूप मे सुमनजी की उपलब्धि विशेष रूप से विचारणीय है। यद्यपि मिलन की भावना का सर्वथा अभाव नही है, तथापि उनका मुख्य क्षेत्र विरह ही है। साहित्य-क्षेत्र का बृहत् अंश विरह-भावना से ही निर्मित होता है, और न जाने कितने कवि अपने विरह की तीव्रता मार्मिकता से प्रेरित होकर अमर काव्य की सृष्टि कर गये हैं। सुमनजी भी उसी सनातन प्रवाह के साथ हैं। उनकी प्रणय की काव्य-भूमि विषय की दृष्टि से बहुत विस्तृत नही है, पर जो क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुना है वह पर्याप्त उर्वर है।

सबसे पहले हमारा ध्यान नायिका के स्वरूप पर जाता है जिससे कवि के शृंगार की विवृत्ति शामिल-रूपायित हुई है। नायिका लौकिक प्रेम-पात्री ही है, जिसे कवि ने अपने साधनाशील व्यक्तित्व व प्रेम की उच्च आदर्श-भावना के कारण आराध्य के पद पर प्रतिष्ठित करके जीवन-संग्राम के लिए आवश्यक आत्मिक शक्ति का अजस्र स्रोत बना दिया है। 'अम्बर को चीर चली विद्युत् रेखा-सी तुम दीवानी हो।'[1] 'तुम हो वसन्त की मादक श्री।'[2] 'मेरी अक्षय निधि' और आलिंगन का जादू पढ़ती।'[3] 'प्राणो मे निर्झर-सा झरता लख उसके मानस को अगाध'[4]। 'नन्दन वन की रानी'[5] 'मेरी मलयानिल तन्वि'[6] विश्व के सुमधुर क्षितिज का मंजु स्वर्ण विहान हो तुम।'[7] 'उर मे चपला-सी चमक उठी, किस चंचल की प्रतिमा महान्।'[8] आदि उद्‌गारो से उसके बाह्य-आन्तरिक सौंदर्य का कुछ अनुमान हो सकता है। कवि ऐसे सुन्दर और प्रेरणादायक आराध्य के लिए साधक बनकर अपना जीवन-यापन कर रहा है— मेरे गायन ने अपने स्वर तुम पर ही बलिदान किये है'[9] अपनी लक्ष्य सिद्धि मे सजग प्रेमी कवि की साधना की अविचलता व गहनता से हम निश्चय ही प्रभावित होते है, क्योंकि उसकी साधना की 'स्टीम' है—'प्रेम पावन मार्ग मे निश्चय सभी सुख साधना है।'[10] साधक कवि को अपने भीतरी वजन का विश्वास है—'इस साधक के प्रण को तोलो।'[11] साधना के प्रति कवि की यह अविचल निष्ठा

१. 'बन्दी के गान' पृ० १२
२. वही, पृ० ८५
३ वही, पृ० ८६ और ,, पदावली 'प्रसाद' की है।
४ वही, पृ० ८८
५. वही, पृ० ६५
६. वही, पृ० ८६
७. 'मल्लिका' पृ० १५
८ वही, पृ० १६
९. 'बन्दी के गान' पृ० ४८
१०. वही, पृ० २६
११. वही, पृ० ८६

सर्वत्र मुखरित हुई है[1]—कवि के लिए अपनी आराध्य प्रतिमा पावन हो गई है[2]—वह प्रिय का अविरत वदन करने मे लीन है[3]—और वह सहर्ष घोषित कर रहा है—'आ रहा करता हुआ तब प्रेम का गुण-गान योगी'[4], साधना पूरी होगी या नही, पर इतनी कामना अवश्य है—'ध्येय की कचन कसौटी पर मुझे तुम तोल लेते',[5]

प्रेम की यह स्थिति अनेक स्थलो पर उन्माद की कोटि को पहुँच गई है। कवि अपने पागलपन मे मस्त है, दुनिया जो चाहे कहे।[6] कवि पर यह सूफी प्रभाव 'प्रसाद' और बच्चन से होता हुआ आया जान पडता है। लोक-सग्रह और लोक प्रभाव की दृष्टि से कुछ भी कहा जाए पर अपने-आपम यह उन्माद प्रेम की तलस्पर्शी मर्मानुभूति का अचूक प्रकाशक है।

यह प्रेम आलिगन, भुज-बन्धन, पुलक-चुम्बन, मिलन की प्रबल उत्कठा आदि प्रणय के अनिवार्य उपादानो या व्यजना से शून्य नही रह सका है।[7] एक स्थल पर तो कवि विकल होकर फूट पडता है—क्या न तुमको प्रेम से निज बाहु मे कसकर सुला लूँ।[8] पर इस मे कवि का क्या दोष ! सृष्टि की मूल प्रकृति भी तो यही है—

देवि, आलिगन-निरत नव सृष्टि का वरदान हो तुम ![9]

नीतिज्ञ सुधारवादियो की वे जानें, हमारी दृष्टि मे शुद्ध काव्य-क्षेत्र मे इन स्वाभाविक शारीरिक चेष्टाओ या अनुभावो की स्थिति प्रस्तुत सदर्भो को देखते हुए प्रेम की मूल गम्भीरता को किसी प्रकार विकृत करती नही जान पडती। प्रेम अपने शुद्ध मूल या अनभिव्यक्त रूप म पूर्ण निर्गुण है, पर वह अपने प्रकाशन के समय विविध रसो मे आश्रय-आलम्बन भेद से या स्वय शृगार रस की रतिमूलक विविध अभिव्यक्तियो—कान्ता-विषयक रति, बालविषयक रति, प्रकृतिविषयक रति, आचार्यविषयक रति आदि—मे नाना चेष्टाओ मे प्रकट होने को बाध्य है। इन प्राकृतिक चेष्टाओ का वास्तविक स्वभाव प्रेम के मूल स्वरूप व स्तर के आलोक मे ही निर्णीत किया जाना न्यायोचित होगा। ऊपरी दृष्टि से देखने मे कुछ नासमझी या अनुदारता भी हो सकती है। याद रखना चाहिए कि मानव-जीवन मे प्रेम की विराट्—विशद योजना मे यौन काम का अपना

१. वही, पृ० २, १३, १७, तथा 'मल्लिका' पृ० ४, २५, ३२
२. 'बन्दी के गान', पृ० १२, ३०, ४६
३. 'मल्लिका', पृ० ५३
४. वही, पृ० १०
५. वही, पृ० ३३
६. वही, पृ० ७, ८, २६, २७, ६१, 'बन्दी के गान' पृ० १०, ११, ३०
७. वही, पृ० ५, ४४, ५१, ८६, ८८, 'मल्लिका' पृ० ३०, ३१, ४५, ४८
८. वही, पृ० ५१
९. वही, पृ० १६

निर्धारित महत्त्व व स्थान है जिसे कीरी कुजर से लेकर पूर्ण विकसित सृष्टि तक प्रकृति न निश्चित कर रखा है। प्रेम को आदर्श या प्लैटोनिक कहकर भी इससे पिंड नहीं छूट सकेगा। कवि की दृष्टि मे ये चेष्टाएँ तो वस्तुत शक्ति का प्रकाशन है और उनका मानसिक निर्मलीकरण से सम्बन्ध है—

एक अलस चुम्बन पाकर मैं सब कल्मष कर क्षार रहा हूँ।[1]

पाप कल्मष सब मिटाने,
सुप्त पीड़ा को जगाने,
क्यों न तुमको प्रेम से निज बाहु मे कसकर सुला लूँ?
अंक मे तुमको बिठा लूँ।[1]

तव भुज-बंधों मे बँधकर मैं अपने प्राण सजग कर लूँगा।[1]

उनकी अश्रु लड़ी से मेरा कल्मष आज सभी धुलता है।[2]

वस्तुत इस रूप मे कवि का प्रेम अधिक मानवीय व प्रभावशाली हो गया है। इस सहज मानव-वासना की अभिव्यक्ति को कोरे आध्यात्मिक या आदर्श प्रेम से सम्बन्धित काव्य मे ठीक-ठीक स्थान सम्भवत नहीं मिल पा रहा था। अत आधुनिक साहित्यिक-दार्शनिक चेतना ने यथार्थ की भूमि पर मानव-प्रेम के निरूपण मे भाव सत्यता के आग्रह से हमारी पार्थिवता को भी समेटते ले चलने का एक साहसपूर्ण प्रयास किया है। प्रणयालिंगन आदि भी यथाप्रसग अधिकाशत हमारी सात्विक प्रकृति की परिधि के बाहर की चीज नहीं। कवियों ने इस विश्वास को भाव के माध्यम से और भी पुष्ट तथा प्रतिष्ठित किया है। सुमनजी के काव्य मे इन चेष्टाओं के निरूपण को इनके व्यापक सदर्भों को देखकर और कोई दूसरी व्याख्या हमसे करते नहीं बनती। सही रूप मे देखने पर ये चेष्टाएँ अपने मूल तात्विक रूप मे उच्च मानवीय प्रेम की ही प्राणवान् व सक्षम अभिव्यक्तियाँ कही जा सकती है।

प्रणय-क्षेत्र की विविध भावनाएँ कवि ने चित्रित की हैं जिनमें कोई विशेष नवीनता नहीं दिखाई पड़ती। वही भावाकुल दु ख-गाथा, विरह-निवेदन, उपालम्भ, अवसाद खिन्नता, स्मृति-उन्माद, पश्चाताप, अमर्ष-आक्रोश, समर्पण-मनुहार, आशा-अभिलाषा, याचना-अनुनय आदि। इनके निरूपण मे वस्तुत उतनी गहराई भी नहीं आ

१. 'मल्लिका' पृ० ४५
२. वही, पृ० ५१
३. वही
४. वही, पृ० ३३

पाई है। भक्ति की उसी पुरानी रूढ़-सामग्री से किन्तु भाव-सत्यता के साथ, अपने हृदय की धधक, शून्यता व विवशता को अकृत्रिमता से कवि ने हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। साधनाशील रोमांटिक कवि के प्रेम-भाव की सत्यता और पवित्रता छोटी-सी वस्तु-सीमा में खूब उभरी है।

एकाकी दूर क्षितिज के नक्षत्रों पर[1] दृष्टि रखने वाले और पत्तों को देखकर 'अपने गत जीवन की उलझी गाँठें, वह फिर से खोल रहा',[2] कहने वाले कवि की आँखों में प्रकृति के प्रति भी निश्चय ही एक नीरव आकर्षण है जो पाठक को यदा-कदा छू लेता है।

यद्यपि कवि ने प्रकृति-निरूपण को अपना विशेष लक्ष्य नहीं बनाया और मुक्तक, विशेषत गीति-काव्य में उसकी गुंजाइश भी नहीं, तथापि उसके प्रणय-काव्य के मूल में प्रकृति चुपचाप मुस्कराती हुई पानी सींच रही है। कवि को जो अपना प्रिय किसी दिन भा गया, वह प्रकृति के सलोने आँगन में ही तो—

प्रकृति के मणिमय अजिर में, प्राण मुझको भा गए तुम।[3]

छायावाद की वही पुरानी व गहरी 'कौन ? क्या ?' अपने क्षीण रूप में यहाँ भी इधर-उधर कहीं सुनाई पड़ जाती है—

कानों में कौन अचानक रे, नवजीवन मधु है घोल रहा![4]

सुमनजी के काव्य प्रभाव की मूल शक्ति किसमें निहित है ? एक शब्द में जैसा कि ऊपर संकेतित किया जा चुका है, उनकी भाव-सत्यता व सरलता में। 'सरल जीवन की निधि आई,'[5] 'मेरे जीवन की सरल साध,'[6] 'सरल मानस पर हुआ पवि-पात सहसा ?',[7] 'मैं प्यार-भरा भोला मानव'[8] आदि उक्तियाँ उनके कवि-व्यक्तित्व के इसी मूल गुण को प्रस्तुत करती हैं। इसीसे उनकी मर्मव्यथामयी ये पंक्तियाँ हममें सीधी उतरती चली जाती हैं—

खोया-सा मौन भरे बैठा रहता हूँ शून्य विजन पथ में।[9]

तव मौन चुभोता नस-नस में अगणित शूलों का दल कोई।[10]

१. 'बन्दी के गान', पृ० ११, ८०
२. वही, पृ० २७
३. 'मल्लिका', पृ० ५२
४. 'बन्दी के गान', पृ० २८
५. वही, पृ० ७
६. वही, पृ० ३=
७. वही, पृ० १३
८. 'मल्लिका', पृ० ५३
९. 'बन्दी के गान', पृ० ६०
१०. वही, पृ० ३?

कहना—इस भूले जीवन मे आया था कोई अनभाया।'[1]

काव्य शैली की दृष्टि से सुमनजी शायद ही किसी मौलिकता का दावा करना चाहेंगे। छन्दों का पैटर्न मोटे रूप से बच्चन का ही कहा जायगा। छायावादियों तथा आगे चलकर प्रयोगवादियों ने जो सूक्ष्म काव्य-शिल्प तैयार किया उस प्रकार की चेतना सुमनजी मे कहीं विशेष परिलक्षित नहीं होती। बहुत सी अभिव्यक्तियाँ टकसाली-सी ही है। हाँ, छन्दों का गठन और संगीतमय प्रवाह कहीं-कहीं हमें पकड लेता है—

आज सब सपना हुआ, सखि
आँसुओं के तार टूटे।
चुम्बनों के सुभग पिच्छल,
मिसकते संसार छूटे।[2]

सुमनजी ने अपना काव्य प्रभाव बहुत-कुछ अभिधा से ही सिद्ध किया है। यह मानते हुए भी कि काव्य मे व्यंजना का ही सर्वोपरि महत्त्व है अभिधा की शक्ति को विशेष स्थितियों मे, उच्च काव्य प्रभाव निष्पन्न करने की दृष्टि से सर्वथा 'रूल आउट' नहीं किया जा सकता। व्यंजना वस्तुत काव्य-प्रभाव उत्पन्न करने की एक ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा कल्पना-व्यापार को काव्य स्रष्टा व पाठक-श्रोता दोनों की ही चेतना म खूब क्षेत्र मिलता है और परिणामत दोनों को मानसिक साम्य स्थापित करने की स्थिति सुलभ होती है। ध्यान देने पर, विशिष्ट स्थितियों मे अभिधा के द्वारा भी इस लक्ष्य की सिद्धि बहुत-कुछ होती ही है। यदि कवि की भाव सत्यता के प्रति हम मूलत पूरे आश्वस्त हो और श्रोता पाठक ज्यादा चटपटे शैली व्यंजनों का ही आग्रही न होकर पौष्टिक व तृप्तिकारी 'वस्तु' का अधिक आकांक्षी हो तो कवि और श्रोता पाठक के बीच एक मधुर भाव-साम्य स्थापित हो सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सरलता और आस्तिक्य के कवि श्री सुमनजी का काव्य निवेदन सहृदयों को इस दृष्टि से पर्याप्त तुष्टिकर जान पडेगा।

सक्षेप म, हम यही कहना चाहेंगे कि सुमनजी के जीवन मे से काव्य का एक मदिर और वेगवान ज्वार कभी आकर निकल चुका है। काल के क्रम मे बात भले ही पुरानी हो चुकी हो, पर प्रभाव की दृष्टि से वह सहृदयों के लिए आज भी नवीन है, क्योंकि अमर प्रेम कभी भी बासी नहीं होता। पुष्प के खिलने का एक ही तो धन्य क्षण होता है, उसके बाद तो कुम्हलाहट आरम्भ हो जाती है। अंगार के दहकने का एक ही तो आभामय चरम क्षण होता है, फिर तो कजलाहट होती ही है। जीवन मे एक-न एक बार सभी खिलते व प्रज्वलित होते है, पर वे ही अधिक सौभाग्यशाली हैं जो शब्दों के

१. 'मल्लिका', पृ० ६२
२. 'बन्दी क गान', पृ० ८८

माध्यम में अपने सन्तोष के लिए अपनी टकनी मोमों के रेकार्ड रख गये हैं। प्रत्येक क्षण नाश और मरण की दाढ़ में रहकर एक-एक बूंद सुख के लिए तरसने वालों के लिए यह उपलब्धि शायद छोटी नहीं। हिन्दी-काव्य को सुमनजी का यह दान छोटा भले ही हो, किन्तु है ज्योतिर्वान स्फुलिंग का-सा। उचित परिवेश में व सही कोण से देखने पर प्रत्येक वस्तु का महत्त्व व सौन्दर्य प्रकट होता है।

हिन्दी विभाग,
वल्लभ विद्यानगर विश्वविद्यालय,
आनन्द (गुजरात)

निबन्धकार सुमन

डॉ० रणवीर रांग्रा

सुमनजी के व्यक्तित्व के अनुरूप उनका निबन्धकार भी अत्यन्त जागरूक उन्मुक्त और निर्भीक है। सजग प्रहरी की तरह वह हिन्दी-जगत् के बाहर और भीतर की प्रत्येक हलचल पर निगाह रखता है और खतरे की सम्भावना देखते ही उसके विरुद्ध जोर की आवाज़ उठा देता है। विशेषज्ञ का जामा पहनकर वह अपने इर्द-गिर्द सीमाओं का निर्माण नहीं करता, बल्कि मुक्त पंछी की तरह उड़ता हुआ कभी इस पेड़ पर और कभी उस पेड़ पर जा बैठता है। पर जिस पेड़ पर बैठता है, उसका पत्ता-पत्ता छान मारता है। सब तरफ का चक्कर लगाकर जहाज के पंछी की तरह वह बार-बार अपने मूल विषय भाषा और साहित्य पर आ जाता है। जोखिम उठाने से वह कभी नहीं घबराता। जैसा महसूस करता है, वैसा कह देता है और जैसा अनुभव करता है वैसा लिख देता है। भय और प्रलोभन उसकी लेखनी को बाँध नहीं पाते।

सुमनजी के निबन्धकार का जो रूप सबसे पहले अपनी ओर आकृष्ट करता है वह है प्रहरी और रक्षक का रूप। उसने देखा कि हिन्दी उत्तरोत्तर प्रगति कर रही है, जीवन के विविध क्षेत्रों में उसका प्रवेश गति पकड़ रहा है, पर फिर भी उसमें अभी तक शब्द-संक्षिप्तियों (Abbreviations) का प्रचलन नहीं हो रहा। आज के अभाव के युग में जब सर्वत्र संक्षिप्त की ही माँग है, हिन्दी शब्द थोड़ी-सी बात के लिए बहुत-सा स्थान घेरें तो यह कोई गौरव की बात नहीं। हिन्दी में अभी बहुत कम शब्द-संक्षिप्तियों का निर्माण हुआ है जैसे—'उ० पू० सी०' के लिए उत्तर पूर्वी सीमा, 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' के लिए प्र० सो० पा० आदि। सुमनजी को हिन्दी-भाषा की यह कमी खटकी और

उन्होंने बहुत पहले अपने एक लेख मे लोगो का ध्यान इस ओर दिलाते हुए लिखा, "हिन्दी मे अब तक शब्द-सकेता के विकास के प्रतिरोध के चाहे जितने कारण रहे हो अब समय आ गया है कि उन समग्र कारणो क समाधान खोजकर हिन्दी म वैज्ञानिक रीति से शब्द सकेलो का प्रचलन आरम्भ कर दिया जाए।'

इसी प्रकार, सुमनजी के देखने मे आया कि कृशनचन्दर फिक्र तौसवी, अमृता प्रीतम आदि उर्दू और पजाबी के कई लखका की अनूदित रचनाएँ हिन्दी की पत्र पत्रिकाओ म धडाधड मूल हिन्दी रचनाओ क रूप मे छप रही है, अनुवादक बेचारे का नाम तक नही छपता, जिससे पाठक भ्रमवश इन लेखका का हिन्दी का लेखक मान बैठता है। हिन्दी के पाठका के साथ हो रही इस धाखाधडी के विरुद्ध सुमनजी ने ही सबसे पहले अपने लेख 'ये सपादक ये प्रकाशक' म सपादका और प्रकाशको को कोसते हुए लिखा था, 'आज उँगली कटाकर शहीद बनन के अत्यत लाक-प्रचलित मुहावरे की सार्थकता चरितार्थ करते हुए ऐसे बहुत-से लेखक दूसरी भाषाओ से हिन्दी मे आए और दिन प्रतिदिन आ रहे हैं जो बिना हिन्दी सीख बिना दवनागरी लिपि जान, हिन्दी के स्वनामधन्य सम्पादका और प्रकाशका की कृपा से अनायास हिन्दी साहित्य के भाग्य विधाताओ की प्रमुख पाँत मे आ विराजे है। यदि इसे धृष्टता न समझा जाय तो मैं यहाँ तक कहन की आज्ञा चाहूँगा कि जिन लेखको के नामा का उल्लेख मैने इस सदर्भ म किया है उनमे स अधिकाश ऐसे निकलेंगे, जिन्ह यदि हिन्दी का 'डिक्टेशन' भी लेना पडे तो उससे उनकी हिन्दी-योग्यता 'उजागर' हो जायगी।'

अपन इस आरोप के समथन म सुमनजी न 'आजकल' के मई, '६२ के अक का हवाला दिया, जिसमे पजाबी की लेखिका अमृता प्रीतम के एक रेखा चित्र का हिन्दी रूपातर 'हिन्दी का रेखा चित्र' बताकर छापा गया था। सम्पादका की इस लापरवाही के कारण पाठक कहाँ तक भ्रमित हो सकते है इसके प्रमाण मे उन्होने पी एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हिन्दी के एक शोध प्रबन्ध का उल्लेख किया जिसमे अनुसन्धान-कर्ता ने हिन्दी क कथाकारो म कृशनचन्दर, मुल्कराज आनन्द, कृष्णबलदेव वैद, कर्तारसिंह दुग्गल और अमृता प्रीतम आदि के नाम गिनाए हैं।

इसका अभिप्राय यह नही कि सुमनजी का निबधकार दूसरा पर कीचड उछालना ही जानता है। इस तरह के आक्रामक निबध तो वह फुरसत के समय लिखता है। सुमनजी ने अनुसन्धानपरक निबन्ध भी लिखे है और खूब जमकर लिखे है। उनके अनुसधानपरक निबन्धो के रूप मे 'हिन्दी-साहित्य को आर्यसमाज की देन' तथा 'हिन्दी कविता को महिलाओ की देन' आदि कई निबन्धा का नाम लिया जा सकता है, जिन्ह देखकर उनकी लगन और अध्यवसाय की दाद देनी पडती है। अब तक आर्यसमाज मुख्यत धार्मिक और समाज-सुधारक सस्था ही माना जाता रहा है और हिन्दी-साहित्य का इतिहासकार आर्य-समाज का नाम-भर गिनाकर आगे बढ लेता था। पर सुमनजी ने बडे परिश्रम मे पुरानी

सामग्री जुटाकर और उसे वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करके अपने इस बृहत् लेख में यह दिखा दिया है कि हिन्दी भाषा और साहित्य के विकासारम्भ से ही आर्यसमाज इसे सींचता रहा है—हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में सर्वप्रथम आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने ही मान्यता दी थी, आर्यसमाज ने ही बडे पैमाने पर उसका प्रयोग आरम्भ किया था। यही नहीं असख्य पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन करके इसके विकास को गति भी दी थी। सुमनजी ने बडी खोज-खबर के बाद यहाँ तक बता दिया कि हिन्दी के अनेक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारो की प्रथम रचनाएँ पहली बार आर्यसमाज के पत्रो मे ही प्रकाशित हुई थी। उन्होने नाम गिनाकर यह भी बताया कि हिन्दी के अधिकाश प्रसिद्ध लेखक आर्यसमाज के घनिष्ठ सपर्क मे आए थे और वही से उन्होने कर्मठता और विचार-स्वातन्त्र्य की प्रेरणा ग्रहण की थी। इस प्रकार, अपने इस उपयोगी निबन्ध मे सुमनजी ने आर्यसमाज की बहुमुखी देन का विस्तार से वर्णन किया है।

अपने एक और निबन्ध 'हिन्दी-कविता को महिलाओ की देन' मे भी सुमनजी ने शोध-वृत्ति से काम लेते हुए मीराबाई से लेकर आज की नई कविता तक जितनी भी कवयित्रियो ने हिन्दी-कविता को समृद्ध किया है एक इतिहासकार के रूप मे उनकी कविता का सोदाहरण परिचय दिया है। इस लेख मे अनेक ऐसी कवयित्रियो का परिचय मिलता है जो अब तक हिन्दी जगत् के लिए अज्ञात ही थी। इसी प्रकार, उनके एक और लेख 'चीनी आक्रमण और भारत की सीमा रेखा' मे उनकी शोध-दृष्टि का परिचय मिलता है। इसमे उन्होने भारत की सीमा-रेखा को लेकर चीन के साथ समय-समय पर हुए समझौतो का वर्णन करते हुए बडे विस्तार से बताया है कि किस प्रकार चीनी शासको ने अपने विस्तारवादी इरादो को भारत से छिपाये रखा और पूरी तैयारी करने के बाद वे एक दिन अचानक भारत पर टूट पडे। इस लेख की विशेषता यह है कि तनिक भी उत्तेजित हुए बिना लेखक चीनी तानाशाहो की कलई खोलता जाता है और अपने प्रत्येक कथन के समर्थन मे ठोस प्रमाण प्रस्तुत करता है।

हिन्दी-साहित्य के विविध पक्षो पर भी सुमनजी के अनेक लेख मिलते हैं। सुमनजी अध्यापक रह चुके हैं। सफल अध्यापक के नाते अपने विद्यार्थियो की अनेक जिज्ञासाओं के समाधान मे और उन्हे दृढ साहित्यिक पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए भी उन्हे विविध विषयो पर निबन्ध लिखने पडे होंगे। 'साहित्य और जीवन', 'कुछ आधुनिक भारतीय साहित्यकार', 'एकाकी नाटक', 'हमारे पर्व और त्योहार', 'निबन्ध कला और विवेचन', 'हिन्दी-साहित्य विकास और इतिहास', 'हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति और विकास आदि निबंध परीक्षोपयोगी दृष्टि से ही लिखे गए प्रतीत होते हैं। इनकी विशेषता यह है कि निबन्धकार आलोच्य विषय की बारीकियो से पूरी तरह परिचित है और उन्हे सरल और स्पष्ट भाषा मे व्यक्त कर देता है। रूखे से रूखे विषय मे भी वह अपनी सूझ-बूझ से जान डाल देता है। सुमनजी का निबंध 'पत्र-लेखन' इसका प्रमाण है। इसमे अनेक प्रसिद्ध

व्यक्तियो के सूत्रो को उद्धृत करके उन्होने निबध को मनोरम बना दिया है।

इसके अलावा साहित्य की विविध प्रवृत्तियो को लेकर भी सुमनजी ने अनेक सुन्दर निबन्ध लिखे है जो विषय वस्तु और प्रतिपादन शैली दोनो की दृष्टि से सफल कहे जा सकते है। हिन्दी काव्य मे विहग गान हिन्दी कविता म सरिता वणन आदि ऐसे ज्ञानवधक तथा मनोरजक भी हैं। सुमनजी ने अलग-अलग लेखको के सम्पूर्ण साहित्य को लेकर विवेचनात्मक निबध भी लिखे हैं जो इनकी विश्लेषण प्रतिभा और बेजोड पकड के द्योतक है। अन्नपूर्णानन्द का हास्य महाकवि कालिदास सेठ गोविन्ददास के नाटक जायसी का काव्य देव और उनका साहित्य मामा वरेरकर के अनूदित उपन्यास' आदि उनके अनेक निबन्ध इसी कोटि म आते है।

सुमनजी ने कुछ आत्मपरक निबन्ध भी लिखे है जिनसे उनके सघष भरे जीवन और साहित्यिक विकास का परिचय मिलता है— मेरे प्ररणा-स्रोत और मेरी कविता इसी प्रकार की रचनाए है। मेरी-कविता म उन्होने बड सहज भाव से बताया है कि कवि को समाज मे सम्मानपूण स्थान मिलता देखकर किस प्रकार वे प्रलोभनवश कविता की ओर प्रवृत्त हुए और फिर किस तरह कविता उनके लिए बवाल जान बनती गई।

हिन्दी म व्यग्य साहित्य का अभाव बडा खटकता है। सुमनजी ने व्यग्यात्मक निबन्ध भी खूब लिखे है और अच्छे लिखे हैं। वहाँ इनकी शैली बडी चटपटी और मसालेदार हो उठी है। अपने निबन्ध ये अनचाहे मेहमान का आरम्भ वे इस प्रकार करते हैं— वैसे तो स्वभाव से ही मुझे अतिथि सत्कार म बडा आनन्द आता है परन्तु अतिथियो की कोई सीमा हो तब तो ! अगर रोज कोई न कोई मेहमान आधी के आम की तरह आ टपके तो क्या किया जाए ? बुखार भी आता है तो पहले सूचना देकर आता है। सर्दी मालूम होती है कँपकँपी चढती है। परन्तु ये जबरदस्ती के मेहमान तो बिना सूचना दिए ही आ धमकते है। उनके एक अन्य निबध वहमी का एक अश प्रस्तुत है— मेरे एक सम्बन्धी इतने वहमी हैं कि वे अपनी साइकिल किसी को भी नही देते। व मुझे बहुत प्यार करते है। एक दिन मुझे अचानक साइकिल की जरूरत पड गई और उनकी इस आदत को जानते हुए भी मैं उनसे साइकिल मागने की हिमाकत कर बैठा। उन्होने मेरी जरूरत को समझा तो अनमने भाव से बोले अच्छा ले तो जाओ पर चढना नही। मैं मुह बाये उनकी ओर देखता रह गया मेरी इस हरकत को देखकर वे बोले देखते क्या हो ? लोग इतनी बेदर्दी से चढते है कि टायर तक घिस जाते हैं। भला कही साइकिल भी मागने की चीज है।

अब सुमनजी के निबन्धकार की एक कमजोरी भी बता दू—बहुत चुपके से आपके कान मे। साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा काव्य के प्रति उसका मोह प्रबल है और काव्य मे भी गीति-काव्य के प्रति। कविता के विविध पक्षो को लेकर उसने जो निबन्ध लिखे हैं वे खूब जमकर लिखे है। गीतकाव्य पर तो यह निबन्धकार रस ले-लेकर बडी

मस्ती से लिखता है, पर नई कविता का नाम आते ही बिदक उठता है और छन्दहीन कविता के प्रति अपनी चिढ़ निकालने लगता है। फिर उसे यह चिन्ता नहीं रहती कि निबंध किधर जा रहा है। इसी कमजोरी के कारण सुमनजी के एक बहुत सुन्दर निबन्ध 'हिन्दी-कविता को महिलाओं की देन' का सन्तुलन बिगड़ गया है जब अन्त में वे नई कविता के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करने लगते हैं—"कविता का मार्दव और सरस संवेदन उसके छन्दबद्ध होने में ही है। जिस कविता को सुनकर या पढ़कर संवेदनशील पाठक झूम न उठें और कविता में व्यंजित भावनाओं में पूर्ण तादात्म्य न अनुभव कर सकें, वह कविता नहीं कही जा सकती। फिर नारी तो काव्य की अधिष्ठात्री देवी है, छन्दों की रानी है, पीड़ा की सजीव प्रतिमा है। उसके द्वारा अतुकान्त छन्दों में बेसिर-पैर की बातें लिखी जाना शोभा नहीं देता। हमारा यह दृढ़ मत है यदि हिन्दी-कविता में से पीड़ा, वेदना तथा कसक-कराह से भरे गीतों को निकाल दिया जाए तो यह कविता ही नहीं रह जाएगी। उसे कोरा गद्य ही कहना अधिक युक्तिसंगत होगा।'

फलतः वे उन कवयित्रियों के प्रति न्याय नहीं कर पाए जो नई कविता में प्रवृत्त हो गई हैं। एक प्रकार से उनकी भर्त्सना करते हुए वे लेख को इन शब्दों के साथ समाप्त करते हैं: 'निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जब तक गीति-काव्य के क्षेत्र में हमारी कवियों का सक्रिय सहयोग रहेगा तब तक 'नई कविता'-जैसी चीज भारतीय काव्य-साहित्य में अपने पैर न जमा सकेगी।'

वास्तव में, बात यह है कि सुमनजी मूलतः निबन्धकार नहीं, कवि हैं और कवियों में भी रससिद्ध कवि। उनका निबन्धकार अन्यथा तो तटस्थ और निर्भय है, पर काव्य के मामले में उसे सुमनजी के कवि से दबकर ही रहना पड़ता है।

बी-२१४ (ई), मोतीबाग,
नई दिल्ली ३

राष्ट्रीय साहित्य-रचना में सुमनजी का योगदान

श्री कन्हैयालाल 'चचरीक'

हिन्दी में राष्ट्रीय चेतना, देश-प्रेम, जन-जागरण और मातृभूमि के लिए हँसते हँसते अपना सर्वस्व निछावर करने वाले देशभक्तों के विषय में लिखने वालों में सुमनजी का बड़ा महत्वपूर्ण योग रहा है। वे कोरे भावुक कवि और साहित्यकार ही नहीं हैं, प्रत्युत उन्होंने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम को बड़े निकट से देखा है, और

उसमे बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया है। सन् ४२ के आंदोलन मे उन्होंने भारी हिस्सा लिया और बराबर पुलिस और सी० आई० डी० से बचते रहे। २३ मार्च, १९४३ को उन्हे लाहौर मे भारत रक्षा कानून के अतर्गत गिरफ्तार करके और फीरोजपुर जेल में नजरबन्द किया गया। फीरोजपुर जेल मे १६ जुलाई, १९४४ को रिहाई मिली और बाद मे पजाब से उन्हे अवैध व्यक्ति घोषित करके निष्कासित कर दिया गया। फलत सुमनजी अपनी जन्मभूमि बाबूगढ लौटे, लेकिन उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर ने उन्हे यहाँ भी नही छोडा और नजरबन्दी की पाबन्दी लगा दी।

सन् १९४० से लेकर १९४७ तक सुमनजी ने एक राष्ट्रप्रेमी और देशभक्त साहित्यकार के नाते बडा सघर्षमय जीवन बिताया और यातनाऐं सही। लेकिन कभी किसी के सामने न राज्यसभा, न ससद् और न विधान-सभा के लिए टिकट माँगा और न कोई आर्थिक लाभ उठाने की कोशिश की। सघर्षों मे तप-तपकर वे 'सुमन' से 'कुन्दन' बन गए है। वे 'सुमन' नही है, अच्छे मन वाले सज्जन नागरिक अवश्य हैं। नाम उनका हमे भ्रम मे डाल सकता है, लेकिन उनके इरादे और तदनुरूप काम 'इस्पाती' हैं।

हमारे इस सक्षिप्त लेख का विषय इस बीच की उनकी राष्ट्रीय रचनाओ पर प्रकाश डालना भर है। लेकिन इससे पूर्व कि हम उनकी रचनाओं की चर्चा करते उनके विषय मे भी थोडा जान लेना जरूरी था। इस दौर मे उन्होंने जो प्रेरणादायिनी और देश प्रेम से ओत-प्रोत पुस्तकें लिखी उनमे प्रमुख हैं—'नये भारत के निर्माता', नेताजी सुभाष, 'आजादी की कहानी', 'काग्रेस का सक्षिप्त इतिहास' और 'हमारा सघर्ष' आदि।

सुमनजी की यह मान्यता अक्षरश सत्य है, "स्वतन्त्र भारत म अपनी आजादी का उपभोग करते समय कही हम उन विभूतियो को न भूल जाएँ जिन्होंने सर्वात्मना अपने जीवन को देश हित-चिन्तन मे ही खपा दिया और उनमे से कुछ आज भी अपने महत्त्वपूर्ण मस्तिष्क और अपूर्व प्रतिभा का उपयोग देश-सेवा मे ही कर रहे हैं।" इसी अपनी मान्यता को सुमनजी ने सार्थक कर दिखाया है 'नये भारत के निर्माता' पुस्तक के प्रणयन मे। इसमे राष्ट्रीय नेताओ की सरल, रोचक और ओजस्वी शैली मे जीवनियाँ दी गई हैं। उसकी प्रस्तावना मे प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने लिखा है, " "इस पुस्तक द्वारा नव भारत के निर्माताओ का सजीव परिचय लिखकर हिन्दी साहित्य के एक बडे अभाव की पूर्ति की है। लेखक ने लोकमान्य तिलक से लेकर जयप्रकाश नारायण तक के भारतीय महापुरुषो के सक्षिप्त जीवन-चरित्र और उनके द्वारा किये गए कार्य-कलापो का वर्णन मार्मिक एव ओजस्वी शब्दो मे किया है।" यह पुस्तक वैसे भी बडी लोकप्रिय हुई और विभिन्न शिक्षा-मडलो के पाठ्यक्रमो मे भी निर्धारित की जा चुकी है और उत्तरप्रदेश शिक्षा-सचिवालय द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी है।

इसके अतिरिक्त भारत के महान् विद्रोही नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के विषय मे भी एक जीवनी 'नेताजी सुभाष' नाम से उन्होंने सन् १९४६ मे लिखी। जिसकी भूमिका मे

अ० भा० फारवर्ड ब्लॉक के भूतपूर्व अध्यक्ष आर० एम० रुईकर ने लिखा था,..."मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि इधर दो सौ वर्षों के बीच नेताजी सुभाष-जैसा क्रान्तिकारी भारत में दूसरा पैदा नहीं हुआ। प्रस्तुत पुस्तक में उनके क्रान्तिकारी जीवन और कार्यों पर प्रकाश डाला गया है।"

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सुमनजी सजीव परिचयात्मक साहित्य लिखने में बड़े दक्ष और अनुभवी हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के विषय में अंग्रेजी में देश-विदेश के लेखकों ने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी में सुमनजी ने इस विषय पर उस समय लिखा जबकि विरले ही ऐसे विषयों पर लिखते थे। उनकी पुस्तक 'आज़ादी की कहानी' १८५७ के विद्रोह से लेकर १५ अगस्त १९४७ तक के भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास है और है भारतीय सपूतों के नब्बे साल के बलिदान की शौर्य गाथा।

लगभग इसी श्रेणी में सुमनजी ने दो और महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं—एक है 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' और दूसरी है 'हमारा संघर्ष'।

'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' भारत के राष्ट्रीय जागरण और स्वतन्त्रता-संग्राम का ही दूसरा नाम है। इसमें लेखक ने बड़ी सरल भाषा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए किये गए कार्यों का संक्षिप्त इतिहास दिया है। साथ ही पुस्तक की रचना उन लोगों को ध्यान में रखकर की गई है जो कम पढ़े-लिखे हैं। विद्यार्थी-वर्ग भी इससे समुचित लाभ उठा सकता है।

'हमारा संघर्ष' पुस्तक विप्लवी बयालीस का सजीव और रोमांचक इतिहास है। इसके लिए 'दो शब्द' लिखते हुए बाबू श्रीप्रकाशजी ने लिखा है

'मेरे मित्र सुमनजी ने उन घटनाओं (सन् बयालीस की) का संग्रह और विवेचन किया है। उनके पात्रों का भी वर्णन किया है। उनके सम्बन्ध में अपना मत भी प्रकट किया है। अवश्य ही उन्होंने एक विशेष दृष्टिकोण से अपनी पुस्तक लिखी है। अपने भावों को उन्होंने सफाई से व्यक्त किया है। देश ने क्या-क्या सहा, उस क्रान्ति के वास्तविक नेताओं ने क्या-क्या संकट उठाये यह सब जानने और समझने में उनकी पुस्तक बहुत सहायक हो सकती है।" निःसंदेह, सन् बयालीस की घटनाओं के बारे में, जिसे 'अगस्त-क्रान्ति' भी कहा जाता है, इतना रोचक, सजीव और सुस्पष्ट वर्णन हिन्दी की अन्य किसी रचना में नहीं मिलेगा।

सुमनजी की एक अन्य रचना का भी हम उल्लेख करना चाहेंगे। जो उन्होंने सन् १९४८-४९ में उत्तरप्रदेश सरकार के हरिजन सहायक विभाग के लिए तैयार की थी। इस पुस्तक का शीर्षक है 'बापू और हरिजन'। इसमें उन्होंने महात्मा गांधी के हरिजन-समस्या पर लिखे गए लेखों और प्रवचनों का संकलन-सम्पादन किया है। इस रचना पर उन्हें उत्तरप्रदेश सरकार से पुरस्कार भी मिला था। जिसकी भूमिका में से निम्न वाक्य

उद्धृत करना समीचीन होगा "इसमे तो कुछ सन्देह ही नही कि इस देश के राष्ट्रीय जीवन मे हरिजन-सुधार और अस्पृश्यता-निवारण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या है और इसे अपने हाथ मे लेकर महात्माजी ने अपनी महत्ता के अनुरूप काम किया था। आज जब कि देश के शासन की बागडोर राष्ट्रीय सरकार के हाथ मे है, तब गाधीजी के सर्वोदय एव रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने की ओर उसका ध्यान जाना स्वभाविक ही है।" इस समस्या के विषय मे इसमे सुमनजी के विचार भी स्पष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं सुमनजी एक ऊँचे दर्जे के देशभक्त होने के साथ-साथ राष्ट्रीय लेखक भी हैं।

४८१७ मित्रा स्ट्रीट,
रोशनआरा रोड, दिल्ली ६

गीति-काव्य के उन्नायक

श्री शेरजंग गर्ग

सुमनजी के व्यक्तित्व के बारे मे जब जब भी मैंने सोचा है तब-तब लगा है कि वे अपने ढग के सामयिक उपयोगिता के पारखी, कठोर परिश्रम करने वाले तथा अपनी धुन के पक्के सपादक हैं। पुस्तक की रूपरेखा बनाकर काम मे जुट जाना, प्रबुद्ध लेखक की श्रेष्ठ रचना तलाश निकालना और फिर सारी सामग्री को पुस्तक छपने तक निरखते-परखते रहने का काम सुमनजी 'मिशनरी स्प्रिट' मे करते है। यही तक नही, ऐसे मे उनका प्रयास नये लेखकों की श्रेष्ठ रचनाओं को खोजकर उन्हे प्रकाश मे लाना भी होता है। यही कारण है कि 'लाल किले की ओर' से लेकर 'हिन्दी कवयित्रियो के प्रेम गीत' तक सुमनजी ने अपनी सपादकीय सूझ-बूझ से हिन्दी साहित्य को चौंकाया है और विभिन्न विषयों तथा वर्गों की रचनाओं का चयन करके पुस्तक-सम्पादन की एक नई परम्परा स्थापित की है। आज तो समस्त हिन्दी-ससार मे सुमनजी से प्रेरणा ग्रहण करके ऐसे अनेक सकलन प्रकाशित हो रहे हैं। हर ऐसे सम्पादक के लिए सुमनजी द्वारा सम्पादित पुस्तक ही 'आदर्श' होती है।

सामयिकता के सदर्भ मे सुमनजी की दो पुस्तकों—'लाल किले की ओर' तथा 'चीन को चुनौती' को देखा जा सकता है। गुलामी की जजीरों को तोड डालने के प्रयास नेताजी सुभाष के नेतृत्व मे अत्यन्त तीव्र हो उठे थे। 'दिल्ली चलो' तथा 'लाल किले पर तिरगा लहराओ' की भावना जन-जन मे व्याप्त थी, देश स्वतन्त्रता की मशाल थामे अंग्रेजों को

भारत से निकालने का दृढ निश्चय किये बैठा था। ऐसे समय में देश की कवि वाणी कैसे चुप बैठ सकती थी। सुमनजी की अनोखी सूझ-बूझ और राष्ट्रीय भावना ने उन्हें एक नया कदम उठाने की प्रेरणा दी। सन् ४६ में उन्होंने 'लाल किले की ओर' सकलन का प्रकाशन किया जो अपने ढग का पहला सकलन था। यह आकस्मिक नही था कि इस सकलन की भूमिका प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लिखी थी और इसमे तत्कालीन समस्त जागरूक कवियो की रचनाएँ थी। और फिर सन् ६२ में बर्बर चीन के विश्वासघाती आक्रमण ने समूचे भारतीय जन मानस को झकझोर दिया। देश की जनता अपनी युवा आजादी की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो चुकी थी। सारा देश एक हो उठा और हमारे जवान मोर्चे पर दुश्मनों के दाँत खट्टे कर रहे थे। प्रेम तथा मनुष्यता के गीत गाने वाला कवि आवश्यक बुराई युद्ध को ओढकर अगारा तथा बम-बारूद के गीत लिखने लगा था। सुमनजी ने तत्कालीन कविता के माध्यम से चीन को चुनौती दी। 'चीन को चुनौती' सकलन उस समय प्रकाशित राष्ट्रीय रचनाओ का पहला सकलन था जिसके प्रकाशित होते ही हिन्दी मे स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय रचनाओ के प्रकाशन का रास्ता पहली बार खुला। इस सकलन की सारी आय राष्ट्रीय रक्षा कोष मे दी गई। 'चीन को चुनौती' मे मात्र कविताओ का सकलन नही था बल्कि नक्शा-नक्शा के नक्शे के साथ-साथ इस युद्ध की पीठिका चीन की सीनाजोरी तथा चालबाजी का पर्दाफाश किया गया था और भारतीय वीरो की अदम्य वीरता की कहानी भी लिखी गई थी। यह बात कम महत्त्वपूर्ण नही है कि यह सकलन आज भी सन् ६२ के समान एक श्रेष्ठ साहित्यिक कृति के रूप मे खरीदा जाता है।

सम्पादन के क्षेत्र में सुमनजी की सफलता की कहानी यही समाप्त नहीं होती, बल्कि यो समझा जाय कि आरम्भ होती है। सुमनजी का गीत के प्रति अनन्य अनुराग यह सहन नही कर सकता कि जिस पर नई कविता का प्रभुत्व कारगर हो। यो नई कविता का अपना अलग महत्त्व है पर गीत जो मानव-मन की गहन तथा अनुभूतियो का चित्रण है, मानवीय आशाओ-निराशाओ की अभिव्यक्त करने का श्रेष्ठतम माध्यम है। उसपर किसी प्रकार की आँच आये यह सुमनजी के बर्दाश्त के बाहर की बात थी। उन्होंने बच्चन के बाद के गीत-कवियों को नई प्रेरणा देने के लिए दो महत्वपूर्ण सकलन 'लोकप्रिय कवि' सीरीज मे सम्पादित किये। पहला सकलन 'नीरज' का था तथा दूसरा रामावतार त्यागी का। 'नीरज' के विषय मे सुमनजी ने लिखा था—

"नीरज का नाम सामने आते ही हिन्दी-गीतकारो की एक पूरी-की-पूरी पीढी आँखो की राह दिल मे उतर जाती है। 'नीरज' आज एक व्यक्ति न रहकर पिछले दशक के पूरे गीति-काव्य की शृगार-निधि हो गया है।"

सुमनजी के उक्त वाक्य से सभवत कुछ लोग सहमत न हो, पर यह सच है कि बच्चन के बाद की पीढी मे सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त करने वाला गीतकार 'नीरज' ही है।

रामावतार त्यागी के बारे में लिखा हुआ सुमनजी का परिचय हिन्दी के श्रेष्ठतम परिचयों में गिना जाना चाहिए। उर्दू में प्रकाश पंडित ने जिस ताजगी तथा खूबी से शायरों के परिचय लिखे हैं सुमनजी ने उसमें भी दो कदम आगे बढ़कर बेबाकी से यह काम किया है। सुमनजी ने त्यागीजी के लिए लिखा है—

"त्यागी से आँख मिलाये बगैर आधुनिक हिन्दी-गीति-काव्य से परिचय प्राप्त करना संभव नहीं है। हिन्दी में नई पीढ़ी के जितने कवि पिछले दस वर्षों में उभरे हैं उनमें त्यागी ही मात्र ऐसा कवि है जिसने सरल शब्दावली में गहरी-से-गहरी अनुभूति गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की है।"

नीरज और रामावतार त्यागी पर प्रकाशित इस संकलनों में कवि का पूरा जीवन-वृत्त तथा परिचय और चुनी हुई श्रेष्ठ रचनाएँ प्रकाशित की गई है। यों हिन्दी के अधिकांश दिग्गज कवियों का इस सीरीज में प्रकाशन हुआ और बड़े-बड़े ख्याति-प्राप्त व्यक्तियों ने इन संकलनों का संपादन किया, किन्तु जो लोकप्रियता सुमनजी द्वारा सम्पादित इन दो संकलनों को मिली, वह किसी अन्य संकलन को न मिल सकी।

त्यागी का संकलन प्रकाशित होने पर हिन्दी के मूर्धन्य कवि बच्चन ने सुमनजी को लिखा था

"कविवर त्यागी पर आपका संकलन देखा। नीरज का भी देख चुका हूँ। हल्की-फुल्की घरेलू शैली में दोनों का व्यक्ति-चित्रण आपने बहुत अच्छा किया है। मुझे त्यागी का अधिक सजीव लगा। श्री प्रकाश पंडित ने जो कार्य उर्दू शायरों के लिए किया है वही आप अपने परिचित हिन्दी-कवियों के लिए कर सकते हैं। इस माला में राही, दिनेश, रमानाथ अवस्थी को भी सम्मिलित किया जाय तो संभवतः आप उन पर भी ऐसे ही सजीव व्यक्ति-चित्रण लिख सकेंगे।"

गीत को पुनरुज्जीवित करने का सुमनजी का कार्य यहीं समाप्त नहीं हुआ बल्कि विभिन्न कवियों द्वारा लिखे गए श्रेष्ठ गीतों को भी उन्हें एक संकलन में प्रस्तुत करना था और यह कार्य सुमनजी ने 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' में किया।

हिन्दी-कविता साहित्य में एक नई घटना के रूप में 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' का प्रकाशन हुआ। कनाट प्लेस में घूमते हुए एक अंग्रेजी पुस्तकों की दुकान पर 'फेमस लव पोयम्स' नामक संकलन से आपको हिन्दी में ऐसा ही कार्य कर डालने की प्रेरणा मिली। और सुमनजी ने इस कार्य को इतनी खूबी से सरअंजाम दिया कि यह पुस्तक 'दीवाने गालिब' और 'गीता' की तरह घर-घर पढ़ी जाने लगी। आधुनिक हिन्दी में लिखे जाने वाले सर्व-श्रेष्ठ गीतों के इस संकलन में बहुत से नवयुवक कवियों को अपनी रचना न देख सकने का बड़ा अफसोस रहा। सुमनजी को जहाँ हज़ारों पाठकों के प्रशंसा-पत्र मिले वहाँ उन्हें इस प्रकार के छूटे हुए कवियों का कोपभाजन भी बनना पड़ा। किन्तु सुमनजी की अपनी सीमाएँ थीं। मात्र सौ गीतों को संग्रह में रखना था जिनके चुनाव में बड़ा जोखिम था।

प्रेमगीता के आधार पर बाद म बहुत से सकलन प्रकाशित हुए, लेकिन इस सकलन मे जो सुरुचि थी वह कही नही मिली। प्रेमगीत के प्रकाशन के समय अज्ञेयजी ने सुमनजी को जो पत्र लिखा था वह अत्यन्त प्रेरणाप्रद था।

अज्ञेयजी ने लिखा था—

"आप ऐसा सकलन कर रहे हैं बडी प्रसन्नता की बात है। नि सदेह दूसरी भाषाओ के क्षत्र म भी उसका मान होगा। और प्रेमी तो भारत में इतने हैं कि एक-दो क्यो ऐसे दस सकलन भी हो, तो भी ग्राहको का अभाव न होगा।"

अज्ञेयजी का यह पत्र भविष्यवाणी सिद्ध हुआ। सचमुच ही भारत के प्रेमियो ने यह सिद्ध कर दिया कि देश मे श्रेष्ठ सकलन के प्रेमियो की कमी नहीं है।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि इस सकलन मे हालावाद, हृदयवाद, प्रयोगवाद और यहाँ तक कि नकेनवाद आदि विभिन्न सामयिक वादो की परिधि मे घिरे दर्जनो कवियो न सुमनजी के इस अनुष्ठान मे मुक्त हृदय से अपनी रचनाएँ दी थी।

सम्पादन के क्षेत्र म सुमनजी ने एक कार्य और किया, जो बिलकुल अछूता है। वह है हिन्दी कवयित्रियो क प्रेमगीत का प्रकाशन। इस पुस्तक के प्रकाशन से हिन्दी की नई-पुरानी सभी कवयित्रियो को प्रस्तुत करके सुमनजी ने जिस निष्ठा तथा तल्लीनता का परिचय दिया वह वर्षो याद की जायगी। कवयित्रियों की कविताएँ और वे भी प्रेमगीत और वे भी हमारे भारतीय समाज मे एकत्र करना, उनके फोटो जुटाना सुमनजी के ही बस का काम था। जिन कठिनाइयो का सामना सुमनजी को इस प्रसग मे करना पडा वह तो सकलन की विस्तृत भूमिका पढकर ही जाना जा सकता है। किन्तु अनुमानत भी यह कार्य सरल नहीं दीखता। जो भी हो प्रकाशित होन पर इस सकलन की जितनी समीक्षाएँ पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुई, किसी की नहीं हुई। हिन्दी के बडे-बडे साहित्यकारो ने इस सकलन तथा सुमनजी की मुक्तकठ से प्रशसा की। हालाँकि एक समीक्षक महोदय को यह अपने चित्रो के कारण मात्र 'एलबम' ही लगा था। 'अपनी अपनी नजर है प्यारे' के सिवा ऐसी उक्ति के लिए और क्या कहा जा सकता है।

हिन्दी की नई पीढी के प्रतिनिधि कवि बालस्वरूप 'राही' ने उक्त सकलन के विषय मे निम्नलिखित घोषणा की थी—

"विश्व-साहित्य मे यह अपने प्रकार का आदि प्रयास है। कवयित्रियो के परिचय और चित्रो ने तो सकलन की उपयोगिता को कई गुना बढा दिया है। इस महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान के लिए हिन्दी-जगत् सुमनजी का सदैव ऋणी रहेगा।"

नवलेखन के प्रमुख लेखको मे अग्रणी मुद्राराक्षस ने अपने दो टूक विचार यो प्रस्तुत किये थे—

"समाजशास्त्रीय दृष्टि से पिछली अर्धशती के साहित्य का अध्ययन करने वाले

अध्येताओं को इस संकलन से कितनी सहायता मिलगी, यह कहने की बात नहीं है कि न सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेशों में किस अवस्था पर किस कवयित्री ने ऐसी रागात्मक प्रतिक्रियाएँ जाहिर की है इसका अध्ययन साधारण नहीं है।

उक्त संकलन की दसों दिशाओं से हुई प्रशंसा का जिक्र करना इस छोटे से लेख में न तो संभव है न आवश्यक। कहने का उद्देश्य तो यह है कि सुमनजी द्वारा संपादित उक्त सभी संकलनों मे जिस गहर विवेक तथा दूरदर्शिता ने अपना चमत्कार दिखाया है। उसकी हिन्दी कविता को—खासकर गीत को अभी और आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि सुमनजी अपनी महान प्रतिभा से उन नवीन दिशाओं का उद्घाटन करेंगे जो उनकी बाट जोह रही हैं।

ई २५४, देवनगर,
करोलबाग, नई दिल्ली ५

कल की 'मल्लिका' : आज का 'सुमन'

श्री मधुर शास्त्री

मैं आज के गीत विरोधी वातावरण में जब सुमनजी की पहली काव्य-कृति मल्लिका के गीत पृष्ठ उलटता हूँ तो मेरा विश्वास गीत के और भी निकट पहुँचने को व्याकुल हो जाता है। जैसा कि स्पष्ट है 'मल्लिका' के गीत श्री सुमनजी की तरुणाई के वियोगी आँसुओं का स्तवन है। इस स्तवन में पवित्र करुणा है, इसे वाद के काजल से दूर रखिये अन्यथा करुणा अपवित्र भी हो सकती है। इस करुणा में त्याग है। यह उसी प्रकार महत्वपूर्ण है जैसा कि गांधीजी ने 'बा' को त्यागपूर्ण करुणा बना दिया था। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि यह गीत उन दिनों में बने जबकि देश की करुणा की सरेआम हत्या हो रही थी। साहित्यिक वातावरण में श्रद्धेय बच्चन जी के अत्यन्त सरल मगर मर्मवेधी गीत गूँज रहे थे। 'मल्लिका' के भूमिका लेखक परम आदरणीय श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार वह 'क्षणिकतावादी दर्शन' का युग था। इससे श्री बच्चन जी की लोकप्रियता का प्रभाव भी इस करुणा पर था जो सुमनजी के गीतों में प्रतिबिम्बित हुई। मैं उन उद्दाम लहरों का अनुभव 'मल्लिका' के मोहक स्वर को सुनकर करता हूँ जो औरों के लिए जीवित है। जरा पढ़िए—

मैं तो सबका हित करता हूँ,
कान्ति सभी में नित भरता हूँ,
सुरभित सरस समीरण मेरा, अथक वेग से नित बहता है।

इतना सब-कुछ करने पर भी संसार जिसे पागल कहे उसकी वेदना और भी व्यापक हो जाती है। उस मनोहर साधक को इसकी चिन्ता नहीं है। उसकी साधना का स्वर वेदना है। वेदना ने ही जन्म दिया है कला को। आज का वातावरण सूंघिये—कला के नाम पर खाने वाले और हृदय में वेदना को पाले हुए भी वेदना नहीं मानते। उसे कोई अन्तर्राष्ट्रीय नाम देकर 'नये' के साथ जोड़कर गाते हैं। इधर इस अल्हड़ यौवन की तड़प में निश्चिन्तता का स्वर—

गीत मनोहर सुना सुनाकर,
अपनी धुन में रमा-रमाकर,
पल-प्रतिपल तू अपनी ज्वाला जग में जलती ही रहने दे,
जग पागल कहता, कहने दे।

इस बोध की दृष्टि से करुणा के शरीर में सहजता सरलता लिये हुए होती है। सरल बात का असर हुए बिना नहीं रहता। यह दूसरी बात है कि आज के स्किन टच 'Skin Touch' युग में सहजता का यही भावार्थ हो। सच तो यह है कि पंतजी की यह सूक्ति 'वियोगी होगा पहला कवि' अपने युग की अत्यन्त सार्थक अभिव्यक्ति है। १९४३ में भारत का राजनीतिक वातावरण क्रान्ति से गुंजायमान था। एक विचित्र संघर्ष था मरणासन्न परतन्त्र युग में और स्वातन्त्र्य के गौरव गीत में। गौरव-गीत की अनुभूति में करुणा की मुस्कान देखिए—

पुण्य अवसर आ गया है आज तव आराधना का,
हर्ष से फूला न जो, परिणाम क्या इस साधना का,
गा रहा करता हुआ तव प्रेम का गुण-गान योगी!
क्या मुझे पहचान लोगी?

इस 'क्या' की आशंका इस युग में सार्थक हुई। जिस स्वतन्त्रता के लिए, जिस प्रगति के लिए संघर्ष हुआ यह रूप उससे भिन्न लगता है। रूप की भिन्नता अर्थात् बहुरूपिये से धोखा खाना हानिप्रद भले ही हो, अस्वाभाविक नहीं है। इस कंकटसी युग में यदि यह लिखा जाता——

सरस सौरभ में सने जो फूल से कल फूलते थे,
सकल वसुधा-भार से दब अनमने से झूलते थे,
आज सब वे धूल में मिल सो गये अरमान मेरे...

तो अज्ञेयता सिद्ध कैसे होती! वेदनाजन्य करुणा की अभिव्यक्ति में "कवि की मानसिक साधना का योग है।" अनुकूल लाक्षणिकता में केवल अनुभूति की सरल अभिव्यक्ति की गई है।

मेरा मानव है पक्षहीन, जर्जरित प्रताड़ित और दीन
उर में उत्सुक उल्लास नहीं, प्राणों में नव मधुमास नहीं

करुणा की सीमा का जैसे-जैसे विस्तार होता जाता है वह आध्यात्मिक होती जाती है। वह प्रदर्शनप्रिय नहीं रहती। आज के प्रेमी का यहां कोई भी डायलॉग नहीं है। वह तो गीत गा सके वेदना के, यही वरदान है उसके लिए—

सुप्त मेरी पीर रोती,
अश्रु मुक्ता-से संजोती,
प्राण खोती अनमनी-सी शीश पर वर-हस्त धर दे!

आत्म-निवेदन के साथ साथ आत्मार्पण का श्रेयस्कर गुण है 'मल्लिका के कवि का। वह इस जन्म की धन्यता भी इसीमें मानता है—

तुमसे नेह निभाने को ही,
क्षण-भर दर्शन पाने को ही,
मैं समझूंगा आज जगत् मे जन्म धन्य निज कर ही लूंगा।

'मल्लिका' के कवि पर छायावाद का भी प्रभाव है। छायावादी काव्य में स्त्रैण स्वर अधिक है। निराला जैसे युग-पुरुष 'मैं सीता अबला भक्ति' बन गये। कवि ने समसामयिक इस भाव का भी उपयोग किया है। आत्मार्पण के लिए स्त्रैण स्वर और भी करुण हो जाता है। पुरुष के साथ जिसे रुदन को लगाना भी पौरुष का अपमान है वही रति की चरमावस्था मे रसैक्य का अभिव्यंजक हो जाता है—

अब भी तुमसे नेह निभाने,
अपनी जड़ता सभी भगाने,
मैं आकुल बैठी हूं कब से, साजन तुम मुंह मोड रहे क्यों?

मैं चकित चकवी छली सी
कह गई थी अनमनी-सी,

इस प्रेमातिशयता को रति की चरमावस्था कहना होगा, अश्लीलता नहीं। यदि इसे अश्लीलता कहेंगे तो सन् ६० के बाद की कविता में मात्र अश्लीलता है, यथार्थवाद नहीं। 'ज्ञानोदय' के दाम्पत्य-अंकों मे उदाहरण बहुत है। उदाहरण देकर सन्देह की स्वीकृति न दूंगा।

ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि वीर प्रिया का प्रेमी प्रिया से बिछुड़कर और भी जोश से लड़ा और विजयी हुआ। 'मल्लिका' का कवि देश के स्वातन्त्र्य संग्राम मे जीवन को होम रहा है, पर प्रेरणा के अहसान को नहीं भूलता। क्योंकि यह प्रेम देश प्रेम के बीच नहीं आया। 'मल्लिका' का आह्वान है बलिदान के लिए। इसीलिए प्रश्न है—

जग-जीवन की इन गलियों मे
कैसा प्यार-भरा कलियों मे,
अपने अल्हड़पन से सुध-बुध खोकर उसको छलकाया क्यों?

वेदना मे वेहोश कवि नही है यह। उसे होश है, उसका स्वर चेतावनी का है। जन-बल को मनोबल की भी आवश्यकता है। कवि का परम पावन कर्तव्य इस स्थिति मे कैसे भुलाया जा सकता है! उसने जीवन का मर्म जान लिया है। जीवन अब भी सुगन्ध का नाम है, पतझर पहचान ले। अवसर नहीं हाथ आयेगा!

अरे सँभल अब भी अवसर है,
जाता जीवन स्वर्ण-प्रहर है,
तू भर दे जीवन गगरी को, सरस सुमन यह झुलसाया क्यों ?

प्रेम दर्शन म प्रेमी के प्रति चिन्तायुक्त होने का अर्थ चरम स्थिति है—इसी-लिए उसे व्यर्थ प्रकरण कहकर उसे उपेक्षित करता है—

मैं नित अपनेपन से ऊबा,
व्यर्थ वासनाओ मे डूबा,

यही से व्यापक करुणा का द्वार खुलता है। करुणा के प्रत्येक द्वार पर खड़ी निराशा जन-जन की अन्तर्ज्वाला मे पिघल रही है। परतन्त्रता मे उद्विग्न और जीवन की विषमताओ के प्रति चिन्तित चिन्तनशील मानस कहीं भी आशा की किरण खोजने को आकुल है।

आज शून्य ही शून्य दीखता,
जग मे घोर निराशा छाई,
दानवता से ग्रस्त हुए जन
पड़ते हैं सब ओर दिखाई
तुम अग-जग की निविड निशा मे किसको पन्थ दिखाने आई—

वियोगान्त शृगार का कवि है यह! रीतिकालीन शीतभाव कामुक कवि नही है। उस वातावरण का यह जागरण-सकेत-स्वर है। गन्ध के दानी निस्वार्थ सुमनजी सार्थक हैं आज भी।

जिस प्रकार भावना को उस परिप्रेक्ष्य मे देखा उसी प्रकार भाषा भी। वाजपेयी जी की भाषा मे "...सामने भविष्य की सारी दूरी पड़ी" थी, उसकी भाषा लोक-भाषा के अधिक निकट पहुँची तो उसमे आश्चर्य नही। आज के सुमनजी को उस परिप्रेक्ष्य मे देखने मे रचना के प्रति और भावना के प्रति अन्याय होगा। तब से सुमनजी ने काव्य की कई सीढ़ियाँ पार की हैं। 'मल्लिका' के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कवि की मनो-मल्लिका स्वर्णिम भविष्य के स्वप्न सजाती रही है। उसने ऋतु की उपेक्षा नही की है। ऋतु-अनुबन्ध अभिव्यक्ति देखिए—

मधुर मधु-ऋतु-यामिनी मे
मल्लिका सौरभ सँजोती,

और मेरी भावना के
तार आँसू से भिगोती,
मैं पथिक नैराश्य नद का सजनि नव जलयान हो तुम !

सुमनजी मेरे श्रद्धेय है। बडे है। और बडा जैसा स्नेह मुझे उनसे सदा मिला है। उनके तारुण्य पर और तरुण अभिव्यक्ति पर कुछ कहना छोटे मुह बडी बात है। आज जबकि चारो ओर गीत का विरोध हो रहा है—या गीत को नये विशेषणो मे सजाकर बाजार मे लाया जा रहा है मैं किसी ऊजड मे खडी उदास झोपडी के झरोखो से झाकती जवानी के अल्हड स्वरो को दुहराने बैठा हू। मैंने मन को सुनाया है कई बार—

अरे हस या नगर मे जैयो आप बिचारि।
जिन कागनि सो प्रीत करि, कोयल दई बिडारि।

परन्तु यह है कि उसी गीत मल्लिका के मनोगीत के प्रति अनुरक्त हू। क्योकि आज मल्लिका की वह करुणा और भी पक गई है और काव्य चेतना के प्रति उन्मुख है। वह करुणा अनेक रूपो मे बँटकर भी अद्वैत है। वही तडप है वही करुणा है वही सरलता है बस अन्तर इतना है कि कल की मल्लिका आज का सुमन है।

५४ मिंटो रोड, नई दिल्ली १

बन्दी-जीवन की अनुभूतियो का काव्य

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

संसार का जीवन अत्यन्त सघर्षपूर्ण है। वाणी विस्तार से सयत भाषण और सयत भाषण से सक्रिय मौन आज की दुनिया मे अधिक गौरवपूर्ण समझा जाता है। इसी मनोवृत्ति ने आज के कवियो को प्रेरित किया है कि वे महाकाव्य के बाद खण्डकाव्य खण्डकाव्य के बाद कविता और कविता के बाद छोटे भावगीतो को अधिक महत्त्व देने तक प्रगति कर जाय। छोटा भावगीत या मझोले आकार की अतुकान्त और छन्द मुक्त कविता ही आज की अन्तिम चीज है। भाव विस्तार से भाव सयम की ओर बढते हुए आज के इस साहित्य-ससार मे सुमनजी का यह प्रयास कुछ विचित्र सा ही प्रतीत होता है कि उसने अपने काव्य का विषय ऐसा चुना। साथ ही यह बात भी आधुनिक युग की भावना के साथ पूर्णतया मेल नही खाती कि उन्होने अपने बन्दी जीवन की मार्मिक अनुभूतियो को व्यक्त करने वाले छोटे छोटे गीत न लिखकर इस खण्डकाव्य के रूप मे अपनी आपबीती कहानी लिखना पसन्द किया।

देशभक्तिपूर्ण खण्डकाव्यों का युग त्रिपाठीजी के 'पथिक' आदि के बाद लगभग बीत गया और कुछ ऐसा बीता कि आज तक लौटकर न आया। हिन्दी कविता में क्रान्ति तो हुई, किन्तु, उसके भाव और विचार-धारा प्राचीन परिपाटी को छोड़कर रहस्यवाद के सन्धि-काल को पार करती हुई एकदम प्रगतिवाद तक जा पहुँची, जो विश्व की शोषित मानवता की आधुनिक विचारपूर्ण हुकार ही का भावपूर्ण रूप है।

भारतीय राष्ट्रीयता का व्यक्तीकरण बीच में छूट गया। यदि एकदम छूट नहीं गया, तो कवियों के द्वारा उसके प्रति पूर्ण न्याय नहीं किया गया, यह तो निस्सकोच कहा जा सकता है।

हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की अहिंसक लड़ाई ससार के इतिहास में एक अत्यन्त गौरवपूर्ण परिच्छेद की सृष्टि किये बिना न रहेगी। हजारों स्त्री-पुरुषों का इस युद्ध में सर्वस्व स्वाहा हो गया। सैकड़ों ऐसे मूक बलिदान हुए हैं, जिन्हें कोई भी न जान पाया। भारतवर्ष के कवि ने इस क्रान्तिकाल में साहित्य के प्रति तो अपना पूर्ण कर्तव्य पालन किया है। हमारी कविता में अत्यन्त क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए हैं, केवल हिन्दी ही में नहीं, भारत की प्राय सभी प्रमुख भाषाओं में। किन्तु, राष्ट्र की स्वतन्त्रता की लड़ाई के प्रति भी उन्होंने उतना ही कर्तव्य पालन किया है, यह निस्सकोच नहीं कहा जा सकता। हिन्दी के प्रारम्भिक काल का कवि चद अपने युग के नायक, हिंसात्मक सघर्ष के नेता, पृथ्वीराज के साथ जिस हद तक सक्रिय तन्मय था, आज का हिन्दी कवि, उसी हद तक, अपने युग के नायक, अहिंसात्मक सघर्ष के नेता महात्मा गाधी के साथ सचेष्ट सवदनशील है, यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता।

'मल्लिका'—नामक भावगीतों के सग्रह के लेखक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' की उनके उन गीतों के लिए, हिन्दी के कई प्रसिद्ध समालोचकों और कवियों ने काफी प्रशसा की है। 'मल्लिका' और इस 'धारा' पर तुलनात्मक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह मार्ग कवि क्षेमचन्द्रजी का जितना सुपरिचित और अभ्यस्त है, उतना यह नया मार्ग नहीं। किन्तु, क्रांति का मार्ग तो सदैव नवीनता ही का मार्ग होता है, भले ही उसके ऊबड़-खाबड़ और अगणित बाधाओं से पूर्ण होने के कारण उस पर चलने में पैरों की गति कुछ धीमी और लड़खड़ाती-सी प्रतीत हो।

महाकवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के रूप में आधुनिक हिन्दी कविता का सभवत सबसे अधिक शक्तिशाली, सक्रिय, सजीव और मस्त प्रतिनिधि जब अंग्रेज नौकरशाही के कारागार का अनिश्चित काल तक के लिए बन्दी रह चुका है और काफी लम्बे समय तक रह चुका है, तब यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी का कितना अधिक कवित्व जेलों में स्पन्दित हुआ होगा और जेलों के फाटक निःशेष रूप में सर्वथा खुलने के बाद भारत के स्वतन्त्रता के पिछले महान् सघर्ष का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाला कितना अधिक क्रांतिकारी साहित्य प्रकाश में आएगा।

फिर भी, सुमनजी को इसका उचित श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने अधिकांश हिन्दी कवियों की अब तक की इस दिशा की उपेक्षा-वृत्ति के लाछन के परिमार्जन के लिए एक छोटा-सा सक्रिय कदम उठाने की पहल का यह अवसर पाने का यत्न किया। उन्होंने एक देशभक्त की हैसियत से अपने प्यारे देश के जीवन मरण के सघर्ष के क्षणो मे अपनी शक्ति के अनुरूप बलिदान और कष्ट सहन तो किया ही, साथ ही अपने कारावास के दिनो की अनुभूतियो को इस खण्डकाव्य का रूप प्रदान करके साहित्य की सेवा करने का भी यत्न किया।

प्रयत्न नवीन दिशा की ओर है, अभी तक बहुत कुछ अछूते क्षेत्र की ओर है और 'सत्यम्' और 'शिवम्' के प्रति उन्मुख है। अत अभिनन्दनीय है। कवि के अन्दर आशा के अकुरो का स्पष्ट द्योतक है।

'सुन्दरम्' की दृष्टि से इस रचना मे कुछ अपूर्णताएँ अवश्य है। जेल-जीवन का प्रत्येक क्षण जिन महान् देश भक्तो के लिए नित्य नव-स्फूर्ति का दायक होता है, वे इस ससार मे थोडे ही है। अधिकतर मानव देशभक्त होते हुए भी, मानव ही होते है और मानव मे कुछ दुर्बलता होना स्वाभाविक ही है। मानवीय दुर्बलता के कारण बहुत-से व्यक्तियो को अपना जेल-जीवन ऊबा देने वाला प्रतीत होता है। यद्यपि, वे अपने लक्ष्य से भ्रष्ट होकर कोई ऐसा कार्य नही करते, जिससे उनकी देशभक्ति लाछित हो, फिर भी, उनकी अनुभूतियो की उत्कटता धीरे-धीरे शिथिल पडे बिना नही रहती, खासकर उस स्थिति मे जब उन्हे यह पता न हो कि उनके बन्दी-जीवन का अन्त कब तक होगा। अनुभूतियो की इस शिथिलता की साहित्यिक अभिव्यक्ति भी कभी-कभी किसी हद तक शिथिल रूप धारण किये बिना नही रहती। बन्दियो के जीवन का यह सत्य उनके साहित्य का सत्य भी स्वभावत कई बार बन जाया करता है।

लेखक ने अपनी इस पुस्तक के लिए जो विषय चुना है, वह अत्यन्त आधुनिक और अत्यधिक समकालीन है। इसके विषय कविता के लिए एकदम नये है। अगस्त १६४२ के सघर्ष पर कम-से-कम मैंने तो इसके पहले कोई काव्य नही देखा। किसी भी नये विषय को पहली बार कविता मे लाकर मधुर, सरस, हृदयस्पर्शी और सुन्दर बना सकना श्रेष्ठतम महाकवियो ही का काम है। हिन्दी के महाकवियो को जब तक इसके लिए फुरसत न हो, तब तक क्षेमचन्द्रजी-जैसे तरुण कवियों को पूर्ण अधिकार है कि वे अपनी कुछ त्रुटियों के बावजूद भी अपनी ऐसी कृतियाँ आत्मगौरव के साथ पाठको के सम्मुख रखें। उस पहाड़ से जो जन-जीवन के सम्पर्क से दूर अपने गौरव-अहकार मे मग्न रहता है, वह रजकण कही अधिक आदरणीय है, जो जनता के जीवन के साथ सक्रिय सम्बन्ध रखता है। कवि क्षेमचन्द्रजी ने देश के लिए बलिदान किया है, कष्ट सहन किया है और अपनी क्षमता की सीमा के अन्तर्गत अपने बन्दी-जीवन की अनुभूतियो को काव्य का रूप देकर स्वतन्त्रता-सघर्ष के भावात्मक साहित्य के क्षेत्र मे तरुण हिन्दी कवियों का किसी

हद तक प्रतिनिधित्व भी किया है, इसके लिए, मेरी नम्र सम्मति में वह निस्सन्देह कविता प्रेमी जनता का प्रेम प्राप्त कर सकेंगे ।[1]

दाल बाजार,
लश्कर, ग्वालियर

कारा : एक समीक्षा

डॉ० विमलकुमार जैन

'कारा' एक इतिवृत्तात्मक राजनैतिक खण्डकाव्य है । प्रबन्ध काव्य दो प्रकार का होता है—एक महाकाव्य और दूसरा खण्डकाव्य । कविराज विश्वनाथ ने काव्य का लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि संस्कृत प्राकृतादि भाषा तथा वाल्हीकादि विभाषा के नियमानुसार निर्मित एक कथा का प्रतिपादक पद्यबद्ध एवं सर्गमय ग्रन्थ—जिसमें सभी सन्धियाँ न भी हों—काव्य कहलाता है—

भाषाविभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम् ।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः सन्धिसामग्र्यवर्जितम् ॥

यहाँ काव्य से तात्पर्य उस प्रबन्धकाव्य से प्रतीत होता है जो महाकाव्य की अपेक्षा लघु हो ।

पुनः वे खण्डकाव्य की परिभाषा इस प्रकार लिखते हैं—

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च ।

अर्थात् काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है ।

इस लक्षण के अनुसार यह काव्य पद्यबद्ध तथा सर्गमय है । साथ ही अंशतः संधि-विवर्जित एवं काव्य के एक अंश का अनुसर्त्ता भी है ।

इसमें एक नवयुवक के माध्यम से कवि 'सुमन' ने सन् १९४२ की क्रांति में बन्दीकृत किये जाने पर अपनी ही यातनापूर्ण कथा लिखी है तथा अपने 'बन्दी जीवन' का अत्याचार-भरा अनुभव ही चित्रित किया है। अतः घटना वैविध्यहीन होने के कारण यह खण्डकाव्य ही है। यह इतिवृत्तात्मक इसलिए है कि इसमें केवल वर्णनात्मक शैली का ही अनुसरण है।

१. 'कारा' की भूमिका से

कथानक :

यह काव्य 'ज्योति' आदि तेरह सर्गों मे विभक्त है, परन्तु वास्तव मे कथानक से सम्बन्धित सर्ग मुक्तिपर्यन्त बारह ही है। 'प्रयाण गीत' नामक सर्ग तो उपसहारात्मक गीत मात्र है। कथावस्तु इस प्रकार है—

प्रभात की पावन वेला मे प्रभावती उषा का विकास हो गया था, विहगावलियाँ उडने लगी थी तथा लोक व्यवहार आरम्भ हो गया था। इसी समय एक युवक लिखते-लिखते रुककर सोचने लगा—मेरा भारत वैभवहीन क्यो हो गया है ? उनके मन मे मातृ-भूमि का यश बढाने और दानवता का दुर्ग ढहाने की धुन थी। वह आत्म-विकास के साथ जनता का दुख दूर करना चाहता था। भारत की दुर्दशा से वह अत्यन्त व्यथित था। भारत की राष्ट्रीय सभा ने जब शासको से कुछ सुविधाएँ चाही तो उन्होने तनिक भी ध्यान न दिया। तब सभी देशप्रेमी एकत्र हुए और मत्रणा की। महात्मा गाधी ने स्वराज्य का मन्त्र दिया, जिससे क्रुद्ध हो सरकार ने उन्हे काराबद्ध कर दिया। इससे जनता मे एक रोष की लहर दौड गई और वह शासन को उलटने के लिए सन्नद्ध हो गई।

देश मे सहसा ज्वालामुखी फट गया, रुद्र हुकार हुआ और सभी बलिवेदी पर चढ जाने के लिए उद्यत हो गए। एक क्राति हो गई, जिसमे रेल, तार, डाक-साधन तथा फोन आदि की व्यवस्था भग की गई। इसीका नाम 'भारत छोडो' क्रान्ति पडा। युवा मचल पडे और सुलभ शस्त्र ले आगे बढे। इस तरुण को भी प्रेरणा मिली और वह अपनी लेखनी से जन-जागृति करने लगा। इसमे राजपुरुष उस पर दृष्टि रखने लगे। उन्होने पूछ-ताछ भी की, परन्तु युवक तनिक भी विचलित न हुआ।

तदनन्तर सत्ता ने पकड-धकड प्रारम्भ कर दी, जिसके फलस्वरूप अनेक युवको का परामर्श-स्थान इसी युवक का घर बना। गुप्तचरो से यह छिपा न रहा और एक दिन घर घेर लिया गया तथा उसको अवरोध कुटी (हवालात) मे बन्द कर दिया गया। अन्य अनेक युवक भी शनै-शनै पकडकर बन्द कर दिये गए।

प्रभुसत्ता ने विघटन प्रारम्भ किया। अनेक ग्राम ध्वस्त कर दिये। अत्याचारो से भय सक्रमित हो गया, यहाँ तक कि माता-पिता-पुत्र को, बन्धु-बान्धव बन्धु-बान्धवो को भी साथ रखने से झिझकने लगे। अनेक निर्दोष मारे गये। अनेक स्थानो पर गोलियाँ भी चली। त्रस्त होकर कुछ लोग भेद देने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे भारत भर मे गठित युवक-सघ विघटित होने लगे और वे उद्देश्य मे असफल रहे।

जिन अवरोध-कुटियो मे ये लोग बन्द थे, उनकी बडी दुरवस्था थी। न वहाँ धूप आती थी और न वायु का प्रवेश था, नीचे चीटियाँ थी और ऊपर मच्छर। ऐसे ही एक स्थान पर इस तरुण को बन्द रखा गया। उसे अनेक यातनाएँ दी गई, यहाँ तक कि उससे कोई मिल भी नही पाता था। एक दिन उसके उदर मे भयकर पीडा हुई, उसने मुक्ति के

लिए बार-बार प्रार्थना की, परन्तु मत्त अधिकारियों ने कोई ध्यान न दिया।

अनेक प्रियजनों ने भी प्रार्थना की, परन्तु व्यर्थ गई। अन्त मे तरुण रो पडा और करुण क्रन्दन करते हुए सोचने लगा कि मैं ही था जो सबको उत्तेजित करता था, परन्तु अब मैं ही वन्दी होकर रो रहा हूँ। इसी समय उसे प्रेरणा मिली।

पहले उसके मन मे अनेक प्रश्न उठे—सर्वत्र नाश और अत्याचार क्यो है, धर्म पर अधर्म की, मानवता पर पशुता की तथा सत्य पर असत्य की विजय क्यो है, पूँजीवाद क्यो पनप रहा है और क्या यह अनाचार दूर न होगा ? इनके उत्तर-स्वरूप उसको अन्त-प्रेरणा हुई कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला सिद्धान्त ही सत्य है। इस विचार के आते ही उसने सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए कर्तव्य पालन का दृढ निश्चय किया।

उसने सोचा कि मृत्यु के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए, कर्तव्य की वेदी पर जो खरा उतरता है वही स्मृत होता है। अत गौरव-गाडीव चढाकर साहस की सैन्य को सज्जित करना चाहिए। मृत्यु तो पुरातन वस्त्र उतारकर नूतन वस्त्र पहनने के समान है। अत इससे भयभीत न होकर पौरुष से काम लेना चाहिए। अन्याय को मिटाने के लिए अब आवश्यकता है उत्तेजना की। मुझे दो प्रतिज्ञाएँ करनी चाहिएँ, 'न दैन्यम्' और 'न पलायनम्'। कायरता तो एक कालिमा है। इसे छोडकर शत्रु का व्यूह तोडने के लिए स्थितप्रज्ञ की भाँति कर्म म निरत होना चाहिए तथा बन्दा वैरागी एव भगतसिंह के मार्ग का अनुकरण करते हुए विजय के लिए मृत्यु को वरण करने के लिए उद्यत रहना चाहिए।

इस प्रेरणा से युवक का साहस बढा और वह निर्भय हो गया। उधर अधिकारियो ने भी यातनाएँ बढा दीं। युवक ने उन्हे 'जयचन्द', 'सर्प' आदि शब्द कहकर समझाया। परन्तु वे प्रतिशोध की अग्नि से जल गये और अनेक झूठे आरोप लगाकर उसे कारागृह मे डाल दिया।

तरुण अतुल उत्साह लिये कारा मे प्रविष्ट हुआ, क्योंकि वह सोचता था कि इसी स्थान मे गीता के उपदेशक कृष्ण का जन्म हुआ था। महात्मा तिलक ने भी स्वतन्त्रता का रहस्य यही पाया था तथा महात्मा गाधी ने भी यही प्रेरणा प्राप्त की थी। वह एक अन्धकारावृत्त, दुर्गन्धपूर्ण, निर्जन स्थान था। अत वह वहाँ खोया-खोया सा रहने लगा। कभी-कभी उसे अपनी प्रिया की भी स्मृति हो आती थी और वह विरह से विदग्ध हो जाता था।

उसे घोर निराशा होने लगी और माता-पिता एव दारा का ध्यान रह-रहकर आने लगा; परन्तु जेल की दीवारें बाधक थीं।

एक दिन अवधि पूर्ण होने पर वह मुक्त हुआ, जिससे निराशा दूर हो गई। इसी बीच बापू की धर्मपत्नी कस्तूरबा और भूलाभाई देसाई इहलीला समाप्त कर गए। बापू भी रोगग्रस्त हो गये। इस पर समस्त ससार ने शासन को धिक्कारा। जिससे भयग्रस्त हो

सभी नेता मुक्त कर दिये गए। तदनन्तर वे भावी कार्यक्रम के लिए शिमला मे एकत्र हुए, शासकों से भी परामर्श हुआ और एक निश्चय के फलस्वरूप देश की स्वतन्त्रता का सूर्य उदित हुआ।

अन्त मे 'लाल किले की ओर' प्रयाण का गीत है।

कथानक की पृष्ठभूमि

भारत का स्वतन्त्रता-सग्राम सन् १८५७ की इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्ति से प्रारम्भ होता है। अग्रेजो ने अपने दो सौ वर्ष के शासन मे भारतीयो को दोहन, शोषण और घृणा के अतिरिक्त कुछ न दिया। न वे यहाँ के निवासी बने, और न हितैषी। उनकी स्वार्थ-लोलुपता सदा उन्हे अत्याचार के लिए उद्यत करती रही। भारतीय जनता ने जब-जब न्याय की माँग की तो उसे अपना अपमान समझकर दण्ड दिये गए। समय समय पर छोटी-छोटी क्रान्तियाँ भी हुई, परन्तु निर्दयता से कुचल दी गई। अन्त मे महात्मा गाधी ने नेतृत्व सँभाला और सत्य एव अहिंसा के मार्ग से आन्दोलन चलाया। सन् १६४२ मे उन्हीके नेतृत्व मे एक क्रान्ति हुई, जो 'भारत छोडो' क्रान्ति के नाम से प्रसिद्ध है।

जब अग्रेजी सत्ता किसी प्रकार भी यहाँ से जाने के लिए उद्यत न हुई तो ६ अगस्त, १६४२ को सभी नेता बम्बई मे अपने जन्मजात अधिकारो की माँग के लिए एकत्र हुए, परन्तु वे बन्दी बना लिये गए। चिरकाल से विक्षुब्ध जनता इसे अपना अपमान समझकर विद्रोही हो गई तथा समस्त देश मे एक क्रान्ति की लहर दौड गई।

प्रान्त-प्रान्त मे इस क्रान्ति ने भयकर रूप धारण कर लिया। देशभक्तो ने प्रत्यक्ष एव गुप्त रूप से अनेक विघटन के कार्य किये, जिससे शासको ने गुप्तचरो की सहायता से सबको पकडना प्रारम्भ किया। पहले उन्हे अवरोधकुटियो मे रखा गया, जो धूप और शुद्ध वायु से वचित तथा चीटी और मच्छरो से भरपूर थी, पुन अभियोग का ढोंग बनाकर कारागृहो मे डाल दिया गया। स्थान-स्थान पर सस्थाओ को भग कर दिया गया तथा निरपराधो तक को बन्दी बनाया गया। जनता ने भी तोड-फोड मे कमी न की, यहाँ तक कि अधिकारियो के साथ मार-पीट भी की तथा उनकी हत्याएँ भी की। प्राय सभी नगरो मे भयकर उपद्रव हुए।

शासन ने पुलिस को विशेषाधिकार दे दिये, जिससे वह किसी को भी बिना किसी अपराध के और बिना अभियोग चलाये नरकतुल्य कोठरियो मे बन्द कर सकती थी। उन्हे वहाँ कोई सुविधा नही दी जाती थी वरन् अनेक असह्य कष्ट दिये जाते थे। गर्मी, सर्दी एव वर्षा के दिनो मे उन्हे इन्हीमे सडाया जाता था।

ग्रन्थ का लेखक कवि भी युवको मे से एक था, जो राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत था। उसने मुक्तिपर्यन्त कारा-जीवन के अनुभवो एव आत्म मन स्थितियो को इसमे लेखनी-बद्ध किया है।

संदेश

कवि ने इस काव्य का निर्माण करके राष्ट्रीयता का एक सन्देश दिया है। इसमे विदेशी शासन के चित्रण द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि विदेशी शासन मे शासक का मोह शासित की अपेक्षा अपने देश से अधिक होता है। वह सस्कृति को तो भ्रष्ट करता ही है, देश को दोहित और शोषित भी करता है। वह अनेक प्रलोभन भी दिखाता है, जिसमे अनेक लुब्ध हो जाते हैं, परन्तु जो अधिकाश जनता के दुखो मे पीडित हो न्याय की माँग करते हैं, वे निर्दयता से कुचल दिये जाते हैं। उन्हें भयग्रस्त किया जाता है, बिना अपराध दण्ड दिया जाता है, कारागृह मे बन्द किया जाता है और अनेक बार मृत्यु के घाट भी उतारा जाता है।

परन्तु जो धीर, वीर और साहसी हैं, वे प्राणो की बाजी लगाकर भी माँ की प्रतिष्ठा को बचाने का प्रयत्न करते हैं। बन्दा वैरागी, रानी लक्ष्मीबाई, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाधी, बलिदानी भगतसिह तथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस उन्ही वीरो मे से हैं। इन्हीका अनुकरण करते हुए अनेक वीर मृत्यु के झूले पर सहर्ष झूल जाते हैं। मृत्यु क्या है ? और कुछ नही केवल शरीर-परिवर्तन है—पुरातन वस्त्र उतारकर नवीन वस्त्र धारण करना है—

करता परित्याग पुरुष ज्यों
होता परिधान पुरातन।
लेकर वर-वसन-कलेवर,
करता धारण नित नूतन॥

भगवान् कृष्ण ने भी अर्जुन से यही कहा था—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि सयाति नवानि देही॥

इस प्रकार वह मृत्यु को तुच्छ समझता है और माँ की प्रतिष्ठा बचाने तथा पीडितो की पीडा दूर करने को सदा सन्नद्ध रहता है। वह सोचता है कि समय रहते हमे सँभलना है, जब अनर्थ आ पडेगा तब परिकर बाँधने से क्या लाभ। अत शत्रु का सामना डटकर करना चाहिए। धैर्य को खोकर कायरता दिखाना वीर का कर्तव्य नही। निष्काम कर्म से तात्पर्य जनहित के कर्म मे निरत रहना है और यही परम धर्म है। जन-जागृति के लिए यह आवश्यक है कि वह दो प्रतिज्ञाएँ ले 'न दैन्यम्' और 'न पलायनम्' अर्थात् न विषम परिस्थितियो मे दीनता दिखाये, और न कर्तव्य से विमुख हो। वीर अर्जुन की भी यही दो प्रतिज्ञाएँ थी—

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यम्, न पलायनम्।

वीर पुरुष को एक ज्योति जगानी है तथा उसे प्रतिक्षण आशा का सम्बल लेकर चलना है। शत्रु कितना ही प्रबल हो, वह कितनी भी यातनाएँ दे, परन्तु ध्रुव-ध्येय से विचलित नही होना है। उसे तो बुद्धि को स्थिर रखकर कर्म-पथ पर अग्रसर होना है और आवश्यकता पडने पर सिर भी चढा देना है। इससे पशुता काँप जाती है, खलता के छक्के छूट जाते हैं और वीर अपने ध्येय की प्राप्ति तक पहुँच जाता है। इस प्रकार अन्त मे उसकी विजय होती है।

यही सन्देश है, जो इस काव्य मे निहित है।

काव्य-सौष्ठव

यह लघु काव्य होते हुए भी काव्य-सौन्दर्य से व्याप्त है। यह कथानक की दृष्टि से राष्ट्रीय भावना का उत्तेजक है, अत उत्साहवर्धक होने से वीर रसपूर्ण है। निम्न पक्तिया मे ओज गुण द्रष्टव्य है—

ज्वालामुखि फट गया अचानक
रुद्र-रूप हुंकार उठा।
सौ-सौ जानें बलिवेदी पर,
चढ़ जाने का ज्वार उठा।।

प्रलय-शंख बज गया और फिर,
भारत-वीर लगे बढ़ने।
सहसा गत-गौरव का अपने,
पाठ लगे फिर से पढ़ने।।

वीर रस के अतिरिक्त इसमे शृगार एव करुण के दर्शन भी होते हैं, परन्तु अल्प मात्रा मे। शृगार का अकन 'कारा' मे बन्दी तरुण के विरह मे हुआ है। वह कहता है—

यह कहना तुम उस अबला से
'डरो किंचित् मन मे।
देवि, तुम्हारी प्रतिमा बन्दी-
रखता हृदय-भवन मे।।'

करुण का चित्रण निर्जन कारा मे पीडित होकर क्रन्दन करने की स्थिति मे हुआ है। इन दोनो ही रसो के चित्रण मे माधुर्य के दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रसाद गुण तो प्राय परिव्याप्त है। उसका सुन्दर रूप निम्नाकित प्रकृति-वर्णन मे दर्शनीय है—

नव कोमल आलोक बिखरता—
जाता था प्रतिपल जग मे।

अपनी सुप्त शक्ति को अविरत,
खोज रहा जैसे मग में॥
घूँघट हटा नवल प्राची का,
जग मे फैला सुखद प्रकाश।
सुमन खिले, कलियाँ इठलाईं,
लख ऊषा का मजुल हास॥

इस काव्य मे एक विशेषता दृष्टिगोचर हुई कि काव्य-दोष न के बराबर हैं। इस प्रकार गुणयुक्तता और दोषहीनता की दृष्टि से यह एक सुन्दर और सुरुचिपूर्ण काव्य है।

भाषा की दृष्टि से भी खडी बोली का यह एक सुसस्कृत काव्य है। इसमे अधिकाशत तत्सम शब्दो का ही प्रयोग हुआ है और व्यास शैली अपनाई गई है। कवि ने स्वय इसे इतिवृत्तात्मक कहा है, अत व्यजक शब्दो का प्राय अभाव ही है, परन्तु स्वभावत आगत अलकारो की छटा ने काव्य के सौन्दर्य को नवीन बढाया है। कुछ अलकारो के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अनुप्रास— झरते निर्झर के कल-कल मे।

साहस की सैन्य सजा दे।

वीप्सा— चीख-चीख रोता या वन्दी।

उपमा— मन जो कोमल सुमन-सदृश था।

मौन भाव से उसके आँसू
बरस रहे थे घन-से।

रूपक— और भावनाओं के पट को
कर्मसूत्र से बुनती थी।

निष्काम कर्म-कानन में
मृगराज बना तू दौडे।

उत्प्रेक्षा— कुछ अज्ञात पथिक निज पथ पर
चले जा रहे थे बढते।
मानो मुक्त पुरुष हों अपने
गौरव को फिर से गढते॥

रूपकातिशयोक्ति—कभी-कभी यह मन मे कहता,
'छूटी मादक हाला।
टूटा मेरा पात्र सुरा का,
फूटा पावन प्याला॥'

उदाहरण— लिये अतुल उल्लास युवा वह
धुसा समुद कारा में।
जैसे चचल वीचि मचलती
सुभग सलिल-धारा मे॥

विरोधाभास— मन जो कोमल सुमन-सदृश था,
अरि के हित वह तीर हुआ।

श्लेष— विरस सुमन को फिर से अब तुम,
सौरभ से सयुक्त करो।

लोकोक्ति— जान हथेली पर रख करके,
करता है रण को प्रस्थान।

कफन बाँध सिर से निकली—
थी अमर युवाओं की टोली।

सपने टूटना, भेंस उसीकी जिसका डडा, भूला हुआ शाम को घर लौट आवे तो भूला नही कहलाता, परिकर बाँधना तथा दाँतो तले अँगुली दबाना आदि लोकोक्ति एव मुहावरे तो इसमे प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त हुए है।

इस उपर्युक्त पर्यालोचन से प्रतीत होता है कि यह खण्डकाव्य एक जन-जागृति का काव्य है, जिसका महानतम सन्देश है मातृ-भू पर सर्वस्व लुटा देना। इस प्रकार इसमे भाव तो सुन्दर है ही, भाषा भी मनोज्ञ एव परिमार्जित है, जिसमे नैसर्गिक आलकारिक छटा ने सौष्ठव को और भी परिवर्धित किया है।

२६/२३ शक्तिनगर, दिल्ली ७

'बन्दी के गान'—एक दर्शन

श्री प्रताप विद्यालकार

बहुत समय से किसी सुकवि की रचनाओ को स्फुट रूप मे पढते रहने के बाद यह इच्छा होती है कि उन सब रचनाओ को कही इकट्ठा देख सकता तो क्या ही अच्छा होता। मेरी यही आकाक्षा श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' की रचनाओ को पढकर होती थी और इसकी प्रथम पूर्ति सन् १६४३ मे 'मल्लिका' के रूप मे हुई। 'मल्लिका' कैसी थी, यह आज का विषय नही। पर उसका जो समादर हिन्दी साहित्यज्ञो ने किया, वह हर्ष का विषय

है। उसकी रचनाओं को पढ़ने से तो प्यास और भी बढ़ गई। 'मल्लिका' प्रेस से निकलने ही वाली थी कि सुमनजी को जेल जाना पड़ा और शासन में पैदा की गई मौन निस्तब्धता को हमें लाचार सहना पड़ा। इसी जेल-जीवन के 'अभिशाप' के परोक्ष में स्थित 'वरदान' आज हमारे सम्मुख 'बन्दी के गान' के रूप में दृश्यमान हैं।

'बन्दी के गान' में अनुभूति का सत्य है और सत्य की अनुभूति है। ये गान केवल मात्र गान ही नहीं हैं, जिन्हें पढ़कर मन बहलाया जा सके और अपनी कृतज्ञता को 'बहुत सुन्दर कहा' या 'वाह-वाह' कहकर ही प्रदर्शित किया जा सके। इनमें वेदना है, कसक है, टीस है और इन सबमें बढ़कर एक चीज और है, वह है आग। कवि स्वयं सहज गान की दृष्टि से इनकी कीमत नहीं आंकता और न दूसरों को ही ऐसा करने की अनुमति देता है। वह कहता है—"गीत मत समझो, निहित इनमें हृदय की आग मेरे।" इन गीतों में कवि-हृदय की भाव-ज्वालाएँ उद्दीप्त हो रही हैं। निष्कम्प भावशून्य व्यक्तित्व एक बार फिर इन रचनाओं को पढ़कर चेतन हो सकता है। परदेसियों ने हमें इतना आधीन कर लिया है कि—

छीन मतुल निधियाँ लीं सारी
पगु बना हमको है डाला,
धाराओं का कठिन हमारी
लगा जुबानों पर है ताला।

आज हमारे ही घर में
हमको ही रिक्त-स्थान नहीं है।
अरे यहाँ के नर पशुओं में
दिल का नाम-निशान नहीं है।
क्यों करते अनुनय इनसे तुम
इसका यहाँ विधान नहीं है।

स्वतन्त्रता खैरात में नहीं बँटा करती। वह माँगी नहीं जाती अपितु ली जाती है और अपने विश्वास और संगठन के बल पर ली जाती है। यदि उसे अपने जीवन के मोल पर भी लिया जा सके तो सस्ती है। अपनी माता के प्रति पुत्र का रक्तदान त्याग नहीं है, अपितु कर्तव्य है। वह पुत्र के लिए पर्व है, महोत्सव है। कवि अपने इस कर्तव्य को जानता है तथा इसके लिए सन्नद्ध है—

तुम कहो मैं हारता हूँ,
देश-संकट टारता हूँ,
वारता हूँ मातृ-भू पर प्राण, जीवन एक मेला।

इतना ही नहीं, वह अपने इस भाव से अपने अन्य साथियों को भी प्रेरित करता

है। उसके सम्मुख रणक्षेत्र का चित्र सा खिच जाता है और वह देखता है कि—

विश्व मे आफत मची है
दीन भारत माँ बची है

तो कह उठता है—

आन उसकी के लिए
अब शान्ति से बैठो न घर में

और उसके इस आह्वान पर—

चल पडी नव वीर-टोली
भाल पर दे रक्त-रोली
स्नान करने शत्रु शोणित के,
अमर उस आज सर मे—
वीर जाते हैं समर मे !

पर आज का भारतीय अपने को विक्रमादित्य और चन्द्रगुप्त का वशज कहने म झेंप रहा है। वह बन्दी है, गुलाम है पराधीन है। उसके पास से सब साधन छीनकर उसे पगु बना दिया है। 'मानवता के प्रथम चरण' गणदेवता गाधी के साथ रहकर उसे सत्य और अहिंसा की साधना करके अपनी स्वतन्त्रता को साकार करना है। उसे ज्ञात है कि—

इधर पथ विकट दुर्गम
घोर है चहुँ ओर घन तम
साज सजते विश्व मे
सकट विकट सब आयगा ही।

परन्तु उसे इनकी कोई परवाह नहीं है। उसे अपने कर्तव्य का ध्यान है। वह 'बन्दीगृह का दीवाना' है। अपने पथ पर निरन्तर अग्रसर है। सासारिक बन्धन स्वय जान गए हैं कि वे आज कवि को नही रोक सकते—

जग-प्राचीरो से मुग्ध मौन
अपलक निहारता मुझे कौन
मैं उन प्राणों की मुग्ध सृष्टि,
जिनका जग ने लोहा माना
मैं बन्दीगृह का दीवाना

जेल तो उसके लिए कृष्णागार है, कृष्ण मन्दिर है। वर्तमान सत्ता की दृष्टि मे देश-प्रेम का प्रसाद कारावास और अत्याचार है जिसके लिए कवि का पहले ही से आत्म समर्पण है। अपनी इसी गति मे वह एक वार स्वतन्त्रता के अमर प्रतीक जलियाँवाला बाग को भी सम्बोधित करते हुए कहता है कि—

जिन वीरों ने अमिट साधना
करके निज जीवन वारा।

और बहा दो हँस-हँस करके
अपने लोहू की धारा ॥
आज गूंजता है प्रतिध्वनि बन
उन रहों का स्वर प्यारा।
देखो बोल-बोलकर कहती
अब भी यह पावन कारा—
'करो बगावत फिर से अब तुम
अमर बाग जलियाँ वाले!'
लो प्रणाम अनगिन वीरो को
पुण्य याद जलियाँ वाले!!

बन्दी-जीवन की सत्यता का विष-पान करके शिव-कवि ने इन सुन्दर गीतों का निर्माण किया है। अन्त में अपने दर्शन को कवि के शब्द-मुकुर में ही प्रतिबिम्बित पाता हूँ कि—"इतना तो मैं बलपूर्वक कह सकता हूँ कि जीवन में सूनेपन से ऊबकर किसी सुखद आलम्बन की खोज में रहने वाले भावुक इसमें अपनी ही पीड़ा का गायन पाएँगे।...'बन्दी के गान' में कारावास में उद्भूत निराशा-आशा, मिलन एवं बिछोह के ही चित्र मात्र हैं। ...किसी भी प्रकार की लेखन-सामग्री रखने की सुविधा जेल में नहीं थी। अधिकांश गीत दीवारों तथा फर्शों पर कोयले द्वारा लिख-लिखकर ही याद किये गए हैं।...इस आशा से इसे पाठकों के हाथों में सौंप रहा हूँ कि वे इसे एक बन्दी की 'थाती' के रूप में अवश्य सोत्साह ग्रहण करेंगे।'

गणेशगंज, मिर्जापुर (उ० प्र०)

पीड़ा के गायक 'सुमन'

श्रीमती देववती शर्मा

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का 'बन्दी के गान' देखा। सोचती थी आज का कवि, नवयुग का तरुण कवि, केवल-मात्र प्रेयसी के गीत और प्राकृतिक वर्णन से ओत-प्रोत गीत ही लिखेगा। विशेषतः उस युग में, जब कि करुण क्रन्दन की ध्वनि से आकाश को कम्पायमान—केवल-मात्र कम्पायमान कुछ नष्ट-भ्रष्ट नहीं—करके अनेकों भूखे, नंगे, नर-नारी अकाल ही सुजला, सुफला, शस्य श्यामला भूमि पर काल-कवलित हो गए?

जब कि घनघोर हाहाकार के बीच, हथकड़िया और बेड़िया की खनखनाहट के बीच अनेक माताओ की गोदिया के लाल, अनेक बहनो की भैया-दूज की निधि, अनेक ललनाओं के पति मरण की ओर चल दिए, वह क्या सन्देश देगा ? ऐसे ही समय मे सुन पड़ा—

चल रहा निर्वाह यो ही
इस गरीबी में हमारा।

रो उठा भारत का कवि हृदय...

जिस चाव से आज जनता कवि की कविता पढ़ती है, जिस प्रशसा-भरी दृष्टि से आज ससार कवि की कृति की ओर देख पाता है, कितनी महगी है वह प्रशसा-भरी दृष्टि, कितना कठिन है कवि के दग्ध हृदय का वह अवरोध, कितनी सुन्दरता से क्रियात्मक ढग पर कवि ने थोड़े-से शब्दो म बहुत-कुछ भर दिया है। वास्तव मे सच्ची कविता तो वही है जो स्वय फूट पडे, जिसके लिए कवि को कागज-कलम लेकर बैठना न पडे, जो स्वय ही बरबस हृदय से उठकर आँखो म, और आखो से बह-बहकर गालो तक बह पडे। श्री सुमन-जी की कविता मे वह स्वाभाविकता, जोकि उन्हे कवि बनने का विवश करती है, गीत लिखने को लाचार कर देती है, मुझे सहज ही मे दीख पडी। उनकी कविता चाहे दूसरो के लिए हो, किन्तु सबसे पहले वह उनके ही लिए है। आदि से अन्त तक कवि-हृदय सासारिक यातनाओ, दु खो और पीडाओ से रोता हुआ-सा दीख पड़ता है। उसने अपनी यह पीडा आध्यात्मिकता के आवरण के नीचे ढँकी नही है, वह सरल सहज रूप मे ही पाठको को अपना परिचय देना चाहता है। कितना सत्य भरा हुआ है कवि के इस गीत मे—

मेरी साँसें बिकी हुई हैं—
सत्ता के झूठे भावों में।

...किन्तु, नही कवि केवल-मात्र रोना ही नही जानता, उसके श्वास मे ज्वाला भरी हुई है। वह विद्रोही है, वह विद्रोह भी कर पाता है। जहाँ वह यह कहता दिखाई देता है—

भूखे पेट यहाँ सोते हैं,
अरे कुटुम्बी प्राणी मेरे।

वही उसी स्वर मे कहता जाता है—

एक समय आवेगा ऐसा,
जो कंचन के घड़े दबाये—
बैठे हैं, उनकी उर-ज्वाला,
अरे बुझेगी नहीं बुझाये ?

उनके जीवन का मुक्त सत्य, निर्भय और कठोर सत्य ही एक पहलू है, जिसमे

कवि ससार मे कहता है—

कान दे सुन ले जगत्,
यों कर रहा कवि है गुजारा।

परन्तु यही सब तो 'बन्दी के गान' मे है नही। दूसरी ओर कवि के हृदय मे आशा है, अभिलाषा है जीवन है। तब ही तो वह जोर के साथ कह पाता है—

फिर सच्चे मानव कहलावें।

इसी ध्येय को लेकर वह—

सत्य, अहिंसा व्रतधारी बन,
उठकर कर्म-क्षेत्र मे आवें।

आदि की घोषणा कर पाता है। यही तो उसका जग को अमर सन्देश है। उसके स्वर मे रुदन है, सरसता है, और पीडा है। वही कवि तो एक समय—

मेरी यौवन फुलवारी का,
वह वसन्त-वरदान खो गया।

आज अचानक सुमुखि तुम्हारी,
याद कहो क्योंकर है आई?

सजनि मत पूछो कभी का,
मैं तुम्हारा हो चुका हूँ।

कहता है किन्तु यह तो उसके कवि-हृदय का क्षणिक आवेश है। दुख की सूनी घडियों की दुर्बलता। वास्तव मे जेल के कठोर लौह-सीखचों के पीछे बैठकर वह कहना चाहता है—

वीर जाते हैं समर मे

यही तो उसका देश के वीरो को सन्देश है। उसकी आत्मा पुकार उठती है—

लो प्रणाम, अनगिन वीरों को,
अमिट याद जलियाँ वाले।

अरे युगों की चट्टानो पर,
तेरा अकित नाम अमर है।

और ऐसे स्वर मे गा उठने वाला कवि अपने दुर्बल क्षणों मे—

प्राण कब इस यातना का,
अन्त होगा राम जाने।

रह गई साध बस बाकी।

किस प्रकार वह पाता है यह ही आश्चर्य की बात है ! फिर भी कवि प्राण की उच्चतम भावना, जहाँ मानव-हृदय को छू पाती है, वहीं वह गा उठता है—

सच्ची मानवता का तब ही,
जग मे फहरायेगा झडा।

आज गूँजता है प्रतिध्वनि बन,
उन रुहो का स्वर प्यारा।

कितनी प्रबल इच्छा है कवि के सरल विमल हृदय मे—

देश-प्रेम-स्वातन्त्र्य-समर मे,
चलकर तुमको अमर करूँ मै।

कवि-हृदय मे वेदना है, वेदना की अनुभूति है और दूसरी ओर आशा भी है। कैसा सुन्दर सम्मिश्रण है कवि के तरुण-हृदय मे। काश कि ससार ऐसे तरुण भावुक हृदयो को ढूँढकर राष्ट्र कवियो का निर्माण कर पाता !

३५४५ बाजार सीताराम, दिल्ली ६

जीवन की पुकार का कवि

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

कविता को अपनी जागीर कहकर, बाँधकर रखने का जो आयास हम करते है, उसमे शब्दो की क्लिष्टता, कल्पनाओ की दुरुहता, और सबसे अधिक हमारे जीवन के हमारे काव्य से दूर से दूर रहने, और होते जाने वाले स्वभाव का, हम इतना पोषण करते हैं कि हमारी कहन, काव्य का आनन्द देने वाली होने के बजाय, कूट प्रश्नो की बुझौवल-सी हो जाती है। हर्ष है, क्षेमचन्द्रजी ने वह पथ नही पकडा।

जिन दिनो अवतार का पुराण-पुरुष ज्ञानियो और योगियो के पाले पडा रहा, उन दिनो व्याख्या, विश्लेषण, तत्त्व-चिन्तन और 'मुक्ति' के लिए योग-साधन तो बहुत हुआ, किन्तु आकाश का घन, जमीन के लोगो से बहुत दूर रहा, या बहुत दूर रखा गया। धन की धनिकता ने उसे पूजा, बुद्धि की धनिकता ने उसे प्रतिष्ठित किया, और वैभव की धनिकता उसके पक्ष और विपक्ष मे युद्ध करने लगी। हर बुद्धि-वैभव या कलापक्ष बलिदान और साधारणता का मार्ग छोडकर, जब भी ऊँचे पर चढा, वह कैलासवासी हो गया।

कवि के जीवन में कुछ क्षण तो ऐसे होते हैं जब वह अपने नेह निधान के चरणों में अपने को समर्पित कर देता है। किन्तु उसके लिए जटिलता के कारागार का निर्माण, हमारे तारुण्य, हमारे पुरुषार्थ, हमारे सूझों के वैभव के अनन्त बलशाली होने का मरण-चिह्न है। इसीलिए जिनकी वाणियाँ कभी पुरानी नहीं होती, उनमें समय के दोनों सिरों के आर-पार जाने का बल भी होता है, वे अमरवाणी भी बोल लेते हैं, किन्तु साथ ही उनके पैर जमीन की धूल पर, और खेतों तथा खलिहानों पर भी होते हैं।

मैं मानता हूँ कि काव्य की परमता से नीचे उतरना शाश्वत के चरणों में न ठहर सकने की हमारी कमजोरी है। किन्तु यह बात नहीं है कि साधारणता शाश्वत नहीं है, केवल असाधारणता ही शाश्वत है। वह भी कैसी प्रतिभा है जो केवल नारी का पीछा किये हुए है, आसक्ति मात्र से पराजित है अपने जीवन की दुर्गन्धि को न जाने किन-किन सुगंधित विशेषणों से विभूषित कर रही है।

जब सूरज, जब प्रकाश की मटकी फोडकर, किरणों की सहस्र धारा बिखेरता, आकाश से आँखों तक आवे, और जलदान, रूपदान, रंगदान और सूझदान का लोक-लाज में खेल खेल, तब क्या नहीं हम, उसकी किरणों को सिर पर लेने, गोद पर झेलने, आँखों में मूँद लेने, अंगों पर उतार लेने, और सूझों में गूँथ लेने के लिए दौड पड़ें? क्यों कि अभिमत को ढूँढने वाली कलमें ढूँढे कि जो आनन्द घन, आमों पर बौरकर उन्हें मिठास दे रहा है, वही आम्रवन के रखवालों की टूटी झोपडियों की टूटन की संधियों में से, किसी दिलदार से कम अदा से, गरीबों के लुटे-से गृह-जीवन के खट्टे-मीठेपन को नहीं झाँक रहा। यह हमारा कौन सा मोह, कौन-सा आग्रह, कौन-सा आधिक्य होता है, कि हम अपने प्रेम की भी अपने ही घिनौनेपन के माप की तस्वीर या तो ढूँढ लेते हैं, या बना लेते हैं। यह झगडा कौन निबटावे कि, 'व्यास का कृष्ण' न हो, तो 'यशोदा के कृष्ण' के निकट की यादों की तीर्थ-यात्रा या नेह-यात्रा कोई कर सके?

और आज जब युग बदल गया है, क्या कवि कहना चाहता है कि वह तो अपने आग्रह के कारागार में बन्द हो गया, अब वह कालिदास के वर्णन की तरह क्षण-क्षण नवीन बनकर आने वाले राग, विराग, अनुराग और संघर्ष में उतरकर नहीं आएगा। योगियों के युग में अवतार को, सन्तों के युग में अपने भक्तों के लिए मजदूरी करनी पडी थी। मैं सूरज से ही कहता रहूँगा—जरा नीचे पर आ भले आदमी, आ तुझे आलिंगन कर लूँ? क्या मैं सूरज से न सुनूँगा कि निकम्मे प्यार, गद्दे बिछाकर उन पर लेटे-लेटे सूरज की आराधना नहीं की जा सकती? अखिल लोक को एक साथ आँखों में उतारने वाले को जरा ऊँचे से चढकर बोलना होता है। हम सूरज को क्या जानें जिसकी गरमी उसे गालियाँ खिलवाये, जिसकी बरसात उसके अस्तित्व पर काला आवरण बनकर छा जाए और जिसका जाडा उसकी शक्तिहीनता का जीवन-चरित बन जाए। हम क्या जानें कि सूरज के इल्जाम ही, सूरज की लीला के स्मरण-चिह्न हैं।

आज युग माँगता है कि लिखने वाला भक्त परम भक्त हो जाए, वह अपने दिलदार, अपने मालिक का खूब आशिक हो जाए। वह न केवल कष्ट सहे, किन्तु अपने अभिमत के प्यार का ज्वार इतना भारी हो कि उसे याद ही न रह जाए कि उसने कभी कष्ट उठाए है। 'नारद भक्ति सूत्र' में स्नेह में ब्रज गोपिकाओं का उदाहरण दिया है।

वह उधर सिर देने की माँग हो रही है। यदि हमे रूप की मिठास और नारी के उपहास से छुट्टी मिले, तो चलकर देखे कि कलेजे में आर-पार होने वाले प्यार की तरह ही उसी कलेजे में आर पार होने वाली तलवार कैसे खेला करती है। हम देखे कि अपने अभिमत के कष्ट का हरण कैसे किया जाता है सकटों का वरण कैसे किया जाता है। यदि कश्मीर पर कुर्बान जान के लिए आज काव्य तैयार नहीं है यदि रक्त की अलकनन्दा के बीचोबीच, अमृत की जाह्नवी का गायक कवि न बन सकता हो, तो लाओ धारणाओ के कांधे ले जाकर, उस बीते युग की जमीन मे दफना दे। वह वहा चैन से रहेगा। वहाँ उससे कोई न कहेगा कि जरा बच्चा के लिए लोरियाँ गा दो, उठो जरा व्यग की बौछार कर दो, दुख उठने वाली कसक उँडेल दो, राजपथो पर जाती हुई वाहिनी मे प्राण भरने वाले उद्‌बोधन लिख दो, जरा ऐसे दो गीत लिखो कि रेडियो सुनने वाला दुखी तडपकर खड़ा हो जाए और सोचे कि मानो उसने मातृभूमि को 'बन्धनहीन' पाया तो सब कुछ खोकर भी उसने कुछ नही खोया। जरा उठो, विश्व मे फैलती समाचार धाराओ को, आकाश को छूते से शीर्षक दे दो, फिर ऐसे गीत गा दो कि तुम्हारी प्रेयसी के स्पन्दन का स्वर जब तुम्हारी वाणी मे उतरे तो उसकी आँखो पर राधा-कृष्ण झूम उठे और कुछ वह धन पाले, मानो फौज के कर्त्तव्य-पथ मे जाते समय हजारों मील दूर छोडी हुई उनकी नेह की पटरानी, यही उनके पास खडी सी है, और उनमे प्यार की मनुहार से, मरण पथ मे प्रेरणा और प्राण भर रही है। यह बुढ़ापा तुम अपने ही पास रखो कि तुम्हारी सारी कहन 'वेदान्त' बन गई। पीढी को तुम मधुर गान दो तो प्राणो की उठान भी दो, सपने फूलें तो रण के खेत मे बलि के पुष्प भी फूलें, कली चटके तो आकाश से गोलियाँ भी महक दें। रिमझिम मेह बरसे, तो बारूद भी क्यो न बरसे। मेह की झडी लगे तो बारूद की फुलझडियाँ क्यो न रग दे। मानव-विकारो को उठाकर विश्व को जिन्दगी देने वाले मधुरतम गायक प्यार मे जीवन घोल-घोलकर गाओ, जीवन मे प्यार को आँखो और तलवारो को चढाकर आगे आओ।

मैं क्षेमचन्द्रजी की कविता मे जीवन की पुकार देखता हूँ इसीलिए मैं उनकी कविताएँ पढ गया, किन्तु वे इस सग्रह को अपनी काव्य यात्रा की समाप्ति न समझे। आज तो यात्रा प्रारम्भ हुई है। पहले हमारी मर्जी के बिना लोग हमे तलवारो के बीच रखते थे, अब स्वय तलवारो के बीच खेलने के दिन आए है, सात शताब्दियो मे हमारे युग का बचपन बीता है, अब जवानी आई है। वह कलम धन्य होगी, जो कुरूपता के गद्य मे नही कला की कोमलतर प्रखरता मे, आज की उठती जवानियो, बढती कुरबानियो और कश्मीर से

सिर गूँथवाती और हिन्द महासागर में चरण धुलवाती तारुण्य देवी पर, अपने आँसू, अपनी उमगें, अपना रक्त और अपना मस्तक चढ़ाने के लिए प्रेरित कर सके। जिन्हें आज की अदा पर आग उगलते फौलाद के बीच वाणी का वैभव नहीं मिला, जिन्हें वीणा के सप्तक में अपने अभिमत नायक को स्वर बनाकर बैठाना नहीं आता, वे क्या कविता लिखकर सूर के गीता, मीरा की पूजाओं, कबीर के मालिक का उपहास करें?

अत सुमन, चलो, बढ़ो! अपनी परिमितता से कम ही बढ़ो। वीणा धारिणी ने, आज युग की वोली के द्वार खोल दिए हैं। दिनकर के काव्य-देवता की दिल्ली आज ईमानदार हुई है। आज आसक्ति और रक्तपान, वाणी और अर्थ की तरह काव्य के पास न्यौता लेकर आए हैं। तुम्हारी कहन पर जो सिर डाले, वह किसी साँसों वाली अकर्मण्य लाश का न हो, हिमालय पर विजयोत्सुक वाहिनी के वीरों का मस्तक हो कि मस्ती से डुले, उन्हें लाख-लाख बनाकर विदा करने वाला का हृदय हो कि भक्ति से हिले।[1]

'कर्मवीर' कार्यालय
खडवा (मध्य प्रदेश)

एक भुक्त-भोगी की दृष्टि में 'अगस्त-क्रान्ति'

महामहिम श्रीप्रकाश

गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन जैसी॥

एक ही घटना को भिन्न भिन्न लोग अपनी प्रकृति, अपनी वासना, अपने विचारो के अनुसार भिन्न भिन्न रूप से देखते हैं, और इसी कारण उनसे भिन्न भिन्न परिणाम भी निकालते है। चाहे कोई अपने को कितना ही पक्षपातहीन क्यों न समझे इसमे कोई सन्देह नही कि वह इतिहास के प्रति भी विशेष दृष्टिकोण रखता ही है और ऐतिहासिक घटनाओं से निष्कर्ष भी ऐसा निकालता है जिससे उन्ही घटनाओं की समीक्षा-परीक्षा करते हुए दूसरे लोग दूसरा निकालते हैं। इसमे किसी का कोई दोष नही है। मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है इस कारण ऐसा होना अनिवार्य है।

इन घटनाओं के सम्बन्ध म गवर्नमेंट की क्या राय है, वह तो उस समय के कृत्यो से मालूम ही हो गया था और सर रिचर्ड टाटेनहम ने उसे सदा के लिए 'काग्रेस की

१. सुमन जी के अप्रकाशित काव्य-सकलन 'अजलि' की १६ मार्च १९४७ को लिखी भूमिका, जो चतुर्वेदी जी की व्यस्तता के कारण सुमन जी तक न पहुँच सकी और उनका सकलन अप्रकाशित ही रह गया।

जिम्मेदारी' नामक अंग्रेजी पुस्तक मे लिपिबद्ध भी कर दिया है। मेरी भी उस सम्बन्ध में कुछ राय है। उस समय के प्रधान पात्रों के सम्बन्ध म भी मेरी राय है। पर उस राय को विस्तार से प्रकट करने का यह अवसर नहीं है। यह तो मानना ही पडेगा कि १९४२ हमारे लिए विशेष स्मरणीय रहेगा। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी वह समय विशेष महत्त्व रखता है। विश्व-व्यापी युद्ध चोटी पर पहुँच चुका था। यूरोप मे आन्तरिक युद्ध तो था ही, यूरोप और एशिया का भी भीषण सघर्ष हो रहा था। जापान की शक्ति पराकाष्ठा को पहुँच रही थी, स्वतन्त्रता की लहर देश-देशान्तरों मे बह रही थी। भारत इससे पृथक् नहीं रह सकता था। भारत के भाव उसकी परिमित शक्ति के अनुसार एक विशेष प्रकार से प्रकट हो ही गए।

भारत के वर्तमान इतिहास मे सन् १९४२ की घटनाओं का विशेष स्थान है। ये घटनाएँ ऐसे एकाएक घटी, उनका प्रभाव इस रूप से चारो तरफ फैला कि कितने ही लोग स्तम्भित हो गए, कितने ही किंकर्तव्यविमूढ हो गए। क्या हुआ, कैसे हुआ, क्या हुआ, इसकी अभी विवेचना करनी बाकी है। अभी तक तो घटनाओं का ही सचय पूरी तरह नहीं हो पाया है। ऐसी अवस्था मे चाहे किसी दृष्टिकोण से इस विषय को देखा जाय, जो कोई उस समय की घटनाओं का क्रमबद्ध सग्रह करने का प्रयत्न करता है, वह हमारी कृतज्ञता का पात्र है। यदि कोई भुक्त-भोगी ऐसा करता है तो हम उसकी कृति का विशेष प्रकार से स्वागत करना चाहिए, क्योकि वह भीतर से हमे हाल बतलाता है। इस कारण मैं श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' की इस पुस्तक के प्रकाशन पर सन्तोष प्रकट करता हूँ। सन् १९४२ को ठीक प्रकार से देखने और समझने मे भविष्य के ऐतिहासिकों को इससे सहायता मिलनी चाहिए।

मेरे मित्र श्री सुमनजी ने उन घटनाओं का सग्रह और विवेचन किया है। उसके पात्रों का भी वर्णन किया है। इनके सम्बन्ध मे अपना मत भी प्रकट किया है। अवश्य ही उन्होंने एक विशेष दृष्टिकोण से अपनी पुस्तक लिखी है। अपने भावों को उन्होंने सफाई से व्यक्त किया है। देश ने क्या-क्या सहा, उस क्रान्ति के वास्तविक नेताओं ने क्या-क्या सकट उठाये—यह सब जानने और समझने मे उनकी पुस्तक बहुत सहायक हो सकती है। मुझे आशा है कि लोग इससे पर्याप्त लाभ उठावेंगे और जिस उद्देश्य से लेखक ने इतना परिश्रम करके इसे हमें दिया है वह सिद्ध होगा। हमें अपना आगे का कार्यक्रम निश्चित करने मे भी इससे सहायता मिलनी चाहिए, जिससे उस समय की अपनी भूलो मे हम शिक्षा ले सकें और अपनी त्रुटियों को दूर करके सच्चे और पूर्ण स्वराज्य के योग्य अपने को बना सकें।[1]

सेवाश्रम, वाराणसी

१. 'हमारा संघर्ष' [१९४६] की भूमिका में

समन्वयात्मक समीक्षा और 'साहित्य विवेचन'

डॉ० शिवनन्दनप्रसाद

हिन्दी मे व्यावहारिक आलोचना का इतिहास पुराना नहीं, पर सैद्धान्तिक आलोचना की परम्परा का सम्बन्ध संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे है। संस्कृत मे भरत मुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के विवेचन का उत्तराधिकार तो हिन्दी को मिला ही है, अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्तो का प्रभाव भी उस पर पड़ा है। फलस्वरूप हिन्दी का एक अपना समीक्षा-शास्त्र बन गया है, जो न तो मूलतः विदेशी है और न सर्वांशतः प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र का अन्धानुकरण।

'साहित्य विवेचन' हिन्दी-समीक्षा के इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतीक है। यो बाबू श्यामसुन्दरदास के 'साहित्यालोचन' के अतिरिक्त और भी समीक्षा-सिद्धान्त-सम्बन्धी पुस्तके लिखी गई, जैसे डॉ० सोमनाथ गुप्त-कृत 'आलोचना उसके सिद्धान्त', बाबू गुलाबराय-कृत 'सिद्धान्त और अध्ययन' तथा 'काव्य के रूप', पंडित रामदहिन मिश्र-कृत 'काव्य-दर्पण' इन पंक्तियों के लेखक का 'काव्यालोचन के सिद्धान्त', श्री रामनारायण यादवेन्दु-कृत साहित्यालोचन के सिद्धान्त, डॉ० रसाल-कृत 'आलोचनादर्श', श्री सुधांशु-कृत 'जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त', डॉ० रामकुमार वर्मा-कृत 'साहित्य समालोचना' आदि-आदि—फिर भी प्रस्तुत पुस्तक की अपनी विशेषताएँ हैं।

'साहित्य विवेचन' मे शायद पहली बार जहाँ साहित्य के नये रूपो पर विचार हुआ है, वहाँ परम्परागत साहित्य-रूपो का भी नवीन और प्राचीन दोनो दृष्टियो मे विवेचन किया गया है। साहित्य पर सामान्य विवेचन तथा कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध और समालोचना आदि पर विशेष रूप से विचार तो है ही, साथ ही साहित्य के अपेक्षाकृत नये रूपो...गद्यगीत, रेखाचित्र या स्केच, रिपोर्ताज आदि की विशेषताओ का भी सुन्दर विश्लेषण किया गया है। साथ ही जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण पर भी विचार हुआ है। स्केच और रिपोर्ताज आधुनिक संघर्षमय, कार्य-संकुल और व्यस्त जीवन की विशिष्ट परिस्थितियो की देन है, परिस्थितियो की अनिवार्यता के फलस्वरूप इन विशेष साहित्य-रूपो का विकास पाश्चात्य देशो मे हुआ और फिर हिन्दी-साहित्य मे इनका प्रयोग हुआ। इस बात को पुस्तक मे सरल-सुबोध शैली मे विश्लेषणात्मक पद्धति से समझाने का प्रयास किया है। उपन्यास भी पाश्चात्य देशो के प्रभावस्वरूप ही भारतीय साहित्य मे आया, अतः पाश्चात्य उपन्यास-कला की प्रवृत्तियो को समझे बिना हिन्दी-उपन्यास की विशेषताओ का अध्ययन अधूरा ही रहेगा। इसी कारण लेखको ने इस पुस्तक मे फ्रेंच, रूसी तथा अंग्रेजी उपन्यासो का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है। हिन्दी-उपन्यास के विकास के साथ-साथ आधुनिकतम हिन्दी-उपन्यास-लेखको की, जैसे जैनेन्द्र, यशपाल,

अज्ञेय, अश्क, राहुल, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि की भी चर्चा है। कविता के प्रसंग में भी काव्य सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों के विवेचन के अलावा डॉ॰ रामकुमार वर्मा, श्रीमती महादेवी वर्मा सर्वश्री दिनकर, अचल, बच्चन नरेन्द्र जैसे आधुनिक कवियों का काव्य-विश्लेषण संक्षेप में दे दिया गया है।

यह ठीक है कि लेखकों द्वारा वर्णित या प्रतिपादित सिद्धान्तों में से सभी को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं कर लिया जा सकता है मतभेद की काफी गुंजायश रह गई है। यह भी ठीक है कि लेखकद्वय सभी स्थलों पर पाश्चात्य और भारतीय समीक्षा सिद्धान्तों के परस्पर विरोध या वैषम्य को मिटाकर उनका समन्वय करने में पूर्ण सफल नहीं हुए है। फिर भी 'साहित्य विवेचन' में जो विविध सिद्धान्त वर्णित हैं, उस रूप में भी हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं के लिए उनका उपयोग कुछ कम नहीं। उचित अनुपात में इन विविध सिद्धान्तों का परिचय इतने स्पष्ट और सरल ढंग से अन्य हिन्दी-पुस्तकों में दुर्लभ है, यह स्वीकार करने में मुझे सकोच नहीं हो रहा है। रह गई पाश्चात्य और भारतीय साहित्य-सिद्धान्तों के सुखद समन्वय की बात। यह कार्य आसान नहीं। इसके लिए कई व्यक्तियों के जीवन-भर की तपस्या अपेक्षित है। परस्पर विरोधी सिद्धान्तों को अलग-अलग समझना और उनमें सत्य रूप में प्रविष्ट ऐक्य का सूत्र ढूँढ निकालना, आंशिक सत्यों के सहारे आत्मनिरपेक्ष वस्तुनिष्ठ, पूर्ण सत्य की झाँकी पा लेना जितना स्पृहणीय है, उतना ही दुष्कर भी।

ज्ञान के क्षेत्र में किसी नवीन उपलब्धि, सत्य के अब तक अज्ञात क्षेत्रों की खोज अथवा ज्ञान के विविध विभागों में किसी मौलिक या नवीन सम्बन्ध-सूत्र की स्थापना का श्रेय चाहे 'साहित्य विवेचन' के लेखकों को न दिया जा सके, फिर भी अब तक बिखरी सामग्रियों को क्रमबद्ध रूप देकर विद्यार्थी-समाज के लिए सुलभ कर देने के कारण इनका यह प्रयास अवश्य अभिनन्दनीय है।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय,
फेज़ बाज़ार, दिल्ली ६

आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत

श्री बालस्वरूप राही

कहा जाता है कि नारी पुरुष की अपेक्षा अधिक भावुक होती है। हो सकता है कि यह बात सच हो। यदि यह बात सच है तो इसका एक व्यंगार्थ यह भी होना चाहिए कि नारी में कवित्व के बीज पुरुष की अपेक्षा अधिक होते हैं, क्योंकि कवित्व और भावना का सीधा सम्बन्ध माना जाता है। किन्तु तथ्य इस बात की पुष्टि नहीं करता। किसी भी भाषा का काव्य-साहित्य उठाकर देखिए, उसमें कवयित्रियों की अपेक्षा कवियों की संख्या ही अधिक मिलेगी। केवल इतना ही नहीं, बल्कि यह भी कि कवयित्रियों की संख्या नगण्य ही होगी। इस विसंगति का कारण क्या है?

कारण दो हैं एक तो यह कि नारी 'वाचाल' भले ही हो, 'मुखर' नहीं होती। यहाँ मैंने मुखर शब्द का प्रयोग प्रचलित अर्थ से किंचित् भिन्न अर्थ में किया है। उसका 'वाचाल' होना तो स्पष्ट ही है, 'मुखर' न होने से मेरा अभिप्राय यह है कि शीलवश अथवा मर्यादावश वह आन्तरिक अनुभूतियों को व्यक्त नहीं कर पाती। शील का सम्बन्ध भीतरी आग्रह से है और मर्यादा का बाह्य अंकुश से। शील का सम्बन्ध उसके सकोची मनोविज्ञान से है, जो उससे ऐसी पंक्तियाँ लिखा देता है

> बाजार में प्रेमगीतों की भरपूर पुकार है और वह पुरुषों के मुख से ही शोभा देती है। अतः उन्हीं के लिए समझकर छोड़ दिया है। यदि कभी राष्ट्र की वेदी पर शील और संयम की क्यारी में सिंची कविता-कलिकाओं का स्तवक तैयार करें तब मैं यथासम्भव प्रथम सहयोगिनी बनने को तैयार हूँ।"
>
> (भूमिका, पृ० ६)

और बाह्य अंकुश को भूमिका में उद्धृत किसी कवयित्री की निम्न पंक्तियाँ प्रमाणित करती हैं

> "···मेरे पतिदेव को कविता और कल्पना-लोक पसन्द नहीं। इस कारण मैं इस क्षेत्र से बहुत पीछे हट आई हूँ। अपनी रचनाएँ मैंने नष्ट कर दी हैं और यह भूल गई हूँ कि कभी मैंने भी कुछ लिखा था। इस तरह से भावनाओं का गला घोटकर मैंने अपने पति का मन तो जीत लिया है, किन्तु आत्मसमर्पण में वेदना बहुत हुई।"

इन दो उद्धरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि बाह्य और आन्तरिक दोनों ही दबाव नारी में कवित्व के बीज को पनपने नहीं देते। किन्तु इससे भी अधिक अवरोध उत्पन्न करता है नारी का एक गुण अथवा दुर्बलता, और वह है उसका लचीला व्यक्तित्व। पुरुष की अपेक्षा उसे कम कठिनाई होती है परिस्थिति से समझौता करने में

अथवा उसके अनुरूप स्वयं को ढालने में। जबकि कविता की पहली शर्त है विरोध जिसमें टकराव और संघर्ष उत्पन्न होता है। संघर्ष और द्वन्द्व के बिना कविता की स्थिति नहीं है। जिन महिलाओं मे परिस्थितियों से जूझ जाने की उन्हें अपने व्यक्तित्व के अनुकूल तराशने की ललक होती है उनमें ही कवित्व स्फुरित होता है। महिलाओं में कवित्व का स्फुरण एक विरल घटना है। इसीलिए महिलाओं द्वारा रची गई कविताओं की संख्या भी कम ही होती है और यह तो जग जाहिर ही है कि अल्पप्राप्य वस्तु मूल्यवान होती है।

साथ ही महिलाओं द्वारा रचित साहित्य का मूल्य इस दृष्टि से भी अधिक आंका जाना चाहिए कि उनमें नारी चेतना के वास्तविक बिम्ब उभर आते हैं। पुरुष अपने साहित्य मे नारी मनोविज्ञान का चित्रण केवल कल्पना वैयक्तिक अनुभव और अनुमान के आधार पर उपस्थित करता है। उसके साहित्य में अंकित नारी आकृति को वास्तविक तथा मौलिक नहीं माना जा सकता। वह उसकी अपनी सृष्टि होती है जो उसके मनोविकारों और पूर्वाग्रहों से प्रभावित रहती है। नारी द्वारा रचित साहित्य में उतरने वाली नारी आकृति को अधिक प्रामाणिक और निरपेक्ष माना जाना चाहिए। इस दृष्टि से भी प्रस्तुत संग्रह का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

इस ग्रंथ मे संकलित कविताओं का आधार विषय है प्रेम। प्रेम और मृत्यु अनादि काल से कविता के विषय रहे हैं। मृत्यु से भी अधिक प्रेम क्योंकि मृत्यु में एकरसता और प्रेम में वैविध्य है। मेरा विचार है कि प्रेम से अधिक विविध गहन और व्यापक कोई अनुभूति नहीं होती। प्रेम की अनुभूतियां ही सर्वाधिक रम्य तथा स्मरणीय होती हैं। नारी जीवन की तो वे अत्यन्त मूल्यवान उपलब्धि हैं क्योंकि नारी के प्रेम में स्थैर्य तथा गाम्भीर्य अधिक होता है।

इस संकलन में संग्रहीत प्रेमगीतों को पढ़ जाने पर मेरे सामने दो तथ्य विशेष रूप से आए। एक तो यह कि नारी का प्रेम प्रायः मांसल नहीं होता दूसरा यह कि वह अपरिग्रही होता है संग्रहात्मक नहीं। उसमें न तो कायिक सुख के प्रति आसक्ति होती है न प्राप्ति की उद्दाम वासना अथवा अधिकार भाव। बस एक चाह होती है और वह यह कि चाहे जहां रहे प्रिय किसी के रहे प्रिय सुखी रहे और यशस्वी हो। उन्हीं के सुख में उसका सुख है और उन्हीं के क्लेश में उसका क्लेश। बहुत कम रचनाओं में प्राप्ति का आग्रह लक्षित होता है

तुम्हारे प्यार का वरदान ले करके रहूँगी ही

(उर्मिला वार्ष्णेय)

सोने का संसार दिखाया है तुमने ही—
अब अपनी पीड़ा की नगरी भी दिखला दो
मैं उसमें मुसकानों के मोती भर दूंगी
मुझको अपने आंसू की भाषा सिखला दो।

मैं शृंगार करूँगी पाकर दर्द तुम्हारा,
सुख का साथी समझ मुझे तुम मत ठुकराओ।
कितनी दूर चली आई हूँ साथ तुम्हारे,
पिछली राह दिखाकर मुझको मत लौटाओ।"

(पुष्पा राही)

अपना अधिकार माँगने की, अपने अधिकारों के लिए लड़ने की यह जिद बहुत कम रचनाओं में दिखाई देती है। अधिकांश रचनाओं में अनुनय-विनय, समर्पण, अनन्त प्रतीक्षा, प्रिय-यशोगान, अतीत-स्मरण और याचना-भाव हैं। यह शायद भक्ति-काव्य का प्रभाव हो। इस नैराश्य के दो कारण हैं, एक तो सामाजिक बंधन

"मैं तुम्हारी प्रीति को पहचानती हूँ, पर करूँ क्या ?

यह कहाँ संभव कि बंधन लाज के मैं तोड़ डालूँ,
मैं विवश हूँ किस तरह से बात यह बाहर निकालूँ।"

(चन्द्रकान्ता वर्मा)

दूसरे, प्रिय की निष्ठुरता

"तुम अपने होकर भी रहते हो सपने से।

दिन की नौका पर चढ़कर मैं हर रोज
सागर से कुछ मोती लाती हूँ खोज
तब आँधी और धूप मुझको झुलसा देती
जल-सी निढाल हो बेबस मैं कह ही देती—
क्या नहीं करोगे छाँह, बचाकर तपने से।"

(पुष्पा अवस्थी)

इस संकलन में जहाँ एक ओर महादेवी, तारा पाण्डे, सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्राकुमारी सिनहा और विद्यावती 'कोकिल'-जैसी वरिष्ठ कवयित्रियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं, वहाँ नई पीढ़ी की अनेक समर्थ कवयित्रियों की रचनाएँ भी समाविष्ट हैं, जिनमें से प्रमुख हैं —शकुन्त माथुर, रमा सिंह, शांति सिंहल, वीरा, शकुन्तला शर्मा, चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' तथा प्रकाशवती। नवोदित कवयित्रियों में इन्दु जैन, कीर्ति चौधरी, मधु भारतीय, पुष्पा राही, शुभा वर्मा और पुष्पा अवस्थी की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

१७५ कवयित्रियों को एक स्थान पर एकत्र करने-जैसा दुस्साध्य कार्य सुमनजी-जैसे कर्मठ, उत्साही और धैर्यवान संपादक-साहित्यकार के माध्यम से ही सम्भव था। मुझे यह देखकर परम सन्तोष और हर्ष का अनुभव हुआ है कि उन्होंने यह काम निहायत

खूबी से किया है। विश्व-साहित्य मे यह अपने प्रकार का आदि प्रयास है। कवयित्रियों के परिचय और चित्रों ने तो सकलन की उपयोगिता को कई गुना बढा दिया है। पुस्तक की रूप सज्जा भी अत्यन्त कलात्मक और सुरुचिपूर्ण है।

इस साहसिक गौरवपूर्ण प्रयोग के लिए सम्पादक और प्रकाशक हार्दिक बधाई के पात्र हैं। इस महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान के लिए हिन्दी-जगत् सुमनजी का सदैव ऋणी रहेगा।

एफ ८।७ मॉडल टाउन
दिल्ली ९

सांस्कृतिक एकता के अध्वर्यु

श्री रमेश वर्मा

एक यन्त्र का नाम है खुर्दबीन। सूक्ष्म, अदृश्य चीजो को आँखो के सामने ला देने वाला यह यन्त्र विज्ञान मे अक्सर प्रयुक्त होता है। लेकिन साहित्य म अगर किसी ने। इसका बेमिसाल उपयोग किया तो कवि-आलोचक-सम्पादक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने। अन्तर यही है कि उनकी खुर्दबीन खुद अदृश्य, अरूप है लेकिन उसके द्वारा खोजी गई चीजें—कवयित्रियाँ—सर्वथा दृश्य, स्थूल और कभी-कभी स्थूलकाय। १७५ कवयित्रियो के प्रेमगीत, परिचय फोटो चित्र और पता का 'पता' पाकर हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत का सकलन सम्पादन सुमनजी-जैसे औघड व्यक्तित्व का ही काम था—सामान्य साहस वाला आदमी अव्वल तो ऐसा कोई काम करने की हिमाकत ही न करता और अगर करता भी तो बीच रास्ते मे तोबा' कर लेता। और तब प्रेम-रस म डुब चुभ करने वाली कवयित्रियो का 'त्राण' कौन करता? यो, हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत सम्पादित करके सुमनजी ने सिद्ध कर दिया है कि वह पुरुष कवियो को उपेक्षणीय नही समझते, लेकिन उनकी खुर्दबीन नारी के प्रति ही अधिक सदय दीखती है। प्रमाण—उनका आगामी सम्पादित (अभी तक अप्रकाशित) ग्रन्थ नारी तेरे रूप अनेक, जिसमे 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' से लेकर 'जयति नखरजनी' तक सभी कुछ शामिल है, यानी वह सब कुछ जो पुरुष ने नारी के प्रति लिखा है, वह नही, जो नारी ने अपने को सुनाया है। सुमनजी मूलत कवि हैं और किसी प्रेयसी को सम्बोधित उनके गीतो मे अक्सर 'रानी' शब्द आता है (मसलन, उनकी एक कविता की टेक 'तुम कितनी सुन्दर हो रानी' है और इसीसे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि हर बन्द जब सम पर आयेगा तो उसम 'रानी'

जरूर होगा !), इसलिए उनकी भावुक, संवेदनशील खुर्दबीन का लैंस अगर नारी पर ही फोकस रहे तो क्या आश्चर्य !

किन्तु ऐसा नहीं कि सुमनजी खुर्दबीन के इस्तेमाल में ही पटु हैं। दूरबीन का इस्तेमाल भी वे उतनी ही खूबी से करते हैं। १९६२ में चीनी आक्रमण हुआ तो हिन्दी के साहित्यकारों की साहित्यिक प्रतिभा और देशभक्ति का अप्रतिम विस्फोट हुआ, और कविताएँ, कहानियाँ, लेख आदि कारखानों में तैयार होने लगे तो सुमनजी की दूरबीन भारत की सीमाओं से परे तिब्बत को पार करके पीकिंग तक की खबर ले आई और चीन को चुनौती का सम्पादन करके इन्होंने भी यज्ञ में अपनी आहुति दे डाली। लेकिन दूरबीन के प्रयोग में अपनी पटुता का विलक्षण प्रमाण सुमनजी ने १९५३ में 'सरस्वती सहकार' (हिन्दी लेखकों की प्रतिनिधि सहकारी प्रकाशन-संस्था) के प्रारम्भ और इस संस्था के तत्त्वावधान में भारती साहित्य परिचय माला के आयोजन द्वारा ही दे दिया था। आयोजनानुसार २७ पुस्तकें प्रकाशित की जानी थीं २७ लेखकों द्वारा लिखित और २७ गण्यमान्य व्यक्तियों की भूमिकाओं सहित। चुनी हुई भाषाएँ थीं

संस्कृत,	पालि,	प्राकृत,	अपभ्रंश,	हिन्दी,	उर्दू,
बँगला,	मराठी,	गुजराती,	कन्नड,	तेलुगु,	तमिल,
मलयालम,	असमिया,	उड़िया,	पंजाबी,	कश्मीरी,	नेपाली,
ब्रज,	अवधी,	भोजपुरी,	मैथिली,	राजस्थानी,	मालवी,
बुन्देलखंडी,	सिन्धी,	निमाड़ी।			

प्रत्येक भाषा के लिए एक अधिकारी लेखक का चुनाव किया गया था, लेकिन बाद में अनेक कारणों से कुछ भाषाओं पर पुस्तक रचना का कार्य किन्हीं अन्य विद्वान् को सौंपा गया। प्रस्तावित भूमिका-लेखकों में डॉ० जाकिर हुसैन और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, प्रोफेसर हुमायुन कबिर से लेकर राहुल सांकृत्यायन, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ० अमरनाथ झा, बनारसीदास चतुर्वेदी तक शामिल थे—मुद्रित पुस्तकों में इन प्रशस्ति-वचनों से पाठक को वंचित क्यों रखा गया, यह सहसा समझ में आने वाली बात नहीं।

सुमनजी की दूरगामी दृष्टि प्रचार—सुगठित प्रचार का महत्त्व समझती है। वह जानते हैं कि किसी व्यक्ति या कार्य का अक्स मात्र अगर खूब प्रभावशाली ढंग से प्रक्षिप्त कर दिया जाये तो आधी मंजिल तय हो जाती है, और एक छलाँग में आधी मंजिल तय करना सुमनजी को पसन्द है। इसीलिए उन्होंने भारतीय साहित्य परिचय माला के अक्स-प्रक्षेपण में कोई कसर नहीं उठा रखी। एक मुद्रित परिपत्र महज्जनों और पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के पास भेजा गया, जिसका एक अंश है

"आप हमारे राष्ट्र के मेरुदंड, साहित्यिक जागरण के अग्रदूत तथा महान् साहित्यिक उन्नायक हैं, अतः 'सहकार' इस योजना के सम्बन्ध में आपके दिशा-निर्देश तथा सुझावों की अपेक्षा रखता है।...ऐसे उल्लेखनीय कार्य में आप-जैसे

महानुभावो के विचारो मे हम आगे प्रगति करने मे पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त होगा। यदि आप समयाभाव के कारण सुझाव आदि भेजने की स्थिति मे न हो तो अपना प्रेरणाप्रद सन्देश भेजकर ही हम उपकृत करें। आशा है आपका वरद हस्त इस आयोजन मे बराबर हमारे सिर पर बना रहेगा। "

इस परिपत्र के उत्तर मे शुभाकाक्षाओ और 'प्रेरणाप्रद सन्देशो' की एक अटूट शृखला का सूत्रपात हुआ। बानगी के रूप मे कुछ का अशन यहाँ प्रस्तुत न करना इस सारे आयोजन के प्रति अन्याय होगा

"माला के ठोस कार्य का परिचय पाकर अति हर्ष हुआ। हिन्दी मे राष्ट्रीय ढग की इस योजना का मैं भूरि स्वागत करता हूँ।' (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल)

"भारत की विभिन्न भाषाओ म घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी पहले कभी नही थी। उपर्युक्त योजना इस दिशा मे एक समर्थ पद न्यास है। " (डॉ नगेन्द्र)

"यह काम अत्यावश्यक था और यह आपके कुशल सम्पादकत्व म सम्पन्न हो, इससे बढकर और क्या बात हो सकती है ? आप हिन्दी-भाषा भाषियो पर महान उपकार करने जा रहे है। (श्री रामवृक्ष बेनीपुरी)

"जिस रूप मे आपने प्रादेशिक भाषाओ के गडे धन का उद्धार करने का सकल्प धारण किया है, उससे न कवल राष्ट्र की सास्कृतिक धरोहर के सरक्षण की आशा बलवती हो उठती है वरन् युग के प्रेरणादायक उपकरणो की समृद्धि का अध्याय भी खुलता सा दिखाई पडता है।" (डॉ० शिवमगलसिह 'सुमन')

भारतीय साहित्य परिचय माला का विचार नि सदेह उत्तम था और इस कार्य को अपनी सीमाओ के भीतर सम्पन्न करने का बीडा उठाकर सुमनजी ने बेशक दूरदर्शिता का परिचय दिया। इसलिए सन्देशो का अम्बार लगना स्वाभाविक था। सन्देशो की अनुपस्थिति मे भी कार्य के महत्त्व मे कोई कमी न आती, लेकिन तब वह सुमनजी की कार्यप्रणाली न होकर किसी और की होती। इस तरह, धूम धडाके के साथ, सुमनजी ने इस कार्य का शुभारम्भ किया और विद्वज्जनो को पहले ही अपनी योजना क प्रति आसक्त कर लिया (' आप अपने प्रयत्न म सफल हो, यही मेरी कामना है। जिन विद्वानो का सहयोग आपको मिल रहा है, उनसे आशा भी वैसी ही है।"—राहुल साकृत्यायन)। अब यह दूसरी बात है कि योजना का परिपत्र देखकर ही डॉ० नगेन्द्र ने उसे एक 'समर्थ पदन्यास' मान लिया, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'ठोस' विशेषण प्रदान कर दिया—ठीक वैसे ही, जैसे 'दिनकर' की 'उर्वशी' के प्रकाशन के मात्र दो माह बाद शरद देवडा ने उसे 'अमर काव्य-कृति' घोषित कर दिया, यह सोचे बगैर कि एक नही हजार घोषणाओ म भी इतना दम नही होता कि कोई साहित्य कृति अमर हो जाए।

भारतीय साहित्य परिचयमाला के अन्तर्गत क्रमश ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हुई

उर्दू (गोपीनाथ अमन), तमिल (पूर्ण सोमसुन्दरम्), तेलुगु (ए० हनुमच्छास्त्री), बँगला (हंसकुमार तिवारी), मराठी (डॉ० प्रभाकर माचवे), गुजराती (डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'), मालवी (डॉ० श्याम परमार), भोजपुरी (डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय), अवधी (डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित), प्राकृत (डॉ० हरदेव बाहरी) और संस्कृत (डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास)। पत्र पत्रिकाओं में यथासमय सभी पुस्तकों की चर्चा हुई, उनके गुण-दोष का विवेचन किया गया, सुधार के सुझाव दिये गए। कुछ लोगों की निगाह में यह आकाश-स्पर्श का वामन प्रयास सिद्ध हुआ, तो कुछ ने आयोजन की सफलता निस्सन्दिग्ध मानी। एक पक्ष का मत था कि ये लघुकाय (सामान्य आकार के १२८ पृष्ठों की) पुस्तकें भाषाओं के साहित्य का समग्र चित्र प्रस्तुत नहीं करतीं, तो दूसरा पक्ष यह भी था कि आगामी (सम्भाव्य) बड़े ग्रन्थों की भूमिका-स्वरूप इन पुस्तकों के अवदान के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना !' किन्तु पुस्तकों के प्रकाशन के बारह-तेरह वर्ष बाद, पीछे घूमकर देखने और विगत का जायजा लेने पर, उस समय के विवादों का ज्यादा महत्त्व नहीं रह जाता। पुस्तकों के गुण-दोष आज फोकस से बाहर हो चुके हैं। केवल प्रिय-अप्रिय तथ्य शेष रह गये हैं।

इस तरह के आयोजन सामान्यतया संस्थाएँ किया करती हैं, क्योंकि इनमें पर्याप्त धन, काफी समय तथा समुचित सुविधा की अपेक्षा रहती है। 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' (पटना) ने इसी तरह का एक लघु प्रयास शुरू किया और बाद में त्याग दिया। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' (वर्धा) ने 'भारतीय वाङ्मय' नाम से पाँच खण्डों (प्रथम खंड—संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश द्वितीय खंड—हिन्दी, उर्दू, तृतीय खंड—बँगला, उड़िया असमिया, चतुर्थ खंड-मराठी, गुजराती, पंजाबी और सिन्धी, पंचम खंड—तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम) में एक माला आयोजित की, जिसमें से तीन खंड ही शायद प्रकाशित हो सके हैं। पी० ई० एन० के भारतीय केन्द्र ने अंग्रेजी में कुछ भारतीय भाषाओं के संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित किये। वस्तुतः, यह काम ही इतना गुरु-गम्भीर है कि इसे सफल परिसमाप्ति तक पहुँचाने में संस्थाएँ तक डोल जाती हैं। यही वजह है कि एक व्यक्ति ने इस काम को (कितने ही छोटे रूप में) पूरा करने का संकल्प किया, यह उसका दुस्साहस ही कहा जायेगा। साथ ही, यह भी निस्सदिग्ध है कि इस माला के आयोजक के रूप में सुमनजी बिलकुल ठीक दिशा में सोच रहे थे—भारत की सांस्कृतिक एकता को दृढ़ बनाने की दिशा में, ताकि हिन्दी का विरोध कम हो, वह समृद्ध हो, और अपने उचित स्थान की अधिकारिणी बने। एक ऐतिहासिक तथ्य यह भी महत्त्व का है कि सुमनजी ने इस आयोजन का सूत्रपात भारत सरकार द्वारा सांस्कृतिक एकता का नारा देने से बहुत-बहुत पहले कर दिया था। उन्होंने ग्यारह पुस्तकों का प्रकाशन किया—लेकिन शेष सत्रह पुस्तकें क्यों नहीं प्रकाशित हो सकीं अभी तक, १६६६ तक भी ? सुमनजी से यह प्रश्न पूछने का जी करता है, लेकिन पूछकर भी क्या होगा ? परिस्थितियाँ अनुकूल रही होतीं तो आज से

बहुत पहले ही पूरी मात्रा प्रकाशित हो गई होती ऐसा मेरा ख्याल है।

तब क्या यही प्रश्न हिन्दी के उन विद्वज्जनो से पूछूँ जिन्होंने योजना का परिपत्र पाकर अपने रस-भीने सन्देश भेजे थे ? पूछूँ कि जिस योजना को आपने इतना महत्त्वपूर्ण माना था, वह असमय मृत्यु की घाटी की तरफ बढने लगी तो उसे बचाने का आपने क्या उपाय किया—क्योंकि आपने शुरू मे तो हर तरह से सहायता देने का आश्वासन दिया था ? (शायद जवाब मिल जाए कि अपनी सवेदनाएँ तो अर्पित कर दी थी !) तब फिर यही सवाल सरकार के सामने पटक दूँ ? लेकिन सरकार बेचारी भी क्या करेगी ? उसे नारेबाजी से फुर्सत मिलेगी तब तो किसी गैर जरूरी' काम की तरफ उसका रुझान होगा। फिर, आखिर मे सुमनजी के पौरुष को ही चुनौती दे सकता हूँ। मेढकी टर्र-टर जैसे 'देश प्रेम' के या छिछले रोमानी गीतो के सकलन मे क्या रखा है ? जो काम शुरू किया था उसे पूरा करे जिस बडी मजिल की तरफ कदम रखा था उधर बढे। वरना आपकी खुर्दबीन कीडो की बजबजाहट देखती रह जायेगी, और दूरबीन का शीशा अधा हो जायेगा !

'दिनमान' साप्ताहिक
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

योजनाओ के अग्रदूत

श्री ब्रजनाथ गर्ग

देश, काल और परिस्थिति का समझना कवित्व का एक अपूर्व गुण माना जाता है। किसी क्रियाशील व्यक्तित्व के लिए तो यह और भी आवश्यक है कि वह समय तथा परिस्थिति को समझे और उसीके अनुरूप योजना बनाकर किसी कार्य को पूरा करे। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का व्यक्तित्व इसी प्रकार का एक पूर्ण व्यक्तित्व है जो समय को पहचानकर केवल एक द्रष्टा के रूप मे देखता नही रह जाता, अपितु एक सफल स्रष्टा के रूप मे योजना बनाकर सामयिक साहित्य की सृष्टि करता है। यही कारण है कि सुमनजी साहित्य-सृजन को केवल एक व्यवसाय न मानकर उस एक उदात्त सेवा के रूप म स्वीकार करते है और अपनी गहरी सूझ बूझ, गहन अध्ययन, पैनी और व्यापक दृष्टि तथा बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते है।

१९३६ मे सर्वप्रथम सुमनजी ने एक कवि के रूप म साहित्य जगत् मे पदार्पण किया और तब से अब तक अपने अथक परिश्रम और जागरूक प्रतिभा का परिचय देते

वाले अनेक ग्रन्थों का प्रणयन, सकलन और सम्पादन करके हिन्दी-जगत् की बहुत सेवा की है।

जहाँ सुमनजी ने दो दर्जन से भी अधिक मौलिक कृतियाँ हिन्दी को दी हैं, वहाँ उन्होंने अनेक सम्पादित और सकलित ग्रन्थों की सृष्टि भी की है। साहित्य सृजन और साहित्य-सेवा को वे एक आन्दोलन के रूप में स्वीकार करते हैं और इस आन्दोलन को किस प्रकार योजनाबद्ध करके वे चलते हैं, यह देखकर कोई भी सृजनशील व्यक्ति चकित हुए बिना नहीं रह सकता। उनकी इन विशेषताओं से प्रभावित होकर एक विद्वान् ने लिखा है, "समय की आवश्यकता को वे (सुमनजी) खूब पहचानते हैं। उनके द्वारा अनेक सकलित और सम्पादित पुस्तकें इसका प्रमाण है। 'हमारा संघर्ष', 'आज़ादी की कहानी', 'नेताजी सुभाष' 'लाल किले की ओर', 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' आदि पुस्तकें उनकी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के ठीक अध्ययन की सूचना देती है, वहाँ 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत', 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' तथा 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि' आदि पुस्तकें उनकी साहित्यिक सूझ की प्रमाण हैं।" इस प्रकार अपनी सेवाओं से सुमनजी ने समाज और साहित्य, तथा लेखक और पाठक को अत्यन्त निकट लाकर जहाँ हिन्दी के लेखक और पाठक के बीच की दूरी कम की है वहाँ साहित्य को अपनी नई नई योजनाओं से अलकृत भी किया है।

जब आजाद हिन्द फौज पर मुकदमा चला तो सुमनजी ने तुरन्त एक कविता-सग्रह का सम्पादन किया। पुस्तक का नाम था 'लाल किले की ओर'। इस पुस्तक का महत्त्व इसीसे स्पष्ट है कि इसकी भूमिका हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि स्व० श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लिखी थी। इसी प्रकार 'हमारा संघर्ष', 'आज़ादी की कहानी', 'नेताजी सुभाष' आदि अन्य पुस्तकें सुमनजी की राष्ट्रीय चेतना की परिचायक हैं।

नई प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का काम सुमनजी के व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग सा बन गया है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने एक लेखमाला भी 'जनसत्ता' में प्रारम्भ की थी, जिसमें लोकप्रिय तरुण कवियों और गीतकारों के सचित्र परिचय छपवाए थे। उसी क्रम में प्रसिद्ध कवि श्री 'नीरज' और रामावतार त्यागी से सम्बन्धित इनकी दो पुस्तकें 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि' के नाम से प्रकाशित हुईं। इसी शृंखला में उनकी 'आज के लोकप्रिय गीतकार' नामक एक और पुस्तक भी प्रकाशन के लिए तैयार है जिसमें श्री नरेन्द्र शर्मा से लेकर श्री बालस्वरूप राही तक सभी गीतकारों के साहित्यिक परिचय दिये गए हैं।

एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योजना, 'सम्मेलन के सभापति' नामक पुस्तक के लिए सुमनजी सामग्री एकत्रित करने में भी व्यस्त है। यह कार्य जितना श्रमसाध्य है, सुमनजी उतनी ही तत्परता से इसमें जुटे है। उपयुक्त व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार और साहित्यिक सग्रहालयों से सामग्री का एकत्रीकरण लगभग हो चुका है। इस सन्दर्भ-ग्रन्थ में अखिल

भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभी सभापतियों की जीवनी और तत्कालीन भाषणों का संग्रह होगा।

हिन्दी में आत्म-चरित सम्बन्धी साहित्य की कमी सुमनजी को सदैव खटकती रही है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर हिन्दी के प्रतिनिधि साहित्यकारों के आत्म-चरित संग्रह करके उन्हें प्रकाशित करने का विचार भी इनके मन में बहुत दिनों से है। यह सन्दर्भ-ग्रन्थ हिन्दी में अद्वितीय होगा। सुमनजी ने इस योजना को तीन खण्डों में विभाजित किया है—१ द्विवेदी काल, २ प्रगति काल, ३ अत्याधुनिक काल। द्विवेदी युग से सम्बन्धित खण्ड 'जीवन-स्मृतियाँ' नाम से पुस्तकाकार भी हो चुका है। शेष दो खण्डों की योजना शीघ्र ही मूर्त्त रूप लेने वाली है।

हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों के बीच अविकसित सम्बन्धों को देखते हुए सन् १९५० में सुमनजी ने एक योजना बनाई। जिसके अन्तर्गत उन्होंने 'सरस्वती सिण्डीकेट' नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का मूल उद्देश्य था हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों के बीच सम्पर्क स्थापित कराना। भारत में यह अपने ढंग की अकेली और सर्व-प्रथम योजना थी।

सुमनजी नित नई योजनाएँ बनाते हैं। जब देश के अन्दर भावात्मक एकता का नारा लगाया जा रहा था, तब उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया, वह था 'भारतीय-साहित्य-परिचय' के नाम से भारत की प्रमुख प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य पर प्रकाश डालने वाली एक पुस्तकमाला का सम्पादन और प्रकाशन। इस पुस्तकमाला के अन्तर्गत लगभग ११ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा लगभग १६ और पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना है। यह योजना वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में सिद्ध हुई, जिसने भावात्मक एकता के नारे को शक्ति दी और रूप दिया।

चीन ने भारत पर आक्रमण किया। भारत का जन-जीवन अस्त व्यस्त हो गया। देश को उस समय नैतिक और आत्मिक बल की आवश्यकता थी। हमारे वीर सैनिक युद्धभूमि में सीमाओं की रक्षा के लिए सजग थे और उस समय सुमनजी देश में राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एकता, जनता के नैतिक बल और मनोबल को ऊँचा करने की चिन्ता में व्यस्त थे। सुमनजी ने तुरन्त 'चीन को चुनौती' नामक कविता संग्रह का सम्पादन किया और उसे प्रकाशित कराया। इस छोटी सी पुस्तिका ने समाज के मनोबल को ऊँचा करने में क्या योगदान किया, यह किसी से छिपा नहीं है।

सन् १९६२ में 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेम गीत' नाम से एक काव्य-पुस्तक का सम्पादन करके सुमनजी ने अपनी साहित्यिक सूझ-बूझ का परिचय दिया। इस पुस्तक के प्रकाशन ने हिन्दी के कवियों और पाठकों को अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लिया। सुमनजी की कार्य-प्रणाली की यह विशेषता है कि वे एक काम में से दूसरे और तीसरे काम का मार्ग निकालते रहते हैं, जब वे उक्त पुस्तक का सम्पादन कर रहे थे तभी उन्होंने

मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था कि एक ऐसा सन्दर्भ-ग्रन्थ तैयार किया जाए जिसमे श्रीमती महादेवी वर्मा से लेकर आज तक की उन सभी कवयित्रियो के प्रेम-गीत सकलित हो, जिन्होंने अपनी काव्य-कृतियो से हिन्दी के भण्डार की अभिवृद्धि की है। परिणामत उन्होंने 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियो के प्रेम-गीत' नामक ऐसा सन्दर्भ-ग्रन्थ हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसने अपनी अनेक विशेषताओ के कारण हिन्दी-जगत् मे अपना स्थान स्वय बना लिया।

पिछले दिनो सुमनजी 'नारी तेरे रूप अनेक' नामक एक ऐसा विशाल ग्रन्थ तैयार करने मे व्यस्त थे, जिसमे खडी बोली के प्रारम्भिक कवि श्री हरिऔध से लेकर आज तक के लगभग सभी कवियो की ऐसी कविताएँ सकलित होगी, जो उन्होंने समय-समय पर नारी के विभिन्न रूपो और पक्षो पर लिखी हैं। अभी हाल की भेट मे पता चला कि वह ग्रथ भी प्रेस म है और इसी १६ सितम्बर को उनकी अर्धशती पूर्ति के अवसर पर उन्हे भेट किया जाएगा। इस ग्रन्थ की भूमिका हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखी है और यह पुस्तक प्रसिद्ध कवि स्व० श्री सियारामशरण गुप्तजी की पावन स्मृति मे भेंट की गई है। यह योजना भी अपने-आप मे अपूर्व और महत्त्वपूर्ण है, ऐसा हमारा विश्वास है।

इसी प्रकार और न जाने कितनी योजनाएँ सुमनजी के मस्तिष्क मे जन्म लेती रहती हैं और यह उनका ही व्यक्तित्व है कि वे उन्हे पूरा करते रहते हैं।

मैं जब भी सुमनजी के व्यक्तित्व को गहराई से देखने का प्रयास करता हूँ तो यही परिणाम निकलता है कि वे ऐसी ही साहित्यिक योजनाएँ बनाते है, जिन्हे साधारणत कोई व्यक्ति तो क्या सस्थाएँ भी हाथ मे लेने से डरती हैं। किन्तु सुमनजी सहज ही उन्हे पूरा कर लेते है। सुमनजी अपने-आपमे स्वय एक सस्था है। अनेक विषय, अनेक कार्य, अनेक समस्याएँ और अनेक योजनाएँ उनके इर्द-गिर्द घूमा करती हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्व इतना विशाल है कि जो इस सम्पूर्ण वातावरण को सहज ही सचालित रखता है। अपने इन्ही गुणो के कारण साहित्य-क्षेत्र मे सुमनजी को 'योजनाओ का अग्रदूत' कहा जाता है।

वाणी निकेतन,
राइटगंज, गाजियाबाद (मेरठ)

कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास

श्री रामकृष्ण भारती

प्रस्तुत पुस्तक में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास लिपिबद्ध किया है। यह पुस्तक १९४७ के प्रारम्भ में प्रकाशित हुई थी। तब तक भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था। मेरठ-कांग्रेस के अवसर पर लेखक ने सरल तथा सुबोध शैली में सर्वसाधारण के लिए इसकी रचना की।

कांग्रेस का इतिहास भारत की स्वतंत्रता की कहानी है। डॉ० पट्टाभि सीतारामैया ने कांग्रेस का प्रामाणिक इतिहास लिखकर अंग्रेजी भाषा भाषी जनता की अपूर्व सेवा की है। उसका अनुवाद सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली से यथासमय प्रकाशित हो चुका है, पर वह इतिहास तो इतिहासकारों तथा विद्वानों के लिए है। श्री सुमनजी ने कांग्रेस का जो प्रस्तुत इतिहास लिखा है, उसमें उन सभी आवश्यक बातों की चर्चा कर दी गई है, जो किसी भी ऐसे इतिहास में आवश्यक है। पत्रकार, लेखक तथा कार्यकर्ता के रूप में श्री सुमनजी इस बात से भली भांति परिचित हैं कि 'गागर में सागर' कैसे भरा जाता है। कांग्रेस के जन्म तथा उसकी आवश्यकता से प्रारम्भ करके उत्थान उसके विकास का संक्षिप्त लेखा-जोखा उपस्थित किया है। उनका यह कहना पूर्णरूप से युक्ति युक्त है—"भारत-वर्ष के राष्ट्रीय जागरण का इतिहास वस्तुतः १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य संग्राम के बाद से प्रारम्भ होता है।'

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन पर भी उन्होंने संक्षेप में प्रकाश डाला है। कम्पनी से ब्रिटिश सरकार ने भारत के शासन सूत्र को किस प्रकार अपने हाथों में लिया, इसका भी उन्होंने संक्षिप्त उल्लेख किया है। महारानी विक्टोरिया की घोषणा का भी उल्लेख करना वे नहीं भूले। 'इलबर्ट बिल' के द्वारा स्थानीय स्वराज्य का जो प्रारम्भ इस देश में हुआ, उस सम्बन्ध में भी उन्होंने यथास्थान इसका संकेत प्रस्तुत किया है। उक्त बिल का विरोध हुआ और उसकी असफलता ने भारतीय जनता में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का महत्त्व स्थापित किया। 'इलबर्ट बिल' के विरोध में अंग्रेजों ने संगठित रूप से जो प्रति-क्रिया प्रस्तुत की थी, उससे शिक्षा लेकर भारतीय जनता में अपने देश के हित की भावना को आगे बढ़ाने की चेष्टा की गई। यहीं से कांग्रेस का जन्म हुआ। लेखक ने कांग्रेस के जन्म का विस्तृत विवरण देने से पूर्व, उसकी स्थापना से पूर्व की देश की जागृति का भी संक्षेप में परिचय दिया है, जो सर्व-साधारण के लिए जानना आवश्यक प्रतीत होता है। 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन', 'बाम्बे-एसोसिएशन' तथा इस प्रकार की अन्य समकालीन संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय भी लेखक ने यथास्थान देकर उस समय के इतिहास की जानकारी दी है। मद्रास में होने वाले 'थियोसोफिकल कन्वैन्शन' के सम्बन्ध में चर्चा करते

हुए लेखक ने मि० ह्यूम का परिचय प्रस्तुत किया है। वे ही कांग्रेस के संस्थापक थे। इसी प्रसंग में लेखक ने मि० ह्यूम के द्वारा १ मार्च, १८८३ को लिखे गए एक पत्र का उल्लेख किया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें उन्होंने लिखा—"यदि केवल पचास भले और सच्चे आदमी इस संस्था के संचालन करने के निमित्त मिल जाएँ, तो वह स्थापित की जा सकती है और आगे का काम चल सकता है।" इसी पत्र में सभा के आदर्श का भी उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार "सभा का विधान प्रजासत्तात्मक हो, सभा के लोग महत्त्वाकांक्षा से सर्वथा रहित हों और उनका यह सिद्धान्त-वचन हो कि जो तुममें सबसे बड़ा है, उसीको अपना सेवक होने दो।' इसी पत्र के अन्तिम अंश में लेखक ने मि० ह्यूम के विचारों को प्रस्तुत किया है। उक्त अंश इस प्रकार है—"यदि आप अपना सुख-चैन नहीं छोड़ सकते, तो कम-से-कम फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है और यह कहना होगा कि हिन्दुस्तान सचमुच वर्तमान सरकार से उत्तम शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है।

हमने जान-बूझकर उस महत्त्वपूर्ण पत्र की पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की है, क्योंकि जब तक पाठक तत्कालीन स्थिति से पूर्णरूप से परिचित न हों, तो वे कांग्रेस तथा उसके जन्म की कहानी और उसके इतिहास को अच्छी प्रकार से हृदयंगम नहीं कर सकते। कांग्रेस के पहले अधिवेशन की कार्यवाही तथा उसके सभापति श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के अनुसार कांग्रेस का उद्देश्य देकर लेखक ने ठीक ही किया है, ताकि पाठक जान सकें कि प्रारम्भ में कांग्रेस का क्या उद्देश्य था और उस समय हमारे नेता सरकार से क्या आशा करते थे।

दूसरे अध्याय में लेखक ने 'बंग-भंग' तक की स्थिति का वर्णन किया है। लेखक के ही शब्दों में "उस समय की कांग्रेस बहुत ही नरम किस्म की कांग्रेस थी और वह जो कुछ चाहती थी, वह भी बहुत अधिक न था। 'बंग-भंग' के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए लेखक ने कांग्रेस के प्रारम्भिक बीस वर्षों के विकास की कथा का संक्षेप में वर्णन किया है। सर्वश्री गोपालकृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल के सम्बन्ध में संक्षेप से परिचय प्रस्तुत किया गया है तथा 'लाल-बाल-पाल' शब्दों की लोक-प्रियता को भी चरितार्थ किया गया है।

लेखक ने 'बंग-भंग' की कहानी को सरल शैली से तथा संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। उनके ही शब्दों में "बंग-भंग के आन्दोलन ने हमारी राजनीति को युद्धक्षेत्र में ला खड़ा किया। जनता के प्रबल विरोध के बावजूद भी १६ अक्तूबर सन् १९०५ को जनमत की अवहेलना करके 'बंग-भंग' कर दिया गया।"

कांग्रेस के प्रारम्भिक बीस वर्षों के इतिहास को लेखक के ही शब्दों में प्रस्तुत करना उचित होगा—"कांग्रेस का १८८५ से लेकर १९०५ तक का इतिहास प्रस्ताव, प्रार्थना और प्रवचनों का इतिहास है।...इन बीस वर्षों तक तो वह (कांग्रेस) केवल प्रार्थिनी की

अवस्था मे ही थी। सिविल सर्विस मे भारतवासियो को जगह दिलाने के लिए, प्रान्तीय कौन्सिलो मे निर्वाचित हिन्दुस्तानियो को लाने के लिए और ऊँची नौकरियो म हिन्दुस्तानियो को भरने के लिए ही वह प्रयत्नशील थी। राजा राममोहनराय या स्वामी दयानन्द के मुख से धर्म के आवरण मे जो राष्ट्रीयता गुजित एव ध्वनित हो रही थी, उसकी अभिव्यक्ति भी काग्रेस से भली प्रकार नही हो पाती थी।'

लेखक ने तत्कालीन स्थिति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करते हुए ही दादाभाई नौरोजी १८८६ ई० के इस वाक्य को उद्धृत किया है—"अभी हम केवल बोलने की अवस्था मे है।" लेखक की टिप्पणी इस सम्बन्ध मे ठीक ही है "लेकिन कदाचित् यह बोलना भी निर्भीक नही था। इस बोली के पीछे सदैव यह भय लगा रहता था कि कही मुँह से कोई कडी बात न निकल जाए।" यही से काग्रेस का नया अध्याय आरम्भ होता है। लेखक के शब्दो मे ही, "उन्नीसवी शताब्दी का अन्त होते न होते, काग्रेस को अपने 'प्रार्थना'-प्रस्तावो की निःसारता का सार मालूम हो गया था और देश की क्षुब्ध भावना का प्रतिनिधित्व करते हुए दादाभाई नौरोजी ने काग्रेस के मच से इस बात की खुली घोषणा कर दी कि "जानबुल जीभ नही, प्रस्तुत दातो की भाषा को समझता है।"

अस्तु इस जीभ तथा दाँत के सघर्ष की कहानी का लेखक ने अपनी सीधी-सादी भाषा मे बडा ही मार्मिक वर्णन किया है। दात जीभ से कही अधिक कारगर होते है, यह मानते हुए भी लेखक ने इस प्रसग म ठीक ही कहा है कि "यहाँ दात का प्रयोग करता कौन ?'

लेखक का निष्कर्ष इस सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण है कि सन् १९०६ के 'बग भग' के आन्दोलन ने यह भी बता दिया कि हिन्दुस्तान मे केवल वे ही लोग नही है जो बोलना जानते है, प्रत्युत वे भी लोग है, जो काटने मे भी दक्ष है।

लोकमान्य तिलक को लेखक ने इस प्रकार के काटने वालो के दल के मसीहा के रूप मे स्मरण किया है। काग्रेस के गरम तथा नरम दल का सघर्ष विश्व-विख्यात है। इस प्रसग म लेखक ने दादाभाई नौरोजी को भी लोकमान्य के पूर्व के उन नेताओ म स्मरण किया है, जो दाँत की सार्थकता को स्वीकार कर चुके थे। लेखक के ही शब्दो मे कह लो इस प्रकार कहना होगा—"उन्होने 'बग-भग' के सम्बन्ध मे जीभ और दात को एकाकार होते देखकर कहा था कि 'बग-भग' हुकूमत और जनता की जोर-आजमाई का नजारा है। हुकूमत कहती है कि मैं तलवार के बल स लोगो को भूसा मार मारकर, उन्हे महामारियो के मुख मे झोककर और उनके धन को चूसकर जीने के लिए सर्वथा सन्नद्ध हूँ और जनता कहती है कि यह गैर-मुमकिन है।"

तत्कालीन 'सभा-बन्दी कानून' व 'प्रेस-एक्ट' का उल्लेख करते हुए लेखक ने उस समय बढती हुई जनता की उत्तेजना का विवरण देते हुए गोखले की इस चेतावनी को उद्धृत किया है, जो प्रासगिक है—"युवक हाथ से निकले जा रहे है और यदि हम उन्हे

वश में न रख सकें तो हमें दोष न देना।"

यहाँ लेखक ने 'मार्ले-मिण्टो-शासन-सुधार-योजना' का उल्लेख किया है। कांग्रेस में उस समय श्री गोखले आदि नेता ब्रिटिश राजनीतिज्ञों पर वैधानिक प्रभाव डाल रहे थे। इन सब प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही उक्त शासन-सुधार देश पर लागू किये गए। इसी प्रसंग में लेखक ने उक्त सुधारों का संक्षेप में वर्णन किया है।

कांग्रेस के नरम दल और गरम दल में विभक्त होने के लिए लेखक ने ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति को उत्तरदायी माना है। अस्थायी रूप से दादाभाई नौरोजी को लोकमान्य तिलक के सामने कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए सफल बनाया गया, पर उन्होंने भी तात्कालिक उग्र परिस्थितियों की ही नीति को स्वीकार करके 'स्वराज्य' को कांग्रेस का ध्येय घोषित किया। उनकी यह घोषणा १९०६ ई० में कलकत्ता-कांग्रेस के अवसर पर हुई। शीघ्र ही कांग्रेस का नेतृत्व लोकमान्य तिलक के कन्धों पर आया। इस सम्बन्ध में लेखक ने लोकमान्य के इन विचारों को उद्धृत किया है—'पुराने और नए दलों में क्या भेद है, इस बात को लोग आसानी से समझ सकते हैं। नये और पुराने, दोनों दलों पर यह रहस्य भली भांति प्रकट हो गया है कि सरकार से प्रार्थना करना पत्थर के सामने रोने के समान है। फिर भी पुराना दल प्रार्थना करने पर अड़ा हुआ है। लेकिन नवीन दल देश को विश्वास दिलाना चाहता है कि "तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथ में है। अगर तुममें यह ताकत नहीं है कि जुल्मों की बाढ़ का मजबूती से मुकाबला कर सको, तो तुममें इतनी तो ताकत होनी ही चाहिए कि उन सुखों का मोह छोड़ दो, जो इन जुल्मों और ज्यादतियों को प्रश्रय देते हैं और उन्हें सम्भव बनाते हैं। यह शक्ति बहिष्कार की शक्ति है। यह शक्ति असहयोग की शक्ति है।"

लोकमान्य के इन वाक्यों पर टिप्पणी करते हुए लेखक ने ठीक ही निष्कर्ष निकाला है—"दौर ने हल्के-हल्के किटकिटाना शुरू कर दिया और असहयोग का कार्यक्रम हवा में आकर तैरने लगा।" यह वह समय था, जब लेखक के शब्दों में 'एक पार्टी, एक कार्यक्रम तथा एक नेता' जनता के सम्मुख प्रस्तुत हुए। सर फिरोजशाह मेहता-जैसे पुराने नेताओं ने इस बात का प्रयत्न किया कि गरम दल वाले कांग्रेस से पृथक् अपना संगठन बनाएँ, पर वे अपने इस प्रयत्न में सफल नहीं हुए। नरम और गरम दलों का संघर्ष सूरत कांग्रेस (१९०७ ई०) में हुआ। इस अधिवेशन के सभापति सर फिरोजशाह मेहता ही थे। उन पर जूता फेंका गया। लेखक के शब्दों में "इस गृहयुद्ध ने सूरत-कांग्रेस में जो ऊधम मचाया, वह कांग्रेस के इतिहास का एक काला पृष्ठ है। इसके बाद १९१६ ई० में लखनऊ की कांग्रेस में दोनों दल एक हो गए और फिर कांग्रेस एक नीति पर चलने लगी।" यहीं लेखक ने 'मुस्लिम-लीग' का भी संक्षिप्त परिचय दिया है। कांग्रेस के इतिहास में श्री जिन्ना का कांग्रेस से अलग होना तथा मुस्लिम-लीग की स्थापना करना अपने-आपमें एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

लाहौर से काग्रेस का नया युग आरम्भ होता है। पिता के पश्चात् पुत्र ने काग्रेस के प्रधान पद को सँभाला। इसी अधिवेशन मे पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर दी गई। सभापति का भाषण भी आग से भरा हुआ था। लेखक ने उस भाषण के कुछ उद्धरण अपनी पुस्तक मे दिए है। उन्होने हिसा के सम्बन्ध मे अपना तथा काग्रेस का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होने स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी "मैं तो साम्यवादी और लोकतन्त्रवादी हूँ। मैं बादशाहो और राजाओ को नही मानता।" २६ जनवरी, १६३० को सारे देश मे 'स्वाधीनता दिवस' मनाया गया और तब से यह दिवस लगातार प्रतिवर्ष मनाया जाता है। स्वाधीनता दिवस के सकल्प वाक्य को भी इस पुस्तक मे स्थान मिला है।

अगले अध्याय म लेखक ने स्वायत्त शासन के अन्तर्गत भारतीय शासन विधान के सम्बन्ध मे सामग्री का चयन किया है। १६३५ ई० मे ब्रिटिश पार्लियामट के द्वारा भारत सरकार के लिए जो ऐक्ट पास किया गया उसके अनुसार प्रान्तीय स्वायत्त शासन की व्यवस्था की गई। इस चुनाव मे काग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। इन्ही दिनो सुभाष बाबू काग्रेस के अध्यक्ष बने। उन्हे त्यागपत्र देना पडा, क्योकि काग्रेस के नेताओ का बहुमत उनकी विचारधारा के अनुकूल न था। उन्होने काग्रेस से छुट्टी पाकर 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना की। इधर सन् ३५ म जिन प्रान्तो मे काग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने थे, उन्होने द्वितीय महायुद्ध के छिड जाने पर अपने पदो से त्याग पत्र दे दिए, क्योकि काग्रेस युद्ध मे सरकार का साथ नही दे सकती थी। युद्ध हिसा पर निर्भर करता था और काग्रेस की नीति अहिसा पर आश्रित थी। स्वायत्त शासन स्थगित करना पडा और पार्लमेंट मे इसकी स्वीकृति बाद मे प्राप्त कर ली गई। युद्ध मे सहायता के प्रश्न को लेकर काग्रेस मे वर्षों तक निरन्तर चिन्तन चला। लेखक ने इस प्रश्न का विवेचन विस्तारपूर्वक करते हुए 'भारत छोडो' के आन्दोलन तक का चित्र अगले अध्याय मे प्रस्तुत किया है। काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के त्यागपत्र से लेकर 'भारत छोडो' आन्दोलन के प्रारम्भ होने तक की स्थिति का सक्षेप से वर्णन इस अध्याय में किया गया है। हिसा तथा अहिसा के सम्बन्ध मे काग्रेस-कार्य-समिति तथा महासमिति मे जो विचार विनिमय हुए, उनका उल्लेख भी किया गया है। गाधीजी के अनेक वक्तव्यो को भी उद्धृत किया गया है।

व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रारम्भ हुआ, किन्तु एक वर्ष के पश्चात् जापानी आक्रमण के कारण उसे स्थगित करना पडा। 'क्रिप्स-योजना' का भी सक्षेप मे उल्लेख किया गया है। किस प्रकार काग्रेस ने उक्त योजना को अस्वीकृत किया, इसकी पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की गई है। परिणामस्वरूप यह योजना विफल रही। गाधीजी ने 'हरिजन' मे अग्रेजो को भारत छोड जाने का मित्रतापूर्ण परामर्श दिया। पर अग्रेज अपने-आप (स्वय) सरलता से यहाँ से जाने वाले नही थे। लेखक ने अगले अध्याय मे 'भारत छोडो' वाले आन्दोलन के पूर्वरूप तथा महत्त्व के सम्बन्ध मे सामग्री सकलित की है। बम्बई मे किस प्रकार आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। गाधीजी ने किस प्रकार

'करो या मरो' का मन्त्र-दान किया तथा नेताओं के गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् किस प्रकार गाँव-गाँव में विद्रोह हुए तथा सरकार के दमन का पूर्ण चक्कर चला, इसका ब्यौरा प्रान्त-प्रान्त के रूप में लेखक ने विस्तृत रूप में दिया है। बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रान्त, बगाल, सीमाप्रान्त, राजधानी, सितारा, देशी राज्यों तथा अन्य प्रान्तों में जो कुछ हुआ, उसको ब्यौरा सक्षेप में लेखक ने प्रस्तुत किया है। काग्रेस के इतिहास में रुचि रखने वालों के लिए यह सामग्री काफी महत्त्वपूर्ण है। जिन लोगों ने नेताओं के जेलों में जाने के बाद भी 'करो अथवा मरो' की भावना को जीवित रखा, देश उनका सदा ऋणी रहेगा।

आगे के पृष्ठों में लेखक ने 'खून की होली' शीर्षक के अन्तर्गत लीग की उस सीधी कार्रवाई का उल्लेख किया है जिसके परिणामस्वरूप बगाल में ६ अगस्त, १९४६ को मुस्लिम लीग ने सीधी कार्रवाई का दिन मनाया और लीगी गुण्डों ने खून की होली खेली। यही चिनगारी धीरे धीरे समस्त देश में फैल गई। बम्बई, प्रयाग, दिल्ली, ढाका आदि नगरों में भी ऐसे ही हत्या-काण्ड हुए। पूर्वी बगाल तथा बिहार में भी स्थिति बिगड़ी। बापू को नोआखाली जाना पड़ा। बिहार की स्थिति शीघ्र ही नियन्त्रण में लाई गई। इस बीच महामना मालवीयजी का परलोकवास हो गया। बगाल की स्थिति का उनके मन पर बहुत प्रभाव पड़ा इन्हीं दिनों मेरठ में काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर सरदार पटेल की सिंह-गर्जना से स्थिति कुछ सँभली। उन्होंने मेरठ अधिवेशन में कहा —"तलवार का बदला तलवार से लिया जाएगा और मुस्लिम लीग न समझे कि वही तलवार चलाना जानती है।" मेरठ-अधिवेशन की कार्यवाही का लेखक ने इस अध्याय में सक्षेप से उल्लेख किया है। विधान परिषद् की तैयारियाँ होने लगी। काग्रेस ने इसमें सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। ९ दिसम्बर, १९४६ से इस परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ। लीग उसमें सम्मिलित न हुई। राजेन्द्र बाबू के सभापतित्व में परिषद् का कार्य सम्पन्न हुआ। परिषद् ने, जो मुख्य प्रस्ताव स्वीकार किये उनका भी इसमें सक्षेप में उल्लेख किया गया है।

'उपसहार' शीर्षक अध्याय में लेखक ने काग्रेस के साठवर्षीय इतिहास का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए यह ठीक ही कहा है—"विगत साठ वर्षों से काग्रेस जो स्वातन्त्र्य-सग्राम के पथ पर त्याग एव दु ख-कष्ट-वरण करते हुए सुदृढ भाव से अग्रसर हो रही है, उससे इस देश की पीडित जनता को शक्ति मिली है, उसमें साहस का सचार हुआ है और आत्मविश्वास की प्रेरणा प्राप्त हुई है। भारत के लिए काग्रेस की यही सबसे बडी देन है।" लेखक ने इन पक्तियों के साथ अपने इस इतिहास का उपसहार प्रस्तुत किया है—"मेरठ का यह काग्रेस-अधिवेशन उसमें सत्तावन के विद्रोह की वह ओजमयी भावना भरे, जिससे समस्त ससार में क्रान्ति की एक ऐसी लहर दौडे, जिसमें देश के सब कष्ट-ताप बह जाएँ।"

आगे के शेष पृष्ठो मे लेखक ने परिशिष्ट मे अन्य राजनीतिक सगठनो—लिबरल फेडरेशन, सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी, सर्वेण्ट्स ऑफ पीपुल सोसायटी (लोक-सेवक मडल), गाधी सेवा सघ मजदूर सघ, काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, फारवर्ड ब्लाक का सक्षेप मे परिचय प्रस्तुत किया है। काग्रेस के विधान पर भी प्रकाश डाला गया है। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी, राष्ट्रपति (काग्रेसाध्यक्ष) के निर्वाचन, राष्ट्रीय पताका के सम्बन्ध मे सक्षिप्त जानकारी प्रदान की गई है। काग्रेस के सभापतियों की सूची प्रस्तुत की गई है। अग्रेजो के 'झूठे वायदे' शीर्षक के अन्तर्गत १६११ ई० के पश्चात् अग्रेज अधिकारियों के कुछ वाक्यो को सकलित किया गया है। क्रिप्स-प्रस्तावो की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। साथ ही समय-समय पर (१८८५ से लेकर) काग्रेस के मच से नेताओ ने काग्रेस की माँग के रूप मे जो-जो प्रस्ताव अथवा माँगे प्रस्तुत की थी, उनका भी सक्षिप्त ब्यौरा दिया गया है। गाधीजी के द्वारा स्वराज्य की शर्तों का भी उल्लेख किया गया है। काग्रेस-चुनाव-घोषणा-पत्र का केन्द्रीय वाक्य भी उद्धृत किया गया है। सरदार पटेल के वे विचार भी प्रस्तुत किये गए है, जिनके अनुसार काग्रेस को शीघ्र ही देश-सम्बन्धी समस्त अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ।

इस प्रकार १४० पृष्ठो की इस पुस्तक मे लेखक ने बडी योग्यता से काग्रेस तथा देश के स्वाधीनता-सग्राम का सक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया है और पाठक इससे काफी लाभान्वित होगे, इसकी पूर्ण आशा की जा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि इस पुस्तक का एक नवीन संस्करण शीघ्र ही प्रस्तुत किया जाए, जिसमे अब तक का पूर्ण लेखा जोखा सक्षेप मे अकित किया जाए।

हम बन्धुवर श्री सुमनजी को घनघोर परिश्रम से प्रस्तुत की गई उनकी इस रचना के लिए हार्दिक बधाई देते हैं।

६।५१ पंजाबी बाग,
नई दिल्ली २४

साहित्यिक आत्म-चरितों का भव्य संकलन

श्री राजेन्द्र द्विवेदी

आर्थर मैलविल क्लार्क ने अपने एक निबन्ध मे लिखा था कि आत्म चरित (आटो बायोग्राफी) शब्द १८०६ तक नही गढा गया था, जब राबर्ट साउदे ने 'क्वार्टरली रिव्यू' मे इस शब्द का एक साहित्यिक विधा के रूप मे पहली बार

प्रयोग किया था। इस सिलसिले में श्री क्लार्क ने आगे लिखा था कि आत्मचरित ज्यादातर उथल-पुथल के समय में लिखे जाते हैं, जब किसी देश में बड़ी-बड़ी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्रान्तियाँ होती हैं। इस बात से इस तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है कि हमारे युग के आरम्भ में बहुत-से महत्त्वपूर्ण आत्मचरित लिखे गए।

किन्तु इस दिशा में हमें एक और महत्त्वपूर्ण बात पर, कम-से-कम भारत के प्रसंग में, ध्यान रखना होगा कि भारत में आत्म के बारे में कुछ न लिखने की प्रथा युगों से रही है। बड़े-बड़े महाकवियों, साहित्यकारों आदि के जीवन के बारे में इसी कारण हम बहुत कम जानते हैं और उनके बारे में उनके द्वारा लिखे गए बहुत कम विवरण प्राप्त होते हैं। साहित्य को उदात्त के निरूपण का माध्यम माना गया था और आत्मचरित लिखना सरस्वती का अपमान समझा जाता था। यह ठीक है कि मध्य युग में बहुत से राजाओं, महापुरुषों आदि के जीवन चरित लिखे गए। हिन्दी के आदिकाल में ऐसे अनेक रासो-ग्रंथ भी मिलते हैं इसमें पहले भी वैष्णवों के कुछ चरित लिखे गए थे। किन्तु साहित्यकारों द्वारा स्वयं अपने जीवन के बारे में कुछ लिखना बहुत ही परवर्ती काल में शुरू हुआ। इस दृष्टि से श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा संकलित 'जीवन स्मृतियाँ' का विशेष महत्त्व है। जब हमें अपने साहित्यकारों के विस्तृत आत्मचरित नहीं मिलते तो उन्होंने विशिष्ट क्षणों में अपने बारे में जो कुछ कहा उन सबका संकलन स्वतः आत्मचरितों की एक ऐसी शृंखला को—मोतियों की ऐसी लड़ी को पिरोने-जैसा काम है कि इस मुक्ताहार की सराहना सदैव की जाएगी।

आज भी हिन्दी में साहित्यकारों के बहुत थोड़े आत्मचरित हमें देखने को मिलते हैं और जिस समय १९५३ में यह पुस्तक प्रकाशित हुई उस समय हिन्दी में साहित्यकारों द्वारा आत्मचरित लिखने की परम्परा का उदय ही नहीं हुआ था। श्री सुमन ने अपनी भूमिका में लिखा है, "हमारे देश के राजनीतिक नेताओं ने थोड़ी-बहुत आत्म-कथाएँ लिखी भी हैं, किन्तु हिन्दी के साहित्यकारों के अनुभवों और कठिनाइयों पर प्रकाश डालने वाली कोई भी उल्लेखनीय पुस्तक नहीं मिलती। हिन्दी के इस अभाव को दूर करने की हमारी बहुत दिनों से इच्छा थी। उसीके परिणामस्वरूप प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के हाथों में है। हमने बहुत कठिनाइयों के बाद हिन्दी के कुछ साहित्यकारों के आत्म-चरित और उनके साहित्यिक विकास पर प्रकाश डालने वाली सामग्री इसमें एकत्रित की है।"

सुमनजी ने जिन कठिनाइयों का संकेत इस निवेदन में किया था उसके बारे में विस्तृत चर्चा चलने पर उन्होंने उस समय के कुछ पत्र हमें दिखाए, जिनसे पता चलता है कि इस योजना के लिए उन्हें कितना असहयोग मिला था। बानगी स्वरूप हम उनके मूल पत्र की उस प्रति को उद्धृत कर रहे हैं जो उन्होंने अपनी योजना प्रस्तुत करते हुए अनेक साहित्यकारों को भेजा था—

"आदरणीय...

आपको आज एक अत्यन्त आवश्यक कार्यवश कष्ट दे रहा हूँ। आशा है कि अपने व्यस्त जीवन में से कुछ आवश्यक क्षण निकालकर इस कार्य को करके मुझे उपकृत करेंगे।

बात यह है कि मैं पिछले कुछ दिनों से हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के 'आत्म-चरित' एकत्रित करने में लगा हूँ। इस कार्य में मुझे कुछ सफलता भी मिली है। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि हिन्दी के अधिकांश साहित्यकारों ने भावी पीढ़ी के कल्याण का कभी अनुभव ही नहीं किया और वे 'आत्म चरित'-लेखन में उदासीन से ही रहे।

मेरी हार्दिक इच्छा इस सन्दर्भ ग्रन्थ में आपका 'आत्म चरित' देने की भी है। यदि आप इस महत्त्वपूर्ण कार्य में अपना 'आत्म चरित' भेजकर मेरी कुछ सहायता कर सकें तो हार्दिक आभारी हूँगा। उस 'आत्म चरित' में अपने पारिवारिक जीवन के अतिरिक्त अपने साहित्य तथा उसकी प्रेरणा के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालना अनिवार्य है। यह आत्म-चरितात्मक लेख पुस्तक साइज के छः-सात पेज से अधिक का न हो, इस बात का ध्यान रखने की कृपा करें।

हिन्दी के इस स्वर्ण-युग में भावी पीढ़ी के कल्याण के लिए उसके साहित्य तथा साहित्यकारों के सम्बन्ध में यथार्थ तथा प्रेरक पृष्ठभूमि तैयार करने के सदुद्देश्य से प्रेरित होकर ही मैंने यह गुरुतर कार्य अपने ऊपर उठाने की धृष्टता की है। यदि आपका सबल सहयोग इस कार्य में मिला तो यह कठिन कार्य सफलतापूर्वक हो सकेगा। आशा है आप निराश न करेंगे और यथासम्भव शीघ्र ही अपना आत्म-चरित तथा नया चित्र भेजकर मुझे इस कार्य में सहायता प्रदान करेंगे।

आपके पत्र तथा आत्म चरित की प्रतीक्षा में

साभार सप्रणाम आपका,
क्षेमचन्द्र 'सुमन'

११ अगस्त '५१

इस योजना का गण्यमान्य साहित्यकों ने बड़ी उदासीनता से स्वागत किया। उसे कार्यान्वित करना कितना दुस्तर और कठिन कार्य है, यह सहज ही समझा जा सकता है। साहित्यकारों से उनके जीवन के विषय में सामग्री का सकलन करना इस प्रकार श्री सुमन के लिए उतना आसान काम न रहा, जिसकी उन्होंने योजना बनाते समय कल्पना की थी। ऐसी स्थिति में कोई अन्य सामान्य सम्पादक तो हथियार डालकर उस योजना को छोड़ ही बैठता, किन्तु सुमनजी ने ऐसा न करके अपना अनवरत परिश्रम जारी रखा, जिसका

प्रतिफल यह पुस्तक है। यह अलग बात है कि इस योजना की रूप-रेखा अगस्त, '५१ मे अग्रसर हुई थी और इस ढाई सौ पृष्ठो की पुस्तक का प्रकाशन १९५३ मे होसका। प्राय इन दो वर्षों के बीच जो परिश्रम सम्पादक को करना पडा वह इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ को देखकर स्पष्ट हो जाता है।

इस पुस्तक मे २२ साहित्यकारो के आत्म-चरितो को नीचे लिखे क्रम मे सकलित किया गया है—

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री शरच्चन्द्र चटर्जी, मुशी प्रेमचन्द, आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्री वियोगी हरि, प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति, बाबू गुलावराय, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री उदयशकर भट्ट, श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ० रामकुमार वर्मा, श्री सियारामशरण गुप्त, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी।

यह सचय मुख्यत हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकारो से सम्बन्धित है। पर आरम्भ मे दो बगला साहित्यकारो, (श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री शरच्चन्द्र चटर्जी) को भी शामिल किया गया है। यह लेखक के व्यापक दृष्टिकोण का ही परिचायक है, किन्तु अहिन्दी-भाषियो मे एकमात्र बगाली लेखको को ही शामिल करने का यह स्पष्टीकरण सम्पादक ने आरम्भ मे दिया है, 'कि उनके साहित्य का हिन्दी साहित्य के उन्नयन और परिवर्धन मे पर्याप्त प्रभाव पडा है और वह हिन्दी साहित्य के लिए सजीव प्रेरणा का काम देता रहा है। इस तरह विशेषत हिन्दी की तरुण पीढी और सामान्यत हिन्दी-भाषी जगत् लाभान्वित होगा, ऐसा हमारा विश्वास है', इस सम्बन्ध मे कुछ मतभेद हो सकता है और कुछ पाठक यह चाहेंगे कि इस पुस्तक के अगले सस्करण मे अन्य भारतीय भाषाओ के लेखको को भी शामिल किया जाए, जिससे इस सचय को और ज्यादा व्यापक बनाया जा सके।

प्रत्येक लेखक के आत्म-चरित-सम्बन्धी लेख से पहले सम्पादक ने उस साहित्यकार के बारे मे एक छोटी-सी टिप्पणी दी है जिसमे उसकी विशिष्ट देन और उसके जीवन के बारे मे बडे सक्षिप्त रूप मे कुछ विशिष्ट बातें कही गई है, जो उस आत्म-चरित-लेखक की एक भव्य भूमिका का काम देती है।

जैसा स्वाभाविक है, इसमे से कुछ आत्म-लेख इस पुस्तक के लिए लिखे गए हैं जबकि कुछ सम्बन्धित साहित्यकारो द्वारा अपने बारे मे दूसरे प्रसगो मे लिखी गई रचना से उद्धृत किये गए है।

सब मिलकर ये 'जीवन-स्मृतियाँ' सम्पादक के आयोजन-कौशल और सकलन-क्षमता की ही परिचायक है। इस ग्रन्थ मे हमे सुमनजी के कई ऐसे गुणो का परिचय मिलता

है जो उनके समग्र व्यक्तित्व का विशिष्ट अंग है। सुमनजी की कर्मठता की झांकी हमें इन पृष्ठों में देखने को मिलती है। उनकी सम्पादन कुशलता का साक्ष्य तो इसमें हमें मिलता ही है, उनकी लगन और किसी लक्ष्य को पूरा करने में अर्पित होने की भावना की भी झाँकी हमें इस ग्रंथ में देखने को मिलती है। हमें विश्वास है कि सुमनजी ऐसे अन्य संकलन प्रस्तुत करके हिन्दी साहित्य के भंडार की अभिवृद्धि में आगे भी उसी प्रकार सहयोग देंगे जिस प्रकार अपने अनेक संकलनों द्वारा इस दिशा में दे चुके हैं। हम उनके चिरायु होने की कामना करते हैं।

सम्पादक 'संस्कृति', ३३ थियेटर कम्युनिकेशन बिल्डिंग
कनॉट सरकस, नई दिल्ली १

'जैसा हमने देखा' को जैसा मैंने देखा

डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों, कवियों तथा पत्रकारों के जीवन-संस्मरणों का संकलन 'जैसा हमने देखा' नाम से सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कवि तथा आलोचक क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा सम्पादित किया गया है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' अपने प्रारम्भिक जीवन से ही 'आर्य', 'आर्यसंदेश', 'आर्यमित्र', 'मनस्वी', 'शिक्षा-सुधा', 'हिन्दी मिलाप' आदि अनेक पत्रों के सम्पादकीय विभाग से सम्बन्धित रहे हैं। अनेक साहित्यिक संस्थाओं के संचालन में आपका सक्रिय हाथ रहा है। आपने अपने कविता संकलनों, इतिहास ग्रन्थों, जीवनी, इतिहास (साहित्य), आत्मचरित्र, लेख आदि विभिन्न विधाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य के भंडार को भरा है।

सम्पादक के रूप में आपको दीर्घ अनुभव है। 'भारतीय साहित्य परिचय माला' के द्वारा आपने प्रशंसनीय कार्य किया है। 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत', 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत', 'चीन की चुनौती' आदि अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों के सम्पादन का भार आप पर रहा है। सुमनजी को पत्रकारिता और सम्पादन के क्षेत्र में जो दीर्घ अनुभव प्राप्त है उसका ही प्रतिफलन 'जैसा हमने देखा' शीर्षक पुस्तक है।

यह पुस्तक मूलतः 'संस्मरण साहित्य' का संकलन है, पर इसमें स्थान स्थान पर रेखाचित्रों का भी समावेश हो गया है। संस्मरणात्मक शैली में लिखे गए अनेक रेखाचित्रों को भी इसमें संकलित कर लिया गया है। कुछ लेख जीवनी-साहित्य को स्पर्श कर रहे हैं। इस पुस्तक का समर्पण भी 'संस्मरण-कला के आदि प्रवर्तक समालोचक शिरोमणि स्व०

प० पद्मसिंह शर्मा की स्मृति में किया गया है।

पुस्तक में आचार्य द्विवेदीजी, प० श्री धर पाठक, प० पद्मसिंह शर्मा, बाबू श्याम-सुन्दर दास, अध्यापक हरिऔध, महाकवि प्रसाद, इतिहासकार आचार्य शुक्ल, शहीद गणेश-शंकर विद्यार्थी, बाबू प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, अवढरदानी निराला, श्री सुमित्रानन्दन पंत, सुश्री महादेवी वर्मा राहुल सांकृत्यायन, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री हरिभाऊ उपाध्याय आदि सत्रह साहित्यकारों से सम्बन्धित संस्मरण हैं जिनके लेखक भी सुप्रसिद्ध साहित्यकार कवि या आलोचक हैं।

इन नामों पर दृष्टिपात करने से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि सभी व्यक्तियों पर लिखे गये संस्मरणों के लेखक उनके अभिन्न रहे हैं, जैसे मैथिलीशरण गुप्त के राय-कृष्णदास और कवि प्रसाद के श्री विनोदशंकर व्यास है।

जिन व्यक्तियों पर लिखा गया है, उनमें से सभी मूलतः साहित्यकार है, फिर भी उनको इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है

आचार्य—द्विवेदी जी।

कवि—प० श्रीधर पाठक हरिऔध मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा।

आलोचक—प० पद्मसिंह शर्मा, श्यामसुन्दरदास।

उपन्यासकार—प्रेमचन्द, जैनेन्द्रकुमार।

पत्रकार—गणेशशंकर विद्यार्थी बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय।

इतिहासकार—रामचन्द्र शुक्ल।

साहित्यकार—राहुल सांकृत्यायन।

इनमें से भी किसी-न-किसी एक विशिष्ट पक्ष पर बल दिया है, जैसे हरिऔधजी के अध्यापकत्व पर एवं द्विवेदीजी के आचार्यत्व पर। कुछ चारित्रिक विशेषताओं पर भी ध्यान दिया गया है जैसे निराला की दानशीलता। साथ ही सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि कुछ व्यक्ति ऐसे भी है जो लेखक भी है और जिन पर लिखा भी गया है, जैसे—

१ हरिभाऊ उपाध्याय ने आचार्य द्विवेदी पर लिखा है, और डॉ० सुधीन्द्र ने उन पर लिखा है।

२ प० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'प० श्रीधर पाठक' पर लिखा है और राम-इकबाल सिंह 'राकेश' ने उन पर लिखा है।

३ महादेवी वर्मा ने अवढरदानी 'निराला' पर लिखा है और डॉ० कमलेश ने उन पर लिखा है।

पुस्तक विद्यार्थियों के निमित्त संकलित की गई है अतएव सभी संस्मरण प्रेरणाप्रद छाँटे गए है। हर लेख के प्रारम्भ में सम्बन्धित व्यक्ति का कलात्मक ललित रेखा चित्र भी है और मध्य में यत्र-तत्र साहित्यिक विधा में रेखाचित्र भी है, जैसे—

पन्त जी का डॉ० बच्चन की तूलिका से :

"सिर पर लम्बे बाल, लेकिन उनके सजाने-काढ़ने का ढंग ऐसा कि पहले देखा ही नहीं गया। बाल भी इतने सुनहरे कि लाल मालूम होते हैं। पहनावा अँग्रेजी ढंग का, मगर जरा गौर करके देखिए तो उसमें भी कुछ निरालापन है। अँग्रेजी कोट को कुछ अपनी रुचि के अनुसार काट-छाँट दिया गया है। टाई भी है, पर खुली कमीज के ऊपर।"

राय कृष्णदासजी की लेखनी से गुप्तजी का चित्र :

"फिर अंग का स्थान कुरते ने लिया, किन्तु दुपट्टा और पगड़ी ज्यों-की-त्यों रही। सन् २८ में जब खादी ग्रहण की तब से पगड़ी कुछ और भारी होने लगी, तभी कुछ समय के लिए दाढ़ी भी रख ली थी। सन् ४१ में उस गिरफ्तारी के बाद, कारण आज तक भी स्पष्ट नहीं हो सका है, उन्होंने पगड़ी का परित्याग कर दिया तब से गांधी टोपी ही पहनते हैं। बीच-बीच में अर्द्ध-कुरता और जाँघिए पर ही रह जाते हैं। दाढ़ी-मूँछ अब साफ है। अपरिचित के लिए सहसा उन्हें देखकर ही यह कल्पना कर लेना असम्भव है कि यह व्यक्तित्व वही मैथिलीशरण गुप्त है जिसे काशीप्रसाद जायसवाल ने 'द्विवेदी युग' की सबसे बड़ी देन कहा था।"

विनोदशंकर व्यास द्वारा खींचा गया प्रसादजी का शब्द-चित्र :

"प्रसादजी का व्यक्तित्व देखने में ही विशाल मालूम पड़ता था। ललाट की तेजस्विता, आँखों की गम्भीरता और बातों की मधुरता उनकी विशेषता थी। प्रसादजी का कद मध्यम श्रेणी का था और गौर वर्ण, गोल मुँह, दाँत सब एक पंक्ति में हँसने में बहुत स्वाभाविक मालूम पड़ते थे। जवानी में ढाका की मलमल का कुरता और शान्तिपुरी धोती पहनते थे, लेकिन बाद में खद्दर का भी उपयोग करते रहे। जाड़े में मुँगनी रंग के पट्टू का कुर्ता अथवा सकरपारे की सीवन का रुईदार ओवरकोट पहनते थे। आँखों में चश्मा और हाथ में डण्डा—प्रसाद का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था।"

कृष्णानन्द गुप्त की लेखनी से खींचा गया विद्यार्थीजी का रेखाचित्र :

"मझोला कद, दुर्बल देहयष्टि, बदन पर साफ कुर्ता, जिसकी निर्मलता में एक प्रकार की आध्यात्मिक शुचिता थी। गला खुला हुआ, केश जरा बड़े—सद्य स्नान से भीगे और अपनी कोमलता से आप ऊपर की ओर कुछ मुड़े हुए। नाक सीधी, भौंहों के मध्य बिन्दु से कुछ नीचे नासिका की अस्थि पर चश्मे के निरन्तर उपयोग का परिचायक एक हल्का-सा गड्ढा। नेत्र तेजस्वी। ठोडी के पास काला तिल। होठ पतले, निश्चयपूर्ण।"

सम्पादक महोदय ने पुस्तक को विद्यार्थियों के लिए सब दृष्टि से रोचक बनाने

की चेष्टा की है। पाठों में वैविध्य है और अधिकारी व्यक्ति ने ही साधिकार अपने निकट-तम व्यक्ति (साहित्यकार) को जैसा देखा है वैसा ही अपनी लेखनी से संस्मरणात्मक शैली में चित्रित किया है, इस प्रकार पुस्तक का शीर्षक 'जैसा हमने देखा' सार्थक है।

सम्पादक ने जहाँ सम्पादन में अपना कौशल प्रदर्शित किया है वहाँ अपने लेखक-आलोचक रूप को भी उद्घाटित किया है। सभी लेखकों पर संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जिसके आधार पर विद्यार्थी चाहें तो विस्तृत निबन्ध लिख सकते हैं, जैसे,

सुश्री महादेवी वर्मा :

"हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कवयित्री और चित्रकर्त्री 'यामा' एवं 'दीपशिखा' काव्यों तथा अतीत के चल-चित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' नामक रेखा चित्रों की विदुषी लेखिका। प्रयाग-महिला विद्यापीठ की आचार्या और साहित्यकार-संसद की प्राण। महिला विद्यापीठ प्रयाग।'

प्रारम्भ में संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भूमिका 'पृष्ठभूमि' शीर्षक से दी गई है जिसमें 'जीवनी-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इसमें हिन्दी में जीवनी-साहित्य का विकास और उसके प्रमुख आधार-स्तम्भ गिने गए हैं। जीवनी क्या है, इस पर सुमनजी के विचार द्रष्टव्य है

"जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं, प्रत्युत चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। वह मनुष्य के बाह्य और अन्तर स्वरूप का कलात्मक निरूपण है। जिस प्रकार चित्रकार अपने विषय का एक ऐसा पक्ष पहचान लेता है जो उसके विभिन्न पक्षों में प्रस्तुत रहता है और जिसमें नायक की सभी कलाएँ और छटाएँ समन्वित हो जाती हैं उसी प्रकार जीवनी-लेखक भी अपने नायक के अन्तर को पहचानकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का चित्रण करता है। जीवनी में उसके नायक का अस्तित्व उभर आता है।"

जीवनी, आत्मकथा तथा संस्मरण में अन्तर इस प्रकार है, "जीवनी कोई दूसरा आदमी लिखता है, आत्म-कथा स्वयं लिखी जाती है और संस्मरण में जीवन के किसी भी महत्त्वपूर्ण भाग या घटना का उल्लेख होता है।"

कुछ साहित्यिक कृतियों पर सुमनजी का अपना निजी दृष्टिकोण दर्शनीय है`
आत्मकथा—"सियारामशरण के 'झूठ-सच' तथा 'बाल्य-स्मृति' आदि कुछ लेख इसी कोटि के हैं। निरालाजी ने 'कुल्ली भाट' में जीवन के सहारे अपनी आत्मकथा का भी कुछ अंश अव्यक्त रूप से दे दिया है—महादेवी वर्मा की 'अतीत के चल-चित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' नामक कृतियाँ आत्मकथा और निबन्ध के बीच की कड़ी हैं।"

प्रस्तुत पुस्तक में जीवनी-साहित्य के प्रमुख अंग संस्मरण की झाँकी ही देने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार का विपुल साहित्य पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है। इधर हाल में ही काफी विपुल सामग्री पुस्तकाकार भी आ चुकी है, जिनमें से सस्ता साहित्य मंडल

द्वारा प्रकाशित रचनाएँ उल्लेखनीय है। संस्मरण खण्ड मे श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी तथा लेखिकाओ मे सत्यवती मल्लिक की रचनाओ का अभाव संग्रह म खटकता है। आशा है भविष्य मे सुमनजी इस प्रकार के साहित्य का एक ऐसा विस्तृत संकलन सम्पादित करेंगे जिसको हम सगर्व विश्व साहित्य क समक्ष रख सके ।

'नन्दन'
मैरिस रोड, अलीगढ़

सुमनजी का एक ऐतिहासिक भाषण

श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

बिहार राज्य द्वादश आर्य महासम्मेलन पटना क अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन (४ ११-६३) के अध्यक्ष श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का भाषण हमारे सामने है। इसे पढकर हमारे मन पर यह भाव अंकित हुए बिना न रह सका कि सुमनजी पर आर्यसमाज की शिक्षा दीक्षा और वातावरण का बहुत गहरा प्रभाव है जिसम उनके उच्च एव आकर्षक व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था।

कवि सम्मलनो की वर्तमान परिपाटी के विरुद्ध उन्होन इन सम्मेलनो को एक नई दिशा प्रदान की है। एकमात्र कविताओ व तुकबन्दियो के पाठ के विपरीत, जिनमे प्राय उथला मनोरजन होता है और जो कभी कभी उच्छृंखलता का रूप भी ग्रहण कर लेते है, उन्होने अपने प्रेरणादायक भाषण म विचार और अनुसधान की सामग्री भी उपस्थित की है। आर्यसमाज की हिन्दी सेवाओ का ऐसा सर्वागपूर्ण विशद विश्लेषण शायद ही किसी अन्य महानुभाव की लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया गया हो जैसा इस भाषण म प्रस्तुत किया गया है। श्री कस्तूरचन्द बासलीवाल (जयपुर) न भी अपने एक पत्र म, जो उन्होने आर्य महासम्मेलन के प्रमुख सयोजक श्री प० रामनारायणजी शास्त्री को ३-४-६४ को भेजा था, इस नई परिपाटी का इन शब्दो मे अभिनदन किया था—

"कवि सम्मलनो का उपयोग यदि कविता-पाठ के साथ-साथ प्राचीन कवियो एव साहित्यिको की सेवाओ का स्मरण करने म भी लिया जाने लगे तो ऐसा कवि सम्मेलन पूर्णत सफल सम्मेलन होगा। आदरणीय सुमनजी ने यह नवीन परम्परा डालने का जो सुन्दर कार्य किया है उसके लिए मेरी ओर से उन्हे बधाई प्रेषित कर दे।'

यह अभिभाषण ऐतिहासिक मूल्य रखता है और आर्यसमाज की हिन्दी-सेवाओ के विशाल इतिहास का उचित रूप से प्रामाणिक आधार बन सकता है। इसमे ऐसी सामग्री

सँजोई गई है जो शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो सके। यदि श्री सुमनजी इस कार्य को सम्पन्न कर सके तो वे आर्यसमाज के प्रति ही नहीं अपितु हिन्दी-जगत् के प्रति भी अपनी विविध एवं अमूल्य सेवाओं के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण वृद्धि करने का गौरव प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती को गुजराती भाषा-भाषी होते हुए भी हिन्दी को अपनाने और उसे सामाजिक प्रयत्नों में उन्नत एवं व्यापक बनाने का सर्वप्रथम श्रेय प्राप्त है। उनका दृष्टिकोण बड़ा विशाल था। उन्होंने भारत के भावी निर्माण की जो योजना अपने मानस-पट पर बनाई थी उसमें हिन्दी को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया था। उन्होंने ही इसे 'आर्यभाषा' का नाम प्रदान करके इसका गौरव बढ़ाया था। उन्होंने राष्ट्र के तथा आर्य संस्कृति के दूरवर्ती हित को लक्ष्य में रखते हुए इसे वरीयता प्रदान की और इसे लोकप्रिय बनाने के लिए कोई प्रयत्न उठा न रखा। इतना ही नहीं अपने उत्तराधिकारी आर्यसमाज को भी इसी पथ का पथिक बनाया। उनके बाद महात्मा गांधीजी ने हिन्दी को अपनाकर दूरदर्शिता का सुन्दर परिचय दिया। महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का स्वप्न लिया था। महात्मा गांधी ने इस स्वप्न को साकार बनाने की अवस्थाओं में वृद्धि करने का यश प्राप्त किया और अन्त में स्वराज्य मिल जाने पर संविधान सभा ने हिन्दी को राष्ट्र की राजभाषा के उच्चासन पर प्रतिष्ठित करके हिन्दी की वरीयता पर स्वीकृति की मुहर लगा दी थी। भारत के भावी निर्माण की योजना में देश की विदेशी शासन से मुक्ति, प्रमुखतम अंग था। इसके साथ ही प्रान्तीय निष्ठाओं को हटाकर देश-प्रेम की भावना जाग्रत करके और देशवासियों के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शैक्षणिक उत्थान की अवस्थाएँ उत्पन्न करके उन्हें स्वराज्य की प्राप्ति एवं उसकी रक्षा के योग्य बना देना भी था।

हर्ष है देश के कर्णधारों ने राष्ट्रोत्थान के कार्यों में देव दयानन्द के कार्यक्रम को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अपनाया। इस प्रसंग में श्री सुमनजी के भाषण का निम्नलिखित अवतरण ध्यान देने योग्य है

"आर्यसमाज देश की उन क्रान्तिकारी संस्थाओं में से एक है जिसने बहुत थोड़े समय में इतना बड़ा कार्य कर दिखाया जो सदियों तक लगे रहने पर भी पूरा न हो पाता। यदि इस संदर्भ में मैं यहाँ तक कह देने की स्वतन्त्रता आपसे चाहूँ तो आप मुझे क्षमा करेंगे कि भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई का मार्ग-निर्देश करके उस दिशा में आगे बढ़ने का साहस ही सर्वप्रथम आर्यसमाज ने हममें उत्पन्न किया था। इसके स्वनामधन्य संस्थापक महर्षि दयानन्द ने अपने हाथ में उन्हीं कार्यों को लिया था जिन्हें बाद में भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) और उसके अनन्य सूत्रधार महात्मा गांधी ने अपनाया था। महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी दोनों ही अहिन्दी भाषा-भाषी थे। दोनों की ही मातृ भाषा गुजराती थी। महर्षि दयानन्द ने अपनी घनघोर तपस्या तथा अनन्य कर्त्तव्यनिष्ठा

ने जहाँ देश को सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पुष्ट और समृद्ध किया वहाँ महात्मा गांधीजी ने राजनीतिक दृष्टि से उसे आगे बढाया। हमारी ऐसी मान्यता है कि महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में 'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है' लिखकर जहाँ देश में स्वराज्य का पावन मन्त्र प्रचारित किया था वहाँ शिक्षा, धर्म, संस्कृति तथा सदाचार आदि की दृष्टि से तथा विश्व को समृद्ध करने की दिशा में भी अथक परिश्रम किया। अपनी इस पुनीत भावना की पूर्ति के निमित्त ही उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की।"

परन्तु दुःख है कि हिन्दी को राजनीतिक दाव-पेच और जोड़-तोड़ का लक्ष्य बनाकर उसे अपदस्थ किये जाने का कुचक्र चल रहा है। निश्चय ही यह कुचक्र सफल न हो सकेगा चाहे इसके लिए जीतोड़ कोशिश क्यों न की जाय। बंगाल एवं सुदूर दक्षिण के दिव्य द्रष्टाओं की स्थापनाएँ असत्य सिद्ध न हो सकेंगी। कुछ स्थापनाओं का भाषण से यहाँ उद्धृत किया जाना अप्रासंगिक न होगा—

' देश के सबसे ज्यादा हिस्से में हिन्दी ही बोली जाती है। अगर हम सहज बुद्धि से काम लें तब भी हमें पता लगेगा कि हमारी कौमी जबान हिन्दी ही हो सकती है।

—देवी सरोजिनी

'मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि एक दिन हिन्दी ही राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण करेगी।'

—श्रीनिवास शास्त्री

"जैसे अंगरेज अपनी मातृभाषा अंगरेजी में ही बोलते हैं और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत माता की एक भाषा बनने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।"

—श्री राजगोपालाचार्य

ये ही राजाजी अब राजनीतिक स्वार्थ की भूल भुलैयों में पड़कर हिन्दी के पीछे लाठी लिये फिरते हैं।

भाषण में आर्यसमाज द्वारा हुए या हो रहे हिन्दी के प्रचार-कार्य का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आर्यसमाज की शिक्षा-संस्थाओं, उसके सुधारकों, प्रचारकों, कार्यालयों, पत्र पत्रिकाओं, पत्रकारों, कवियों एवं साहित्यकारों ने इस दिशा में जो महान् और विस्तृत कार्य किया है उसकी महत्ता दरसाने में सुमनजी ने कमाल कर दिखाया है। ऐसे तथ्य और ऐसे हिन्दी-सेवी प्रकाश में लाए गए हैं जिनका पता आर्यसमाज के सुविज्ञ जानकार लोगों को अब तक भी नहीं है। आर्यसमाज ने हिन्दी-जगत् को न केवल उच्चकोटि के पत्रकार ही दिए अपितु कवि, साहित्यकार एवं अन्वेषक भी प्रदान किए हैं, जिनकी

कृतियाँ हिन्दी साहित्य की अनुपम निधियाँ हैं। हिन्दी-जगत् में विशिष्ट पुरस्कारों के विजेताओं में सबसे बड़ी संख्या आर्य मनीषियों और साहित्य-सेवियों की है। इसका भी वर्णन भाषण में भाव-भरे शब्दों में किया गया है।

आर्यसमाज ने विदेश में हिन्दी को प्रचलित एवं प्रतिष्ठित करके आर्य संस्कृति को जीवित करने और रखने का जो सत्प्रयास किया है उसकी भी चर्चा की गई है।

श्री सुमनजी स्वयं हिन्दी-जगत् को आर्यसमाज की एक अनूठी देन हैं। वे चिरकाल पर्यन्त आर्यसमाज की यश-वृद्धि करते रहें और उसी प्रकार अपना सौरभ बिखेरते रहें जिस प्रकार उन्होंने गागर में सागर भर देने वाले इस भाषण में बिखेरा है। यही हमारी कामना है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
आसफअली रोड, नई दिल्ली

कुशल सम्पादक

श्री जगदीशनारायण वोरा

हिन्दी में सुमनजी की 'सरस्वती सहकार'-योजना अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। मार्च १९५३ में सुमनजी द्वारा प्रसारित विज्ञप्ति में कहा गया था कि इस प्रकाशन योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम भारत की संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलगु, मलयालम, तमिल, बंगला, असमिया, उड़िया, पंजाबी, मैथिली, व्रज, बुंदेलखंडी, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, मालवी, निमाड़ी, कश्मीरी, सिन्धी तथा नेपाली आदि सत्ताईस समृद्ध भाषाओं और उपभाषाओं के साहित्यिक विकास की रूपरेखा का परिचय देने वाली 'भारतीय साहित्य परिचय' पुस्तकमाला हिन्दी में प्रकाशित करने का आयोजन किया गया है। इसका उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को इन भाषाओं की साहित्यिक गतिविधि का परिचय कराना है।

वैसे तो पहले प्रेमचन्दजी के समय में विशेषतः 'हंस' में और अन्य पत्र-पत्रिकाओं में, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की कुछ पुस्तकों में भारतीय भाषाओं के साहित्य पर कुछ लेख तथा पी० ई० एन० द्वारा अंग्रेजी माध्यम से प्रसारित दो-तीन पुस्तकों में भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में चर्चा पढ़ने को मिल जाया करती थी, परन्तु सरस्वती के उपासकों में से किसी ने भारतीय साहित्य-सुमनों की माला पिरोकर देवी को भेंट न की। कदाचित् समय-देवता श्री सुमन की प्रतीक्षा में था। १९५३ ई० में भी हिन्दी के किसी प्रकाशक का

यह साहस नहीं हुआ कि राष्ट्रभाषा राजभाषा सम्पर्क भाषा पुस्तकालय भाषा हिन्दी में इस प्रकाशन को करता। अतः श्री सुमनजी ने विवश होकर इस पुनीत उद्देश्य की पूर्ति के हेतु इस कार्य को हाथ में लिया। उस समय के प्रकाशक जौहरी भूगर्भ से निकले इन रत्नों का मूल्यांकन नहीं कर सके और हिन्दी प्रकाशन का यह दुःखद इतिहास रहा है कि वह कभी दूरदृष्टि वाला नहीं रहा बल्कि दाघसूत्री ही रहा। समय की दौड़ के बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर हम देखते हैं कि आज इस दिशा में कई राष्ट्रीय संस्थाएं प्रवृत्त हैं। केन्द्रीय साहित्य अकादेमी बिहार राष्ट्रभाषा परिषद सस्ता साहित्य मंडल दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आदि से इस प्रकार के प्रकाशन निकल रहे हैं। इस प्रकार सुमनजी की सरस्वती सहकार संस्था एक सुनिश्चित योजना के रूप में सामने आई कार्यान्वित हुई और उसका हिन्दी प्रकाशन को नई दिशा देने में ऐतिहासिक स्थान है।

योजना का स्वागत करते हुए स्व० डा० रांगेय राघव ने लिखा था हिन्दी में इस विषय पर प्रकाशन की बड़ी आवश्यकता थी। कार्य कठिन है किन्तु एक बड़ा पूरक है। आपका इस सम्बन्ध में यह प्रारम्भिक कार्य भविष्य में एक बहुत बड़ा रूप धारण करेगा ऐसी मेरी शुभाकांक्षा है। मद्रास विश्वविद्यालय के सं० शंकरराज नायडू ने प्रयास का स्तुत्य बतलाते हुए कहा कदाचित आपने ही सर्वप्रथम दक्षिण को भी यथोचित स्थान देने का प्रयास किया है। दक्षिण की भाषाओं के विकास की रूपरेखा को प्रकाशित करके दक्षिणोत्तर समन्वय स्थापित करने के लिए आप हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। सामान्य हिन्दी सेवियों तथा पाठकों की भावनाओं की अभिव्यक्ति देते हुए सम्पर्क के सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा आज जबकि हम अंग्रेजी व रूसी भाषा व साहित्य से अधिक परिचय प्राप्त कर रहे हैं अपने ही देश की समृद्ध भाषाओं में और विशेषकर दक्षिण भारत की भाषाओं के साहित्य से हमारा अज्ञान दुःखद है। यह प्रयत्न राष्ट्र में एकता और राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करेगा। श्री शिवदानसिंह चौहान सम्पादक आलोचना ने योजना के एक विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डालते हुए लिखा हमारे देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्य बहुत-कुछ समान परिस्थितियों में विकसित हुए हैं। समस्याएं अधिकांशतः राष्ट्र व्यापी ही थीं जिन्होंने इस साहित्यिक नव जागरण को प्रेरणा दी। किन्तु फिर भी हर भाषा के साहित्य पर अपने-अपने जातीय जीवन की विशिष्टता की छाप है। भाषा भेद के अतिरिक्त यह विशिष्टता एक ऐसा अपरिचित तत्व है जो भारत की विभिन्न जातियों को एक-दूसरे के लिए अजनबी बनाये हुए है। यह योजना इस अज्ञान को दूर करने में सहायक होगी और हिन्दी भाषी जनता अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से प्रेरणा लेगी। इस संदर्भ में यह देख लेना भी लाभप्रद होगा कि इसके पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों ने क्या मत प्रकट किये। जहाँ कन्नड साहित्य परिषद बंगलौर के मंत्री श्री सी० के० नागराजाराव ने कहा आप जो काम करने जा रहे हैं वह बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था वहाँ डा० भगवतशरण उपाध्याय ने बतलाया

"हिन्दी की आवश्यकताएँ बडी व्यापक है और हिन्दी-प्रचार के काम मे सम्बन्धित सस्थाएँ इधर से उदासीन प्रतीत हो रही हैं।"

इस तरह साहित्यकारो व हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ ने इस कार्य की भूरि भूरि प्रशसा की। यहां तक कि अग्रेजी पत्र 'टाइम्स ऑफ इडिया' ने भी इन पर बधाइयां दी। 'हिन्दू' अग्रेजी दैनिक मद्रास ने लिखा, "the attempt is laudable We Congratulate the sponsors of this series on their laudable venture" इन तथ्यों से स्वत स्पष्ट हो जाता है कि जिस कार्य को सुमनजी ने अपने हाथो मे लिया, वह एक व्यक्ति का कार्य नही, सस्था और समाज का कार्य है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' की गति गद्य और पद्य दोनों मे समान रूप मे है। गद्य मे सस्मरण, आलोचना आदि अनेक विधाओ मे वे सफलतापूर्वक लिखते रहे हैं। परन्तु साहित्य मे उनके नानारूपा मे मेरी दृष्टि मे उनका जो रूप अधिक सबल, सजग, सफल होकर सामने आया, वह सम्पादक का है। सम्पादक का कार्य, चाहे वह पत्रकारिता के क्षेत्र मे हो चाहे साहित्य के क्षेत्र मे, सदैव दुष्कर रहा है। बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि औद्योगीकरण के साथ जैसे-जैसे समाज की जटिलताएँ बढ़ती है, साहित्य मे समस्याएँ बढती हैं, भाषा म रूप व अर्थ-परिवर्तन होता है, वैसे-वैसे सम्पादक का उत्तर-दायित्व भी उत्तरोत्तर बढता जाता है।

हिन्दी साहित्य की पुस्तक-सम्पादक के रूप मे जिन महानुभावो न विशिष्ट सेवाएँ की हैं उनमे मुझे केवल तीन ही नाम याद आ रहे हैं—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' और श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'। इनमे श्री 'सुमन' का योगदान सर्वथा नये क्षेत्रो मे व सख्या मे सबसे अधिक है। श्री 'सुमन' अग्रेज़ी शिक्षा मे वचित रहकर भी इतनी बडी योजनाओ का सूत्रपात कर सके, यह कम प्रशसनीय बात नही है। वास्तव मे सुमनजी के कुशल व योग्य सम्पादक के रूप के निर्माण मे उनकी गुरुकुलीय शिक्षा तथा परवर्ती सम्पादन-कार्य-काल का अधिक हाथ है। गुरुकुलीय शिक्षा ने जहाँ उनको चरित्र, मनोबल, सिद्धान्तो आदि की दिशा दी और स्वावलम्बी, परिश्रमी व कर्मठ बनाया वहाँ अनेक प्रकार की पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन-काल ने उनके लेखक को भावी जीवन मे आने वाले महत्त्वपूर्ण कार्य-भार को वहन करने के लिए उस रूप को नीव पुष्ट की। इसलिए हम देखते हैं उनका सम्पादक रूप बार-बार उभरकर लगातार सामने आता रहा है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य परिचय माला' एक ठोस व रचनात्मक कार्य सिद्ध हुआ। उसने आवश्यकता के समय हिन्दी के बडे अभाव की पूर्ति तथा धरातल को वाछनीय व प्रतीक्षित व्यापकता दी, जिसका आगे चलकर दूसरो ने अनुसरण किया। अन्तर्प्रान्तीय साहित्यिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहन देने की भूमिका बनाई व हिन्दी-जगत् मे समुचित वातावरण तैयार किया। आज राजनीतिज्ञ भारतीय साहित्य-

कारों से जिस भावात्मक एकता का रूप दर्शन देश को कराने का आग्रह कर रहे हैं, उसकी नींव १९५३ में सुमनजी अपनी सूझ-बूझ से डाल चुके थे। फलत आज का हिन्दी भाषी साहित्यकार अपनी भाषा-भगिनियों में अन्तर्भूत एकता के सास्कृतिक सूत्रों से भली-भाँति परिचित है, जितना वह बारह वर्ष पूर्व नहीं था। साथ ही संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषाओं के साहित्य की महान् वसीयत का परिचय प्राप्त करके वह गौरव का अनुभव करता है और भोजपुरी, ब्रज, अवधी आदि उपभाषाओं को पढ़कर जनपद लोक साहित्य की विशिष्टताओं को हृदयगम कर सका है। हिन्दी के माध्यम से हम भारतीय साहित्य की इस अक्षय निधि व विराट् रूप का दर्शन कराने वाले सुमनजी के सदैव ऋणी रहेंगे।

१९८४ सी माल रोड, अजमेर

सुमनजी का भूमिका-साहित्य

श्री रमेशचन्द्र गुप्त

सहज साधना, सरल व्यक्तित्व, मधुर बातचीत और मैत्रीपूर्ण व्यवहार के बल पर साहित्यकारों की नई और पुरानी पीढ़ी के एक बहुत बड़े भाग द्वारा श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने जितना आदर, स्नेह और आत्मीयता प्राप्त की है वह अन्य किसी भी व्यक्ति के लिए अनायास ईर्ष्या का कारण बन सकती है। इतना होने पर भी सुमनजी के व्यवहार में किसी प्रकार का अहकार नहीं आ पाया, यह उनके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष है। वे विगत तीन दशाब्दियों से साहित्य-साधना में प्रवृत्त हैं। कविता, सस्मरण, आलोचना, जीवनी आदि के रूप में उन्होंने हिन्दी को अनेक मौलिक कृतियाँ प्रदान की हैं। दूसरी ओर एक आचार्य के समान उन्होंने साहित्य-साधना का सकल्प करने वाले भावयित्री प्रतिभा से सम्पन्न तरुण लेखकों का सही मार्ग-दर्शन करके हिन्दी की गौरव वृद्धि में सहयोग दिया है। हिन्दी की अनेक सस्थाओं से उनका सम्बन्ध है और वे सदैव उनमें सक्रिय भाग लेते रहे हैं। विभिन्न आयोजनों और अधिवेशनों की अध्यक्षता द्वारा भी उन्होंने साहित्य के प्रचार-प्रसार में योग दिया है।

सुमनजी द्वारा लिखी गई मौलिक कृतियों के समान ही ऐसी रचनाओं की सख्या भी कम नहीं है, जिनमें उनके रचयिताओं के अनुरोध पर 'भूमिका' लिखकर उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया है। कुल मिलाकर उन्होंने अब तक बारह पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—'तूलिका' (सम्पादक श्री रामानन्द दोषी), 'राजधानी के कहानीकार' (सम्पादक श्री जगदीश विद्रोही व श्री रामेश्वर अशान्त), 'रस की अमर

कहानियाँ' (श्री महाव्रत विद्यालंकार), 'मिथी की श्रेष्ठ कहानियाँ' (श्री मोतीलाल जोनवाणी), 'पृथ्वीराज और संयोगिता' (श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल'), 'इस माटी के लाल' (श्री वेदमित्र), 'यह घाटी कश्मीर की' (श्री ताराचन्द पाल 'बेकल'), 'विहँसते फूल विकसती कलियाँ' (सम्पादक श्री सीताराम अग्रवाल आदि), 'छोटी-बडी कहानियाँ' (श्री योगराज थानी) 'साहित्यिक निबन्ध मणि' (डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' 'नवांकुर कहानी खण्ड' (सम्पादक श्री सुरेश दुबे 'सरस'), 'आज की धर्म-पत्नियाँ' (श्री रत्नप्रकाश शील)।

इन विभिन्न विषयों से सम्बद्ध पुस्तकों के लिए सुमनजी ने जो भूमिकाएँ लिखी हैं वे देखने में सामान्य होने पर भी कतिपय विशिष्ट गुणों के कारण निजी महत्त्व रखती हैं। इन विशेषताओं को इस रूप में समझा जा सकता है

शीर्षकों का वैविध्य

सुमनजी ने विभिन्न पुस्तकों की भूमिका लिखते समय उनका शीर्षक 'भूमिका' अथवा 'दो शब्द'-जैसी परम्परागत शब्दावली में न रखकर अपनी भूमिका के प्रतिपाद्य के अनुकूल रखा। 'सरस वसन्त का प्रतीक', 'परिचय', 'आमुख', 'दो सुमन दो सौरभ', 'दो शब्द', 'अभिनन्दन', 'भूमिका', 'कमलेशजी के ये निबन्ध' आदि विभिन्न शीर्षकों पर यदि विचार किया जाए तो इस विशेषता को सहज ही लक्षित किया जा सकता है। 'सरस वसन्त का प्रतीक' हापुड के कवियों की आशा और उमंग के भावों को व्यक्त करने वाली कविताओं के सकलन 'विहँसते फूल विकसती कलियाँ' की भूमिका है। यदि इस भूमिका का शीर्षक 'भूमिका' ही रखा जाता तो कृति की भावगत विशेषता का बोध पाठक को अनायास हो पाना सम्भव नहीं था। एक अन्य पुस्तक 'यह घाटी कश्मीर की' की भूमिका को 'अभिनन्दन' शीर्षक दिया गया है। अभिनन्दन प्राय उसीका किया जाता है, जिसने अपने क्षेत्र में विशिष्ट कार्य किया हो। श्री ताराचन्द पाल 'बेकल' ने अपनी कृति 'यह घाटी कश्मीर की' के द्वारा कश्मीर और भारत के अविच्छिन्न सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए देश के युवकों को इसकी रक्षा के लिए ललकारा है। जन-मानस में स्वस्थ चेतना का संचार करने वाली ऐसी साहित्यिक कृति की भूमिका लिखते समय उसे 'अभिनन्दन' शीर्षक देना सर्वथा समीचीन है। इसी प्रकार एक तीसरी पुस्तक है डॉक्टर पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के निबन्धों का सकलन 'साहित्यिक निबन्ध मणि'। डॉ० कमलेश सुमनजी के मित्र हैं। उनकी इस कृति की भूमिका उन्होंने 'कमलेशजी के ये निबन्ध' शीर्षक से लिखी है। देखने में यह शीर्षक सामान्य भले ही लगे, किन्तु इसके माध्यम से सुमनजी ने डॉ० कमलेश के प्रति जिस आत्मीयता को व्यक्त किया है, वह निश्चय ही उनकी शब्द-चयन-विषयक सूक्ष्म दृष्टि का द्योतक है।

तरुण प्रतिभाओ का अभिनन्दन

सुमनजी द्वारा लिखित भूमिकाओ की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसके माध्यम से उन्होने साहित्य-रचना मे प्रवृत्त होने वाली तरुण प्रतिभाओ को आगे बढने की प्रेरणा दी है। इसमे सन्देह नही कि एक नये रचनाकार के भाव और शिल्प मे प्रौढ साहित्यकार की अपेक्षा अनेक अनवधानताएँ रहती हैं, किन्तु समीक्षक द्वारा यदि इसी कारण उसकी उपलब्धि का मूल्याकन करने मे उपेक्षा की दृष्टि रखी गई तो वह तरुण साहित्यकार विकास न कर सकेगा। वह तो एक कोमल पौधे के समान है, यदि उसे प्रेरणा की खाद और धूप उचित मात्रा मे न मिली तो वह असमय मे ही मुरझा जाएगा। इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्वीकार करते हुए सुमनजी ने प्राय उन्ही पुस्तको की भूमिकाएँ लिखी हैं जो अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध साहित्यकारो द्वारा लिखी गई हैं अथवा जिनमे साहित्य उपवन मे जन्म लेने वाली कोमल कलियो की गन्ध को सचित करने का सद्प्रयास किया गया है।

इस तथ्य पर एक अन्य दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है, और वह है भूमिकाओ का विस्तार। सुमनजी की भूमिकाएँ प्राय एक या दो पृष्ठो की होती हैं, केवल चार पुस्तको ('विहँसते फूल विकसती कलियाँ', 'तूलिका', 'यह घाटी कश्मीर की', 'राजधानी के कहानीकार') की भूमिकाएँ इसका अपवाद हैं। इनकी भूमिकाएँ क्रमश १६, १२, ६, ४ पृष्ठो मे लिखी गई हैं। इनमे से 'यह घाटी कश्मीर की' एक तरुण कवि श्री ताराचन्द पाल 'बेकल' का खण्डकाव्य है और शेष तीन विभिन्न कवियो तथा कहानीकारो की रचनाओ के सकलन। इनकी भूमिका लिखते समय विस्तार से इन कवि और कहानीकारो की सृजन-क्षमता का निरूपण करके इन्हे हिन्दी-जगत् के सम्मुख लाने का प्रयास किया गया है।

इसमे सन्देह नही कि नये रचनाकारो के प्रति सुमनजी का यह दृष्टिकोण उनके राग-द्वेष-रहित स्वस्थ हृदय का परिचायक है। आज के यश-लोलुप ससार मे, जबकि अधिकाश साहित्यकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे अपनी रचनाओ के गुण-गान और दूसरो की निन्दा करने को ही कर्तव्य मानते है, इस प्रकार के उदारचेता व्यक्तित्व का होना एक शुभ लक्षण है। पुरानी पीढी का आशीर्वाद और मार्ग-दर्शन प्राप्त करके ही नई पीढी अपना सही विकास कर सकती है। सुमनजी, अन्य कतिपय गिने-चुने सत्साहित्यकारो के समान, अपने इस दायित्व के प्रति सजग हैं। उनकी भूमिकाओ मे इस प्रकार के अनेक वाक्य पाये जाते है जिनमे उन्होने मुक्त हृदय से नवलेखको का स्वागत किया है और उनकी रचनाओ के सकलनो की उपयोगिता को स्वीकार किया है। इस दृष्टि से केवल तीन पुस्तको की भूमिकाओ के निम्नलिखित अश प्रकाश-स्तम्भ के रूप मे प्रस्तुत किये जा सकते है—

(१) ' 'राजधानी के कहानीकार' का अपना महत्व है। सम्पादकों का यह प्रयास सर्वथा नवीन दिशा की ओर है, अतः अभिनन्दनीय है। मैं इसका अधिकाधिक प्रचार चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इसका अनुकरण देश के दूसरे स्थानों के साहित्य-सेवी भी करें, जिससे प्रकाशन और प्रचार की दुनिया से दूर, एकान्त साधना में निमग्न प्रतिभाओं को उचित प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिले और वे दिनानुदिन साहित्य-साधना के पथ पर अविराम गति से बढ़ते चलें।'[1]

(२) आंचलिक और जनपदीय आधार पर ऐसे संकलनों का प्रकाशन निश्चय ही एक स्वस्थ परम्परा का द्योतक है। मेरी ऐसी मान्यता है कि हिन्दी साहित्य का सही मूल्यांकन करने की ओर हमारे समीक्षकों और इतिहासकारों का ध्यान गया तो ऐसे ऐसे संकलन ही उनको दिशा निर्देश करने में सहायक होंगे।'[2]

(३) हिन्दी साहित्य की विस्तृत वाटिका में आज ऐसी अनेक कलियां फूट रही हैं जिनको प्रोत्साहन और प्रश्रय के सजल सिंचन की आवश्यकता है। इस संकलन में श्री 'सरस' ने ऐसे नौ लेखकों की कहानियों को आकलित किया है जो वास्तव में प्रकाशन के अधिकारी हैं।'[3]

साहित्यिक मान्यताओं का संकेत

इन भूमिकाओं में सुमन जी का आचार्य रूप भी सहज सुरक्षित रहा है। विभिन्न कृतियों की भाव अथवा कला सम्पदा का उल्लेख करते समय उन्होंने अनायास ही साहित्य-विषयक अपनी मान्यताओं का संकेत कर दिया है। अवसर न होने के कारण यह चर्चा स्फुट रूप में ही हो सकी है, किन्तु यदि ऐसे विभिन्न संकेतों को एकत्र किया जाए तो, सुमनजी के दृष्टिकोण का एक सही चित्र प्राप्त करना कठिन न होगा। उनकी भूमिकाओं के कुछ सिद्धान्त वाक्य इस प्रकार हैं

साहित्य का उद्देश्य : लोकहित—

१ "निरन्तर जीवन-संघर्ष में जूझते रहने के बाद मानव विश्राम चाहता है और वह तब ही मिल सकता है जबकि उसे ऐसा साहित्य पढ़ने को मिले जो न केवल उसके अन्तर को ही गुदगुदा दे बल्कि उसके अध्ययन से उसके मस्तिष्क की शिराएँ तक एक नवीन स्फूर्ति तथा चेतना का अनुभव करने लगें।"[4]

२ "कवि 'वेकल' का यह काव्य जहाँ हमारी पुण्यभूमि कश्मीर को आजाद करने के लिए किये गए इस अभूतपूर्व संघर्ष की ओजस्वी गाथा प्रस्तुत करता है वहाँ इसमें

१. 'राजधानी के कहानीकार', पृ० १०
२. 'विहँसने पूर्व विकसित कलियाँ', पृ० १६
३. 'नवांकुर : कहानी खण्ड', पृ० ६
४ 'राजधानी के कहानीकार', पृ० ६

हमारी तरुणाई म दा तथा राष्ट्र के लिए बड से बडा बलिदान करने की उदात्त भाव नाए भी जाग्रत हागी। यही कवि कम की इतिकत्तव्यता तथा सफ ाता है और इसीम उसकी काव्य साधना की सिद्धि भी। [1]

" आज जब ेश को अच्छे नागरिका की आव यकता है तब इस पुस्तक से हमारे बालका क जीवन का पथ प्रशस्त होगा। अपने भावी जीवन म वे इन ज्वलत प्रकाश-स्तम्भा की मधपण गाथा से अभूतपव प्ररणा प्राप्त करगे [2]

कल्पना का महत्त्व

इसम लखक ने ऐतिहासिक घटनाआ के परिवेश म अपनी कला चातुरी स हिन्दी पाठका के समक्ष सवथा नतन दष्टिकाण रखा ह।

अनुवाद की आवश्यकता

हिन्दी साहित्य की अभिवद्धि मे तो इस सग्रह से योग मिलगा ही साथ ही पाठका को एक उपेक्षित किन्तु उदयोन्मुखी भाषा के साहित्यकारा की कला म परिचित हाने का स्वण अवसर प्राप्त हागा। मैं श्री जोनवाणी क इस शुभ प्रयास का अभिनन्दन करता हू और आशा करता हू कि इनके ही अनुकरण पर असमिया उडिया पजाबी काश्मीरी नेपाली आदि भाषाआ की कहानिया के सग्रह भी हिन्दी म प्रकाशित होगे। बगला मराठी तलुगु मलयालम क नड तमिल और गुजराती आदि भाषाआ का कथा साहित्य तो हिन्दी मे विद्यमान है ही। [3]

अधानुकरण का तिरस्कार

बाल साहित्य का निर्माण वसे हिन्दी मे इतनी प्रचुर मात्रा मे हो रहा है कि उसे देखकर यह विवेक करना कठिन है कि उसमे से कितना ग्राह्य है और कितना त्याज्य। [4]

साहित्य को व्यवसाय न बनने द

धवनजी उस युग से लिखते आ रहे है जिस युग म कहानी लेखन व्यवसाय न होकर एक सेवा का काय समझा जाता था। [5]

भाषा शैली सरलता और सतुलन पर बल

१ इन कहानिया का भाषा भी इतनी सरल सहज और सुबोध है कि उससे इनकी उपादेयता और भी बढ गई है।

१ यह घाटी कश्मीर की पृ० ६
२ इस माट के लन पृ० ३
३ पृथ्वीराज और सयोगिता पृ० ३
४ सिंधी की श्रष्ठ कहानियाँ पृ० ५ ६
५ छोटी-बडी कहानियाँ पृ० ३
६ पृथ्वीराज और सयोगिता पृ० ३ ४
७ छोटी-बडी कहानिया पृ० ३

२ "लेखक ने सहज आंचलिक शैली में सरल से सरलतम भाषा के माध्यम से गहन से गहनतम बात को ऐसी सफाई से प्रस्तुत किया..."[1]

३ "लेखक ने थोड़े में बहुत कुछ समोकर वास्तव में एक अभिनन्दनीय कार्य किया है।"[2]

संक्षेप में, सुमनजी के अनुसार—(१) साहित्य का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं है, वरन् उसमें जीवन को उदात्त बनाने की शक्ति होनी चाहिए। वे साहित्य के द्वारा लोक-कल्याण के समर्थक हैं। (२) केवल घटनाओं या तथ्यों का वर्णन साहित्य नहीं है। साहित्यकार की कला इसीमें है कि वह कल्पना के माध्यम से उन नीरस घटनाओं को एक मनोरम रूप प्रदान करे और इस प्रकार प्राचीन घटनाओं को भी नये सन्दर्भ में प्रस्तुत कर सके। (३) साहित्य की भाषा-शैली सहज व सरल होनी चाहिए और भावाभिव्यक्ति करते समय विस्तार से बचना चाहिए। (४) किसी भी भाषा के साहित्य का सही विकास तभी हो पाता है जब उसमें मौलिक कृतियों की रचना के साथ-साथ अन्य देशी विदेशी भाषाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद भी किया जाए। (५) लेखक को अन्धानुकरण से बचना चाहिए अन्यथा अविवेक के कारण वह श्रेष्ठ साहित्य देने में असमर्थ रहेगा। (६) साहित्य को व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाना चाहिए। ऐसा करने से कला की हत्या हो जाएगी और साहित्यकार अपने दायित्व—समाज के उत्थान—से विमुख हो जाएगा।

निष्पक्ष विवेचन

निष्पक्ष विवेचन समीक्षक का एक महत्त्वपूर्ण अपेक्षित गुण है। संकलनों के अभावों का संकेत करके सुमनजी की आलोचक दृष्टि ने इसे भी उपेक्षित नहीं होने दिया। श्री जगदीश विद्रोही व श्री रामेश्वर अशान्त द्वारा सम्पादित 'राजधानी के कहानीकार' में राजधानी के सभी कहानीकारों की उपलब्धि को संकलित किया जाना चाहिए था, किन्तु सम्पादकों ने कुछ प्रमुख कहानीकारों को इसमें स्थान नहीं दिया। अत: सुमनजी ने एक ओर जहाँ संकलित कहानीकारों की कला की सराहना की है, वहीं भूमिका में सम्पादकों की इस कमी का भी उल्लेख कर दिया है—"सारांशत: यह कथा-संग्रह जहाँ सभी दृष्टियों से अभूतपूर्व बन पड़ा है, वहाँ राजधानी के कुछ उल्लेखनीय तथा प्रतिष्ठित कलाकारों की कहानियों का इसमें समावेश न होना, नि:सन्देह चन्द्रमा में कलंक के समान खटकता है।"[3]

१. 'आज की धर्मपत्नियाँ', पृ० ५
२. 'इस माटी के लाल', पृ० ३
३. 'राजधानी के कहानीकार', पृ० १०

व्यक्तित्व का प्रतिफलन

सुमनजी के सम्पर्क म रहने वाले व्यक्ति प्राय उनके चरित्र के दो गुणो से विशेष प्रभावित रहते है—हास्यविनोदपूर्ण सरस वार्तालाप और विनम्रता। ये गुण उनके मन, वचन और कर्म मे इतनी सरलता से घुल मिल गए हैं कि इनसे पृथक् उनके किसी अन्य व्यक्तित्व की कल्पना ही नही की जा सकती। साहित्यकार के रूप मे उनकी लेखनी के माध्यम से भी ये चारित्रिक विशेषताएँ प्रसग प्राप्त होते ही अनायास प्रकट हो जाती है। सुमनजी की भूमिकाएँ भी इनका अपवाद नही हैं। हास्यव्यग्यात्मक कृति 'आज की धर्मपत्नियाँ' की भूमिका मे उनकी हास्य वृत्ति इस रूप मे मुखरित हुई है—"आज के युग मे ऐसा कौन सा बुद्धिजीवी है जिसके जीवन मे कोई ऐसा क्षण न आया हो जब कि उसे पत्नी द्वारा प्रताडित न होना पडा हो।" अथवा सच तो यह है कि इस पुस्तक की प्रशस्ति मे विस्तार से लिखने का मन तो अवश्य हो रहा है, किन्तु कुछ कारण ऐसे भी होते है जब इच्छा रहते हुए भी पुरुष कोई काम नहीं कर पाता। इसका यह अर्थ आप कदापि न लें कि मैं भी अपने घर देर से पहुँचता हूँ। मेरी पत्नी बहुत भली हैं। मैं चाहता हूँ कि शीघ्र ही जब इस पुस्तक का द्वितीय सस्करण हो, तब मैं उस पर अपनी विस्तृत सम्मति लिखूं। क्योंकि तब तक मैं इस सम्बन्ध मे अपनी श्रीमतीजी की प्रतिक्रिया जान लूंगा।'

इसी प्रकार दूसरे गुण—विनम्रता की झलक 'विहँसते फूल विकसती कलियाँ' की भूमिका मे मिलती है। सुमनजी की साहित्य-रचना का प्रथम चरण हापुड प्रदेश से प्रारम्भ हुआ था और वहाँ की धार्मिक सस्था 'महावीर दल' द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलनो ने ही उनकी काव्य प्रतिभा का विकास किया था। इस सत्य को उन्होने निम्न-लिखित स्वीकारोक्ति म विनम्रतापूर्वक व्यक्त किया है—"मुझे यह लिखने मे तनिक भी सकोच नही है कि मैं भी उन्ही सौभाग्यशाली व्यक्तियो मे हूँ, जिनकी साहित्य-यात्रा का प्रारम्भ महावीर दल द्वारा आयोजित इन्ही कवि-सम्मेलनो से हुआ था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि महावीर दल के द्वारा तुलसी-जयन्ती के अवसर पर आयोजित सन् १९३५ के एक कवि-सम्मेलन मे ही सर्वप्रथम मुझे अपनी रचना के लिए पुरस्कृत किया गया था। इस नाते मैं हापुड नगर और उसकी सास्कृतिक सस्था 'महावीर दल' का अत्यन्त आभारी हूँ।"[1]

यह सन्तोष की बात है कि सुमनजी ने इन भूमिकाओ को लबे-चौडे उपदेश देने का 'प्लेटफार्म' मात्र नहीं बनाया, वरन् इनके माध्यम से सच्चे हृदय से तरुण प्रतिभाओ को आगे बढने का प्रेरक सन्देश दिया है।

३ सी-१४, रोहतक रोड,
करौल बाग, नई दिल्ली ५

१. पृष्ठ सख्या ६

काव्याञ्जलियाँ

सरस्वती-आराधक 'सुमन'

डॉ० हरिशंकर शर्मा

धन्य-धन्य श्री क्षेमचन्द्र जी 'सुमन' सुकवि का सद्जीवन,
धर्म, समाज, देश-सेवा हित किया समर्पित तन-मन-धन।

भारतीय भावों के प्रेरक सत् साहित्यिक साधक हैं,
जननी जन्म-भूमि के सेवक सरस्वती-आराधक हैं।

परमेश्वर की परम कृपा से शुभ वर वेला आई है,
हुए पचास वर्ष के बुधवर, सादर सस्नेह बधाई है।

क्षेमचन्द्रजी, क्षेम-कुशल-युत हो शतायु, प्रभु, वह वर दे,
'सुमन' सुगन्ध प्रसारित हो नित भव्य-भावनाएँ भर दे!

सुवासित सुमन

श्री सेवकेंद्र त्रिपाठी

सात्विक प्रवृत्तिपूर्ण, तात्त्विक विवेचना में,
श्रद्धा-भक्ति-भाव-भरे वन्दन नमन है।
छवि के महीप हैं, समीप सत् स्नेहियों के,
पवि-से अनीतियों को दुर्जन दमन है॥
ज्ञान-गरिमा में, अणिमा में महिमा की सिद्धि,
जन्म-भूमि भाषा-हेतु सतत श्रमन है।
'क्षेम' के क्षमाधर हैं चन्द्रधर कृतकीर्ति,
सुमन-सुवासित ये 'सुमन' सु-मन है॥

सेवक-सदन, झाँसी (उ०प्र०)

कमनीय सुमन

श्रीमती रामकुमारी चौहान

भावभरे साहित्य-सिन्धु मे, सफल सीप के मोती।
वीणापाणि सरस वीणा के स्वर मे तुम्हे संजोती॥

क्षिति के क्षमता-भरे पुत्र तुम, 'क्षमचन्द्र' वरदानी।
वाणी के सेवक सपूत तुम, भाषा के अभिमानी॥

सत्य-साधना के सुर तरु के, तुम सुकुमार 'सुमन' हो।
देश-प्रेम की दिव्य ज्योति के तुम ज्योतित त्रिभुवन हो॥

अक्षर-अक्षर मे समाज का, रम्य रूप चमकाया।
मनमाना वरदान दे गई, ललित लेखनी माया॥

तुम सघर्षों के प्रतीक, सचित माता के धन हो।
मजुलता की सुरभित सुषमा के कमनीय 'सुमन' हो।

तुम साहित्य-गगन के पावन, राका-शशि हो दुख-हर।
सुघर कला की शुभ सुकीर्ति हो, कवि हो, काव्य-कलाधर॥

महारानी लक्ष्मीबाई का मदिर
झाँसी (उ० प्र०)

कोमल सुमन

श्री सुभाषी

निज उपवन सो कढि जन-जन-मन-वास बनायो।
सीमित बन्धन तोरि, सुजस परिमल बगरायो॥
बने सहज हिय-हार सुमन बुध-जन-आकरसन।
तव दरसन मनहरन करत उत्फुल्लित कानन॥
परस सरस नवनीत-से मीत मधुर सहृदय सुजन।
'क्षेमचद्र' मानव-महत् 'सुमन' सहस कोमल सुमन॥

दैनिक 'नवप्रभात', आगरा

सुमन बनें वरदान

श्रीमती विद्यावती मिश्र

बन्धु आपका सुना बहुत दिन पहले से था नाम।
किंतु एक दिन हुए आपके दर्शन जब सुख-धाम ।।

तब था ऐसा लगा, वही ज्यों मरु में मलय बहार।
भग्नप्राय बोझिल नौका हो पहुँच गई उस पार ।।

मन से मृदुल, भाव से कोमल, वाणी में मुस्कान।
जैसे तममय निशा चीरकर उतरा स्वर्ण विहान ।।

दर्शन पाकर हुए आपके हम आनंद-विभोर।
क्षेमचन्द्र हैं आप हमारे लोचन बने चकोर ।।

विद्या, ज्ञान सृजन के साधक आराधक हैं मौन।
ऐसा शांति-सुधा का दाता स्नेह-प्रदाता कौन ।।

अर्द्धशती का पर्व आपका मन में है उल्लास।
जैसा विगत विमल, वैसा हो भावी का इतिहास ।।

पथ के शूल सुमन बन जाएँ, सुमन बनें वरदान।
प्रति क्षण, प्रति कण, करे आपका मंगल नव उत्थान ।।

करें आप दूरस्थ बहन की भावांजलि स्वीकार।
लहराए नित कीर्ति-पताका खुले विमल यश-द्वार ।।

२२३ राजेन्द्रनगर, लखनऊ

'काव्य-कला के धन—क्षेमचन्द्र सुमन'

श्री ताराचन्द पाल 'बेकल'

काव्य-साधना, कर्त्तव्यों की ललित क्रोड में चमकी।
व्यस्त, मस्त जीवन की चाहें नित्य विभा-सी दमकी॥

कभी न थकते, कभी न रुकते, पन्थी अपने पथ के।
लाए अनगिन रत्न, साध का सागर नित मथ-मथ के॥

क्लेश-कंपिता हिन्दी का दुख देख दुखी हैं मन में।
धधका करता अन्तर, लखकर उड़ती धूल गगन में॥

नहीं मगर निज पथ से विचलित, शोध सत्य का करते।
क्षेमचन्द्र साकार रूप से भाषा-भाव सँवरते॥

मन में जो है वही वचन में—कार्य रूप में परिणत।
चद्रहास-सी काव्यरूपता ज्योतित जीवन-अभिमत॥

द्रष्टा सत्य, शिव, सुन्दर के, पूरित अपनेपन से।
सुस्थिर दृढता, लेखन शली, आंके सुमन, सु-मन से॥

महाकार्य के सम्पादन में रुचि लें युगों-युगों तक।
नव्य कामना, भव्य भावना, शोभित दृगों-दृगों तक॥

७५, परकोटा
झाँसी (उत्तर प्रदेश)

सुमन के प्रति

श्री भगवतीप्रसाद 'कल्पेश'

सुमन सु-मन से सुमन-से साहित-तरुवर-हृस ।
वास-सुवास पसारि जग, सुखद सुमन अवतंस ।।

सुमन सु मन से सुमन लहि, झूमे कविता-वृन्त ।
साहित-हित, सेवा-हितै, अरपित ह्वै निश्चिन्त ।।[1]

विज्ञ अभिनन्दन तुम्हारा

श्री भगवतीशरण 'दास'

क्षेम, योग, वहन करे जो लोक का, वह मन तुम्हारा ।
चन्द्र-सा शीतल, सुधामय, शर्वप्रद जीवन तुम्हारा ।।

सुमन हिन्दी-वाटिका के मधुर माधव के प्रकाशी ।
क्षेमचन्द्र सुमन स्व युग के, हृदय के तुम हो निवासी ।।

उदित रवि, मंगल-विधायक, धरा के वरदान वर हो ।
नई आशा के प्रकाशक, भारती के भव्य स्वर हो ।।

प्रति किरण आलोकपति की करे नित वन्दन तुम्हारा ।
युगों तक करते रहेंगे, विज्ञ अभिनन्दन तुम्हारा !

२०१ पुरानी पलटन
झाँसी (उत्तर प्रदेश)

१ 'कवि-कोविद-क्लब' लखनऊ की ओर से 'सुमन' जी के सम्मान में १३ नवम्बर '६३ को श्री दुलारेलाल भार्गव के निवास-स्थान पर आयोजित अभिनन्दन-गोष्ठी में पठित ।

'सुमन' : एक भावाञ्जलि

श्री शैलेन्द्र गोयल

तुम
सिर्फ सुमन नही
सु-मन भी हो,
तुम गध ही नही
छद भी देते हो,
पराग ही नही लुटाते
राग भी सुनाते हो।
और
तुम्हारी गध
तुम्हारे पराग के इर्द-गिर्द
शूलो के दर्प दश के पहरे नही हैं,
तुमने अपने सृजन और जीवन को
अलग अलग सांचो मे नही गढा है,
बाहर-भीतर समान
तुम एक व्यक्ति—
एक अभिव्यक्ति हो।
तुमने जीवन को
रोग समझकर आंसू नही बहाए,
ना ही भोग समझकर
उसका पशुता की हाट मे
नीलाम किया,
वल्कि साधना की चिलचिलाती धूप मे
उसे योगी की तरह तपाया है,
और उसके छद को
पूरी निष्ठा से रचा,
पूरी मस्ती से गाया है।

सोडा का कुआ, ग्वालियर

'सुमन ! तू मुस्कराये'

श्री विमलचन्द्र 'विमलेश'

प्रात की पहली किरण के साथ तू भी गुनगुनाए !

बधु ! तूने गीत गाये—
स्वर्ग को भू पर सजाने !
बधु ! तूने गीत गाये
हर दुखी जन को हँसाने !
आग हो कुछ कम जगत् मे
स्नेह लतिका लहलहाये !
अश्रु सूखे आँख से—
हर होठ हँसता गुनगुनाये !
तू रहा जलता मगर जग को रहा ज्योतित बनाए !
प्रात की पहली किरण के साथ तू भी गुनगुनाए !

जानता हूं जिन्दगी की
राह काँटो से भरी है।
हर सुबह जैसे यहाँ
सघर्ष के स्वर से घिरी है ॥
द्वार चिकने पत्थरो के
सीढियाँ चढना मना है।
आदमी बुत से यहा
हर ,मोड बेहूदा बना है
और तू बैठा रहा युग-प्रीति के सपने सजाए !
प्रात की पहली किरण के साथ तू भी गुनगुनाए !

राष्ट्रभाषा के सजग स्वरकार !
तेरा आज स्वागत !
नई पीढी के सबल आधार !
तेरा आज स्वागत !

स्वस्थ आलोचक, सुरुचि-भंडार !
तेरा आज स्वागत !
स्नेहियों के स्नेह के आगार !
तेरा आज स्वागत !
कलम के मजदूर ! तेरा श्रम नई खेती उगाए !
प्रात की पहली किरण के साथ तू भी गुनगुनाए !

हर दिवस, हर प्रहर तुझको—
राह साहस की दिखाए !
और आकर रात तुझको—
लोरियां गाकर सुलाए !
पवन नटखट ले सुरभि तेरी—
जगत् में बांट आए !
रुपहला आकाश यह—
तेरी दिशा जी-भर सजाए !
कामना मेरी सदा—'अग्रज सुमन ! तू मुस्कराए !'
प्रात की पहली किरण के साथ तू भी गुनगुनाए !

सी ३ ई, बसन्त लेन
नई दिल्ली १

अभिनन्दन

कुमारी कमलेश सक्सेना

साहित्यिक वाटिका निराली
कहलाई जिससे नन्दन वन !
उसी 'सुमन' का सरस्वती के
वरद पुत्र करते अभिनन्दन !!

जिसके मुख पर ओज भरा है
अधरों में माधुर्य मनोरम

चितवन मे पावन प्रसाद है
भृकुटी मे वक्रोक्ति मधुरतम
अलकार से आभूषित जो
रीति गठन जिसकी मतवाली
है ध्वनि का लावण्य अनूठा
परम रसीली रस की प्याली !
केश व्यजना, वचन लक्षणा—
रूप अतुल अभिधा का आँगन
उसी काव्य के रस-लोलुप का
आज सभी करते अभिनन्दन !

है निबध मे गुम्फित जीवन
आलोचना मुखर है जिसकी
अध्यापन की कला मनोरम
अपना आचल देकर खिसकी
गद्य-गीत जिसके मन-भावन
रेखा-चित्र निराले होते
देख कल्पना की उडान को
सभी भार विस्मय का ढोते
जिसकी सुरभि-सुधा से सिंचित
सम्मानित साहित्यिक प्रागण
उसी 'सुमन' का सरस्वती के
वरद पुत्र करते अभिनन्दन !

नही सिर्फ कल्पना - परो से
नाता, नही पलायनवादी
गाधीजी के आवाहन पर
जेल गए लेने आजादी
स्वय बनाई अपनी मज़िल
देख-देख सब हुए चकित भी
किया नवोदित प्रतिभाओ को
विकसित, पुलकित, आलोकित भी

'कथनी - करनी एक सरीखी'
जो कहते करते नेता बन
इसीलिए इस दिव्य 'सुमन' का
आज हो रहा है अभिनन्दन ।

सुमन-'मल्लिका' के सौरभ से
सुरभित की जिसने फुलवारी
जिसने 'वंदी-गान' सृजन कर
महकाई 'कारा' की क्यारी
सदा दुखों से ही जूझा जो
पर - दुख - कातर हो जो रोया
देकर लेना जिसे न भाया
जिसने सब-कुछ अपना खोया
चिंता जिसे न छू तक पाई
जो झरने-सा हँसता प्रतिक्षण
ऐसे हँसमुख, सरल, सुजन का
आज हो रहा है अभिनदन ।

तुम शतायु हो, विचरो निर्भय
जीवन का ज्योतित हो कण-कण
ज्योति-कणों की इस आभा में
होना रहे सदा अभिनन्दन ।

संचालिका
कमलेश बालिका विद्यालय
बाजार सीताराम, दिल्ली ६

तुम सुमन हो

श्री प्रेम 'निर्मल'

आँधियो ने द्वार जब-जब—
भी तुम्हारा खटखटाया,
कर उठे सत्कार को, पर-
शीश उन्नत झुक न पाया,
तुम हिमालय के शिखर-से,
किन्तु सागर-से गहन हो।
तुम सुमन हो।

तुम बढे पथ मे लिये बस,
आस्थाओ का सहारा,
नित सँवारा हर व्यथा को
कटको को भी दुलारा,
तुम स्वय उदात्त श्रम हो,
पथ की अनथक लगन हो।
तुम सुमन हो।

हर समस्या से सुलझकर-
भी स्वय उलझे रहे हो,
फूल की कब कामना की
साथ झझा के बहे हो,
हर भटकती नाव के तुम,
एक अपने ही पुलिन हो।
तुम सुमन हो।

हर उदासे दीप को नित-
हो दिया है स्नेह-सबल

स्वर उभारे, घाटियों से-
लौट आए जो सभी कल,
त्याग की साकार प्रतिमा,
स्नेह की उज्ज्वल किरन हो !
तुम सुमन हो !

हिन्दी-साहित्य-परिषद्
हापुड़ (मेरठ)

'सुमन' हमारौ यह सुमन-सरीखौ है !

श्री राजेश दीक्षित

भारती-भवानी के पुनीत पद-पकज में,
भावना-विभोर यह नमन-सरीखौ है।
जीवन की कोटि-कोटि जटिल वनीन बीच,
सौरभ सौं सोभित है, चमन-सरीखौ है ॥
'राजेश' गुनी है, गुन-गाहक बखानौ भूरि,
औगुन की ओटन में अमन-सरीखौ है।
तन कौ तपस्वी और मन कौ मनस्वी महा,
'सुमन' हमारौ यह सुमन-सरीखौ है ॥

'क्षेम' दई विधि, 'चन्द्र' सौंप्यौ शिव-शकर ने,
'सुमन' सुहाने बीच विष्णु सरसत हैं ॥
नाम ही के बीच तीनों देवता विराजे आइ,
मानो शुद्ध ब्रह्म के सरूप दरसत हैं ॥
कोटि-कोटि नेहिन के सुखद-समाज बीच,
क्षेमचन्द्र 'सुमन' सुधा-से बरसत हैं।
'राजेश' निहारे अभिनन्दन के साज देखि,
हियरा हमारे रहि-रहि हरसत हैं ॥

महोली की पौर,
मथुरा

क्षेमचन्द्र 'सुमन' के प्रति

श्री सुधेश

हिन्दी के उपवन मे
पहला कदम रखा जब
कुछ कलियो फूलो से
आँखें चार हुई
माथे पे कुछ को बिठाया
औ बनाया गले का हार
कुछ मे काँटे-ही-काँटे थे
खुशबू का नाम नही
कुछ थे कागजी फूल
मैंने उनको भी सहा
सराहा पल-भर !
तुम भी हो इक सुमन,
कौन-से सुमन ?
यही मैं सोच रहा हूँ।
तुम गुलाब तो नही
क्योकि उसमे काँटे है
तुम केवल सुगन्ध हो उसकी,
तुम गेंदा भी नही
क्योकि उसका पीलापन
नही तुम्हारा भाग तनिक-सा,
चम्पा और चमेली भी तुम नही
कि जो विषधर को पालें,
तुम नरगिस कैसे हो सकते हो
जबकि तुम्हारी आँखें
तीर नही बरसाती
प्यार लुटाती,
तुम सरसिज भी नही

कि जो कीचड मे पलता
क्योंकि तुम्हे कीचड़ से नफरत ।
तुम वह सूर्यमुखी हो
जो जगल मे जन्मा
किसी वृक्ष की छाया से दूर
जिसे झझावातो ने पाला
ज्यो-ज्यो धूप खिली
उसका रग निखरा
इधर-उधर आस-पास
जादू-सा बिखरा !
नाम के, रूप के, सुमनो की कमी नही
जो मन से सुमन हो
सचमुच तुम ऐसे सुमन हो !

१/१ डी० एस० प्रेमनगर
तिलक नगर, नई दिल्ली १८

क्षेमचन्द्र-युग

श्री भारतभूषण अग्रवाल

मध्य-युग मे हुआ है जैसे हेमचन्द्र-युग
गाधी-युग मे हुआ है जैसे प्रेमचन्द्र-युग
हिन्दी के गीतकार
करते हैं यह पुकार :
'प्रभु, नवीन युग को बना दो क्षेमचन्द्र-युग !'

साहित्य अकादेमी
रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली १

पत्रावलियाँ

आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'

पोद्दार रामावतार 'अरुण'

बधुवर श्री सुमनजी,

यह गौरव की बात है कि दिल्ली के साहित्यिकाओं की ओर से आपके पचासवें जन्म दिन के शुभ अवसर पर आपके प्रति प्रेम प्रकट करने के लिए एक ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। आज के युग मे तीस वर्षों तक शुद्ध साहित्य-सेवा अपने-आपमे निर्मल सारस्वत पूजा है। हिन्दी के आप अनासक्त साहित्य-साधक हैं इस सत्य की अवहेलना कौन करेगा? आपकी व्यापक साहित्य-साधना को देखकर ही, कई वर्ष हुए—मैंने आपके नाम के पूर्व 'आचार्य' शब्द जोडकर पत्र लिखा था। प्रात स्मरणीय स्वर्गीय श्री शिवपूजनसहायजी के नाम के पूर्व भी अपने 'विद्यापति' प्रबंध काव्य मे सर्वप्रथम 'आचार्य' शब्द मैंने लगा दिया था और इस कारण उनका मधुर क्रोध मुझे पीना पड़ा था! किन्तु भारती की कृपा ऐसी हुई कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद शिवपूजनबाबू हिन्दी ससार के सर्वमान्य 'आचार्य' माने गए। अज्ञात प्रेरणा से की गई मेरी बाल-चेष्टा फलीभूत हुई। और बहुत दिनो के बाद एक दिन अति विनम्रता मे जब मैंने श्रद्धेय शिवपूजनबाबू से कहा कि "अब तो सब लोग आपको 'आचार्य' ही कहने लगे हैं तो वे अनासक्त भाव से मुस्कराकर अपने सामने रखी हुई पाण्डुलिपि का सशोधन करने लगे।

आपके २३ नवम्बर, १९६५ के पत्रोत्तर से ज्ञात हुआ कि सर्वप्रथम मैंने ही आपके नाम के पूर्व 'आचार्य' शब्द जोडने का प्राण प्रसन्न साहस किया था। यह सच मानिए, आप प्रत्येक दृष्टि से आचार्य के योग्य हैं, क्योंकि आप मात्र साहित्यकार-सम्पादक ही नहीं एक उदात्त और विनम्र मानव हैं। यदि मैं आपको 'अजातशत्रु' कहूँ तो इस कथन मे कोई अत्युक्ति नहीं। आप सद्भावना और सज्जनता के प्रतीक हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, आपमे अहं का लेश-मात्र भी नहीं। आपकी अधखिली मुस्कान मे निश्छल आत्मा की सुगन्ध है। आपकी रसभरी आँखो मे सहृदयता का अकृत्रिम अमृत है। आपकी सुमधुर वाणी मे अहिंसा का सगीतात्मक ओज है। नख से शिर तक एक सुदिव्य करुणा का साम्राज्य है, पर उस करुणा मे प्रफुल्ल मन की लालिमा भी है। एक साथ इतने पवित्र गुणो का सम्मिलन आज के युग मे बहुत कम—बहुत कम देखने को मिलता है। मुश्किल से दस बीस ऐसे साहित्यकार आज जीवित हैं जिनके पास दूसरो के लिए प्रेम और करुणा की 'सारस्वत' मर्यादा है। अकारण भी आप पत्र लिखकर दूसरो की खोज-खबर लेते रहते हैं। याद है, जब आप स्वनिर्मित भवन मे आए थे, तब भी आपने निश्चित ठिकाने की जानकारी के लिए मुझे पत्र लिखा था और जब-जब मुझे ग्रन्थ-पुरस्कार मिले, आपने प्रसन्नता के साथ बधाइयाँ भेजीं। ऐसा लगता है, निखिल हिन्दी-जगत् आपका आजीवन अभिन्न परिवार ही रहा है।

आपके अर्धशती-उत्सव के अवसर पर प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ के लिए मुझे एक स्वतन्त्र लेख भेजना चाहिए था, किन्तु आपके निर्मल व्यक्तित्व के दर्पण के सामने जब मैं खड़ा होता हूँ तो अपनी ही आकृति दीख पड़ती है। आपके शुभ स्मरण-पथ पर मेरी अपनी ही स्मृतियां दौड़ने लगती हैं, क्योंकि आपसे अभी तक केवल एक बार ही साक्षात्कार हो सका है। पर, उस प्रथम मिलन में ही आपने जो स्नेह-दान दिया वह अभी तक अक्षुण्ण है। एक बार ही क्या? उस बार—१६५४ ई० में दिल्ली में हम लोग बार-बार मिलते रहे।[1] याद आ रहे हैं वे दिन

वसन्त-पंचमी का अवसर था। दिल्ली में शीत का प्रकोप कम हो गया था। दोपहर में कोट उतार देने का मौसम आ गया था। किन्तु, सुबह में हवा के तीर निकल पड़ते थे और शाम में शिमला की सुधि आती थी और रात में मेघ घिरने के कारण कभी गर्मी और कभी पवन-प्रवाहित सर्दी महसूस होती थी।

नई सड़क (दिल्ली)-स्थित श्री रामचन्द्र गुप्त के 'रीगल बुक डिपो' में आप स्वयं मुझे खोजने आए थे, क्योंकि उसी दिन दैनिक पत्रों में यह समाचार निकला था कि मैं यूरोपीय देशों के भ्रमण के बाद 'विदेह' प्रबंधकाव्य-प्रकाशन के क्रम में दिल्ली आकर उक्त स्थान पर ठहरा हूँ।

कुछ क्षण आप मुझे देखते रहे, क्योंकि मैं श्री कुमुद विद्यालंकार के साथ चाय पी-पीकर यौवन-सुलभ अट्टहास में निमग्न था। पर ज्यों ही परस्पर परिचय हुआ हम लोगों की भारतीयता नव-वधू की भांति झुक गई थी और आंखों में सांस्कृतिक शिष्टता छा गई थी। शील-सौरभ-भार से जब अति नम्रता की डाल बहुत झुककर सहसा टूट गई तो लगा आप मेरी अनेक काव्य-पुस्तकों से परिचित हैं। 'सूरश्याम' की आपने विशेष चर्चा की थी—

तुम नित नवीन सपने दो, मैं संसार बना लूँगा!

या

मैं स्वप्न सजाता हूँ लेकिन शृंगार तुम्हीं तो हो!

या

रूप की रात हँसती चली आ रही, बीन के तार छू दो जरा प्यार से!

या

बुला लेगी तुम्हें मेरी साधना!

ऐसा लगा कि दिल्ली में एक साहित्यिक पूज्य अग्रज मिल गया। किस-किस समय आकाशवाणी से मैंने कुछ रचनाओं का पाठ किया था, यह भी आपको ज्ञात था! किस-किस पत्र-पत्रिका में मेरी अनेकानेक रचनाएँ छपीं, इसकी जानकारी भी आप रखते थे।

१. अभी पिछले दिनों जब अरुणजी 'पद्मश्री' के सम्मान से अभिषिक्त होने दिल्ली पधारे थे तब सुमनजी से उनकी एक भेंट और हो गई है।

आत्मीयता के अन्तराल मे जिस सज्जन और निष्कपट व्यक्तित्व का मैंने उस दिन दर्शन किया वह आज भी प्रणम्य है। साहित्यकार जब देवत्व प्राप्त करता है तो उसके साथ सदा स्वर्ग की पवित्रता चलती है और लेखक जब अपने आपमे घृणा को जन्म देता है तो उसके नारकीय व्यक्तित्व से सब काँपने लगते है। महाप्राण निराला को परिस्थिति ने बाह्य रूप से कुछ उग्र बना दिया था पर सैकडो व्यक्ति साक्षी है कि उनकी व्यक्तिगत सहृदयता अतुल थी। महाकवि पन्तजी अपने स्निग्ध स्वभाव के कारण स्वय नवनीत की तरह कोमल हो गए। कामायनीकार प्रसादजी तो विनम्रता की प्रतिमूर्त्ति ही थे। महान् कला शिल्पिनी महादेवीजी मे भी उदार करुणा मैंने स्वय देखी है। राष्ट्रकवि दिनकरजी सदा से ओजस्वी रहे है पर अत्यन्त निकट स देखने पर उनम भी शिशु स्वभाव की प्रचुरता है, और बच्चन जी की सज्जनता स्वय अपने आपम सजीव है।

आपको स्मरण होगा कि एक दिन जब मै आपके साथ नई दिल्ली घूमने निकला तो दिन-भर सुपरिचित साहित्यकारो की ही चर्चा आप करते रहे। ऐसा लगा कि हिन्दी-उद्यान के प्रत्यक पुष्प वृक्ष की चिन्ता आपके मन म स्वाभाविक रूप स रहती है। आपके जीवन मे एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण है। आप किसी क अवगुण को नही देखते। इस प्रकार आपमे महामना माधवजी के समान सरल मृदुता दृष्टिगोचर हुई। अपनी कृतियो से अधिक दिव्य जब कृतिकार हो जाता है तो अनायास श्रद्धा उमडने लगती है।

हिन्दी-साहित्य के तीन आधुनिक महान् आचार्यों—सर्वश्री प० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प० नन्ददुलारे वाजपेयी और डॉ० नगेन्द्र के पुण्य दर्शन-लाभ का सौभाग्य मुझे मिल चुका है। इन महापुरुषो का आचार्यत्व निगूढ साधना का प्रतीक है। किन्तु, सुमनजी, आपका व्यक्तित्व सहृदयता से सराबोर है। आपने ऊँचाई और गहराई से अधिक विस्तृत हरियाली की साधना की है। जब यह प्रश्न उठेगा कि आचाय शिवपूजन सहाय ने हिन्दी को कौन महान् ग्रन्थ दिया तो जिज्ञासुओ को क्षण-भर मौन हो जाना पडेगा। पर, जब यह देखा जाएगा कि शिवजी साहित्य के लिए शहीद हो गए तो बडी-बडी कृतियाँ उनकी अमिट सुधि के समक्ष श्रद्धानत हो जाएँगी। इसी प्रकार आपके लिए भी मेरे हृदय मे प्रतिबिम्बित धारणा है।

स्पष्ट कहता हूँ, मैं आपकी सभी रचनाओ से परिचित नही हूँ, पर आपसे मै कदापि अपरिचित नही। क्षेमचन्द्र 'सुमन' को मैंने देख लिया है और मैंने यह जान लिया है कि वह साधारण व्यक्ति नही। उसकी साधुता स्वय साहित्य है। उसकी मृदुता स्वय कविता है।

राजस्थान साहित्य अकादमी और उत्तर प्रदेश सरकार मे 'बाणाम्बरी' (महा-काव्य) पर जब मुझे पुरस्कार मिला तो अत्यन्त मधुर कवि श्री बच्चनजी ने अपने बधाई-पत्र मे मुझे लिखा कि "उदयपुर से लौटती बार दिल्ली अवश्य आइए।" मैंने ऐसा ही किया, किन्तु बच्चनजी रोग शैया पर पडे थे। उनकी कला निपुण वधू सेवा मे अति तत्पर

थी। मुझे ऐसा लगा अंग्रेजी का नोट्स बीमार है और···उस करुण अवस्था में भी बच्चन-जी ने जो सत्कार किया, वह बच्चनजी ही कर सकते थे। हाल ही में उनका सम्मान दिल्ली के सभी साहित्यकारों ने किया था और किसी ने ईर्ष्यावश उनके ललाट पर तिलक लगाने समय कुछ ऐसा जादू कर दिया था कि भृकुटियों के मध्य में फोड़ा निकल आया था।··· सुमनजी आप तो अजातशत्रु हैं। आपकी सम्मान सभा में दिल्ली में ऐसी कोई घटना न घटे—यह मेरी आन्तरिक शुभकामना है।

साहित्य अकादेमी के कार्यालय (रवीन्द्र भवन) में जब मैं आपसे मिलने गया तो उस दिन आप छुट्टी पर थे। पर, अति विनम्र बंधुवर भारतभूषणजी ने आपके अभाव में भाव भर दिया। लगभग एक घंटे तक उनसे साहित्यिक चर्चा हुई। मेरा छोटा भाई पोद्दार निर्मलकुमार बच्चनजी और भारतभूषणजी से इतना प्रभावित हुआ कि घर पहुँच-कर आस-पास के सभी साहित्यिकों से उनकी बातों को दुहराता रहा। दिल्ली में मुझे तुरत वापस आ जाना था इसीलिए श्रद्धेय नगेन्द्रजी के दर्शन से वंचित रह गया। उनके ग्रन्थोत्सव के अवसर पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी भी आने वाले थे। बच्चनजी ने मुझे रुक जाने को कहा भी, पर मैं विवश था। वहाँ प्रसिद्ध सम्पादक श्री बाँके बिहारी भट-नागर, श्री गोविन्दप्रसाद केजरीवाल और श्री बालस्वरूप राही से मिलकर प्रसन्नता हुई।

उसके बाद जब किसी कार्यवश आप पटना आने लगे तो आपने मुझे भी इसकी सूचना दी, पर रुग्णता के कारण मैं आपसे नहीं मिल सका। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि बंधुवर श्रीरंजन सूरिदेव और रामनारायण शास्त्री की प्रेरणा से पटना के सम्मेलन-भवन में आपका यथोचित सम्मान किया गया। सुना, उस अभिनन्दन-गोष्ठी में सब—श्रद्धेय श्री छविनाथ पाण्डेय, माधवजी आदि भी उपस्थित हुए। यह भी सुना कि आप श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी से मिलने के लिए मुजफ्फरपुर तक आए।

तो अब समाप्त करता हूँ यह पत्र। मेरे सामने आपकी प्रसिद्ध संकलन-पुस्तक 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' है। उसमें प्रकाशित मैं अपनी ही रचना दुहराकर आपका सप्रेम स्मरण करता हूँ

तुम जहाँ हो वहीं हँस रही नीलिमा
तुम जहाँ हो वहीं है शरद्-पूर्णिमा!

शेष कुशल है। आशा है, आप स्वस्थ-सानंद हैं। यद्यपि मैं वर्षों से अस्वस्थ हूँ पर 'बाणाम्बरी' के बाद ऋग्वैदिक परिवेश में 'विशाल भारत' नामक नवीन महाकाव्य के सृजन में लगा हूँ। सरस्वती की कृपा हुई तो कुछ वर्षों बाद इस कृति से आपकी—और सबकी आँखें अवश्य तृप्त होंगी।

कवि निवास,
समस्तीपुर (बिहार)
११ दिसम्बर, १९६५

आपका अभिन्न,
पोद्दार रामावतार 'अरुण'

श्रेष्ठ, उपयोगी एवं संग्रहणीय जीवन्त साहित्य से सम्पन्न-समृद्ध सुमनजी का निजी पुस्तकालय सन् १९५५ की यमुना की भीषण बाढ़ में समा गया। सुमनजी की तीस वर्ष की कमाई पानी में बह गई। दिलशाद कॉलोनी-स्थित उनके घर में ६-६ फुट पानी भरा हुआ था। वह अपनी वाङ्मयी पूँजी को छाती से लगाये आठ-दस दिन तक अकेले ही मकान की छत पर बैठे रहे। जल में डूबे हुए साहित्य में देश के अनेक प्रबुद्ध पत्रकारों, साहित्यकारों और समाज-सेवियों के वे असंख्य पत्र भी थे, जो युग-चेतना के विकास और कुण्ठाग्रस्त भावनाओं एवं चिंतन के नये चरण के परिचायक थे। ऐसे हजारों पत्र पानी में गल गए, जो साहित्य और व्यक्ति के इतिहास और जीवन-दर्शन के दस्तावेज के समान थे। उस अनमोल विपुल निधि में से जो बचा लिये गए हैं उनमें से कुछेक चुने हुए पत्रों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। ये पत्र श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के व्यक्तित्व के 'वातायन' हैं, मात्र इनसे ही सुमनजी के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उनकी शक्ति, आस्था एवं लोकप्रियता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

निर्वासन से आँजी हुई यातना

•

श्री उदयशंकर भट्ट

कृष्णा गली, लाहौर
३–१२–४३

प्रिय सुमनजी,

कृपा-पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ। हाँ, किताब मैं कई बार लिखकर भी नहीं भेज सका। यह मेरा आलस्य है, और कुछ घर के झंझट भी। इधर काम की व्यग्रता रही, कुछ स्वास्थ्य भी ढीला रहा। अब भी दिल की धड़कन और गिरावट-सी रहती है। इसीसे किसी बात में न उत्साह है, न मन लगता है। पत्रों का उत्तर देना भी दूभर हो जाता है। अब मैं पूर्ण रूप से सनातन धर्म कालेज जाने लगा हूँ। स्कूल से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'माधुरी' में क्या लिखा है, मुझे नहीं मालूम, क्योंकि 'माधुरी' मेरे पास नहीं आती। 'सरस्वती' वाले कभी भेज देते हैं, कभी नहीं आती। 'वीणा' से झगड़ा हो गया है, सो वह भी दो मास से बन्द है। कुछ इच्छा भी नहीं है कि पत्र आयें ही। 'हंस' कभी-कभी दर्शन देता है। कुछ लेटर-बक्स के खुले रहने से जो पत्र आते हैं सो गायब हो जाते हैं। पिछले छः मास से सोच रहा हूँ, ताला लगा दूँ। पर ताला लाऊँ तब न ? अब मैं निश्चय ही दो-चार दिन में पुस्तकें भेजूंगा। हिन्दी भवन में दे आऊँगा, वे भेज देंगे। प्रभाकर दिल्ली लग गया था १३१ रुपये माहवार पर, पर बी० ए० में फेल हो गया इसलिए नौकरी छुड़वाकर बुला रहा हूँ। वह नौकरी पक्की नहीं है, लड़ाई तक है। इस इतवार को गुजरानवाला में कवि-सम्मेलन है। चिरंजीत सभापति होकर आ रहा है। शायद यहाँ से 'करुण' वहाँ जायें। मैंने तो मना कर दिया। मेरा उपन्यास समाप्ति पर है। शायद सरस्वती प्रेस से छपे। बातचीत हो रही है। एक नाटक भी 'मुक्ति पथ'। छुट्टियों में मैं कलकत्ता-कवि-सम्मेलन में गया था। वह 'भाईचारा' कहानी, जो मैंने यूनिटी प्रोडक्शन के लिए लिखी थी, सिनेमाघर में आ रही है। तुम वहाँ यदि सुविधा हो तो कविता की बजाय कुछ कहानियाँ या उपन्यास लिखो अथवा निबन्ध। केवल कविता कुछ नहीं है। कविता का मार्ग भी कुछ अवरुद्ध हो गया है। इसमें विशेष प्रतिभा की आवश्यकता है। मैं साहित्य-रत्न का परीक्षक

भी इस साल था मौखिक रूप से। यदि मैं पत्र का उत्तर न दे पाऊँ तो बुरा न मानना। मेरा मन ठीक नहीं रहता। सबसे यथायोग्य—

तुम्हारा
उदयशंकर भट्ट[1]

श्री विचित्रनारायण शर्मा

श्री गांधी आश्रम संयुक्त प्रांत

प्र० का०—मेरठ
संख्या ४७५७

शाखा प्र० का० मेरठ
ता० जन० २१, ४३

श्री क्षेमचन्द्रजी 'सुमन'

प्रिय भाई,

आपका कृपापत्र १३ जनवरी का मिला। यदि आपके ऊपर सरकार ने बैन लगा रखा है तो आपको सरकार से ही अपने और आश्रितों के भरण पोषण के लिए कहना चाहिए और यदि वह कुछ नहीं करती तो आपको स्वयं ही अन्य मार्ग चुनना चाहिए या तो भूखा मरने का, या फिर बैन तोड़ने का।

हम यह नहीं चाहते कि हमारे कार्यकर्ता पराधीनता का अनुभव करें और स्वतन्त्रता पूर्वक किसी कार्य का किसी स्थान पर सम्पादन भी न कर सकें।

अतः ऐसी अवस्था में हम आपकी सेवा से लाभ उठाने में असमर्थ हैं। इसका हमें दुःख है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'
सरस्वती मन्दिर
बाबूगढ़ (मेरठ)

भवदीय,
विचित्रनारायण शर्मा[2]
मन्त्री

१. यह पत्र भट्टजी ने उन दिनों लिखा था जबकि सुमनजी अगस्त-आन्दोलन के सिलसिले में पंजाब की फीरोजपुर डिस्ट्रिक्ट जेल में नजरबन्द थे।

२. पंजाब-सरकार द्वारा वहां से निष्कासित होकर सुमनजी जब अपनी जन्म-भूमि बाबूगढ़ में संयुक्त प्रान्त सरकार के नजरबन्दी बने हुए दैन्य जीवन बिता रहे थे, उस समय उन्होंने गांधी आश्रम के मन्त्री श्री विचित्रनारायण शर्मा के पास पत्र लिखकर उनसे नजरबन्दी काल तक के लिए कोई काम देने की प्रार्थना की थी, क्योंकि सुमनजी के गांव में गांधी आश्रम का खादी-उत्पादन-केन्द्र था।

श्री मुकुटबिहारी वर्मा

हिन्दुस्तान
पो० बा० न० ४० नई दिल्ली
१४-६-४४

प्रिय सुमनजी,

३१ अगस्त का विस्तृत पत्र समय पर मिल गया था। उत्तर में विलम्ब से आपको खयाल होना स्वाभाविक है कि मैंने उसकी फिक्र नहीं की, किन्तु यह बात नहीं है। आपके साथ जो बीत रही है उस पर किसी भी पत्रकार की आपके प्रति सहानुभूति ही हो सकती है। किन्तु काम किए बगैर सहानुभूति का कोरा इजहार मैं नहीं समझता कहाँ तक उचित है! अतः सहानुभूति-प्रदर्शन से पहले काम करना ठीक समझा। आपका मामला संक्षिप्त रूप में अंग्रेजी में तैयार कराकर 'लैटर्स टू दि एडीटर' के कालम में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (१४ सितम्बर) में निकलवा दिया है—कटिंग प्रेषित है। हिन्दुस्तान के लिए नजरबन्दों पर अग्रलेख तैयार हो गया है, जिसमें आपके मामले का विशेष रूप से उल्लेख है। एक-दो दिन में जिस दिन जायगा आपको डाक-अंक की कापी भेजूंगा। मैं नहीं कह सकता कि इस सबका सरकार पर असर होगा या नहीं, किन्तु इस सम्बन्ध में हमारे करने लायक जो काम हो उसके लिए हम तैयार हैं। यू० पी० के पत्रों 'आज', 'संसार', 'प्रताप', 'भारत' में भी आप इस सम्बन्ध में लिखें तो ठीक होगा।

शेष कृपा रखिए। आपके लिए और जो सेवा मेरे योग्य हो, लिखेंगे। दिल्ली में आप आये और मैं न मिल पाया, इसका दुःख है। आशा है आप प्रसन्न हैं।

आपका
मुकुटबिहारी वर्मा[१]

१- पंजाब-सरकार द्वारा निर्वासित यू० पी० सरकार द्वारा नजरबंद श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने सरकार द्वारा किये जाने वाले जुल्मों के प्रतिरोध के लिए दैनिक 'हिन्दुस्तान' नई दिल्ली के तत्कालीन सम्पादक श्री मुकुटबिहारी वर्मा से सहयोग, सहानुभूति की जो अपील की थी, उसीका यह उत्तर है।

श्री फीरोज़ गान्धी

आनन्द भवन, इलाहाबाद
२६-११-४४

प्रिय क्षेमचन्द्र सुमनजी,

आपका ता० २४ का पत्र मिला। मुझे अफसोस है कि मैं आपके मामले में कुछ नहीं कर सकता। इसमें उसूली एतराज भी हो सकता है।

क्षमा कीजियेगा।

आपका,
फीरोज़ गांधी
मंत्री राजबन्दी सहायक समिति[1]

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन

१० क्राम्थवेट रोड, इलाहाबाद
१२-११-४४

प्रिय क्षेमचन्द्रजी,

आपका २ तारीख का पत्र मिला। राजबन्दियों के परिवारों को सहायता देने के लिए एक समिति यहाँ अवश्य है। जैसा आपने लिखा है उसके मंत्री श्री फीरोज़ गांधी हैं। परन्तु वह उन परिवारों की सहायता के लिए है जिनके पोषणकर्ता जेल में बन्द हैं। आपके विषय में वह बात लागू नहीं है। सम्भवतः इसीलिए श्री फीरोज़ गांधी ने उत्तर न दिया होगा।

मेरी आपके कष्टों में आपके साथ सहानुभूति है। मैं जिस प्रकार की रोक आपके ऊपर लगाई गई है स्वभावतः उसका विरोधी हूँ और मैं इन रुकावटों को मानने की भी सलाह किसी को नहीं देता। मैं उस सहायता समिति से तो कोई सिफारिश नहीं कर सकता, किन्तु आपकी आवश्यकता देखकर २० रुपये का मनीआर्डर कर रहा हूँ।

शुभैषी
पुरुषोत्तमदास टंडन[2]

श्री क्षेमचन्द्रजी 'सुमन',
सरस्वती मन्दिर
डाकखाना—बाबूगढ़ (मेरठ)।

१. पंजाब-सरकार द्वारा निर्वासित किये जाने पर श्री सुमनजी जब अपनी जन्मभूमि बाबूगढ़ (मेरठ) में आए तो यू० पी० सरकार द्वारा तत्काल नज़रबन्द कर दिए गए। आर्थिक यातनाओं से राहत प्राप्त करने के लिए श्री सुमन ने 'राजबन्दी सहायक समिति' के मंत्री श्री फीरोज़ गांधी से जब सहायता की अपील की तो उन्हें उनकी ओर से कोरा टका-सा जवाब मिल गया।

२. नज़रबन्द और आर्थिक संकटग्रस्त श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजी को पत्र लिखकर अपने प्रति किये जाने वाले अत्याचारों और अपनी दुरवस्था की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया तो राजर्षि टंडन ने वही उत्तर दिया जो एक महामानव के लिए उचित होता है।

जीवन-रस के अन्तरीप

•

श्री किशोरीदास वाजपेयी

कनखल (सहारनपुर)
७-७-३६

प्रिय सुमनजी,

पत्र मिला। सेर भर ब्राह्मी भेज रहा हूँ। 'योगी'जी को भी पत्र लिख रहा हूँ। और कोई सेवा ?

शेष कुशल है। उतरती उम्र मे तराजू पकडनी पडी ? और इसीलिए कलम रख देनी पडी ! विधि-गति ! खैर, कोई बात नही। जीवन सग्राम है। पहले से मन ज्यादा खुश है।

भवदीय
किशोरीदास वाजपेयी[1]

•

श्री सियारामशरण गुप्त

श्रीराम

चिरगाँव (झाँसी)
१७-२-६१

प्रिय भाई क्षेमचन्द्रजी,

'फेमस लव पोयम्स' सम्बन्धी पत्र पहुँचा। जहाँ तक मैं जानता हूँ, मेरी ऐसी रचना शायद ही कोई मिले, जैसी आपको अपेक्षित है। मैं बडो और गुरुजनो के बीच रहा हूँ। ऐसी रचना लिखकर प्रकाशित कैसे कर सकता था जो उनके सामने मैं पढ न सकूँ। काव्य मे 'पत्नी प्रेम' को तो आजकल के धुरन्धर प्रेम ही नही मानते। उन्हे तो बाहर या इधर-उधर ताक झाँक करने मे ही आनन्द आता है। मेरी स्थिति ऐसी है, फिर भी प्रभाकर परीक्षा की एक पाठ्य-पुस्तक मे मेरे उपन्यास अश्लील बताये गए हैं। यदि वह बात सच

[1] यह पत्र वाजपेयीजी ने सुमनजी को उन दिनों लिखा था जब कि उन्होंने लेखन कार्य बन्द करके 'हिमालय फॅार्मेसी' नाम से हिमालय की जड़ी बूटियों की दुकान खोल ली थी।

होती तो सम्भवतः इस कविता-संग्रह के लिए मेरी ओर से आपको निराश न होना पड़ता। मेरी कोई रचना उसमें आप रखेंगे तो पढ़ने वाले यही नाक-भौं सिकोड़कर कहेंगे, यहाँ का कौन 'दलिद्दर' यहाँ लाकर बिठा दिया गया है।

फिर भी आप कोई कविता मेरी चुन सकें तो मुझे सन्तोष ही होगा। 'विषाद' नामक संग्रह की कविताएँ देख लीजिए। शायद उसमें कुछ पंक्तियाँ आपके काम की निकल सकें। 'पाथेय' में शायद 'चोर' नामक कविता आप अपने लिए चुन सकते हैं। 'क्षणिक' भी शायद काम की हो। इनमें से कोई एक आप ले सकते हैं। 'पुण्य-पर्व' में रानी का एक गीत याद आ रहा है। लिखते लिखते जिन कविताओं की याद आई, उन्हें लिख दिया। हो सकता है इनमें से कोई तो आपके संग्रह के लिए कलंक-जैसी हो। अस्तु। आप जो चुनाव करें उसकी सूचना कृपया मुझे भी दे दें।

पूज्य दद्दा आजकल दिल्ली ही हैं। इस बार मैं नहीं पहुँच रहा हूँ। एक अधूरी पुस्तक पूरी करने की चेष्टा में हूँ। हो जाय तब है।

आशा है आप सानन्द हैं।

आपका,
सियारामशरण[1]

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

श्रीराम

चिरगाँव
१०-४-६३

प्रियवर सुमनजी,

सियारामशरण के बिना जीवन सूना हो गया है। ऐसे में आप-जैसे स्नेहीजनों की सहानुभूति का ही सबल है। और क्या कहूँ! अन्तिम समय में यह भोग भी बदा था। हरीच्छा।

आपका,
मैथिलीशरण[2]

१. 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' पुस्तक के योजना-परिपत्र के उत्तर में लिखा गया पत्र।
२. अपने अनुज श्री सियारामशरण गुप्त के निधन के बाद राष्ट्रकवि की मार्मिक वेदना की अभिव्यक्ति।

श्री मार्तण्ड उपाध्याय

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली-१
१-५-६४

प्रिय भाई सुमनजी,

सप्रेम वन्दे। आपकी पूजनीया माताजी के दुःखद देहावसान का समाचार २५ अप्रैल को भाई विष्णुजी ने दिया था। तब से आपको लिखने की सोच रहा था। पर लिख नहीं पाया। मेरी माँ आज से २७ वर्ष पहले चली गईं। और माँ की याद को मैं भुला नहीं पाया आज तक। जब किसी स्नेही बंधु के मातृ-वियोग का सुनता हूँ तो माँ की छवि सामने आ जाती है और रोने लगता हूँ। और समझता हूँ कि जैसी मेरी हालत होती है वैसी ही सबों की मातृ-वियोग पर होती है। सो मौन व्यथा और श्रद्धा भेज देता हूँ। जगत् में सब सुलभ है—माँ दुर्लभ है। वही चीज आपकी चली चली गई। मैं नहीं भुला पाया और दुखी हो जाता हूँ तो आपसे कैसे कहूँ कि आप यह दुःख सह लें। 'परोपदेशे पाण्डित्य' होगा यह।

३ ता० को अवश्य उपस्थित होकर श्राद्ध-यज्ञ में आहुति देता, पर मैं बाहर जा रहा हूँ। ६-७ तक लौटूँगा।

माताजी की आत्मा को भगवान् शान्ति प्रदान करें और परिजनों को वियोग-दुःख सहने का साहस व बल दें—

मेरे योग्य सेवा लिखें—

विनीत,
मार्तण्ड उपाध्याय[1]

आचार्य शिवपूजनसहाय

श्रीसीताराम

भगवान रोड, मीठापुर, पटना—१
बुधवार ३-१०-६२

मान्यवर,

सादर प्रणाम

आपके कृपापत्र के साथ आपकी नई पुस्तक भी मिली थी। मैं 'साहित्य' के 'नलिन-स्मृति-अंक' के सम्पादन में बहुत व्यस्त था। नलिनजी के बिना अब अकेला पड़ गया हूँ। इधर श्रद्धेय जयप्रकाश बाबू ने एक नये 'राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ' का सम्पादन-भार भी सौंप दिया है। अतः आपको पत्रोत्तर भेजने में बहुत अधिक, आशातीत, विलम्ब हो गया। क्षमाप्रार्थी हूँ। सम्प्रति बिहार के साहित्यिक इतिहास का भी दूसरा खण्ड छप रहा है और तीसरे खण्ड के सम्पादन में हाथ लगा दिया है। तब भी आपके अथक परिश्रम

१. सुमनजी की माताजी के निधन के समाचार से वेदना-सिंचित होकर व्यक्त किये गए उद्गार।

का सुफल देखकर अतीव आनन्द उपलब्ध हुआ। आपने हिन्दी-कवियों और कवयित्रियों के प्रेमगीतों का सर्वांग सुन्दर संग्रह प्रस्तुत करके एक चिरकालानुभूत अभाव की पूर्ति की है। 'साहित्य' के आगामी अंक में यथासमय दोनों का पूरा परिचय प्रकाशित करूँगा। मेरा मन कहता है कि ऐसे ही प्राकृतिक सुषमा के दृश्यों और ऋतु-वर्णन के गीतों का भी संग्रह आपके ही करकमलों से सम्पादित हो तो हिन्दी प्रेमियों का बड़ा उपकार होगा। आपकी सहृदयता से 'प्रेमगीत' धन्य हुए तो विरह-गीत करुण गीत, भक्ति-गीत आदि ही क्यों वंचित रहें ! यह काम बस आप ही कर सकते हैं और आशा है कि आपके भावी कार्यक्रम में कुछ ऐसी व्यवस्था अवश्य ही होगी। इस समय केवल हार्दिक बधाई निवेदित कर रहा हूँ, यथेष्ट स्वागत सत्कार 'साहित्य' में ही हो सकेगा। विलम्ब के लिए क्षमाप्रार्थी—
सधन्यवाद—

शिवपूजन सहाय*

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

सर्वथा निजी

'कर्मवीर', खण्डवा (सी० पी०)
१०-१-४८

प्यारे क्षेमचन्द्रजी,

सादर नमन।

क्षमा कीजिए, आपने भूमिका लिखने के लिए आदमी अच्छा न चुना। आप मेरी बीमार देह, मजदूर जिन्दगी और कठिनाइयों से परिचित न होंगे, नहीं तो कदाचित् यह भूल आप न करते। खैर, आज आपकी कविता-पुस्तक 'अंजलि' की पाण्डुलिपि, उस पर लिखे मेरे कुछ शब्द तथा साथ ही अपनी तुकबन्दियों के संग्रह हिमतरंगिनी पर लिखे मेरे दो शब्द भी भिजवा रहा हूँ। पुस्तक रजिस्ट्री से भिजवा रहा हूँ, अतः आशा है सुरक्षित पहुँच जाएगी।

आशा है आप विलम्ब के लिए क्षमा करेंगे। आपको तो यहाँ तक सन्देह हो गया था कि कदाचित् आपकी कविता-पुस्तक गुम गई। यह सन्देह मेरी बारहगाड़ी अव्यवस्था को देखते हुए बिलकुल ही गलत तो न था।

जब यह संग्रह छप जाय और आपको मेरे लिखे शब्द किसी प्रकार रुचें, और आप अपने संग्रह में छापें, तो कृपया पुस्तक की एक प्रति मेरे पास भिजवाने का कष्ट कीजिएगा। यदि छापने योग्य न हो, तो समझूँगा कि—

बिन औषधि बियाधि बिधि खोई

* सुमनजी द्वारा सम्पादित 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' और 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम-गीत' नामक पुस्तकों के विषय में तपस्वी आचार्य के उद्गार।

मैंने जीवन मे याद नही आता कि आपको कभी देखा है। पहचान होती, तो चिट्ठी जरा और लम्बी लिखता, और उसमे कुछ अधिक ऊटपटांग लिखता।

शायद फरवरी के किसी प्रारम्भिक सप्ताह मे दिल्ली आ रहा हूँ। नही जानता कि कहाँ ठहरूँगा। यदि बूते की बात हुई तो आपको देखूँगा।

पुन क्षमा-प्रार्थना।

आपका—माखनलाल चतुर्वेदी[1]

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

बेनीपुरी-प्रकाशन
पटना—६
२६-५-५४

प्रिय सुमनजी,

सस्नेह वन्दे।

मैं कल रात मे यहाँ सकुशल पहुँचा। देहरादून मे अधिक ठहर नही सका। यहाँ आते ही काम के अम्बार मे दबा जा रहा हूँ। अकेला आदमी क्या-क्या करे!

श्री रामलाल पुरी[2] जी ने जो कुछ किया, उसमे मुख्य प्रेरक तो आप ही रहे हैं। अत आपको कितना धन्यवाद दूँ।

न जाने क्या बात है, दिन दिन आपके स्नेह से बँधता जा रहा हूँ। इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। अब बुड्ढा हुआ, आपके ऐसे कुछ युवकों का सहारा मिला, तो आगे कुछ करने मे सुविधा होगी।

आपने अपनी नई सिरीज[3] की जो तीन पुस्तकें दीं, उन्हे बेनीपुर लिये जा रहा हूँ। वहीं पढ़ूँगा।

'ग्रंथावली' पर क्या एक अच्छी आलोचना लिखकर 'आलोचना' मे दे सकेंगे? उसके सम्पादकों मे तो आप भी हैं।

आपकी श्रीमतीजी की तबीयत अब कैसी है?

सस्नेह,
श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

१. और यह पत्र दादा की मेज ही में पड़ा रह गया। पाण्डुलिपि के साथ कोई पत्र न पाकर सुमनजी ने उस संग्रह को छपाने का विचार ही छोड़ दिया। यह पत्र और 'अंजलि' की भूमिका अब १९६० में खण्डवा के श्री श्रीकान्त जोशी की कृपा से उपलब्ध हुई। 'भूमिका' श्रद्धेय चतुर्वेदी जी की 'अमीर इरादे : गरीब इरादे' पुस्तक में छप गई है। इस ग्रन्थ में भी उसका कुछ अंश दिया जा रहा है।

२. आत्माराम एण्ड संस दिल्ली के उदारमना संचालक।

३. भारतीय साहित्य-परिचय-माला।

महामहिम श्री श्रीप्रकाश

गवर्नमेण्ट हाउस,
शिलांग (असम)

प्रवास (कलकत्ता)
२६-११-४६

प्रियवर,

आपका २१ नवम्बर का कृपापत्र मिला। अनेक धन्यवाद। आपका पहले भी पिताजी की जीवनी के सम्बन्ध मे पत्र आया था। अवश्य ही मैं इस सम्बन्ध मे सामग्री इकट्ठा करने मे सहायता देना चाहूँगा। जहाँ तक याद आता है पहले भी मैंने आपको लिखा था, वही फिर लिख रहा हूँ कि इस सम्बन्ध मे आप मेरे मित्र श्री विश्वनाथ शर्मा से पत्र-व्यवहार कीजिये। वे आपकी पूरी सहायता करेंगे। मेरा हवाला दे दीजिएगा। आप उन्हे जानते भी होगे। उनका पता है—काशी विद्यापीठ, बनारस छावनी। मेरे योग्य जो सेवा हो, मुझे लिखियेगा। पहले 'खाका' बना लीजिए और तब मुझे भी मालूम हो सकेगा कि आप किस दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध मे कार्य करना चाहते हैं। आशा है आपका स्वास्थ्य अब बिलकुल ठीक होगा।

आपका,
श्रीप्रकाश[१]

डॉ० रांगेय राघव

वैर, भरतपुर
२१-१०-५७

प्रिय मित्र,

मगलमय हो जीवन का हर कोना—
सहस्र प्रदीप भेजता हूँ दीपावली के अवसर पर—
उस अनाम को जिसने नाम धारण किया है कल—
उसे स्नेह मेरा देना—
एक दीप और जलाकर।

सस्नेह
रांगेय राघव[२]

१. 'सम्मेलन के सभापति' नामक ग्रंथ के सम्बन्ध में लिखा गया पत्र। माननीय श्री श्रीप्रकाश के स्वनामधन्य पिता डा० भगवानदास सम्मेलन के सभापति रह चुके थे। श्री श्रीप्रकाश जी उन दिनों असम के राज्यपाल थे।

२. सुमनजी के बड़े बेटे 'अनय' के नामकरण-संस्कार पर।

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

विकास लिमिटेड,सहारनपुर
१-६-५०

प्रिय भाई सुमनजी,

नमस्कार।

इस बार तुमसे मिलकर मुझे बहुत ही सन्तोष मिला, क्योंकि तुम्हारे व्यक्तित्व में मुझे इस बार एक नया निखार नजर आया। अब तुम साहित्य के सच्चे निर्माण-पथ पर आ रहे हो, यह मैंने देखा। तुम्हें निखरते रूप में देखकर मुझे लगा कि मैंने उन १०-१२ घंटों में ही एक भूरी भैंस का पूरा ब्यौंत पी लिया। सच, कन्धे तन-से गए हैं, और सीना उभर-सा गया है। भगवान् करे तुम अपने क्षेत्र में स्थायित्व का गौरव पाओ और देख-देखकर मेरी उम्र बढ़ती रहे—सुख से, उल्लास से!

'प्रेमचंद' तुम्हें पसन्द आया, अहोभाग्य। उस पर मेरा नाम जाना चाहिए, क्योंकि व्यक्तिगत स्मृतियाँ हैं उसमें।[1] शान्तिप्रिय वाला लेख ६ ता० को स्वयं दिल्ली में तुम्हें दे दूंगा। देशदूत' के अंक छांट रहा हूँ, रात १२ बजे तक भाड़ू लगाता रहा। मिलने पर सम्पादन कर दूंगा या फिर भेज दूंगा, तुम कर लेना। पुस्तकें नहीं मिलीं, शायद कल मिलें। लखनऊ के प्रयत्नों से निश्चिन्त रहो—मैं जो कर सकता हूँ, करूँगा ही। शेष प्रेम। योग्य सेवा?

तुम्हारा सदा अपना ही,
प्रभाकर

पुनश्च—
'विकास' को 'हरिजन'-सा कर दिया है। 'नया जीवन' के साथ वह ७ ता० तक पहुँचेगा। कभी-कभी लिखा करो उसमें।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

सागर विश्वविद्यालय,
३०-८-५१

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। 'आत्मचरित' लिखने के आपके आमंत्रण को पूरा करना मेरे लिए कठिन है। अभी जीवन के केवल ४४ वर्ष ही देख पाया हूँ और ऐसी स्थिति पर नहीं पहुँचा कि लौटकर पीछे की ओर देखूं। ऐसे अनेक अनुभव हैं जिनका उद्घाटन करने का समय नहीं आया। व्यक्तियों और विचारों का लेखा-जोखा लगाने की भी मनोवृत्ति में नहीं हूँ। अभी सम्भावना यह है कि कोई बात कहूँ तो उसका गलत अभिप्राय समझा जायगा। अवसर-प्राप्त लोगों की बात का ही लोग बुरा नहीं मानते, और मैं कह नहीं

१. 'जैसा हमने देखा' नामक संस्मरण-पुस्तक के लिए।

सकता कि मेरे लिए वह समय कब आयगा! अभी मैं पूरी तरह जी रहा हूँ—इसलिए जीवनी लिखना ठीक नहीं। हाँ कुछ ऊपरी घटनाएँ और तिथियाँ ही लिखनी हों तो मेरे सम्बन्ध में ३-४ पृष्ठों का एक खाका डॉ० श्यामसुन्दरदासजी की संग्रहीत 'हिन्दी के निर्माता' (भाग २) पुस्तक में दिया हुआ है, जो इण्डियन प्रेस की 'सरस्वती सीरीज़' में निकली है। आप चाहें तो उसका उपयोग कर सकते हैं। शेष दो-तीन पृष्ठों में आप मेरी पुस्तकों की टोह लगाकर उसमें पाए जाने वाले मेरे विचारों और दूसरी प्रतिक्रियाओं का संकलन कर लें। तब तक इस कामचलाऊ आत्मचरित से ही काम लीजिए और वास्तविक आत्मचरित की प्रतीक्षा कीजिए।

आपका,
नन्ददुलारे वाजपेयी[1]

श्री स० ही० वात्स्यायन

मोतीबाग, नई दिल्ली
१६-२-६१

प्रिय सुमनजी,

आपका पत्र अभी मिला। आप ऐसा संकलन[2] कर रहे हैं बड़ी प्रसन्नता की बात है। यों मैं 'रूपाम्बरा' के बाद जो दो और संकलन करने में लगा था (और हूँ) उनमें से एक प्रेम-काव्य का था—पर मेरे काम लम्बे होते हैं और मुझे दो वर्ष तो लगेंगे ही, तीन भी लग जावें तो क्या आश्चर्य! आप कर्मठ हैं, जल्दी संग्रह तैयार कर लेंगे और अच्छा भी है। निस्सन्देह दूसरी भाषाओं के क्षेत्र में भी उसका मान होगा—और प्रेमी तो भारत में इतने हैं कि दो एक क्यों, दस संकलन भी हों तो भी ग्राहकों का अभाव न होगा!

सस्नेह आपका
वात्स्यायन

१. सुमनजी प्रायः नई राहों के अन्वेषी रहे हैं। हिन्दी में आत्म-चरितात्मक साहित्य के अभाव का अनुभव करके उन्होंने हिन्दी के सभी गण्यमान्य साहित्यकारों को जो पत्र लिखे थे, उनके उत्तर में ही यह पत्र प्राप्त हुआ था। ऐसे आत्म-चरितों का संकलन 'जीवन-स्मृतियाँ' नाम से प्रकाशित हुआ है।
२. 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत'।

डॉ० धर्मवीर भारती

धर्मयुग
पो० आ० बक्स नं० २१३

टाइम्स आफ इण्डिया बिल्डिंग बम्बई १
१६-८-६१

प्रिय भाई,

पत्र और समीक्षा मिली। वास्तव में इस पुस्तक[1] की समीक्षा हमारे यहाँ आ चुकी है और आगे किसी अंक में हम उसे प्रकाशित करने जा रहे हैं। 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' वाली पुस्तक मिली थी, बहुत अच्छी लगी। यह तो एक बात है, लेकिन उसको पाकर आपकी बहुत याद आई। हम लोगों को मिले बहुत दिन हो गए। इस बीच में कुछ बड़े मानसिक कष्ट के दिन बीते और उनमें जिन प्रिय मित्रों की याद आती रही उनमें से आप भी थे। एक दिन अधिकारीजी से आपके बारे में बहुत देर तक बातचीत होती रही।

आपका,
भारती

संलग्न 'अजय की डायरी...'

श्री बैरागी अवधेश्वर 'अरुण'

श्री राधाकृष्णाभ्याम् नम

जपला
जिला पलामू (बिहार)
५-८-१९६६

भैया सुमन,

शत-शत प्रणाम।

आज तुम्हारे सम्पादन में हुए प्रकाशित, देखे मैंने गीतों के दो नये संकलन,
जीवन की छाया, परिभाषा सिकत मनोरम, उर-वृन्ता पर मन-अलियों का अभिनव गुंजन।

सुघड़ भावना, मधुर कल्पना मुखर हुई है, पंक्ति-पंक्ति में शब्द-शब्द में क्षर अक्षर में
दीप्त कान्ति से लसित मुस्कुराता सहसा ज्यों, अरुणोदय के साथ जलद नीरव सरवर में।

भाषा, भाव, छंद, शैली, हर दृष्टिकोण में, गीत मधुर ये हृदय वेदना को हर लेते,
रोम-रोम को, पुलकित कर ये भ्रात अनूठी, चयन-कुशलता का तेरी हैं परिचय देते।

१. 'अजय की डायरी'—डॉ० देवराज का उपन्यास।

व्यर्थाडम्बरहीन अति संक्षिप्त भूमिका, सरल, सरस गीता का बोध करा देती है,
पढ़ने को क्षुब्ध और बाध्य करती मन को भी, मानस से सुधिय के अतीत को हर लेती है।

गीतकार पाते आये सम्मान युगों से, जगती की भाषा में, नित नवगीत सृजन कर,
हृदय लुटा देता जग-मानव शब्द-शब्द पर, उनको सुनकर लय में हँसता, रोता अम्बर।

अब भी है यह बात विश्व की हर भाषा में, किन्तु एक हिन्दी अपना दुर्भाग्य मनाती,
इतने अधिक हुए गीतों के निन्दक इसमें, आज गीत प्रणयन में कवि-तूलिका लजाती।

हे भ्रात, चाहिए यथाशीघ्र होना विचार अब, क्या हिन्दी का गीत उपेक्षित होता जाना?
नई मान्यताएँ इस तरह बदलती हैं क्या? मधुर भावनाओं को क्यों दफनाया जाता!

बहनों की मधुर मरम कविताओं को पढ़कर मैं, हो जाता हूँ बाध्य सोचने को यह क्षण भर,
देकर जीवन में प्रकाश इनके नव अभिनव, किया अनूठा कर्म, अनिर्वच, कितना, नश्वर।

इसी तरह कुछ और संग्रह करो प्रकाशित जले वर्तिका स्नेहहीन नूतन छवि पाकर,
फूल बनें कलियाँ, सुरभीनी-सी उपवन में, अहोभाग्य समझें भैया तुमको अपनाकर!

मुझे, तुम्हारा दर्शन उतना ही दुर्लभ है, चंदा का बच्चों के हाथों में आ जाना,
ओस-कणों का दोपहरी में तृण पर हँसना, कुमुदिनि का रवि-दर्शन में नित मुस्काना!

विदा ले रहा कला-प्रशंसक अनुज तुम्हारा, कला-ज्योत्स्ना में तेरी द्रुत खो जाने को,
जैसे अँधियाली प्रकाश से विदा माँगकर रजनी में आती रजनीमय हो जाने को!

मुझ असभ्य की पाती में कोई विचार यदि तीखा हो तो भैया क्षमा मुझे कर देना,
एक अजनबी, अनुज जानकर भी जीवन में, कभी-कभी सम्भव हो तो, मेरी सुधि लेना!

तुम्हारा ही छोटा भाई
बैरागी अवधेश्वर 'अरुण'[1]

१. पत्र-लेखक की अन्तःसलिला सरस्वती सुमनजी को देखे-पहचाने बिना ही केवल व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरित और द्रवित हुई है।

श्री नरेन्द्र शर्मा

५६४, उन्नीसवां रास्ता, खार
बम्बई, ५२
२७-६-१९६४

प्रिय श्री क्षेमचन्द्रजी,

सस्नेह नमस्कार। आशा है आप सानंद और सकुशल हैं। आजकल मैं तो वरुण और इंद्र[1] के आधिपत्य में घर पर छुट्टी मना रहा हूँ। एक पखवारा और बचा है। फिर तो नई दिल्ली और आकाशवाणी।

यदि सम्भव हो, तो आप कुमारी प्रेमलता वर्मा के लिए अपनी ओर से प्रयत्न करके शाहदरा वाले स्कूल में जगह दिलाने में सहायता दें। यदि और कहीं भी कुछ हो सके, तो अवश्य करें। अनुग्रह होगा।

सस्नेह आपका
नरेन्द्र शर्मा

श्री राजेन्द्र यादव

द्वारा पोस्ट मास्टर,
कसौली (पंजाब)
२४-४-६६

भाई श्रीसुमनजी,

जिस समय मुझे आना था, उसके थोड़ी ही देर पहले दिनेश ने बताया कि आपको चोट लग गई है—बस के ऐक्सीडैण्ट[2] से। रुकना सम्भव नहीं था इसलिए आना पड़ा। किन्तु मन में सचमुच चिन्ता है। डॉ० रामविलासजी के बाद यह दुर्घटना का चक्र आपके साथ—कृपया मुझे लिखें कि कोई गम्भीर बात तो नहीं है। मेरी अनेक-अनेक शुभ-कामनाएँ लें—इसके बाद तो आपसे मिलने की कितनी इच्छा है—कह नहीं सकता। आते समय निश्चय ही मिलूंगा।

आशा करता हूँ आप अब तक पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं।

आपका,
राजेन्द्र यादव

१. नरेन्द्र शर्मा के सुपुत्र।
२. कुछ वर्ष पूर्व सुमनजी अकस्मात् बस-दुर्घटना से आहत हो गए थे। उस समय उनके अनेक मित्रों और शुभचिन्तकों ने उनके प्रति शुभकामनाएँ अर्पित की थीं। लेखक ने उस समय यह पत्र भेजकर अपनी वेदना और शुभेच्छा व्यक्त की थी।

श्री महावीर अधिकारी

नवभारत टाइम्स
बम्बई १

पोस्ट बाक्स न० २१३
१९ अक्तूबर, १९६१

भाई सुमनजी,

यह अत्यन्त आश्चर्य तथा खेद की बात है कि बम्बई से एक हजार मील की यात्रा करने के बाद भी आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नही हो सका। टेलीफोन पर आपने आश्वासन दिया था कि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के विदाई-समारोह के अवसर पर आपके दर्शन होगे, लेकिन कोई ऐतिहासिक कारण ही रहा होगा कि आप उसमे सम्मिलित नही हो सके। वैसे भी मुझे दर्शन देने अथवा मेरे दर्शन करने मे आपकी दिलचस्पी कम ही है।

इस समय एक विशेष प्रयोजन से आपको पत्र लिख रहा हूँ। बम्बई के सुप्रसिद्ध लेखक तथा अपने वयोवृद्ध मित्र डा० जगदीशचन्द्र जैन ने आपको मेरी प्रेरणा पर एक पत्र लिखा था जिसमे राजकमल प्रकाशन मे फँसी हुई उनकी एक पुस्तक के जीर्णोद्धार की चर्चा की थी। क्या यह सम्भव हो सकता है कि आप इस बारे मे दिलचस्पी लेकर कोई अन्तिम निर्णय करा सके? मुझे मालूम है कि श्री ओमप्रकाश मास्को-यात्रा पर गए हुए है। फिर भी उनकी अनुपस्थिति मे जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कृपापूर्वक पत्र द्वारा यह आश्वासन देने का कष्ट तो अवश्य करे कि आप इस दिशा मे चेष्टा करेगे।

श्री जैन ने बम्बई मे मेरे प्रति अनेक ऐसे कार्य किये है जिनका मै उपकार मानता और मेरे मित्र की हैसियत से आपको भी यह उपकार मानना पडेगा। बडे भरोसे के साथ मैने आपका नाम उन्हे बताया था। कृपा करके इस भरोसे को न टूटने दीजिए।

मै यहाँ ठीक हूँ। दिल्ली-आगमन पर आपके दर्शन और सम्पर्क का लाभ प्राप्त करने के लिए केवल एक ही मार्ग अब मुझे दिखाई पड रहा है कि घर जाने के बजाय मैं अपना बोरिया बिस्तर लेकर आपके ही शुभ निवास पर आ धमकूँ। क्या आप इस दुर्घटना के लिए तैयार है!

बच्चो तथा श्रीमतीजी को यथायोग्य।

आपका,
महावीर अधिकारी

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन

२३, शिवाजी पार्क, बम्बई २८
२३-८-६१

प्रिय सुमनजी,

'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक मेरे मित्र श्री महावीर अधिकारीजी से मुलाकात हुई थी। वे स्वय आपको पत्र लिखना चाहते थे। मैने सोचा मुझे भी आपको लिखने का

थोड़ा-बहुत अधिकार है ही। इसलिए यह पत्र लिखकर कुछ कष्ट दे रहा हूँ।

मेरी पुस्तक 'भारतीय तत्त्व चिंतन' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली को प्रकाशनार्थ दी गई थी। जब वे लोग इसे प्रकाशित करने मे असमर्थ रहे तो राजकमल ने इसे प्रकाशित करना स्वीकार किया। नवीन प्रेस के मैनेजर श्री सेठ, राजकमल के अधिकारी श्री देवराज, प्रगति प्रकाशन के मालिक बलवन्त सहगल और मैंने मिलकर एक एग्रीमेण्ट तैयार किया जिस पर चारो के हस्ताक्षर हुए। पुस्तक वर्षो से पडी हुई थी, इसलिए पुस्तक के प्रकाशन के लोभ मे आकर मैंने इन लोगो की शर्तें स्वीकार कर लीं। शर्त मे यह लिखा गया कि जब पुस्तक का सारा खर्च निकाल आएगा उसके बाद मुझे रायल्टी मिलेगी। यह एग्रीमेंट १९५४ का है, सात वर्ष होने आये, पता नही क्या गोल-माल हो रहा है। यदि सम्भव हो तो कृपया देवराजजी और सेठजी से पता लगाकर सूचित करने का कष्ट करें। आशा है स्वस्थ एव प्रसन्न होंगे।

पुनश्च—
एग्रीमेण्ट मे लिखा है कि ६ महीने बाद हिसाब भेजा जायगा, लेकिन ये लोग नही भेजते।

आपका,
जगदीशचन्द्र जैन

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

इंडियन प्रेस प्रा० लि०, जबलपुर १
५-११-६४

प्रिय भाई,

दिनाक ३१-१० का कार्ड मिला। माताजी के देहावसान का समाचार पढकर दुखी हूँ। भगवान् आपको इस वियोग को धैर्यपूर्वक सहन करने की शक्ति दे।

इस बीच आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे एक उत्तम लेख पढने मे आया। आपके प्रति अधिक आदर तथा स्नेह का लगाव हुआ। ग़ज़लो के सग्रह के बारे मे उस लेख मे चर्चा नही है, न यह कि आप उर्दू-फारसी कितनी जानते हैं।

मैं गोंडवाने का कोल-भील शहरो मे शहर दिल्ली वाले का क्या पथ-प्रदर्शन करूँ? उर्दू का केन्द्र तो था ही, हिन्दी का भी केन्द्र अब दिल्ली ही है। एक से एक रथी-महारथी हैं, एक से एक पुस्तकालय। मुझे एक अक्षर लिखते भी भय होता है।

भारतेन्दु बाबू से लेकर द्विवेदी-युग तक हिन्दी के अधिकतर साहित्यिक उर्दू-फारसी मे पटु होते थे। 'कविता-कौमुदी' भाग २ देखिए। भारतेन्दुजी 'रसा' उपनाम से उर्दू के पूरे कवि थे। भानुकवि जगन्नाथप्रसादजी ने दो उर्दू के सग्रह 'फैज' उपनाम से

मिलते हैं। प० प्रतापनारायण, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, प० नाथूराम शकर शर्मा, प० गया-प्रसाद शुक्ल 'सनेही' सब उर्दू के अच्छे-खासे कवि थे। इसी प्रकार उर्दू के साहित्यिक भी हिन्दी के पूरे कवि थे। अपने सग्रह को भारतेन्दु से आरम्भ करना बहुत असाध्य होगा। ठेठ उर्दू मे गजलें लिखने वाले हिन्दू तो बहुतेरे थे और हैं, फारसी लिखने वाले भी। ठीक अग्रेजी की तरह फारसी राजभाषा ही थी, यद्यपि अग्रेज हमारी अग्रेजी को 'बाबू इग्लिश' और ईरानी हमारी फारसी को 'लाला फारसी' कहते थे। मात्र हिन्दुओं की लिखी गजल आप कहाँ तक ढूंढेंगे ?

हिन्दी मे प्रतिनिधि रुबाइयात का सग्रह प्रकाशित हो चुका है। उसके लेखक रुबाई का वह वचन 'रुबाइयाँ' मानते है और रुबाई को 'मुक्तक' कहते हैं। वे रुबाई की अच्छाई तो मानते हैं, पर उसका उर्दू फारसी रूप पूरा-का-पूरा न जानते है, न मानते है। वे उस अच्छाई को हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ढाल लेना चाहते है, जैसे सॉनेट या अब लिमरिक को 'तुक्तक' के रूप मे। यह शुभ लक्षण है। 'यूज' और 'एव्यूज' हर चीज के साथ है। हमने अपने ज्ञान के द्वार खुले रखे हैं। हम देखेंगे। जो बन्द कर देगा, घटेगा।

इसी प्रकार का गजलो का सग्रह हो। गजल यानी हरिण। माशूक गज्जाल-चश्म अर्थात् मृगनयनी है। आलकारिक अर्थ-औरतो या माशूको से बातचीत ! क्या ? प्रेम-निवेदन या विरह-निवेदन या नख शिख वर्णन। 'गालिब' के लिए यह काफी नही। वे दर्शन या सूफी भाव लाए। 'हाली' और चकबस्त ने लगभग गजल लिखना छोड दिया। उपदेशात्मक मुसद्दस लिखते थे। डॉ० इकबाल नज्मे लिखते थे। पर 'दाग' और 'अमीर' ने ऐसी गजलें लिखी कि वे तवायफो के गले का हार हो गई। शृगार रसराज तो है ही। नव-युवक लट्टू हुए। बगाली, गुजराती, मराठी मे भी धडल्ले के साथ गजलें लिखी और गाई जाती हैं। छायावाद के समय भी गजल वाद हाला-वाद, रुबाई-वाद चला। आज भी चल रहा है। जवान आदमी सौंदर्योपासना कैसे छोडेगा ? महाकवि निराला और बाबू भगवती-चरण वर्मा ने दावे के साथ हिन्दी-गजलें लिखी थी। इस काल के आस पास से आपका सग्रह लगभग आज तक का हो।

मैं मनवाना नही चाहता। यह कहना चाहता हूँ कि बहस बहुत बडी है। पत्रों द्वारा करना कठिन है। एक से एक बढकर अधिकारी आपके आस-पास है। मैं बिलकुल फडतूस हूँ। फिर भी कुछ पूछना चाहें तो ठेठ प्रश्न कीजिए। एक व्यापक समस्या पत्रो द्वारा सुलझाना कठिन है।

सदा सुखी रहे।

भवदीय

रामानुज[1]

१. मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध साहित्यकार। जिन दिनों सुमनजी ने हिन्दी-गजलों का एक प्रतिनिधि सकलन तैयार करने का विचार किया था, उन दिनों उन्हें पत्र लिखकर कुछ जिज्ञासाएँ की थीं।

डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'

विदेश मन्त्रालय,
नई दिल्ली
२६-८-६२

सम्मान्य बन्धु,

'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' की एक प्रति आपने मुझे देने की कृपा की, इसके लिए बहुत आभारी हूँ।

मैंने आज ही यह पुस्तक समाप्त की है।

आपने बड़े परिश्रम और लगन से यह पुस्तक तैयार की है। आपकी कठिनता का कुछ आभास भूमिका के पृष्ठों से हुआ। आशा है आपका श्रम सफल होगा और हिन्दी-पाठक इसका स्वागत करेंगे।

खड़ी बोली हिन्दी के द्वारा बीसवीं सदी में नारी हृदय की प्रेम भावना जिस रूप में निखरित हुई है, उसको जानने की एक बड़ी खरी कसौटी आपने उपस्थित कर दी है। इसका साहित्यिक महत्त्व तो है ही सामाजिक दृष्टि से भी इसका महत्त्व कम नहीं है। कितनी ही पंक्तियों में मध्यकालीन संस्कृति से आबद्ध और नियन्त्रित नारी-हृदय कितनी मार्मिकता से खुला है। फिर भी भारत की नारी ने सहज मर्यादा कहीं भी नहीं छोड़ी। इतने संयत प्रेम-गीत शायद ही किसी अन्य भाषा में मिल सकें। बन्धन के प्रति विद्रोह की भावना रखते हुए भी कला के लिए मैं संयम की आवश्यकता समझता हूँ।

कला की दृष्टि से देखें और निष्पक्ष होकर जांचें तो गीतों का स्वर बहुत ऊँचा है। उन शायद १७५ गीतों में सर्वश्रेष्ठ की दृष्टि से चयन करना चाहें तो दस गीत मुश्किल से आएँगे। कुछ गीतों में रचना-दोष बहुत भोंडे भी हैं।

सामयिक दृष्टि से एकाध बड़े नाम छूट गए हैं उनको किसी-न-किसी प्रकार रख ही लेना था। मैं स्त्री की हर जिद पूरी करने के पक्ष में हूँ।[1]

शारदा वेदालंकार के सम्बन्ध में एक सूचना गलत है। उनको पी-एच० डी० पटना-विश्वविद्यालय से नहीं, लन्दन-विश्वविद्यालय से मिली थी—उन्होंने तीन वर्ष वहाँ रहकर खोज-कार्य किया था। यह मैं इसलिए जानता हूँ कि मैं भी उन समय कैम्ब्रिज में शोध-कार्य कर रहा था। अगले संस्करण में ठीक कर दें। छूट गई कवयित्रियों को भी सम्मिलित कर लें। प्रूफ आदि की कुछ गलतियों की ओर आपका ध्यान गया ही होगा। मुझे खेद है कि स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण मैं पुस्तक-सम्बन्धी उत्सव में नहीं आ सका। आशा है वह सफल रहा होगा।

मैंने आपको एक सुझाव दिया था कि उर्दू छन्दों में हिन्दी काव्य की उपलब्धि पर भी एक अच्छा संकलन तैयार किया जा सकता है। भारतेन्दु, लाला भगवानदीन 'दीन' उनका संग्रह निकला था, निराला, शम्भुनाथ 'शेष' जो परम्परा डाल गए हैं वह समय

१. बच्चन जी का संकेत श्रीमती पद्मा 'सुधि' की ओर है।

पाकर विकसित हुई है। और आज तो वह शायद जोरो पर है। उसका लेखा-जोखा लगाने और उसको निर्देशित करने की आवश्यकता है। उसे उर्दू की अनुकृति तो हरगिज नही बनना है। सोचना है हिन्दी इस माध्यम मे क्या कुछ नया कर सकती है। यदि ऐसा काम हाथ म लेने का इरादा हो तो कभी आपसे इस सम्बन्ध म विस्तार से विचार-विनिमय करना चाहूँगा।

आशा है आप स्वस्थ प्रसन्न है।

मेरी शुभकामनाएँ,

स्नेहाभिवादन
बच्चन

श्रीकान्त वर्मा

८५ नार्थ एवेन्यू नई दिल्ली
१५-३-६१

प्रियवर,

आपके पत्र के लिए धन्यवाद। मैने आपको जो रचना भेजी थी, वह गीत ही थी और मेरा अनुमान है वह सर्वथा गेय है। यह अवश्य है कि वह उस प्रकार की लोकप्रिय धुन के अनुकूल नही है जिसका श्रवण कवि सम्मेलनो मे होता है।

खैर आपकी सद्भावना और शुभाशसा के लिए आभारी हूँ और अत अब यह ठेठ छदबद्ध प्रेम-गीत भेज रहा हूँ। इसके बाद अब अगर कुछ न भेज सकूँ, तो मेरी असमर्थता जान क्षमा करेंगे।

आपका
श्रीकान्त वर्मा

डॉ० रामविलास शर्मा

गोकुलपुरा आगरा
२५-७-५२

प्रिय सुमनजी,

आपके दोनो पत्र मिले। पहले का उत्तर देने की तैयारी कर रहा था कि दूसरा भी आ गया। उम्मीद है कि आपका तीसरा पत्र इसे पोस्ट कर देने के बाद ही मिलेगा।

आपने पन्द्रह जुलाई के पत्र म लिखा था कि एग्रीमेण्ट फार्म कल भेजूँगा। वह अभी तक नही आया, जिससे तसल्ली हुई कि विलम्ब मेरी ही तरफ से नहीं होता।

आपकी इच्छानुसार पुस्तक लिखने की बात गोप्य रहेगी।[1]

१. 'प्रेमचन्द्र और उनका युग'।

आप चाहते हैं कि शैली अधिक दुरूह न हो, इसका ध्यान रखूँगा ।

"विद्यार्थियों को यह अवसर न मिल जाये कि वे यह कहकर विरोध करें कि इसमें तो साम्यवाद-ही-साम्यवाद है ।" मैं कोशिश करूँगा कि मेरी किताब में प्रेमचन्द-ही-प्रेमचन्द हों, उनके सिवा कुछ न हो । लेकिन विरोध बिना अवसर और दलील के भी हो सकता है, यह याद दिलाना असंगत न होगा ।

आप असमंजस में न पड़ें, मैं भरसक पाण्डुलिपि १५ अगस्त को भेज दूँगा कि आपको १५ अगस्त को मिल जाय । "ज़रा प्रगतिवादी टच कम ही देने की कृपा करें, उतना ही जितना कि आप अपेक्षित समझें, क्योंकि पुस्तक छात्रों के हाथों में जानी है इससे आपके परिश्रम को भी हानि पहुँचने की आशंका है ।'

मेरे विचारों से आप परिचित होंगे, जो मैं लिखूँगा, जिस पर लिखूँगा, उन विचारों के प्रभाव से । कितना टच अपेक्षित है, कितना अनपेक्षित, इसका फैसला मैं आप पर छोड़ दूँगा । यदि पुस्तक से आपके प्रकाशक को नुकसान होता दिखाई दे, तो पाण्डु-लिपि वापस कर दीजियेगा । मैं ढाई सौ रुपया मनीआर्डर से भेज दूँगा ।

आशा है आपका असमंजस दूर हो जायगा और आपकी स्थिति को इस पत्र से इत्मीनान हो जायगा ।

आपका अपना,
रामविलास शर्मा

श्री वीरेन्द्रकुमार जैन

भारती
(भवन की पत्रिका)

भारतीय विद्या भवन
चौपाटी पथ, बम्बई
दिनांक ६-८-६३

प्रिय भाई,

आपका कृपा-पत्र मिला । लखनऊ के मित्र का उत्तर आपको मिल गया होगा । मुझे उधर से तो अब अमृताजी की प्रति[1] मिलने की आशा कम ही है । बड़ी कृपा हो यदि आप स्वयं ही शीघ्र एक प्रति मेरे पते पर भिजवा दें । अब तो बहुत विलम्ब हो गया है ।

अपने काम की एक बात में मैं आपका सहयोग चाहता हूँ । 'हिन्दी के लोकप्रिय कवि' सीरीज़ में अब तक काफी नीचे तक की श्रेणी के कवि कवर हो चुके हैं । जहाँ तक मुझे मालूम है वह पुस्तक-माला—आपका ही आयोजन है ।[2] आप ही से पूछता हूँ, क्या मेरा कवि उस पुस्तक-माला में जाने योग्य नहीं ? आधुनिक होते हुए भी मेरी कविताएँ

१. 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' ।
२. यह श्री वीरेन्द्रजी का भ्रम है । सुमनजी ने इसका प्रतिवाद अपने उत्तर में कर दिया था ।

बहुत व्यापक रूप से लोकप्रिय हुई हैं। यदि आप उस पुस्तक-माला में मेरे कवि को भी आने लायक समझें और वैसी योजना बना सकें, तो मैं एक अधिकारी मित्र का नाम आपको सुझाऊँगा, जो मेरी कविताओं का यथेष्ट संकलन-सम्पादन करके एक अत्यन्त प्रामाणिक भूमिका भी लिख देंगे। आपके स्नेह सहयोग के प्रति प्रत्याशित रहूँगा। आशा है सानन्द होंगे।

आपका भाई
वीरेन्द्रकुमार जैन

डॉ० कुमारी अमृता भारती

लवली हाउस
सान्ताक्रुज, बम्बई–५५
८ ३ ६४

आदरणीय श्री सुमनजी,

आपका कृपा-पत्र मिला। माताजी के निधन का दुखद समाचार सुनकर मेरा मन बड़ा दुखित और कातर हो आया। आद्यन्त रूप से तो माँ ही एक मात्र वह 'प्यार' है जो हमें अन्तिम आश्वासन और सुरक्षा देती है। यों इस प्यार की सघन-छाया इतनी बड़ी होती है कि न रहने पर भी आवृत्त किए रहती है, तो भी इसके प्रत्यक्ष अभाव ने आपको कितना संतप्त किया होगा, इसका अनुमान मेरा कवि-मन और नारी मन सहज कर सकता है। माताजी की आत्मा के लिए मैं विनत हूँ और आपकी आघात-मुक्ति के लिए प्रार्थना करती हूँ। जल्दी ही आप इस दुख से उबरकर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य-लाभ करें, यह मेरी अन्तर-कामना है।

...उपन्यास की पाण्डुलिपि मैं तैयार कर रही हूँ। आपके निर्देशानुसार मैंने उपन्यास का नाम 'आत्म-स्वीकरण' (कन्फेशन के स्थान पर) रखा है। पूरा नाम होगा, 'देवाशिनी का आत्मस्वीकरण'। पाण्डुलिपि के बारे में मैं एक सम्मति चाहती हूँ, क्या मैं उसे टाइप कराऊँ अथवा मूल लिपि ही भेज दूँ? यदि पाण्डुलिपि ही पूर्ण सुरक्षित रह सके तो मुझे टाइप कराने की झंझट न रहेगी। कृपया आप लिखें। क्या आप 'राजपाल प्रकाशन' से ही छपवाने की व्यवस्था करेंगे?

मेरी बड़ी इच्छा थी कि मेरा कविता-संग्रह पहले छप जाता। मेरी प्रथम पुस्तक कविता-संग्रह हो, यह मेरे कवि के व्यक्तित्व से जुड़ी हुई बात है। यों प्रकाशन के क्षेत्र में कविता की परेशानी को मैं समझ रही हूँ, पर अगर यह मेरी 'विशफुल थिंकिंग' न हो और अन्यथा आग्रह न हो तो कृपा कर मुझे इतनी जानकारी और दें कि अगर मैं ३०० रुपये की पूर्व व्यवस्था करूँ तो भी क्या 'राजपाल प्रकाशन' से संग्रह नहीं निकल सकता? बाद में वे मुझे उस राशि के बदले कुछ प्रतियाँ दे दें। संग्रह का नाम शायद मैंने आपको

पहले भी लिखा था, 'मैं तट पर हूँ।'

'नारी तेरे रूप अनेक' तो अच्छा संकलन बना होगा, उसके लिए प्रकाशक न मिला, यह बड़ी विचित्र और साहित्य के लिए निराशाजनक बात लगती है। आपने और कौन-सी पुस्तकें पहले सम्पादित की हैं, अगर आप सुविधा से कभी भिजवा सकें तो बहुत आभार मानूँगी।

एक आग्रह और सुझाव मेरा और है। आप क्यों नहीं 'नई कविता' की इन कवयित्रियों का एक संकलन रचना-प्रक्रिया और परिचय के साथ सम्पादित करते? आपके सम्पादन में इन कवयित्रियों को तो यश मिलेगा ही, शायद पुस्तक को भी धन मिले। कवयित्रियों में कान्ता, कीर्ति चौधरी, निर्मला वर्मा, रमा सिंह, प्रेमलता वर्मा, स्नेहमयी चौधरी, अमृता भारती आदि हो सकती हैं।

मैं ज्यादातर अनुवाद ही करती हूँ मौलिक लेखन के अलावा। यही मेरी जीविका और जीवन है। कभी फिक्शन में या शॉर्ट में या पोएट्री में कोई अच्छी चीज अनुवाद के लिए हो तो आप भिजवाने की व्यवस्था करें। अनेक पाकेट बुक्स भी निकलती रहती हैं, कृपया आप ध्यान रखें।

आप अपने स्वास्थ्य के बारे में लिखें। आपका चित्त स्थिर हो, यह मेरी मंगल-कामना है। पत्र दें।

सादर
अमृता भारती

श्री केदारनाथ अग्रवाल

बांदा (उ० प्र०)

आदरणीय सुमनजी,

आपका कृपा पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपको मेरी भेजी रचनाएँ पसन्द नहीं आईं और आपने अपनी नापसन्दी स्पष्ट शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर दी। मुझे सदैव ही सत्य के प्रति ममत्व रहा है। आपने हृदय से सत्य कहा है इससे मैं किंचित् दुःखी नहीं हुआ। अब 'नींद के बादल' से दो गीत भेज रहा हूँ। शायद वे रुचें। रुचें या न रुचें, मुझे पत्र अवश्य लिखें और लिखते रहें, ताकि मैं अपने काव्य और विचार को सही दिशा में ले जाने में समर्थ रहूँ। सबसे बढ़कर यही रहते-रहते कभी-कभी भ्रमों के जाल में फँस जाता हूँ। आप सबका सहयोग ही मुझे उबारे रह सकता है।

आपको मेरा लेख पसन्द आया। यह मेरा सौभाग्य है। परन्तु यह लिखते कि आखिर क्या बात उसमें ऐसी थी जो पसन्द आई। केवल तारीफ न लिखकर अपनी टिप्पणी भी लिखा करें तो रुचि का परिष्कार भी होता रहेगा।

आशा है कि आप आनन्दपूर्वक हैं। मैं सकुशल हूँ। पत्र भेजें अवश्य।

आपका कृपाकांक्षी,
केदारनाथ अग्रवाल

श्रीमती प्रकाशवती

पटना

१६-४-६३

सुमन भैया,

'नवभारत टाइम्स' में देखा कि बस दुर्घटना में आप घायल हो गए हैं और ईश्वर की अनुकम्पा से आपकी जान बच गई !

पहली पंक्ति में जितना स्पष्ट हुआ था, यह जानकर कि आपने बयान भी दिया है, सन्तोष हुआ। आप अब कैसे हैं ? लौटती डाक से उत्तर दिलवाइये। कहां चोट आई। आप अगली सीट पर ही थे न ?

भाई, अपने बाल-बच्चों के भाग्य से आप शतायु हो। अभागिनी हिन्दी माँ की गोद में आप सौ वर्ष खेलें और इस दुखियारी बहन की शुभकामनाओं से भी स्वस्थ सानन्द रहें। मुझे कितना भरोसा है इस पृथ्वी पर मेरा भी एक भाई है। मैं पुन प्रार्थना करती हूँ, अपना कुशल शीघ्र ही भेजें। आपको कोई ऐसी चोट तो नहीं आई ?

आए दिन बस-दुर्घटनाएँ हुआ ही करती है, फिर आप बस की सवारी क्यों करते है ?

सुमन भैया, भगवान् मेरी भी उम्र आपको ही दे दे और आप स्वस्थ प्रसन्न रहकर हिन्दी का भण्डार भरते रहें। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि टालेंगे नहीं, लौटती डाक से खबर देंगे। बच्चों का प्रणाम लें।

आपकी मगल-कामना में

मेरा लड़का दिवाकर, जिसे आपने देखा था वह भी बहुत उत्सुक है। पूछ रहा है कि आप अब कैसे हैं ? पत्रोत्तर जल्दी दें।

आपकी बहन—

प्रकाशवती

कुमारी निर्मला तलवार

बंगीय हिन्दी परिषद्

१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता—१२

दिनांक १३-११-१९६३

श्रद्धेय सुमनजी,

आपका कृपा पत्र मिला, आभारी हूँ। स्नेह और सौजन्य की सुगन्ध तो आप अपने साथ लेकर चलते हैं, और सर्वत्र विकीर्ण करते है, फिर भला दूसरों के स्नेह और सौजन्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की बात कहाँ रहती है ? वह तो आपकी अपनी वस्तु है।

एक दीर्घ काल से आपकी प्रतीक्षा थी और अचानक आपका टेलीफोन पाकर जो प्रसन्नता हुई, उसे व्यक्त करना सम्भव नहीं।

बंगीय हिन्दी परिषद् के फलने-फूलने का आपने आशीर्वाद दिया है। आपने हिन्दी-भवन और विशाल पुस्तकालय की बात कहकर अनेक लोगों के हृदय की बात कही है। मुमनजी, यह एक सात्विक स्वप्न है। हम लोगों के सामने गुरु-ऋण चुकाने का अवसर उपस्थित है। नहीं जानते किस दूरी तक उसे चुका सकेंगे। हिन्दी-भवन बन जाने पर निश्चय ही आचार्यजी[1] की आत्मा को प्रसन्नता होगी। क्या वह हम लोग कर सकेंगे ? कैसे ?

परिषद् को आप-जैसे समर्थ कुछ व्यक्तियों का यदि सहयोग मिल सके तो निश्चय ही वह बहुत कार्य कर सकती है। परिषद् के करीब ३० प्रकाशन हैं, उनमें से अनेक ऐसे हैं जो हमारे देश के सैकड़ों पुस्तकालयों के मूल्य को बढ़ा सकते हैं—पर वहाँ तक वे पहुँचे कैसे ? हमारी सरकार प्रति वर्ष हजारों-लाखों रुपयों की पुस्तकें खरीदती है, पर किस तरह वहाँ तक पहुँचा जाता है, यह हम नहीं जानते।

राज्य सरकारें और केन्द्रीय सरकार हिन्दी के विकास प्रचार-प्रसार के लिए बड़े-बड़े अनुदान देती हैं—पर वे लोग कैसे हैं, जो उन्हें प्राप्त कर सकते हैं ?

इसमें दो मत नहीं हैं कि अर्थ का बहुत बड़ा महत्त्व है। वह साधन ही नहीं, साध्य नहीं, फिर भी तो महत्त्वपूर्ण साधन है, साध्य भी उसका मुखापेक्षी हो जाता है। इस कठिनाई को प्रतिदिन अनुभव करते हैं—'प्रचार' केवल आदर्श है 'आचार' ही सत्य है। 'प्रचार' को जीवित रखने के लिए भी 'आचार' अनिवार्य है और यही आपने उस दिन कहा भी था।[2]

परिषद् की 'प्रसाद-पुस्तिका' आपके निकट प्रसाद पाने के लिए ही रखी गई थी—आपने उसमें कुछ लिखा नहीं। जल्दी में थे और मैं भी स्मरण न दिला सकी।

परिषद् के प्रकाशनों की वृद्धि में भी आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग हो सकता है—कृपया वह पथ बताएँ जिससे साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत पुस्तक प्रकाशनार्थ परिषद् पा सके। क्योंकि उसकी बिक्री शीघ्र हो सकती है। उससे परिषद् को लाभ होगा। बिना किसी औपचारिकता के सब बातें कह दी हैं। वहाँ तो कह सकने का अवसर ही नहीं पा सकी थी।

दीपावली की मंगल-कामनाओं सहित—

विनीता—
निर्मला तलवार

१. आचार्य श्री ललिताप्रसाद सुकुल।
२. 'बंगीय हिन्दी परिषद्' की ओर से ९ नवम्बर १९६३ को आयोजित मुमनजी के स्वागत-समारोह के भाषण की ओर संकेत है।

श्री बालकृष्ण बलदुवा

रामगंज, कानपुर
२१-१०-६२

प्रिय सुमनजी,

आशा है आपको 'आदर्श, अवसाद और आस्था' थोड़ी-बहुत पढ़ने का अवकाश मिल सका होगा।

क्या यह सम्भव होगा कि दिल्ली के किसी अच्छे प्रकाशक-विक्रेता से आप इसके सोल डिस्ट्रीब्यूटरशिप का अनुबंध मेरा करा देवें ? जो शर्तें आप उचित समझेंगे, वे मुझे मान्य होंगी। मुझमें पूछने की कोई आवश्यकता नहीं शर्तों के सम्बन्ध में। आप अनुभवी हैं। आपके द्वारा मेरा हित होना निश्चित है। मेरी आजीविका तो इससे है नहीं। केवल यही चाहता हूँ कि अच्छी विक्रय-वितरण-व्यवस्था हो जाने से पुस्तक पड़ी नहीं रहेगी।

अपने व्यस्त कार्यक्रम में देर-सवेर थोड़ा-बहुत इसका ध्यान रख सकें तो रखिये।

विशेष भेंट होने पर

सस्नेह
बा० कृ० बलदुवा

श्री देवेन्द्रनाथ 'प्रशान्त'

द्वारा 'पूर्वज्योति' साप्ताहिक, गौहाटी
२२-३-१९६६

श्रद्धेय सुमनजी,

आपको सम्भवतः मेरा स्मरण हो। जुलाई १९५३ में श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के 'नया जीवन' कार्यालय में मुलाकात हुई थी। मेरे पास सूचना आई है कि आपकी अर्द्धशती-पूर्ति पर आपको एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया जाने वाला है। उसके विषय क्रम से ज्ञात हुआ कि आपका जीवन अद्भुत अनुभवों का भण्डार रहा है तथा अध्ययन एवं चिंतन की दोहरी ज्योति से आप निरंतर साहित्य-सेवा में लीन रहे हैं। मेरा सुझाव है कि सितम्बर ६६ में ही आप हिन्दी-जगत् के सम्मुख अपनी 'आत्मकथा' भी प्रस्तुत करें। आशा है, इस ओर ध्यान देने का कष्ट करेंगे।

फरवरी, ६६ के 'नया जीवन' में 'समय और हम' शीर्षक से श्री प्रभाकरजी ने जैनेन्द्रजी के सम्बन्ध में एक जोरदार टिप्पणी दी है। आप तो जैनेन्द्रजी से खूब परिचित हैं। सूचना दें आखिर 'अपरिग्रही' जैनेन्द्र 'शोषक' कैसे बन गए ? जब आप-जैसे मिशनरी, सहृदय, हिन्दी साहित्य के भामाशाह दिल्ली में ही हों तब भी श्री वीरेन्द्र के प्रति अन्याय क्यों ? आशा है, मेरे इस कार्ड को गम्भीरता पूर्वक लेकर उत्तर देने का कष्ट करेंगे।

भवदीय,
देवेन्द्रनाथ 'प्रशान्त'

श्री रामेश्वर गुरु

दीक्षितपुरा, जबलपुर
२८ सितम्बर, १९६६

प्रिय भाई, स्नेह

आपका पत्र मिला, खुशी हुई—इसी बहाने आपसे पत्र-व्यवहार हो जाता है, अन्यथा समाचार पाने का और प्रसंग ही क्या ! यह कार्य[1] भी आपका परम स्तुत्य है। इस बहाने सभी रचनाओं का संग्रह एकत्रित हो जाएगा और नारी-सम्बन्धी विविध शब्द-चित्र पाठकों को देखने को मिल सकेंगे। पूज्य पिताजी[2] की 'बेटी की बिदा' बड़ी करुण और अमर रचना है और इस ओर तो माताओं को अश्रु-भरी आंखों के साथ कण्ठस्थ है। इसीके साथ उन्होंने 'बहू की अगवानी' नाम की रचना भी की, जिसमें सास-बहू को स्वागतमय स्वीकार कर टाटस देती है। आपके पास हो तो इसे भी संकलित करें। इस तरह के विशिष्ट संग्रहों की साभ्ययन आवश्यकता है। प्रकृति-संकलन, देश-प्रेम-संकलन, अग्नि-संकलन आदि का प्रयास होना चाहिए। मैंने इस दिशा में प्रयत्न किये हैं पर केवल स्वान्तः सुखाय—एन्थालाजी ऑफ सागर पोयम्स और विद्रोह-संकलन प्रकाशकों के अभाव में धीमी हो गई है। अस्तु विषयान्तर हो गया।

नारी-सम्बन्धी कविताएँ पुरानी पत्रिकाओं में अनेक हैं। आप देख लें, जिससे प्रयास अधूरा न रहे। मैंने अपनी बहन, भतीजी और बच्चों की शादियों में स्नेह-भेंट में कुछ चीजें दी थीं। इनमें कविताएँ संग्रहीत हैं, अवलोकनार्थ भेजता हूँ। शायद आपका मनोरंजन हो जावे। विवाह-अवसरों पर मैंने कई जगह यही किया है। राजा लक्ष्मणसिंह के अनुवाद-पद्य (शकुन्तला के) बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। मैंने निमन्त्रणों में रखे थे कुछेक। पुरानी फाइलों में और सुन्दर चीजें मिल सकेंगी—'गृहलक्ष्मी', 'श्री शारदा', 'सुधा', 'माधुरी' आदि में।

पूज्य पिताजी का विस्तृत परिचय आप 'कविता कौमुदी' भाग तीन में देख लें तो काफी सामग्री मिल जायेगी। 'हिन्दी के निर्माता' भाग दो में भी जीवनी है। इन पुराने सुधीजनों का विस्तृत वर्णन देना समीचीन होगा, वैसे फिर आप जैसा उचित समझें। जो जानकारी आपने माँगी है वह इस प्रकार है—जन्म—२४ दिसम्बर, १८७५, सागर; मृत्यु—१६ नवम्बर, १९४७ जबलपुर

प्रमुख रचनाएँ—हिन्दी व्याकरण (अनेक संस्करण) हिन्दुस्तानी शिष्टाचार, सुदर्शन (नाटक), अन्त्याक्षरी, पद्य-पुष्पावली, पद्य-समुच्चय।

बाकी सब ठीक है। कृपा बनी रहे। प्रसंग के बाहर मैंने कुछ बातें लिख दी हैं। क्षमा करेंगे।

आपका,
रामेश्वर गुरु

१. 'नारी तेरे रूप अनेक' नामक काव्य-संग्रह का सम्पादन।
२. व्याकरणाचार्य श्री कामताप्रसाद गुरु।

श्री सतीश जोशी

वाजोरिया कालेज,
सहारनपुर
२४-६-६१

श्रीवर सुमनजी,

नमस्कार ! आपका एक सकलन—रामावतार त्यागी की कविताएँ—पहने पढा। बडा रुचा, बहुत सन्तोष हुआ क्योकि कवि और सकलनकर्ता दोनो ही जोड के थे। आपके दूसरे सकलन 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत', जिसका हो हल्ला बहुत दिनो से सुन रहा था, पढा तो उसी अनुपात मे निराशा हुई और भूमिका मे जो दावा अथवा उसके नामकरण करने मे जो स्वग आपने की, वह तो बिलकुल ही निस्सार लगी। हिन्दी का प्रेम गीतो का कोष क्या इतना रीता है कि आपको इतना बडा दावा करने मे सकोच नही हुआ ? बडी अजीब-सी बात है कि हिन्दी का इतना अच्छा पाठक और आलोचक ऐसी भयकर भूल कर बैठे। इस विषय मे लिहाज जैसी चीज नही आनी चाहिए। कुछ मठाके बल पर, कुछ कठ के बल पर, अथवा इतर-ख्याति पाए हुए लोगो को आपने गीतकारो मे बेझिझक निभाया है ? विश्वास नही होता। यह आवश्यक था कि उसमे कवियो का नाम चलता और बाजार से हुए कवियो की सी रेट कविताएँ ही छपती ? अधिक अच्छा होता कि आप नये कवियो—उभरती हुई कलियो से भी कुछ मांगते। पत्र पत्रिकाओ के कृपा पात्र कूडाकार गीतकार किसी भी रूप मे सकलन मे आने के अधिकारी है ऐसा मै नही मानता—शायद आप भी नही मानते होगे।

दूसरी बात, आपने गीतकारो और कवियो मे अन्तर जानने की कोशिश नही की। अज्ञेय अथवा नगेन्द्र कदापि गीतकार नही है, और न विश्वम्भर 'मानव' या बालकृष्ण राव ही। फिर क्या उनको सकलन मे लाने का मोह अविवेक नही है ? या कोई और बात—वरना आपको यह चाहिए था कि उत्कृष्ट गीतकारो—नये और पुराने दोनो ही—से रचनाएँ लेकर स्वय उनका चुनाव करना चाहिए था। रामावतार त्यागी की और बहुत-सी रचनाएँ है—बच्चन ने बडे प्यारे-प्यारे गीत लिखे है, फिर क्या उनका कबाडा ही छपना जरूरी था ? इससे कही अच्छा होता कि आप नये गीतकारो को भी प्रश्रय देते या अच्छे कवियो के ही दो-दो या तीन-तीन गीत दे देते। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' या 'धर्मयुग' मे कविता छपना और बात है और सुन्दर गीत और बात। यहाँ तो मचीय कविता और कविता मे भी फर्क पड जाता है। 'तन्मय' गीतकार नही है—'दिनेश' भी अब गीतकार नही रहा—इसी तरह और भी है। आपने कई तुकबन्दी या शब्द-जाल वाले तथाकथित गीतकारो को बिना बात के स्थान दिया है—शायद लिहाज मे ही ऐसा किया होगा। मै ऐसे कई गीतकारो को—जिनमे मै भी शामिल हूँ—जानता हूँ जिनकी रचनाएँ किसी भी पत्र पत्रिका की कृपापात्र नही बन सकी परन्तु उन सबसे कही अच्छा लिखते है जो छपने

है और खूब छपवाते हैं। आपको यह बात आलोचक की-सी ईमानदारी से सोचनी चाहिए। यह पत्र मैंने इसलिए लिखा है क्योंकि आपने घोषणा की है कि आप कविताओं और गीतों की एक सन्दर्भ पुस्तक छापने जा रहे हैं, यदि मेरा—कुछ उपादेय हो सका तो स्वयं को धन्य समझूँगा। साथ ही इस काम में हमारा भी योग लीजिए—निवेदन है।[1] इस पुस्तक के विषय में लिखने को बहुत था, परन्तु स्थान नहीं है। फिर कभी।

उत्तर यदि दे सकें तो अच्छा है।

आपका,
सतीश जोशी

सुमन तुम्हें भी नहीं विवेक !

जिसका अब तक पार न पाया
ऋषि-मुनियों ने धोखा खाया
सठियाई मति, चले देखने—
उस नारी के रूप अनेक !

भीका 'व्यास', तनिक बौराया
'रंग' उठा, भदरंग बनाया
'नीरज' आज प्यार में पिछे,
नीकी-नीकी सैंडिन टेक !

अनुभव मित्र तुम्हें भी तो है
अच्छा-बुरा ठीक है, जो है
बहुत वृद्ध हैं सम्मानित रख—
ठिठुरी लकड़ी से मत सेंक !

व्यर्थ देखना दोष पराए
सब सबके बाँटे कुछ आए
इसमें छेक, तो उसमें छेक,
बात एक, यह काम न नेक !
सुमन, तुम्हें भी नहीं विवेक ?[2]

१. 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' और उनके सम्पादक पर श्री सतीशजी के आक्रमण और आक्रोश का मूल कारण उक्त पत्र का अन्तिम अनुच्छेद व्यक्त करता है।

२. 'नारी तेरे रूप अनेक' के सम्पादन की सूचना पाकर किसी अज्ञातनामा व्यक्ति (नर या नारी) ने स्थान, दिनांक, नामरहित पत्र भेजकर अपने विचार व्यक्त किए हैं। श्री सुमनजी ने यह पत्र ज्ञानोदय में 'पताक' में भी प्रकाशित कराया है।

श्री आरसीप्रसादसिंह

प्रो० एरौत, थाया रोसड़ा, दरभंगा
गांधी जयन्ती २ १०-१९५३

प्रिय महाशय,

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास में इस बात का उल्लेख कर गए हैं कि आरसीप्रसादजी और बच्चनजी समकालीन थे, यद्यपि भविष्य में इस बात की सिद्धि भी की जायगी कि बच्चनजी से पूर्व आरसीजी आये। ऐसी स्थिति में 'बच्चन के बाद के हिन्दी कवियों' में आरसी की चर्चा करने का क्या तात्पर्य हो सकता है। कृपया यह स्पष्ट करें।[1]

आरसी प्रसादसिंह

श्री हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ४
१ १२ ६४

परमादरणीय भाई सुमनजी,

सादर सविनय प्रणाम !

भाई श्री रामनारायण शास्त्रीजी के द्वारा आपके सम्बन्ध की वह पुस्तिका मिली, जिसमें आपके समग्र जीवन पर हापुड़ साहित्य परिषद् की ओर से प्रकाश डाला गया है। अपने साहित्यिक जीवन की ऐसी सफलता पर मेरे-जैसे स्नेही की हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

मेरी एक आपसे बड़ी शिकायत है कि मेरे-जैसे गौण बन्धु का स्मरण आप कभी नहीं करते। जो तालाब मनुष्य, शेर, हाथी, गाय, बैल, पक्षी आदि की प्यास बुझाता है, वह छोटे छोटे जीवों को भी अपना पानी देता है। ऐसी अवस्था में पता नहीं, आपके यहाँ मैं क्यों वंचित रह जाता हूँ। इसी तरह 'सुमन' सबके लिए सुगंध बिखेरता है।

आपकी जीवन रेखा पुस्तिका से ही ज्ञात हुआ कि आपने जस जीवन व्यतीत किया है। जिस भीषण संघर्ष से गुजरते हुए आपने सफलता की सीढ़ी तैयार की है, वह प्रत्येक संघर्षशील के लिए उत्प्रेरक है। ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिए आपको कितनी बधाई दूँ। पता नहीं चलता। खैर। जो हो, दिनानुदिन आप प्रगति के पथ पर द्रुतगति से अग्रसर होते रहें। मेरी यही प्रभु से प्रार्थना है। क्या निकट भविष्य में पटना आना सम्भव है ?

१. और यदि आरसीजी कहीं यह पूछ बैठें कि बिहार के पोद्दार रामावतार 'अरुण' आरसी से कम आयु के नये कवि हैं फिर उन्हें भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' से क्यों अलङ्कृत किया गया, तब तो सुमनजी और भी अधिक धर्म-संकट में पड़ जाएँगे।

सुना है, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' वाले आपके मित्र हैं। वहाँ मेरी एक रचना, जिसकी स्वीकृति भी मिल गई थी, आज तीन वर्ष से सड़ रही है। उसका शीर्षक था— 'वैतरणी के किनारे'। इसके साथ तीन चित्र भी थे। यह यात्रा-वर्णन था। पर वह छपा नहीं, माँगने पर भी न लौटाया गया, न कोई जवाब मिला। क्या आपके द्वारा उसका उद्धार सम्भव हो सकेगा? शेष कृपा भाव।

आपका स्नेह
हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'

समस्याओं के नैवेद्य

•

श्री बालकृष्ण

हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रा० लि०
पो० बा० न० १५५८, दिल्ली-३२

प्रियवर सुमनजी,

आनदजी को तो आप जानते ही है। आप ठहरे दिल्ली के लेखको के 'पीर'। देखिए अल्ला मियाँ से कोई आदमी सीधे नही मिल सकता—पीरो-मुर्शिदो के जरिये ही उस तक रसाई हो सकती है। तो आप इन्हे कलम के अल्लामाओं से मिला दें। वक्त थोड़ा रह गया है। जरा तकलीफ कीजिए ताकि इस अल्लाह के नये बन्दे का काम हो जाए। मैं तो बुजुर्ग हो गया हूँ—लोगो को सिर्फ दुआएँ दे सकता हूँ। और मैं इनके लिए दुआगो हूँ।

बालकृष्ण

श्री चन्द्रसेन

ज्ञान धाम, शाहदरा, दिल्ली-३२
१४-३-६०

प्रिय सुमनजी, नमस्ते।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे आपका लेख पढा। मैंने बनारस मे पढा था। आज ही लौटा हूँ। आपने उन्हे 'स्वर्णकार जाति' मे पैदा होना लिखा, सो किस आधार पर ? हम किस जाति के है यह हमसे पूछ लेते तो सही जानकारी मिल जाती। हम चौहानवंशी क्षत्रिय है। हमारे पिताजी ने 'स्वर्णकारी पेशा नही किया, न सिकन्दराबाद मे लेमसेनजी रह रहे हैं—वे ही कर रहे है। शास्त्रीजी ने भी कलम ही पकडी—यह आप जानते हैं। फिर स्वर्णकारी तो पेशा है, जाति नही है। फिर भी पता नही आपने यह सब कैसे लिख दिया। बहुत दुःख है।

अब किसी दिन आइए तो 'स्मृति-अक' और 'चतुरसेन-भवन' की बात का प्रोग्राम निश्चय किया जाय और कार्य शुरू हो। आचार्य जी दिल्ली के हीरा-जैसे अमूल्य

रत्न थे और शाहदरा मे आप ही उनके अन्यतम मित्रो मे है। अत आपको तो यहा मेरे पास जल्दी-जल्दी आकर उनकी ये दोनो स्मृतियाँ पूर्ण करानी चाहिएँ। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के फोटोग्राफर से कहकर हमे फोटो तो भिजवाइए। मैं कई बार मूल्य देने को भी कह चुका हूँ।

चन्द्रसेन[1]

श्री कल्याणसिंह वैद्य

द्वारा इम्पायर इलैक्ट्रिक क०
सिनेमा रोड, अजमेर
२२-३-६०

प्रिय सुमनजी सप्रेम नमस्ते

आपका कृपा पत्र मिला और कार्ड भी, जो पुत्री लक्ष्मीदेवी के लेख की स्वीकृति के लिए लिखा था। प्राप्त हुआ। पत्र का उत्तर निम्नलिखित है—

१ निश्चय ही श्री आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री स्वर्णकारों की जाति मे उत्पन्न हुए। ये उत्तर प्रदेश के, राजपूताने के, पजाब और बिहार के और दक्षिण के भी मैढ स्वर्णकार अपनी जाति को क्षत्रिय मानते है। कुछ तो कहते हैं कि हम राजा अजमीढ चन्द्रवशी के घराने मे हैं। कुछ विद्वानो की राय है कि इस मैढ सघ मे भाँति-भाँति का और विविध घराने मे क्षत्रियो का सगठन और मेल है और जैसा कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे दो प्रकार के क्षत्रिय माने हैं—एक शस्त्रोपजीवी, दूसरे वार्ताशस्त्रोपजीवी। अर्थात् एक सर्वथा सिपाही, दूसरे युद्ध के समय शस्त्र ग्रहण करने वाले और दूसरे खाली समय मे वार्ता (रोजगार धन्धा कला) के द्वारा जीवन चलाने वाले। सो ये मैढ क्षत्रिय द्वितीय श्रेणी

1. श्री चन्द्रसेन स्व० आचार्य चतुरसेनजी के अनुज हैं। आचार्य जी के देहावसान के बाद श्री सुमनजी की प्रेरणा और तत्परता से 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' दिल्ली ने 'चतुरसेन अक' प्रकाशित किया। इस अक मे स्व० आचार्य चतुरसेन जी की पत्नी श्रीमती कमलादेवी ने सुमनजी के प्रति आभार प्रकट करते हुए इस सत्य को स्वीकार किया है कि उन्हीके सत्प्रयत्न से 'चतुरसेन अक' प्रकाशित हो सका है। उस अक मे श्री सुमनजी ने आचार्य चतुरसेन का जीवन-परिचय लिखकर प्रकाशित कराया, जिसमें आचार्य जी को स्वर्णकार जाति का माना है। इस लेख को पढकर श्री चतुरसेन जी के अनुज श्री चन्द्रसेन के मन मे जो प्रतिक्रिया आरम्भ हुई उसका आभास इस पत्र मे प्रकट होता है। यह पत्र 'होम करते हाथ जला' वाली कहावत चरितार्थ करता है। चन्द्रसेन जी का पत्र पाकर सुमनजी ने प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए स्व० आचार्य चतुरसेनजी के प्रथम श्वसुर श्री कल्याणसिंहजी को पत्र लिखकर आचार्यजी की जाति पूछी तो उन्होंने लिखा कि आचार्य जी स्वर्णकारों की जाति में ही उत्पन्न हुए और उनके दो विवाह स्वर्णकारों के यहाँ हुए। श्री कल्याणसिंह जी का पत्र भी प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक

मे आते है। सिंध और फारस मे इनके राज्य भी रहे और युद्धों का भी जिक्र प्राचीन इतिहासों मे है। इनमे, परमार, खींची, कटारिया, वज्जी, विराटीय, झाला, तँवर, राणावत आदि नाना राजपूत गोत्रो और घरानो के क्षत्रिय सम्मिलित है जो समय समय पर तलवार छोडकर कला का जीवन व्यतीत करने लगे और मैढ सघ मे शामिल होकर एक जाति बिरादरी या श्रेणी मे सगठित हो गए और प्रथम श्रेणी से कट गए।

शास्त्रीजी अपनी वश परम्परा चौहानो से मिलाते है जैसा कि उनके भाट और चारण परम्परा पेश करते हैं। जो कुछ भी हो, आपको एक साहित्यकार के जीवन मे उसके साहित्य को लेकर ही आलोचना करनी चाहिए और जाति-पाँति के निरर्थक झमेलो मे न पडना चाहिए। वह चाहे जिस घराने मे पैदा हुआ हो। शास्त्रीजी जाति पाँति को मिथ्या समझते थे।

२ उनका प्रथम और द्वितीय विवाह तो मैढ स्वर्णकारो की जाति मे ही हुआ। परन्तु शेष दो विवाह क्षत्रिय घरानों—राजपूतो मे हुए जो बडे जमीदार बनारस के निवासी थे, इस विषय मे बाबू चन्द्रसेनजी से जानकारी प्राप्त करे[1] या उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी और उनकी सास भी प्रकाश देंगी।

३ मुझे जैसा याद है सन् २५ मे पुत्री तारा का देहान्त हुआ था, उसके बाद भी शास्त्रीजी कुछ दिन बम्बई मे रहे हो तो हो सकता है। इस विषय मे उनके लेख को ही प्रमाण माने।

४ उनके पिता के जन्म और उनका विवाह इस झमेले मे न पडना चाहिए यह निरर्थक है।

५ मैने अपनी पुत्री की सगाई तब की जब चतुरसेनजी की उमर १५ वर्ष की थी और छ वर्ष बाद जब वे आचार्य परीक्षा पास कर चुके इक्कीस या बाईस वर्ष के थे तब विवाह किया। मेरी पुत्री १६ वर्ष की थी। हिन्दी मिडिल तक की उसकी शिक्षा थी। वह संस्कृत भी पढी थी और आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद विशारद परीक्षा भी उसने पास की थी।

जयपुर किस सन् तक रहे। मैं समझता हूँ सन् १२ तक या अधिक।

विवाह सन् १२ मे हुआ। विशेष डॉ० युद्धवीरसिंहजी से ज्ञात करे। इसके बाद वे दिल्ली मे सेठ रघुमल के औषधालय मे प्रधान वैद्य पद पर लग गए थे। जयपुर वे सन् १९०६ मे चले गए थे। या कुछ पहले।

६ सन् १६ मे वे अजमेर मेरे औषधालय मे आ गए और मैं डी० ए० वी० कालेज लाहौर मे चला गया।

अजमेर मे प्लेग सन् १८-१६ मे फैला। यह जर्मन युद्ध के बाद का समय था। तब ही प्लेग मे काम करने के बाद ही उन्होने अपना तजर्बा 'प्लेग-विभ्राट' मे लिखा था।

लाहौर सन् १७ मे गए थे और सन् १८ मे लौट आए थे।

१. चन्द्रसेन जी की जानकारी का नमूना तो उनका पत्र है।

बम्बई सन् २० मे चले गए।

विशेष और जो कुछ भी पूछेंगे उत्तर दूंगा। परन्तु मेरी राय है कि ऐतिहासिक और जीवन-चरित्र की घटनाओं मे कम और साहित्यालोचन मे अधिक लिखें और विशेष विचार करें।

कल्याणसिंह वैद्य

श्री इन्दुकान्त शुक्ल

१२।४, डब्ल्यू० ई० ए०, नई दिल्ली ५
२२ अप्रैल, १९६३

श्रद्धेय सुमनजी,

उत्तर-पुस्तिकाओं मे बहुत व्यस्त हूँ। यात्रा भी करनी है बम्बई की ओर। इन्हीं कारणों से आ न सका। यात्रा से लौटकर भी काफी व्यस्त दिन कटेंगे यहाँ। तब आपका आदेश होगा तो मिलूंगा। यह पत्र विशेष स्वार्थ या परमार्थवश लिख रहा हूँ।

मेरे एक मित्र—अन्तरग—अर्थशास्त्र से दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रथम श्रेणी प्राप्त, अमेरिका की एक यूनिवर्सिटी मे छात्रवृत्ति पा गए हैं। यात्रा-व्यय उनके पास नहीं है। स्वावलम्ब मे, क्लर्की के माध्यम मे वे निरन्तर बढते रहे है। प्रतिभाशाली तथा चरित्रवान जीव हैं। मैं चाहता हूँ ३०००) की रकम या तो उन्हे कुछ उद्योगपतियो से छात्रवृत्ति के रूप मे मिल जाए या मामूली, नाममात्र के ब्याज सहित। ३ वर्ष बाद वे दे सकेंगे। इसे मेरा कार्य समझिए। जीवन के इन मौकों पर यदि उचित सहायता मिल जाय और हम निमित्तमात्र बन सकें, तो कोई जीवन प्रशस्त और प्रकाशपूर्ण बन सकता है। या तो आप सूर्यभान जी (कुरुक्षेत्र) के माध्यम से शिक्षा मत्रालय से कर्ज़ दिला दें। इस तरह की एक योजना है जिसमे विदेश अध्ययनार्थ यात्रा-व्यय कर्ज़ मिल सकता है सरकार से। पर त्वरा तथा बल की आवश्यकता है। मैं तो इतना भाग्यशाली न हुआ कि खुद कुछ अध्ययन करने जा पाता, पर किसी को यात्रा-व्यय के अभाव मे, छात्रवृत्ति पाने पर भी, न जाने को मिले, यह बात दिल को बहुत कचोटती है। उनके पास तो, वेतनभोगी होने के कारण, कुछ न होगा। २०००) का भी उपाय होता तो सम्प्रति बडा काम बनता। न मैंने उनसे वादा किया है, न मैं आपको व्यर्थ कष्ट दूंगा। लेकिन जो सुविधाएँ मुझे न मिली और जीवन बुझ गया, वे सुविधाएँ यदि कोई आत्मीय पा सके, जीवन-पथ प्रशस्त बना सके तो मुझे हार्दिक सन्तोष-सुख होगा। आपके लिए कुछ बहुत असाध्य तो नहीं है यह। नही मैं बार-बार मांगूंगा। अपने लिए कभी कुछ न मांगूंगा ऐसा।

यदि आप इस दिशा में कुछ कर दें तो उपकृत होऊँगा। निस्संकोच मुझे एक पवित का पत्र दे दें, ताकि मैं आपके निर्णय से अवगत हो सकूं। मेरे मित्र के जीवन का

* स्व० आचार्य चतुरसेनजी की पहली पत्नी के पिता।

आरम्भ है, यदि इस अरुणोदय में सुमन-सम्पदा मिल सके उन्हें, तो मैं गौरवान्वित तथा ऋणी होऊँगा आपका। कुछ आशा हो तो उन्हें बताऊँ।

मुझे दुःख है कि आपको लिखना पड़ा। आप अभी पूर्णतया स्वस्थ भी नहीं हैं। पर जुलाई या अगस्त में उन्हें विदेश-यात्रा करनी है। अतः अभी से सारे काम चालू करने हैं। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को पत्र दे दिया था, रसीद ले ली है।

स्नेहाधीन—
इन्दुकान्त शुक्ल

श्री ओमप्रकाश

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
सेल्स एण्ड रजिस्टर्ड ऑफिस
८, फैज बाजार, दिल्ली–६

प्रबन्ध कार्यालय
लिंक हाउस, मथुरा रोड, नई दिल्ली–१
१७ नवम्बर, १९६२

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'
अजय-निवास, दिलशाद कॉलोनी
शाहदरा, दिल्ली–३२

प्रिय श्री सुमनजी,

मेरठ से कभी 'ललिता' नाम की मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका के १९१९-२२ तक के अंकों को हम किस प्रकार देख सकेंगे, इसकी जानकारी केवल आपसे ही मिल सकती है। बहुत अनुग्रह होगा यदि किसी प्रकार कष्ट करके आप इस सम्बन्ध में उत्तर दे सकें।

यदि किन्हीं पुस्तकालयों में इस पत्रिका का होना सम्भव हो तो भी सूचित करें। आशा है आप सानन्द हैं।

आपका—ओमप्रकाश[1]

श्री हरगोविन्द गुप्त

चिरगाँव, झाँसी
३-२-६६

प्रणाम,

जानता हूँ कि भगवान् का दरबार भी अकिंचन अबलों और असहायों के लिए सूना होता है, फिर भी चूँकि आप क्षेमचन्द्र 'सुमन' हैं—इसलिए लिख रहा हूँ। तन-मन और धन सभी से दुर्बल हो रहा हूँ ऐसी स्थिति में आपकी—मित्रों की शुभैषियों की सहायता की अपेक्षा है। पर उसके लिए किसी से दान या दक्षिणा नहीं माँगता, आप प्रकाशकों के

१. उन दिनों श्री ओमप्रकाश राजकमल प्रकाशन के डायरेक्टर थे।

पुरोहित है। यदि इस समय मेरी कुछ पाण्डुलिपियाँ कहीं किन्हीं दामों पर प्रकाशित करा सकें तो कृपा हो—

१ श्रम की सिद्धि, २ चौपाल के चुटकुले, ३ देवताओं की कहानियाँ, ४ बुन्देली लोककथा, ५ सुनो पर गुनो, ६ हमारी सांस्कृतिक एकता के आधार, ७ कविता-संग्रह। कुछ भी उत्तर पा सका तो आभार मानूँगा, विशेष लिखूँगा।

विनम्र-वही पुराना-नया
हरगोविन्द गुप्त

श्री अनूपलाल मंडल

पो० समोली (पूर्णिया)
२४-८-६३

प्रिय भाई सुमनजी,

सादर सप्रेम नमस्कार। आपका पत्र यथासमय मिल गया था। किन्तु कई अनिवार्य कारणों से पत्रोत्तर देने में विलम्ब हुआ। क्षमा करेंगे। पटना से आने पर मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि लोग कितना जल्द भूल जाते हैं। आपने इतनी दूर रहकर भी मेरी जिज्ञासा की, इसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। साहित्यिक बंधुओं में आप ही ऐसे हैं कि आपने याद किया। जिन बंधुओं के साथ रात दिन बैठा करता था, वे सब-के-सब चुप्पी लगा गए, किसी से इतना भी नहीं बना कि जरा भी सुधि तो लें। मगर उन सबको क्या कहूँ! यही दुनिया है और यही इस दुनिया का कारोबार! मैं जिन्दा हूँ। निपट देहात में रह रहा हूँ। न तो अखबारों की यहाँ पहुँच है, और न उनकी चाह! गर्दन के दर्द से परेशान रहता हूँ। जो कुछ कभी दाव में आ जाते हैं, पढ़कर सन्तोष कर लेता हूँ। असल में मैं साहित्यिक हूँ भी नहीं। कलम का मजदूर था, वही मजदूरी करता भी करता रहा। राष्ट्रभाषा-परिषद् के बारह साल, मेरे जीवन में कुछ विशेष महत्व रखते हैं—खासकर आदरणीय शिव भाई (स्वर्गीय आचार्य शिवपूजन सहाय) का सान्निध्य मेरे जीवन में आकाशदीप का काम कर रहा है। मैं जब-जब घबरा उठता हूँ, उनकी वाणी मेरे कानों में गूँजने लगती है। उन्हींकी दी हुई 'विनयपत्रिका' और 'रामचरितमानस' में अवगाहन कर शांति पाता हूँ और जो भी सामर्थ्य है, कुछ चिन्तन में, कुछ साहित्य-सर्जन में लगा रहता हूँ। घर से जो कुछ मिल जाता है, भगवान् को समर्पित कर भोजन कर लेता हूँ। मेरे तीन लड़के हैं, बड़े घर पर ही कुछ खेती-बाड़ी कर लेते हैं, शेष दो में एक 'भारतीय प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व' विषय में एम० ए० करके पटना में ही रह रहा है—सिर्फ ६० रुपये का किरानी होकर, जिसे मन के लायक अब तक सर्विस मिली नहीं और छोटे को वहीं ज्ञानपीठ लि० प्रेस में प्रेस का काम सीखने को छोड़ दिया है। उन दोनों को जब तक कोई ठिकाना नहीं लग जाता, तब तक चिन्ता तो है ही। देखूँ, मंगलमय प्रभु की कब कृपा होती है। पटने में था

तो आप जैसे हितैषी बन्धुओं के यदा-कदा दर्शन भी सुलभ थे, किन्तु अब तो वह भी अक्सर नहीं।

किन्तु मैं तो अपनी ही राम-कहानी कह गया। आजकल आप क्या कर रहे हैं, आपका स्वास्थ्य कैसा है—आदि बातें जानने की इच्छा है। सदैव कृपा बनाये रखिएगा। मेरे लायक जो सेवा हो, निःसंकोच सूचित करते रहेंगे।

सप्रेम—
अनूपलाल मंडल

पुनश्च —

दिल्ली के प्रकाशकों से निश्चय ही आपका परिचय होगा। मैंने एक बड़ा मोटा सा उपन्यास लिखा है, जो छपकर पौने सात सौ पृष्ठों का होगा। यदि आप कृपाकर उसके लिए किसी ईमानदार प्रकाशक की व्यवस्था कर सकें तो मैं निश्चय ही आर्थिक संकटों से मुक्त हो सकूँगा। संभव हो, इस ओर ध्यान रखेंगे। अथवा ऐसा भी प्रकाशक हो जो मेरे पुराने उपन्यासों में दो-चार पंक्टि बुक प्रकाशनों में ले ले। इतना-सा कष्ट उठा सकें तो उत्तम।

अनूप

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

१६२, जावरा कम्पाउण्ड, इंदौर (म० प्र०)
१-७-६३

भाई सुमनजी,

आपका २८ जून का पत्र प्राप्त हुआ। आपकी यह विनम्रता है कि लाहौर में आपका और मेरा जो सान्निध्य रहा उसे आप महत्त्व देते हैं। वहाँ मेरा छोटा-सा घोंसला था जिसमें अनेक पंछी आ बसे थे और एक-दूसरे का स्नेह ही वह सत्त्व था जो हम सबको प्राणवान बनाए हुए था। उस घोंसले को तूफान ने समाप्त कर दिया और सभी पंछी इधर-उधर उड़ गए। प्रसन्नता की बात यही है कि उनमें से अधिकांश पंछी आँधी-तूफानों को पार करके, सुख की साँस ले रहे हैं, चहक रहे हैं और संसार से आदर और प्यार पा रहे हैं।

रह जाती है बात मेरी, सो मेरे भाग्य में तो तूफानों से लड़ना ही लिखा है। संसार के जो थपेड़े मैंने खाए हैं मेरे जीवन की समग्र पूँजी वे ही हैं। मैं कभी व्यावहारिक आदमी बन न सका। अपने लिए मैंने कुछ संग्रह नहीं किया, कल की बात सोची ही नहीं। दुर्भाग्य से परिवार बढ़ता गया और सारे ही बच्चों का दिमाग तेज़ था और सभी की आकांक्षाएँ ऊँची रहीं। मैं यत्न करता रहा कि अपनी कविजनोचित मूर्खताओं के कारण किसी बच्चे की आकांक्षा की हत्या न होने पाए। बड़े-बड़े विपत्तियों के बादल घिरे, आकाश से वज्र

बच्चे, लेकिन मैं उन्हें अपने पखों के नीचे छुपाए रहा, चाहे मुझे भूखो रहना पडा, लेकिन उन्हें अनुभव नही होने दिया कि हम पर किसी प्रकार का सकट है। आज उनमे से प्राय सभी सतोषजनक स्थिति मे हैं लेकिन उनमें से एक भी ऐसा नही जो अपनी आवश्यकता से पहले मेरी आवश्यकताओं को समझता हो और पूर्ण करता हो। यह जीवन का कटु सत्य है जिसे व्यक्त करते हुए भी मुझे लज्जा का अनुभव होता है। मेरे भाग्य मे तो आज भी सघर्ष लिखा है। तब सघर्ष करने मे एक आनन्द था, क्योंकि सोचता था सघर्ष का परिणाम एक स्नेह के निकुज की सृष्टि होगी। आज का सघर्ष अपनी सांसों की डोर को टूटने से बचाने के लिए है।

जीवन के बहुत कडवे-मीठे अनुभव इकट्ठे किए बैठा हुआ हूँ। चाहता हूँ मरने के पहले ससार को दे जाऊँ। कविता या नाटक मे वे समाएँगे नही इसलिए उपन्यासों का माध्यम मुझे लेना पडेगा लेकिन उपन्यास क्या महीने-दो महीने मे समाप्त होते हैं? हजार पृष्ठ से कम का कोई उपन्यास नही और प्रत्येक उपन्यास मे एक वर्ष से कम मेरा श्रम नही लेगा। एक वर्ष काट सकूँ इतनी तो क्या, एक महीना काट सकूँ इतनी भी पूँजी मेरे पास नही। सदा नया कुआ खोदकर मुझे पानी पीना पडता है। प्रकाशक सभी घोर व्यवसायी है और शायद उन्हे विश्वास भी नही कि मैं मार्मिक उपन्यास लिख सकता हूँ, यद्यपि मेरा एक-एक शब्द हृदय के रक्त से लिखा जाएगा।

आपके पत्र ने मेरे हृदय को छू दिया, इसलिए कुछ बहक गया हूँ। अब इस 'इनलैंड लैटर' मे जगह ही नही रही इसलिए बन्द कर रहा हूँ।

आपका अपना,
हरिकृष्ण 'प्रेमी'

श्री अत्रिदेव विद्यालंकार

डी १२/२३ बांस फाटक वाराणसी-१
६-५-६६

श्री सुमनजी,

अभी 'नवनीत' मे आपके परोपकारी स्वभाव का उल्लेख पढ़ा—उसमे पता नहीं दिया था इसीसे श्री वाचस्पति पाठकजी से पता पूछकर पत्र लिखने लगा हूँ। मैं अभी जालधर के आयुर्वेदिक कालेज मे प्रिंसिपल-पद से निवृत्त हुआ हूँ—मेरा आयुर्वेद-क्षेत्र मे साहित्यिक कार्य भी है—इसलिए मैडिकल के पारिभाषिक शब्दकोश या मैडिकल बुक्स की हिन्दी अनुवाद का कार्य मिल जाए तो अच्छा, जो घर बैठे हो सके—पारिभाषिक शब्द-रचना कमेटी मे मेरा उपयोग अच्छी प्रकार हो सकता है—श्री चन्द्रहासन्, डायरेक्टर हिन्दी से आपका परिचय हो तो उनसे बात कर लें—कमेटी मे जो दो रखे हैं उनका कोई कार्य नही—केवल वहाँ कार्य करने वाले गर्ग के मित्र हैं—इसी से उनको रखवा दिया

है—प्रिंसिपल मैडिसिन, जीवाणु विज्ञान दोनों पुस्तकें शिक्षा मंत्रालय हिन्दी के रूप में प्रदर्शनी में दिखाता रहा। इसलिए इस दिशा मे अवश्य प्रयत्न करना।

मद्रास या केरल में कोई परिचित है—जहाँ पर दो चार पाँच मास हिन्दी का कार्य करते हुए मैं दक्षिण के आयुर्वेद से परिचय प्राप्त कर सकूं—काम भी मिल जाए और मैं सीख भी लूं। यदि ऐसा प्रबन्ध हो जाये तो अच्छा—अकादेमी में होने से परिचय होगा—इसी आशय से यह पत्र लिखा है।

योग्य काम—पत्र का उत्तर अवश्य देना—

वाचस्पति पाठकजी ने मुझे चेतावनी दी है कि आपके नाम के साथ विशेषण लगाकर ही लिखें—इसीसे ऐसा लिखा—पत्र का उत्तर अवश्य देना।

अत्रिदेव विद्यालंकार

श्री कन्हैयालाल सेठिया

रतन निवास
सुजानगढ
३-२ ६२

आदरणीय भाई सुमनजी,

सस्नेह वन्दे। हिन्द पॉकेट बुक्स के अन्तर्गत आप द्वारा सम्पादित 'हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ प्रेमगीत' पुस्तिका देखी। इतने सुन्दर चयन और सम्पादन के लिए बधाई। इसका प्रकाशन इसी वर्ष हुआ है अथवा सन् ६१ में प्रकाशित हुई है।

इस संग्रह के अन्तर्गत पृष्ठ संख्या ६४ पर श्री नीरज का भी एक गीत 'देखती ही न दर्पण रहो प्राण तुम' भी संकलित किया गया है।

ऐसा लगता है कि यह गीत मेरी सन् १९५५ में लिखी कविता 'प्रिय नयनों पर नहीं बावरी, दर्पण पर विश्वास' की अनुकृति है। मेरी कविता-पुस्तक 'प्रतिबिम्ब' (जो आर्यावर्त्त प्रकाशन गृह, कलकत्ता में प्रकाशित हुई है) की (ऊपर उल्लिखित रचना) प्रथम कविता है। पिछली बार फरवरी, १९६० में कानपुर में एक पारिवारिक गोष्ठी में मैं, बच्चन और नीरज तीनों ही सम्मिलित हुए थे और वहाँ पर भी मैंने अपना उपरोक्त गीत सुनाया था।

मुझे दुःख है कि रसमयी कवि 'नीरज' आज तक भी मौलिक चिन्तन नहीं दे पाए हैं। उनके कवि का प्रारम्भ बच्चन की रचनाओं की अनुकृति से हुआ और जब बच्चन की प्रसिद्धि चरम सीमा पर पहुँच चुकी तो वे अतीतकालीन कवियों—यथा कबीर की रचनाओं की अनुकृति करने लगे। इधर हिन्दी के कम प्रसिद्ध पर श्रेष्ठ कृतिकारों की

खेद है कि पत्र लिखने के तीन-चार दिन बाद ही लेखक की मृत्यु हो गई।

रचनाओं की अनुकृति करने का चस्का उन्हें लग गया है ऐसा लगता है।

आशा है एक मित्र के नाते आप उन्हें उचित परामर्श देंगे जिससे वे अपना मौलिक पथ खोज सकें।

मेरे योग्य सेवा—

आपका,
कन्हैयालाल सेठिया

श्रीरंजन सूरिदेव

राष्ट्रभाषा, पटना
२४-१-६४

सप्रेम नमस्कार,

आदरणीय सुमनजी, आपका कृपापत्र मिला। बहुत दुःख होता है कि बिहार बहुत जल्द आचार्य शिवजी को भूल गया। बिहार की कृतघ्नता पारम्परिक प्रतीत होती है। यहाँ तो हम भगवान् महावीर और बुद्ध, गांधी और राजेन्द्र बाबू तक को भुला बैठे हैं, तो फिर शिवजी का क्या पूछना? आपने पुण्यश्लोक शिवजी के लिए प्रार्थना-दिवस का आयोजन दिल्ली में किया, जानकर बड़ी तृप्ति हुई। मेरी अपील को महत्त्व दिया, यह आपका सौमनस्य है, सौजन्य भी।

'परिषद-पत्रिका' का अभीप्सित अंक आपकी सेवा में भेज दिया गया है, मिला होगा। स्थानाभाव के कारण आपके भाषण का बहुत ही थोड़ा अंश जा सका। सचमुच, मधु का सचय ही किया गया है।

श्री रामनारायणजी शास्त्री को आपका पत्र दिखलाकर तकाजा कर दिया है। आपकी ओर से उपालम्भ भी दे दिया है। सचमुच वे खुले आम 'दीर्घसूत्री' निकले।

आपके सभी स्नेही आपका बराबर स्मरण करते हैं। 'नारी तेरे रूप अनेक' के दर्शन कब तक होंगे? कृपया, पत्र लिखते समय उसमें इसकी भी सूचना देंगे। दर्शन-रूप-दर्शन की बड़ी लालसा है।

आशा है, सांगोपांग स्वस्थ-सानन्द हैं?

सस्नेह,
श्रीरंजन सूरिदेव

श्री हरिश्चन्द्र पाठक 'अजेय'

तीमारपुर, दिल्ली

परम श्रद्धेय आचार्य जी,

सादर अभिवादन ! कई वर्षों के बाद पत्र द्वारा आज आपसे सम्पर्क स्थापित कर रहा हूँ। इसकी आवश्यकता क्या पड़ी ? इसका उत्तर भी मुझे ही देना होगा। जब से मैं दिल्ली चला आया (१९५२ में) केवल एक व्यक्ति के व्यक्तित्व ने मुझे आकर्षित किया, क्योंकि उनमें वही गुण मुझे मूर्त्त रूप में दिखाई दिए जो एक सच्चे मनीषी एवं निष्ठावान साहित्यकार में अपेक्षित हैं। और वह आपका व्यक्तित्व है।

कई अवसर मिले जब आपके सान्निध्य से प्रेरणा मिली और जीवन की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से गुजरते हुए भी कई दिलचस्प मोड़ मिले और जिनसे मेरी असमर्थ वाणी को कुछ बल मिला। मूलतः अपनी अल्प बुद्धि द्वारा साहित्य साधना को ही जीवन का लक्ष्य बनाने की कामना करते हुए भी मुझे 'आडिट आफिस' में नौकरी करने को बाध्य होना पड़ा और निरन्तर ७ वर्षों से दफ्तर की फाइलों से जूझ रहा हूँ। स्वाभाविक है इस लम्बे अर्से में मैं अपने भीतर की आवाज को दबाता आया हूँ। किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि मेरे लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं है। इस वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेजी-हिन्दी-अनुवाद का कोर्स प्रारम्भ किया है आशा है, दफ्तर से बाहर जाने में यह सहायक बन सकेगा।

आखिर इन अटपटी बातों की भूमिका क्यों बाँधी गई ? वह इसलिए कि आपको मैं अभिभावक और गुरु के रूप में मानता हूँ, भले ही मैंने आज तक कोई गुरु-दक्षिणा नहीं दी। यूनिवर्सिटी के वातावरण ने मेरी सुप्त भावनाओं को फिर से झकझोरा है और मैंने फिर से कलम उठा ली है। फिलहाल चीनियों को गाली दे रहा हूँ, आगे जैसी समय की आज्ञा होगी ! साहित्य एवं साहित्यकारों से सम्पर्क बनाए रखने से हम जैसे 'छुटभइये' भी कभी-कभी बाजी मार लेते हैं।

सुना है आपने कई पाकेट बुक (कविता-संग्रह) सम्पादित किये हैं। विशेषकर सामयिक साहित्य से संबंधित। निकट भविष्य में यदि आपकी कोई योजना हो—कोई नया संग्रह निकल रहा हो तो मेरी भी 'ट्राई' ले लें, क्योंकि यदि अपना संग्रह निकाल लूँ तो कोई पैसे देकर भी पढ़ने को तैयार नहीं होगा, क्योंकि कविता चीज ही ऐसी है, फिर साहित्य के बाजार में भी नाम बिकता है। छोटी-मोटी पत्रिकाएँ भी नखरे के साथ छापती हैं। नाम वालों का कूड़ा छप जाता है।

दिल्ली में अन्य स्थानों की अपेक्षा—साहित्य के क्षेत्र में अखाड़ेबाजी काफी अधिक है। दो-तीन कवि-सम्मेलनों में जाने का मौका मिला। एक स्थान पर बच्चनजी

अध्यक्ष थे और उनकी अध्यक्षता तक कवि सम्मेलन खूब जमा, फिर उखड़ गया। बाद के दो सम्मेलनों में नौटंकी से कम मजा आया। अजीब लीला देखी। ख्याल आया आपकी अध्यक्षता में कवि-सम्मेलन में मजा आ जाता था। आपके द्वारा सयोजित गोष्ठी में (शनिवार समाज की) ही सर्वप्रथम दिल्ली में मैंने कविता पाठ किया था। वहाँ के वातावरण में एक सहज आकर्षण था और रचनाओं की मधुर गूँज कई दिन तक मस्तिष्क में ध्वनित होती रहती थी। खैर, अब बात दूसरी है।

आपको इतना लम्बा पत्र लिखकर आपके अमूल्य समय का अपव्यय कर रहा हूँ। इस आशा से कि आप यदा-कदा एक कार्ड डालकर ही मेरा पथ-प्रदर्शन करेंगे। आजकल आप कार्य कहाँ करते हैं? यदि दिल्ली में ही आपके कार्यालय आदि का मुझे पता हो सके तो कभी दर्शन कर सकूँगा। शेष क्षेम।

आशा है पत्र-प्राप्ति की सूचना देंगे।

नए वर्ष की बधाई समेत—

भवदीय

हरिश्चन्द्र पाठक 'अजेय'

३१-१२-६२

१-१-६३

श्री मुनीश सक्सेना

'ब्लिट्ज' १७।१७-एच, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई-२

४-१२-६२

भाई सुमनजी (गुरुवर),

अब तक कोई गाली ऐसी तो न होगी जो तुम मुझे न दे चुके हो, लेकिन दोष मेरा नहीं उन लोगों का है जिन पर मैंने भरोसा किया। बहरहाल देर से सही, समीक्षा शीघ्र ही छपेगी। इस समय तो मैं अपने मित्र श्री रविशंकर उपाध्याय को तुम्हारे पास भेज रहा हूँ, जो दिल्ली में जीविका की खोज में जा रहे हैं। तुम्हारा सहारा मिल जाएगा तो पैर जम जाएँगे। काम अच्छा करते हैं, भरोसे के आदमी हैं। अगर राजपाल वालों के यहाँ या और किसी जगह चिपका दो तो क्या बात है!

तुम्हारा भक्त

मुनीश सक्सेना

श्री देवीप्रसाद राही

२३१२, एक्सटेशन साइट न० १,
बापू पुरवा, कानपुर

आदरणीय क्षेमचन्द्रजी !

कभी-कभी ऐसे भी क्षण आते है कि बात ही नही पत्र भी बिना परिचय के लिखने के लिए विवश होना पडता है। यो आपके नाम से मैं परिचित हूँ—काफी अरसे से, किन्तु अभी तक कोई ऐसा सयोग नही आया कि आपसे साक्षात्कार कर सकूँ और आमने-सामने बातचीत। सयोग भी आया तो इस रूप मे, कहते न बने—सुनते न बने। फिर भी मजबूरी तो मजबूरी ही है। मुझे कुछ कहना है, आपको कुछ सुनना है।

यहाँ कानपुर म एक बडे ही विचित्र प्राणी है। हैं तो बडे मजेदार। पहली मुलाक़ात मे अगर आप उनसे मिले तो बस वाह ! वाह ! गीत सुनिए—गजलें सुनिए, रूबाइयाँ सुनिए। अगर आप पश्चिम के निवासी है तो पूरब के गीत, पूरब के है तो पश्चिम की रचनाएँ सुनाना वे आपको अधिक पसन्द करेगे। और इसीमे उनका कल्याण भी है। समाज सुधारको म—उनका दर्जा अव्वल है। वही शायद आपसे दिल्ली से मिलकर आये हैं। कानपुर पर जिन्हे गर्व है—(यदि पजाब स्वामी रामतीर्थ के त्याग पर अभिमान करता है तो कानपुर अपने इन महोदय पर) स्वाभाविक है आप पर उनका जादू चढ जाना—किन्तु इस व्यक्ति मे इतनी कमी अवश्य है कि इसका जादू सामयिक होता है दीर्घकालीन नही। सम्भवत आपको इतना सकेत करना काफी होगा। आप स्वय एक सिद्धहस्त लेखक है—और कवि भी—मैंने सौ कवियो के एक सकलन मे आपका नाम भी देखा है—जिसके सकलनकर्त्ता है श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'।

उन महाशय ने यहाँ आकर काफी विष-वमन किया है—विशेष रूप से मेरे ऊपर। यद्यपि उन्हे मैं अभी लडका ही समझता हू किन्तु बालक ध्रुव की उन्हे भी ध्रुव क विपरीत किन्तु नाप तौल मे उससे कम नही—कुछ विशेष प्रकार की प्रतिभा मिली है।

उनका कहना है सुमनजी ने मुझे दो पत्र दिखाए और कहने लगे कि कानपुर के देवीप्रसाद 'राही' ने एक पत्र बलरामपुर से भिजवाया है और एक पत्र 'बच्चन' जी से, जिसमे सुमनजी से कहा गया है कि उनका नाम क्यो नही रक्खा इस सग्रह मे—वही प्रेमगीत का सग्रह जिसकी रूपरेखा दिल्ली के किसी कमरे मे बैठकर कुछ साहित्यिक एजेन्टो तथा ट्रेड यूनियन के सदस्यो की सूचना के आधार पर तैयार किया गया है। उनका कहना है कि सुमनजी ने कहा, न मै बच्चन को कुछ समझता हूँ न कच्चन को। और उस बलरामपुर वाले लडके को ! मेरा क्या कोई बिगाडेगा।

मेरी ओर से विनम्र प्रार्थना है कि आप इस अदेशे मे न रह कि इतने निम्न स्तर

पर मैं पहुँच सकता हूँ। मरे ऊपर ऐसे सम्रहो का कोई प्रभाव नही पडता है। दलबन्दी का काफी शिकार हुआ हूँ—इतनी चोटे मिली है कि दर्द मरहम बन गया है ! आत्मप्रकाशन के प्रलोभन से मैं गन्दा नही उठा सकता। बच्चनजी से आप स्वय पूछ सकते है कि मैंने कभी भी कोई बात उनसे चलाई हो। बस यही से सारी हकीकत आपको ज्ञात हो जाएगी। मुझे लिखना होता तो मैं स्वय ही आपको लिख सकता था। आप हिन्दी के एक जाने-माने साहित्यिक है आश्चर्य है आप कैसे इस गन्दगी मे फँस गए—बुजुर्गों ने कहा—लडको की दोस्ती और— खराबी। साहित्य के ऐसे दूषित तत्वो से आप सावधान रहे—आप साहित्यकार है, आप पर सभी अच्छे लिखने वालो का अधिकार है। इस नाते मेरा भी कुछ अधिकार हो जाता है। अपना परिचय क्या दूँ—१०-१५ वर्षों से लिख रहा हूँ। हिन्दी जगत् के वर्षों 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'धर्मयुग', 'सरिता', 'नयापथ', 'शक्ति', 'नई जिन्दगी', 'नया जीवन', 'प्रतिभा', 'अणुव्रत', 'आरसी' और 'नवनीत आदि पत्रो मे छपा हूँ। मेरा ही 'राही' नाम पहले आया है। 'हूज हू ऑफ इण्डियन राइटर्स' के ३३३ पेज पर मेरा परिचय है, और कोई 'राही' उसमे नही है। १९५४ के भारतवर्ष के कवियो मे मेरा नाम आया है। आकाशवाणी से मरा साहित्यिक सम्बन्ध पिछले दस वर्षों से है। १९५४ मे एक काव्य-सग्रह 'छाँह' प्रकाशित हुआ। १९६१ म दूसरा काव्य-सग्रह 'दर्द बदनाम न हो', जिसकी प्रशसा डॉ० बच्चन नगेन्द्र, हजारीप्रसाद, नन्ददुलारे वाजपेयी भगवतशरण उपाध्याय, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह, डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र ने—बहुत नाम हैं कहाँ तक लिखूँ, की है। एक ऐसे व्यक्ति से यह आशा करना कि उसका नाम यदि प्रेम-गीत-सग्रह मे नही आया तो उसे दुख होगा और वह इधर-उधर से आपको लिखाएगा, आप स्वय ही सोच सकते हैं, कहाँ तक न्यायसगत है ? राजपाल एण्ड सस से प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और शृगार' मे मेरा उल्लेख डॉ० रागेय राघव ने किया है—शेष यदि आप मौका देगे तो फिर कुछ लिखूँगा।

भवदीय,
देवीप्रसाद 'राही'

श्री रामनरेश

. साहित्य प्रेस, देवीपोखरी रोड
तिनसुकिया (असम)
२१ मार्च, सन् १९६६

श्रद्धेय सुमनजी,

सादर नमस्कार।

भगवान् की असीम अनुकम्पा से आपके दर्शन हुए। आपके अल्पकालीन सत्सग मे जो अपार आनन्द मिला, उसे व्यक्त करने मे असमर्थ हूँ। आपका सक्षिप्त जीवन-परिचय

पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। मैं आपको इतने निकट से देख सका, यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है।

उस दिन की स्वागत-गोष्ठी में आपने जो चर्चा छेड़ दी थी कि जिस प्रकार स्वेच्छा से बनाये गए अथवा समाज द्वारा मान्यता-प्राप्त माता-पिता, भाई-बहन अथवा पुत्र-पुत्री के लिए, धर्म-माता, धर्म-पिता, धर्म-बन्धु, धर्म-बहन, धर्म-पुत्र और धर्म-पुत्री आदि शब्दों का प्रयोग होता है, क्या उसी भाँति पत्नी के लिए भी 'धर्म-पत्नी' शब्द का प्रयोग करना उचित है? यह प्रश्न सुनकर मेरे मन में साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई है और इसके उत्तर में मैं अपना विचार प्रकट करने का दुस्साहस कर रहा हूँ। आशा है कि इसके लिए आप मुझे क्षमा प्रदान करेंगे तथा मुझ अल्पज्ञ को सही ढंग से सोचने-समझने और लिखने की प्रेरणा देने की कृपा करेंगे।

जहाँ तक सगे माता-पिता, भाई-बहन और पुत्र-पुत्री का सम्बन्ध है, इनके विषय में समाज के मानने या न मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। केवल अवैध सन्तान और अवैध सम्बन्ध रखने वाली स्त्री के लिए ही यह समस्या उत्पन्न होती है कि वह किसे माँ कहे? किसे पिता कहे? अथवा किसे पति कहे?

उपर्युक्त समस्याओं के समाधानार्थ ही स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध स्थापित होता है, जिसके परिणामस्वरूप दोनों पति-पत्नी के रूप में समाज के मध्य अवतरित होते हैं। इसके लिए अपनी-अपनी परम्परानुसार समाज के बन्धनों में बँधना पड़ता है। समाज की मान्यताओं को स्वीकार करना पड़ता है। हिन्दू धर्म में पाणिग्रहण संस्कार कराया जाता है तो मुस्लिम धर्म में निकाह की रस्म पूरी करनी पड़ती है। इसी प्रकार विभिन्न धर्मावलम्बियों में विभिन्न प्रकार से विवाह की रस्म अदायगी की जाती है। पौराणिक काल में दो समान धर्मावलम्बी अथवा विपरीत धर्म मानने वाले स्त्री-पुरुष में प्रेम हो जाने पर जहाँ गन्धर्व विवाह की प्रथा थी वहाँ वर्तमान युग में ऐसा होने पर सिविल मैरिज करना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पति-पत्नी के रूप में परिणत हो जाना समाज द्वारा प्रदत्त ऐसा प्रमाण है जो सर्वमान्य होता है। फिर भी आपस में गहरा मतभेद पैदा हो जाने पर पति-पत्नी एक-दूसरे को तलाक देकर सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते हैं। ठीक यही स्थिति धर्म-माता, धर्म-पिता और धर्म-पुत्र आदि की भी है। मतभेद पैदा होने की स्थिति में एक-दूसरे से सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सकता है। किन्तु सगे माता-पिता, भाई-बहन या पुत्र-पुत्री के सम्बन्ध में ऐसा कोई कानून नहीं है, जिसके सहारे उनसे सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सके।

इन सब बातों पर भलीभाँति विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि 'पत्नी' शब्द के स्थान पर 'धर्म-पत्नी' शब्द का ही प्रयोग करना उचित है।[१]

१. सुमनजी ने तिनसुकिया की एक स्वागत-गोष्ठी में यह कहा था कि 'धर्म-बहन', 'धर्म-पिता', और 'धर्म-भाई' की तरह 'धर्म-पत्नी' शब्द ऐसा लगता है जैसे पत्नी भी इन्हीं की तरह बनाई हुई है। यह ठीक नहीं। पत्नी के लिए 'अर्धांगिनी' या 'सहधर्मिणी' शब्द का प्रयोग ही उचित है, 'धर्म-पत्नी नहीं।

पत्र बहुत लम्बा हो गया, अतः अब यहीं समाप्त करता हूँ। इस पत्र में जो त्रुटियाँ हों आप उनसे मुझे अवगत कराएँगे ऐसा मुझे विश्वास है।

आशा है आप स्वस्थ होंगे। शेष कृपा बनाये रखियेगा।

आपका कृपाकांक्षी
रामनरेश

कुमारी ऊषा अग्रवाल

३०३८, कूचा सोहनलाल,
बाजार सीताराम, दिल्ली ६
५-४-१९६४

आदरणीय सुमनजी

नमस्कार[1]

आशा है आप मेरे पत्र का उत्तर अवश्य देंगे। बहुत हिम्मत करके यह लिख रही हूँ। जो प्रश्न पूछ रही हूँ उचित है या अनुचित, इसका निर्णय कर नहीं पा रही। फिर भी सोचती हूँ शायद उसका उचित समाधान हो सके।

नारी का बदलता हुआ रूप—पुरुष की दृष्टि में आजकल आपका विषय है। क्या आप उन्हीं संस्मरणों के साथ नारी का बदलता हुआ रूप-(अर्थात् नारी-) नारी की दृष्टि में नहीं जोड़ना चाहेंगे ? सोचती हूँ नारी के विषय में पुरुष का परिचय सिर्फ अधूरा तो नहीं रह जाएगा ? ¹

अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ। स्वयं नारी वर्ग की हूँ, फिर भी सोचती हूँ—नारी का सच्चा रूप क्या है। कोई भी व्यक्ति अपनी बुराई करना नहीं चाहता, लेकिन ईमानदारी क्या इसीमें नहीं है कि जो कुछ सच है वास्तविकता है, हम उसे स्वीकार कर सकें।

आपके दफ्तर का पता शायद अधूरा याद है—रवीन्द्र भवन, नीमर मंडी हाउस, आगे याद नहीं। आशा है आपको यह पत्र मिल जाएगा। अशुद्धियों के लिए क्षमा-प्रार्थिनी,

भवदीया,
ऊषा

१. लेखिका का संकेत 'नारी तेरे रूप अनेक' नामक ग्रन्थ की ओर है।

श्री श्रीकृष्ण शर्मा

३८५, बसारो की ओल
उदयपुर (राज०)
२८-२-६६

आदरणीय मेरे,

एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कृपया समाधान कर अनुग्रहीत करें। जिज्ञासा है 'साहित्यकार' किसे कहते है ? नीचे मैं कुछ ऐसे व्यक्तियो के दावे प्रस्तुत करता हूँ जो अपने को साहित्यकार कहते है।

(१) एक ऐसा व्यक्ति, जिसने ४०० कविताएँ, ३५ लेख, २० कहानियां, ५ उपन्यास लिखे है किन्तु वे सभी अप्रकाशित है।

(२) एक ऐसा व्यक्ति, जो केवल अनुवाद-कार्य ही करता है, मौलिक कृतियाँ कुछ भी नही है।

(३) एक ऐसा व्यक्ति, जिसने एम० ए० (हिन्दी), पी-एच० डी०, साहित्य रत्न, प्रभाकर आदि उपाधियाँ हासिल की है किन्तु लेखन-कार्य अभी प्रारम्भ ही नही किया है।

(४) एक ऐसा व्यक्ति, जिसने केवल दो कहानियाँ ही लिखी है किन्तु वे प्रकाशित होने के साथ-साथ पुरस्कृत भी हुई है।

(५) एक ऐसा व्यक्ति जिसके ५ कविता-सग्रह ३ एकाकी-सकलन व २ कहानी-सग्रह है, जिनमे मे यत्र-तत्र फुटकर रचनाएँ प्रकाशित भी हुई है।

इनमे से किसका दावा सत्य है ?

सदैव सादर और सद्भावनाओ के साथ।

कृपाकाक्षी,
श्रीकृष्ण शर्मा

डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर'

लेखराज नगर, अलीगढ

आदरणीय भाई साहब सादर प्रणाम

आपका पत्र मिला मुझे दु ख है कि मेरे प्रकाशक के प्रमादवश मेरा गीत सग्रह आज तक आपको प्राप्त नही हो सका। क्षमा सहित उसकी एक निजी प्रति आज ही रजिस्टर्ड डाक से भेज रहा हूँ।

'हिन्दी प्रचारक' वाली प्रस्तावित पुस्तक के सन्दर्भ मे आपने मुझसे मेरा परिचय माँगा है, थोडा-बहुत परिचय तो उपर्युक्त गीत-सग्रह के अन्तिम पृष्ठ पर दिया हुआ है, शेष बाते आप जानते है। मेरे गुण अवगुण आपसे कुछ छिपे नही है। पिछले दस वर्षों से हिन्दी-कविता के आकाश मे कबूतर उडा रहा हूँ, लेकिन छिट-पुट, थोडे आत्म-सयम के

साथ, मतलब यह कि रचनाएँ बराबर प्रकाशित होती रही है किन्तु 'कल्पना', 'ज्ञानोदय' या 'धर्मयुग' जैसी चुनी हुई श्रेष्ठ पत्रिकाओ मे अथवा 'नई कविता' और 'निकष' जैसे नव-लेखन के प्रतिनिधि सकलना मे—भीड से मुझे हमेशा डर लगता है और सस्ती पत्रिकाओ अथवा सस्ते सग्रहो को अपनी चीज देते समय साहित्यिक मर्यादा के टूटने की आशका बनी रहती है—इसलिए ऐसे सन्दर्भो मे प्राय मौन हो जाता हूँ—सम्भव है कि यह मिथ्या अहम् हो। प्रयोगवाद के बाद, नई कविता का नया प्रवाह १९५२-५४ के मध्य अपने निखार पर आया। उसकी दलगत स्थिति को अस्वीकार करते हुए मैंने पूरी ईमानदारी के साथ यह अनुभव किया कि मेरी प्रकृति उसके नये विवेक से अधिक मेल खाती है—अस्तु, मैंने नई कविता के भाव-क्षेत्र और सृजन शिल्प को पूरी निष्ठा के साथ अगीकार कर लिया—इस क्रम मे कोई ढाई सौ कविताएँ लिखी होगी, जिनमे से लगभग डेढ सौ प्रकाशित हुई—किन्तु, इस स्थिति के समानान्तर गीत-रचना के प्रति मेरी आस्था बराबर बनी रही। मेरे भाव-बोध का अर्धांश गीत-विधा के माध्यम से अभिव्यक्ति पाने के लिए आकुल-व्याकुल होता रहा। गीत-रचनाओ मे मैंने यह चेष्टा अवश्य की है कि अधिक से-अधिक मौलिक, नवीन तथा सहज भी हो सकूँ—इसीलिए मैं अपने गीतो को भी नई कविता मानता हूँ—यह बात मेरी पुस्तक स अधिक स्पष्ट हो सकेगी। और क्या लिखूँ? आप जैसे थोडे-से सहृदय ही 'कीरति के बिरवा' को कुम्हलाने नही देते। आपसे, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, या धर्मवीर भारती-जैसे गुरुजनो और शुभैषियो से, जो स्नेह और प्रोत्साहन मिलता रहा है, उससे कब और कैसे उऋण होऊँगा यही चिन्ता बराबर सालती रहती है। कुछ अन्यथा लिख गया होऊँ तो क्षमा करेंगे।

विनीत,
रवीन्द्र 'भ्रमर'

श्री श्रीपाल जैन

९६/२२६ ए-१ कैलाश नगर, दिल्ली—३१
तिथि ८-६-६६

श्रद्धेय सुमन जी,

प्रसन्नता की बात है कि आपके प्रयत्नो के फलस्वरूप कैलाशनगर से १ जून से दिल्ली-परिवहन की दो बसें (दो ट्रिप) चलने लगी हैं। इस आशिक सफलता पर हम आपका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

आंशिक सफलता इसलिए, क्योंकि समस्या अभी ज्यो-की-त्यो खडी है। बहुत थोडे लोगो को इस व्यवस्था से लाभ पहुँचेगा। बस्ती की व्यापकता तथा नागरिको की यातायात-सम्बन्धी कठिनाइयो को देखते हुए दो ट्रिप आटे मे नमक के बराबर भी नही। अत कैलाशनगर से हर आध घण्टे बाद बस-सेवा आरम्भ करवाने की दिशा मे हम

प्रयत्नशील रहेंगे और हमें आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वास है कि हमारे इन प्रयत्नों मे आप सदैव हमारा बल व उत्साह बढाते रहेंगे।

एक बार पुन धन्यवाद सहित

आपका
श्रीपाल जैन

श्री दीनानाथ मल्होत्रा

राजपाल एण्ड सन्ज
पोस्ट बाक्स न० १०६४, दिल्ली–६

११ अप्रैल, १९६५

प्रिय सुमन जी,

इस पत्र द्वारा मै आपका ध्यान जमुना पुल की शोचनीय स्थिति की ओर आकर्षित करता हूँ। आपको स्मरण होगा कि गत वर्ष रेलवे अधिकारियो ने मरम्मत करने के लिए पुल के एक रास्ते को बन्द कर दिया था। परन्तु दो महीनों मे उस रास्ते का आधा भाग भी वे ठीक नही कर सके थे। पुल के इस रास्ते के बन्द हो जाने के कारण उन लोगो को जिन्ह प्रतिदिन पुल पार करना पडता है बडी परेशानी का सामना करना पडा था। हर वक्त पुल के दोनो ओर लम्बी-लम्बी लाइनें लगी रहती थी, लोग आपस मे झगडते रहते थे। यहाँ तक कि पर्याप्त प्रबन्ध होने पर भी पुलिस स्थिति पर काबू नही पा सकी थी। इसका कारण यही है कि शाहदरा, गांधीनगर, कृष्णनगर तथा जमुना पार की अन्य बस्तियो मे रहने वाले लोगों के लिए शहर आने का कोई दूसरा रास्ता नही है।

वही समस्या इस बार भी उत्पन्न हो गई है। १ अप्रैल से पुन रेलवे-अधिकारियो ने उसी रास्ते को ढाई महीने के लिए बन्द कर दिया है। जो कर्मचारी काम पर लगाए गए है वे ठीक उसी तरह कार्य कर रहे हैं जिस प्रकार कि सरकारी कार्यालयो मे काम होता है। समय होते ही वे काम बन्द करके चले जाते है जहाँ कि यदि वह इस काम से लोगो को होने वाली असुविधा को ध्यान मे रखे तो दिन रात तीन शिफ्टो म काम करें। इस रास्ते के बन्द हो जाने के कारण शहर के निवासियो को जो कठिनाई हो रही है उसका अनुमान आप सहज ही लगा सकते है। लोगों का समय व्यर्थ नष्ट होता है, वे अपने कार्यालय मे देर से पहुँचते हैं, व्यापार ठप्प हो जाता है, कारखानो म कच्चा माल समय पर नही पहुँच पाता और शाहदरा मे, जो कि इण्डस्ट्रियल एरिया है, हर प्रकार के काम की हानि हो रही है।

रेलवे-अधिकारी यह समझते हैं कि इसमे उनकी कोई जिम्मेदारी नही है और शहर के नागरिकों से उनका कोई मतलब नही है। लेकिन वे गलती पर हैं। यह कार्य, जिसके लिए वे इतना अधिक समय मांग रहे हैं, यदि लोगो की कठिनाइयो को ध्यान मे

रखकर किया जाए तो एक सप्ताह में ही समाप्त हो सकता है। एक की जगह सौ, और सौ की जगह पांच सौ व्यक्ति काम पर लगाए जा सकते हैं। क्या रेलवे-अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे ?

आशा है आप इस सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ अवश्य करेंगे। हमें चुप नहीं बैठना चाहिए। समाचार-पत्रों द्वारा तथा सम्बन्धित अधिकारियों से मिलकर इस कार्य को शीघ्र ही करवाना चाहिए।

आपका

दीनानाथ मल्होत्रा[1]

१. 'हिन्द पाकेट बुक्स (प्रा०) लिमिटेड' शाहदरा के मैनेजिंग डायरेक्टर।

दृष्टिकोण

•

श्री द्वारिकाप्रसाद सेवक

२०३ बी० गावठन, विले पारले (पश्चिम),
बम्बई-५६, ८ मार्च १६६५

प्रियवर ! सस्नेह नमस्ते,

मै वर्षो से अस्वस्थ रहता हूँ। शरीर से भी और मन से भी, रक्त-चाप, हृदय-शूल और पक्षाघात की कृपा है। *जीवित हूँ—मालूम नही क्यो और कैसे ! अदृश्य ही जाने।* आयु का ७५वाँ वर्ष पूरा हो रहा है।

उन दिनो मेरी हालत कुछ अधिक खराब थी जब आपका पटना वाला भाषण मुझे मिला था और इसी कारण इच्छा रहते भी, मैं शीघ्र ही उसकी पहुँच तक नही लिख सका। क्षमा प्रार्थी हूँ। अब भी बिस्तर पर पडा हूँ, लिख नही सकता, फिर भी आज यह पत्र लिख भेजने की प्रेरणा हुई। कुछ दिन हुए आपके परिचित श्री प्रकाशचन्द्रजी शास्त्री, जो यहाँ भारतीय विद्याभवन से सम्बन्धित है, मुझे देखने आये थे, उनसे भी आपकी चर्चा और प्रशसा मैने की थी।

मैंने आपका वह भाषण पढ लिया था। बहुत-सी स्मृतियाँ ताजा हो गई। आँसू बहाने पडे। मेरा नामोल्लेख और मुझे उसकी प्रति भेजने की कृपा के लिए मेरा विशेष धन्यवाद आप स्वीकार करें।

यह जानकर बडी प्रसन्नता और सन्तोष है कि आर्य समाज मे आप-जैसे महानुभाव भी है, जिन्हे इतना स्मरण है और उसे लिपिबद्ध करने का उत्साह भी है। निश्चय ही आपका उत्साह और उद्योग विशेष सराहनीय है और मैं आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। वैसे तो सच बात यह है कि आर्य समाज की वर्तमान पीढी यह तक नही जानती और न जानने का कष्ट ही करना चाहती है कि "पहले ऐसा भी हो चुका है और ऐसे भी कोई शैदाई हो गये है।" इतिहास नष्ट हो रहा है, यादें मिट रही है। जानने और देखने वाले समाप्त हो रहे हैं। भावी इतिहास-लेखको को बडी कठिनाइयाँ होगी। आज हमारी साहित्य, इतिहास आदि की ओर से रुचि ही उठ गई है। कोई उत्साह ही नही रहा है और यह बडा अनिष्टकारी है। महान् अधोगति-पतन का चिह्न है। भगवान् दया-

नन्द की आत्मा क्या कहती होगी। आपका सग्रह-उद्योग-स्मरण काफी अच्छा और उपयोगी है।

मैंने कई बार आर्यसमाज के इतिहास, साहित्य, नेता, विद्वान्, सन्यासी, साहित्यकार, सस्था, सम्पादक, लेखक, मुद्रित-अमुद्रित सामग्री इत्यादि की एक विस्तृत, प्रामाणिक विवरण पुस्तिका लिखने और प्रकाशित करने की बात सोची, क्योंकि बहुत कुछ स्वय देखा-किया-स्मरण है जो अब भूल रहा हूँ। विज्ञप्तियाँ प्रकाशित की किन्तु विपरीत परिस्थितियो ने अवसर ही नही दिया यह काम पूरा करने का। भविष्य मे शायद किसी को इसकी उपयोगिता और आवश्यकता प्रतीत हो।

फिर भी आपने जितना याद रखा और लिखा तथा प्रकाशित किया वह कम नही है और निश्चय ही आप बधाई के पात्र हैं।

पुन क्षमा प्रार्थी हूँ कि इच्छा रहते भी मैं विस्तृत लिखने मे असमर्थ हूँ। पत्र की लिखावट ही प्रमाण है। दो घटे से अधिक समय मे, बडे कष्ट के साथ, इतना लिख सका हूँ।

ईश्वर आपका उत्साह और अनुभव सदा बढाते रहे—यही प्रार्थना है।

शुभाकाक्षी
द्वारकाप्रसाद सेवक

श्री निखिल घोष

इस्टेब्लिशमेण्ट सेक्शन,
बी० एम० पी० भिलाई, (म० प्र०)
१८-१-६६

मान्यवर सुमनजी,

कुछ एक-दो साल हुए मैं हिन्दी गद्य और पद्य साहित्य की चर्चा शुरू किया हूँ।

मैं 'हिन्दी कवयित्रियो के प्रेम गीत' खरीदकर पढी। मुझे जो तृप्ति मिली वह मैं भाषा मे प्रगट नही कर सकता। कुछ गुणी व्यक्ति इसमे अश्लीलता जो कहाँ से पाएँ, भगवान ही जानें। नारी का प्रेम नारी की भाषा मे इतनी सभ्य भाषा मे प्रकाश होना मेरे ख्याल से सुकठिन ही है।

आपको मालूम होगा बगाली लोग अपना साहित्य और भाषा के बारे मे जो अभिमान रखते वह कही-कही नितात हास्यास्पद, मेरा मतलब हिन्दी कविताओ मे मुझे कभी-कभी वह चीज मिल जाती कि मैं अवाक रह जाता हूँ। जैसा—

रह गई मुक्ति करबद्ध खडी
मैंने बन्धन स्वीकार किया।

कहूँ इसे मैं उनका केवल सा व्यापार
या अपना ही कहूँ इसे मैं, फिर अज्ञान अपार।

इस तरह की और कितनी हैं ! मैं तो कहूँगा, मेरी पसंद की कोई-कोई चीज मुझे हिन्दी काव्य में अनायास मिल जाती जो कि मुझे बंगला काव्य में शायद ही कभी मिली हो।

विशेष रूप से आपने जो परिचिती (इण्ट्रोडक्शन) लेखिकाओं की दी वह एक अहिन्दी पाठक के लिए अनमोल है।

पाठक रचने के साथ ही रचने वाला को भी जानना चाहता है। आपकी वह सकलन इस दृष्टि से अत्यन्त सहायक है। नामवर जो निबन्ध लिखते हैं उनके लिए। मुझे यह सकलन पढने का साथ ही लिखने का उपकार करेगी।

निन्दा तो लोग सुभाष, गाधी की भी किये हैं। उनकी कीमत घटी नही, निन्दा-से यह सकलन की इज्जत नही घटेगी।

सुमनजी, निबन्ध लिखने के लिए मैं आपको इस किताब से उद्धरण देना आवश्यक समझता हूँ। क्या कृपया आप वैसा करने की अनुमति देंगे ? यदि इस बात के लिए हिन्द पॉकेट बुक्स प्रतिष्ठान की अनुमति की जरूरत हो तो कृपया मुझे जानकारी दें।

हिन्दी गद्य साहित्य से पद्य साहित्य काफी उन्नत है, सुन्दर है।

आपकी यह पतली सकलन हिन्दी भाषियो को कैसी लगी मुझे मालूम नही मगर एक रुपया मे मुझे कितनी कवयित्रियो की कविताएँ दी वह मैं तो जानता हूँ। इस सकलन के लिए आन्तरिक धन्यवाद। इति

आपके विश्वस्त
निखिल घोष

पुनश्च

बगला और हिन्दी स्पेलिंग मे बहुत अन्तर होने के कारण स्पेलिंग की जो गलतियाँ हो माफ कर देंगे।

श्री प्रवीन जे० पटेल (पनु)

४/४६, मोहन कृपा
पडित नहरू मार्ग, जामनगर
२० ६-६६

माननीय महोदय,

सादर नमस्ते।

आपन सम्पादित किये 'हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' मैंने पढे। यह प्रेमगीत नारी के हृदय-पुष्प ही मुझ तो नजर आते है। आपका यह सकलन-कार्य बहुत ही प्रशसनीय

एव धन्यवाद के योग्य हैं। आशा है कि इसी तरह आपके हाथों से हिन्दी साहित्य की सेवा होती रहेगी।

साहित्य-सागर की गहराई, चौडाई का तो मुझे कोई अन्दाजा भी नहीं है। मैं तो अपने को साहित्य-सागर का एक छोटा-सा 'जल कण' समझता हूँ। मुझे कहानियाँ लिखने की लगन हो गई है।

मेरी मातृ भाषा गुजराती है फिर भी राष्ट्रभाषा से मुझे बडी चाह है। गलतियाँ भी होती हैं, फिर भी आप-जैसे सहृदयी लोगों से मैं उत्साहित होता रहा हूँ। आजकल बडी लम्बी कहानी पूर्ण होने को है। उसका नाम है 'अमर मोहिनी', जो मेरे 'शगूफा' नामक कहानी-संग्रह में से एक है।

शुभेच्छुक,
प्रविन जे० पटेल (पनु)

सुश्री राधा

नागेश्वर कालोनी,
बाकरगज, पटना-४
१२-१०-१९६३

आदरणीय,

सादर प्रणाम।

'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम गीत' की एक प्रति मिली। बहुत बीमार थी, सो कृतज्ञता ज्ञापित नही कर सकी, क्षमा करेंगे। इस सकलन के प्रकाशन के बाद मेरे पास कई ऐसे पत्र आए हैं जिनमे मुझे यह उपदेश दिया गया है कि मुझे भारतीय नारी होने के नाते भारतीय नारी की गरिमा अक्षुण्ण बनाए रखने की भरसक चेष्टा करनी चाहिए और इतनी स्पष्टता से बचना चाहिए। मैं पहले भी कह रही थी कि लोग यही कहेंगे। परन्तु सम्पादक आप हैं, और आपने जैसा उचित समझा, किया। मेरी तो और भी कविताएँ आपके पास थी, उनका अब क्या करेंगे ? सम्भव हो तो उन्हे कही प्रकाशनार्थ भेज दें और इससे मुझे कुछ अर्थ-यश-लाभ करा दे।

इतने बडे ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण सकलन में मुझे स्थान देकर आपने जो उपकार किया है, उसके लिए मैं सदा ऋणी रहूँगी। सकलन बहुत बढिया है, इसके लिए कृपया बधाई स्वीकारें।

आपने मेरी पुस्तक की बिक्री का कोई समुचित प्रबन्ध करा देने का वचन दिया था, उसका क्या हुआ ?

आप तो पत्र लिखना भूल ही गए है। क्या पत्र—पत्रोत्तर की आशा करूँ ?

आपकी—राधा

श्रीमती बहन रतनशाह

द्वारा मगनलाल शामजी शाह,
मच्छी मडव, जालना (औरंगाबाद)

श्री सम्पादक क्षेमचन्द्रजी 'सुमन',

मैंने आपकी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम-गीत' पढ़ी। इतनी सुन्दर पुस्तक पढ़ने का जो अवसर मुझे प्राप्त हुआ इसे मैं मेरा सौभाग्य समझती हूँ। मैं भी चाहती हूँ कि, आपकी कृतियों में भाग लेने का अवसर मुझे प्राप्त हो। राष्ट्रभाषा को लेकर आपने नारी-समाज को ऊपर उठाने का जो प्रयत्न किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। कवयित्रियों के चित्र तथा परिचय देने का आपका कार्य अत्यन्त प्रभावशाली है। आपके इस कार्य से बहुत सी बहनों को साहित्योपासना की प्रेरणा मिली है। चित्र तथा परिचय की असर से अनेकों बहनों के मन में यह भावना उठी है कि, हम भी कुछ करें।"

पारिवारिक बन्धनों के कारण अधिकांश बहनें ऊपर उठने में विवश हैं। इस बात का उल्लेख आपने अपने संकलन में किया है। मैं भी उन्हीं बहनों में से एक हूँ। फिर भी कुछ-न-कुछ लिखकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करती रहती हूँ। उस प्रयत्न का फल भी मुझे मिला है। मातृभाषा गुजराती में मेरी बहुत सी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी कुछ रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। गुजराती रचनाओं पर दो बार मुझे पुरस्कार प्राप्त हुआ है। दोनों भाषाओं में कविताएँ भी लिखती हूँ।

हम ऐसे वातावरण में रहते हैं जहाँ बहुत कम लोग साहित्य में रुचि लेते हैं। मेरे लिए यह वातावरण अंधकारमय है, किन्तु आपकी यह पुस्तक मेरे इस अंधकार में प्रकाश की किरण के समान है। मुझे आशा है इस किरण के सहारे मैं अंधकार में से प्रकाश में आ सकूँगी। शायद इस पुस्तक के सहारे मुझे साहित्योपासना का क्षेत्र भी मिल जाएगा तथा साहित्य की सेवा का सुअवसर भी।

मेरे-जैसी कोटि नवोदित कवयित्री बहनें होंगी जो सहकार के अभाव में आगे न बढ़ सकती होंगी। जिनकी कविताओं में अभी त्रुटियाँ होंगी यदि आपने ऐसी बहनों को अपना सहकार दिया और उनकी रचनाएँ प्रकट करने का कष्ट किया तो न जाने कितनी आत्माएँ आपको दुआ देंगी।

यदि आपने सहयोग दिया और हमें उन्नति करने का अवसर मिला तो हम समझेंगे कि हमें भी अपने जीवन में कुछ सार्थकता प्राप्त हुई।

यदि आप अपने ग्रंथों में केवल उन कवयित्रियों की रचना लेना पसन्द करेंगे जिसमें किसी प्रकार की त्रुटि न हो, जो उत्कृष्ट हो तो आपके किये हुए ये और ऐसे दूसरे प्रयत्न हमारे लिए उपयोगी नहीं हैं। हम ऐसे वातावरण में हैं, जहाँ कोई ऐसा जानकार व्यक्ति नहीं है जो हम हमारी त्रुटियाँ बताए।

ठीक तो हमने आपका बहुत-सा अमूल्य समय ले लिया इसीलिए क्षमा चाहते हैं।

कृपया पत्र का उत्तर दीजिएगा। रतन बहन शाह जालना

सौष्ठव पूजा

•

श्री गोपालसिंह नेपाली

चिचोली, मलाड, बम्बई-६४
९-४-६१

प्रियवर सुमन,

कृपा पत्र के लिए धन्यवाद। प्रदीपजी वाला पत्र उन्हें भेज दिया। इन लोगों से ज्यादा उम्मीद न रखिये। ये कोरे फिल्मी गीतकार हैं। साहित्य लिखा ही क्या है। उस दिन यहाँ एक विराट् आयोजन था—मुशायरा-कवि-सम्मेलन-कम्बाइण्ड, उसमें हिन्दी-उर्दू के सब उपस्थित थे, मगर प्रदीप और भारत व्यास गायब।

बहरहाल, आप मेरी सम्मति को गोली मारिये और अपना कार्य जारी रखिये। मैं आपकी सफलता की कामना करता हूँ।

पुस्तक निकालने के सम्बन्ध में आप अनुबन्ध भिजवा दें, राजपाल एण्ड सन्ज से। मैं तैयार हूँ।

और सब कुशल-मंगल। आज मैं रामपुर कवि-सम्मेलन में जा रहा हूँ। ३-४ दिनों में लौट आऊँगा। प्रसन्न रहिये।

आपका, गोपालसिंह नेपाली

आचार्य रामलोचनशरण

पुस्तक भण्डार
गोविन्द मित्र रोड, पटना
१४-१०-६३

प्रिय सुमनजी,

आपका ६ अक्तूबर '१९६३ का पत्र मिला। पढ़ते ही नेपाली के लिए हृदय थामना पड़ा।

जब वह बच्चा था, बेतिया में किसी मिडिल स्कूल में पढ़ता था, तब उसने एक कविता छपने के लिए, अपने शिक्षक के पत्र के साथ भेजी। उसका समय के अनुसार

सुधार करके और ब्लॉक बनवाकर मैंने लहेरिया सराय मे 'बालक' मे छापा। 'बालक' का वह अंक जब नेपाली को मिला, उसने आनन्दित होते हुए लिखा और यह भी लिखा कि मेरी कलम अब तुकबंदी करने मे लग रही है। इसके बाद उसने जो कुछ लिखा हिन्दी-ससार के सामने है।

नेपाली का ग्रथ 'नवीन' पुस्तक भण्डार के स्वत्व मे छपा। स्वत्व वाले ग्रथ का हिसाब नही रहता। उसको कब-कब सहायता की गई, कितने रुपये दिए गए, यह भी जेब को ज्ञात है, कागज़ को नही।

हाँ, आपका यह लिखना है—उन दिनो उसके सहायक आप ही थे न? मुझसे न पूछकर साफ दिल वाले किसी मर्यादित व्यक्ति से पूछना समुचित होगा। ऐसे व्यक्तियो मे हमारे राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू अब नही हैं।

कृपा बनाये रहे। आपकी छाया मे एक बच्चा गया है।[1] आप देखकर सवारिये।

आपका ही—
रामलोचन शरण

डॉ० कमलाकान्त पाठक

शकुन्तला सदन, रामदास पेठ, नागपुर-१
१२-१०-६३

प्रिय सुमनजी,

आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप नेपालीजी पर पुस्तक तैयार कर रहे है। वस्तुत नेपालीजी से मेरा घनिष्ठ परिचय रहा है। हम लोगो का प्रथम सम्पर्क १९३५ ई० के एक कवि-सम्मेलन मे हुआ। वे रतलाम १९३४ ई० के उत्तरार्द्ध मे आए। वहाँ एक जैन-सस्था का 'जैनोदय प्रेस' था। वे ही 'रतलाम-टाइम्स' का प्रकाशन आरम्भ कर रहे थे। यह पत्र साप्ताहिक ही था। बाद मे इसका नाम 'रतलाम टाइम्स' के स्थान पर 'पुण्य-भूमि' हो गया। उस समय मैं मैट्रिक्यूलेशन का विद्यार्थी था। मेरी आरम्भिक कविताएँ और एक-दो निबध सर्वप्रथम उन्होने छापे। वे दिल्ली के 'चित्रपट' से अलग होने के बाद रतलाम आए थे और १९३७ मे किसी समय 'योगी' साप्ताहिक, पटना के सम्पादकीय विभाग मे नियुक्त हुए। प्राय १९३५-३६-३७ मे वे रतलाम मे रहे। जब वे पटना गए तब मैं आई० ए० की तैयारी कर रहा था और इन्दौर मे रहा करता था। वे नवीन दृष्टिकोण रखते थे और स्वतत्र प्रकृति का परिचय देते थे। उस समय 'क्रान्ति' उनका स्वप्न और 'मस्ती' उनका जीवन था। वे ईश्वर से लेकर शाकाहार तक का समान रूप से उपहास किया करते थे, फलत तरुणो मे वे विशेष रूप से लोकप्रिय थे। इस समय

१. 'रामलोचन पाकेट बुक्स' के श्री सीताराशरणसिंह।

उनका 'रागिनी' काव्य-सग्रह प्रकाशित हुआ था। यहाँ लिखी हुई कुछ कविताएँ 'नीलिमा' और 'पचमी' म भी सग्रहीत हुई। वे समाज-सुधार के कामो मे दिलचस्पी रखते थे। उनके यहाँ कुछ समय तक दो-एक क्रान्तिकारी भी भूमिगत अवस्था मे रहे थे। वे फुटबाल अच्छा खेलते थे। वे नागरिको की टीम मे सेंटर फार्वर्ड के रूप मे खेला करते थे। वाद-विवादो मे सम्मिलित होते हुए और गोष्ठियो मे अपने स्वतत्र विचारो को उपस्थित करते हुए रतलाम मे मैने उन्हे कई बार देखा। वे अपने यहाँ कभी-कभी मास पकाते थे और मदिरा का उपयोग कर लिया करते थे। उस समय वे अविवाहित थे। अपनी २३-२४ वर्ष की अवस्था मे वे रतलाम मे रहे। पटना जाने पर उनका विवाह कदाचित् ३८ के पश्चात् नेपाल राज्य की श्रीमती वीणा रानी से हुआ। वे प्राय मृत्यु समय तक मुझसे छुट-पुट पत्र-व्यवहार करते रहे। अपने जीवन के प्राय अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसगो पर उन्होने अपनी मन स्थिति को स्पष्ट करने वाले पत्र मुझे लिखे। अपने नये कविता-सग्रह की वे मुझसे भूमिका लिखवाना चाहते थे, पर वह सब न हो पाया क्योकि न पुस्तक छप पाई, न भूमिका ही लिखी जा सकी। मेरी साहित्यिक प्रवृत्तियो की प्राथमिक सक्रियता के लिए उनका महत्त्वपूर्ण सहयोग सुलभ हुआ था। प्राय सध्या के समय, जब कभी मैं रतलाम मे होता, उनमे प्राय साहित्य-चर्चा का सयोग उपस्थित होता रहता था। मैं ही नही, मेरे पिता और मेरे मित्र तथा नगर के समाज-सेवी और राजनीतिक कार्यकर्त्ता, सभी उनसे भली भाँति परिचित थे।

आशा है, इन सूचनाओ से आपका काम चल जायगा।[1] यो मैं १५-१६ अक्तूबर को दिल्ली मे रहूँगा और डा० स्नातक के साथ ठहरूँगा। यदि अवकाश हो तो अवश्य दर्शन दीजिए। प्रसन्न होगे। योग्य कार्य ?

आपका—कमलाकान्त पाठक

कुमारी अभिलाषा तिवारी

१२६, महाजनी वार्ड, नरसिंहपुर
१७ मार्च, ६३

मान्यवर, सादर प्रणाम

अनेको बार आपको पत्र लिखने का विचार मन मे आया, पर साहस बटोर नही पाई। आज दृढ निश्चय कर ही लिया, सो यह पत्र प्रस्तुत है।

आपके व्यक्तित्व की महानता के सम्मुख मैं नत हूँ, किन्तु मेरी श्रद्धा सदा मौन रही है। आज भी मेरी सहज अनुभूति अभिव्यक्ति पाने मे असमर्थ है।

मैं वर्तमान मे सागर विश्वविद्यालय मे हिन्दी मे पी-एच० डी० उपाधि हेतु 'हिन्दी साहित्य को नारी कलाकारो की देन (१६२० से १६६० तक)' विषय पर शोध-

१. सुमनजी नेपालीजी पर पुस्तक तैयार कर रहे थे। लेकिन खेद है कि नेपालीजी की धर्मपत्नी की बुद्धिमत्ता से वह कार्य जहाँ का तहाँ रोक देना पड़ा।

कार्य-कर रही हूँ।

आपके द्वारा सम्पादित पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम गीत' मेरे शोध कार्य में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। मैं कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक के हाथ में आने के बाद अपनी रचनाएँ आपके पास भेजने के लिए अनेकों बार मन हुआ, किन्तु कुछ सहज सकोच और कुछ स्वयं के प्रति अनिश्चयात्मक ढंग मुझे सदा ही पीछे ढकेलता रहा और बात केवल मन में रह गई। आज भी मैं आपको एक-दूसरे अत्यन्त आवश्यक कार्य वश पत्र लिख रही हूँ। मैं अपनी शोध-सम्बन्धी समस्या आपके सामने रख रही हूँ।

अपनी एक मान्यता को सन्तोषजनक रीति से उपस्थित करने में मुझे सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। वह है पुरुष कलाकारों की रचनाओं को और उनको उपलब्धियों को नारी कलाकारों की कृतियों और कृतित्वों में विशिष्ट करके देखना और दिखा सकना। साथ ही पुरुष और नारी की भावनाओं के अन्तर को परस्पर निर्दिष्ट रूप में सामने रखना। पुरुष और नारी कलाकारों की विशेष प्रवृत्तियों में अन्तर के सम्बन्ध में यदि आप मुझे समझा सकें तो मैं आपकी आभारी रहूँगी।

हिन्दी के नारी कलाकारों के साहित्य से सम्बन्धी सामग्री और उनके मूल्यांकन के सम्बन्ध में यदि आप मुझे कुछ सहायता कर सकें तो बड़ी कृपा होगी।

आप अपने काम-काज के बीहड़ में यदि मुझे कुछ सुझाव दे सकें तो बेहद खुशी होगी।

बड़े विश्वास से आपको लिख रही हूँ। पत्रोत्तर के लिए आपकी सदा आभारी रहूँगी। कष्ट के लिए क्षमा चाहती हूँ।

स आदर

कुमारी अभिलाषा तिवारी

श्री देवदत्त शास्त्री

८४ नया बैरहना, इलाहाबाद

सुमन

मुझे मालूम है कि 'दिल की बात दिल ही सुनता है।' मुझे आज अपने दिल की बात कहनी है। तू नहीं सुनेगा, किन्तु तेरा दिल सुनेगा और पाठकों के दिल समझेंगे। कहना तो बहुत चाहता था किन्तु एक लफ्ज में कह दूँ कि "तू मेरा प्रतिद्वन्द्वी है—बहुत प्यारा प्रतिद्वन्द्वी।" रूपनारायण को माध्यम बनाकर हम दोनों की प्रतिद्वन्द्विता अनजान आरम्भ हुई थी। रूपनारायण को पाँसा बनाकर मैत्री की फड़ में हम दोनों की द्यूत क्रीडा शुरु हुई थी। पाँच तत्वों का बना हुआ वह पाँसा हम दोनों के बीच बराबर सन्तुलन बनाए रखता था। न कोई हारता था, न कोई जीतता था। पाँसा दोनों को सिद्ध था, करतलगत

था, किन्तु एक दिन अचानक पाँसा पलट गया। न तेरे हाथ रहा, और न मेरे। उसने दोनों से बताया नही, किसी से भी नही बताया और खुद-ब-खुद अपने पाँच तत्त्वों के बने हुए शरीर को उसने बिखेर दिया। सदा-सदा के लिए हमारे हाथ से छूटकर अनन्त मे मिल गया। अब हम दोनों प्रतिद्वन्द्वी हाथ मल रहे है। आँसुओ के सागर मे डूबी हुई तेरी आँखों न तब नही अब मुझे पराजित कर दिया। मैं हार गया, तू जीत गया भाई ![1]

वस्तु का मूल्य उसके अभाव पर मालूम होता है 'सुमन'! किन्तु तूने वस्तु के रहते हुए उसका मूल्य आँक लिया था, इसलिए उसके न रहने पर तूने मुझे जीत लिया। मैं हार गया—इसलिए कि मैं रूपनारायण के रहते हुए उसकी कीमत न आँक सका। मेरा दोष भी नही है बन्धु! उसने मुझे मूल्य आँकने का अवसर ही नही दिया। तुम दोनों स्नेह के चौखटे पर बैठते थे, आत्मीयता का दरवाजा सदा खोलकर। किन्तु उसने मुझे अपनी आस्थाओ के गुफा-मन्दिर मे बैठाकर उस पर श्रद्धा का परदा डाल दिया था। कितना बडा प्रच्छन्न पक्षपात किया था उसने। तेरी जीत और मेरी हार का यही रहस्य है।

दिल धडककर कहता है कि पक्षपात कहना भी भूल है। जिसे तू पक्षपात कहता है वह पारिवारिक स्नेह था। दिल की धडकन ने मुझे सजग कर दिया। अपनी गलती पर फिर से सोचने का अवसर दिया। ठीक है, उस बेचारे ने पक्षपात नही किया था, बल्कि महाविद्यालय के पारिवारिक सम्बन्ध को निभाया था।

यह ज्वालापुर महाविद्यालय भी भारत-भर मे अपने ढग की एक ही सस्था है। देश मे हजारो शिक्षा-सस्थाएँ है, सैकडो से मैं परिचित हूँ, किन्तु ज्वालापुर महाविद्यालय अपनी एक विशिष्ट विशेषता से सर्वोपरि है। जब से सस्था खुली तब से आज तक जो भी स्नातक, आचार्य, कार्यकर्ता, छात्र उससे सम्बद्ध रहे या है वे सब एक अटूट शृखला की कडी बने हुए है। जो स्नातक जहाँ कही जिस क्षेत्र मे है वह नये-पुराने अपने आचार्यो सतीर्थ्यों, कार्यकर्ताओं से उतना ही निकट सम्बन्ध रखता है जितना तन और प्राण का। अध्ययन-अध्यापन तो सभी शिक्षण-सस्थाओ मे होता है किन्तु इस प्रकार का अटूट सम्बन्ध अन्यत्र दुर्लभ है। ज्वालापुर महाविद्यालय को जिस किसी ने स्थापित किया होगा वह निश्चय ही ऋग्वेदकाल का कोई ऋषि मानव रूप मे अवतरित रहा होगा और वैदिक-कालीन चरण या ऋषि-कुल की परम्परा को पुन चलाने के लिए उसने ज्वालापुर महाविद्यालय की स्थापना की।

इसी सदर्भ मे उक्त महाविद्यालय की एक और विशेषता मैंने देखी है। सस्था

१. ज्वालापुर महाविद्यालय के स्नातक और श्री सुमनजी के सहपाठी रूपनारायण ओझा शान्त, सौजन्य और स्नेह की प्रतिमूर्ति थे। प० हरिप्रसाद शुभैषी वानप्रस्थी के ज्येष्ठ पुत्र थे। अलीगढ के निवासी थे और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में साहित्य विभाग के प्रधानकर्मी थे। सितम्बर सन् १९५८ में अचानक उस मासूम हृदय महा मानव ने स्वयमेव अपना जीवन-लीला समाप्त कर ली।

आर्यसमाज के सिद्धान्तो पर सचालित है। विद्यार्थी अध्यापक कार्य सचालक सभी आर्य समाजी विचारो के होते हैं किन्तु आर्यसमाज की कट्टरता आर्यसमाजियो की सी तर्क शैली मुझे किसी मे भी नही जान पडी। राष्ट्र सस्कृति साहित्य की समन्वय धारा सतत बडी उदारता मे प्रवाहित रहती है। नीर क्षीर विवेक ही ज्वालापुर महाविद्यालय की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जान पडता है। यही कारण है कि पीढी-दर पीढी म सनातनी परम्पराओ से सपृक्त मैं रूप सुमन [1] का सुहृद बना आत्मीय बना।

सुमन

जब मै आने वाले उस क्षण की कल्पना करता हूँ जब तुम्हारा पचासवाँ जन्म दिन समारोह होगा अभिनन्दन-अभिवादन होगा और निश्चय ही उस दिन तुम्हें याद आएगी रूपनारायण की और आठ वर्ष से लगातार पिए गए आसुओ का खारा सागर जो तुम्हारे अन्तराल मे समाया हुआ है उसमे कही ज्वार न आ जाए। भाई उस क्षारोद निधि को सँभाल रखना सयत रखना उसका बडवानल सीमा से बाहर न जाने पाए। आँखो को उसी म डूबी रहने देना। उमडकर आसुओ का सागर आखो मे न लहराने पाए। मेरी वाणी तुम्हारा अभिनन्दन करेगी मेरी पराजय तुम्हारा अभिवादन करेगी और मेरी उँगलियाँ तुम्हारा अभिषेक करेंगी और तुम अपनी यादो के चिनार वृक्ष की छाँह म रूपनारायण को बैठाकर उस पर सहज स्नेह सुमन की वर्षा करना--आखो म मुस्कान भरकर हृदय म तूफान भरकर।

देवदत्त शास्त्री

१. 'रूपनारायण ओझा' और 'क्षेमचन्द्र सुमन'

পুনশ্চ

उदार हृदय मानव

डॉ० सत्येन्द्र

प्रेमचन्द्र 'सुमन' से मेरा काफी पुराना परिचय है। यों तो मैंने उनका नाम बहुत पहले से सुन रखा था, पर परिचय कराया था डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने। तब से सुमनजी का स्नेह मुझ पर निरन्तर बढ़ता ही गया है। मैं दिल्ली में शहर से दूर उनके मकान में उनका अतिथि भी एक बार रह चुका हूँ। वहीं मैंने प० उदयशंकर भट्टजी का भी उनका अपना मकान देखा था और उनके सीधे-सादे तपस्वी जीवन की एक गहरी झलक पाई थी। सुमनजी ने इस सत्कार के अवसर पर वह समस्त कष्ट-कथा सुनाई थी जो उन्हें वहाँ उतनी दूर विषम परिस्थितियों में मकान बनाने में उठानी पड़ी थी।

सुमनजी के आभ्यन्तर-बाह्य को निकट और दूर से देखकर मैं सदा अत्यन्त प्रभावित रहा हूँ। वे जो योजनाएँ लेकर चलते है, उन्हें सफल बनाने में पूरा प्रयत्न वे करते रहे हैं, इन योजनाओं में नई-नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देने के भाव की प्रमुखता रही है। जिन व्यक्तियों को सहारे की चाह रही है, उन्हें सुमनजी ने अपने अभावों की आहट दिये बिना सहारा ही नहीं, पूरा सहयोग तथा प्रेम भी दिया है। उनका जिससे जैसा स्नेह-सम्बन्ध बँधा, वैसा वह निरन्तर बना रहा। बढ़ा ही भले हो, घटा कभी नहीं। यथार्थतः सुमनजी के अन्दर झाँककर देखा जाए तो वहाँ एक स्निग्ध उदार हृदय मानव के दर्शन होंगे और आज के युग में यह सबसे बड़ी बात है। मैं उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ, जिससे इस संसार में मानवता की पूजा में कमी न रहे।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

एक अर्चना

डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'

बन्धुवर क्षेमचन्द्र 'सुमन' का सौहार्द सुप्रसिद्ध है। मेरी पीढ़ी के अधिकांश हिन्दी साहित्यकार उनसे उपकृत हो चुके हैं। कभी किसी का कोई काम अटक जाए, किसी प्रकार की अड़चन पड़ जाए, सुमनजी सदा सेवा के लिए तत्पर मिल जाएँगे। अकारण, अहैतुक। पर-काज में उन्हें समय-असमय का ध्यान नहीं रहता। सबका

और खिन्नता उनसे कोसों दूर है। उनकी लोकप्रियता का बहुत कुछ रहस्य इसी सौमनस्य में अन्तर्निहित है।

मैंने जब अपना उपनाम 'सुमन' रखा था तो मुझे पता नहीं था कि मुझसे कहीं अधिक सुधी और वरेण्य अग्रज श्री रामनाथ 'सुमन' हिन्दी साहित्य में पूर्ण प्रतिष्ठित हैं—बापूजी के आशीर्वाद से अभिषिक्त, प्रसादजी की आत्मीयता से अभिसिंचित। काशी में जब पहले पहल उनसे साक्षात्कार हुआ तो बहुत ही संकुचित हुआ, पर उन्होंने कुछ ऐसे ममत्व से सिर पर हाथ फेरा कि मेरी अकिंचनता स्वयं में ही धन्य हो उठी।

बाद में जब क्षेमचन्द्र 'सुमन' का साहित्य में उदय हुआ तो मेरी अक्षमता को जैसे आड़ मिल गई। परिवार में मँझले भाई को जो दुहरा कवच सुलभ हो जाता है, वही अनायास मेरे पल्ले पड़ गया।

सुमनजी-जैसे उदारमना और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को बन्धु के रूप में पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। सम्भवतः उपनाम-साम्य से उन्होंने मुझे ओढ़ा भी खूब। मैं जितना प्रमादी हूँ वे उतने ही चैतन्य हैं, मैं जितना स्वार्थी हूँ, वे उतने ही निस्पृह हैं। कहने को तो मैं उनसे आयु में दो मास बड़ा हूँ, पर जिस बड़प्पन से मनुष्यता सँवरती है वह तो उन्हीं के हिस्से में आया है।

आज जब वे अपने ज्वलन्त जीवन के ५० वर्ष पूर्ण करके ५१वें में प्रवेश कर रहे हैं तो लगता है कि हिन्दी-साहित्य के साधनहीन साहित्यिकों के अप्रतिहत संघर्ष का एक अध्याय समाप्त हो रहा है। कैसी-कैसी परिस्थितियों में, किस साहस और शौर्य से उन्होंने अपना स्थान बनाया है, इसकी एक कहानी रह जाएगी।

इस पुनीत अवसर पर उनके सभी सुहृदों की हार्दिक मंगलकामना है कि यह दूसरा अध्याय और भी समुज्ज्वल हो, सुमनजी की 'अर्चना' के ही अनुरूप! उनकी सहृदयता समकालीन साहित्य-सेवियों की यात्रा में पाथेय का भागधेय बनकर स्वयं को सदा धन्य करती रहे। वे चिरजीवी हों।

प्रधानाचार्य,
माधव कॉलिज उज्जैन (म० प्र०)

दीप्त धरोहर

संघर्षों से निरन्तर जूझना, अन्याय के विरुद्ध आवाज ऊँची करना विपत्तियों को कसौटी मानकर उनकी छाती पर पैर रखकर चलना श्री सुमनजी का सहज स्वभाव है। 'टूट जाएँ, पर झुकें नहीं, काँटों-भरी जिन्दगी की राह पर 'एकला चलो रे' सुमनजी का सिद्धान्त है। ऐसे स्वभाव और सिद्धान्त के निदर्शक कुछ सन्दर्भ, कुछ घटनाएं यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं जो सुमनजी के जीवन की दीप्त धरोहर बन गई हैं।

नजरबंदी का आदेश

श्री 'सुमन' जब लाहौर म थे तब वहां की सी०आई०डी० पुलिस के द्वारा अपने गांव बाबूगढ (मेरठ) म जाने और तुरन्त सयुक्त प्रान्त सरकार का गांव मे नजरबन्दी का जो आदेश उन्हे मिला था उसीकी अविकल प्रतिलिपि यहां दी जा रही है।

GOVERNMENT OF THE UNITED PROVINCES

Confidential Department
No 4611-C X, Naini Tal,
Dated July 10th, 1944

ORDER

Whereas the Governor of the United Provinces is satisfied with respect to the person known as Kshem Chandra Suman, son of Pandit Harish Chander, resident of Babugarh, Police Station Hapur, Meerut district, that, with a view to preventing him from acting in a manner prejudicial to the defence of British India and the efficient prosecution of the war, it is necessary to make the following order

Now, therefore, in exercise of the powers conferred by clauses (d) and (e) of sub section (1) of section 3 of the Restriction and Detention Ordinance, 1944 (No III of 1944), the Governor of the United Provinces hereby directs that the said Kshem Chandra Suman

(1) shall reside and remain in the Meerut district,

(2) shall not move outside the jurisdiction of Police station Hapur in the Meerut district without previously informing the Station Officer of the said Police Station Hapur in the Meerut district of such movement and of the address to which he moves and, on arrival at such address, he shall immediately notify the Station Officer of the Police Station in whose jurisdiction he arrives of such arrival, and

(3) shall report his presence, at fortnightly intervals, to the Station Officer of the Police Station in whose jurisdiction he may be for the time being

Sd D S Barron
Home Secretary to the Government,
United Provinces

Attested

Sd Mohd Asghar
fo Dy. Inspector General of Police,
C I D, Punjab

याचिका की अस्वीकृति

GOVERNMENT OF THE PUNJAB

No 1504 BDSB Order No 9530 BDSB issued by the Punjab Government on the 28th May 1945 directing the externment from the Punjab of Kshem Chandra Suman son of Harish Chand Brahman of Babugarh Police Station Hapur Meerut district (U P) under section 3 (I) of the Restriction and Detention Ordinance 1944 is cancelled from the date on which this notice is served on Kshem Chandra Suman

Dated Lahore, Sd H D Bhanot
The 13th February 1945 *Chief Secretary to Government Punjab.*

'हिंदुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित पत्र

HINDUSTAN TIMES

Letters to the Editor

INTERNMENT SCANDALS

Sir, —— With reference to your editorial on "Internment scandals", I would like to cite one more instance of gross abuse of powers under the Defence of India Rules Sri Kshemchandra Suman was released from the Ferozepore camp jail on July 14, 1944, where he was detained for a year and a half under Rule 26 of the Defence of India Rules On his release he was interned within the limits of the Lahore Corporation and had to report himself every Sunday at the police station He was further required not to make public speeches or statements to the Press Mr Suman's troubles did not end there After a period of a month and a half the Punjab Government ordered him on August 23 to quit the Punjab within 48 hours An order from the Home Secretary to the U P Government was also served on Mr Suman requiring him to reside and remain in the Meerut district and not to move outside the jurisdiction of the Hapur police station without previous intimation and to report his presence at fortnightly intervals at the police station The order is dated July 10 1944, while Mr Suman was still under detention in a Punjab jail Mr Suman had been working in Lahore as Assistant Editor of the Hindi daily Milap for 2 years previous to his arrest and detention in March 1943, under the order of the Punjab Government As soon as he was released, he rejoined his former avocation Now in pursuance of the order from the Punjab and U P Governments Mr Suman had to leave Lahore and is interned in his native village within the limits of the Hapur police station By these arbitrary orders he has been deprived of the means of earning his livelihood and is facing starvation He has to support a large family The order from the U P Government is quite unwarranted and whimsical It ought to be rescinded as early as possible or as an alternative the U P Government should sanction a suitable maintenance allowance for Mr Suman's family —

Yours etc ,
ONE WHO KNOWS

(14 9 1944)

अन्यायमूलक प्रतिबन्ध

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' गत दो-ढाई वर्ष से लाहौर में रहते थे और वहाँ से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'हिन्दी मिलाप' में सहायक संपादक का काम करते थे। पंजाब सरकार ने इन्हें लगभग डेढ़ वर्ष तक नजरबन्द रखा और जब रिहा किया तो लाहौर कारपोरेशन की सीमा में रहने का प्रतिबन्ध लगा दिया। पुलिस थाने में हाजिरी देने, भाषण न देने आदि प्रतिबन्ध भी लगाये गए। श्री सुमनजी इन प्रतिबन्धों को मानते हुए अपना पुराना काम करने लगे, किन्तु अचानक पंजाब सरकार से इन्हें युक्तप्रान्तीय सरकार का आदेश मिला कि वह मेरठ जिले में जाकर रहें और बिना सूचना दिये हापुड़ पुलिस थाने के क्षेत्र से बाहर न जाएँ। इन आदेशों के फलस्वरूप पंजाब और युक्तप्रांत की सरकारों ने श्री सुमन की आजीविका ही छीन ली है और उनके तथा उनके बड़े परिवार के लिए भूखों मरने की नौबत ला दी है। इन आदेशों के पीछे किसी युक्ति को ढूंढ़ना कठिन है। श्री 'सुमन' की यह माँग सर्वथा न्यायोचित है कि या तो युक्तप्रांतीय सरकार को उन पर लगाये गए प्रतिबन्ध को हटा लेना चाहिए ताकि वह उपयुक्त स्थान पर आजीविका अर्जन कर सकें, या उनके परिवार के भरण-पोषण के लिए उचित अलाउन्स मंजूर करना चाहिए। हम युक्तप्रान्त की सरकार का ध्यान उनके मामले की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

दैनिक 'हिन्दुस्तान' नई दिल्ली,
१८ सितम्बर, १९४४ ई० (सम्पादकीय)

छुटकारे के बाद की आफत

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' लाहौर के दैनिक सहयोगी 'हिन्दी मिलाप' के सहकारी सम्पादक थे। २४ मार्च, १९४३ को आप लाहौर की सी० आई० डी० द्वारा गिरफ्तार किये गए और धारा २६ के अनुसार नजरबन्द किये गए। लगभग सवा साल बाद फीरोजपुर जेल से आप गत १४ जुलाई को छोड़े गए और लाहौर म्युनिसिपैलिटी की सीमा में नजरबन्द किये गए। जुलूस में सम्मिलित होने, वक्तव्य आदि देने की मनाही कर दी गई तथा प्रति रविवार को पुलिस थाने में हाजिरी देने की भी आज्ञा दी गई। इस अपमानजनक आज्ञा का पालन करते हुए भी आप पूर्ववत् 'हिन्दी मिलाप' में काम

करने लगे। इस प्रकार वे किसी प्रकार जीविका निर्वाह कर रहे थे जब १० जुलाई को युक्तप्रांतीय सरकार की एक आज्ञा लाहौर में पंजाब सी० आई० डी० की मार्फत, रिहाई के डेढ़ मास बाद, आपको मिली कि मेरठ जिले में जाकर अपने घर में रहें। पुलिस को सूचना दिये बिना हापुड़ थाने और मेरठ जिले के बाहर न जाएँ, जहाँ जाएँ वहाँ के थाने के पुलिस अफसर को अपने आने की सूचना दें तथा हर पन्द्रह दिन पर थाने में हाजिरी दिया करें। बिना विचार के डेढ़ वर्ष की नजरबन्दी के बाद यह प्रतिबन्ध! इसका अर्थ क्या है? यदि इस प्रकार किसी को तंग करना है तो जेल से ही क्या छोड़ जाते हैं। सुमन जी की अवस्था ऐसी नहीं है कि बिना कमाये घर बैठे रहें। यदि कमाते नहीं तो भूखों मरना पड़ता है और सरकार कमाने-खाने का मार्ग बन्द कर देती है। जेल में तो खैर खाना-कपड़ा मिलता था, बाहर वह भी नहीं। ऐसे आदमी कैसे जीवन धारण करें? यदि युक्तप्रांत की सरकार ने उन्हें घर में नज़रबन्द किया है तो मनुष्यता और न्याय दोनों का यह तकाजा है कि वह आपको घर पर उचित भत्ता दे।

दैनिक 'संसार' बनारस

२३ अगस्त, १९४४ (सम्पादकीय)

भत्ता देने का प्रश्न

'हिन्दी मिलाप' लाहौर के के सहायक सम्पादक श्री क्षेमचन्द्रजी 'सुमन' लगभग डेढ़ साल की नजरबन्दी के बाद गत १४ जुलाई को फीरोजपुर जेल से रिहा किये गए थे। उन पर लाहौर कारपोरेशन की सीमा में रहने आदि का प्रतिबन्ध लगाया गया था। सुमनजी लाहौर में रहकर अपनी जीविका उपार्जन करते थे परन्तु गत २४ अगस्त को उन्हें लाहौर में युक्तप्रांतीय सरकार की आज्ञा मिली, जिसे १० जुलाई को जारी किया गया था। उस आज्ञा के अनुसार उन्हें हापुड़ के थाने की सीमा में रहना होगा। १५वें दिन थाने में जाकर हाजिरी भी देनी होगी। कहीं आना-जाना हो तो उसकी भी सूचना देनी ही चाहिए। सुमनजी हापुड़ के थाने के एक गांव बाबूगढ़ के निवासी हैं और इस आज्ञा का परिणाम यही होगा कि उन्हें अपने जीविका-स्थान लाहौर को छोड़कर अपने गाँव बाबूगढ़ में रहना होगा। पत्रकार के लिए गाँव में जीविका का क्या साधन हो सकता है यह बतलाने की जरूरत नहीं है। खेद है कि युक्तप्रांतीय सरकार के जिम्मेदार अधिकारियों ने यह आज्ञा जारी करते समय प्रश्न के इस पहलू को ध्यान में नहीं रखा, जो अत्यन्त आवश्यक है। आशा है, युक्तप्रांतीय सरकार उन्हें भत्ता देने के प्रश्न पर विचार करेगी और अनुकूल निर्णय करेगी।

दैनिक 'विश्वमित्र' नई दिल्ली,

२० अगस्त, १९४४ (सम्पादकीय)

बहिष्कार के स्वार्थ-पट पर
अस्वीकार के हस्ताक्षर

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की प्रांतीय शाखा दिल्ली प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा राजधानी के कतिपय लेखकों द्वारा रचित रेडियो-विरोधी-लेखक-संघ ने सन् १९४६ में रेडियो-बहिष्कार-आन्दोलन का सूत्रपात किया। इस आन्दोलन के पीछे कुछ लोगों का व्यक्तिगत स्वार्थ था, किन्तु हिन्दी के हित का ढोंग रचा गया था।

उक्त आन्दोलन से वस्तुतः हिन्दी का ही अहित होने जा रहा था, किन्तु इस बुनियादी तथ्य को बहुत कम लोग समझ पाए थे। देश, काल और पात्र के पारखी श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' उन दिनों पंजाब सरकार द्वारा पंजाब से निष्कासित किए जाने पर राजधानी में ही पांव जमा रहे थे। आन्दोलन के रहस्य से वे भली-भांति अवगत थे, वे यह कब बरदाश्त कर सकते थे कि स्वार्थ की वेदी पर हिन्दी का बलिदान किया जाए। बड़े साहस और धैर्य के साथ उन्होंने रेडियो-विरोधी-आन्दोलन का विरोध करते हुए रेडियो द्वारा वार्ताएँ, कविताएँ प्रसारित करने का अपना संकल्प उन्होंने जिन तथ्यों, तर्कों सहित एवं वक्तव्य द्वारा व्यक्त किया था, वह वक्तव्य अविकल आगे दिये जा रहा है।

हिन्दी-प्रेमी जनता चेते !

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का वक्तव्य

पंजाब से निर्वासित हिन्दी के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने रेडियो-कवि सम्मेलन में भाग लेने के सम्बन्ध में निम्न वक्तव्य प्रकाशनार्थ भेजा है—

"मेरा ध्यान कई स्नेही मित्रों ने दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन और रेडियो-विरोधी-लेखक-संघ के उस वक्तव्य की ओर आकर्षित किया है जिसमें रेडियो पर भाग वाले कवियों का बहिष्कार करने का हिन्दी-जगत् से अनुरोध किया गया है।

मुझे वक्तव्य को देखकर साश्चर्य खेद हुआ कि यह अनुरोध ऐसी संस्थाओं द्वारा किया गया है कि जिनका अस्तित्व (?) हिन्दी-जगत् की दृष्टि में कुछ भी नहीं। आजकल नई-नई संस्थाएँ बनाकर नए नए कार्यों की आयोजना लेकर जनता की आँखों में धूल झोंकने तथा उन संस्थाओं की आड में अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति करना एक व्यवसाय-सा हो गया है। यह हिन्दी का दुर्भाग्य है कि उसको ऐसे ही यश लोलुप और स्वार्थ-परायण कार्यकर्त्ता मिलते हैं कि जो बरसाती मेंढकों के समान अवसर पाने पर अपनी निष्प्राण दुन्दुभी बजाकर जनता के सामने आने का प्रयत्न करते है।

आज से पूर्व मैंने रेडियो विरोधी लेखक-संघ नाम की संस्था द्वारा किये गए हिन्दी के गौरवपूर्ण कार्य का ब्यौरा कहीं भी नहीं देखा। हाँ, दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अवश्य ही विगत दो वर्ष में एक दो बार दो तीन दिन तक नृत्य तथा संगीत आदि का आकर्षक कार्यक्रम रखकर जनता के महत्त्वपूर्ण धन का अपव्यय अवश्य किया है। कुछ थोडे से प्रस्ताव पास करके फाइलों में छपना देना भी उसका कार्य रहा है। दुर्भाग्य से सम्मेलन को ऐसे कार्यकर्त्ता मिले है जो गुटबन्दी के पीछे विचार स्वातन्त्र्य की बलि देकर हिन्दी-रक्षक बनने का ढोंग बनाय हुए है।

अब रही रेडियो पर जाने की बात। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने जयपुर-अधिवेशन में लगभग दो साल पहले रेडियो-बहिष्कार का प्रस्ताव पास किया था। रेडियो-विरोधी आन्दोलन के नाम पर सम्मेलन को पर्याप्त धन-राशि मिली, किन्तु उसने इस आन्दोलन को कितना आगे बढाया यह सभी हिन्दी प्रेमी जानते हैं। उदयपुर अधिवेशन में भी इस आन्दोलन के निमित्त एकत्र हुई निधि तथा रेडियो-विरोधी प्रगति का कोई विवरण हिंदी-प्रेमी जनता के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया। जिस समय यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था उस समय मैं नजरबन्द था अतएव उसकी मान्यता का महत्त्व मेरे समक्ष कुछ भी नहीं। मैंने उसी समय यह अनुभव किया था कि हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का यह निश्चय असामयिक और अदूरदर्शितापूर्ण है।

हिन्दी के गौरव को दृष्टि में रखकर और उसकी सांस्कृतिकता को अक्षुण्ण रखने की भावना से अनुप्राणित होकर ही मैंने रेडियो से सहयोग किया है। मैं सदैव से संस्कृत-

निष्ठ हिन्दी लिखने एवं बोलने का पक्षपाती रहा हूँ। आल इण्डिया रेडियो से प्रसारित मेरी वार्ताओं तथा कविताओं में भी यही भावना अन्तर्निहित है। जिन्होंने मेरी वार्ताओं तथा कविताओं को सुना है व इस सचाई से अवगत होंगे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इस निश्चय के विरुद्ध जाकर भी मैंने हिन्दी का हित ही किया है, अहित नहीं। प्रान्तीय सम्मेलन तथा रेडियो-विरोधी-लेखक-संघ-जैसी नाम-मात्र की संस्थाओं के इस वक्तव्य का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं हो सकता।

एक बात हिन्दी-जगत् से भी। कोरी भावुकता में आकर अपनी थैलियों का मुँह खोल देने वाला हिन्दी जगत् क्या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से रेडियो-विरोधी प्रचार के नाम पर एकत्रित हुई धन-राशि तथा अब तक के किये गए कार्य का विवरण न मांगेगा? हिन्दी-जगत् चेते और सम्मेलन की प्रचारात्मक नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाकर उसको रचनात्मक कार्य करने की ओर प्रेरित करे। इन शब्दों के साथ मैं विदा होता हूँ यदि आवश्यकता पड़ी तो फिर इन संस्थाओं की अनेक गुप्त एवं महत्त्वपूर्ण चालों का हिन्दी-जगत् को परिचय दूंगा।"

(दैनिक 'नया हिन्दुस्तान' दिल्ली, १७ अप्रैल '४६)

यात्री बस व ठेलेकी टक्करमें एक व्यक्ति मरा : ५० घायल

दिल्ली, मंगलवार (स)।

दिल्ली गाजियाबादके बीच साहिबाबादके निकट जी. टी. रोडपर आज एक यात्री बस तथा एक ठेला आपसमें टकराकर चूर-चूर हो गये। दुर्घटनामें लगभग ५० व्यक्ति घायल हुए, जिनमें ४५ वर्षीय अर्जुनदासकी मृत्यु हो गयी तथा सात अन्यकी हालत चिन्ताजनक बतायी जाती है। घायलोंमें प्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्री क्षेमचन्द्रसुमन भी हैं।

नवभारत टाइम्सके संवाददाताने जब घटनास्थलपर पहुंचकर देखा कि ५६ सीटोंवाली दुर्घटनाग्रस्त बसकी एक भी सीट ठीक नहीं थी और चकनाचूर हो गयी थी।

ठेलेका ढांचा पिचलकर बसके पिछले हिस्सेमें फंस गया था। एक प्रत्यक्षदर्शीने बताया कि इस सड़कपर इतनी घातक दुर्घटना उन्होंने पहले नहीं देखी। टक्कर इतनी जोरकी हुई कि दूर तक आवाज गयी और आसपासके सैकड़ों लोग जमा हो गये।

ईश्वरीय चमत्कार

कुछ घायल यात्रियोंने बताया कि इस दुर्घटनामें इतने लोगोंकी जान बच गयी यह भी एक ईश्वरीय चमत्कार है। यह बस दिल्लीसे दो बजे गढ़मुक्तेश्वरके लिए चली थी।

श्री सुमनने जो बसमें अगली सीट पर बैठे थे, बताया कि जब बस तेजीसे जा रही थी तो सामनेसे एक ठेला आया और [illegible] बचाता हुआ आकर बससे टकरा गया।

साहिबाबाद चौकीके इन्चार्ज श्री सक्सेनाने बताया कि ट्रक जो ईंटें लेकर जा रहा था अपने साथ जाती बैलगाड़ीसे आगे निकलनेकी कोशिशमें दायें कटकर बससे आ टकराया।

बस कण्डक्टर श्री सूरजपालने बताया कि टक्कर इतनी जोरकी हुई कि बसकी छतपर रखा सामान बक्स उछलकर दूर जा गिरा।

बाल-बाल बचे

१६ अप्रैल १९६३ को दिन में दो बजे के लगभग सुमनजी अपने छोटे भाई श्री रघुवरदयाल शर्मा भारद्वाज से मिलने मवाना (मेरठ) के लिए बस द्वारा चले। बस अभी कठिनाई से एक मील ही निकल पाई थी कि यह दुर्घटना हो गई। यह सौभाग्य था कि सुमनजी इसमें बाल-बाल ही बचे, क्योंकि वे आगे की सीट पर ड्राइवर के बिलकुल पीछे बैठे थे। सुमन जी उसी दिन प्रातः गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव में सम्मिलित होकर हरिद्वार से लौटे थे।

'नवभारत टाइम्स' १७ अप्रैल १९६३ में प्रकाशित समाचार की कटिंग

चुने हुए जीवन-प्रसंग

श्री सरन सक्सेना

१६१६—जन्म—सितम्बर १६, तदनुसार आश्विन कृष्ण ६, संवत् १९७३ बाबूगढ़, जिला मेरठ में।

माता—श्रीमती भगवानी देवी।

पिता—श्री हरिश्चन्द्र सारस्वत।

१६२३—प्रारंभिक शिक्षा के लिए गाँव के प्राइमरी स्कूल में प्रविष्ट।

१६२८—मार्च गुरुकुल, महाविद्यालय ज्वालापुर में विद्याध्ययन के लिए प्रवेश। गुरुकुल ज्वालापुर में गुरुद्वय साहित्याचार्य पद्मसिंह शर्मा और आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ के सम्पर्क में 'साहित्यिक-बीजारोपण'। विद्यार्थी-जीवन में 'सुधांशु' और 'किशोर मित्र' नामक हस्तलिखित मासिक पत्रों का सफलता पूर्वक संपादन।

१६३६—प्रथम रचना 'सुकवि' कानपुर में प्रकाशित।

१६३७—गुरुकुल ज्वालापुर से विद्याध्ययन की समाप्ति।

१६३७—शिक्षा-समाप्ति के उपरान्त 'आर्य' साप्ताहिक सहारनपुर के सम्पादक हुए।

१६३८ फरवरी ५—गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की 'आर्य किशोर सभा' के रजत-जयन्ती महोत्सव पर 'स्वागताध्यक्ष' पद से मुद्रित भाषण।

१६३८ अप्रल १२—कुम्भ मेले के अवसर पर 'हिन्दू नवजीवन संघ' की ओर से हरिद्वार में कवि-सम्मेलन का आयोजन। इस वृहत् कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध कवयित्री होमवती देवी ने की थी।

१६३८ मई २४—सुश्री प्रतिमा 'सुमन' के साथ सरधना (जिला मेरठ) के निकटवर्ती छबड़िया ग्राम में पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ।

१६३६—'आर्य-संदेश' आगरा के सह-सम्पादक नियुक्त।

१६३६ मार्च—'आर्य-मित्र' आगरा के सह-सम्पादक नियुक्त। अप्रैल में गुरुकुल ज्वालापुर के आगराप्रान्तीय स्नातकों के संघ की स्थापना।

१६३६ नवम्बर—अमेठी राज्य के राजकुमार रणंजयसिंह द्वारा प्रकाशित 'मनस्वी' मासिक के सम्पादक।

१६४० जुलाई-दिसम्बर—मंडी धनौरा, मुरादाबाद से प्रकाशित 'शिक्षा-सुधा' मासिक का सम्पादन।

१९४१ अक्तूबर से दिसम्बर—लाहौर के 'हिन्दी-भवन' प्रकाशन-संस्थान में साहित्य-सहायक।

१९४१ जनवरी से जुलाई—स्वतन्त्र-लेखन और लाहौर में अध्यापन-कार्य।

१९४२ जुलाई से २३ मार्च १९४३—दैनिक 'हिन्दी मिलाप' (लाहौर) के सहकारी सम्पादक।

१९४२ अक्तूबर से २३ मार्च १९४३—'फतेहचन्द कालेज फॉर विमेन' में अतिरिक्त हिन्दी प्राध्यापक।

१९४३—हिन्दी भवन, लाहौर द्वारा 'मल्लिका' (कविता-संग्रह) का प्रकाशन।

१९४३ मार्च २३—लाहौर में 'भारत रक्षा-कानून' के अन्तर्गत गिरफ्तारी और फीरोज़पुर जेल में नज़रबन्दी।

१९४४ जुलाई १९—फीरोज़पुर जेल से रिहाई और लाहौर-कारपोरेशन की सीमा में नज़रबन्दी।

१९४४ अगस्त २३—सरकार द्वारा पंजाब से निष्कासन और अवांछनीय व्यक्ति घोषित।

अपनी जन्मभूमि बाबूगढ़ (मेरठ) में उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा नज़रबन्द।

१९४५ मई १७—बाबूगढ़ (मेरठ) की नज़रबन्दी की पाबन्दी हटी।

पंजाब प्रवेश पर रोक कायम रही।

चूँकि पंजाब में जा नहीं सकते थे, अतः दिल्ली में साहित्यिक कार्य।

नज़रबन्दी के दिनों सेवाश्रम बनारस से श्री श्रीप्रकाश जी और प्रयाग से बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन द्वारा आर्थिक सहयोग और प्रोत्साहन।

१९४५ जुलाई—माडर्न बुक डिपो द्वारा 'बन्दी के गान' (जेल जीवन की कविताएँ) प्रकाशित हुई।

१९४५ जुलाई से १९४६ जून—'विद्यामन्दिर लिमिटेड नई दिल्ली' प्रकाशन-संस्था में साहित्यिक सहायक।

१९४६—गोयल ब्रदर्स, दिल्ली द्वारा 'नेताजी सुभाष' नामक जीवन चरित प्रकाशित।

१९४६—साहित्य-सदन, देहरादून द्वारा सन् '४२ के आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया इतिवृत्तात्मक खण्ड-काव्य 'कारा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

१९४६—साहित्य सदन, देहरादून द्वारा अगस्त क्रान्ति का इतिहास 'हमारा संघर्ष' नाम से छपा।

१९४६ फरवरी १३—पंजाब प्रवेश की पाबन्दी हटी और नज़रबन्दी भी उठाई गई।

१९४६ जुलाई से २९ जनवरी १९४८—राजहंस प्रेस (सदर बाज़ार) में सहायक-व्यवस्थापक।

१९४७—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा द्वारा 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' प्रकाशित।

१९४७ मई १४—पूज्य पिता श्री हरिश्चन्द्र सारस्वत का स्वर्गवास।

१९४८—व्रतीभ्राता, दिल्ली जालन्धर से राजनीतिक और सामाजिक निबन्ध-संग्रह 'प्रभाकर निबन्धावली' प्रकाशित।

१९४८ जनवरी ३० से ३० जून—पी० बी० आई० प्रेस, नई दिल्ली के व्यवस्थापक नियुक्त।

१९४८ जुलाई १ से अक्तूबर १९४९—एलबियन प्रेस, कश्मीरी गेट, दिल्ली का व्यवस्थापन।

१९४९—गुप्ता ब्रदर्स, मंडी धनौरा, मुरादाबाद द्वारा भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास 'आज़ादी की कहानी' प्रकाशित।

१९४९—हंसराज शर्मा एण्ड सस, दिल्ली द्वारा आलोचनात्मक पुस्तक 'हिन्दी साहित्य नये प्रयोग' प्रकाशित।

१९४९—हंसराज शर्मा एण्ड सस, दिल्ली द्वारा प्रमुख नेताओं की जीवनियाँ 'नये भारत के निर्माता' नाम से प्रकाशित।

१९४९—'सम्मेलन के सभापति' नामक विशाल संदर्भ-ग्रन्थ का लेखन सम्पादन। जिसमें उनकी जीवनी और भाषण आदि संकलित हैं। अभी तक यह अप्रकाशित है।

१९४९ दिसम्बर—में भयंकर चेचक निकली। कठिनाई से ही इस प्राणान्तक व्याधि से मुक्ति मिली।

१९५०—जनरल स्टोर, मण्डी धनौरा मुरादाबाद द्वारा 'सुमन सौरभ' प्रकाशित।

१९५०—मेहरचन्द लक्ष्मणदास दिल्ली द्वारा हिन्दी-साहित्य का इतिहास 'साहित्य-सोपान' शीर्षक से प्रकाशित।

१९५० फरवरी १ से अक्तूबर १९५०—'नया हिन्दुस्तान' प्रेस का व्यवस्थापन।

१९५० फरवरी २—पुत्री 'अर्चना' का जन्म।

पुत्री के नामकरण में देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा सुझाव।

१९५० अक्तूबर—स्वतन्त्र लेखन।

१९५१—जुलाई से दिसम्बर १९५१—सुप्रसिद्ध हिन्दी प्रकाशक 'आत्माराम एण्ड संस' में साहित्यिक सहायक।

१९५२—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली द्वारा साहित्य के विविध अंगों का सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करने वाली सुप्रसिद्ध पुस्तक 'साहित्य-विवेचन' प्रकाशित। सुमनजी की यह पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों में बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रमों में स्वीकृत है।

१९५२—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली द्वारा हिन्दी साहित्य का सरल और सुबोध इतिहास प्रस्तुत करने वाली पुस्तक 'हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति' प्रकाशित।

१९५२—सुप्रसिद्ध आलोचनात्मक त्रैमासिक 'आलोचना' के सह सम्पादक।
उन्ही दिनो 'राजकमल प्रकाशन' से सम्बद्ध।

१९५३—नई पीढी के प्रतिनिधि कवियो पर 'जनसत्ता' (दैनिक) दिल्ली में लेखमाला प्रकाशित हुई। प्रथम बार इसी लेख माला के अन्तर्गत कवि 'नीरज' पर लेख निकला।

इसके अतर्गत पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', नीरज, चिरजीत, शम्भुनाथ 'शेष', वीरेन्द्र मिश्र, रघुवीरशरण 'मित्र', देवराज 'दिनेश', शम्भूनाथसिंह, रामकुमार चतुर्वेदी, शैल रस्तोगी, क्षेम जी आदि पर परिचयात्मक लेख निकले।

१९५३ जून—'सरस्वती सहकार' नामक वृहत् साहित्यिक योजना हिन्दी जगत् को भेंट की। इसके अन्तर्गत 'भारतीय साहित्य परिचय' माला का सपादन प्रकाशन। अब तक इस माला म उर्दू, तमिल, तलुगु, मालवी, मराठी, बँगला, अवधी, भोजपुरी, सस्कृत, प्राकृत और गुजराती भाषाओं के साहित्य पर प्रकाश डालने वाली ११ पुस्तकें सपादित प्रकाशित की जा चुकी हैं।

१९५४ जुलाई ९—दिलशाद कॉलोनी, शाहदरा मे अपने नये निवास मे गृह प्रवेश।

१९५५ सितम्बर तक स्वतन्त्र लेखन।

१९५५ अक्तूबर—विश्वभारती प्रेस, नई दिल्ली के व्यवस्थापक।

१९५५ अक्तूबर—दिल्ली और उसके आस-पास के इलाके मे मुख्यतया यमुना पार की बस्तियो मे भयकर बाढ। जिसमें काफी आर्थिक हानि हुई। विशेषकर हस्त-लिखित ग्रथ, पाडुलिपियाँ, साहित्यकारो के पत्रादि, तथा अनेक मूल्यवान पुस्तकें पानी मे गल गईं।

१९५६ मार्च—जीवन मे एक नया मोड। 'साहित्य अकादेमी' (नेशनल अकादमी ऑफ लैटर्स) से सम्बद्ध।

१९५७ मई १४—ज्येष्ठ पुत्र 'अजय' का जन्म।

१९५८ मई २३—अन्तरग मित्र और हिन्दी के श्रेष्ठ कवि श्री शम्भुनाथ 'शेष' का स्वर्गवास।

१९५९ मई ३१—नई पीढी के ज्वलत कवि 'शेष' जी के परिवार के लिए २२१६ रुपये की धनराशि एकत्रित करके उनके परिवार वालो को अर्पित।

१९२६ अक्तूबर ९—ज्ञानपीठ प्राइवेट लि० पटना द्वारा आयोजित कवि-गोष्ठी मे अभिनन्दन।

अध्यक्षता—छविनाथ पाण्डेय। अन्य आमन्त्रित कवियो मे प्रमुख थे— श्री दिनकर, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', नलिनविलोचन शर्मा, रामदयाल पाडेय आदि।

१९५९ नवम्बर २—मँझले पुत्र 'विजय' का जन्म।

१९६०—आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली द्वारा हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का

सरलतम इतिहास प्रस्तुत करने वाली पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' प्रकाशित।

१९६२ अगस्त २१—दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी 'हाल' में हिन्दी के मनस्वी साहित्यकार श्री स ही वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' नामक संकलन के उद्घाटन-समारोह की अध्यक्षता। इस पुस्तक का उद्घाटन श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा ने किया था। इस अभूतपूर्व साहित्य-समारोह में 'सुमन' जी द्वारा संकलित-सम्पादित इस पुस्तक को उन कवयित्रियों को भी भेंट किया गया जिनके गीत इसमें संकलित थे।

१९६२ अक्तूबर १४—कानपुर और लखनऊ की जिन कवयित्रियों के प्रेमगीत 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' पुस्तक में संकलित थे उन्हें पुस्तक भेंट करने के लिए कानपुर में 'सुमन अभिनन्दन समारोह'। इसमें डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' की उपस्थिति विशेष रूप से उल्लेख्य। समारोह का उद्घाटन कानपुर के मेयर डॉ० धीरेन्द्रनाथ बनर्जी और अध्यक्षता डिप्टी मेयर देवीसहाय वाजपेयी ने की। अन्य प्रमुख लोगों में डॉ० जवाहरलाल रोहतगी, एम० एल० ए०, श्रीमती तारा अग्रवाल, सभा-सचिव, उ० प्र० सरकार आदि।

१९६२ अक्तूबर १६—लखनऊ की 'केन्द्रीय शौचकी साहित्य संस्था' द्वारा स्वागत-समारोह।

१९६२ अक्तूबर ३०—कनिष्ठ पुत्र 'संजय' का जन्म।

१९६३ जनवरी २३—'राष्ट्र रक्षा निधि' के निमित्त शाहदरा में 'विशाल राष्ट्रीय कवि-सम्मेलन' का आयोजन। कवि-सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रमुख कवि थे—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', नेपाली, बलवीरसिंह रंग, वैरागी, दिनेश, बालस्वरूप राही आदि।

१९६३ फरवरी २४—'राष्ट्रीय कवि सम्मेलन' दिल्ली-शाहदरा से हुई आय के २१५६ रुपये की धनराशि उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिरहुसैन को एक सार्वजनिक सभा में भेंट की।

१९६३ अप्रैल १६—साहिबाबाद के निकट ट्रक-बस-दुर्घटना में बाल-बाल बचे। जबकि बस में बैठे अन्य लोगों के काफी चोटें आईं और सामने बैठा ड्राईवर चल बसा।

१९६३ नवम्बर ४—पटना में 'द्वादश बिहार राज्य आर्य महासम्मेलन' के अन्तर्गत बृहत् कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता।

इसी सम्मेलन में ४० पृष्ठीय मुद्रित भाषण, जिसकी प्रशंसा देश-भर के वर्चस्वी मनीषियों, साहित्यिक संस्थाओं, साहित्यकारों और पत्रकारों ने की।

१९६३ नवम्बर ९—'बंगीय-हिन्दी-परिषद्' कलकत्ता के तत्त्वावधान में स्वागत-समारोह। समारोह की अध्यक्षता कलकत्ता-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष श्री

कल्याणमल लोढा ने की।

१९६३ नवम्बर १३—लखनऊ की 'केन्द्रीय कौवर्मी साहित्य संस्था' द्वारा 'श्री शिवशंकर मिश्र की अध्यक्षता में सम्मान।

१९६३ नवम्बर १३—'कवि कोविद क्लब' लखनऊ की ओर से श्री दुलारेलाल भार्गव के निवास-स्थान पर अभिनन्दन-गोष्ठी।

१९६४—उपराष्ट्रपति डा० जाकिरहुसैन को उनके निवास-स्थान पर लेखक-प्रकाशक की ओर से श्री रामाशंकर मिश्र की 'नागरिक-सुरक्षा' नामक पुस्तक भेंट करने के लिए जो स्वागत-समारोह आयोजित किया गया, उसकी अध्यक्षता।

१९६४ जनवरी १२—झाँसी की 'साहित्य संगम' संस्था द्वारा आयोजित राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त के प्रथम श्राद्ध-तर्पण-समारोह में भाषण और उनके स्मारक का प्रस्ताव।

१९६४ जनवरी १४—'मध्यभारत हिन्दी साहित्य सभा' ग्वालियर के सभा-कक्ष में मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' की अध्यक्षता में सम्मान-गोष्ठी।

१९६४ अप्रैल २५—प्रातः स्मरणीया पूज्यनीया माताजी का स्वर्गवास।

१९६४ अगस्त १४—'हिन्दी साहित्य परिषद्' हापुड, मेरठ द्वारा आयोजित सम्मान-समारोह और एक परिचय-पुस्तिका का प्रकाशन।

१९६४ सितम्बर १३—अजमेर में 'हिन्दी-दिवस' के उपलक्ष में विशिष्ट अतिथि की हैसियत से भाग तथा कवि सम्मेलन में रचना पाठ। कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने की। इसी अवसर पर हिन्दी के पाठकवर्ग से हिन्दी की पत्र पत्रिकाएँ खरीदकर पढ़ने की जोरदार अपील।

१९६४ सितम्बर २०—जयपुर में राजस्थान के शिक्षा-मन्त्री माननीय हरिभाऊ उपाध्याय की अध्यक्षता में आयोजित साहित्य-गोष्ठी में सम्मान।

१९६४ दिसम्बर १९—'बिहार राज्य पुस्तक व्यवसायी संघ' द्वारा पटना में आयोजित पुस्तक-प्रदर्शनी में विशिष्ट अतिथि के रूप में 'व्हीलर सीनेट हाल' में 'पुस्तकों की उपादेयता' पर विशेष भाषण।

१९६४ दिसम्बर १९—बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तत्त्वावधान में पटना में आयोजित श्री शिवपूजन सहाय जी की स्व० धर्मपत्नी श्रीमती बच्चनदेवी के स्मारक-भाषण के अन्तर्गत 'बच्चनदेवी साहित्य-गोष्ठी' में 'हिन्दी का संस्मरण-साहित्य' पर विशेष भाषण। गोष्ठी की अध्यक्षता श्री छविनाथ पाण्डेय ने की और प्रमुख साहित्यकारों, कवियों और पत्रकारों ने भाग लिया। सारा ही भाषण रेकार्ड किया गया था।

१९६४ दिसम्बर २०—'बेनीपुरी प्रकाशन' संस्था की ओर से मुजफ्फरपुर (बिहार) में

स्वागत-समारोह।

१९६५ सितम्बर १४—हिन्दी-साहित्य परिषद् हापुड की ओर से प्रकाशित 'विहँसते फूल : विकसती कलियाँ' नामक हापुड-अंचल के कवियों के काव्य-संकलन का उद्घाटन। इसकी भूमिका भी सुमनजी ने लिखी है।

दिसम्बर १२—राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रथम श्राद्ध-तिथि के अवसर पर चिरगाँव में आयोजित कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता। इस सम्मेलन में स्थानीय कवियों के अतिरिक्त कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी अपनी 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक काव्य-कृति से कुछ ओजस्वी अंश सुनाए। डॉ० नगेन्द्र ने भी सम्मेलन में उपस्थित जन-समुदाय के समक्ष राष्ट्रकवि को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

दिसम्बर १५—'दैनिक निरंजन' ग्वालियर के सम्पादक श्री शम्भूनाथ सक्सेना के संयोजन में उनके निवास-स्थान पर सम्मान-गोष्ठी। गोष्ठी की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ने की। सुमनजी ने नये साहित्यकारों को समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाने का परामर्श दिया। इसी दिन 'मध्य भारत-हिन्दी साहित्य सभा' की ओर से भी एक सम्मान-गोष्ठी आयोजित। गोष्ठी के अध्यक्ष 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' थे।

१९६६ मार्च ४—पन्द्रह दिन की असम-यात्रा पर दिल्ली से प्रस्थान। मार्च १६ तिनसुकिया (असम) के प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की ओर से श्री विष्णुदत्त 'विकल' की अध्यक्षता में 'सम्मान-गोष्ठी'। गोष्ठी का संयोजन साप्ताहिक 'अकेला' के सम्पादक श्री विश्वनाथ गुप्त ने किया।

मार्च २०—जैन सिद्धान्त भवन आरा (बिहार) में आयोजित साहित्य-गोष्ठी की अध्यक्षता। सामान्यतः बिहार और विशेषतः आरा की साहित्यिक चेतना पर विशद प्रकाश डाला।

मार्च २४—गर्दनी बाग पटना के 'हिन्दी साहित्य-संघ' की ओर से आयोजित सम्मान-गोष्ठी में नई पीढ़ी को आज के भौतिकवादी वातावरण से बचने की प्रेरणा और पुरानी शास्त्रीय परम्पराएँ अपनाने का परामर्श।

मार्च २६—मेरठ के नौचन्दी मेले में आयोजित कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता। अगले दिन हिन्दी भवन मेरठ में आयोजित गोष्ठी में अपने भाषण में मेरठ की साहित्यिक चेतना और उसकी उपलब्धियों पर विस्तार से प्रकाश डाला।

अप्रैल २—महावीर-जयन्ती के अवसर पर जैन-मित्र-मण्डल दिल्ली की ओर से आयोजित कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता।

अप्रैल ११—जब कि सुमनजी गुरुकुल के वार्षिक उत्सव में सम्मिलत होने के लिए हरिद्वार गए हुए थे, तब किसी मनचले ने हरिद्वार में उनका देहान्त हो जाने

की सूचना उनके घर पर फोन से दी। घर में परेशानी। चारों ओर दौड़ धूप।

अगस्त ११—अजमेर की 'वैचारिकी' संस्था की ओर से श्री विश्वदेव शर्मा (सम्पादक 'न्याय') की अध्यक्षता में आयोजित सम्मान गोष्ठी में आज के साहित्य की सृजन प्रक्रिया और उसके परिवेश पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला।

सितम्बर ११—यमुना पार की 'कैलाशनगर नागरिक परिषद' की ओर से अर्धशती पूर्ति के उपलक्ष्य में 'अभिनन्दन-समारोह' और मानपत्र अर्पित।

सितम्बर १६—नई दिल्ली के सप्रू हाउस में उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के कर कमलों द्वारा अर्धशती पूर्ति के अवसर पर 'एक व्यक्ति : एक संस्था' नामक इस विशाल अभिनन्दन-ग्रंथ का समर्पण। अभिनन्दन समारोह की अध्यक्षता डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' ने की।

रचनाओं का काल-क्रम से विवरण

श्री जगदीशचन्द्र 'जीत'

मौलिक

१. मल्लिका (कविता संग्रह) १९४३। प्रकाशक हिन्दी भवन, लाहौर।

२ बन्दी के गान (जेल-जीवन की कविताएँ) १९४५। प्रकाशक मार्डन बुकडिपो, नई सड़क, दिल्ली।

३ कारा (सन् ४२ के आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया इतिवृत्तात्मक खण्ड काव्य) १९४६। प्रकाशक साहित्य सदन, देहरादून।

४. हमारा संघर्ष (अगस्त क्रान्ति का इतिहास) १९४६। प्रकाशक साहित्य सदन, देहरादून।

५. नेताजी सुभाष (जीवन-चरित) १९४६। प्रकाशक गोयल ब्रदर्स, दिल्ली।

६. कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास (इतिहास) १९४७। प्रकाशक विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

७ प्रभाकर निबन्धावली (राजनीतिक-सामाजिक निबन्ध) १९४८। प्रकाशक व्रती भ्राता, दिल्ली-जालन्धर।

८ हिन्दी साहित्य : नये प्रयोग (आलोचना) १९४९। प्रकाशक हंसराज शर्मा एण्ड संस, दिल्ली।

९ नये भारत के निर्माता (नेताओं की जीवनियाँ) १९४९। प्रकाशक हंसराज शर्मा एण्ड संस, दिल्ली।

१०. आज़ादी की कहानी (स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास) ११४९। प्रकाशक गुप्ता ब्रदर्स, मण्डी धनौरा (मुरादाबाद)।

११. साहित्य सोपान (हिन्दी साहित्य का इतिहास) १९५०। प्रकाशक : मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दरियागंज, दिल्ली।

१२ सुमन-सौरभ (हिन्दी-रचना) १९५०। प्रकाशक जनरल स्टोर, मण्डी धनौरा मुरादाबाद।

१३ साहित्य-विवेचन (साहित्य के विविध अंगों का सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक विवेचन) १९५२। प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

१४. साहित्य विवेचन के सिद्धान्त (साहित्य-समीक्षा के सिद्धान्तों का संक्षिप्त तथा सरलतम विवेचन) १९५८। प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

१५. **हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति** (हिन्दी साहित्य का सरल एवं सुबोध इतिहास) १६५२। प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

१६. **आधुनिक हिन्दी साहित्य** (हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का सरलतम इतिहास) १६६०। प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

सम्पादित तथा संकलित

१७. **लाल किले की ओर** (आज़ाद हिन्द फौज से सम्बन्धित कविताओं का संग्रह) १६४६। प्रकाशक प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

१८ **गांधी भजन माला** (गांधीजी के प्रिय भजन) १६४८। प्रकाशक गोयल ब्रादर्स, दिल्ली।

१६. **गल्प माधुरी** (कहानी संग्रह) १६४८। प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली।

२०. **राष्ट्रभाषा हिन्दी** (हिन्दी के विभिन्न साहित्यिकों और भाषा-शास्त्रियों के लेख) १६४८। प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

२१. **नीर क्षीर** (एकांकी नाटकों का संग्रह) १६४६। प्रकाशक राजहंस प्रकाशन, दिल्ली।

२२. **जैसा हमने देखा** (साहित्यिकों के संस्मरण) १६५०। प्रकाशक शंकर प्रकाशन, अलीगढ़।

२३ **पंडित पद्मसिंह शर्मा** (जीवनी, संस्मरण और कृतित्व) १६५१। प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

२४. **गद्य सरोवर** (हिन्दी गद्य का प्रतिनिधि संकलन) १६५१। प्रकाशक भाषा प्रकाशन, गांधीनगर, दिल्ली।

२५. **जीवन स्मृतियाँ** (*कतिपय साहित्यकारों के आत्मचरित*) १६५२। प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

२६ **बापू और हरिजन** (राष्ट्रपिता बापू के हरिजनों के सम्बन्ध में दिये गए भाषणों, लेखों और वक्तव्यों का प्रामाणिक संकलन) १६५२। प्रकाशक सूचना विभाग उत्तरप्रदेश सरकार, लखनऊ।

२७. **हिन्दी के लोकप्रिय कवि 'नीरज'** (कवि नीरज के व्यक्तित्व और कृतित्व की समीक्षा के साथ उसके काव्य का संकलन) १६६०। प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।

२८. **हिन्दी के लोकप्रिय कवि रामावतार त्यागी** (कवि त्यागी के व्यक्तित्व और कृतित्व की समीक्षा के साथ उसके उत्कृष्ट काव्य का संकलन) १६६१। प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।

२६. **हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत** (खड़ी बोली हिन्दी के १०० उत्कृष्टतम गीतों का

सकलन (१६६१) प्रकाशक . हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि०, शाहदरा, दिल्ली ।

३०. **आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत** (हिन्दी की १७५ कवयित्रियों के प्रेमगीतों का सचित्र सकलन) १६६२ । प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली ।

३१ **चीन को चुनौती** (चीन आक्रमण के विरुद्ध हिन्दी के वरिष्ठ कवियो की प्रेरणा तथा उद्बोधनपरक कविताओ का आकलन) १६६२ । प्रकाशक हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रा० लि०, शाहदरा, दिल्ली ।

३२ **सरल काव्य सग्रह** (हिन्दी के प्राचीन तथा अर्वाचीन प्रमुख कवियो की सरलतम रचनाओं का सकलन) १६६४ । प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली ।

३३. **हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेम-गीत** (हिन्दी की ६० कवयित्रियों के प्रेमगीतों का सकलन) १६६५ । प्रकाशक हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि० शाहदरा, दिल्ली ।

३४. **नारी तेरे रूप अनेक** (हिन्दी के तीन सौ से अधिक कवियो की नारी के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालने वाली कविताओ का सग्रह) १६६६ । आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली ।

३५-४५. **भारतीय साहित्य परिचय माला** (इस माला के अन्तर्गत उर्दू, तमिल, तेलुगु, मालवी, मराठी, बगला, अवधी, भोजपुरी, सस्कृत, सस्कृत और गुजराती भाषाओं के साहित्य पर प्रकाश डालने वाली अभी तक ११ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है ।)

अनूदित

४६. **शैशव-स्वप्नम्** (आचार्य दीपकर की सस्कृत कविताओं का सरस एव प्राजल अनुवाद) १६५८ ।

सुमन-अभिनन्दन-समारोह



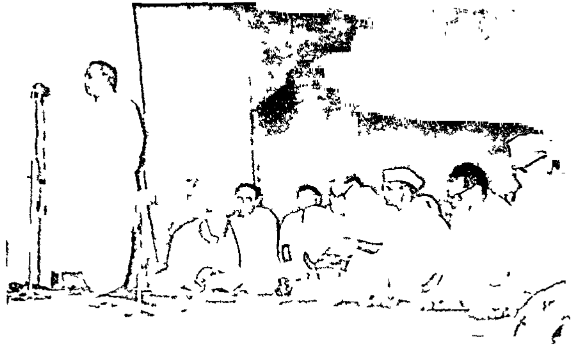
सप्रू हाउस नई दिल्ली ● १६ सितम्बर १६६६

अर्धशती-पूर्ति



उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन तथा अन्य साहित्यकारों के बीच

अभिनन्दन ग्रंथ के सम्पादक डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' सुमनजी के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय देते हुए





सप्रू हाउस के प्रागण मे उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर-
हुसैन प्यार से सुमनजी के ज्येष्ठ पुत्र
अजय की पीठ थपथपाते हुए



कैलाशनगर मे आयोजित समारोह मे श्री ब्रजलाल
गोस्वामी, अध्यक्ष, शाहदरा क्षेत्र (दिल्ली
नगर निगम) से मान-पत्र ग्रहण करते हुए

कैलाशनगर नागरिक परिषद् द्वारा आयोजित समारोह मे आभार-प्रदर्शन करते हुए सुमनजी (दि० ११-९-६६)





अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से
अध्यक्ष श्री रामलाल पुरी द्वारा



राष्ट्रभाषा प्रचार समिति नई दिल्ली की ओर से
श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा

माल्यार्पण

दिल्ली प्रिंटर्स एसोसियेशन की ओर से
श्री श्यामसुन्दर गर्ग द्वारा



दिल्ली नगर निगम की स्थायी समिति के अध्यक्ष
श्री ब्रजमोहन द्वारा





रश्मि परिषद ज्वालापुर (हरिद्वार) की ओर से
श्री एन० आर० गोयल अजय द्वारा



अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
की ओर से श्री देवदत्त शास्त्री द्वारा

माल्यार्पण

कौशिकी कानपुर लखनऊ और वाराणसी की ओर से
श्री जटाशंकर सांकृत्यायन द्वारा



नवलखन मुजफ्फरपुर (बिहार) की ओर से
श्री रामानन्द द्वारा



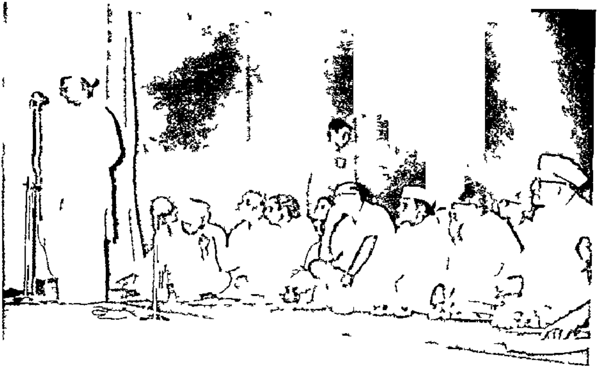


समारोह के अध्यक्ष डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' सुमनजी के संघर्षमय जीवन के प्रति आस्था प्रकट करते हुए

●

अभिनन्दन-समिति के संयोजक श्री हितशरण शर्मा द्वारा माल्यार्पण

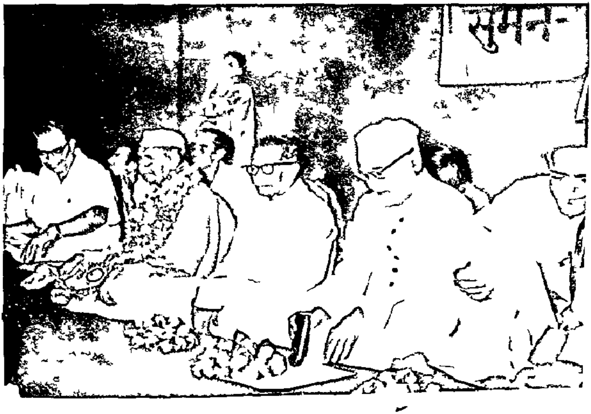




सुमनजी के स्वतंत्रता आंदोलन के साथी श्री गोपीनाथ अमन जेल जीवन के संस्मरण सुनाते हुए

●

मंच पर आसीन श्री अक्षयकुमार जैन श्री सुमन डा० बच्चन डा० जाकिर हुसैन और डा० दिनकर

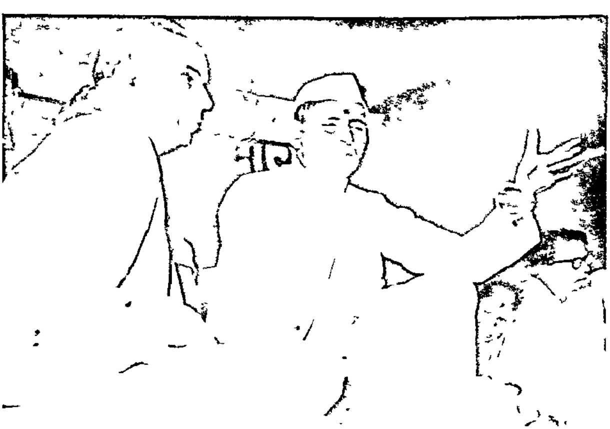




ग्रथ-प्रकाशन-समिति के सयोजक श्री श्यामसुन्दर गर्ग डॉ० ज़ाकिर हुसैन को ग्रथ की प्रति भेंट करते हुए

●

समारोह मे सुमनजी द्वारा काव्य-पाठ की मुद्रा
बाइ ओर समारोह के सयोजक श्री बाँकेबिहारी भटनागर ध्यानावस्थित



অভিনন্দন সমারোহ

सुमनजी की लोकप्रियता

इस भव्य समारोह के समाचार जहाँ हिन्दी के सभी प्रमुख पत्रों में विशिष्ट स्थान पर प्रकाशित हुए, वहाँ अंग्रेजी के भी अनेक पत्रों ने इसको अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया। राजधानी के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक 'इण्डियन एक्सप्रेस' के मुखपृष्ठ की यह प्रतिलिपि सुमनजी की लोकप्रियता की एक ज्वलन्त साक्षी है।

INDIAN EXPRESS

Largest Combined Net Sales Among All Daily Newspapers in India

(Published from New Delhi, Bombay, Madras, Madurai, Vijayawada and Bangalore)

CITY EDITION

PRICE 15 PAISE

NEW DELHI, SATURDAY SEPTEMBER 17 1966



The Vice-President Dr Zakir Husain, with the renowned Hindi writer Kshema Chand 'Suman' at 'Suman Samaroh' held at Sapru House in New Delhi on Friday—Express photograph (A report appears on Page 3)

दि वाइस-प्रेसिडेण्ट, डॉ० ज़ाकिर हुसैन विद दि रिनाउण्ड हिन्दी राइटर, क्षेमचन्द्र सुमन, एट 'सुमन समारोह' हेल्ड एट सप्रू हाउस इन न्यू दिल्ली ऑन फ्राइडे

Hindi writer felicitated

By Our Staff Reporter

NEW DELHI, Sept. 16—Mr. Kshema Chandra Suman, a noted Hindi writer was felicitated today on his 50th birthday by several Hindi literary organisations.

The Vice-President Dr Zakir Husain, presented Mr Suman a volume containing articles on the works of the writer.

The speakers, including Mr Akshay Kumar Jain, Mr Ramdhari Singh Dinkar and Mr [illegible] paid tributes to Mr Suman and said that he had participated in freedom struggle and social [illegible] Mr Suman, they said, had done a great [illegible] of Hindi.

Several Hindi poets [illegible] of Mr Suman.

संघर्षों की अर्धशती का अभिनन्दन

१६ सितम्बर, १९६६ की सध्या। सप्रू हाउस, नई दिल्ली मे आयोजित इस अभिनन्दन-समारोह के अवसर पर दिल्ली तथा दूर-दूर से आए हुए अनेक साहित्यिको और साहित्य प्रेमियो के अभूतपूर्व भावभीने सम्मिलन का दृश्य उपस्थित हो गया जिसने इस अभिनन्दन को 'ऐतिहासिक' की सज्ञा प्रदान की। भारत के उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन के सान्निध्य म लगभग एक हजार व्यक्तियो ने श्री सुमनजी को उनकी अर्धशती-पूर्ति के अवसर पर उनकी साहित्य-सेवाओ और मानवीय गुणो के लिए अपनी भावाजलियाँ अर्पित की।

डॉ० हरिवशराय बच्चन की अध्यक्षता मे सम्पन्न इस अभिनन्दन समारोह का शुभारम्भ सुविख्यात रामभक्त श्री कपीन्द्रजी द्वारा मगल-श्लोका के गायन से हुआ। सयोजक श्री बाँके विहारी भटनागर ने साहित्यकारो के अभिनन्दन की स्वस्थ परम्परा मे इस अभिनन्दन को एक महत्त्वपूर्ण कडी बताते हुए सुमनजी के कर्मठ व्यक्तित्व, अगाध चिन्तन-शक्ति तथा हिन्दी-सेवाओ का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। सुमनजी के सम्बन्ध मे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के वाक्य "बडे बीहड हो भाई, क्या खाकर सोचते हो?" का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा कि वस्तुत श्री सुमनजी बीहड हैं। पता नही क्या खाकर सोचते, लिखते और कार्य करते है, उनके लिए कठिन या असम्भव कुछ भी नही। सब कार्यों मे उनकी तत्परता सर्वविदित है।

'सुमन अभिनन्दन समारोह-समिति' की ओर से श्री अक्षयकुमार जैन ने सभी उपस्थित साहित्यिको तथा हिन्दी-प्रेमियो का स्वागत किया। उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन तथा अध्यक्ष डॉ० बच्चन की गरिमामयी उपस्थिति के प्रति आभार प्रकट करते हुए श्री अक्षयकुमार जैन ने कहा कि सुमनजी के रूप में आज हम यहाँ हिन्दी का अभिनन्दन करने के लिए एकत्र हुए है।

समिति के अध्यक्ष डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर' ने मगल तिलक करके श्री सुमनजी को एक नारियल तथा गरम शाल भेंट किया और उनके 'शतजीवी' होने की शुभकामनाएँ प्रकट की।

तत्पश्चात् विभिन्न सस्थाओ की ओर मे श्री सुमनजी को माल्यार्पण किया गया। इस क्रम मे दिल्ली-नगर-निगम की ओर से श्री ब्रजमोहन, अन्तरिम राजधानी परिषद् की ओर से उर्दू के प्रसिद्ध लेखक और शायर श्री गोपीनाथ 'अमन', हिन्दी भवन की ओर से श्री यशपाल जैन, हिन्दी-लेखिका-सघ की ओर से श्रीमती शान्ति भटनागर,

शाहदरा क्षेत्र के नागरिकों की ओर से श्री जे० आर० जिन्दल, अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से श्री रामलाल पुरी, दिल्ली प्रिंटर्स एसोसिएशन की ओर से श्री श्यामसुन्दर गर्ग, दिल्ली क्लाथ मिल हिन्दी-सभा की ओर से श्री विश्वदेव शर्मा, अ० भा० संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन की ओर से डॉ० मण्डन मिश्र, दिल्ली विश्वविद्यालय अनुसन्धान-परिषद् की ओर से डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी-साहित्यकार-मंच, मुजफ्फरपुर (विहार) की ओर से प्रसिद्ध कवि श्री राजेन्द्रप्रसादसिंह, 'नव लेखन' बिहार की ओर से नये कथाकार-कवि श्री रामानन्द, साहित्य संगम झाँसी की ओर से श्री सुरेश शास्त्री, रश्मि-परिषद् ज्वालापुर (हरिद्वार) की ओर से श्री एन० आर० गोयल 'अजय', हिन्दी साहित्य परिषद् हापुड़ की ओर से श्री देवीकृष्ण गोयल, 'त्रैचिकी' वाराणसी, लखनऊ, कानपुर की ओर से श्री जटाशंकर सांकृत्यायन और अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की ओर से श्री देवदत्त शास्त्री ने सुमनजी को बधाइयाँ देते हुए मालाएँ पहनाईं।

अपने सान्निध्य से समारोह की प्रतिष्ठा बढ़ाते हुए उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर-हुसैन ने सुमनजी को छः सौ पचास पृष्ठों का एक भव्य अभिनन्दन-ग्रन्थ—'एक व्यक्ति : एक संस्था' समर्पित किया।

कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय के रीडर और हिन्दी के सुविदित लेखक-आलोचक तथा ग्रंथ के सम्पादक डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने अपने अभिभाषण में सुमनजी के व्यक्तित्व और कृतित्व का विशद परिचय देते हुए कहा, "सुमनजी की निःस्वार्थ सेवाएँ और निस्पृह प्रकृति ही उनकी लोकप्रियता और ख्याति के मूल में हैं। साहित्यिक अनुभवों और स्मृतियों के वे विशद भंडार हैं और उन्हें चलता-फिरता विश्वकोष ही कहा जा सकता है। ईमानदारी, लगन, निश्छलता और साहित्य-साधना की दृष्टि से उनकी महत्ता असंदिग्ध है। युगान्तरकारी कृतिकार उन्हें भले ही न माना जाए परन्तु स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी और शिवपूजन सहाय की तरह वे साहित्य के जीवन-दानी समझे ही जाएँगे।"

डॉ० कमलेश ने कहा कि सुमनजी उन योजना-विहारियों में से नहीं हैं, जो अनेक योजनाएँ बना तो लेते हैं, परन्तु क्रियान्वित एक को भी नहीं करते। सुमनजी के सम्पादन-कार्य का उल्लेख करते हुए श्री कमलेश ने उपादेयता और नवीनता की दृष्टि से उसकी महत्ता पर प्रकाश डाला और कहा कि सुमनजी ने छिपे रत्नों को और प्रचार-प्रसार से दूर रहने वाले श्रेष्ठ साहित्यकारों को प्रकाश में लाने का जो अद्भुत कार्य किया है उसके लिए हिन्दी-जगत् सदैव उनका ऋणी रहेगा।

सुमनजी के स्वतन्त्रता-संग्राम के पुराने साथी श्री गोपीनाथ 'अमन' ने उनकी देश-भक्ति और जेल-जीवन से सम्बन्धित संस्मरण सुनाते हुए विशेष रूप से उनके विविध मानवीय गुणों पर प्रकाश डाला और अपनी शुभकामनाएँ अर्पित कीं।

सुमनजी के वरिष्ठ मित्र डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने सुमनजी की साहित्य-सेवाओं

तथा उनके रहन-सहन, ईमानदारी और सरलता को मुशी प्रेमचन्द की सहजता तथा साधारणता के समान बताते हुए उनकी व्यापक लोकप्रियता का उल्लेख किया। उन्होने कहा कि सुमनजी वास्तविक अर्थों मे एक व्यक्ति मात्र नही, अपितु एक सस्था है। साहित्य और समाज के प्रति उनकी सेवाएँ एक सस्था की सेवाएँ हैं।

अध्यक्ष पद से अपने समापन भाषण मे डॉ० बच्चन ने कहा कि जब मैं अभिनन्दन-समारोह की बात सोचता हूँ तो सबसे पहले मुझे उनका स्मरण आता है जो अभिनन्दन कर रहे हैं। अत मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ जो इस अभिनन्दन के आयोजक हैं। 'रामचरितमानस' से एक चौपाई का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा कि दूसरो को जो मान देते हैं, वे मेरे लिए प्राण सम हैं। अत उनका अभिनन्दन पहले, जिन्होने सुमनजी को यह मान दिया।

डॉ० बच्चन ने सुमनजी से अपने स्वल्प सम्बन्धो के बावजूद उनके सद्भाव और सहयोग की प्रशसा की। सुमनजी के स्वास्थ्य और चिरजीवन के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट करते हुए बच्चनजी ने कहा कि "यद्यपि पचास वर्ष की उम्र कोई बहुत बडी अवधि नही है, फिर भी पिछले पचास वर्षों मे इस देश मे तीन ऐतिहासिक आन्दोलन सुमनजी ने देखे हैं—महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायियो का सुधारवादी आर्यसमाजी आन्दोलन, महात्मा गाधी का स्वाधीनता आन्दोलन और हिन्दी भाषा का प्रतिष्ठा-आदोलन। सुमनजी ने तीनो आन्दोलनो मे बडे जोर-शोर से भाग लिया, अपना दायित्व निबाहा और साहित्य तथा समाज की सेवा द्वारा अपने जीवन को ऊँचा उठाया है। उनके सघर्षमय जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ अगले पचास वर्षों मे साहित्य और समाज को ऊँचा उठाएँ—यही कामना है।

अन्त मे समस्त शुभकामनाओ और भावाजलियो के प्रति आभार प्रकट करते हुए भाव-विभोर होकर श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने अपने जीवन के मूल प्रेरक शुभैषियों, सरक्षकों, निर्देशकों और अभिभावको के साथ सुहृद मित्रो को साभार स्मरण किया और कहा, "मैं आज अपने को बहुत विचित्र स्थिति मे अनुभव कर रहा हूँ। स्नेहीजनों के बीच मे बिठाकर जिस व्यक्ति के इतने बखान किये गए हो, वह क्या अनुभव करेगा, आप स्वय अनुमान करें। मैं तो जमीन का प्राणी हूँ, जमीन से उठा हूँ, जमीन पर चलता रहा हूँ, चलता भी रहूँगा। मै तो साहित्य की वाटिका का एक माली हूँ। माली की तरह उपयोगी साहित्य का सृजन करता रहा हूँ। माली का इतना बडा सम्मान, माली का ऐसा विशाल अभिनन्दन आप कर रहे हैं। वास्तव मे यह मेरा नही, उस माली का ही सम्मान है जो बाग मे भाँति-भाँति के बूटे खिलाकर स्वय के लिए कुछ नही चाहता और दूसरो के लिए पराग और सुगन्ध लुटाता है।

"यह उद्यान हिन्दी का है, ये फूल प्रतिभाओ के हैं और यह सम्मान मेरा नही, हिन्दी के उद्यान का है, मैं तो सेवक हूँ। सघर्ष मेरा जीवन है, मेरा स्वभाव है, मेरा आदर्श

है। कबीर का फक्कड़पन, रहीम का स्वाभिमान और तुलसी की परोपकार-परायणता मेरे आदर्श—मेरे सम्बल रहे हैं। मैं अध्यक्ष महोदय, उपराष्ट्रपति महोदय, और मित्रो, श्रोताओ तथा अखिल हिन्दी-जगत् को विश्वास दिलाता हूँ कि इस सम्मान को चुनौती के रूप में और शुभकामनाओं तथा अनन्त आशीर्वादों के रूप में ही स्वीकार करता हूँ और यही समझता हूँ कि मेरी वास्तविक साहित्य-यात्रा आज से ही शुरू होती है। अनेक संघर्षों और संकल्पों से भरा मेरा भविष्य मेरे सामने है और आप सभी की सद्भावनाओं के बल पर मैं उसे अपना जीवन-दान करूँगा।"

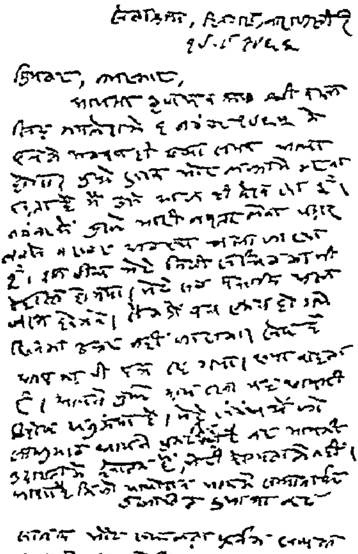
अन्त में श्री बांकेबिहारी भटनागर के संयोजकत्व में कवि-गोष्ठी का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। जिसमें डॉ० बच्चन, डॉ० दिनकर, श्री नीरज, श्री रमानाथ अवस्थी, श्री रघुवीरशरण 'मित्र', श्री राजेन्द्रप्रसादसिंह और श्री मधुर शास्त्री ने अपनी कविताओं से श्रोताओं को रस-विभोर किया। कवि-गोष्ठी के अन्त में सुमनजी ने भी अपनी एक अत्यन्त मार्मिक तथा प्रभावपूर्ण रचना सुनाई।

यह समारोह राजधानी के साहित्यिक इतिहास में अपनी पवित्रता, सरलता, भव्यता, आत्मीयता, उदात्तता और गरिमा के कारण चिरस्मरणीय रहेगा।

अर्चन : वन्दन : अभिनन्दन

अभिनन्दन के अवसर पर समिति के कार्यालय मे और स्वय सुमनजी के पास उनके अनेक शुभैषियो, प्रशसको, स्नेहियो और अनुवर्तियो की ओर से बधाई और शुभकामना के जो पत्र तथा तार आए हैं, उनमे से कुछ चुने हुए पत्रो के अश यहाँ दिये जा रहे हैं। इन्हे देखकर पाठक सुमनजी की लोकप्रियता का सहज ही अनुमान लगा सकेंगे।

महामहिम बा० श्रीप्रकाश की शुभकामना



(अक्षरश: प्रतिलिपि अगले पृष्ठ पर)

सेवाश्रम, सिगरा, वाराणसी १
१६-६-१६६६

प्रियवर, नमस्कार।

आपका कृपापत्र श्री पद्मसिंह कमलेश के १ नवम्बर, १६६५ के पत्र मे अवश्य ही आया होगा। मुझे दुःख और लज्जा से कहना पड़ता है मैं उसे आज ही देख रहा हूँ। नवम्बर मे मुझे भारी मलेरिया लेना पड़ा। तब से बराबर अस्वस्थ चला आ रहा हूँ। इस बीच मेरे निजी सचिव का भी देहान्त हो गया। मेरे सब पत्रादि अस्त व्यस्त हो गए। सैकड़ों पत्र एकत्र हो गये जिनका उत्तर नही आ सका। खेद है आपका भी पत्र रह गया। क्षमा चाहता हूँ। आपने मुझे याद रखा यह आपकी विशेष अनुकम्पा है। मेरे सम्बन्ध मे जो साधुभाव आपने प्रकट किये है वह आपकी उदारता के द्योतक हैं, मेरी योग्यता के नही। आशा है कि जो आयोजन आपके सम्मानार्थ प्रस्तावित हुआ था वह सानन्द और सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ होगा। मेरी शुभकामना है कि आप अपने सत्कार्यों मे पूर्ण रूप स सदा सफल प्रयत्न हों, आपका यश बढ़ता रहे और आपके द्वारा देश, समाज और साहित्य की अच्छी सेवा सदा होती रहे।

शुभचिन्तना सहित
श्रीप्रकाश

मैं बाहर चला गया था। समारोह की सूचना बहुत देर बाद हाथ लगी। खेद है कि मैं न आ सका। क्षमा कीजियेगा।

आशा है समारोह पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुआ होगा। मेरी हार्दिक बधाई।···
प्रभु से प्रार्थना है कि आप सदा सुखी रहे।

झाँसी
२४-६-६६
वृन्दावनलाल वर्मा

···बन्धुवर सुमनजी के अभिनन्दन के अवसर पर मेरी ओर से उन्हे हार्दिक बधाई अर्पित कर दीजिए। हम दोनो आचार्य प० पद्मसिंह शर्मा के शिष्य होने के नाते 'गुरु-भाई' हैं और इसलिए मेरा यह कर्तव्य भी है कि इस अवसर पर उनके दीर्घ-जीवन की कामना करूँ। निरन्तर सघर्ष करके जिस प्रकार वे साहित्य-क्षेत्र मे अग्रसर हुए हैं उससे केवल नवयुवकों को ही नही हम सबको प्रेरणा मिल सकती है।

फीरोजाबाद
१२-६-६६
बनारसीदास चतुर्वेदी

·· सुमनजी ने हिन्दी की जो सेवा की है वह अनेक दृष्टि से श्लाघ्य है। नई पीढ़ी के लिए अनुकरणीय। हिन्दी का उत्कर्ष सुमनजी के जीवन का व्रत है और इस दिशा मे वे सतत प्रयत्नशील रहते हैं।···सुमनजी का काव्य उतना ही चित्ताकर्षक है जितना गद्य-साहित्य। उनके सस्मरण लुभावने और निबन्ध प्रभावशाली होते है। उनकी आलोचनाओं मे गह-

राई होती है और सर्वत्र एक पैनी दृष्टि मिलती है। उनके प्रति मैं अपनी शुभकामनाएँ निवेदित करता हूँ।

पटना
१२-६-६६ केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

...भगवान् करे आपकी कीर्ति अपने देश की सीमाएँ पार करके विदेश मे भी दिनानुदिन फैलती जाय और इस प्रकार आप सौ वर्ष से भी अधिक स्वस्थ काया मे—और सहस्रो वर्ष तक कीर्ति-काया मे—सानन्द जीवन-सौरभ लाभ करते रहे।

कानपुर
१४-६-६६ भगवतीप्रसाद वाजपेयी

...मैं तो श्री भटनागरजी को कई दिन पहले लिख चुका था कि अवश्य आऊँगा।... परमात्मा की कृपा से समारोह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ होगा। मेरी सस्नेह हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए। मुझे बडी लज्जा अनुभव हो रही है कि मैं इस शुभ समारोह मे अस्वस्थ हो जाने के कारण भाग न ले सका।...विवशता को क्या किया जाय !... मेरा-आपका तो बहुत पुराना सम्बन्ध है। आपका उत्तरोत्तर उत्कर्ष एव अभ्युत्थान देखकर मुझे परम हर्ष होता है।

आगरा
२७-६-६६ डॉ० हरिशकर शर्मा

परमपिता प्रभु करें दया, आनन्द प्राप्त हो।
सरस्वती के कृपा-पात्र की कीर्ति व्याप्त हो॥
इक्यावनवाँ 'सुमन-जन्म-दिन' देश मनाए।
अर्ध-शती यह शती बने वह दिन भी आए॥

अमेठी (उत्तर प्रदेश) राजा रणञ्जयसिंह
६-६-६६ (सदस्य लोकसभा)

...आज आपका अभिनन्दन समारोह है। इस शुभ अवसर पर उपस्थित होकर आपके साक्षात् दर्शन तथा सभा-जन के लिए मैं उत्सुक था। किन्तु कार्यवश मुझे आज ही बाहर जाना पड रहा है। इसलिए मैं समारोह मे सशरीर सम्मिलित होने के आनन्द से वचित हो रहा हूँ। पर मन तो मेरा कोटि-कोटि कल्याण-कामनाएँ लिये हुए आपके पास ही जा पहुँचा है। परमात्मा आपको शतायु करें और आप सदा पूर्ण स्वास्थ्य, आनन्द और सफलता के साथ साहित्य तथा समाज की श्री-वृद्धि मे लगे रहे। स्नेह और शुभाकाक्षाओ सहित।

नई दिल्ली डॉ० विश्वनाथप्रसाद
१६-६-६६ (उपाध्यक्ष वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग)

" मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आपके अनेक शुभचिन्तक आपकी पचासवी वर्षगाँठ मना रहे है। मैं भी अपनी शुभकामनाएँ एव मगल-भावनाएँ भेजते हुए यह कामना करता हूँ कि आपका जीवन अधिकाधिक सफल हो और आप दीर्घायु प्राप्त कर।

नई दिल्ली
कृष्ण कृपलानी
१४-६ ६६
(मत्री साहित्य अकादेमी)

" यह जानकर प्रसन्नता हुई कि हिन्दी के अनन्य साधक साहित्य-सेवी श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का अभिनन्दन होने जा रहा है। अपनी अनिवार्य अनुपस्थिति के लिए क्षमा चाहता हूँ और इस आयोजन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ। श्री सुमनजी-जैसे मौन साधक का अभिनन्दन करके एक सही एव स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात किया जा रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इस परम्परा को आगे भी चलाया जाएगा।

सीतामऊ (म० प्र०)
१४-६-६६
डॉ० रघुबीरसिंह

मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। श्री क्षेमचन्द्र सुमन अपने आपमे एक सस्था हैं। राजधानी म उनका अभिनन्दन हो और धूम से हो यह मेरी इच्छा है। यद्यपि मैं इस समारोह मे उपस्थित न हो सकूँगा, तथापि मेरा हृदय आप लोगो के साथ है।

इलाहाबाद
डा० श्रीनाथसिंह
१४-६-६६

नैमन्त्रण भवत्पत्र प्राप्य चेत प्रसीदति।
उत्सवस्य तु साफल्य, हृदयात् कामयामहे॥

प्रयाग
१४-६-६६
प्रभात शास्त्री

अभिनन्दन समारोह का सुन्दर निमन्त्रण मिला। लेकिन देर से। मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ। मैं शायद अक्तूबर के द्वितीय सप्ताह मे दिल्ली आऊँगा, तब मिलूँगा और व्यक्तिगत रूप से तुम्हारी पीठ की सवर्धना भी करूँगा।

जो कुछ भी हो, तुम हो काम के आदमी, और तुम्हारा अभिनन्दन होना ही चाहिए था। शुभकामनाओ समेत,

काठमाडू (नेपाल)
डॉ० इन्दुशेखर
२७-६-६६
(सास्कृतिक सहचारी भारतीय राजदूतावास)

कल 'सुमन अभिनन्दन-समारोह' मनाया जा रहा है। उपस्थित हो सकता, तो परम हर्ष होता, पर अभाग्यवश यह सर्वथा असम्भव होगा—अस्वस्थ भी हूँ और बुरी तरह व्यस्त भी। मुझे इसका और भी दु ख है कि अनेक बार याद दिलाए जाने पर भी और हार्दिक इच्छा के बावजूद मैं अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए कुछ भी न लिख सका। चाहता था कि केवल

शुभकामनाएँ नही, कोई ऐसा सस्मरणात्मक लेख भेजूं जिससे मुझे भी सतोष हो, पर उसकी नौबत नही आई। अब क्षमा ही मांग सकता हूँ। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ सुमन-जी के लिए सदैव रही हैं और रहेगी। इस शुभ अवसर पर मैं उनका सादर अभिनन्दन करता हूँ।

इलाहाबाद
१५-९-६६ बालकृष्ण राव

···मैं उपस्थित तो न हो सकूँगा। अवश्य ही आयोजन की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करके परितोष का अनुभव कर रहा हूँ। आपका आयोजन सफल हो और वह चिरस्मरणीय रहे। भाई सुमनजी के यशस्वी और दीर्घ जीवन के लिए अपनी मगल-कामनाएँ। वे स्वास्थ्य, सौख्य और समृद्धि से भरा-पुरा जीवन पाएँ—खूब लम्बा, जिसमे उन्हे मित्रो और परिजनो का स्नेह अटूट रूप मे सुलभ होता रहे। हिन्दी और उसके साहित्य के विकास मे उनके अपूर्व प्रदेय की भी अभी सम्भावनाएँ शेष हैं। ये सम्भावनाएँ कृतित्व के रूप मे निश्चय ही फलवती होंगी। शुभाकांक्षा सहित,

नागपुर डॉ० कमलाकान्त पाठक
१५-९-६६ (अध्यक्ष हिन्दी विभाग नागपुर-विश्वविद्यालय)

"···जब आपका अभिनन्दन हुआ तब मैं भारत मे नही था। लौटकर हाल मे 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' म पढा—और चित्र देखे—कि डॉ० जाकिर हुसैन साहब ने आपको अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया। देर से ही सही, मेरी हार्दिक बधाइयाँ तथा सस्नेह-अभिवादन ग्रहण कर। आप निष्ठावान साहित्य-सेवी हैं, और जमकर बैठकर काम करना जानते हैं। उसके बिना इतने ग्रन्थ आप लिख ही नही सकते थे। ईश्वर आपको अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घायु दे, ताकि आप राष्ट्रभारती की अधिकाधिक ठोस सेवा कर सकें। आपके कृतित्व से हिन्दी का साहित्य-भण्डार समृद्ध हुआ है, और भविष्य में भी होता रहेगा, इसका मुझे दृढ विश्वास है।

नागपुर
१०-१०-६६ अनन्तगोपाल शेवड़े

···मुझे खेद है कि आमन्त्रण विलम्ब से पाने की वजह से समारोह मे सम्मिलित होने के सुख से मैं वचित ही रह गया। बस अब तो अनुपस्थिति के लिए क्षमा-याचना ही कर सकता हूँ। इस क्षमा-याचना सहित मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार करें। ईश्वर आपको शतायु करे और आपके माध्यम से हिन्दी-जगत् को गौरवान्वित। 'सुमन' शब्द हर अर्थ मे आपके प्रसग मे सर्वथा सार्थक है। ऐसे 'सुमन' के अभिनन्दन मे शब्द (जो सुमन रूप स्वनामधन्यों के ही हो सकते हैं)-मात्र ही अर्पित कर पा रहा हूँ। इन शब्दों को मेरी

श्रद्धा की मुखर अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करके अनुग्रहीत करें।

नई दिल्ली

१६-६-६६ कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु'

...समारोह में मैं अवश्य सम्मिलित होना चाहता था, यदि एक दिन पूर्व भी मुझे यह पत्र मिल जाता। श्री सुमनजी मेरे स्नेही सखा हैं—ऋजु प्रकृति के निरभिमानी विद्वान् हैं। इनका अभिनन्दन विशेष गौरव का स्थान है। ये क्रान्तिकारी देश-सेवक के नाते भारतीय जनता के सम्मान के अधिकारी हैं। राष्ट्र-भाषा के अनन्य सेवक सुमनजी के प्रति मैं इस अवसर पर अपने श्रद्धा के पुष्प अर्पित करता हूँ।

पटियाला डॉ० परमानन्द शास्त्री

१५-६-६६ (निदेशक हिन्दी विभाग पजाब)

.. बुखार में हूँ। सप्रू-हाउस पहुँचना चाहकर भी असमर्थ हूँ। अतः ठीक आपके अभिनन्दन की वेला में इस पत्र द्वारा मैं भी अपनी ओर से आपके प्रति मंगल-कामनाएँ प्रेषित कर रहा हूँ। मेरी अनुपस्थिति को अन्यथा न समझें। शत-शत अभिनन्दन।

नई दिल्ली

१६-६-६६, साय ५॥ बजे डॉ० श्याम परमार

...कितनी प्रतीक्षा थी इस समारोह की, पर मैं उल्लास से वंचित ही रहा। परिवार में अस्वस्थता के कारण मेरा आना असम्भव हो गया। इस अवसर पर यही हार्दिक शुभ-कामना है कि आपका व्यक्तित्व उत्तरोत्तर उज्ज्वल और कृतित्व ऊर्जस्वित बने।

मेरठ

१६-६-६६ डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल

...आपका अभिनन्दन धूम-धाम से हो गया। उसका समाचार भी यथासमय पत्रों में पढ़ लिया। उसके बाद कल उक्त समारोह का निमन्त्रण मुझे मिला है—दस दिन के पश्चात्। खैर, 'देर आयद, दुरुस्त आयद'। मेरी शुभकामना और बधाई। यदि समय पर निमन्त्रण-पत्र मिल जाता तो स्वयं उपस्थित होता। परमात्मा से प्रार्थना है कि आप और भी अधिक उत्साह से हिन्दी-साहित्य का सृजन करते रहें।

मथुरा

२७-६-६६ प्रभुदयाल मीतल

...देर से ही सही मेरी भी हार्दिक हर्ष-बधाइयाँ स्वीकार करें। मुझे तो इस योग्य भी न समझा गया कि वहाँ आ सकता, या जो ग्रन्थ आपको भेंट किया गया है उसके लिए अपने भी कुछ उद्‌गार लिखकर भेज सकता। ठीक है, बड़ों के बड़े-बड़े साहित्यकारों के बीच में हम बच्चों के साहित्यकारों की पहुँच हो भी कैसे सकती है? बहुत सी सिनेमा की तसवीरों

को बच्चो का देखना वर्जित होता है।

बरेली

२५-९-६६ निरकारदेव 'सेवक'

...आपका अभिनन्दन करके दिल्ली के साहित्यकारो ने एक महत्त्वपूर्ण साहित्य-सेवी का अभिनन्दन किया है और हिन्दी के प्रति अपना आभार प्रकट किया है।

कानपुर

२०-९-६६ गिरिराजकिशोर

कर्मठ और यशस्वी जीवन के अभिनन्दन मे एक विनम्र श्रद्धा-कुसुम मेरा भी कृपया स्वीकार करें। ग्वालियर की घटनाएँ समाचार-पत्रो मे आपने पढी होगी। मन की मन मे ही रह गई। न आ सका। ईश्वर आपको दीर्घायु दे, जिससे प्रेरणा का एक स्रोत नई पीढी को सदा उपलब्ध रहे।

ग्वालियर

२०-९-६६ प्रकाश दीक्षित

समासीन तुम जिस ऊँचे पर,
क्या मेरे बौने प्रणाम भी,
पहुँच सकेंगे बन्धु वहाँ तक ?
वे पहुँचें या न पहुँचे पर—
सुमन-गन्ध तो,
सहज सुलभ है,
जन-जीवन, को
सत्-शिव-सुन्दर।

चिरगाँव (झाँसी)

१९-९-६६ हरगोविन्द गुप्त

...आपके मगलमय अभिनन्दन के अवसर पर कामना है कि आप अनामय दीर्घतर जीवन के अप्रतिहित अधिकारी हो।

पटना

१६-९ ६६ श्रीरजन सूरिदेव

...१६ सितम्बर को आपका मागलिक जन्म-दिवस था। इस अवसर पर आप मेरी अशेष शुभकामनाएँ एव हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिएगा।
प्रभु से प्रार्थना है कि आप सर्वथा स्वस्थ एव प्रसन्न रहे और शतायु हो।

सागर

१६-९-६६ डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

सुमनजी ने विविध रूपों मे साहित्य की सेवा की है। वे वस्तुत अभिनन्दनीय है। इस अभ्यर्चना मे मेरा स्वर भी साथ है। मेरी हार्दिक मगल कामनाएँ स्वीकार करें।

बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता

१५-९-६६ निर्मला लालदार

"'पचासा पार करने और अभिनन्दन-समारोह की बहुत-बहुत बधाई। कल बाहर से दिल्ली इसलिए लौटा कि समारोह मे उपस्थित होकर तुम्हे बधाई दूँगा। 'स्कूटर लेकर सप्रू-हाउस को चला कि वह हेली रोड पर एक मुडते हुए फोर-सीटर से टकरा गया। पसली मे चोट आई, पाँव म टीसे उठने लगी। विवश, टैक्सी लेकर घर लौट आया। भाग्य मे समारोह देखना न था। तुम्हारी जन्म-शती हमसे मने, इसकी कामना करता हुआ।

नई दिल्ली

१७-९-६६ देवराज 'दिनेश'

''आपकी साहित्य-सेवाओ और लोक-सेवाओ के लिए जो 'अभिनन्दन' किया जा रहा है उसकी सफलता के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

नई दिल्ली

१६-९-६६ देवदत्त 'अटल'

'''मुझे अत्यन्त खेद है कि मैं इस दिन के लिए पहले ही चण्डीगढ सिंडीकेट की मीटिंग के लिए हाँ कर चुका था। अत अनुपस्थिति की क्षमा चाहता हूँ। मेरे दिल मे आपके लिए एक बडी श्रद्धा है और मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि मुझे आपका अपना मित्र होने का गौरव प्राप्त है। आपने जो सेवा हिन्दी-साहित्य की की है और जिसके सम्बन्ध मे आपको अभिनन्दित किया जा रहा है, निश्चय ही आप उसके अधिकारी है। परमात्मा आपको चिरायु करे जिससे कि आप हिन्दी की हमेशा ही निस्वार्थ सेवा करते रहे।

दिल्ली डॉ० विद्यासागर पुरी

१६-९-६६ (आत्माराम एण्ड सन्स)

'''आपके जन्म-महोत्सव के शुभ अवसर पर मैं आने मे असमर्थ रहा। आपका वह उत्सव सफलतापूर्वक बडे ज़ोर-शोर से मनाया गया, इससे मेरा मानस आनन्द-तरगो से तरगा-यित हो उठा। मुझ अकिंचन सेवक की हार्दिक बधाइयाँ सहर्ष स्वीकार कीजिए। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि हम ऐसी ही कम-से-कम ४५ वर्ष-गाँठें और मनावें और हिन्दी-साहित्य का वसन्तोद्यान ऐसे अमित सुरभिमय 'सुमन' की साहित्य-सुरभि से सुर-भित होता रहे।

त्रिचूर (केरल)

२६-९-६६ सुधांशु चतुर्वेदी

सुधीन्द्र शैलचन्द्रोऽसौ
सुधी सुमनसा प्रियः ।
सुमन सुमनस्तुल्यो
दिक्षु कीर्ति प्रसारयेत् ।
चिरायुर्लोकजना भूयो
गुणैर्मान्य सदा सन ।
आदर्श जीवन साक्षात्
सुख-शान्ति-समन्वितम् ॥

ज्ञानपुर (वाराणसी)
१४-६-६६ डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

भेज रहा हूं तुम्हे बधाई जन्म-दिवस पर
कर लेना स्वीकार सुमनजी इसको हँसकर
यह दिन बार-बार आए, यह अभिलाषा है
और बहुत दिन तक आएगा, यह आशा है
'डण्ठल' मे ही सुमन निखरते आए अक्सर।
यदि डण्ठल को जरा पनपने का हो अवसर॥

बिजनौर
१५-६-६६ डण्ठल

…विनम्र बधाई स्वीकार करें। आपने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र मे जो अथक और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है उसकी तीव्र प्रगति की आशा करता हूं। आपने मानवीयता के दुर्लभ गुण, मिलनसारिता, जनहित की भावना एव समाज-सेवा की जो लगन है वह आपकी लोकप्रियता के आधार है। आपकी सहृदयता, निर्भीकता और अपनत्व भाव किसी को भी आकर्षित किये बिना नही रहते। इन सभी गुणो और आपके उच्च नैतिक स्तर तथा सिद्धातपूर्ण आदर्शों को मैं आपके रचना-कौशल मे प्रतिबिम्बित देखता हूं।

भोपाल
१५-६-६६ गौरीशंकर ओझा

वसुन्धरा की सृजन-शक्ति को
अम्बर करता झुककर वन्दन।
पवन जहाँ जाएगा, होगा
वहाँ सुमन का नित अभिनन्दन !

भोपाल
१६-६-६६ रुद्रदत्त मिश्र

···कभी-कभी बाहरी हालातों में बँद होकर मनवन्तर आकांक्षाओं को कितना लाचार होना पड़ता है। इसकी तीव्र अनुभूति परसों और कल हुई—मैं आपके अभिनन्दन समारोह में सम्मिलित होने के लिए पूरी तैयारी किये बैठा था, परन्तु दुर्भाग्य से यहाँ छात्र और पुलिस के संघर्ष ने गहरा रंग पकड़ लिया।

१५ सितम्बर की सुबह से ही स्ट्रिक्ट करफ्यू घोषित कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि समारोह में सम्मिलित होने के लिए स्टेशन पहुँचकर दिल्ली आ पाना तो दूर, शुभ-कामना और बधाई का अभिनन्दन-तार तक भी प्रेषित करना सम्भव न हो सका।

यों सशरीर उपस्थित न भी हुआ तो क्या, मन तो मेरा अपनी पूरी निष्ठा और सद्भावना के साथ आपके अभिनन्दन के समवेत-गान में निश्चय ही अपना स्वर मिला रहा था। ईश्वर से पुनः प्रार्थना है कि वह आपको चिरायु करे और आप सदा इसी प्रकार हमें प्यार, प्रोत्साहन देते रहें, और हमारा मार्ग-दर्शन करते रहें।

ग्वालियर शैलेन्द्र गोयल

१७-९-६६

···अपने प्रभु से प्रार्थना है कि आपका मार्ग-दर्शन हम सदैव प्राप्त होता रहे। आप स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें तथा हमारी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करते रहें। यहाँ पर कल से धारा १४४ तथा करफ्यू लगा हुआ है। स्थिति अच्छी नहीं है। पुलिस व्यवस्था व नियन्त्रण कर रही है। सामान्य जीवन ठप हो गया है। ऐसी भयंकर स्थिति में समारोह में आना बिलकुल ही असम्भव है। अपना सोचा हुआ कभी भी पूरा नहीं होता। बधाई का तार भेजना तो दूर यह पत्र भी 'बैरंग' ही सिपाही के हाथ पोस्ट आफिस के लिए भेज रहा हूँ। पता नहीं, आप तक यह पहुँचेगा भी या नहीं। पत्र बैरंग भेजने की धृष्टता की है, पर इसके अतिरिक्त और चारा भी क्या था? आशा है मेरी विवशता को ध्यान में रखते हुए क्षमा करेंगे।

लश्कर (ग्वालियर)

१६-९-६६ प्रणवपुष्प कन्दान

तुम गीतों के गीत, मुखर मन,
सुमन नयन करता अभिनन्दन।

अजमेर अकिंचन शर्मा

१६-९-६६ (हिन्दी के तार द्वारा)

···आपकी ५०वीं वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर मैं अपनी और अपनी साहित्य संस्था 'वन्दना कुटीर' की ओर से हार्दिक मंगल-कामना भेजता हूँ। कल—१६ सितम्बर को सायंकाल दफ्तर से छुटने पर भाई रामनरेश पाठक, सुरेश दुबे 'सरस', वेदनन्दन आदि हम सब मित्रों ने 'नव संगम परिवार' की ओर से आपकी साहित्य-सेवा की चर्चा करते हुए आपके शतायु होने की कामना की। आप एक मनीषी, कर्मठ और सहृदय इन्सान के रूप में हिन्दी की

जो सेवा कर रहे है, वह हम नये रचनाकारो के लिए अतीव गौरव की बात है। आज आप-सरीखे पथ-प्रदर्शक साहित्यकार की महती आवश्यकता है।

बिहार सचिवालय पटना

१७-६-६६ सुरेन्द्र जमुआर

नरा जीवन सघर्षो की लम्बी एक कथा है
मानवता का एक कथानक, जिसमे भरी व्यथा है
तेरे मन की गहराई को जलनिधि ने कब आंका
तेरा मस्तक नभ से ऊँचा, बुद्धि ज्योति-रथा है।

पानीपत

१८-६-६६ दीपचन्द्र निर्मोही

अभी पाँच बज रहे हैं। काश ! मैं पखो से उड पाता। इस समय नई दिल्ली के 'सप्रू हाउस' मे आपकी अभ्यर्चना की तैयारी हो रही होगी, जिसकी कल्पना करके मैं फूला नही समाता। हर्षातिरेक के इन क्षणा मे चार पक्तियाँ अनायास लिख गया हूँ, जिन्हे आपकी सेवा मे प्रेषित कर रहा हूँ

श्री दुर्लभ हो सुलभ तुम्हे कवि,
क्षेम सौख्य से पूरित जीवन,
चन्द्र सदृश नव ज्योति बिखेरो,
सुमन ! अमर हो कीर्ति-सुरभि-धन।

निपनियाँ, बरौनी (मुगेर)

१६ ६-६६ लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'

...आजकल यहाँ जोरो की बाढ आई हुई है। यातायात बिलकुल ठप्प है। चतुर्दिक् समुद्र का-सा दृश्य उपस्थित है। रेल, बस कुछ भी चालू नही है। इसीसे मैं समारोह मे उपस्थित नही हो सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आयोजन सब प्रकार से सफल हुआ होगा। हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति और श्री-वृद्धि के निमित्त आपने जो प्रयास और सेवाएँ की हैं वे सदैव स्मरणीय रहगी और हिन्दी-सेवी उनसे प्रेरणा ग्रहण करते रहेंगे। परमात्मा आपको चिरायु करे।

शिवहर (मुजफ्फरपुर)

२१-६-६६ उमाशंकर वर्मा

अर्द्धशती पर अरुण बधाई
छाए और अधिक तरुणाई।

समस्तीपुर (बिहार)

११-६-६६ पोद्दार रामावतार 'अरुण'

•••आपकी ५०वी वर्षगांठ के अवसर पर 'नव-सगम-परिवार' की ओर से अभिनन्दन-स्वरूप एक कविता-सग्रह निकालने की प्रबल इच्छा थी। इसी कारण कुछ दिन पूर्व मैंने आपके जीवन-वृत्त से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ भी मांगी थी।
आपका आशीर्वाद और स्नेह सहयोग मिलता रहा तो आगामी वर्ष यह साध पूरी होगी ही। १६ सितम्बर को सगम-परिवार की ओर से विशेष रूप से आपकी जयन्ती मनाने जा रहा हूँ।

पटना
१६-६-६६ सुरेश दुबे 'सरस'

• •उपवन के 'सुमन' की सुषमा व सौरभ से तो केवल सीमित वातावरण ही सुरभित रहता है, किन्तु सुमनजी की कृतियो, साहित्यिक, सामाजिक एव शैक्षणिक सेवाओ का प्रभाव असीमित है। कुछ क्षण का परिचय और फिर सदा-सदा के लिए दूसरा को अपना बना लेना, उनमे यह गुण असाधारण है। उनकी सादगी एव उच्च विचार किसी को भी प्रभावित करने के लिए पर्याप्त है। सबसे बडी बात यह, वे उदीयमान साहित्यकारो को गले लगाते हैं और उनका पथ-प्रदर्शन करते हैं। अनेक सस्थाएँ उनके निर्देशन से सँवरी है, और सेवा मे अग्रसर है। 'रश्मि परिषद्' ज्वालापुर भी उनमे से एक है, जिसके सरक्षण का भार श्री सुमनजी पर है। उनकी अर्धशती-पूर्ति के मगलमय अवसर पर, परिषद् अपने समस्त पदाधिकारियो, सदस्यो एव शुभचिन्तकों की ओर से उनके शतायु होने की हार्दिक प्रार्थना माँ भागीरथी से करती है।

ज्वालापुर एन० आर० गोयल 'अजय'
१५-६-६६ (महामत्री रश्मि परिषद्)

अमर रहे नवयुग की बेला, जिसने शुचि आलोक पसारा।
चमके-दमके गरिमा-पूरित, भव्य भावना भाग्य - सितारा॥
पथ प्रशस्त हो, जीवन मग मे जन-जीवन की साधें मुखरे।
द्वार-द्वार तव अभिनन्दन को सजी आरती प्रतिदिन उतरे॥
हिन्दी पाकर धन्य हुई है, सौम्य, सरल, उज्ज्वल तन-मन को।
जिसमे लक्षित करके भारत, देख रहा निज अपनेपन को॥
ऊषा वदित तिलक भाल नव, साँझ सराहे श्रेष्ठ सृजन को।
गर्वित होकर देश सदा दे, मानपूर्ण सम्मान 'सुमन' को॥

झाँसी
१५-६-६६ ताराचन्द पाल 'बेकल'

•• श्री सुमनजी के दीर्घकालीन कृतित्व एव साधना के उपलक्ष्य मे इस प्रकार का आयोजन अपेक्षित ही था। इसका सयोजन करके आपने जो महत् कार्य किया है उसके लिए

आप बधाई के पात्र हैं। निमन्त्रण-पत्र विलम्ब से प्राप्त होने के कारण, अति उत्सुक होने पर भी सम्मिलित होना तो सम्भव न हो सकेगा, मेरी शुभकामना स्वीकारें।

देहरादून
१६-६-६६ शशिप्रभा शास्त्री

...समाचार-पत्रों में आपके अभिनन्दन के समाचार पढ़े, लेख भी पढ़े और चित्र भी देखे। लेख भी ऐसे, जिनमें एक-एक शब्द जैसे स्वयं बोल रहा हो। आपके बहुमुखी व्यक्तित्व ने उन जड़ शब्दों में जैसे प्राण फूंक दिए हों।

मेरी अनेक व्यक्तिगत स्मृतियाँ भी मुखरित हो उठीं। देर में जागा हूँ, क्या करूँ ? इससे पूर्व जगाया ही नहीं गया, जगाकर उठाया भी नहीं गया—और उठाकर बुलाया भी नहीं गया। अच्छा काम जब भी कर दिया जाए वह सदा शुभ होता है।

आर्यसमाज, साहित्य, कविता, कला और जीवन के अनेक क्षेत्रों में आपने स्थायी पद-चिह्न बना दिए हैं। आपने पत्थर की लकीरें तो नहीं खींचीं, परन्तु जो भी लकीरें आपने खींची हैं वे सुमन के समान कोमल होते हुए भी दीर्घ-काल तक बनी रहेंगी। मेरा अभिनन्दन स्वीकार कीजिए।

मथुरा
२०-६-६६ शमनलाल अग्रवाल

'ग्रन्थ भारती' की प्रवर-परिषद् के आदरणीय सदस्य अपने श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के अभिनन्दन की सूचना हमें उसी दिन मिल पाई, जिस दिन आपका यह समारोह आयोजित था। दुर्भाग्य मानता हूँ।...

'भारती'-परिवार की ओर से हमारी मंगल-कामना उन तक पहुँचा दें। सुमनजी-जैसे कर्मठ हिन्दी स्तम्भ का अभिनन्दन करके आपने मँझधार में पड़ी हिन्दी के एक महान् योद्धा को विजय-माल पहनाई है।

लहेरिया सराय (बिहार) सोमदेव
११-६-६६ (सचिव 'ग्रन्थ भारती')

परिशिष्ट

नामानुक्रमणिका

●